





सत्वं सुखे सज्जयति

# सात्विक जीवन



## विजयांक

मूल्य छः आने

सम्पादक—हलियाराम गुप्त

३, अङ्क १

B.C. PONNAPPA

# विषय-सूची


| विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १—विजय गीत ( कविता ) | .... श्री सुबोधचन्द्र शर्मा "नूतन" | १ |
| २ - सम्पादकीय | .... ........... | २ |
| ३—सात्त्विक-जीवन | .... श्री सेठ पद्मपत सिंहानिया | ७ |
| ४ - श्री दुर्गा-स्तोत्र | .... श्री योगीराज अरविन्द | ६ |
| ५—मुटापा जा सकता है | .... श्री विट्ठलदास मोदी | १० |
| ६—इस ऋतुका मलेरिया ज्वर | .... श्री प्रो० "प्रसाद" | १३ |
| ७—वर्त्तमान परिस्थितिमें हमारा कर्त्तव्य | .... श्री सेठ छोटेलाल कानोड़िया | १५ |
| ८ – राज-धर्म-शास्त्रका अन्तिम रहस्य | .... श्री डॉ० भगवानदास जी | १७ |
| ६—मस्तीका चश्मा स्वामी रामतीर्थ | .... श्री वेद | २५ |
| १०—शिक्षाका महत्त्व | .... श्री हरिदत्त शास्त्री | ३० |
| ११—मृत्यु-विज्ञान | .... श्री गङ्गा प्रसाद गौड़ "नाहर" | ३३ |
| १२—दमन पर शान्तिका विजय | .... श्री धर्मरत्न | ३५ |
| १३—उपवास | .... श्री पुरुषोत्तमदेव आयुर्वेदालङ्कार | ३६ |
| १४—हमारी पञ्चमांश शक्ति | .... श्री राम शर्मा आचार्य | ४६ |
| १५—समालोचना-स्तम्भ | .... ........... | ५३ |
| १६—धर्मोंका समन्वय | .... श्री पाद दामोदर सातवलेकर | ५७ |
| १७—जिज्ञासा | .... श्री विष्णुदत्त शुक्ल | ६२ |
| १८—श्री राम स्मरण ( कविता ) | .... श्री धर्मदेव विद्या वाचस्पति | ६३ |
| १६—दूध बनाम दही | .... श्री गङ्गा प्रसाद "गौड़" | ६५ |
| २०—भक्तियोग | .... श्री गोपाल शास्त्री दर्शन केशरी | ६८ |
| २१—पुष्प ( कविता ) | .... श्री महेन्द्र गिरि | ७१ |
| २२—राष्ट्र भाषा और हिन्दी | .... श्री अशोक | ७२ |
| २३—वास्तविक शिक्षा | .... श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती | ७५ |
| २४—कालकी महिमा | .... श्री महेन्द्र गिरि | ७६ |
| २५ - श्री दयानन्द सरस्वती और ब्रह्मचर्य | .... श्री ठाकुरदत्त शर्मा | ७७ |
| २६—व्यावहारिक मनोविज्ञान | .... श्री डॉ० दुर्गाशंकर "नागर" | ७८ |
| २७—ओ माँ तेरी जय हो जय हो ( कविता ) | .... श्री ईश चन्द्र | ८२ |
| २८—जीवन-पुष्प में प्रेम-पराग भरो | .... श्री लहरी | ८६ |

संरक्षक— श्री मनसुखराय मोर




# सात्विक जीवन

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

वर्ष ३ } काशी—सौर आश्विन, १९९९ Benares—Octeber 1942. { अङ्क १

## विजय-गीत

(रचयिता—सुबोधचन्द्र शर्म्मा 'नूतन' सं० (शिक्षासुधा)

**विजये ! हम सब विजयी होवें ।**

( १ )

जीवन-पथपर बढ़े चलें हम,
विपदाओंसे नहीं टलें हम ;
कर्म-लक्ष्य पर चढ़े चलें हम ;
क्षण भी अपना व्यर्थ न खोवें ॥

( २ )

साहस-बलसे मनको भरलें ;
आत्म-भरोसे सब कुछ करलें ;
गिरिपर चढ़ लें, सागर तरलें ;
कायर बनकर कभी न रोवें ॥

( ३ )

कार्य हमारा पूर्ण न होगा ;
कंटक-हीन न निज मग होगा—
सुख-परिपूरित जग नहिं होगा—
तब तक सुख की नींद न सोवें ॥

( ४ )

दीन जनोंको हृदय लगाकर ;
भयके भारी भूत भगाकर ;
दिव्य-ज्ञानकी ज्योति जगाकर ;
द्वेष-भाव-तम जग का खोवें ॥

( ५ )

सत्य-अहिंसा आत्मिक बलसे ;
दूर सदा रह दुर्गुण-दल से,
अथवा 'नूतन' समता-जल से ;
प्रेम-बीज हम जगमें बोवें ॥



# सम्पादकीय

## भगवती विजया

(१) इतिहास-पुराणोंसे ज्ञात होता है कि श्रीरामचन्द्र ने आश्विन-शुक्ल-दशमीको रावण पर विजय पाई थी; अतः वह तिथि 'विजया' कहलाती है। श्रीहरिभक्ति-विलासके १५ वें विलासमें विष्णुधर्मोत्तरपुराणके अनुसार यह उल्लेख है कि 'जब हनुमानजीने लङ्कासे सीताको देख आ कर भगवान् रामचन्द्रको वहाँका सन्देश सुनाया तब वानरी सेनाके साथ लङ्कापर चढ़ाई करके उन्होंने कई दिनोंके घोर युद्धके बाद आश्विन-शुक्ल-दशमीको रावण-वध द्वारा राक्षसोंपर अन्तिम विजय पाई, और अशोक-वनिकामें शमीवृक्ष-तले, रावण द्वारा वन्दीकृत सीताको मुक्त किया; तबसे उस तिथिको 'विजया' कहनेकी प्रथा चली और प्रतिवर्ष 'राम-विजयमहोत्सव' मनाया जाने लगा। भगवती सीता, शमीवृक्ष-तले रक्खी गईं थीं; अतः उनके मुक्ति-दिवस (विजया दशमी) को विजयोत्सवके साथ ही शमी-पूजा, और शमीदर्शन करनेकी प्रथा भी है'। ये सब बातें निम्न उद्धृत वाक्योंसे स्पष्ट प्रतीत होती हैं—

"रथमारोप्य देवेशं सर्वालङ्कारशोभितं,
साऽसि-तूण-धनु-र्वाणपाणिं, नक्तञ्चरान्तकं,
स्वलीलया जगत्-त्रातुमाविर्भूतं रघूद्वहं,
राजोपचारैः श्रीरामं शमीवृक्षतलं नयेत्;
सीताकान्तं शमीयुक्तं भक्तानामभयङ्करम्
अर्चयित्वा शमीवृक्षमर्चयेद् विजयाप्तये।
गृहीत्वा साऽक्षतामार्द्रां शमीमूलगतां मृदं,
गीत-वादित्रनिर्घोषैस्ततो देवं गृहं नयेत्।
कैश्चिद्वृक्षैस्तत्र भाव्यं, कैश्चिद्भाव्यं च वानरैः,
कैश्चिद्दृक्षमुखैर्भाव्यं, कोशलेन्द्रस्य तुष्टये।
निर्जिता राक्षसा दैत्या वैरिणो, जगतीतले
रामराज्यं रामराज्यं रामराज्यमिति ब्रुवन्
आनीय स्थापयेद्देवं निजसिंहासने सुखम्।
ततो नीराज्य देवेशं प्रणमेद्दण्डवद्भुवि;
महाप्रसाद-वस्त्रादि धारयेद् वैष्णवैः सह।
इति श्रीविष्णुधर्मोक्तानुसारेण व्यलेख्ययं
विधिः श्रीरामविजयोत्सवस्योत्सवकृन् सताम्।
सीता दृष्टेति हनुमद्वाक्यं श्रुत्वाऽकरोत्प्रभुः
विजयं वानरैः सार्धं वासरेऽस्मिञ्शमीतलात्"।

इन श्लोकोंमें जिन बातोंका उल्लेख है, उनके अनुसार ही प्रायः आज-काल भी श्रीराम-विजय-महोत्सव मनाया जाता है; परन्तु इस त्योहारमें अब लोगोंका केवल धार्मिक भाव और मनोरञ्जनका खयाल ही शेष रह गया है; इससे जो उच्च शिक्षा लेनी चाहिये, उसकी उपेक्षा हो गई है। ऊपर उद्धृत श्लोकोंसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि रामविजय-महोत्सवको प्रतिवर्ष उसकी तिथियों (विजय-दशहरा) पर यथोचित रीतिसे मना कर मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके आदर्श मानव-चरितकी स्मृतिको ताजा करके तदनुसार कर्तव्य-पालनका भाव ग्रहण करना चाहिये; और अपने राष्ट्रमें सदैव राम-राज्य क़ायम रखनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये।

रामचरितसे और उसके अनुकरण-रूप विजयोत्सवोंपर की जानेवाली रामलीलाओंसे अद्भुत समाज-संघटन और उसके द्वारा दुष्ट-निग्रहका उपदेश मिलता है। स्वयं मर्यादा-पुरुषोत्तम राजर्षिव्रतनिष्ठ रामने निषाद, किरात, कोल-भिल, शबर, राक्षस, वानर, भालु आदि जङ्गली लोगों और पशुओंसे लेकर ब्राह्मण

महर्षियों तक का यथायोग्य समादर-सत्कार तथा प्रेमभावसे संघटन किया था; जिसके बल और साहाय्यसे उनको लोकरावण रावण पर भी विजय मिली। एक ओर सभी वैज्ञानिक और दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्ज अपार राक्षसी सेना और रावणकी लोक-विजयिनी महाशक्ति थी, और दूसरी ओर निरस्त्र और पदाति वानर-सैन्य था। आकाशसे अग्नि बरसानेवाले और पृथिवीसे जल-प्रलय मचानेवाले ("नभसे बरसहिं विपुल अङ्गारा, महिते प्रकट होत जल धारा") मायायुद्ध-निपुण राक्षस-महासैन्यकी, ईंट-पत्थर, वृक्ष शाखा, लात-मुक्के और नख-दन्तोंकी मार-से ही निहत्थी वानरी सेनाने जो दुर्दशा की उसकी कथा इतिहास-प्रसिद्ध है।

सुशिक्षित, वैज्ञानिक, और दिव्य युद्धसाधनोंसे समृद्ध, महाबलोद्धत राक्षस-साम्राज्यको धूलमें मिला देनेमें, ये नख-दन्तमात्रधारी जङ्गली जीव कैसे समर्थ हुए? इसी प्रश्नके उत्तरको सतत ताज़ा रखनेके लिये रामविजय-महोत्सवकी आवश्यकता और वास्तविक सार्थकता है। पर, आज हम रामलीला-नुकारसे कुछ अन्यथा ही समझते हैं।

आज हममें मर्यादापुरुषोत्तम रामकी संघटनशक्ति और लोक-संग्रह-बुद्धिका सर्वथा अभाव हो गया है। उन्होंने महर्षि ब्राह्मणोंसे लेकर जङ्गली पशुओं तक का संघटन किया; निषाद, शबर, किरात, गृद्ध आदिको भी गले लगाया और पितृ-तुल्य प्रतिष्ठा दी; फलतः उनके साधारण सैनिकोंकी सङ्घशक्ति इतना प्रबल और अदम्य हुई कि, उसकी ठोकरोंसे तथा नख-दन्तके आघातसे लोकोत्तर राक्षस-साम्राज्य सदाके लिये जड़से उखड़ गया। उन्हीं रामके विजयोत्सव पर रामलीला-नुकारसे हम सिर्फ़ पारलौकिक पुण्य कमाते और लौकिक मनोरञ्जन मात्र करके धन्यम्मन्य तथा परम कृत-कृत्य हो जाते हैं; रामलीलासे लोक-संग्रह और संघटन द्वारा विजयिनी सङ्घशक्तिको प्राप्त करनेकी ज़रा भी चेष्टा वा चिन्ता नहीं करते। यह, निषादको गले लगानेवाले, शबरीके उच्छिष्ट बेर खानेवाले और गृद्धका पितृवत् श्राद्ध करके सर्वभूत-प्रेम, और संघटन-का अपूर्व आदर्श उपस्थित करनेवाले, मर्यादा-पुरुषोत्तम रामकी लीलाकी कैसी शोचनीय विडम्बना है! आज तो हमारी प्रत्येक बिरादरी भी परस्पर अस्पृश्य अनेक उपजातियोंमें बँट कर असंघटित और गृह-कलहाय-मान हो रही है। इसका विषम परिणाम भी आर्य-भारत और हिन्दू क़ौम के सिर पर है।

कहा जा सकता है कि श्रीराम-कृष्ण-प्रभृति तो ईश्वरके अवतार हैं; उनके सब चरित अलौकिक होंगे; उनके अनुकरणका सामर्थ्य साधारण मनुष्यमें कैसे होगा; अतः रामलीलादि द्वारा पुण्य और मनोरञ्जन-मात्र करके ही हमें सन्तोष करना चाहिये।

पर, इस विचारका प्रतिवाद स्वयं भगवान्ने ही गीतामें कर दिया है—"यद्यदाचरति श्रेष्ठः, तत्तदेवे-तरो जनः" जो आचरण श्रेष्ठ लोग करते हैं, उसे ही दूसरे साधारण जन भी अपनाते हैं; इसलिये भगवान् भी मानवचरित ही करते हैं; क्योंकि उसके द्वारा उन्हें लोगोंको मनुष्य-कर्त्तव्यका ही उपदेश करना अभीष्ट होता है; अन्यथा अवतार लेनेका कोई प्रयो-जन ही न रह जायगा। इसलिये विजयोत्सवादिसे प्रकृत लोक-शिक्षा लेनेकी बातको, ईश्वरकृत होनेके बहाने, असम्भव बता कर हम छुट्टी नहीं पा सकते। हमें अपने ऐसे त्योहारोंका उपयोग, सम्यग् बुद्धि-योग और कर्मयोगको सीखनेमें करना चाहिये।

(२) पुराण-शास्त्रोंमें 'विजया' का दूसरा इतिहास इस प्रकार है कि 'विजया' नाम, दुर्गाका है, क्योंकि उन्होंने 'पद्म' नामक महाबल दैत्यराजको विजित करके यह नाम पाया—

'विजित्य पद्मनामानं दैत्यराजं महाबलं,

'विजया' तेन सा देवी लोके चैवापराजिता"

( देवी-पुराणे ४५ अध्यायः )।

इसलिये प्रतिवर्ष आश्विन-शुक्ल पक्षके दशहरेमें—विशेषतः अन्तिम तीन दिनोंमें—'विजया' देवीकी पूजा की जाती है। दुर्गाका ही नाम 'विजया' होनेके कारण, इस त्योहारको 'दुर्गापूजा' के नामसे भी अभिहित करते हैं, और दशहरेके अवकाशको 'दुर्गापूजाकी छुट्टी' कहते हैं। इन बातोंका उल्लेख, शास्त्र-पुराणोंमें भी है; यथा—

"आश्विने शुक्लपक्षे तु कर्त्तव्यं नवरात्रकं,
प्रतिपदादि-क्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत्।"
"आश्विने शुक्लपक्षे तु सप्तम्यादि-दिनत्रये,
तत्र पूजा विशेषेण कर्त्तव्या मम मानवैः"
"शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी,
शारदीया महापूजा चतुःकर्ममयी शुभा;
तां तिथित्रयमासाद्य कुर्याद् भक्त्या विधानतः"
"आश्विने शुक्लपक्षस्य दशम्यां पूजयेत्तथा"। इति।

इन प्रमाणोंसे यह प्रमाणित होता है कि शारदी विजयाका उत्सव वस्तुतः दुर्गापूजाका त्योहार है। इस त्योहारको मनानेके जो विधि-विधान, पूजा-पद्धति, यात्रा-जुलूस, आवाहन, प्रवेश, सम्प्रेषण, विसर्जन आदि कृत्य, शास्त्रोंमें बतलाये गये हैं, उन सबका अनुष्ठान प्रायः उसी प्रकारसे, लोकमें भी आजतक प्रचलित है; इससे भी उपर्युक्त बातकी पुष्टि होती है।

ऐसे उत्सवोंको मनानेके कुछ पवित्र उद्देश्य होते हैं; देवी-देवों, ऋषि-मुनियों, पूर्वपितरों, अवतार-पुरुषों, धर्माचार्यों और लोक-नेताओंकी जयन्तियां मनानेका अथवा तत्सम्बन्धी विजय-महोत्सव करनेका मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिये कि उससे योग-क्षेम-कारक लोक-शिक्षाका, अनायास और सहज-मनोरञ्जक-रूपसे प्रचुर प्रचार हो। युगप्रवर्त्तक, धर्मचक्र परिवर्त्तक, दुष्टनिग्राहक, शिष्टानुग्राहक, सन्मर्यादा-संस्थापक, श्रुतिप्रत्यक्ष-कारक, कृत्य-वर्त्म-निर्देशक पूर्वज महापुरुषोंके संस्मरण, कीर्त्ति-कीर्त्तन, गुणानुवाद, जीवन-चरितानुकरण-महोत्सव आदिके द्वारा समाज को सदुपदेश और शक्ति प्राप्त होती है। जयन्ती व विजयोत्सव द्वारा, देव, ऋषि, अवतार और धर्माचार्य प्रभृतिके कर्त्तव्योंको प्रत्यक्षवत् करके लोग सीखते हैं अन्यथा कुछ मनोरञ्जन और कल्पित पुण्यके सिवा उसका कोई विशिष्ट फल नहीं होता। दुर्गाकी विजय और तत्सम्बन्धी त्योहार-महोत्सवसे यह शिक्षा मिलती है कि शक्तिरूपिणी स्त्रियां भी देश, समाज, राष्ट्र और जान, माल, इज्जत पर आक्रमण करनेवाले दैत्य-दानव वा असुर-राक्षस-तुल्य दुष्टोंका दमन करके विजया जयन्ती वा अपराजिता बनें और प्रजाका योग-क्षेम करें; फिर पुरुषोंके लिये कहना ही क्या!

किन्तु आज-काल त्योहारोंके लोकशिक्षात्मक मुख्य उद्देश्योंको लोग भूले हुए हैं; केवल पारलौकिक पुण्य और लौकिक मनोरञ्जन मात्र इनका उद्देश्य रह गया है।

पुण्यार्थ दुर्गापूजामें भी शास्त्र-विरुद्ध-कृत्योंकी कुप्रथा प्रचलित हो गई है। पशुबलि देकर दुर्गादेवीको प्रसन्न करनेकी धारणा फैल गई है; पर यह कार्य शास्त्रके सर्वथा विरुद्ध है। खास तौरसे शारदी दुर्गा-पूजा वा विजया-त्योहारमें भी पशुबलिका प्रतिषेध किया गया है, और पशुबलिमय हिंसा पूजाको किरातों तथा म्लेच्छोंका तामस कर्त्तव्य कहा है—

"शारदी चण्डिका-पूजा त्रिविधा परिगीयते;
सात्त्वकी राजसी चैव, तामसी चेति विश्रुतिः।
सात्त्विकी जप-यज्ञाद्यै र्नैवेद्यैश्च निरामिषैः।
राजसी बलिदानैश्च नैवेद्यैः सामिषैस्तथा।
सुरा-मांसाद्युपाहारैः जप-यज्ञै र्विना तु या,
बिना मन्त्रैस्तामसी स्यात् किरातानां तु सम्मता।
एवं नाना-म्लेच्छगणैः पूज्यते सर्वदस्युभिः।"

इन श्लोकोंसे स्पष्ट है कि, पशुबलिमय दुर्गापूजा 'म्लेच्छ-कर्म' है। पर, शास्त्रीयताके भ्रमसे और मोह-वशात् बहुतसे पण्डित और हिन्दू-द्विज भी पशुबलिको दुर्गापूजाका अङ्ग माने बैठे हैं।

देवी-दुर्गाको जीवबलि देनेकी बात युक्ति-विरुद्ध भी है। क्योंकि भगवती दुर्गाको 'जगन्माता' और 'भूतधात्री' भी कहते हैं। भला जो जगत्के सभी प्राणियोंकी 'माता' और 'धात्री' ( धारण-पोषण करने वाली ) है; वह अपने किसी भी प्राणि-रूप बच्चेका बलिदान, स्वयं अपने लिये कैसे चाहेगी। जब कि दुनिया की साधारण मातायें अपने बच्चेको मरवा करके खाना पसन्द नहीं करतीं, तो जगद्धात्री चराचर-विश्व जननी महादेवी, अपने पशु-प्रभृति बच्चोंकी हत्या कराना कैसे बर्दास्त कर सकती है। अतः न्यायतः तो यही बात सिद्ध होती है कि जैसे किसीकी माताके सामने उसे प्रसन्न करनेके लिये कोई उसके पुत्रकी ही बलि चढ़ावे, तो माता अवश्य ही बलिदान-कर्ताको ज़िन्दा चबा जानेकी इच्छा और प्रवृत्ति करेगी ; वैसे ही जगन्माता दुर्गाके लिये, उन्हींके किसी पशु-पुत्रकी बलि चढ़ानेवालेके प्रति उनका भाव भी वैसा ही होना चाहिये।

इसपर भी आश्चर्यकी बात तो यह है कि बलि-कर्त्ता सज्जन, स्वयं तो बलि चढ़ानेके बाद पशु-मांसको गर्म मसाला आदिसे ओत-प्रोत और घी-तेलमें तल करके अग्निपक्व बना कर खाते हैं। पर, भगवती दुर्गाको, बलि-पशुका कच्चा खून मात्र दे कर वञ्चित करते हैं। सामान्य शास्त्रीय नियम और लोक-व्यवहार तो यह है कि देवताको जो वस्तु जिस रूपमें भेंट की जाय, वा जो पदार्थ दुर्गामाता अथवा ठाकुरजीके भोग लगाया जाय, उसे उसी रूपमें महाप्रसाद मानना और ग्रहण-सेवन करना चाहिये। पर, वैसा न करनेवाले बलिकृत् दुर्गापुजारी लोग बड़े होशियार मालूम पड़ते हैं।

फिर भी इधर वर्षोंसे पशुबलि-प्रथाका विरोध हो रहा है ; और बहुत लोग, देवी-देवके नामपर, निरीह पशु-वध करके मांस खाना स्वयं नापसन्द करने लगे हैं, यह शुभ लक्षण है।

अस्तु, उपर्युक्त विवेचनसे यह ज्ञात हुआ कि 'विजया' का त्योहार, राम के रावण-विजय से और दुर्गा के दैत्य-विजय से भी सम्बन्ध रखता है। लोकमें भी यह त्योहार दोनोंके चरितोंके आधार पर, पृथक् पृथक् पद्धतिसे मनाया जाता है। देशमें रामलीला और दुर्गापूजाके महोत्सवों के दृश्य सर्वत्र मुख्य स्थानोंपर प्रत्यक्ष ही देखे जाते हैं। इन द्विविध उत्सवोंका कारण यह होगा कि काल-भेदसे रामके राक्षस-विजय और दुर्गाके दैत्य-विजयकी तिथि, आश्विन-शुक्ला दशमी ही पड़ गयी होगी। आश्विन तो प्रतिवर्ष आता है ; किसी युगके किसी आश्विनमें दुर्गा-विजयकी घटना, और किसी दूसरे युगके आश्विनमें राम-विजयकी घटना हुई होगी। दोनों ही 'विजया' संयुक्त रूपसे मनाई जाने लगी होगी, जिसका प्रतिरूप अब भी अनुवर्त्तमान है।

ये दोनों विजय-महापर्व, प्रतिवर्ष एक साथ उपस्थित होकर हमें राम ( ईश्वर ) और दुर्गा ( ईश्वरीय-महाशक्ति ) के लोकोद्धारक रूपका संस्मरण कराते और हमारे लिये उनके संयुक्त शुभाशीर्वाद तथा कर्त्तव्योपदेशका सन्देश सूचित करते हैं। हमें चाहिये कि 'विजया' की स्मृतिसे, हम राम और दुर्गाके जगदुद्धारक कर्त्तव्यका अनुकरण, यथाशक्ति करें। भगवती विजया अब भी चिर-पददलित भारतवर्षको विजयश्री-प्रसाद दे।

## नव-वर्षका शुभ-सन्देश

हमारे प्रिय पाठकों और ग्राहक-अनुग्राहकोंको यह विदित है कि 'सात्त्विक जीवन' पहले कलकत्तेसे

प्रकाशित होता था। सर्व-साधारणको यह सूचना भी यथासंभव दे दी गई है कि कलकत्तेकी परिस्थितिमें अस्थिरता आ जानेके कारण, 'सात्त्विक जीवन' का प्रकाशन अब श्रीकाशीपुरीसे हो रहा है।

कलकत्तेसे उपकरण-सामग्री आदिको काशीमें लाकर स्थितिको ठीक करनेमें कुछ समय लगना और पत्र-प्रकाशन स्थगित रखना अपरिहार्य था; अतः 'सात्त्विक जीवन'के कुछ अङ्क नियमानुसार प्रतिमास यथासमय प्रकाशित न हो सके। यही कारण है कि गत वर्ष 'सात्त्विक जीवन' के ६ अङ्क ही निकल सके; इस विवशता कृत त्रुटिके लिये हम पाठकोंके समक्ष क्षमा-प्रार्थी हैं। आगे यथासमय वर्षके पूरे अङ्कोंको प्रकाशित करनेका हमारा भाव दृढ़ बना है।

आगेके लिये भी हमारा दृढ़ सङ्कल्प यही है कि हमारी गति-प्रगतिको सर्वथा कुण्ठित कर देनेवाली बलवत्तर विघ्न-बाधा जब तक हमारे कार्यको असंभव न कर सकेगी तब तक हम अपने पाठकोंकी सेवा, पहलेकी अपेक्षा भी अधिक उद्योग उत्साह और पाठ्य-सामग्रीकी भेंट द्वारा करते रहेंगे।

हमारे नियम और सङ्कल्पके अनुसार 'सात्त्विक-जीवन' का नया वर्ष, हरसाल, विजया दशमीसे प्रारम्भ होता है। तदनुसार इस 'विजयाङ्क' से इसका तृतीय वर्ष प्रारम्भ हुआ।

इस अवसर पर हम अपने कृपालु लेखकों, प्रेमी पाठकों, अनुकम्पक संरक्षकों, श्रद्धालु ग्राहकों, शुभ सन्देश-सत्संमतिदाताओं और अन्ततः सहानुभूति रखनेवाले सज्जनोंको भी यथायोग्य शतशः धन्यवाद और बधाई देते हैं; एवं जिन कर्मचारियों, अथ च अन्यान्य महानुभावोंने, चाहे जिस किसी भी प्रकारकी सहायता हमें 'सात्त्विक जीवन' के कर्मयोगमें पहुंचाई है, उन सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता-प्रकाश करते हैं। साथ ही उन सबसे हमारी विनम्र सानुनय प्रार्थना है कि पहलेकी भाँति ही, आगे भी अपने सुलेखों, सद्विचारों, शुभसम्मतियों और अपेक्षित सहायता-सहानुभूतियोंसे 'सात्त्विक जीवन' को अनुगृहीत करते रहेंगे; क्योंकि आप सज्जनोंकी अनुकम्पा और सहायताके बिना 'सात्त्विक जीवन' न तो चल सकता, नहीं अन्वर्थ और अपने सदुद्देश्यमें सफल ही हो सकता है।

पूर्व-प्रतिज्ञाके अनुसार घोषित, 'सात्त्विक जीवन' के उद्देश्य, विधेय, नियम और कार्यक्रमको इसके सभी पाठक जानते ही हैं; इसकी वही नीति, आगे भी बनी रहेगी। तदनुसार समस्त मानव-समाजके लौकिक तथा पारलौकिक हितसाधनके लिये सद्धर्म, सत्कर्म, सदाचार, सुनीति, योग, भक्ति, अध्यात्म, दर्शन, आयुर्वेद, समाजशास्त्र आदिका, वैयक्तिक, साम्प्रदायिक आक्षेपोंसे रहित और अश्लीलता तथा अशिष्टतासे वर्जित, प्रचार करना ही, 'सात्त्विक जीवन' का मुख्य कर्त्तव्य आगे भी बना रहेगा।

हाँ, अवश्य ही, गत वर्षोंकी अपेक्षा यहाँ हमें 'सात्त्विक जीवन' के लिये अधिक साधन-संवलन, और अपने अपने विषयके योग्य अधिकारी विद्वानोंके विमर्शपूर्ण सुलेख आदि-द्वारा, विशेष सहायता-सामग्री मिलनेकी बहुत आशा है; जिससे पत्रको समधिक समुन्नत-रूपमें पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करनेकी संभावना की जाती है।

यही हमारा नव-वर्षका शुभ सन्देश है। ईश्वर हमें इसके लिये सदुत्साह, सुप्रवृत्ति, शक्ति तथा सुबुद्धि दे।

"धियो यो नः प्रचोदयात्"

## कृतज्ञता-प्रकाश

इस अङ्कके लिये, हमारी प्रार्थनापर, जिन विद्वान् लेखक महानुभावोंने यथासमय अपने सुलेख भेजकर हमें अनुगृहीत किया है, उन सबके प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता-प्रकाश करते हैं। आशा है, आप लोग आगे भी हम पर ऐसी ही कृपा बनाये रखेंगे।

इस विशेषाङ्कको कुछ और बड़े आकारमें प्रकाशित करनेका विचार था; पर, कई असुविधाओंके कारण तथा समयकी कमीसे हमारा यह मनोरथ पूरा न हो सका है।

यही कारण है कि, समय और स्थानके अभावसे, इस अङ्कके लिये आये हुए सब लेखोंको हम इसमें प्रकाशित नहीं कर सके हैं।

आगामी अङ्कमें ये बचे लेख, क्रमशः प्रकाशित किये जायंगे; क्योंकि ये सभी लेख अभिनन्दनीय विद्वानों द्वारा लिखित, और पठनीय, संग्राह्य तथा उपादेय हैं।

# सात्त्विक जीवन

लेखक—सेठ श्रीपद्मपतजी सिंहानियां

"सात्त्विक जीवन" के सम्पादक अपने विजया-दशमीके विशेषांकके लिये मुझसे कोई लेख चाहते हैं। यह एक ऐसा विषय है जिसपर जितना ही लिखा जावे वह थोड़ा है। हमारे शास्त्र और पुराण इस विषयपर गम्भीर विवेचना करते करते भी सब कुछ न कह पाये। इस माया-मोह-ममता तथा कर्म-विपाकसे परिपूरित संसारमें, क्षणभंगुर जीवनकी पहेलीमें, यदि कोई रस और तत्त्व है तो वह केवल सात्त्विक-जीवनमें ही है। यों तो घोरसे घोर तामसिक प्रवृत्तिवाला भी दुर्योधनकी तरह मनस्वी नहीं हो सकता कि साफ कह दे कि 'मैं धर्मको जानता हूं पर उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती:—

"जनामि धर्मम्, न च मे प्रवृत्तिः"—और वह यही समझता है कि मैं जो कुछ कर रहा हूं, वही सच्चा और उचित है। पर, यही तो अज्ञान है और इसीका नाम माया है। इसी मायाके लिये तो गीतामें साफ कह दिया है कि "भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया"—इसी मायासे बचनेवाला ही यह समझ सकता है कि वस्तुतः सत्त्व-रज-तमका भेद क्या है तथा किसे सात्त्विक और किसे तामसिक कहते हैं?

सात्त्विक जीवनके प्रेमीको पहले अपने जीवनका एक लक्ष्य निर्धारित कर लेना चाहिये। आखिर वह मनुष्यकी छोटी-सी जिन्दगीमें कितना और क्या काम करना चाहता है? अगर वह यह नहीं सोच समझ पाया है कि उसे संसारमें क्या करना है तो वह उस मनुष्यके समान है जो बरसातकी उमड़ी हुई नदीमें बहता चला जा रहा है। न तो वह तटकी तरफ जा सकेगा और न तो नदीके पूरे बहावमें उसके मुहाने तक तैर जावेगा। वह थक कर डूब जाता है। ऐसी ही स्थिति हमारे देशके अनगिनत होनहार नौजवानोंकी, सुशिक्षित लोगोंकी और बड़े-बड़े विद्वान व्यक्तियोंकी भी है। जो काम सामने आया वह कर दिया, जो मिला वह खा लिया और जो जीमें आया बक दिया। यह कर्म-संन्यास नहीं है। वह तो दूसरी ही महान् और अद्भुत वस्तु है। यह तो आत्महत्या है। संसारमें कोई भी काम निरुद्देश्य नहीं होता। चोर, डाकू भी एक निश्चित लक्ष्यको रखकर अपनी योजना बनाते हैं। पर, जो लोग पढ़े-लिखे और विद्वान भी हैं, वे यह भी नहीं सोचते कि उनकी विद्याका, उनके ज्ञानका लक्ष्य क्या है। इसीलिये कहा जाता है कि उनका ज्ञान बेकार और बेमतलब है। जिस विद्याने हृदयकी दीप-शिखाको नहीं प्रज्वलित किया, जिसने चित्तको अन्ध-

कारके पर्देसे मुक्त नहीं किया, वह विद्या आदरके स्थानपर अनादरकी वस्तु है।

इसीलिये सात्विक जीवनका पहला मंत्र यही है कि अपने जीवनका एक लक्ष्य बना लो, चाहे वह आत्माका उद्धार हो, चाहे ज्ञान-भंडार प्राप्त करना हो और चाहे वह व्यापारी और व्यवसायी बनना हो। छोटीसे छोटी हैसियतका आदमी भी सबके समान हाथ-पैर-ज्ञान वाला व्यक्ति है। हैसियतने समाजमें एक दूषण पैदा कर रक्खा है; पर उस दूषणको दूर करना चाहिये। काम करनेका अवसर मिलनेपर पत्थर भी हीरा बन सकता है। पर, यह अवसर मांगेसे नहीं मिलता। यह भीखकी चीज नहीं है। यह उपार्जनकी वस्तु है। यदि आज कोई उठना चाहे और आगे बढ़कर अपनी शक्तिका लोहा लेना चाहे तो उसे पीछे ढकेला ही नहीं जा सकता। प्रसिद्ध अंग्रेजी कहावत है कि:—

There is always room at the Top

चिड़ियाको बैठनेके लिये चारो ओर स्थान है पर, जो उड़ सके, मेहनत कर सके, उसके लिये ऊंचीसे ऊंची मंजिल खाली मिलेगी। लेकिन उड़ सकनेकी, आगे बढ़नेकी, ऊंचे चढ़नेकी इच्छा होनी चाहिये। इसका संकल्प होना चाहिये। बिना संकल्पके मनुष्य विकल्पमें पड़ा कराहा करता है। यही संकल्प, यही प्रेरणा, यही लक्ष्य मनुष्य-जीवनको सफल करता है। सात्विकताका यही परिचायक है। जीवनका यही मन्त्र है।

### शुद्ध आचरण

जीवनका लक्ष्य बनानेके लिये संस्कार, सभ्यता, समाज तथा शास्त्रसे सहायता लेनी चाहिये। प्रश्न हो सकता है कि चोरने भी तो अपने जीवनका लक्ष्य चोरी करना बनाया है। तो क्या यह उचित है। इसका उत्तर सरल है। अज्ञानवश चोरने यह नहीं समझा है कि वह कितना बड़ा पाप कर रहा है हालाँ कि उसका पाप वैसा ही है जैसा कि काम-चोर या जी-चोर आदमीका। पर उस व्यक्तिको अज्ञानसे यदि सूझ नहीं पड़ रहा है तो यह काम उसके पड़ोसी साथी या समाजका है कि उसे सही मार्ग बतलावे। यदि आज हम ऐसा नहीं कर रहे हैं तो उसका कारण यह है कि हम स्वयं किसी न किसी रूपमें कमजोर हैं तो दूसरों को क्या नसीहत दे सकते हैं। समाजकी कमजोरी बड़ी घातक, विषैली, और संक्रामक होती है। इससे समाजमें जो घुन लग जाता है वह उसे श्री-हत और हत-वीर्य बनाकर निकम्मा और निर्जीव बना देता है। आज भारतीय समाज ऐसा ही निर्जीव हो रहा है।

सबसे बड़ी चीज मन-वचन-कर्मसे शुद्ध आचरण है। इससे बढ़कर संसारमें कोई सम्पत्ति नहीं है, कोई कमाई नहीं है। इसीके कारण मनुष्यत्व देवत्वको प्राप्त करता है। शुद्ध आचरण ही सात्विक जीवनका निचोड़ गुर या परिणाम है। और इसी शुद्ध आचरणका, साफ तौर पर शास्त्रकी एक बातका, अनुकरण करनेसे ही प्रगति हो सकती है। उस बातके पालनसे कभी कोई गलत रास्तेपर जा ही नहीं सकता। उससे कोई भूल हो ही नहीं सकती और जो भूल होगी भी उसका निराकरण सत्त्वगुणके आकर भगवान करेंगे। वह बात या मन्त्र है।

मनः पूतं समाचरेत्

यानी, मनको पवित्र करके आचरण करे। सदैव इस मनका मैल साफ करता रहे, सदैव इसपर गन्दी चादर न ढकने दे, सदैव चित्तको, हृदयको शुद्ध रक्खे और सबसे प्रेमका, स्नेहका, सौहार्दका, उत्साहका भाव रक्खे, तो कभी पाप होगा ही नहीं, गलत रास्ता मिलेगा ही नहीं और जीवन सफल और सार्थक हो जावेगा। इसलिये सात्विक जीवनके प्रेमीको मेरी एक ही सलाह है।

### मनको स्वच्छ रक्खो

संसार भी स्वच्छ रहेगा, तुम भी स्वच्छ रहोगे, तुम्हारा भविष्य भी स्वच्छ रहेगा।

# श्रीदुर्गा-स्तोत्र

[ लेखक— श्री-अरविन्द ]

[ वैदिक विनयके यशस्वी लेखक, गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ीके आचार्य श्री-आदरणीय स्वामी अभयदेवजीके सौजन्यसे प्राप्त ]

मातः दुर्गे ! सिंहवाहिनि, सर्वशक्तिदायिनि, मातः शिवप्रिये ! तुम्हारे शक्त्यंशजात हम भारतके युवा तुम्हारे मंदिरमें आसीन हैं, प्रार्थना करते हैं,—सुनो, मां ! आविर्भूत होओ भारतमें, प्रकट होओ ॥

मातः दुर्गे ! युग-युगमें मानव-शरीरमें अवतीर्ण होकर, जन्म-जन्ममें तुम्हारा ही कार्य करके तुम्हारे आनन्दधाममें हम फिर लौट जाते हैं। इस बार भी जन्म लेकर हम तुम्हारे ही कार्यमें व्रती हुए हैं, सुनो मां ! आविर्भूत होओ भारतमें, सहाय होओ ॥

मातः दुर्गे ! सिंहवाहिनि, त्रिशूलधारिणि वर्म-आवृत-सुन्दरशरीरे मातः जयदायिनि ! आओ, तुम्हारी प्रतीक्षामें भारत खड़ा है, तुम्हारी उसी मंगलमयी मूर्तिके दर्शनके लिये उत्सुक है। सुनो मां ! आविर्भूत होओ भारतमें, प्रकट होओ ॥

मातः दुर्गे ! बलदायिनि, प्रेमदायिनि, ज्ञानदायिनि शक्तिस्वरूपिणि भीमे सौम्य-रौद्र-रूपिणि ! जीवन-संग्राममें, भारतसंग्राममें तुम्हारे ही द्वारा प्रेरित योद्धा हैं हम, दो मां ! हमारे प्राणमें, मनमें असुरकी शक्ति, असुरका उद्यम, दो, मां ! हमारे हृदयमें बुद्धिमें देवका चरित्र, देवका ज्ञान ॥

मातः दुर्गे ! जगत्-श्रेष्ठ भारत-जाति निबिड़ अन्धकारसे आच्छन्न थी। तुम, हे मां ! गगन-प्रान्तमें धीरे धीरे उदय हो रही हो, तुम्हारे स्वर्गीय शरीरकी तिमिर-विनाशिनी आभासे उषाका प्रकाश हुआ है। आलोकका विस्तार करो, मां ! तिमिरका विनाश करो ॥

मातः दुर्गे ! श्यामला, सर्वसौन्दर्य-अलंकृता, ज्ञान-प्रेम-शक्तिका आधार आर्य-भूमि तुम्हारी विभूति है, यह इतने दिन शक्ति-संभरणके लिये आत्मगोपन कर रही थी। आ गया है युग, आ गया वह दिन, विश्वका भार कन्धेपर लेकर भारत-जननी उठ रही है, आओ, मां ! प्रकट होओ ॥

मातः दुर्गे ! तुम्हारे सन्तान हैं हम, तुम्हारे प्रसादसे तुम्हारे प्रभावसे हम महत् कार्य, महत् भावके उपयुक्त हों। दूर करो ·······क्षुद्रता दूर करो स्वार्थ, दूर करो भय ॥

मातः दुर्गे ! कालीरूपिणि, नृमुण्डमालिनि दिगम्बरि, कृपाणपाणि देवि असुरविनाशिनि ! क्रूर निनाद से अन्तःस्थ रिपुओंका नाश करो। एक भी इनमेंसे हमारे भीतर जीवित न रह जाय, हम विमल हों, निर्मल हों, यही प्रार्थना है, माँ ! प्रकट होओ ॥

मातः दुर्गे ! स्वार्थसे, भयसे, क्षुद्राशयतासे म्रियमाण है भारत। हमें महत् करो, महत्प्रयासी करो, उदारचेता करो, सत्यसंकल्प करो। बस और हम अल्पाशी, निश्चेष्ट, अलस, भयभीत न रहें ॥

मातः दुर्गे ! योगशक्तिका विस्तार करो। तुम्हारे प्रिय आर्य-सन्तान हैं हम, वह लुप्त हुई शिक्षा चरित्र, मेधाशक्ति, श्रद्धा-भक्ति, तपस्या, ब्रह्मचर्य और सत्यज्ञान हमारे अन्दर विकसित करो, जगत्में वितरित करो। मानवसहाये, दुर्गतिनाशिनि, जगदम्बे ! प्रकट होओ ॥

मातः दुर्गे ! अन्तःस्थ रिपुओंका संहार कर निर्मूल करो बाहरकी सब विघ्न-बाधा। एक बलशाली, पराक्रमी, उन्नतचेता जाति भारतके पवित्र वनोंमें, उर्वर खेतोंमें, गगन-सहचर पर्वतोंके तले, पूतसलिला नदियोंके तटपर एकतामें, प्रेममें, सत्यमें, शक्तिमें, शिल्प और साहित्यमें, विक्रम और ज्ञानमें श्रेष्ठ बनकर

निवास करें हम, यही प्रार्थना है मातृचरणोंमें, माँ ! प्रकट होओ ॥

मातः दुर्गे ! हमारे शरीरमें योगवलसे प्रवेश करो। तुम्हारे यंत्र होंगे, अशुभ-विनाशी खड्ग होंगे, अज्ञान विनाशी प्रदीप होंगे हम, भारतीय युवकोंकी यही एक कामना पूर्ण करो। यंत्री बनकर यह यन्त्र चलाओ, अशुभ-हंत्री होकर तलवार घुमाओ, ज्ञानदीप्त प्रकाशिनी होकर प्रदीप धरो, माँ प्रकट होओ ॥

मातः दुर्गे ! अब तुम्हें पाकर फिर विसर्जन नहीं करेंगे, श्रद्धा भक्ति और प्रेमकी डोरीसे बांध रखेंगे। आओ मां ! हमारे मनमें, प्राणमें, शरीरमें प्रकट होओ ॥

वीरमार्ग-प्रदर्शिनि ! आओ, अब कभी विसर्जन नहीं करेंगे। हमारा संपूर्ण जीवन अनवच्छिन्न दुर्गा-पूजा हो, हमारा सर्व कार्य अविरत पवित्र प्रेममय शक्तिमय मातृसेवाव्रत हो. यही प्रार्थना है, मां ! अवतीर्ण होओ भारतमें, प्रकट होओ ॥

( "जगन्नाथेर रथ" से )

# मुटापा जा सकता है

ले०--श्रीविट्ठलदास मोदी, संचालक आरोग्यमन्दिर, गोरखपुर

मनुष्यको प्रकृतिकी ओरसे तो समतौल एवं सुडौल ही शरीर मिला था पर उसने गलत रहन-सहन और बुरी आदतोंके कारण उसे दूसरा ही रूप दे दिया। ऐसे शरीर जिन्हें सराहनीय कहा जा सकता है आज बहुत कम देखनेमें आते हैं। इसके विपरीत कइयोंके शरीर ऐसे बेडौल एवं भारी होते हैं कि उन्हें अपने शरीरको ढोना अखरता रहता है; वे किसी प्रकार के भी आनन्दका उपभोग नहीं कर पाते और वे जीते हुए भी मुर्देके समान जीवन व्यतीत करते हैं।

### मुटापा और मानस

मोटे आदमीकी अकल भी मोटी हो जाती है। स्फूर्ति उमंग और चंचलताके उसका साथ छोड़नेके साथ साथ उसके मस्तिष्कका भी ह्रास हो जाता है; तुरन्त कुछ सोच डालनेकी शक्ति चली जाती है और वह अनुभव करने लगता है कि उसकी बुद्धि ही धीरे-धीरे मारी जा रही है। ऐसे आदमीकी हिम्मत भी पस्त हो जाती है। किसी प्रकारका साहसपूर्ण कार्य करनेकी वे सोच ही नहीं सकते और न किसी परिश्रम चाहनेवाले कार्यमें ही जुट सकते हैं। इस प्रकारके ह्रास-पूर्ण शरीर और मनमें रोगोंको अच्छा निवास मिलता है। उन्हें एक बार रोग लग जानेपर बहुत मुश्किलसे छोड़ता है। मोटापेकी वजहसे पेट बढ़कर लटक आनेके कारण नसें ढीली हो जाती हैं। अतः ऐसे आदमियोंको कब्ज तो स्थायी रूपमें रहता है। मधुमेह ( बहुमूत्र ) रक्त-चापका बढना वीर्य-सम्बन्धी बीमारियां मृगी दिलकी कमजोरी आदि रोग कभी-कभी मोटे आदमियोंके रोगके नामसे याद किए जाते हैं। कारण यह है कि वे रोग मोटे आदमियोंको बड़ी आसानीसे हो जाते हैं।

### मुटापा रोग है

मुटापा भी एक रोग है, पर लोग इसकी ओर अधिक ध्यान नहीं देते, जिसका परिणाम यह होता है कि उन्हें और भी अनेक जीर्ण रोग हो जाते हैं। जो उपचार इस लेखमें बताया गया है उससे शरीर

स्वस्थ सुडौल एवं सुन्दर तो हो ही जायगा और जो भी रोग शरीरमें होंगे, चले जायंगे।

मोटे आदमी दुबले आदमीको बनिस्वत अल्पायु भी होते हैं। जीवनका बीमा करनेवाली कम्पनियां मोटे आदमियोंके लिए प्रिमियमकी दर साधारण आदमीकी दरसे ऊँची रखती हैं। एक कम्पनीको पता लगानेपर ज्ञात हुआ था कि जिस उम्रमें दुबले आदमी दसमें दो मरते हैं उसी उम्रमें मोटे आदमी दसमें छः मरते हैं।

मुटापेका कारण

मुटापेके कारण हैं आलस्यमय जीवन और परिश्रमवाले कार्योंका न करना। यह रोग पहाड़के रहनेवालोंमें नहीं मिलता और मैदानमें भी जिन्हें अपनी रोटीके लिए शारीरिक श्रमपर निर्भर रहना पडता है उनमें यह रोग नहीं पाया जाता। इस रोगकी जड़ है काहिलपन निकस्मापन। इसमें भी सन्देह नहीं कि कुछ लोगोंके शरीरमें ही मोटे होनेकी प्रवृत्ति होती हैं। यही कारण है कि एकसा जीवन व्यतीत करनेवाले दो व्यक्तियोंमें एक मोटा होता है और दूसरा दुबला। मोटापेको हम सारे शरीरका कब्ज कह सकते हैं। साधारण कब्जमें जिस प्रकार आँतोंमें मल इकट्ठा हो जाता है इसी प्रकार सारे शरीरके कब्जमें रग-रग-नस-नसमें मल इकट्ठा हो जाता है। उसका शरीरकी बाहरी सतहपर अधिक असर दिखाई देता है क्योंकि शरीर-चर्म लचीला होनेके कारण आसानीसे बढ़ जाता है और मलको विजातीय द्रव्यको स्थान दे देता है। इसमें तो सन्देह नहीं कि मोटा न होना, मोटेसे दुबला होनेसे आसान है। यदि मनुष्य अपने भोजन और कसरतकी ओर थोड़ा भी ध्यान देता रहे तो मोटा होनेकी नौबत ही न आए पर जो मोटे हो गये हैं उन्हें तो इस रोगसे जमकर लोहा लेना होगा। इस युद्धमें धीरता चतुरता एवं दृढ़ताकी जरूरत होती है।

किसीको भी उपवास कराकर बहुत थोड़े समयमें दुबला किया जा सकता है; पर वह बुद्धिमानीका काम नहीं है। उसके अनेक खतरे भी हैं। उपवासमें शरीरमें इकट्ठा जहर एकाएक रक्तमें प्रवेश कर जाता है और रोगीका सर चकराने लगता है, पित्तका प्रकोप बढ़ जाता है। ज्वर चढ़ आता है; एवं और भी अनेक कष्ट आ घेरते हैं। अतः ऐसे रोगीको उपवास शुरूमें तो बहुत ही कम करना चाहिए। यदि उपवास करनेकी जरूरत ही दिखाई दे तो भी ऐसे रोगीको फलों एवं तरकारियोंके रसपर रखना अधिक ठीक होगा। मोटे मनुष्यका शरीर सब वस्तुओंके लिये उपवास कर सकता है; पर विटामिन और प्राकृतिक-लवणोंका उपवास नहीं कर सकता। फल तरकारियोंके रस, इन चीजोंसे भरे रहते हैं। शुरूमें ही यह बता देना ठीक होगा कि मोटापा भगानेका दो ही पुर-असर अस्त्र हैं; पहला भोजनपर संयम और दूसरा उचित कसरत।

उपचार

मोटापा एक रोग है और प्रत्येक रोगका कारण होता है। खूनमें खटाईका बढ़ ज़ाना, एवं क्षारकी कमी। अतः रोगमुक्त होनेके लिए यह आवश्यक है कि ऐसे भोजन, जो खूनमें खटाई पैदा करते हैं, उन्हें छोड़ दिया जाय। गोश्त, मछली, अण्डे, चीनी, मैदा, दाल, घी, छटे चावल आदि भोजन खूनमें खटाई पैदा करते हैं। और उसे रूग्ण बनाते हैं। इनका इस्तेमाल तो स्वस्थ आदमी को भी न करना चाहिए। मिर्च-मसाले भी अच्छी चीज नहीं है। इनके सहारे लोग भूखसे अधिक भोजन कर जाते हैं। खूनसे खटाईको दूर कर खूनको शुद्ध बनाने वाले एवं रोग मुक्त करने वाले भोजन हैं; सब तरहकी हरी एवं पत्तीदार तरकारियाँ; और, केला और कटहलको छोड़कर सब तरहके फल। मोटापेके रोगीको फल और तरकारियोंको ही अपना मुख्य भोजन बनाना चाहिए। इनमें भी प्रत्येकके गुण-दोषको जान

लेना जरूरी है। मोटापेका मुख्य कारण भोजन है। अतः इसके लिए भोजनके हर पहलूको समझ लेना आवश्यक है। खून साफ करनेके लिए फलोंमें सभी रसदार फल सन्तरा अनन्नास रसभरी, टमाटर आदि सर्वश्रेष्ठ हैं; और उनसे घटकर हैं सेब, नासपाती पपीता खरबूजा तरबूज-से ठोस फल। इसके बाद ही और फलोंको स्थान मिलना चाहिए। तरकारियोंमें सभी पत्तीदार हरी सब्जियाँ परमोत्तम हैं। एवं खीरा ककड़ी लौकी परवल तरोई आदि उनसे कुछ ही कम हैं। रोगके दिनोंमें सभी कार भाजियाँ त्याज्य हैं, केवल गाजरका उपयोग थोड़ा बहुत किया जा सकता है। इन खास वस्तुओंके अलावा चिकित्सा शुरू करने के एक दो सप्ताह बाद, थोड़ी बिना चाले आटेकी रोटी और थोड़ा मक्खन निकाला हुआ दूध या माठा भी लिया जा सकता है। यहाँ पर दुहरा देना बुरा न होगा कि मोटापा दूर करनेके लिए भूखे रहनेकी जरूरत नहीं है। बतायी गई खाद्य वस्तुओंको भर भर पेट खाइए। सोचकर इनके आधार पर अनेक आकर्षक भोजन बनाए जा सकते हैं। सवेरे उठते ही एक नीबूका रस पानीमें निचोड़कर पीजिए इससे आपको स्फूर्ति मिलेगी और ताजगी आएगी। सवेरेके नाश्तेमें कोई रसदार फल लीजिए। दोपहरको हरी सब्जियोंका सलाद इच्छानुसार खाइए और एक या दो हलकी चपातियाँ लीजिए। शामको दो पकी तरकारियों और पावभर मठेका भोजन उपयुक्त होगा। तरकारियोंके बजाय कोई ठोस फल भी लिया जा सकता है। इसके अलावा दिनमें इच्छा हो तो दो तीन बार फल एवं तरकारियोंका रस भी लिया जा सकता है। दुबला होनेके लिए टमाटर लीची और खीरे ककड़ीका रस बहुत फायदेका साबित हुआ है। लौकी और खीरे-ककड़ीके रसमें नीबूका रस और एक-आध तोला शहद मिला देनेसे बहुत बढ़िया शर्बत बनता है। यदि अधिक भूख लगे तो खीरा ककड़ी टमाटर आदिको यों भी खाया जा सकता है।

ऊपर बताए गये भोजन-क्रमसे वजन काफी घटेगा और शरीर निर्मल होगा। घटनेके लिए कभी उतावला न होना चाहिए, समझ बूझकर एक क्रमको आरम्भ कर दीजिए और निश्चित हो जाइए। एक ही भोजनपर पहले वजन ज्यादा घटता है पर पीछे कम। इसी समय कसरत शुरू कीजिए। वजन जब घटता है तब शरीर चर्म ढीला पड़ने लगता है। कसरतसे उसमें तनाव उत्पन्न होगा, वह सिकुड़ेगा और शरीरमें सुघरता आयेगी। पर कसरत अधिक करनेकी जरूरत नहीं है। टहलनेके साथ साथ कोई भी हलकी कसरत की जा सकती है। रस्सीके खेलमें एक ही जगह पर दौड़ना दुबलानेके लिए अच्छी कसरत है। ये सभी कसरतें जिनमें पास पेशियों पर तनाव पड़ता है कामकी होंगी।

दुबलानेके लिए भोजन पर नियंत्रण एवं कसरत काफी है; पर यदि लुई कूनेका बताया हुआ पेड़ू-नहान भी सुबह साम लिया जा सके तो काम जल्दी बनेगा। मोटापा तो दूर होगा ही और जितने रोग शरीरमें होंगे, निकल जायंगे। कभी कभी सारे शरीर पर भाप भी लिया जा सकता है; इसके अभावमें और गर्मीके दिनोंमें धूप-स्नान भी उतना ही उपयुक्त होगा। केवल भाप देकर एक दो पौंड लोग तुरन्त कम कर देते हैं; और भोजन आदिके बिना हेर-फेरके इसीके बलपर दुबला करनेका वादा कर देते हैं। पर इससे स्थायी लाभ नहीं होता।

रोज-रोज भाप लेनेसे स्नायु जालपर धक्का लगता है और भाप लेनेके बाद ही जो प्यास लगती है उसे मिटानेके लिए पानी पीते ही वजन ज्योंका त्यों हो जाता है।

### मुटापा दूर करनेका उपयुक्त ऋतु

किसी मौसममें भी दुबलानेका क्रम आरम्भ किया

जा सकता है, पर गरमीमें दुबलाते समय बड़ा आराम मिलता है। भोजनमें श्वेतसारकी कमीके कारण गर्मी बहुत कम लगती है; इसके विपरीत जाड़ेमें शरीरसे जब चर्वी कम होने लगती है तो जाड़ा अधिक लगता है और अधिक कपड़ेकी आवश्यकता होती है। जाड़े के दिनोंमें दुबलाते समय सवेरे और सोते वक्त एक एक गिलास गरम पानी पीना बहुत लाभदायक होगा। जाड़ा मोटापेके लिए अधिक अच्छा है। उस समय बढ़ी हुई शरीरकी गर्मी अखरती नहीं, पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जाड़ेमें दुबलानेका प्रयास ही न किया जाय। जाड़ेका भी अपना निजी फायदा है। उस समय दुबलानेके लिये उपयोगी फल एवं तरकारियां अधिक आती हैं जिससे प्रत्येक दिनके भोजनमें भिन्नता रह सकती है जिससे तबियत नहीं घबराएगी।

### कलाकार बनें

अन्तमें यही कहना है कि दुबला होनेकी इच्छा रखनेवाले महाशय कलाकार एवं मूर्तिकार बनें। उन्हें मिट्टी पत्थरसे मूर्ति नहीं बनानी है, उन्हें तो अपने बने बनाए शरीरको सुडौल सुन्दर एवं सुगठित बनाना है।

---

# इस ऋतुका मलेरिया ज्वर वस्तुतः क्या है ?

## और उसको कैसे दूर किया जाय

( लेखक—प्रोफेसर प्रसाद, प्राकृतिकस्वास्थ्य-शास्त्रोपाध्याय, काङ्गड़ी-गुरुकुलविश्वविद्यालय, हरद्वार )

आजकल शरद्‌ऋतु ( आश्विन, कार्तिक मास ) वर्तमान है; इस वर्ष सर्वत्र ऋतु-ज्वर का विशेष प्रकोप हैं—घर घर मौसमी बुखार फैला हुआ है। ऐलोपैथीके चिकित्सक इसको मलेरियाका बुखार ( Malerial fever ) कहते हैं और इसका कारण मच्छरोंमें रहने वाले एक प्रकारके कीटाणुओंका विष बतलाते हैं। इसलिए क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित सबके मनमें यह बात बैठी हुई है कि यह मलेरियाका ज्वर मच्छरोंसे उत्पन्न होता है और मच्छरोंके मारनेमें राजा और प्रजाका असंख्य धन और प्रचुर परिश्रमका व्यय होता है। जनता अवधिमे ( प्रतिदिन, तीसरे दिन वा चौथे दिन बारीसे आनेवाले ) ज्वरका, मलेरियाके ज्वरके अतिरिक्त और कोई नाम ही नहीं जानती है। आज यहाँ इन पंक्तियोंमें स्वाभाविक स्वास्थ्य शास्त्र वा प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धान्तानुसार इस ऋतु-ज्वर की कुछ विवेचना की जाती है। स्वाभाविक स्वास्थ्य शास्त्रका यह सिद्धान्त है कि जब तक मनुष्यके शरीरमें कोई विकृत द्रव्य ( विजातीय पदार्थ ) विद्यमान न हो, तब तक किसी भी प्रकारके कीटाणुसे कोई रोग उत्पन्न नहीं हो सकता। मूल कारण इस विकृत वा विजातीय द्रव्यको न हटाकर किसी प्रकारके कीटाणुओंके नाशका प्रयत्न वैसा ही है जैसा कि कोई मनुष्य किसी वृक्षके मूलको जलसे न सींच कर उसके पत्रों और शाखाओं पर जल छिड़का करे।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि शरद् ऋतुके इन आश्विन कार्तिक मासोंमें ही यह ज्वर विशेषतः क्यों फैलता है वा आनूपदेशों (आर्द्र भूमियों, नमी की जगहों ) में इसका प्रकोप क्यों अधिक होता है। इसका कारण जाननेके लिए हमको स्वाभाविक स्वास्थ्य शास्त्रके एक और सिद्धान्तका भी विचार करना है। वह सिद्धान्त यह है कि मनुष्यकी दयालु माता आदि जननी प्रकृति मनुष्यके देहमें उत्पन्न होने वाले विजा-

तीय विकृत द्रव्योंको स्वयमेव देहसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करती रहती है। यह प्रयत्न सद्यः सम्भूत (तात्कालिक) रोगोंके रूपमें दृष्टिगोचर होता रहता है। ऋतु विशेषमें वा किसी और समय अकस्मात् तत्काल प्रकट होनेवाले ज्वर, फोड़े फुंसी और उदर पीड़ा आदि प्रकृतिके इसी प्रयत्नके रूप हैं। हम अपनी भूलसे ज्वर आदि रूपधारी प्रकृतिके इन प्रयत्नोंको अपना शत्रु समझते हैं और कीटाणुओंके मारनेके बहानेसे दमनकारी औषधियाँ देकर प्रकृतिके प्रयत्नको दबाते हैं। उसका परिणाम मल निकलनेके एक मार्ग बन्द हो जानेपर किसी दूसरे मार्गसे उसके निकलनेके रूपमें देखा जाता है अर्थात् सद्यः सम्भूत तात्कालिक रोग दबाये जाकर जीर्ण (पुराने) रोगोंका गठिया आदिका रूप धारण कर लेते है। वैसे तो प्रकृति माता का उक्त प्रयत्न सदा ही चलता रहता है, किन्तु वर्षा ऋतुमें वातावरण और भूमिमें आर्द्रताकी अधिकताके कारण मनुष्यकी पाचन शक्ति कुछ निर्बल पड़ जाती है। वर्षा ऋतुके अन्तमें सूखते हुए दलदलोंके सड़नेसे वातावरण और भी दूषित हो जाता है और मनुष्यकी पाचन शक्तिका दूसरे शब्दोंमें भुक्त आहारके अङ्गीकरण (उसको अङ्गका एक भाग बनाने) का सामर्थ्य (बल) और भी घट जाता है और इस समय दयावती प्रकृति को देहमें संचित विजातीय द्रव्य वा विकारोंको अधिक उग्रतासे बाहर निकालनेकी आवश्यकता जान पड़ती है। इसीको ऋतु कालीन संकटावस्था (Seasonal crisis) कहते हैं। और यही इस ऋतुमें ज्वरके अधिक फैलनेका कारण है।

हमारा कर्त्तव्य है कि हम प्रकृतिके मलके निकासके प्रयत्नरूपी इस संकटावस्थामें उसके सहायक बनें, न कि दमनकारी औषधियोंसे उसमें बाधा डालें। जब किसी इञ्जन आदि यन्त्रको स्वच्छ (साफ) किया जाता है उसका राख आदि कूड़ा करकट और मैल बाहर निकाला जाता है, तो उस इञ्जन आदि यन्त्रका कार्य बन्द कर दिया जाता है, मानो उसको विश्राम दिया जा रहा है इसी प्रकार मानव-देह-यन्त्रकी भी सफाई वा सद्यः सम्भूत रोगरूपी संकटावस्थामें उसको विश्राम देनेकी आवश्यकता है। यह विश्राम उसको उसमें, इंजन आदि यन्त्रमें कोयलेके समान, आहार पहुंचाना बंद करके भले प्रकार दिया जा सकता है। शरीरसे मल निकालनेके कार्यको आभ्यन्तर-स्नान नामक बस्तिविधि (ऐनीमा Anema) के प्रयोगसे सहायता देनी चाहिए। किन्तु इसके विपरीत होता यह है कि ज्वरमें रोगीके निर्बल होजानेके भयसे उसके देहमें दूध आदि ग्राहक आहार दबा दब ठूंसे जाते हैं। यदि ज्वर चढ़े हुए मनुष्यको ज्वर उतरने तक, दो तीन दिन वा एक सप्ताह तक भी कोई आहार न दिया जाये और उसको केवल जलपान वा नींबू आदिका जल-मिश्रित रस पिलाया जाये, तो रोगी मर न जायेगा, प्रत्युत उसका शरीर ज्वरके उद्वेगको बाहर निकालकर शुद्ध और स्वच्छ हो जायेगा। ऊपर निर्दिष्ट वस्ति-विधिकी सहायता मल निष्कासनका अमोघ उपाय है। इसके विषयमें अमेरीकाके डां जे० डब्ल्यू विलसन की (New Hygiene) में प्रकाशित अमूल्य सम्मतिका हिन्दी भावार्थ आपके सामने है।

अर्थ—"जिस मनुष्यका मलाशय (बड़ीआंते) स्वच्छ है उसको किसी भी जलवायु वा देशमें पित्तज्वर वा मलेरिया ज्वर नहीं होगा। मुझको इस बातकी कुछ भी चिन्ता नहीं है कि प्रत्येक अन्य मनुष्य शीत और ज्वरसे प्रति दिन कांप रहा है। जिस मनुष्यका मलाशय स्वच्छ होगा, वह अपवाद स्वरूप रहेगा और यदि उसकी मुख्य मल प्रणाली (मलाशय) और लघुमल प्रणालियां (रोमकूपावलि) स्वच्छ और खुली हुई रहें, तो उसके देहमें मलेरियाके कीटाणु निवास नहीं कर सकते और न उनकी संख्या-वृद्धि हो सकती है।

कैसे खेदकी बात है कि हम लोगोंने अपने प्राचीन

पूर्व पुरुषोंकी उस उपवास-प्रथाको भुला दिया है वा उसका रूप बिल्कुल बिगाड़ दिया है। वर्षा कालके अन्त और शरद् ऋतुमें प्रकृतिके मल निष्कासन-प्रयत्नरूपी संकटकी अवस्थामें हमारे पूर्वज दीर्घ उपवास किया करते थे। सनातन धर्मियोंके आश्विन मासमें नवरात्र के नौ दिन, उपवास, होम जाप आदिके साथ होते थे; भाद्रपद मासमें जैनोंके बड़े बड़े उपवास चलते थे। अब उन उपवासोंका केवल साम्प्रदायिक रूप रह गया है और उनकी सहेतुकता वा युक्तियुक्तताको जन-साधारण बिलकुल भूल गये हैं। क्या ही अच्छा हो कि जनतामें धर्माचारोंकी सहेतुकताका पुनः प्रचार हो और मनुष्य साम्प्रदायिकताके आवरणों वा मिथ्या विश्वासोंमें न फंसे रहकर अपने पूर्व पुरुषोंके आचारोंको उनके युक्तियुक्त, यथार्थ और सुधारे हुए रूपमें ग्रहण करे तथा उपवासोंके अन्तमें गृष्ट तथा दुर्जर आहारोंका सेवन त्यागकर प्राचीन नैसर्गिक फलाहारकी प्रथाका पुनः अवलम्बन करें और नवयुगके नवोद्घाटनों को पुरानी प्रथाओंके साथ संयुक्त करके ऐहिक पारमार्थिक सुफल प्राप्त करें।

इस ऋतुमें यदि अनागत प्रतिकार रूपसे ज्वरोंसे बचे रहनेके ऊपर बतलाये हुए 'उपायों--लघु उपवास, लघुआहार और मलाशय आदि शरीर संशोधन--का अवलम्बन किया जाये तो मलेरिया कहलाने वाले ऋतु-ज्वरके त्रासका विनाश सुगमतासे ही हो सकता है?

पूर्वं सावधानो नरः पूर्वमेव रक्षासुसज्जितो भवति"

प्राकृतिक चिकित्सा वा स्वाभाविक स्वास्थ्य शास्त्र में जो उपाय यहां रोगके प्रादुर्भावसे पूर्व स्वस्थ अवस्थामें बतलाया गया है, वही रोग हो जाने अर्थात् ज्वर आजानेपर चिकित्साके रूपमें काममें लाना चाहिए। स्वाभाविक स्वास्थ्य-शास्त्रका प्रचार प्रत्येक पुरुषका कर्तव्य है।

---

# वर्तमान परिस्थिति में हमारा कर्त्तव्य

लेखक—श्री छोटेलालजी कानोड़िया।

आज विश्वके रंगमंच पर युद्धका नाटक खेला जा रहा है और इसके मुख्य अभिनेता हैं, इग्लैण्ड, जर्मनी जापान, रशिया और अमेरिका। अपनेको सभ्यताका प्रचारक एवं प्रसारक घोषित करनेवाले यूरोपने आज दानव-रूप धरकर विश्वकी सुख, शान्ति और समृद्धि को नेस्तनाबूद कर दिया है। युद्धके दावानलकी चिनगारियां समस्त भूमण्डलमें व्याप्त हो चुकी हैं और संसारका कोई भी कोना इसके विनाशकारी प्रभावोंसे नहीं बचा है। देशोंकी लहलहाती आशाओंके एकमात्र केन्द्र नव-तरुण आज युद्धाग्निकी भेंट हो रहे हैं; लहलहाती खेतियां आज वीरान हो गई हैं; मनुष्यके अद्भुत मस्तिष्ककी रचनाएँ—बड़े २ विशाल-काय कारखाने, रमणीय उद्यान, वैज्ञानिक प्रयोग शालाएँ, विद्या-भवन, चित्रगृह आज बमोंके धड़ाकेसे पल भरमें धराशायी हो रहे हैं। जिस सभ्यता और संस्कृतिके शानदार भवनके निर्माणमें प्रचुर समय, विपुल धनराशि और उर्वर मस्तिष्क लगेथे, आज वह भवन विनाशोन्मुख है। संसारका नकशा बिलकुल बदल चुका है।

कुछ समय पहले जो देश स्वतन्त्रताके परम सुखका उपभोग करते थे, आज उन वेत्रसोंके हाथमें परतन्त्रताकी हथकड़ियां पहिना दी गई हैं। छोटे २ राष्ट्र विशाल काय दैत्य राष्ट्रोंके उदरमें समा चुके हैं। इस विकट अन्ताराष्ट्रीय परिस्थितिको देखकर हमारे सामने यह समस्या चीनकी दीवारकी तरह आकर खड़ी हो जाती है कि आया इस अशान्त. भीषण परिस्थितिका कोई इलाज भी है या नहीं और यदि है तो उसका उपयोग क्यों नहीं होता ?

इतिहास और राजनीतिसे थोड़ी सी भी दिलचस्पी रखने वाले व्यक्ति इस तथ्यसे परिचित हैं कि गत महायुद्धके बाद विश्वमें चिरस्थायी शान्ति स्थापित करनेके लिए अनेकों शान्तिसम्मेलनोंका आयोजन किया गया; अनेकों निरस्त्रीकरण सम्मेलन हुए और सबसे बढ़कर इस दिशामें जो प्रयत्न हुआ, वह है, League of nations की स्थापना। परन्तु इस सबका परिणाम आज युद्धके दूसरे ज्वालामुखीके रूपमें हमारे सामने स्पष्ट है, अनेकों डाक्टरोंने इस बीमार युरोपकी चिकित्साका प्रयत्न किया, पर सब असफल रहे।

अब स्वभावतः व्यक्तिके हृदयमें रह २ कर यह प्रश्न उठता है कि क्या इस समस्याका कोई हल ही नहीं है ? उत्तर है, हल अवश्य है पर कमी है उस विधिसे उपचार करने वाले और करवानेवाले व्यक्तियों की।

विश्वके सामने जब कभी भी कोई गम्भीर समस्या आकर उपस्थित हुई है, जिसका हल बड़े २ राजनीतिके खिलाड़ी नहीं कर सके उस समस्याका अन्तमें यदि हल किया है तो वे हैं अध्यात्म-प्रधान पुण्यभूमि भारतवर्षके ऋषि, जिन्होंने अपने आध्यात्मिक ग्रन्थोंमें प्रत्येक गम्भीर समस्याकी आध्यात्मिक विधिसे चिकित्सा की है। हमारे प्राचीन ऋषियोंका यह दृढ़ विश्वास और प्रत्यक्ष अनुभव था और मेरी यह दृढ़ धारणा है, कि यदि हम विश्वमें स्थायी सुख और शान्ति कायम करना चाहते हैं तो आपरेशनके तरीकोंको छोड़कर हमें प्रेम, दया, न्याय, सद्भावना, पारस्परिक सहायताकी मरहमको उपयोगमें लाना होगा और अपने स्वार्थ रूपी अन्धकारसे ढके हुए हृदयोंको स्नेहके प्रकाशसे जगमगाना होगा। अपनेको इस चमकीली प्रकृति और मोहक पार्थिव पदार्थोंके बन्धनसे मुक्त कर आध्यात्मिक विषयोंसे लौ लगानी होगी। इन पवित्र उद्देश्योंको दृष्टिमें रखते हुए "धर्मसंघ" की स्थापना की गई है, जिसके संस्थापक हैं सन्त जगत्के उज्वल नक्षत्र, आध्यात्मिक-धन के धनी आदरणीय श्री स्वामी हरिहरानन्द जी सरस्वती करपात्रीजी इस संस्थाकी शाखायें देशके कोने २ में बड़े वेगसे खुल रही हैं और इस संस्थाका एक मात्र उद्देश्य है विश्वकी शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तिओंका विकास। इस संस्थाके इतने थोड़े अरसेमें फलने फूलनेका मुख्य कारण है, संस्थाके व्यक्तियोंकी भगवान् में अचल भक्ति और अटल विश्वास। मुझे पूर्ण आशा है कि भगवान्के आशीर्वादोंसे और इस संस्थाके शुभ प्रयत्नोंसे मुरझाया हुआ विश्व-शान्तिका फूल खिल उठेगा।

# राज-धर्म-शास्त्रका अन्तिम रहस्य

## धर्म-व्यवस्थापक-सभाके सदस्योंकी योग्यता क्या होनी चाहिये

ले०—डा० भगवान् दासजी

[ श्रद्धेय डा० भगवान् दासजी का परिचय देना, स्वतः प्रकाशमान सूर्यको दीपकसे दिखानेके प्रयत्न ऐसा है। आप, अपनी विशिष्ट कुलीनता, उच्चतम विद्या, स्पृहणीय चारित्र, अनुकरणीय कर्मयोग आदि सहज सद्गुणोंके कारण, लोकोत्तर महत्त्वको प्राप्त कर चुके हैं। आपका जीवन, भारतीय आर्यचरित का आदर्श बन गया है। पौरस्त्य तथा पाश्चात्य तत्त्वज्ञानका गम्भीर अध्ययन-अनुसन्धान करके मानव-समाजके चतुः-पुरुषार्थ-साधनके लिये आपने हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेज़ीमें जो एक दर्जनसे अधिक निबन्ध तथा महानिबन्ध लिखे हैं, उनके द्वारा भूगोलके प्रायः पचास देशोंमें आपका यशःशरीर प्रकाशमान है। सेण्ट्रल हिन्दू कालेज और स्कूल, सेण्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल, रणवीर पाठशाला, काशी-विद्यापीठ, बनारस-हिन्दू युनिवर्सिटी, नागरी-प्रचारिणी सभा, बनारस-म्युनिसिपल बोर्ड, कांग्रेस, सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव् असेम्ब्ली, काशी-विद्यापीठपत्रिका, 'आज' ज्ञान-मण्डल आदि संस्थाओंके संस्थापन, सञ्चालन और सन्मार्ग-प्रदर्शनमें श्रद्धेय श्रीभगवान् दासजी का, साक्षात् वा परम्परया, प्रमुख कर्त्तव्ययोग और साहाय्य रहा है। आज भी (७४ वर्ष की वृद्धावस्थामें) आप, शान्ति-सदनके एक कोनेकी कुटियामें बैठकर सदैव विश्व-मानव समाजके योग-क्षेमसाधनकी गम्भीर चिन्ता किया करते और लेखों, निबन्धों तथा वक्तव्यों द्वारा देश-विदेशके सामने शान्ति-सुखाऽभ्युदयिक कृत्यवर्त्मका उपन्यास तथा प्रचार कर रहे हैं। जनताजनार्दन, पञ्चपरमेश्वर, वा नरनारायण ने आपको 'श्रद्धेय' की यथार्थ पदवी देकर सन्न्याय ही किया है; एवं काशी तथा प्रयागके विश्वविद्यालयोंने आपमें सुप्रयुक्त करके 'डाक्टर' उपाधिको कृतार्थ किया है ]

### अच्छे कानून तभी बनेंगे जब बनानेवाले अच्छे हों।

भारतवासी आर्योंकी मूल धर्मस्मृति मनुस्मृति है। उसके अन्तिम (१२) अध्यायके अन्तिम श्लोकोंमें, सब कुछ कह चुकनेके पीछे, यह कहा है,

मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते।<br>
अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत्।<br>
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशंकितः॥

अर्थात्, जब यह संशय उत्पन्न हो कि इस नयी अवस्थामें क्या नया धर्म, क्या कायदा क़ानून, होना चाहिये, तो शिष्ट ब्रह्मज्ञानी लोग जो कुछ निर्णय कर दें, वही धर्म माना जाय—यही इस समस्त मानव-शास्त्रका, मानवोंके हित करनेवाले शास्त्रका, मनुके कहे हुए शास्त्रका, परम रहस्य है, सार है, मूलतत्त्व और अन्तिम सिद्धांत है।

इस पुराने वाक्यका नये शब्दोंमें अर्थ खोलनेका यत्न आगे किया जाता है।

"डेमोक्रेटिक सेल्फगवर्मेन्ट", "लोकतन्त्रात्मक स्वराज", "सङ्घराज्य" का सार इतना ही है कि जनताने स्वयं जिनका नियोजन, निर्वाचन, वरण, किया हो, वे ही सज्जन कानून बनावें, धर्मव्यवस्थापक-सभा जनताकी नियोजित हो। संवत् १९८५ (सन् १९२८) में भारतवर्षकी सर्वदलसमितिने जो स्वराज-योजना बनायी, उसका भी हृदय कहिये, सार कहिये, यही है। धर्म-व्यवस्थापक-सभा, "लेजिस्लेचर", वह सभा जो उन कानूनोंको बनाती है जिनके अनुसार देशमें जनताको अपना जीवन चलाना पड़ता है, वही राष्ट्रकी सच्ची

शासक, अथवा राजा कहिए, या केन्द्रीय शक्ति कहिये, होती है। और जनताके चुने हुए आदमी ही कानून बनावें, यह इच्छा की जाती है, क्यों कि यह विश्वास स्वाभाविक भी है और गहिरी दृष्टिसे सत्य भी है, कि जनताके चुने और माने हुए आदमी ही जनताकी भलाई साधनेवाले कानून बनावेंगे।

राष्ट्रकी, जनसमुदायकी, समाजकी, समृद्धिका एकमात्र आश्रय कानूनोंकी उत्तमता पर है।

धर्म एव हतो हंति; धर्मो रक्षति रक्षितः।

कानून ही उनके समग्र जीवनका नियमन नियंत्रण करते हैं। पर अच्छे कानून तभी बन सकते हैं जब बनानेवाले अच्छे, अनुभवी, परार्थी, विवेकी, धीमान्, सुधी, तत्त्वज्ञ, दानिशमंद, नेकनीयत, दुनियादोस्त, मुहक़्क़िक़, हो। अतः स्पष्ट है, और सब तरहके राजनीतिक विचारवाले, सभी सज्जन, इस एक बातको निर्विवाद स्वीकार कर लेंगे, कि राज और समाजकी सुख-समृद्धि उनके धर्मव्यवस्थापक पुरोहितोंकी आर्यता, सद्बुद्धिता, विवेकिता, परार्थिता, सज्जनता पर सर्वथा आश्रित है। उक्त सब गुण पुराने दो शब्दोंमें आजाते हैं, तपस्वी और विद्वान्।

इस रीतिसे "निर्वाचित व्यवस्थापक", "इलेक्टेड लेजिस्लेटर", तथा "लीडर" इत्यादि शब्दोंके पर्यायके रूपसे प्राचीन उत्तम 'पुरोहित" शब्दका प्रयोग किया जाय तो उसपर जो मल जम गया है वह हटे और उसका जौहर खुले।

राजा प्रजानां स्वामी स्यात्, राज्ञः स्वामी पुरोहितः।

यह सिद्धान्त शुक्रनीतिका है। इसका अर्थ यही है कि "लेजिस्लेचर" के द्वारा "एक्सिक्यूटिव" का नियमन नियन्त्रण हो। "प्रणिधि" और "प्रतिनिधि" शब्दोंका प्रयोग भी, ऐसे अवसरपर, पुराने ग्रन्थोंमें मिलता है।

विद्वान् और तपस्वी पुरोहित कैसे मिलें?

ऐसी अवस्थामें, प्रायः सब सज्जन अंगीकार करेंगे कि यह प्रश्न परम गरिमाका है, कि यथासंभव परिपक्व प्रज्ञा और निःस्वार्थ हृदयके अच्छे अनुभवी सज्जनोंका वरण, पुरोधान, निर्वाचन, धर्मसभाके लिये कैसे हो? राजनीतिके समग्र शास्त्र और समग्र प्रयोगका, सब नय और सब चार, सब सिद्धान्त और सब व्यवहार, सब थियरी और सब प्रैक्टिसका सार इतना ही है। इस महाप्रश्नके ही उचित रीतिसे उत्तीर्ण होनेपर समाजके सब विभिन्न प्रकृतियों, शक्तियों, रोजगारों, वयःक्रमों, अवस्थाओं, और साम्प्रदायिक धर्मोंके मनुष्योंके सुखका आसरा है।

प्रश्न बहुत कठिन है। तो उसके समाधानमें, उत्तरणमें, और भी अधिक ज़ोर लगाना चाहिये। यह तो मूल सींचनेकी बात है, अन्य सब बातें भारतीय स्वराज-विधानकी, अथ च अन्य सब पृथ्वीमंडलके शासन-विधानोंकी, केवल शाखा पल्लव धोनेकी बातें हैं। पश्चिम देशोंने इस प्रश्नको अब तक पार नहीं कर पाया, तो पूर्व देशको और भी अधिक आवश्यकता है कि इसके उत्तरको अपनी प्राचीन सूत्रात्माके, और शास्त्रीय आगमोंके, भीतर गहिरा गोता लगाकर खोज निकाले।

प्राचीन सूत्रात्माका निर्णय, इस महाप्रश्न पर।

इस्लामधर्मका इस राजनीतिक प्रश्नपर कहना है कि,

खुदातर्स रा बर रअय्यत गुमार।
कि मेमारि मुल्कस्त परहेज़गार॥

"खुदाको चाहनेवाले, तथा खुदासे डरनेवाले, (फ़ारसीके तर्स धातुका, जो संस्कृतके तृष्, तर्ष्, का ही रूपान्तर जान पड़ता है, दोनों ही अर्थ हैं) धर्मभीरु, विवेकी, त्यागी, निःस्वार्थी मनुष्यको ही प्रजाके कार्यका प्रबन्ध करनेके लिये तैनात करो। क्योंकि

ऐसा ही मनुष्य राष्ट्रकी इमारतको बनाता है, बिगाड़ता नहीं।"

सनातनधर्मके स्मृति-ग्रन्थोंमें पुनः पुनः कहा है कि जनताके हितचिन्तक, सदुपदेशक, ऋषिकल्प, तपस्वी और विद्वान्, परार्थी और धीमान्, मनुष्य ही धर्मका परिकल्पन करें। मनुके मतकी सूचना ऊपर कर दी गयी है। विस्तारसे आगे कहा जायगा।

पूर्व देश ही में उत्पन्न जीसस् क्राइस्टके प्रवृत्त किये क्रिस्चियन धर्मके शब्दोंमें जिस पदार्थको "पृथ्वीपर स्वर्गराज्य" कहते हैं, वह राजनीतिकी सीधी सादी सरल भाषामें "तपस्वी निःस्वार्थी विद्वानोंके बनाये धर्मों, कानूनों, के अनुसार राज्यशासन" ही है।

बहुत वर्षोंके पीछे सौभाग्यका अवसर आया है कि भारतवर्ष अपने स्वराज्यका विधान करनेको सन्नद्ध हुआ है। बहुत अप्रमत्त और सचेत रहना चाहिये, कि ऐसा न होने पावे कि स्वराजकी नींव ही अशुद्ध पड़ जाय। इसका दृढ़ और निश्चित प्रबन्ध करना चाहिये कि भारतवर्षका स्व-राज, भारतजनताके (अधम "स्व" का राज नहीं, प्रत्युत) उत्तम "स्व" का शासन, उत्तम-धर्म-परिकल्पन द्वारा, हो, पुश्त दरपुश्त भारतके सबसे अधिक अनुभवी और सबसे अधिक निस्स्वार्थी और लोकहितैषी सपूत ही, यहाँके धर्मों कानूनोंका परिकल्पन, व्यवसान, व्यवस्थापन करें। यदि इस गंभीर विषयके सम्बन्धमें स्वराजकी नींव अशुद्ध डाल दी गयी तो फिर पीछे उसका शुद्ध करना बहुत कठिन होगा, और अशुद्ध नींवपर जो भौम (मंज़िल) खड़े किये जायँगे वे सभी अशुद्ध होंगे।

इन हेतुओंसे अत्यन्त आवश्यक है कि कठिनताके कारण इस राष्ट्रप्राण-सम्बन्धी प्रश्नसे मुंह न मोड़ा जाय, बल्कि इसपर बहुत ध्यान दिया जाय और परिश्रम किया जाय, और जब तक इसका उत्तर न मिले तबतक इसको छोड़ा न जाय। अन्यथा इस समयकी अति-त्वराका फल आगे चलकर अतिदुःखमय चिरविलम्ब हमारे राष्ट्रकी प्रगतिमें अवश्य होगा। बड़े खेदका स्थान है कि जितना समय आजकाल निर्वाचितोंके साम्प्रदायिक धर्मों और संख्याओंकी बहसमें गँवाया जाता है, उसका दशमांश समय भी उनकी बुद्धि और हृदयकी, दिल और दिमाग़की, योग्यतापर विचार करनेमें नहीं लगाया जाता। साम्प्रदायिक प्रणिधान ("काम्यूनल रेप्रेज़ेंटेशन") पर ज़ोर देना व्यर्थ है, सर्वाङ्गीण, आंगिक, समाजके मुख्य अंगोंके, जीविकाओं, वृत्तियों, रोज़गारों, व्यापारोंके, प्रणिधान प्रतिनिधान, ("फ़ंक्शनल, आक्यूपेशनल, वोकेशनल, रेप्रेज़ेंटेशन) की फ़िक्र करना चाहिये। यदि ऐसा किया जाय तो साम्प्रदायिक संख्याओंके झगड़े आपसे आप सब नीरस होकर मिट जायँगे।

यदि भारतवर्षने इस प्रश्नका ठीक उत्तर खोज निकाला तो वह न केवल अपने स्वराजकी नींव शुद्ध और गहिरी और अटल डालेगा, किन्तु राजनीतिशास्त्रका संशोधन और उत्कर्ष करके पृथिवीमंडल भरके मनुष्यसमुदायकी सुखवृद्धिमें सहायक होगा।

महात्मा गांधीको जो अंतर्विकास और दैवी प्रेरणा हुई उसका अनुगमन करके भारतवर्षने इधरके समयमें संसारको राजनीतिक युद्धके नये शान्तिमय प्रकारोंके नमूने दिखाये हैं। चाहिये कि देशबंधु चित्तरंजनदासके अंतर्विकास और दैवी प्रेरणाकी सहायतासे अब वह संसारके राजनीतिक सिद्धान्तोंमें, राजनीतिके शास्त्रमें, एक अति प्राचीन होते हुए भी अति नवीन सिद्धान्तकी वृद्धि करे। भारतवर्षकी सूत्रात्मामें जो अहिंसा और तपस्के, परहेज़, और ज़ोहदके निषेधात्मक अंश हैं, उनका विकास और प्रयोग गांधीज़ीने किया। उसी सूत्रात्मामें विद्या और लोकहित और भूतदयाके, इल्म और हुब्बुल्-इन्सानीके, जो विध्यात्मक अंश हैं, उन्होंने देशबन्धुको प्रेरित किया। ये अंश साध्यस्थानी हैं,

अहिंसा और तपस् साधनस्थानी हैं। अतः इस लेखके समग्र प्रतिपाद्यका मूलसूत्र इतना ही है कि धर्मपरिषत्के पार्षद, कानून बनानेवाली मजलिसके मेम्बर, राजनीतिक पुरोहित, में अहिंसाबुद्धि और तपस् भी हो, तथा विद्या और लोकहितैषिता भी हो, इसके उपाय खोजना चाहिये।

निर्वाच्योंके लिये शर्तें योग्यताकी लगानी चाहिये।

भारतवर्षकी स्वराज-योजनामें और जो कुछ हो या न हो, निर्वाचनके उम्मेदवारोंके, वरणाकांक्षियोंके, लिये कुछ विशेष गुणोंकी योग्यताओंकी, शर्तें लगा दी जानी चाहिये।

पच्छिमके देशोंमें, राजनीतिके इतिहासमें, निर्वाचकोंकी योग्यतापर तो बहुत विचार किया गया है, पर जहाँ तक मालूम पड़ता है, निर्वाच्यों और निर्वाचितोंकी क्या विशेष योग्यता होनी चाहिये, इसपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया है। सद्धर्मपरिकल्पनाका, अच्छे कानून बनानेका, काम बहुत नाजुक, बहुत कठिन, बड़ी जोखिमका, है। इस कामके लिये बहुत आगे-पीछे देखनेकी कार्य-कारणके सम्बन्धोंके बहुज्ञानकी, बहुदर्शिता और दूरदर्शिताकी, बहुत आवश्यकता है। यदि एक भी धर्म, एक भी प्रभूत कानून, दोषवान् बन गया, तो उसके असरसे, प्रभावसे, उसके कार्यरूप बहुतसे दोष दूर दूर तक पैदा होंगे। इसलिये आवश्यक है कि धर्मसभामें, "लेजिस्लेचर" में, समाजके सब मुख्य मुख्य विभागोंके विशिष्टतम ज्ञान और अनुभव रखनेवाले मनुष्य एकत्र होकर सब विभागोंके हितकारी धर्म बनावें। निर्वाचकताके अधिकारको फैलानेके लिये निर्वाचकताकी योग्यता यहाँ तक कम की गयी है कि बहुतेरे अन्य देशोंमें तथा उक्त सर्वदलसमितिकी बनायी भारतवर्षीय स्वराजयोजनामें, केवल इक्कीस वर्षकी उमर ही पर्याप्त मान ली गयी है। पर निर्वाचितकी योग्यताकी, जिसकी आवश्यकता निर्वाचककी योग्यताकी अपेक्षा बहुत अधिक है, कुछ चर्चा ही नहीं की है। जिन कानूनोंका प्रभाव दूर दूर समाजके जीवनके अंग-प्रत्यंगपर, सूक्ष्मसे सूक्ष्म और स्थूलसे स्थूल बातोंमें, पड़नेवाला है, उन कानूनोंके बनानेवालेका चुनाव प्रायः अनभिज्ञ जनसमूहकी समझ पर छोड़ दिया गया है, और उस समझको अच्छा रास्ता दिखानेका, ऐसी सलाह देनेका कि जिससे अच्छे आदमी चुननेमें उसको सहायता मिले, कुछ भी यत्न नहीं किया गया है। प्रत्युत अच्छी सलाह सद्दिग्दर्शन, सन्मार्गोपदेश, के स्थानमें प्रसिद्ध है कि, इस महाजनसमूहको, निर्वाचनके दिनोंमें, दुरुपदेश दिया जाता है, साम-दान-दण्ड-भेद सभी नीतियोंका प्रयोग किया जाता है झूठी बातें बतायी जाती हैं, प्रलोभन और धोखा और धमकी दी जाती है, तरह तरहका धन और शक्तिका अपव्यय और दुरुपयोग करके उनसे अयोग्य व्यक्ति चुनवाये जाते हैं, निर्वाचकोंके भी और निर्वाचितोंके भी स्वभाव और आचार बिगाड़े जाते हैं, और दोनोंमें स्वार्थ और अनाचारकी वृद्धि होती है, जिससे चिरकालके लिये परस्पर द्रोह, आपसकी दुश्मनियाँ, पैदा हो जाती हैं, वर्ग वर्गका घोर विरोध अधिकाधिक बढ़ता है, और दुष्ट धर्मोंका नाक़िस कानूनोंका, परिकल्पन, धर्मसभामें होता है।

सर्वदलसमितिने भी अपनी रिपोर्टमें, इंग्लिस्तानके निर्वाचकोंके सम्बन्धमें इन महादोषोंकी चर्चा की है, पर भारतवर्षमें भी उसी प्रकारके निर्वाचनका प्रचार करनेका परामर्श देते हुए भी, इन अति हानिकर किल्बिषोंके प्रतीकारका कोई भी उपाय बतानेका यत्न तक नहीं किया है।

इस भयंकर आपत्तिको यथाशक्ति रोकनेके लिये और स्वयं सर्वदलकमेटीके निवेदन पत्रमें सूचित घोर आशाभंगसे बचनेके लिये, स्वराजविधानमें कुछ इस प्रकारके नियम रख देना चाहिये, यथा,

योग्यतानियामक उपाय ।

(१) प्रत्येक निर्वाच्य, वरणीय, पुरोधेय, के पास नीचे लिखी योग्यता ( गुण ) होनी चाहिये,

(क) समाजके इन चार मुख्य धर्मों ( अंगों, कार्यों ) में से किसी एकका वह विशिष्ट अनुभवी हो, ( १ ) ज्ञान-विज्ञान ( २ ) शासन-कर्म ( रक्षा और प्रबंध-कर्म ), (३) धन-धान्योत्पादन, अर्थात् कृषि, शिल्प ( कर्मान्त, यंत्रकर्म, कारुकर्म, उद्योग, धंधा ) वाणिज्य-व्यापारादि, ( ४ ) शारीरश्रम ( श्रमजीविता, मजदूरी ),

(ख) सामाजिक जीवनके किसी विभागमें उसने अच्छा काम किया हो, और सद्बुद्धिता, आर्य-बुद्धिता ( ईमानदारी, नेकनीयती ), और लोक-हितैषिता लोकसेवा ) का सुयश ( नेकनामी ) कमाया हो ।

(ग) उसके पास इतना अवकाश ( फ़ुर्सत ) हो कि धर्मसभाके कामको अच्छी तरहसे कर सके, और जीविकासाधन ( रोटी कमाने ) अथवा धनसंच-यनके कार्योंसे निवृत्त हो चुका हो, पर ऐसी निवृत्ति अनिवार्य न होगी ।

(२) "केन्वेसिङ्ग" वोट मांगना, साक्षात् अथवा परोक्ष रूपसे ( व्याजसे ), अयोग्यताका हेतु समझा जायगा ( अर्थात् उमेदवारीसे खारिज, च्युत, पतित, कर देगा ), पर निर्देशकों ( नामज़द करनेवालों ) को अधिकार होगा कि निर्दिष्ट ( निर्वाच्य ) के गुणोंकी घोषणा कर दें ।

(३) धर्मसभाके किसी सदस्यको कोई नक़दी पुरस्कार या वेतन सभाका काम करनेके बदलेमें न दिया जायगा, उस कार्यके लिये उसका जो कुछ विशेष व्यय हो, यथा सफ़र-ख़र्च, मकानका किराया, आदि वह सब उसको सरकारी ख़ज़ानेसे, राष्ट्र-कोषसे दिया जायगा, और विशेष सम्मानके चिह्न भी उसको दिये जायंगे ।

नियमोंके हेतु ।

इन शर्तोंके हेतु तो प्रायः स्वयं प्रकाश हैं । मानव समाज मात्रके जो मुख्य चार प्राकृतिक अंग हैं उनमेंसे प्रत्येकके अधिकतम अनुभव रखनेवाले और भद्रतम सज्जन धर्मसभामें जायँ । और धनके लोभसे, ऐश्वर्य और अधिकारके लोभसे, विनोद और मनबहलावकी आशासे वर्गप्रशंसिता और अपने ही वर्गकी वृद्धिकी इच्छासे, राजनीतिको एक रोज़गार बना लेनेके लिये, अथवा अन्य ऐसी किसी एषणासे प्रेरित होकर, न जायँ । किन्तु एकमात्र लोकसेवाभावसे, जनताके सब अंगोंका हित साधनेकी इच्छासे, देशका बोझ उठानेकी बुद्धिसे, जायँ । और इस बड़े कार्यके बदलेमें, वृद्धो-चित विशेष आदर सम्मान, उनके हृदयके तर्पण आप्या-यनके लिये, उनको अवश्य दिया जाय । यही उनको गुरुकार्यभार उठानेके लिये प्रलोभन, प्रोत्साहन, आरा-धन, राज़ी करनेका उपाय है ।

प्राचीन विचार ।

इस विषयमें भारतवर्षका प्राचीन विचार, निगम और आगम, माकूलात व मनकूलात, वेद और स्मृति, क्या था, इसकी सूचनाके लिये आर्ष ग्रन्थोंसे कुछ वाक्योंका उद्धरण इस स्थानपर किया जाता है ।

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्, ये तत्र श्रेयांसो ब्राह्मणाः अलूक्षाः संमर्शिनः धर्मकामाः स्युः, यथा ते तत्र वर्तेरंस्तथा तत्र वर्तेथाः । ( तैत्तिरीय उपनिषत् )

अर्थात्, जब, क्या करना चाहिये, कैसे बरतना चाहिये, इस अवस्थामें क्या धर्म है, ऐसी शंका उत्पन्न हो, तो श्रेष्ठ ज्ञानवान् और सच्चरित्रवान् सज्जन, जो अलूक्ष, अरूक्ष, रूखे नहीं, आर्द्र, कोमल अनुकम्पक हृदयवाले, और अ-मर्शी (र्षी) नहीं, संमर्शी (र्षी) मर्षण-शील, मर्शनशील, विचार करनेवाले और सहन करने-वाले, रवादार और गौरपसंद, "टालरंट" और

"थाटफुल" भी हों, वे जैसा ऐसे मौकेपर करनेको कहें और करें वैसा ही करना चाहिये। × × ×

भगवान् मनुने कहा है—"जब आम्नात धर्मसे, श्रुतिस्मृत्यादिमें उपलब्ध धर्मसे, काम न चले, नये धर्मका प्रयोजन हो, तो शिष्ट ब्राह्मणोंकी परिषत् जो निर्णय कर दे वही धर्म माना जाय। शिष्ट वे हैं जो सच्चरित्र हों, विविध वेद विद्या आदिको पुराण-इतिहाससहित जानते हों, और श्रुतिको, सुनी बातको, प्रत्यक्ष कर दे सकें, कहेको कर दिखावें। (जैसा आयुर्वेदप्रकाश में कहा है,

अध्यापयंति यदि दर्शयितुं क्षमंते सूतेंद्रकर्मगुरवो गुरवस्त एव।
शिष्यास्त एव रचयंति पुरो गुरूणां, शेषाः पुनस्तदुभयाभिनयं भजंते॥

चिकित्साशास्त्रमें पारद आदि रसोंके जारण,मारण, शोधन आदि क्रियाओंकी शिक्षा देनेके योग्य गुरु वे ही हैं जो सब क्रियाओंको करके दिखा दें, और योग्य शिष्य भी वे ही हैं जो उन क्रियाओंको दुहरा दें। अन्यथा गुरु शिष्य दोनों चिकित्साका अभिनय करनेवाले नटमात्र हैं, सच्चे वैद्य नहीं।) दस सज्जनोंकी परिषत् हो सकती है जिसमें विविध शास्त्रके विद्वान् हों, और एक ब्रह्मचारी, एक गृहस्थ, और एक वानप्रस्थ हो। कमसे कम तीन सज्जनोंकी भी परिषत् हो सकती है। संकटकी अवस्थामें एक भी आध्यात्मवित्तम जो निर्णय कर दे वही धर्म माना जाय। व्रतहीन, मंत्रहीन, विचाररहित, जातिमात्रोपजीवी, ज्ञानशून्य जन, चाहे सहस्रोंकी संख्यामें भी मिलकर, यदि कुछ कह दें, तो वह धर्म नहीं हो सकता।" (म० अ० १२)

"राजाके सलाहकार, मन्त्री, आठ या दस होने चाहियें। ऐसे जो राजाको न्यायके मार्गपर रख सकें, कुराहसे रोक सकें, जिनके कोपसे राजा डरै। नहीं तो वे राष्ट्रका वर्धन नहीं कर सकेंगे।

धर्मपरिषत्की संख्या और परिषदोंकी योग्यताके विषयमें, देश-काल-अवस्थाके भेदसे, अनेक विकल्प हो सकते हैं। एक यह है कि, उसमें चार सज्जन सांगोपांग वेदज्ञ वैद्य हों, सब वेदोपवेदादि विद्याओंकी शिरोमणि आत्मविद्या और शरीरविद्याको जानते हों, जो आत्माका और देहका, अन्तःकरणका और बहिःकरणका, मनुष्यकी सम्पूर्ण प्रकृतियों-विकृतियोंका, हाल जानते हों; अठारह सज्जन क्षत्रिय हों, जो अस्त्र शस्त्रके द्वारा राष्ट्रकी रक्षा करनेके कार्यके सब अङ्गोंमें दक्ष हों; इक्कीस सज्जन वैश्य हों, जो वित्तसे, विविध प्रकारोंसे धनधान्यसे, "प्रोडक्शन आफ़ वेल्थ" से राष्ट्रको सम्पन्न करनेके उपायोंके अनुभवी हों (वित्त शब्द भी अनेकार्थपूर्ण विद् धातुसे ही निकला है जिससे वेद शब्द निकलता है); तीन सज्जन जो शुचिता और विनीतता और सर्वसहायताके नित्य कर्मका, सब कर्मोंसे पूर्व कर्मका, जिसके बिना और कोई कर्म पूरा हो नहीं सकता, उसका नमूना हों; तथा एक सज्जन सूत, अर्थात् विविध इतिहास पुराणके पूर्ण ज्ञाता, जो सद्यः बता सकैं कि अमुक समय, देश, राष्ट्रमें अमुक कृत्यसे, अमुक सुफल अथवा दुष्फल हुआ जो, बुद्धिके आठों गुणोंसे, शुश्रूषा - श्रवण-ग्रहण-धारण-ऊहन-अपोहन-विज्ञान (तात्विक परमार्थ) ज्ञानसे, सम्पन्न हों। सूतका, तथा अन्य सदस्योंका, वयस् प्रायः पचास वर्षका होना चाहिये। क्योंकि धर्मपरिकल्पनके गुरु कार्यके लिये, कच्ची उमर और कच्ची बुद्धिके नहीं, पक्की उमर और पक्की बुद्धिके मनुष्य चाहिये। ऊपर वर्णवाचक शब्द कहे तो याद रखना चाहिये कि (यह शुक्रका साक्षात् वचन है) जातिसे, जन्मसे, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-म्लेच्छ नहीं होते, गुण-कर्मसे ही इनका परस्पर भेद होता है। ब्रह्मासे उत्पन्न सभी जीव ब्राह्मण हैं। रूप रंगसे, अथवा बपौतीसे, वर्णोचित तेजस् आदि गुण नहीं होता। जो सात्विक ज्ञान-कर्म उपासनामें सात्विक देवशक्तियोंकी, ब्रह्मकी, परमतत्त्वकी, तथा ज्ञानकी, आराधना साधनामें, सदा रत रहें

शांत हो, दान्त हो दयालु हो, वही ब्राह्मण है। जो लोककी रक्षामें निपुण है, शूर और पराक्रमी है, दुष्टोंका निग्रह करनेकी इच्छा और शक्ति रखता है, वही क्षत्रिय है। कृषि, पशुपालन, विविध द्रव्योंके क्रय-विक्रय आदि पुण्य कार्यमें, जो कुशल है, वही वैश्य है। तीनों द्विजोंकी सहायता करनेवाला, शांत शूर, जितेन्द्रिय, पर, बुद्धिमें कम, नम्र, हल चलाने आदिके कार्यमें कुशल, जो हो, वह शूद्र है। सब धर्मोंसे विमुख, निर्घृण परपीड़क, चंड हिंसक, वही म्लेच्छ है।

ऐसे श्लोकोंका आशय थोड़ेमें यही है कि सब आश्रमों और सब वर्णोंके कृत्योंका अनुभव रखनेवाले परिपक्व बुद्धिके लोक-हितैषी सज्जन हो, यथासंभव धर्मव्यवस्थापक सभाके सभ्य होने चाहियें।

शांतिपर्वके अ० ८३–८५ में विस्तारसे वर्णन किया है कि सभासद्, अमात्य, मंत्री, में कौन कौन गुण होने चाहियें और कौन कौन दोष न होने चाहियें।

> "श्रेयसो लक्षणं चैतद् विक्रमो यस्य दृश्यते,
> कीर्तिप्रधानो यश्च स्यात्समये यश्च तिष्ठति,
> पौरजानपदा यस्मिन् विश्वासं धर्मतो गताः,
> योद्धा नयविपश्चिच्च, स मंत्रं श्रोतुमर्हति" इत्यादि

निष्कर्ष यह कि पुरवासी और जनपदवासी जनता में जिसकी सत्-कीर्त्ति हो, और जिस पर उनका विश्वास हो, और जो कीर्त्तिका ही विशेष अभिलाषी हो, धनका नहीं, वह मंत्री, सभासद्, होना चाहिये। शुक्रनीतिमें भी श्लोक है,

> "उत्तमा मानमिच्छंति, धनमानौ तु मध्यमाः,
> अधमा धनमिच्छंति, मानो हि महतां धनम्"

"धनमानौ" के स्थान पर "आज्ञाशक्ति" पढ़ें, तो उपनिषदुक्त लोकैषणा, अर्थात् सम्मानेच्छा, ऐश्वर्यैषणा जिसमें दारसुतैषणा अन्तर्गत है, और वित्तैषणासे इस श्लोकका सामंजस्य हो जाय। संन्यासीके लिये सम्मानैषणा भी उचित नहीं। इसीलिये संन्यासीको धर्मपरिषत्में स्थान भी नहीं। पर जो व्यवहारसे सर्वथा पृथक् नहीं हुआ है, उसको "यशसि चाभिरुचिः" अनुचित नहीं। और भी, यदि वह स्वयं सम्मान न भी चाहे, तो भी लोग उससे काम लेते हैं, उसपर धर्मविचारका बोझ रखते हैं, उनका तो कर्त्तव्य है कि उसको सम्मान दें, "अवमंता विनश्यति" और उससे प्रार्थना करें कि आप हम लोगोंका काम सम्हालिये। इसीमें दोनोंकी शोभा है। न यह कि उलटे वह उनसे प्रार्थना करे कि हमको काम सौंपिये। यदि ऐसा करे तो अवश्य स्वार्थी है, और काम बिगाड़ेगा, उसकी नीयत छोटी और खराब है। "याचकस्तृणादपि लघीयान्।" (अपूर्ण)

---

# जीवनको उन्नत बनानेवाले हमारे कुछ प्रकाशन

## ( १ ) जीवन सौरभ—

प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि साधारण परिस्थितिमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको पढ़ें और अपनी सन्तानके हाथमें दें। मूल्य केवल ।–)।

## ( २ ) देशके नौनिहालोंसे—

नवयुवकों एवं छात्र तथा छात्राओंके लिये अनुपम उपहार। उन नवयुवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशकी आशा है, जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। मूल्य केवल –)

## ( ३ ) सदाचार का महत्व—

पुस्तकके सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय। सदाचार ही जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी कुञ्जी है इसको कौन नहीं जानता। पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हुए हैं तथा अपनी और देशकी हानि कर रहे हैं वह सर्व विदित है। जो भारत संसारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसलिये उसका पतन हो गया है। इस समय देशके युवकोंको सन्मार्गपर ले जानेकी आवश्यकता है। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल –)

## ( ४ ) स्वास्थ्य-पत्र—

यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ रहना ही मृत्यु है तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक धनहीन स्वस्थ जीवन दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्ग-तुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुखपूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है। २०"×३०" साइजके इमिटेशन आर्ट पेपरपर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बंधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है, इसलिये कि यह एक स्थायी चीज हो जाता है। मूल्य केवल =)

## ( ५ ) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास—

स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है वह व्यर्थ ही जीवन-यापन करता है। जो देशके प्रति कुछ त्याग नहीं करता वह पशु सदृश है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र-सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन तो अवश्य हुआ है, किन्तु संक्षेपमें, सबके योग्य सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल –)

## ( ६ ) कांग्रेस चार्ट—

इसमें बड़े सुबोध और सरल ढङ्गसे कांग्रेसके जन्मकालसे लेकर अब तकके अधिवेशनोंका विवरण, सभापति स्थान, समयकी सूचना और उस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमिटेशन आर्ट पेपरपर साइज २०"×३०" दो रङ्गोंकी मनोहर, छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। **जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०,** "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# मस्तीका चश्मा स्वामी रामतीर्थ

श्री वेद

गीता और उपनिषदोंकी अमृत-वर्षासे शुष्क हृदयोंको सरसानेवाले, विदेशोंमें वेदान्तकी विजय-वैजयन्ती फहरानेवाले, भारत-माताके अमृत-पुत्र स्वामी रामतीर्थके नामसे कौन अपरिचित होगा ? आजसे लगभग ४ वर्ष पूर्व जब मैं गुरुकुल काँगड़ीमें द्वितीय वर्षका विद्यार्थी था, मुझे प्रथम बार स्वामी रामतीर्थके फ़ोटोके दर्शन करनेका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ था। फ़ोटो क्या था ? स्वामी रामतीर्थकी बोलती तसवीर थी। जीवनमें अनेक सन्त महात्माओंके चित्र देखे हैं परन्तु स्वामी रामतीर्थका वह चित्र मुझे जन्म-भर याद रहेगा। उस चित्रमें स्वामी राम ध्यानावस्थित दशामें बैठे हुए थे, आँखें कुछ खुली हुई और कुछ बन्द थी ; चेहरेका विमल हास्य अन्तरकी धवलिमा और प्रकाशको प्रकट कर रहा था और यह मूक-उपदेश दे रहा था, ज़िन्दगी हँसनेके लिए है। आँखोंमें मस्तीका चश्मा बह रहा था और कृष्ण-आवेशकी भक्ति-पूर्ण छटा स्पष्ट दृष्टिगोचर होती थी। मैं उस चित्रको निर्निमेष नयनोंसे बहुत देर तक देखता रहा और आनन्द-विभोर हो उठा। जिस तरह चन्द्रोदय होने पर समुद्रकी तरङ्गें नाचने लगती हैं, ठीक वैसे ही राम-रूपी चन्द्रके दर्शन कर मेरा मानस-मयूर उन्मत्त हो आनन्दसे नर्त्तन करने लगा। जिस सन्तके चित्रका इतना प्रभाव पड़ता हो उसका साक्षात् दर्शन न जाने कितना आनन्ददायक होगा। चित्रके साथवाले पृष्ठ पर लिखा था—

WANTED

Reformers,

Not of others,

But of themselves.

Who have won —

Not University distinctions

But Victory over the local self

Age :—The youth of Divine joy

Salary—Godhead

Apply sharp--

With no begging Solicitations

But Commanding decision

To

The Director of the

Universe

Your own self

अर्थात्

आवश्यकता है

सुधारकों की

दूसरों के नहीं

अपितु निजके सुधारकों की

यूनीवर्सिटी के डिग्रीधारियों की नहीं

अपितु आत्म-विजेताओंकी

आयु—दिव्यानन्द भरा नवयौवन

वेतन—भगवदाश्रय

शीघ्र ही प्रार्थना-पत्र भेजिए।

गिड़गिड़ाते हुए नहीं,

अपितु दृढ़ निश्चय के साथ,

अपने अन्तरात्मा की सेवा में।

स्वामी रामतीर्थ क्या थे ? वे भगवान्के छोटे जेबी संस्करण थे। वे देव-दूत थे, जो जहाँ भी जाते प्रेम,

पवित्रता और प्रकाशकी किरणें फैला लोगोंके मुकुलित मानस-पुष्पोंको प्रफुल्लित करते थे। वे वह वीणा थे जिससे सदा प्रेमका संगीत ही निकलता है। वे आदर्श संन्यासी थे, जिनका धर्म था प्रेम और समस्त विश्वके साथ एकात्मानुभूति। काशी और हरिद्वारमें वेदान्तकी शुष्क व्याख्या करनेवाले, सदा वेदान्त ग्रन्थोंसे उलझे रहनेवाले, अपने प्रकाण्ड पाण्डित्यका प्रदर्शन करनेवाले अनेकों उद्भट विद्वान मिल जाएँगे, पर वेदान्तको क्रियात्मिकताका बाना पहिनाकर सर्वत्र माधुर्य बरसाने वाले, प्रकृतिके अणु २ के साथ अपनी एकता अनुभव करनेवाले विरले ही महात्मा मिलेंगे। स्वामीराम वेदान्तकी जीती जागती टीका थे और उनके मधुर मुखमण्डल पर मस्ती, प्रेम, हास्य और सर्वभूतैकात्म्यानुभूतिके पाठ सदा अङ्कित रहते थे। स्वामीरामने निरन्तर साधनासे अपने जीवन-पुष्पको प्रेम-पराग से भरा और विश्व-उपवनको सुगन्धित किया। स्वामीरामकी स्नेहा-सिक्ति दृष्टि प्रत्येक वस्तुको प्रेमके आवरणसे ढका हुआ देखती थी।

भारत-माताके इस अमृत-पुत्रने सन् १८७३ ई०में पंजाब प्रान्तके ज़िला गुजराँवालामें मुरारीवाला नामक ग्रामको अपने जन्मसे समलंकृत किया था। स्वामी राम कवि-कुल-शिरोमणि, हिन्दी रामायणके अमर कलाकार, भगवान्के अनन्य भक्त, गोस्वामी तुलसीदास जीके वंशज थे—ऐसी लोकोक्ति प्रसिद्ध है। स्वामी रामतीर्थजीके बाल्यकालमें ही ज्योतिषियोंने यह घोषणा कर दी थी कि आगे चलकर यह बालक अद्भुत, प्रतिभाशाली विद्वान् और महात्मा बनेगा। स्वामी रामके बचपनकी घटनाएँ पहले हीसे उनके उज्वल, आभामय भविष्यकी ओर संकेत कर रहीं थीं। बचपन हीमें वे रामायण और महाभारतकी कथा तल्लीन होकर श्रवण-किया करते थे और कभी कभी तो उनका भक्तिका समुद्र बान्ध तोड़कर वह निकलता था और उनकी आँखोंसे गङ्गा-यमुनाकी धाराएँ निकलने लगती थीं। वे घण्टों मकानमें मौन रहते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस तरह एक कुशल कारीगर मूर्तिको धीमे-धीमे गड़ता रहता है ठीक उसी तरह स्वामी राम अपने जीवनको साधना द्वारा प्रारम्भमें ही गढ़ रहे थे। स्वामी रामतीर्थकी प्रारम्भिक शिक्षा उनके ग्राममें ही उनके ज्येष्ठ भ्राताकी संरक्षतामें ही हुई क्योंकि उनके माता-पिता पहले ही इस लोकसे महाप्रयाण कर चुके थे। अपने ग्रामकी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर वे उच्च शिक्षाके लिए लाहौर आए और यहाँ उन्हें जिन आपत्तियोंका सामना करना पड़ा उनका वर्णन इस निर्जीव लेखनीकी शक्तिसे परे है। परन्तु उन्होंने भगवत् विश्वास और श्रद्धाके बलपर, हिमालयके समान अचल होकर जीवनके इन तूफानोंका सामना किया। सच है, श्रद्धा ही वह शक्ति है, जिसके बलपर आदमी सात भुवनोंका भार उठा लेता है, श्रद्धाकी छोटीसी चिनगारी आशङ्का और भयके पहाड़ोंको भस्मसात करती चली जाती है, श्रद्धाके जहाज़पर सवार हो आदमी तूफ़ानों और थपेड़ोंका मुकाबिला करते हुए आगे बढ़ता चला जाता है। संसारमें जितने भी उच्च कोटिके सन्त-महात्मा हुए हैं उनके जीवनकी सफ़लताका रहस्य इसी श्रद्धापर अवलम्बित है। भगवान्के सच्चे भक्त तो अपने मालिककी इच्छामें ही राज़ी रहते हैं। किसी शायरका शेर है—

मालिक तेरी रज़ा रहे, और तू ही तू रहे।
बाकी न मैं रहूं, न मेरी आरजू रहे॥

विद्यार्थी अवस्थामें स्वामी राम भगवान्से तल्लीन होकर सदा यही प्रार्थना किया करते थे कि "हे भगवन्! मेरे लिए परिश्रमी मन, एकान्त-स्थान और समयका अभाव न हो" कई बार तो दिनमें एक समय भोजन करके उन्होंने अपना खर्च चलाया। इतनी

सब कठिनाइयोंके होते हुए भी वे अपनी श्रेणीके रत्न थे और अध्यापकोंकी सदा उनपर कृपा-दृष्टि बनी रहती थी। गणित उनका प्रिय विषय था। इस विषय-में उनकी अद्भुत प्रतिभा देखकर दङ्ग रह जाना पड़ता था और कई बार तो वे जबतक सवाल हल नहीं होता था, चैन नहीं लेते थे और रात आँखोंमें ही काट देते थे। गणितकी उच्च शिक्षाके लिए, इङ्गलैण्ड जानेके लिए इन्हें छात्रवृत्ति भी मिली थी पर इन्होंने यह कहकर इन्कार कर दिया था कि "अपनी फ़सल बेचनेके लिए मैंने इतना श्रम नहीं किया था, अपितु बाँटनेके लिए किया था।"

विद्यार्थी अवस्थामें जब एक बार स्वामी रामतीर्थ-जीके पास खर्चके लिए कुछ भी नहीं रहा तो वे भावावेशमें आकर कहने लगे भगववान्के प्रति सम्बो-धन करके —

कुन्दनके हम डले हैं, जब चाहे तू गला ले।
बावर न हो तो हमको, ले आज आज़मा ले॥
जैसे तेरी खुशी हो, सब नाच तू नचा ले।
सब छान-बीन कर ले, हर तौर दिल जमा ले॥
राज़ी हैं हम उसीमें, जिसमें तेरी रज़ा है।
याँ यों भी वाहवा है, और वों भी वाहवा है॥

स्वामी रामकी इस कवितामें उनका शानदार व्यक्तित्व साफ़ बोल रहा है।

एम० ए० की शिक्षा समाप्त करनेके उपरान्त वे लाहौरके मिशन कालिजमें सन् १८९६ में गणितके प्रोफेसरके पदपर नियुक्त हुए। अक्सर विद्यार्थियोंको गणितका पाठ पढ़ाते पढ़ाते वे अपने प्रिय विषय वेदान्त और भक्तिकी तरफ़ आ जाया करते थे और भावा-वेशकी दशामें घण्टों कृष्ण-चर्चा किया करते थे। इन दिनों स्वामीजीका आत्मिक विकास बहुत ऊँचे स्तरपर पहुंच चुका था।

वैराग्य और भक्तिका सोता अन्दर ही अन्दर फूट रहा था। इन दिनों जब स्वामी राम तीर्थ, सनातन-धर्म सभाओंमें भाषण देते थे तो कृष्ण-आवेशमें उनकी आँखोंमें जल-बिन्दु चमकने लगते थे। आख़िर सन् १८९७ की २५ अक्टूबरको भगवान्के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण करते हुए उन्होंने अपने गुरु भक्त धन्नारामजीको पत्र लिखा था—

"मेरे परम पूज्य पिताजी महाराज! चरणबन्दना! आपके पुत्र तीर्थराम (स्वामी रामतीर्थजीका सन्यास ग्रहण करनेसे पूर्वका नाम) का शरीर तो अब बिक गया। बिक गया राम के आगे उसका शरीर अपना नहीं रहा। आज दीपमालाको अपना शरीर हार दिया और महाराजको जीत लिया। आपको धन्यवाद हो। अब जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, मेरे मालिक से माँगो, वे तत्काल स्वयं देंगे या मुझसे भिजवा देंगे। पर एक बार निश्चयके साथ आप उनसे माँगो तो सही। उन्नीस-बीस दिनसे मेरे सारे काम बड़ी निपुणतासे अब वे अपने आप करने लग पड़े हैं। आपके भला क्यों न करेंगे? घबराना ठीक नहीं। जैसी आज्ञा होगी, वैसा बर्तावमें आता जाएगा। महा-राज ही हम गुसाईंयोंका धन है। अपने निजके सच्चे और अमूल्य धनको त्याग कर, संसारकी झूठी कौड़ियोंके पीछे हमको पड़ना उचित नहीं। और उन कौड़ियोंके न मिलने पर शोक करना तो बहुत ही बुरा है। अपने वास्तविक धन और संपत्तिका आनन्द एक बार ले तो देखो।"

इस पत्रके लिखनेके तीन वर्ष बाद स्वामीजीने सन्यासका बाना धारण कर लिया और वे साधनाके लिए हिमालयकी ओर चल पड़े।

स्वामी रामतीर्थ को प्रकृतिसे गज़बका प्रेम था। हिमालय पर्वतपर रहते हुए तारा रूपी मोतियोंसे खचित चन्द्रकी प्रभासे प्रकाशित विस्तृत नील आकाश उनका छत्र था, हरी २ कोमल घास और फूल पत्तियोंसे ढका हुआ विस्तीर्ण हरित भू-पट उनका राज-सिंहासन था; मन्द २ मलय समीर उन्हें पंखा झलती थी; बादल

रिमझिम रिमझिम बरस कर उनको स्नान कराते थे; सरिताका संगीत वे मुग्ध होकर सुना करते थे और इन्द्रधनुषके झूलेमें झूलते थे। वे अपनेको राम-बादशाह कहा करते थे और उन्होंने अपने शानदार, माधुर्य और मस्तीसे भरे व्यक्तित्व द्वारा सम्राटोंकी शानको भी फीका कर दिया था। निरन्तर साधनाके उपरान्त उन्होंने देहाभ्यास पर विजय पाई थी और वे अपनेको पूर्ण रूपसे मुक्त, निर्द्वन्द्व, स्वच्छन्द आत्मा और भगवान्‌का दैवीय अंश अनुभव करते थे। उन्हें अपनी बिलकुल सुध-बुध नहीं रहती थी और कई बार तो वे हिमालयकी कन्दराओंमें कई २ दिन तक बेहोश पाए गए। स्वामी राम स्वयं एक कविता थे। वे प्रेम, प्रकाश और पवित्रताके स्रोत थे। उन्होंने अपने मन वचन और कर्म तीनोंको प्रकाश और नैसर्गिक माधुर्यसे भर दिया था इसलिए उनकी कवितामें भी वही अनिर्वचनीय माधुर्य भरा पड़ा है। जरा उनकी कविताका रसास्वादन कीजिए—

"अब देवनके घर शादी है, लो रामका दर्शन पाया है।
पाओंबाँ१ नाचते आते हैं, हिप हिप हुर्रे हिप हिप हुर्रे ॥ १ ॥
सब ख्वाहिश२ मतलब हासिल३ हैं, सब खूबोंसे मैं वासिल हूँ।
क्यों हमसे भेद छुपाते हैं, हिप हिप हुर्रे हिप हिप हुर्रे ॥ २ ॥
सब आँखोंमें मैं देखूं हूँ, सब कानोंमें मैं सुनता हूँ।
दिल बरकत मुझसे पाते हैं, हिप हिप हुर्रे हिप हिप हुर्रे ॥ ३ ॥
सब ऋषियोंके आईना४-दिलमें, मेरा नूर५ दरखशां६ था।
मुझ ही से शायर लाते हैं, हिप हिप हुर्रे हिप हिप हुर्रे ॥ ४ ॥
मैं खालिक७, मालिक दाता हूँ, चशमक८ से दहर९ बनाता हूँ।
क्या नक्शे रंग जमाते हैं, हिप हिप हुर्रे हिप हिप हुर्रे ॥ ५ ॥
जादूगर हूँ, जादू हूँ खुद, और आप तमाशाबी मैं हूँ।
हम जादू खेल रचाते हैं, हिप हिप हुर्रे हिप हिप हुर्रे ॥ ६ ॥
बेजानोंमें हम सोते हैं, हैवां में चलते फिरते हैं।
इन्सांमें नींद जगाते हैं, हिप हिप हुर्रे हिप हिप हुर्रे ॥ ७ ॥
संसार तजल्ली१० है मेरी, सब अन्दर बाहिर मैं ही हूँ।
हम क्या शोले११ भड़काते हैं, हिप हिप हुर्रे हिप हिप हुर्रे ॥८॥
है मस्त पड़ा महिमामें अपनी, कुछ भी ग़ैर अज़ राम नहीं।
सब कल्पित धूम मचाते हैं, हिप हिप हुर्रे हिप हिप हुर्रे ॥ ९ ॥

कविताकी सादगी और भाव-गम्भीर्य देखिए। इस प्रकारका स्फूर्तिदायक, जीवनको उन्नत बनानेवाला और प्रेम तथा प्रकाशकी लहरोंसे भरनेवाला साहित्य बिना अपने अन्तरका दीपक जलाए और जीवनकी साधनाके बिना उत्पन्न नहीं होता। यह साहित्य बनाया नहीं जाता अपितु स्वयं भावावेशकी दशामें, तरङ्गित अवस्थामें उत्पन्न होता है। इसके लिए कोष और सुन्दर शब्दोंकी छानबीन करनेकी तथा रचनाको छन्दोबद्ध करनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती बल्कि शब्द स्वयं निकलते और छन्दोबद्ध होते जाते हैं। यह साहित्य हृदयसे निकलता है इसलिये इसका प्रभाव हृदयपर पड़े बिना नहीं रह सकता। यह साहित्य-प्रकाशपुञ्जमेंसे निकलता है, इसलिए दूसरोंको भी प्रकाशित करता है।

स्वामी राममें मस्तिष्क और हृदय दोनोंका विकास समुन्नत रूपमें हुआ था। उन्होंने पूर्व और पश्चिम दोनों तरफ़के तत्त्ववेत्ताओं और दार्शनिकोंका गम्भीर अध्ययन किया था। जहाँ उन्होंने भक्त तुलसीदास, सूरदास, मीरा बाई, बुल्ला शाह और गोपाल सिंहकी भक्ति और प्रेमरससे भीगी कविताओं का माधुर्य अनुभव किया था वहाँ वे पश्चिमके कान्ट, हर्बर्टस्पेन्सर, शोपनहार, इमर्सन, वाल्ट ह्विट मैन और थोरोके भी पूर्ण ज्ञाता थे। हिन्दी, उर्दू तथा अंग्रेजीके प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए उनका फ़ारसीपर भी पूर्ण आधिपत्य था और उन्होंने ईरानके प्रसिद्ध

१ पाओंसे २ इच्छाएँ ३ प्राप्त ४ शीशा ५ तेज ६ चमकना ७ जगत्कर्ता ८ पालक मारना ९ युग।

१० प्रकाश ११ लपटें।

सूफ़ी कवियों हाफ़िज़, अत्तार तथा मौलाना रूमकी शायरीका भी रसास्वादन लिया था।

दिसम्बर १९०१ में पार्वतीय यात्रासे स्वामी रामतीर्थजीके वापिस लौटनेपर मथुरामें एक रिलीजस कान्फ़्रेन्सका आयोजन किया गया था, जिसमें सब धर्मोंके प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इस रिलीजस कान्फ़्रेन्सके सभापति पदको राम बादशाहने ही सुशोभित किया था। जिस समय बादशाहका भाषण प्रारम्भ हुआ, सर्वत्र शान्तिका साम्राज्य छा गया और उस अग्निस्वरूप रामसे विचारोंके स्फुलिङ्ग निकल-निकल कर लोगोंकी आत्माको प्रकाशित करने लगे। राम बादशाहके बोलनेका ढङ्ग बिलकुल निराला और मौलिक था। आध्यात्मिक विषयोंको सरस, सुन्दर रूपमें व्याख्या करनेका बड़ा ही अद्भुत ढंग था। अपने भाषणके बीच-बीचमें मस्ती और भावावेशकी दशामें स्वामी राम कुछ समयके लिए मौन हो जाते थे। और बीचमें कभी-कभी जलभरे जलधरके समान ओ३म्का गम्भीर निर्घोष करते थे। राम बादशाहके व्यक्तित्वमें कोई ऐसा जादू भरा हुआ था जिससे व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। उनके गुलाबी गालोंपर भावावेशकी दशामें टपकते हुए जलबिन्दु गुलाबकी गोदीमें पड़े हुए ओसकणों के सदृश प्रतीत होते थे।

मथुराकी रिलीजस कान्फ़्रेन्सके बाद फैज़ाबादमें भी एक धार्मिक सभाका आयोजन रामके सभापतित्वमें किया गया था। उसमें हिन्दू, पारसी, सिक्ख, बौद्ध, जैन, इस्लाम, ईसाइयत आदि सब धर्मोंके प्रतिनिधियोंको निमन्त्रित किया गया था। एक मौलवी साहिब राम बादशाहसे शास्त्रार्थ करनेवाले थे परन्तु रामकी देदीप्यमान, ओजस्वी मूर्तिका इतना प्रभाव पड़ा कि उनके विरोधभाव स्वयं कर्पूरकी तरह उड़ गए और वे रामके सच्चे भक्त बन गए।

टिहरीके तात्कालिक महाराजका स्वामीजीसे अगाध, निरतिशय स्नेह था और टिहरीमें स्वामीजीके भोजन तथा निवासका सुप्रबन्ध उन्होंने किया था। और उन्हींकी प्रेरणासे स्वामीजी जापानमें होनेवाले सर्व-धर्म-सम्मेलनमें भाग लेने गए थे परन्तु जापान पहुंचनेपर पता चला कि सम्मेलनकी ख़बर असत्य है। अस्तु। जापानमें जितने दिन स्वामीजी रहे, अपने मधुर व्याख्यानोंसे वहांके निवासियोंको आह्लादित करते रहे। जापानमें कुछ अरसा प्रचार करनेके उपरान्त स्वामीजीने अमेरिकाके लिए प्रयाण किया। स्वामी रामके शानदार व्यक्तित्व, और उज्वल चरित्रसे प्रभावित होकर वहांके पत्रोंने स्वामीजीके विषयमें लिखा—"Living christ has come to America" अर्थात् जीवित ईसामसीह अमेरिका पधारे हैं। अमेरिकामें स्वामीजीके व्याख्यानोंका बड़ा प्रभाव पड़ा दिसम्बर सन् १९०४ में स्वामी राम स्वदेश लौटे और १७ अक्टूबर १९०६ ई०में दीपमालिकाके दिन गङ्गामें स्नान करते समय पैर फिसल जानेसे स्वामी रामतीर्थ इस लोक से सदा के लिए महाप्रयाण कर गए।

भक्ति—(१) सदा भगवान् में निवास करो। (२) सेवा करो, स्नेह करो और दान दो। (३) निर्धनों और व्याधिग्रस्त पुरुषोंकी सहायता करो। (४) सेवा ही पूजा है। (५) सदा भगवान् का स्मरण करो। (६) अन्तस्तलसे यह अनुभव करो कि "ऐ ! मेरे प्यारे प्रभो ! मैं तेरा हूं, तेरी इच्छा पूर्ण हो।

# शिक्षा का महत्त्व

( लेखक—हरिदत्त शास्त्री बी० आर०, डी० डी० )

## शिक्षितः संसृतिं तरेत्

मानव जीवनमें एक मात्र सत् शिक्षा ही वास्तविक सत्ता है, प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षाके स्वरूप और साधनमें तथा परिणाममें महान् अन्तर है, यथार्थ-में शिक्षा संस्कारके परिणामसे मनुष्यमें पाशविक भावनाओंका अन्त और सार्वजनिक विश्वहित भाव-नाओंका विकाश हो जाता है। भारतीय संस्कृति पर प्रायः समस्त संसार मुग्ध रहता था, यतः इस प्राच्य शिक्षा संस्कृतिका उद्देश्य विश्वभावना-परक था। जिस प्रकार रासायनिक क्रियासे लोह स्वर्ण हो जाता है इसी प्रकार शिक्षा संस्कारसे मनुष्य, शिव अर्थात् विश्वके कल्याणकारी हो जाता है। आदि मानव संस्कृति बताती है "एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ; स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः" इस भारत-वर्षमें उत्पन्न हुए विद्वद्वर्गसे संसार अपने-अपने चरित्रकी शिक्षा पाता था, अर्थात् भारतवर्ष ही संसारमें एकमात्र शिक्षाका केन्द्र स्थान था, यह भारतकी आदि शिक्षा संस्कृतिका प्रमाण है। भारतीय आचार्योंने शास्त्रीय शिक्षाकी इस प्रकार परिभाषा की है "अनेक-संशयोच्छेदि, परोक्षार्थस्य दर्शकम्‌, सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः" शास्त्रीय शिक्षा-शक्तिसे मनुष्य संशयोंको छिन्न भिन्नकर परोक्षदर्शक अर्थात् आत्मदर्शी हो जाता है। अर्थात् प्रत्यक्ष इन्द्रियजन्य ज्ञानमें तो शिक्षित अशिक्षित सब समान हैं, शिक्षाकी विशेषता यही है कि इन्द्रियोंसे जिसका ज्ञान न होसके उस वस्तुका साक्षा-त्कार हो। पाश्चात्य आचार्य Tannyson in-Memo-rium Faith by Faith आदिने इन्द्रियजन्य ज्ञानको ही ज्ञान माना है। इससे पाठक प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षाके चरम सिद्धान्तकी गवेषणा आसानीसे कर सकते हैं। शिक्षित समुदाय अपनी शिक्षा-शक्तिसे न्यायालयोंमें जाकर दूसरोंको परास्त करे, धनोपार्जनसे विषयभोग लम्पटताको बढ़ावे, शक्तिसंचयसे दूसरोंपर प्रहार करे, प्राच्य शिक्षाने इसकी निन्दा की है। बल्कि विद्यासे ज्ञान, धनसे पीड़ित दुःखियोंको दान, शक्तिसञ्चयसे भय-भीत सङ्कटप्राप्त प्राणियोंकी रक्षा करनेका आदेश किया है—'विद्या विवादाय, धनं मदाय, शक्तिः परेषां परिपीड़नाय खलस्य; साधोर्विपरीतमेतत्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय"। शिक्षा प्राप्त करनेका अधिकार ब्रह्मचारीको होता था। शिक्षा-कालमें ब्रह्मचर्य्यव्रतपूर्वक गुरुके शासनमें रहना शिक्षार्थीका प्रथम धर्म होता है। वे सत् शिक्षा प्राप्त करनेवाले वनोंमें, गुरुजनोंकी पर्णशालामें, ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण कर शिक्षारूपी रसा-यनका विकाश पाते थे। पुस्तकोंके भारको अपने ऊपर लाद लेनेका नाम शिक्षा नहीं है ; यह तो वह कहावत हुई 'भारस्य वेत्ता नतु चन्दनस्य" पुस्तकोंके भारको विद्यार्थियोंपर लादकर शुकवत् रटानेसे शिक्षा प्राप्त नहीं होती है, बल्कि इतना बोझ डालकर उन बालक और युवकोंको नेत्रज्योतिहीन और कराल रोगोंका ग्रास और दुर्बल बनाकर गतायु करना ही है। इस मानव संसारको भगवान्‌ने क्षेत्र कहा है "इदं शरीरं कौन्तेय, क्षेत्रमित्यभिधीयते" इस मानव शरीरको क्षेत्र कहा है ; इस क्षेत्रमें जैसे बीज डालेंगे वैसी खेती होगी, यह निर्देश इससे किया है। भारतवर्षमें नव-जवान बालकोंकी जिह्वापर वाग्-भवबीज लिखनेका यही कारण

था, सारस्वत बीज उसके अन्दर चला जाय। वस्तुतः भारतवर्षकी जीवनीका यह रहस्य है। आचार्य्य और ऋषि मुनियोंके आश्रममें मातापिता अपने बालकोंको ले जाते थे ; बालकोंको 'सत्यं वद' 'धर्मञ्चर' इत्यादि गुरु, आदेश करता था और पूर्ण ब्रह्मचर्य्य व्रतमें उनकी निष्ठा रखकर जिस विद्याकी जो अधिष्ठात्री देवता है उसके बीजाक्षरको उसके हृदय-पटलपर रख देता था। उसके प्रभावसे वे पूर्ण शिक्षित संसारके हितकारी हो जाते थे; उनको व्यर्थ पुस्तकोंका बोझा लादना और चटपटा विषय लम्पट जीवन बनाना नहीं होता था। आपने ऐतिहासिक आचार्य्य पाणिनिका नाम सुना है; देखिये, कथासरित्सागरमें इनका पूर्ण वर्णन है ; केवल शिवजी-की उपासनासे इनमें व्याकरण-शास्त्रका चमत्कार हुआ। कालिदास आद्याके बीजाक्षरसे; इसी प्रकार गौतम, कणाद, पतञ्जलि। ८ वर्षमें भगवान् शंकर और उनके शिष्य आनन्द गिरि आदि जितने भी आपको ऐति-हासिक प्राचीन विद्वानोंका स्मरण है उन्होंने पुस्तक भार नहीं रटे; केवल पूर्ण ब्रह्मचर्य्य आदि, गुरु कृपा तथा जंगलोंमें रहकर चमत्कारी हुए हैं। जहां ब्रह्मचर्य्य नहीं, विद्यार्थियोंका रहन-सहन वहिर्मुख वृत्तिको वढ़ाने वाला है, गुरु-शिष्यमर्यादा नहीं, वहां सत्-शिक्षाकी आशा निराशारूपिणी है। अर्वाचीन विश्वविद्यालय कालेजोंको देखिये और प्राच्य गुरुकुल आदियोंके इतिहासको मिलाइये "निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशालां" विद्याका अन्तिम सिद्धान्त आत्मनिष्ठाकी प्राप्ति है। ऋषभदेवने कहा है "गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न स स्यात् दैवं न स स्यात् न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्' अर्थात् जो मृत्युके दुःखसे न छुड़ा सके वह गुरु नहीं, वह माता-पिता, मित्र, पति नहीं है। मृत्युसे छुटकारा, "तमेवविदित्वा अतिमृत्युमेति" उस आत्माके ज्ञानसे ही मृत्युके दुःखसे बच सकता है। "तरति शोकमात्मवित्" आत्मज्ञान द्वारा मृत्यु-पाशसे छुट सकता है। यही शिक्षाका चरम उत्कर्ष है। रासायनिक क्रियाके पण्डित जिस प्रकार लक्षणोंसे देखते हैं कि इसमें रासायनिक क्रिया हो रही है या नहीं, इसी प्रकार मनुष्यके चरित्रसे देखा जाता है कि विद्याका रासायनिक विकाश इसमें हो रहा है या नहीं। जैसे भारतीय पण्डितोंका कहना है "विद्या ददाति विनयं" विद्याके संस्कार जीवित होनेसे मनुष्यमें स्वभावतः नम्रता आजाती है ; इसीपर राजनैतिक विद्वानोंका अनुभव है कि "विनयं राजपुत्रेभ्यः" राज-पुत्र जिन्हें विधिपूर्वक शिक्षा दी जाती थी वे इतने सरल और विनयभाव-सम्पन्न होते थे कि जनता नम्र रहना उनसे सीखती थी, ग्रामोफोनोंके रिकार्ड-की तरह एक एक पुस्तकके रटन करनेका चक्कर खाना शिक्षा सम्पन्नता नहीं; शिक्षाका प्रकाश विनय प्रदर्शनसे होता है। भगवान् कृष्णने कुछ लक्षण बताये हैं कि जिनकी जीवनीमें ये लक्षण हों, उनके अन्दर शिक्षाका सौरभ आयगा ही ; जिनमें ये लक्षण न मिलें, उनकी केवल पुस्तकोंकी रटनासे ज्ञानका होना नहीं है; क्योंकि— "काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्" पुस्तकोंका और शास्त्रोंका विचार करना तो विद्वानोंका विनोद (Recreation) है, न कि विद्याप्राप्ति। विद्या के बीज जिनके हृदय पर विकशित हो जाते हैं उनके लक्षण तो गीतामें यों बताये हैं "अमानित्वमदंभित्वं महिमा क्षान्ति रार्जवम्, आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः" गी० १३, ८-११। अर्थात् निरभिमान क्षमा शान्ति गुरुसेवा इन्द्रिय-निग्रह अनासक्ति समता आत्मभक्ति एकान्तसेवन अध्यात्मनिष्ठा तत्त्वज्ञान के साथ जिनके अन्दर ज्ञानका प्रकाश हो जाता है उनकी आम प्रकारकी भावना होती है। उक्त भावनाओंके अति-रिक्त सम्पूर्ण भावना अज्ञानका सूचक है। परन्तु एक मात्र पुस्तकोंके रटनेसे इन भावनाओंकी आशा नहीं

है। महर्षि पतञ्जलिने विद्याकी उपयुक्तता चार प्रकारसे बताई है; केवल पुस्तक पढ़नेसे नहीं। पुस्तकोंका पढ़ना तो बुद्धिमानोंका विनोद मात्र है। पहला आगम काल, विद्याका बीजाक्षर प्राप्त कर उस बीजाक्षरको षट्चक्रमें चलाकर यथास्थान सिद्ध करना; स्वाध्याय-काल, आर्ष सिद्धान्तोंका विचार; प्रवचनकाल, जो धारण किया है उसे कहना या पढ़ना या उसका प्रवचन करना; चतुर्थ व्यवहार-काल, जो शिक्षा प्राप्त की है उसके अनुसार जीवन-यात्राका व्यवहार करना, जैसे पढ़ता हो, सत्य कहना, प्राणियोंका हित करना; पर कार्य्य-कालमें अभिमान या प्रमाद वश असत्यका समर्थन नहीं करना; प्राणियोंकी हितकी कामना करना। व्यवहार-कालका तात्पर्य यह है, जो कुछ शास्त्र द्वारा प्राप्त किया विज्ञान है उसी पर चलना, तब विद्योपयुक्ता होती है। न केवल पुस्तकोंके रटन-मात्रसे अनर्थ और हानि होती है, बल्कि अब्रह्मचर्य और अविधि-पूर्वक जो विद्यारूपी शक्तिका आगमन होता है वह शक्ति अनर्थकारिणी प्रायः हो जाती है। इसलिये मुरारि कविकी प्रशंसा पर कहा है—"देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारन्तु सारस्वतं जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः"

अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः, किन्त्वस्य गम्भीरता,-
मापातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः।"

पुस्तकोंको तो बहुतने पढ़ा है, पर सारस्वत सार अर्थात् शिक्षाका यथार्थ स्वरूप गुरुकुलमें ब्रह्मचर्य्य व्रत पूर्वक तपस्या करनेवाला मुरारि कवि जानता है; अर्थात् शिक्षाके यथार्थ विकाशमें गुरुसेवा भी एक महान् सहायता है। जिन लोगोंके अन्दर यह भावना है कि हमने एक मास्टर, पढ़ाने को नौकर रखा है, जिनकी बाल्यकालमें गुरुपर नौकरकी भावना है, उन्हें सारस्वत प्रसाद तो कहां, सारस्वत शापसे भी मुक्ति न हो तो आश्चर्य ही क्या ?

"विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम, गोपाय मा शेवधि-ष्टेऽहमस्मि।"

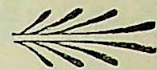
विद्या ब्राह्मणके पास प्राप्त हुई अनधिकारियोंको न दी जाय क्यों कि अनधिकारियोंको लाभ नहीं, गुरु भक्तको ही लाभ होता है। वशिष्ठजीने रामजीको उपदेश दिया, उनकी विद्या प्रकाशवती हुई; याज्ञवल्क्यने जनकको, वररुचिने कौत्सको। वशिष्ठजीने कहा "वरं शरावहस्तस्य चण्डालागारवीथिषु भिक्षार्थमटनं राम, न मौर्ख्य-जनजीवनम्" टिकारा हाथपर लेकर चण्डालके घर भीख मांगनेमें वह दुःख नहीं जो मूर्ख रहनेमें है। रामने वशिष्ठजीके आदेशपर उनका पूर्ण उद्देश ग्रहण किया। जिन्होंने विद्यागुरुका तिरस्कार किया उनको विद्या फलवती नहीं; शाप देनेवाली होती है। गुरुके प्रसादसे विद्या फलवती होगी; गुरुके कोप-से विनाश होता है। गुरुसेवामें अश्वमेधका फल है; वही कहा है "गुरुकोपाद्विनाशः स्यात्" गुरुको अपशब्द कहने, अनादर करनेसे जो गुरु कोप होता है उससे विनाश होता है। यथार्थ शिक्षाकी प्राप्ति, ब्रह्मचर्य्य, एकान्त वास, सात्त्विक जीवन, देवोपासना गुरुकी दयासे होती है।

---

सदाचार—(१) सत्य बोलो। (२) मैं साहस का पुतला हूं। (३) मैं सर्वथा शुद्ध, पवित्र हूं। (४) समय बहुमूल्य है। (५) मैं सच्चा ब्रह्मचारी बनूंगा। (६) ब्रह्मचर्य ही दिव्य जीवन है। (७) जीवन का लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है। (८) जीवन अल्प है। (९) समय निरन्तर गति कर रहा है। (१०) अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य का पालन करो। (११) भले बनो, भलाई करो। (१२) दयालु और पवित्र बनो।



# मृत्यु-विज्ञान



लेखक—श्रीगङ्गाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

(वर्ष २, अङ्क ११ से आगे)

गत जर्मन-युद्ध के बाद से, संसार में शल्य-क्रियाने बहुत उन्नति की है, जिसके द्वारा ऐसे-ऐसे विचित्र प्रयोग किये गये हैं, जो उसके पूर्व सर्वथा असम्भव प्रतीत होते थे ; जैसे हृदय, जो स्वभावतः बहुत सुकुमार अङ्ग समझा जाता है, उसे घड़ीके पुरज़े की तरह, एक शरीर से निकालकर दूसरे शरीर में 'फिट' कर दिया गया, और वह अपना कार्य्य उसी प्रकार करता रहा। पेरिस नगर में आज १५ वर्षों से एक मनुष्य का हृदय दवाईयों में रखा हुआ है, जो अब तक जीवित है, और अपनी गति करता रहता है।

इस सम्बन्ध में सबसे उत्तम और विचित्र प्रयोग अमेरिका में हुआ है कि मेढक के बच्चे कई वर्षों तक एक ही अवस्था में रखे गये और वे अपने जीवन भर बच्चे ही बने रहे। यह इस प्रकार हुआ कि सर्व-प्रथम मेढकों के मस्तिष्क के कुछ पुरज़े निकालकर अलग कर दिये गये, फिर उनको दवाईयों के आधार पर रखा गया। फल यह हुआ कि वे बढ़ न सके और सदैव बच्चे ही बने रहे। इस प्रयोग से यह परिणाम निकाला गया कि जब इस प्रकार का आपरेशन मेढकों के सम्बन्ध में सफल हो गया तो मनुष्य के सम्बन्ध में भी अवश्य सफल होगा और वह अब सदैव युवा तथा शक्तिशाली बना रहकर मृत्यु को जीत सकेगा।

दीर्घ-जीवी होनेके कुछ साधन नीचे दिये जाते हैं—

[ १ ] दीर्घ-जीवन और नीरोग शरीर में चोली और दामन का साथ है। जब तक शरीर नीरोग हेगा, मृत्यु पास फटक नहीं सकती।

[ २ ] आसन, व्यायाम, योगाभ्यास, तथा प्राकृतिक सादा भोजन करनेवाले मनुष्य अमर तक हो गये हैं। भोजन के प्रत्येक ग्रास को चबा-चबाकर खाना, तथा अपने को प्रकृति के साथ एकाकार कर देना, दीर्घ-जीवन की एकमात्र कुञ्जी है।

[ ३ ] प्रकृति और परमात्मा के संकेतों को समझनेवाला, और समझकर तदनुसार आचरण करनेवाला, ज्ञानी, सत्य-भाषी, निर्मल मनवाला, निर्भय, तथा वीर्य्यवान् मनुष्य दीर्घ-जीवी होता है।

[ ४ ] पूर्ण ब्रह्मचारी, मृत्यु को अपने वश में कर सकता है।

[ ५ ] औषधियों के प्रयोग से भी दीर्घ-जीवन प्राप्त किया जा सकता है, जैसा कि प्राचीन भारत में बहुत बार हुआ है, और जिसको काया-कल्प करना कहते हैं। किन्तु काया-कल्प-विद्या के जाननेवालों की कमी के कारण, यह विद्या अब लुप्त-सी हो रही है। काया-कल्प में कुछ दिव्यौषधियों का व्यवहार होता है, जिनको यदि विधिपूर्वक उपयोग में लाया जाय तो मनुष्य अजर-अमर तक हो सकता है। उन दिव्यौषधियों में कुछ के नाम ये हैं—सोमलता, ब्राह्मी, संखपुष्पी, विडंग, भँगरा, पलास, मिलाया, चित्रक, अश्वगन्ध, मुसली, रुद्रवन्ती, देवदाली, शाल्मलि, आक, खदिर, बावची, कुकर-भँगरा, लक्ष्मण, शिवलिङ्गी, करंज, पुनर्नवा, कृष्ण-हरिद्रा, पिपली, मुण्डी, अकोल, काक-जंघा, निर्गुण्डी, इन्द्रवारुणी, त्रिफला, मण्डूकपर्णी निम्ब, गन्धक, पारद, एरंड, ज्योतिष्मती, कूट, वच, रक्त-गुञ्जा, शोठि, पाठा, विधारा, इत्यादि।

भारत की देखा-देखी अब प्राच्य देशवाले भी इस काया-कल्प-क्रिया की खोज में हैं, परन्तु उन्हें उतनी सफलता नहीं मिल रही है, जितनी वास्तव में मिलनी चाहिये।

अभी-अभी जब मैं इन पक्तियों को लिख रहा हूं [३ अक्टूबर सन् १९४०] साप्ताहिक 'भारत' १ अक्टूबर सन् १९४० में प्रकाशित, अमेरिका का एक विचित्र और कुतूहलपूर्ण समाचार मुझे देखने को मिला है, जिसमें बताया गया है कि अमेरिकन वैज्ञानिक आजकल एक ऐसे काया-कल्प का प्रयोग एक सप्तवर्षीया बालिका पर कर रहे हैं, कि यदि वह सफल हो गया तो उनका विश्वास है कि वह बालिका कभी मरेगी नहीं, और संसार में सशरीर अमर हो जायगी। समाचार इस प्रकार है—

"अमेरिकन वैज्ञानिक आजकल यह प्रयोग कर रहे हैं कि यदि किसी शिशुका वैज्ञानिक पद्धति से ठीक तरह लालन-पालन किया जाय, तो वह अमर हो सकता है या नहीं। प्रयोग का आधार यह धारणा है कि कुविचार के कारण ही बीमारियाँ आती हैं, इसलिये किसी कुविचार को मनमें न आने देना मानों मृत्युपर विजय प्राप्त कर लेना है।"

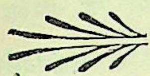
यह प्रयोग जीन नामक बालिकापर हो रहा है, जिसकी आयु अब सात वर्ष की हो चुकी है। अमेरिकन वैज्ञानिकों की एक प्रमुख संस्था के बहुत से वैज्ञानिक उसके पालन-पोषण में लगे हैं, और उनका यह विश्वास है कि यह लड़की कभी मरेगी नहीं—सदा जीवित रहेगी। इसलिये उसे 'अमर शिशु' कहा जाता है। एक हज़ार से अधिक वैज्ञानिक इस बच्ची के संरक्षक हैं, और वे सब मिलकर एक महान् वैज्ञानिक परीक्षण में लगे हैं, और इस परीक्षण का काधार एक मात्र यह बालिका है। *

क्रमशः



* लेखककी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक "मृत्यु और उसके बाद" से।

—ले०



# दमनपर शान्तिका विजय



( अनुवादक—भिक्षु श्रीधर्मरत्न )

एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्तिमें विहार करते थे। एक दिन भगवान् ने भिक्षुओंको सम्बोधित कर कहा, "भिक्षुओ! पुरानी बात है कि देवों और असुरोंमें लड़ाई छिड़ गयी। उस समय, भिक्षुओ! असुरेन्द्र वेपचित्तिने सुरेन्द्र सक्कसे कहा, "चलो, सुरेन्द्र! सुभाषणके अनुसार विजयका निर्णय करें।" सक्क इसके राज़ी हो गये। तब फिर, भिक्षुओ! इसके निर्णयके लिए देवों और असुरोंकी एक सभा नियुक्त की गयी।

तब असुरेन्द्र वेपचित्तिने देवेन्द्र सक्कसे कहा, "देवेन्द्र! अपनी गाथा कहो।" तिसपर, भिक्षुओ! देवेन्द्र वेपचित्तिसे बोला, असुरेन्द्र! यहां पर तुम्हीं पूर्वदेव हो; 'इसलिए तुम्हीं कहो ?' इस प्रकार बोलने पर वेपचित्ति असुरेन्द्रने यह गाथा कही—

"भीय्यो बाला पकुज्झेय्युं, नो चस्स पटिसेधको।
तस्मा भुसेन दण्डेन, धीरो बालं निसेधयेति॥"

"विरोध न करने पर मूर्ख अकसर और भी क्रुद्ध होता है। इसलिए पण्डितको चाहिये कि कठिन दण्ड से उसका दमन करें।"

भिक्षुओ! असुरेन्द्रके इस कथनका अनुमोदन असुरोंने किया लेकिन देव चुप थे। तब फिर भिक्षुओ! वेपचित्ति सक्कसे बोला, "देवेन्द्र! अपनी गाथा कहो।" इस प्रकार कहनेपर देवेन्द्रने यह गाथा कही—

"एतदेव अहं मञ्ञे, बालस्य पटिसेधनं।
परं संकुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मति॥"

"मूर्खका क्रोध देखकर जो विवेकसे शान्त रहता है, उसे मैं मूर्खका प्रतिकार समझता हूं।"

भिक्षुओ! देवेन्द्रके इस कथनका देवोंने अनुमोदन किया। लेकिन असुर चुप थे। तब फिर, भिक्षुओ! देवेन्द्रने असुरेन्द्रसे कहा, "असुरेन्द्र! अपनी गाथा बोलो। इस प्रकार कहने पर वेपचित्तिने यह गाथा कही —

"एतदेव तितिक्खाय, वज्जं पस्सामि वासव।
यदानं मञ्ञति बालो, भया म्याहं तितिक्खति।
अज्झो सहति दुम्मेधो, गोव भीयो पलायिनं॥"

"देवेन्द्र! सहनशीलतामें मैं यह दोष देखता हूं—भागनेवालेका पीछा करनेवाले, सांडकी तरह, मूर्ख, सहनशील व्यक्तिको डरपोक समझकर, उसपर टूट पड़ता है।"

भिक्षुओ! वेपचित्तिके इस कथनका अनुमोदन असुरोंने किया। लेकिन देव चुप थे। तब फिर, भिक्षुओ! असुरेन्द्रने सक्कसे कहा, "देवेन्द्र! कुछ और भी तो कहो।" इस प्रकार कहने पर सक्कने ये गाथायें कहीं।

"कामं मञ्ञतु वा मा वा, भया म्याहं तितिक्खति।
सदत्थ परमा अत्था, खन्त्या भीय्यो न विज्जति॥"

"मूर्ख, सहनशील व्यक्तिको भले ही डरपोक समझे, लेकिन शान्तिसे बढ़कर कोई सदर्थ या परमार्थ नहीं है।"

"यो हवे बलवा सन्तो, दुब्बलस्स तितिक्खति।
तमाहु परमं खन्ति, निच्चं खमति दुब्बलो॥"

जो कोई बलवान् होते हुए भी दुर्बलकी क्षमा करे, तो वही उत्तम क्षमा है, क्यों कि दुर्बल तो नित्य क्षमा करता ही है।"

"अबलन्तं बलं आहु, यस्स बालबलं बलं ।
बलस्य धम्मगुत्तस्य, पटिवत्ता न विज्जति ॥"

'मूर्खका (शस्त्र) बल दुर्बल है। धार्मिक बल (क्षमा) का कोई विरोधी नहीं है।"

"तस्सेव तेन पापियो, यो कुद्धं पटि कुज्झति ।
कुद्ध अप्पटिकुज्झन्तो, सङ्गामं जेति दुज्जयं ॥"

"यदि कोई क्रोधी मनुष्यके प्रतिक्रोध करे, तो इससे उसका अहित होता है। जो क्रोधी मनुष्यके प्रति क्रोध नहीं करता, वही दुर्जेय संग्रामको जीत लेता है।"

"उभिन्नमत्थं चरति, अत्तोनो च परस्स च ।
परं संकुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मति ॥"

'जो दूसरेको क्रोधित जानकर स्वयं विवेकसे शान्त रहता है, वह स्वकीय तथा परकीय—दोनोंका हित करता है।"

"उभिन्नं तिकिच्छन्तानं, अत्तनो च परस्स च ।
जना मञ्ञन्ति बालोति, यो धम्मस्स अकोविधो ॥"

"धर्म न जाननेवाले अज्ञ लोग अपना और दूसरे का इलाज करनेवालेको मूर्ख समझते हैं।"

भिक्षुओ! सक्कके इस शुभ कथनका अनुमोदन देवोंने किया। लेकिन असुर चुप थे। तब भिक्षुओ! सुरासुरोंकी सभाने यह निर्णय किया—"असुरेन्द्र वेपचित्तिकी कही हुई गाथायें दण्ड और शस्त्रका प्रतिपादन करती हैं। इसके प्रतिकूल देवेन्द्र सक्ककी कही हुई गाथायें दण्ड और शस्त्रका वर्जन करती हैं। सुभाषणमें सक्कने विजय पा ली है।" इस प्रकार, भिक्षुओ! सक्ककी जय हुई।

( सगाथक वग्गो, संयुत्तनिकायो )

# उपवास

[ लेखक—कविराज श्रीपुरुषोत्तम देव आयुर्वेदालंकार, मुलतान छावनी ]

मनुष्य-शरीर परमेश्वरकी सर्वोत्कृष्ट रचनाओंमें से है। यह एक बड़ी रासायनिक प्रयोग-शाला है, जिसमें निरन्तर ऐसे ऐसे अद्भुत परिवर्तन होते रहते हैं जिनको देखकर अनायास ही यह ख्याल होता है कि इस शरीरको बनानेवाली मनुष्यसे उत्कृष्ट ही कोई शक्ति हो सकती है। इस शरीरकी वृद्धि तथा ह्रासके नियम मनुष्योंके बनाये हुए नियमोंके बिलकुल प्रतिकूल हैं। जब मनुष्यको किसी चीजकी वृद्धि करनी होती है तो वह उसके साथ और नई चीजको जोड़ता है जिससे उसमें वृद्धि हो जाय। जैसे एक चमड़ेके बेगको बड़ा करनेके लिए उसमें टाँके लगाकर नया चमड़ा जोड़ना पड़ता है या उसी चमड़ेको खींच कर बड़ा करना पड़ता है। किन्तु मनुष्यके शरीरमें वृद्धिके नियम इसके सर्वथा प्रतिकूल हैं।

प्रत्येक प्राणीका शरीर छोटे छोटे सेलोंसे बना रहता है। ये सेल शरीरकी आन्तरिक क्रियाओंसे हर समय टूटते रहते हैं और उनके स्थानमें नये नये सेल बनकर टूटते रहते हैं। इस प्रकारसे शरीरकी वृद्धि होती रहती है। इस टूटने तथा बननेकी प्रक्रियाको धातुविपाक ( Metabolism ) कहते हैं। टूटनेकी प्रक्रिया या धातु ह्रास ( Katobolism ) का आरम्भ शरीरमें किसी प्रकारकी सक्रियताका होना होता है। जैसे यदि हम व्यायाम करें तो उस समय हमारे सेल अधिक टूटते हैं। नये सेलोंके बननेका कारण शरीरके अंगोंकी वह शक्ति होती है जो हमको प्रकृतिके द्वारा जन्मसे ही मिली होती है। टूटे हुए सेल शरीरमें शल्य पदार्थ ( Foreign Body ) का काम करते हैं और इसीलिये शरीरके अंग शीघ्रसे शीघ्र इन शल्य

पदार्थोंको निकालनेके लिए यत्न करते हैं। ये शल्य पदार्थ त्वचासे स्वेदके रूपमें, कानसे कर्णमैलके रूपमें, आँखसे कीचड़के रूपमें, नाकसे 'नाक' के रूपमें तथा अन्य अंगोंसे उनके मैलोंके रूपमें, निकलते रहते हैं। इनके अतिरिक्त यकृत, वृक्क तथा प्लीहामेंसे भी हर समय यह मलरूप विष निकलता रहता है जो हमारे खूनके साथ मिलकर उसके रंगको काला कर देता है और रक्तसे यह दूषित अंश फेफड़ोंमें जाकर ओषजन-से मिलकर बाहर निकलता रहता है। उसके साथ साथ ही हमारे अंग भोजन द्वारा प्राप्त रसको नये सेलोंमें परिवर्तित करनेकी प्रक्रियामें हर समय लगे रहते हैं जिससे उन टूटे हुए सेलोंके स्थानपर नये सेल आते रहते हैं।

ये दोनों प्रक्रियाएँ उसी समयतक ठीक होती हैं जब तक शरीरको बीच-बीचमें विश्रामका अवकाश भी मिलता रहे। यदि कोई मनुष्य सारे दिन व्यायाम ही करता रहे तो कुछ ही घण्टोंमें उसका शरीर विश्राम न मिलनेसे मृतवत् हो जायगा। इसी प्रकार यदि शरीरके अंगोंको विश्राम न मिले तो वे भी अपने कार्यको करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। अर्थात् यह विश्राम शरीरके लिए उतना ही आवश्यक है जितनी आवश्यक सक्रियता है। इस विश्राम को देनेके लिए प्रकृतिने स्वभावतः ही हमारे अन्दर निद्राकी प्रवृत्ति बनाई है। यदि कोई मनुष्य निद्रा न ले तो वह बहुत दिनोंतक अपने शरीरको कायम नहीं रख सकता है। दूसरे शब्दोंमें यदि मनुष्य विश्राम न करे तो धीरे धीरे उसका शरीर विनाशकी तरफ ही चलता चला जायगा। हृदय जो निरन्तर गति करता हुआ प्रतीत होता है, वह भी प्रत्येक संकोच और प्रसारके बीचमें कुछ सेकंडके लिये जरूर ही विश्राम की अवस्थामें रहता है।

शरीरमें होनेवाली इस बनने और बिगड़नेकी प्रक्रियाका आधार ही उपवासके सिद्धान्तका आधार है। यदि कोई मनुष्य बहुत अधिक व्यायाम करे और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होकर टूटे हुए सेलोंको मल निस्सारक अंग उतना शीघ्र बाहर न निकाल सकें जितनी जल्दी वे पैदा हो रहे हैं तो उनके अन्दर रुके रहनेसे बहुत भयंकर परिणाम पैदा हो सकते हैं। यदि मनुष्य बहुत ही जल्दी-जल्दी व्यायाम कर रहा हो तो उसका श्वास तेज तथा उथला हो जाता है, नाड़ी तीव्र हो जाती है तथा छातीमें एक सिकोड़ सी प्रतीत होती है। इसका कारण यही होता है कि "रक्त संचार में गये हुए दूषित पदार्थकी मात्रा फेफड़ोंसे निकलनेवाले मलकी अपेक्षा बहुत अधिक हो जाती है अर्थात् रक्तमें विषोंकी मात्रा निरन्तर बढ़ती जाती है" (डा० मेकेंजी)। किन्तु अब यदि व्यायाम करनेवाला थोड़ी देरके लिए विश्राम करे तो उसका शरीर फिर अपनी सामान्य अवस्थामें आ जाता है। इसका कारण यही होता है कि उस समय टूटनेकी प्रक्रिया घट जाती है और मल-निस्सारक अंग अपना काम पूरी तरहसे करते रहते हैं जिससे उनपर अधिक कार्य्य-भार न आ जानेसे वे अपने कामको शीघ्र ही समाप्त कर लेते हैं। यही प्रकृतिका नियम खान-पानके विषयमें भी समझना चाहिये। हम अपने आमाशयके अन्दर अपनी जिह्वाशक्तिमें संयम न होनेके कारण तथा सभ्यताके तकाज़ोंसे बाधित होकर भूख न होनेपर भी कुछ न कुछ भोजन कर लेना आवश्यक समझते हैं; और इसी क्रियाके निरन्तर दोहरानेका यह परिणाम होता है कि पाचन-क्रियासे उत्पन्न विषोंको मल निस्सारक अंग उतना शीघ्र नहीं निकाल सकते ज़ितना शीघ्र वे उत्पन्न होते हैं। इस कारण शरीरमें बिष रुकते जाते हैं और रसमें उनका संचार होता रहता है जिससे अनेक प्रकारके रोग शरीरमें उत्पन्न होते जाते हैं— क्षुधानाश, अजीर्ण, गुरुता, मलबंध आदि बीमारियां

उत्पन्न हो जाती हैं। इस समय यदि मनुष्य प्रकृतिके बताये हुए रास्तेपर चले अर्थात् अंगोंको कुछ कालके लिए विश्राम दे तो उसका शरीर सहजमें ही स्वस्थ अवस्थामें आ सकता है। शरीरके निस्सारक अंग इस विश्रामकी अवस्थामें नये कार्यके न आनेसे अच्छी प्रकारके पुराने रुके हुए मलको निकालते हैं और इस प्रकार उन विषोंसे उत्पन्न बीमारी भी अपने आप अच्छी हो जाती है। डा० टामस मोरिनने "फिज़िकल-कलचर" में इसके लिये अपना उदाहरण पेश करते हुए लिखा है कि "मैं जीर्ण उदर रोगसे आक्रान्त था, सब दवाइयोंसे निराश होकर जब मैंने अपनी मृत्युको निश्चित जान लिया तो उपवास प्रारम्भ किया।" वह बिलकुल स्वस्थ हो गये और उसके बाद ३६ सालतक जीते रहे। इससे यह सिद्ध है कि शरीरके अवयव ठीक ठीक प्रकारसे विश्राम मिल जानेसे बिना किसी अन्य बाह्यसाधनके भी अपनी बीमारियोंको हटा लेते हैं।

बीमारियोंको हटानेकी इस प्राकृतिक शक्तिके साथ साथ परमेश्वरने हमें एक और भी स्वाभाविक शक्ति दी है। जिस प्रकार किसी सभ्य समाजमें एक मनुष्य पर आपत्ति आनेपर अन्य मनुष्य उसकी सहायता करते हैं उसी प्रकार शरीरमें भी किसी अंगपर अधिक कार्य-भार आजाता है तो अन्य अंग उसकी सहायता करते हैं। और इसके साथ ही यदि वह मनुष्य अन्य अंगोंको इतर कार्य्योंकी तरफसे हटाकर उसी कार्यकी तरफ लगाये तो उसका वह रोग शीघ्र ही अच्छा हो जाता है। अर्थात् मनुष्यके शरीरमें इस प्रकारकी शक्ति है कि यदि उसपर किसी भी प्रकारका बाह्य प्रभाव न डाला जाय और उससे नियमित ही कार्य लिया जाय तो यह रोगोंको उत्पन्न नहीं होने देगा। इसीसे उपवासके आधारभूत सिद्धान्तोंकी उत्पत्ति होती है। वे सिद्धान्त निम्न-निर्दिष्ट हैं—

१—यदि शरीरपर किन्हीं बाह्य शक्तियोंका प्रभाव न किया जाय तो वह स्वनियामक ( Self regulative ) तथा स्वचिकित्स्य होता है।

२—तीव्र बीमारियोंकी अवस्थामें शरीरके लिये यह स्वाभाविक तथा अच्छा है कि किसी प्रकारका भोजन न लिया जाय।

३—स्थानिक बीमारी ( Local diseases ) एक विशेष अवस्था होती है जिसमें शरीरका कोई अंग विशेष उत्पन्न हुये विषोंको अपने मार्ग द्वारा नहीं निकाल सकता और जब शरीर इस प्रकारके विषोंसे युक्त हो जावे तो उस समय किसी भी प्रकारका भोजन लेना हानिकारक होता है।

### लक्षण

'लंघन' शब्दका अर्थ भोजनको त्याग देना है। 'लंघन' और 'उपवास' शब्द पर्यायवाची होनेके कारण उपवासका भी यही अर्थ लिखा जाता है इसलिए बर्नार्ड मेकफेडनने भी उपवासका निम्न लिखित लक्षण किया है 'To fast is totally to abstain from food, either liquid or solid." इसी प्रकार चार्ल्स एननडेलने भी उपवासका निम्न निर्दिष्ट लक्षण किया है "A witholding from the usual quantity of food"। किन्तु चरक भगवान्ने लंघन तथा उपवास शब्दमें भेद करके लंघनका निम्न प्रकार लक्षण किया है। "यत्किंचिल्लाघवकरं देहे तल्लङ्घनं स्मृतम्" ( सूत्र-स्थान २२ अध्याय ) और लंघनका यह विस्तृत अर्थ करके उपवासको लंघनका एक हिस्सा माना है। इसके साथ व्यायाम आदिको भी लंघनमें ही सम्मिलित कर दिया है ( २२। ११ )। इसी प्रकार वाग्भट्टने भी चरकके ही लक्षणको दुहराया है। इसलिये लंघनका यह विस्तृत अर्थ न लेकर 'भोजनको त्याग देना' ही लेना चाहिये।

उपवासकी प्राचीनता तथा धर्मके साथ सम्बन्ध

दुनियामें इस समय तक ऋग्वेद सबसे पुरानी किताब मानी गई है। उसमें ब्रह्मचारीसे गुरुकुलमें दाखिल करते समय तीन दिनका उपवास करानेका विधान है। इसी प्रकार वैदिक कालमें जितने भी व्रत धारण किये जाते थे उनमें पहिले एक दिन या अधिक दिनोंका उपवास जरूर करवाया जाता था। इसका सिद्धान्त यह था कि उपवाससे शरीरकी शुद्धि होती है और बिना शरीर शुद्ध हुये मानसिक शुद्धि नहीं हो सकती।

इसके पश्चात् मध्य कालमें आकर तो उपवासकी प्रवृत्ति बहुत अधिक बढ़ गई थी। प्रत्येक हिन्दूको एक महीनेके अन्दर २, ३, ४ दिन तो उपवास जरूर ही करना पड़ता था। उन दिनों लोगोंने उपवासका इतना अधिक महत्त्व समझा कि इसका सम्बन्ध धर्मके साथ कर दिया गया। स्मृतियोंमें प्राय: पापोंके प्रायश्चित्तके लिये छोटे या बड़े उपवासोंका ही विधान किया गया है। इसी प्रकार मध्यकालके बने हुए चिकित्साग्रन्थोंमें भी उपवासका बहुत अधिक वर्णन है। चरक-सूत्र स्थानका २२ वाँ अध्याय, तथा वाग्भट्ट-सूत्रस्थानका १४ वाँ अध्याय इसी उपवासकी उपयोगिता पर लिखे गये हैं; तथा चिकित्सा स्थानमें भी भिन्न-भिन्न रोगोंकी निवृत्तिके लिये उपवासका विधान किया गया है। सुश्रुत 'अस्लोपहरणीय अध्याय' में शल्यसे पूर्व लंघनका विधान करते हैं, जो आज कल भी उसी रूपमें प्रचलित है। इसी प्रकार मध्यकालीन अन्य चिकित्सकोंने भी इसकी उपयोगिताको स्पष्ट रूपसे माना है।

यूरोपमें सबसे प्रथम ईसासे १५०० वर्ष पूर्व ल्यूगी कोरनारोने अपनी उम्रको बढ़ानेके लिये उपवास किया। उसके बाद यूरोपका प्रसिद्ध डाक्टर फ्रायल नन्स योषापस्मारके लिये सदा उपवासका प्रयोग किया करता था। इसी प्रकार अरबका मशहूर चिकित्सक एविसीना अपने सब बीमारोंको उपवासके द्वारा ही ठीक किया करता था और रातको वह अपने बीमारोंके चारों तरफ चक्कर काटा करता था कि कहीं कोई बीमार कुछ खा न ले।

आजकल तो पाश्चात्य तथा पौरस्त्य सभी डाक्टर चिकित्सामें उपवासका कुछ न कुछ प्रयोग करने लगे हैं। अमेरिकाका मशहूर डाक्टर बर्नार्ड मेकफेडन ४० सालसे अपने बीमारोंको उपवासके द्वारा ठीक करता आ रहा है और उसने लोगोंके सामने इसकी महत्ताको बहुत विस्तृत कर दिया है। डा० एडवर्ड डेवे अबतक सैकड़ों मरीजोंको उपवासके द्वारा ठीक कर चुके हैं। इसी प्रकार डा० एलबर्ट हिलर आदि अनेक डाक्टरोंके नाम पेश किये जा सकते हैं।

इसके साथ ही उपवासको धार्मिक महत्त्व भी इतना अधिक दिया गया है कि स्वाभाविक तौर पर ही इसका अधिक प्रचार सामान्य जनतामें हो गया है। हिन्दुओंके सभी धार्मिक ग्रन्थोंमें इसकी महत्ताको स्वीकृत किया गया है। वेदोंसे लेकर सूत्रोंतक सभी धर्मग्रन्थोंमें इसको महत्त्व दिया गया है। स्मृतियोंमें तो चान्द्रायण, आदि अनेक उपवास-सम्बन्धी व्रतों तथा एकादशी, चतुर्दशी, शिवरात्री आदिमें उपवास करनेका विधान बड़े स्पष्ट रूपमें है। बाइबिलमें अनेक जगह उपवास करनेका विधान है। रोमन-कैथोलिक चर्चने उपवासमें विश्वास प्रकट किया है और बहुतसे लोगोंको इसके लिये प्रेरणा की है और इसीलिए कैलेण्डर छपवाते समय त्योहारोंके साथ-साथ उपवासके दिनोंको भी छपवाते हैं; तथा जान काल्विन और जान वेज़ली, जो मशहूर ईसाई उपदेशक हुये हैं; उपवास के महत्त्वको आम लोगों तथा उपदेशकोंके लिये स्वीकृत करते हैं। मुसलमानोंके तो प्राय: सभी त्योहार उपवासके लिये होते हैं और रमजानके महीनेमें तो उन्हें ३० दिन तक उपवास करनेकी आज्ञा है।

जैनियोंके धर्मग्रन्थ "महावीरचरितम्" में छोटे उपवासोंके साथ-साथ ही बहुकालव्यापी उपवासोंका स्पष्ट विधान है। बौद्ध धर्मके प्रवर्त्तक बुद्ध भगवान्ने स्वयं कई महीनोंतक उपवासके द्वारा अपने शरीरको शुद्ध करके धर्मका रहस्य पाया था; और इसीलिए 'धम्मपद' में जगह-जगह वे अपने भिक्षुओंको उपवासके लिये प्रेरित करते हैं। इस प्रकार प्रायः सभी धर्मोंमें उपवासकी महत्ताको माना गया है।

अधिक भोजनसे हानियां तथा उपवासकी आवश्यकता

आम लोगोंकी यह धारणा है कि यदि मनुष्य भोजन नहीं करेगा तो उसका शरीर धीरे-धीरे क्षीण होकर उसकी मृत्यु हो जायगी और इस विश्वासको दृढ करनेमें चिकित्सक लोग भी बहुत सहायता देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जब कोई मनुष्य बीमार होता है तो वह शरीरके क्षीण हो जानेके भयसे अपने भोजनको पूर्ववत् जारी रखता है और उसकी पाचकाग्नि कमजोर होनेके कारण उसे भोजन हजम करनेके लिये दवाइयोंकी सहायता लेनी पड़ती है। बिना दवाइयोंके वह अपने भोजनको हजम नहीं कर सकता है। इस प्रकार दवाइयोंपर निर्भर रहनेके कारण उसकी स्वाभाविक पाचकाग्नि बिलकुल नष्ट हो जाती है। इस अवस्थाके आनेके बाद वह कितना ही अच्छा भोजन क्यों न करे, वह उसके शरीरमें पचता नहीं है और बिना पचे ही आँतोंके द्वारा निकल जाता है। इससे मनुष्यकी वृद्धि रुक जाती है और सब कुछ खाने पीनेपर भी उसका शरीर क्षीण ही होता जाता है। इसका कारण यह होता है कि अपचित अपक्व भोजन हमारे शरीरमें जज़्ब नहीं होता है। और उसके जज़्ब न होनेके कारण शरीरकी वृद्धि भी नहीं होती है। अर्थात् भोजनका शरीरमें पहुंच जाना ही आवश्यक नहीं है किन्तु उसके साथ उसका शरीरमें जज़्ब होना भी जरूरी है।

किन्तु कुछ लोग शरीरमें भोजनकी ही प्रधानता मानते हैं। डा० लाऊसन अपने एक लेखमें कहता है कि 'यदि कोई मनुष्य आधे पेट भोजन करे तो उसका भार निरन्तर घटता जायगा'। किन्तु यह बात ठीक नहीं है। आधा पेट भोजन करना मनुष्यके लिये पर्याप्त होता है। प्रायः यह देखा गया है कि जो मनुष्य अधिक भोजन करते हैं, उनका भार कुछ दिनोंके लिये बढता तो जरूर है, किन्तु कुछ समय बाद उनकी अग्नि मन्द होकर उनकी खुराक अपने आप कम हो जाती है और उस समय भरपेट खाते रहनेपर भी उनका भार बढ़ता नहीं, किन्तु धीरे-धीरे घटता ही जाता है।

मनुष्योंकी इसी गलत धारणाका यह परिणाम है कि आजकल सभ्य समाजसे लेकर गरीब मनुष्यों तकमें भी खानेका रोग हो गया है। खानेके रोगका यह अभिप्राय है कि मनुष्यको चाहे भूख हो या न हो जब उसका खानेका समय होता है या उसकी भोजनकी घंटी बजती है, वह अपने पेटकी आज्ञा बिना लिये ही खानेको तैयार हो जाता है। सभ्य समाजमें तो यह रोग इतने अधिक भयंकर रूपमें फैला है कि यदि वे दिनमें ४-५ बार भोजन नहीं कर लेते, तो उन्हें सन्तोष ही नहीं होता है। इस प्रकार निरन्तर खानेका यह परिणाम होता है कि उनकी पाचकाग्निके निर्बल हो जानेसे बिना पचा हुआ भोजन जब आंतोंमें से गुजरता है तो उनमेंसे विषद्रव्य निकल-निकल कर निरन्तर रक्तमें जाते रहते हैं और इससे रक्त दूषित हो जाता है। यह दूषित हुआ रक्त शरीरके भिन्न-भिन्न भागोंमें संचार करता है और उससे भिन्न भिन्न अंगोंमें बीमारियां हो जाती हैं। निरन्तर अधिक भोजन खानेसे जो दुष्प्रभाव सबसे पहले हमको नजर आता है, वह मलबन्ध है। मलबन्ध आज-कलकी सभ्यताका एक दुःशाप है जिससे लगभग ९० % मनुष्य ग्रस्त रहते हैं। इसलिए एक डाक्टरने कहा है 'Civili-

sation and Constipation both go together' । मलबन्ध होनेके बाद अन्य रोगोंको पैदा होनेमें देर नहीं लगती है। मलके अन्दर रुके रहनेके कारण वह सड़ता रहता है और उससे अतिसार, प्रवाहिका आदि रोग उत्पन्न होते हैं। आमाशय पर ज्यादा कार्य होनेसे यकृत ( Liver ) को भी ज्यादा कार्य करना पड़ता है और धीरे-धीरे उसकी शक्ति कम होने लगती है। इससे पित्त रस कम निकलता है जिसके परिणाम-स्वरूप अजीर्ण, अम्लपित्त आदि बीमारियां हो जाती हैं तथा इसके साथ ही यकृत-वृद्धि और उसका आरोध हो जाता है। अन्त्र-रसके रक्तके साथ शरीरके अन्य अंगोंमें जानेसे आमवात, गठिया, अदि बीमारियां भी हो जाती हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारके ज्वरोंका आदि मूल इस पाचकाग्निका खराब होना ही होता है। इसलिए चक्रपाणिने लिखा है कि—"आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधापयन्। विदधाति ज्वरं दोषः" इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पाचकाग्निके दूषित हो जानेसे कितनी बीमारियां पैदा हो जाती हैं। इतनी अधिक बीमारियोंके भोजनसे उत्पन्न होनेके कारण ही डाक्टर डेवे एक जगह लिखते हैं—"it might safaly be affirmed that immeasurable more people die as a result of over-feeding than are carried of by famine." इसी प्रकार डा० सिडनी ब्रेड अपनी "Comprehensive Guide" में लिखते हैं 'The majority persons live on about half of what they, eat." इसी प्रकार "Newyork Herald" अमेरिका के विषयमें लिखता है "१९३२ का साल स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उत्तम साल रहा। इस वर्ष बेकारीके कारण करोड़ों अमेरिकनोंको या तो भूखा रहना या बहुत ही साधारण भोजन करना पड़ा"। इन तीन सम्मतियोंसे यह स्पष्ट है कि (i) अधिक भोजन खानेसे अधिक बीमारियां पैदा होती हैं और उससे मृत्यु संख्या बढ़ती है। (ii) मनुष्य साधारणतया जितना खाते हैं उससे आधा भी खायें तो वे बिलकुल स्वस्थ रह सकते हैं। (iii) ज्यादा खानेकी अपेक्षा न खाना ज्यादा अच्छा है। क्योंकि इससे स्वास्थ्यपर कम बुरा प्रभाव पड़ता है।

इन शारीरिक बीमारियोंके साथ ही मनुष्यके मस्तिष्क पर भी इस अधिक खानेका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्कका पोषण करने वाला रक्त जिस समय दूषित हो जाता है उस समय शरीरकी सारी शक्तियां रक्तमेंसे इस दूषित अंशको निकालनेमें लग जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्यकी मानसिक वृद्धियां रुक जाती हैं और मनुष्य कूढ़मग्ज़ हो जाता है। शक्ति, उत्साह, धैर्य्य, सहनशीलता आदि गुणोंका भी नाश होता है तथा सिर दर्द, चक्कर आना आदि लक्षण सिरमें हर समय बने रहते हैं। इस प्रकार अधिक-भोजनसे निम्न चार प्रभाव हमारे शरीर में होते हैं—

(i) अधिक भोजनसे रक्त दूषित तथा विषयुक्त हो जाता है, जिससे मनुष्य के शरीरमें रोगोंके लिए ग्राहक प्रवृत्ति ( Susceptibility ) हो जाती है।

(ii) शरीरमें पहलेसे ही जो नया या पुराना रोग होता है उसकी वृद्धि हो जाती है।

(iii) हमारे स्नायु-संस्थान पर बहुत जोर पड़ता है और उसकी सारी शक्ति विषको बाहर निकालनेमें लग जाती है।

(iv) अनपच भोजनसे जो विष हमारे शरीर तथा मस्तिष्कमें जाता है उससे मनुष्यकी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियोंका शीघ्र ही ह्रास होने लगता है।

समयासमय

आमतौर पर लोगोंको नित्य प्रति नये-नये स्वादिष्ट भोजनोंके खानेपर भी यह शिकायत बनी रहती है कि उन्हें भोजनमें स्वाद नहीं आता। बड़ेसे बड़े होटलों

में चले जाइये और वहां स्वादुसे स्वादु भोजनोंके खानेवालोंको भी आप यही कहते पायेंगे। इसका कारण यह है कि मनुष्यकी वास्तविक भूखका तो नाश हो चुका होता है किन्तु वह अपनी आदतके कारण निरन्तर खाता ही रहता है। इसलिए प्रकृतिने मनुष्यको सूचित करनेके लिए यह बड़ा संकेत बनाया है। जिस समय भी कोई मनुष्य यह अनुभव करे कि उसको साधारण भोजनमें स्वाद नहीं आ रहा है और उसको भूख उत्तेजित करनेके लिये स्वादु भोजनोंकी आवश्यकता पड़ रही है तो उसको समझ लेना चाहिए कि उसको वास्तविक भूख नहीं है; और यह वास्तविक भूखका न रहना ही प्रकृतिकी तरफसे उपवास करनेका संकेत है। इसलिए ऐसी अवस्थाके आते ही उपवास कर देना चाहिये और तबतक उसे जारी रखना चाहिए जबतक उसकी वास्तविक भूख लौट न आये।

कई बार प्रकृति-प्रदत्त इस संकेतको देखकर भी मनुष्य प्रकृति द्वारा बताये हुए सरल रास्तेका अनुकरण न करके डाक्टरोंकी शरण लेता है और डाक्टरों द्वारा प्राप्त औषधरूप विषको वह कुछ दिनों तक अपने अन्दर डालता रहता है और उनके द्वारा अपने शरीरके कार्यको चलाता है। किन्तु इन औषधियोंसे मनुष्यका शरीर और कमजोर होता जाता है और वह बहुतसी बीमारियोंका आश्रय बन जाता है। ऐसी अवस्थामें जब कि उसका शरीर दवाइयोंके द्वारा भी उत्तेजित नहीं होता, उसको अपनी गलतियोंका स्मरण आता है। यदि इस समय भी वह प्रकृतिके मार्गपर लौट आये अर्थात् अपने पाचक अंगोंको कुछ कालके लिये विश्राम दे तो प्रकृति उसके पिछले पापोंको भूलकर माताकी तरह उसको अपनी गोदमें आश्रय देती और उपवासरूप अपने मातृमय हाथसे धीरे-धीरे उसकी सारी बीमारीको हर लेती है। अर्थात् जबतक मनुष्यके अन्दर शक्ति शेष है तबतक भी यदि उपवास कर दिया जाय तो अवश्य फायदा हो जाता है।

किन्तु इसके साथ ही इस बातको भी ध्यानमें रखना चाहिये कि उपवास अपने आप कोई नई शक्ति देनेवाली क्रिया नहीं है किन्तु उसके द्वारा शरीरमें स्थित विष बाहर निकलते हैं जिससे शरीर अपने कार्यको ठीक प्रकार करने लगता है। इसलिये उपवास का प्रयोग किसी बीमारी या अस्वस्थताके प्रतीत होने पर ही करना चाहिये। किन्तु जिन मनुष्योंकी पाचकाग्नि ठीक प्रकार काम करती हो, यकृत ठीक प्रकार कार्य्य करता हो तथा फेफड़े आदि स्वस्थ और मजबूत हों उन लोगोंको उपवास नहीं करना चाहिये। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी बीमारियां भी मानी गई हैं जिनमें उपवासका प्रयोग करनेसे लाभके बदले हानि ही होती है। इसके विषयमें मेकफेडन लिखता है—"The only cases where we do not advccate fasts are of tuberculosis and catarrhal complaints where the vitality is too low to risk the loss of any serious amount of tissue." इसी प्रकार चरक भगवान ज्वरके प्रारम्भमें लंघनका निर्देश करते हुए कहते हैं कि जिन ज्वरोंमें शरीरका काम काफी हो चुका हो जैसे वातिक, तथा क्रोध शोक आदिसे उत्पन्न ज्वरोंमें, उपवासका प्रयोग नहीं करना चाहिए, अर्थात् जिस समय शरीर क्षयकी अवस्थामें जा रहा हो उस समय उपवास नहीं करना चाहिये।

### शरीर पर प्रभाव (साधारण)

१—भोजन-प्रणाली संस्थान—जिस प्रकार अत्यधिक भोजनका सबसे प्रथम दुष्प्रभाव आमाशय पर दिखाई पड़ता है उसी प्रकार उपवासका भी प्रभाव सबसे प्रथम आमाशय पर दिखाई पड़ता है। उपवास करनेके दूसरे या तीसरे दिन बड़ी जोरकी भूख प्रतीत होती है

जिसका कारण यह होता है कि हमारी खानेकी आदत हमको उस समय सताती है। और इससे बड़ी बेचैनी प्रतीत होती है। जब यह आन्तरिक भूख सताना बन्द कर देती है तो शरीरसे विषोंका निकलना प्रारम्भ होता है और यह अवस्था विषोंकी मात्राके अनुसार ३ या ४ दिन तक होती है; कभी-कभी १५ दिनतक भी देखी जाती है। विषोंके निकलनेके कारण जिह्वा मैली, श्वास दुर्गन्धयुक्त तथा उसकी भूख बिलकुल नष्ट हो जाती है। शरीरकी स्वोपचार शक्ति इस समयमें कार्य कर रही होती है। विषोंके कम होनेके कारण इस समय ही रोग भी घटते हैं, विषोंके नष्ट हो जानेके बाद पेट हलका प्रतीत होने लगता है, और वास्तविक भूख फिर प्रतीत होने लगती है। जिह्वा साफ़ हो जाती है, शरीर हलका प्रतीत होने लगता है यद्यपि उसके अन्दर शारीरिक तथा मानसिक काम करनेकी शक्ति कम होती है।

आंतों पर भी देखने लायक प्रभाव होता है। मलके अन्दर सड़नेसे आमवात, अतिसार, प्रवाहिका आदि बीमारियां उत्पन्न हो गई थीं, उनमें परिवर्तन होने लगता है। आंतोंमें नया अन्त्र-रस न आनेके कारण उसके सेलोंको काम कम करना पड़ता है जिससे उनकी लुप्त हुई शक्ति जागृत हो जाती है। आँतें मलका पाक करके धीरे-धीरे निकालने लगती हैं, तथा आंतोंमें उत्पन्न हुई हवा शोषित हो जाती है, और आंतोंमें मलको ढकेलनेकी शक्ति कम होनेके कारण कुछ दिनों बाद वह अपने आप नहीं निकल सकता है और उसको एनीमाके द्वारा निकालना पड़ता है। जिस समय सारा मल निकल जाता है उसके बाद शरीरके स्नायुका नाश होने लगता है और शरीरका भार बहुत अधिक घट जाता है।

१. मल त्याग—पहिले मलकी मात्रा तथा उसकी नियामकता पर प्रभाव होता है। आंतोंमें बहुत दिन तक मलके रुके रहनेसे मल कठोर हो जाता और उसके निकलनेमें कठिनता होती है। कई बार इसके निकलनेसे बहुत दर्द तथा रक्तस्राव भी हो जाता है। इसलिए एनीमाका प्रयोग अवश्य करना चाहिये। यदि उपवाससे पहिले दिन साधारण भोजन किया गया हो तो प्रथम दिन और दिनोंके समान ही मल आता है। किन्तु २-३ दिन बाद यह रुक जाता है और यदि न निकाला जाय तो खराब परिणाम पैदा कर सकता है।

२. रुधिर-संस्थान—तापमान—भोजन शरीरमें पचकर तापमानको पैदा करता है। जिस प्रकार इंजनमें कोयले की जरूरत होती है उसी प्रकार शरीर रूपी इंजनको ठीक-ठीक संचलित रखनेके लिये ईंधनकी जरूरत होती है, यह भोजन ही हमारे शरीरमें ईंधनका काम करता है और शरीरके तापमानको स्थिर रखता है। इसलिये जब हम भोजन नहीं करते तो हमारा तापमान कम हो जाना चाहिये क्योंकि तापका आधार भोजन ही अनुपस्थित होता है। किन्तु डा० बेनेडिक्ट बहुत अन्वेषणोंके बाद इसके बिलकुल विपरीत परिणाम पर पहुंचे हैं कि "उपवास शुरू करनेके ४ दिन बाद तक भी शरीरके तापमानमें कोई अन्तर नहीं आता है और उसके बाद भी तापमान कभी-कभी उपवासकी वृद्धिके साथ बढ़ता जाता है" इस प्रकार प्रकृतिके नियमोंके विरुद्ध इस प्रक्रिया का होना बड़े ही आश्चर्यकी बात है। इसलिये मैकफेडन कहता है—

"How such facts could be if we derived our bodily heat from the food consumed as is usually taught is a mystery."

नाड़ी—भिन्न भिन्न प्रकारके परिवर्तन देखे जाते हैं इसलिये चिकित्सक लोग अभी तक ठीक परिणाम पर नहीं पहुंच पाये हैं। कुछ अवस्थाओंमें यह साधारण रहती है किन्तु कुछ अवस्थामें इसकी गति मन्द हो जाती है। लगभग ६५ प्रतिशत आदमियोंमें नाड़ी साधारण देखी

गई है; और ३५%५ प्रतिशतमें कम देखी गई है, तथा किसी-किसीमें बढ़ी हुई भी देखी जाती है।

रक्त—उपवासके समय रक्तमें बहुत भिन्न-भिन्न परिवर्तन देखे गये हैं। डा० मूलर तथा सिनेटरने परीक्षा करके देखा है कि रक्तमें रक्ताणुओंकी संख्या बढ़ जाती है। किन्तु इससे भी आगे बढ़ कर डा० टौसिज्कने उपवासके समय होने वाले रक्तमें निम्न परिवर्तन बताये हैं—

१—कुछ समय तक रक्ताणुओंकी संख्या घटनेके बाद बढ़नी शुरू हो जाती है।

२—उपवासकी वृद्धिके साथ-साथ श्वेताणुओंकी संख्या कम होती जाती है।

३—एक न्यूक्लियसवाले श्वेताणुओंकी संख्या घट जाती है।

४—इओसिनोफिलेस तथा पोलीन्यूक्लियरकी संख्या बढ़ जाती है।

इन प्रभावोंके अतिरिक्त आँतोंमेंसे जो अन्त्ररस रक्तमें चला गया था वह भी धीरे-धीरे पाकको प्राप्त हो मलके द्वारा निकलने लगता है। इसलिये इस अन्त्ररससे उत्पन्न आमवात आदि बीमारियां अच्छी हो जाती हैं। श्री एमबोज़ टेलरने ६० वर्षकी आयुमें आमवातके लिये उपवास किया और वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। तथा आंतोंमें मलके होनेसे रक्तका दबाव बढ़ जाया करता है; पर वह इस समय आंतोंके साफ़ होनेसे घटने लगता है और इस प्रकार हृदयकी अतिवृद्धि कम हो जाती है, तथा हृदय पर जो चर्बी उत्पन्न हो गई थी वह ईंधन बनकर जल जाती है और इस प्रकार हृदयके फेल होनेका डर कम हो जाता है।

३. यकृत—अधिक भोजन खानेसे साधारणतया यकृतकी वृद्धि या आरोध हो जाता है। इन दोनों अवस्थाओंका यह कारण होता है कि यकृतको ज्यादा कार्य करना पड़ता है। उपवासके समय यकृतके सेल अधिक मात्रामें उत्तेजित होते हैं जिससे पित्त अधिक निकलती है। आंतोंमें स्थित मलका ठीक परिपाक होने लगता है। मलका रंग मटियाला पीला सा हो जाता है और उसका आरोध दूर हो जाता है। हेमिल्टन-ब्रूकने यकृत-आरोधके लिये उपवास किया और ३० दिनोंमें वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। पित्तके अधिक निकलनेके कारण ही अजीर्ण, मलबन्ध अतिसार आदि बीमारियोंको उपवासके द्वारा हटाया जा सकता है।

४. मूत्र-संस्थान—आमाशयमें उत्पन्न हुए विषद्रव्य रक्त द्वारा शरीरमें फैलकर फिर वृक्कों द्वारा बाहर निकलते हैं। इनमेंसे सबसे मुख्य यूरिया होता है। यदि यह शरीरसे बाहर न निकले तो बहुत भयंकर लक्षण पैदा हो जाते हैं। डा० एलेकज़ेण्डर हेग आदि तो सिर्फ इसकी निकलनेकी मात्रा से ही शरीर की वृद्धि तथा ह्रासका अनुपात लगाते हैं। जिस समय रक्तमें यूरियाकी मात्रा अधिक हो जाती है, तो वृक्कको कुछ आराम मिलता है क्योंकि नये विषद्रव्य पैदा होकर शरीरमें नहीं आते होते हैं। वृक्क यूरियाको अधिक मात्रामें शरीरसे निकालने लगते हैं जब तक कि उसकी अनुचित मात्रा नहीं निकल जाती है। इसके बाद धीरे-धीरे यूरियाकी मात्रा कम होने लगती है और इससे मालूम पड़ता है कि अब शरीरकी शक्ति क्षीण होने लग गई है। किन्तु इस क्षीणताकी अवस्थाके आनेसे पहिले कई बार स्फूर्ति प्रतीत होती है और कुछ समयके लिये यूरियाकी मात्रा ज्यादा निकलती है। इसके कारणके विषयमें डा० हेग लिखते हैं—"I believe that the body has begun to feed on its own tissue"

अर्थात् शरीरमें पाचक रस इस समय स्नायुओंके नाशमें लग जाते हैं और उत्पन्न यूरिया मूत्रमार्ग द्वारा निकलने लगता है।

५. मूत्र—यदि उपवासके दिनोंमें पानीका प्रयोग न किया जाय तो मूत्रकी मात्रा साधारणतया घट जाती है। यदि पानीका प्रयोग किया जाय तो मूत्रकी मात्रा साधारणके समान या उससे कुछ ही कम होती है। किन्तु प्रथम दिन साधारण अवस्थाके समान ही मात्रा होती है। मूत्रकी प्रति-क्रिया आम्लिक होती है। घनत्व १०१५ से १०२५ तक होता है। मूत्रमें ठोस पदार्थोंकी मात्रा ४० ग्राम प्रति दिनसे अधिक नहीं होती।

६. त्वचा—शरीरमें त्वचाके मुख्य तीन काम हैं। शरीरकी रक्षा करना, संवेदनाओंको पहुंचाना तथा विषोंको बाहर निकालना। फेफड़ोंके द्वारा जितना विष शरीरसे बाहर निकालता है उसके समान ही त्वचासे भी विष बाहर निकलता है। जब अत्यधिक भोजन करनेसे त्वचाके नीचे चर्बीकी मात्रा बहुत इकट्ठी हो जाती है तो त्वचाके पसीना निकालने वाले छिद्र बन्द हो जाते हैं और पसीनेके द्वारा यूरिया आदि विष बाहर नहीं निकलने पाते हैं। उपवास करनेसे त्वचाके नीचे स्थित श्रम-बिन्दु-ग्रन्थियाँ अपने कार्यको फिरसे शुरू करती हैं और उनसे पसीना निकलना फिर प्रारम्भ हो जाता है, जिससे कि यूरिया बहुत अधिक मात्रामें बाहर निकलती है और त्वचासे दुर्गन्ध बहुत अधिक आती है। संचित चर्बी शरीरमें ईंधनका काम करती है जिससे कि पसीना-नलिकायें खुल जाती हैं। पसीना खूब आनेसे त्वचा नरम तथा चिकनी प्रतीत होने लगती है, और इस प्रकार पसीनेके अन्दर रुकनेसे उत्पन्न होने वाली बीमारियोंसे मनुष्य बच जाता है।

७. स्नायु-संस्थान—सबसे मुख्य केन्द्र शरीरमें स्नायु-संस्थान है। इसमें किसी भी प्रकारका दोष हो जानेसे सारे शरीरमें कुछ न कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है। इसीको आयुर्वेदमें वातके नामसे सम्बोधित किया गया है और माना गया है कि वातके दूषित होनेसे ही सब बीमारियोंकी उत्पत्ति होती है ( वागभट्ट १६-८५ सूत्र-स्थान )। इसका पोषण रक्तके द्वारा होता है; इसलिये रक्तके दूषित हो जाने पर सबसे बुरा प्रभाव मनुष्यकी मानसिक शक्तियोंका ह्रास होना होता है। मनुष्य मानसिक कामों, पढ़ने आदिमें अपने मनको नहीं लगा सकता है। उसमें धैर्य्य, तेज आदि गुण नष्ट होने लगते हैं। यह पहिले ही दिखाया जा चुका है कि उपवास करनेसे मनुष्यका रक्त शुद्ध होता है जिससे कि मस्तिष्क परसे विषोंका प्रभाव हट जाता है और उसकी मानसिक शक्तियोंकी वृद्धि होती है। इसलिये स्नायु संस्थानसे उत्पन्न बीमारियां भी उपवास द्वारा अच्छी हो जाती हैं। कैलिफोर्नियाकी श्रीमती ई०एच० फर्रारने लकवाके लिये उपवास किया और स्वस्थ हो गईं। इसी प्रकार एडोल्फ क्राइस बर्नर्डने न्यूराथिनिया ( वातिक दोष ) के लिये उपवास किया और स्वस्थ हो गया। अर्थात् ज्यों-ज्यों मनुष्यके अन्दरसे विष निकलते जाते हैं त्यों-त्यों उसका मस्तिष्क स्वस्थ होता जाता है।

८. भार ( Weight )—यदि कोई स्वस्थ आदमी उपवास करे तो उसके भारमें १, २ दिन तक कोई विशेष अन्तर नहीं आता है किन्तु यदि कोई मोटा मनुष्य उपवास करे तो २-३ दिन बाद उसके वजनमें ५ पौंडकी कमी आ जाती है। और इसके बाद प्रति दिन १ पौंड उसका भार कम होता जाता है। यदि साधारण बीमारीमें उपवास किया गया हो तो प्रतिदिन १ पौंड वजन कम होता है।

९. श्वास संस्थान—इसमें भिन्न-भिन्न प्रकारके परिवर्त्तन देखे जाते हैं, इसी लिये अभी तक कोई स्थिर परिणाम नहीं माना गया है, किन्तु जो परिवर्त्तन देखे जाते हैं उनमें बहुत कम अन्तर होता है। इसलिये अभी तक यह कहना मुश्किल है कि श्वास प्रश्वासकी गतिमें क्या परिवर्तन होते हैं।

श्वास—पहिले २-३ दिन श्वास बहुत ही दुर्गन्ध-युक्त हो जाता है। जिससे मालूम पड़ता है कि इस समय शरीरसे विष बहुत अधिक मात्रामें निकल रहे हैं। किन्तु ५-६ दिन बाद श्वास दुर्गन्ध-रहित हो जाता है और इससे मालूम पड़ता है कि शरीर स्वस्थ हो गया है।

असाधारण प्रभाव तथा उपचार

शरीर पर उपवासका क्या प्रभाव पड़ता है यह देखा जा चुका है किन्तु कई बार ठीक ठीक उपवास करते रहने पर भी कई भयंकर लक्षण देखे जाते हैं जिनसे घबराकर डाक्टर या रोगी उपवासको तोड़ देते हैं और इस प्रकार बीचमें ही उपवासको खतम करनेसे उनकी तकलीफ और भी बढ़ जाती है।

१. मूर्च्छा ( Fainting )—इसका कारण सिरमें पूर्णतया रक्तका न जाना होता है। इसको हटानेके लिये बीमारको सीधा लिटा कर उसकी टाँगोंको कुछ ऊँचा कर देना चाहिये। यदि ऐसी जगह बैठा हो कि उसको लिटाया न जा सकता हो तो उसके सिरको घुटनोंमें झुका देना चाहिये जिससे सिरमें रक्त ज्यादा जा सके। खड़ा कभी भी नहीं करना चाहिये नहीं तो मृत्यु हो जाती है।

२. चक्कर आना ( Dizziness )--इसका कारण तथा चिकित्सा मूर्च्छाके समान ही है। किन्तु इसके विपरीत कई बार यह रक्तकी अधिकताके सिरमें आ जानेसे भी हो जाती है, ऐसी हालतमें सिरको ऊँचा रखना चाहिये। विश्राम दें तथा खुली हवा आने दें।

३. मूत्ररोध ( Retension of urine )—यदि उपवासके दिनोंमें पानी तो काफी पिलाया जाय किन्तु मूत्राशयको खाली न किया जाय तो प्रायः मूत्ररोध हो जाता है। ठण्डा सिट्ज़ बाथ या गरम और ठण्डे स्प्रे पेटके निचले हिस्से पर करनेसे भी प्रायः लाभ होता है।

४. अतिसार—बहुत कम उत्पन्न होता है किन्तु कभी-कभी पाया जाता है। साधारण अवस्थाके अतिसारके समान ही चिकित्सा करनी चाहिये।

५. सिर दर्द ( Headaches )—प्रायः उपवासके शुरूके दिनोंमें होता है। और कुछ समय बाद अपने आप ही हट जाता है।

६. हृदयमें दर्द – यह आमाशयमें मैलके उत्पन्न हो जाने तथा अन्य आमाशय सम्बन्धी बीमारियोंसे उत्पन्न होता है।

७. नाड़ीका मन्द होना ( Abnormally slow pulse. )—कई बार यह अवस्था हो जाती है किन्तु खतरनाक नहीं है। गरम स्नान करने तथा कुछ व्यायाम करनेसे ठीक हो जाती है। मालिशसे भी फायदा होता है।

८. नाड़ीका तेज होना ( Abnormally rapid pulse ) – लम्बे उपवास करते समय यह अवस्था हो जाती है और बहुत खतरनाक लक्षण होता है। इसके हटानेके लिये शीघ्र ही उपचार करना चाहिये। डा० किल्लोग ऐसी अवस्थामें ठण्डे स्नानके लिये लिखते हैं, किन्तु कुछ लोगोंका कहना है कि इससे हृदय उत्तेजित होता है; इसलिये इसे नहीं करना चाहिये। डा० केरिंगटन ऐसी अवस्थामें गरम स्नानके लिये लिखते हैं। पानी बहुत गरम न हो किन्तु शरीरके तापमानके बराबर हो। पेटपर ठण्डी गद्दी रखें परन्तु बहुत ठण्डी न हो। सिरको ठण्डा रक्खें तथा पावोंको गरम रखना चाहिये। शुद्ध वायु खूब दें।

९. वमन—यह सबसे खतरनाक लक्षण है। जितना गरम पानी रोगी पी सके देना चाहिये, जिससे कि आमाशयमेंसे उत्तेजक पदार्थ निकल जावे। यदि इससे फायदा न हो तो गरम तथा ठण्डे स्नान कराये। थोड़ी ग्लिसरीन पानीमें मिलाकर पिला देनी चाहिये। इससे बहुत फायदा होता है।

साधारण उपचार

साधारणतया स्वस्थ आदमीको उपवासके समय किसी भी विशेष उपचारकी जरूरत नहीं होती है परन्तु यदि मनुष्यका शरीर कमजोर हो या किसी पुरानी बीमारीसे ग्रस्त हो तो उपवासके समय प्राकृतिक उपचारोंका सहारा लेना ही पड़ता है। इनमें सबसे मुख्य एनीमा है। उपवास कालमें, क्योंकि आंतोंमें मलका पाक उसी तरह होता रहता है, किन्तु आंतोंके क्षीण हो जानेसे उनमें मलको निकालनेकी शक्ति नहीं होती है, जिससे मल अन्दर ही रुका रहता और बुरे लक्षण पैदा कर सकता है, इसीलिये प्रतिदिन सायंकालके समय, एनीमा तो जरूर ले लेना चाहिए। इसी प्रकार त्वचासे भी मलोंके निकलते रहनेके कारण तथा पसीनेके आनेके कारण उसकी सफाईकी अधिक जरूरत होती है, नहीं तो उपवासका फायदा कम होता है।

इसलिए प्रतिदिन प्रातःकाल ठण्डे जल और यदि मनुष्य कमजोर हो तो गरम जलसे स्नान करना चाहिए। इसके साथ-साथ ही विषोंको अच्छी प्रकार बाहर निकालनेके लिए तथा शरीरमें रक्तका संचार अच्छी प्रकार होते रहनेके लिए पानी भी खूब मात्रामें पीना चाहिए। नहीं तो कई बार दुर्लक्षण पैदा हो जाते हैं। प्राकृतिक उपचारोंके अतिरिक्त दवाई आदिका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए।

समाप्ति

उपवास समाप्त कराते समय मुख्यतः दो बातोंका स्मरण रखना चाहिये—१ उपवासका पूर्ण हो जाना, २, उपवासके बाद भोजन प्रारम्भ करना।

१—उपवासकी पूर्णताका हो जाना—इसकी अवस्थाको जानना मुश्किल नहीं होता है। मुख्य लक्षण निम्न हैं—

(क) तापमान—जो कि पहिले नार्मलसे कम या नार्मलसे ऊपर था, वह नार्मल हो जाता और स्थिर हो जाता है

(ख) जिह्वा—जिसपर पहिले मैल जमी रहती थी अब बिलकुल स्वच्छ हो जाती है।

(ग) नाड़ी—जो कि उपवासके समय मन्द या तेज होती है, अब अपनी ठीक अवस्थामें आ जाती है।

(घ) श्वास—जो कि पहिले दुर्गन्धित था अब दुर्गन्धरहित तथा मीठा हो जाता है।

(ङ) त्वचा—रूक्षके स्थानपर अब नरम तथा चिकनी हो जाती है।

(च) भूख—वास्तविक भूख प्रतीत होने लगती है।

इन सब लक्षणोंका एक साथ ही हो जाना जरूरी नहीं होता है। कई बार जिह्वा मैली रहती है किन्तु अन्य लक्षण पूर्ण हो जाते हैं, कई बार नाड़ी बन्द तथा अन्य लक्षण पूर्ण हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें वास्तविक भूखका पैदा होना ही मुख्य लक्षण है। यदि अन्य सब लक्षण उपस्थित हों किन्तु वास्तविक भूख न उत्पन्न हुई हो तो उपवासको नहीं तोड़ना चाहिए। इसकी पहिचान यह होती है कि गलेमें एक प्रकारकी भूखकी संवेदना प्रतीत होती है, वहां स्राव ज्यादा निकलता है और मनुष्यको किसी विशेष चीजके खानेकी इच्छा न होकर यह प्रतीत होता है कि सूखी रोटीसे भी उसकी क्षुधाकी निवृत्ति हो सकती है।

तृतीय दिन—इस दिन भी रोगीकी बहुत देखभाल रखनी चाहिए। भोजन थोड़ा हो और बहुत चीजें मिला कर नहीं खानी चाहिए। इस दिन एक गिलास दूध तथा आधी डबल रोटीका १ दिनमें प्रयोग कर सकते हैं। यदि मनुष्य काफी स्वस्थ हो तो हलकी रोटी तथा मक्खनका भी प्रयोग कर सकते हैं।

इस प्रकार भोजनको धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये। भोजनमें मात्राका ख्याल रखना सबसे जरूरी बात है। एक हलके भोजनकी बहुत अधिक मात्रा लेनेसे भी वह

उतना ही हानिकारक हो सकता है जितना कोई भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य भी एक क्रम है जो आजकल बहुत प्रयुक्त होता है। उसके चार हिस्से किये जाते हैं—रस, दूध+पानी, दूध, हलका भोजन, इन चारोंको क्रमशः तीन तीन दिन तक देना चाहिए। इस प्रकार १० वें दिन उसको हलका भोजन दिया जा सकता है। दूध बहुत गरम नहीं होना चाहिये तथा एकदम नहीं पीना चाहिये किन्तु रसके समान ही सिप करके पीना चाहिए।

इस प्रकार संयम-पूर्वक उपवासको तोड़नेसे मनुष्य अपने रोगोंको नष्ट करके फिरसे नया जीवन प्राप्त करता है। उसका शरीर हलका प्रतीत होने लगता है तथा उसकी मानसिक उन्नति बहुत अधिक होती है। चेहरेपर एक विशेष प्रकारकी कान्ति आ जाती है।

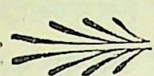
२. उपवासके बाद भोजन प्रारम्भ करना—इसके विषयमें अभी तक डाक्टरोंमें काफ़ी मतभेद है। डा० डेवेका कहना है कि उपवासके बाद रोगीको जिस चीज़की इच्छा हो उसे वह देना चाहिये। किन्तु अन्य डाक्टरोंका ख्याल है कि उसे उपवासके बाद कुछ दिनों तक द्रव भोजन पर ही रखना चाहिए। साधारण भोजन निम्न निर्दिष्ट हैं—

प्रथम दिन—१ गिलास नारंगीका रस धीरे-धीरे सिप करते हुए मुखमें थोड़ी देर ठहराकर पीना चाहिए। एकदम पीनेसे कई बार तीव्र पेट-दर्द आदि लक्षण हो जाते हैं। इस प्रकार दिनमें ३-४ बार देना चाहिये। यदि नारंगीका रस न लेना हो तो उसे अंगूर या सेवका रस भी दे सकते हैं। ये रस बहुत ठण्डे न हों तथा उनमें खाण्ड भी बहुत कम होनी चाहिए।

द्वितीय दिन—इस दिन अधिक भोजन कर लेनेकी बहुत अधिक सम्भावना होती है, इसलिए रोगीको खूब अच्छी तरह इसकी हानियोंको समझा देना चाहिए। दूसरे दिन ऐसे फल दें जिनमें रसकी मात्रा ज्यादा हो जैसे संतरा, अंगूर या अनारका रस, तथा सेब भी इस अवस्थाके लिये अच्छी चीज है। खजूर, केले तथा अंजीरका इस अवस्थामें प्रयोग नहीं करना चाहिये। एक समयमें दो प्रकारके फलोंसे अधिक न खायें। एक प्रकारके ही फलोंका खाना ज्यादा अच्छा होता है।

# जीवन संग्राम का विजयी

**जीवन एक संग्राम है। जो आदमी सीना तान कर आफ़तोंका मुकाबिला कर सकता है; आफ़तोंकी घनघोर घटामें बिजलीकी तरह मुसकरा सकता है, जो आदमी परिस्थितियोंका स्वामी है, उनका दास नहीं; जो टूट जाना पसन्द करता है, परन्तु झुकना नहीं; इस जीवन-संग्राममें उसी वीरके माथे विजयका सेहरा बन्धता है। श्रीवेद**



# हमारी पञ्चमांश शक्ति



( श्रीराम शर्मा अचार्य, संपादक 'अखंड ज्योति' मथुरा )

भारत वर्ष धर्मप्राण देश है, बहुत प्राचीन कालसे यहाँ धर्म ही जीवनका प्रमुख अङ्ग माना जाता रहा है। कारण यह है कि हमारे तत्त्वदर्शी पूर्वज जानते थे कि मानव जीवनकी चतुर्मुखी उन्नतिका केन्द्र धर्म ही है। जब संसारके अन्य भागोंमें मनुष्य जङ्गली जीवन व्यतीत कर रहे थे तब धर्मके धारणाके कारण ही हमारा देश विश्वकी मुकुटमणि बना हुआ था। शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक उन्नतिकी सर्वोच्च श्रेणीपर भारतवासी पहुंचे हुए थे, स्पष्ट ही धर्मका पालन एक प्रत्यक्ष व्यापार है जिसका सुफल अविलम्ब प्राप्त होता है। धर्मका ध्रुव निश्चित फल सुख है। दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि जिस मार्गपर चलनेसे लौकिक और पारलौकिक सुख मिलता है उसे धर्म कहते हैं।

जब हम अपनी दुर्दशा पर विचार करते हैं, तो हमें यह देखनेके लिये बाध्य होना पड़ता है कि कहीं हमने धर्मका परित्याग तो नहीं कर दिया है जिससे दीनता, दासता, अज्ञान और दुःखोंकी चक्कीमें पिसते हुए छटपटाना पड़ रहा है। चिकित्सासे पहले रोगका निदान आवश्यक होता है।

गणितज्ञोंने हिन्दू जातिकी धार्मिक अवस्था पर गहरी खोज की है और हिसाब लगाकर बताया है कि संध्या, पूजा, जप, कीर्तन, तीर्थयात्रा, कर्मकाण्ड, मन्दिर-दर्शन, कथा-श्रवण, शास्त्र-पठन, धार्मिक शिक्षाके निमित्त सर्व-साधारणका जो बहुत सा समय खर्च होता है, और साधु, सन्त, पुरोहित, पुजारी, उपदेशक, धर्म-संस्थाओं तथा धर्मस्थानोंके कर्मचारी आदिका जो पूरा समय लगता है, इस सारे समयको जोड़कर इसका औसत तीस करोड़ हिन्दुओं पर फैलाया जाय तो हर छोटे बड़ेके हिस्सेमें पौने तीन घण्टेका समय पड़ता है। निद्रावस्थाको छोड़कर शेष समयका यह करीब पाँचवाँ भाग है। इसी प्रकार उपरोक्त कार्यों एवं व्यक्तियोंके ऊपर करीब २ अरब ९६ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष व्यय होता है, इसकी औसत हर हिन्दूके ऊपर १।। पैसा प्रति दिन पड़ती है। देशकी रोजाना औसत आमदनी दो आना है। इस तरह सारी आमदनीका पाँचवाँ भाग धर्मके लिये खर्च किया जाता है, एक शब्दमें यों कह सकते हैं कि हम सब लोग अपनी शक्तिका पाँचवाँ भाग धर्मके निमित्त इस समय भी लगाते हैं।

पाँचवाँ भाग बड़ी भारी शक्ति है, अन्य देशोंमें फौजी तथा भीतरी सम्पूर्ण व्यवस्थाके लिये मजबूत सरकारें अपने देशकी आमदनीका दसवेंसे भी कम, भाग खर्च करती हैं। कहते हैं कि इस समय युद्धमें लगे हुए राष्ट्रोंमें सबसे अधिक खर्च करनेवाला देश जर्मनी अपनी राष्ट्रीय आयका पाँचवाँ भाग युद्ध एवं राज्यव्यवस्थामें खर्च कर रहा है। यों समझिये कि यदि हिन्दू जातिको जर्मनीके समान किसी बड़े भीषण रोमहर्षक युद्धमें संलग्न होना पड़ता तो अधिकसे अधिक इतना ही खर्च करना पड़ता, जितना आज हम लोग धर्मके लिये कर रहे हैं। अमेरिका आदि कुबेर-भंडारी धनी देशोंके ईसाई मिशन संसार भरमें अपना मजहब फैलानेके लिये बहुत बड़ी धनराशि व्यय करते हैं। वह भी हमारे व्ययकी अपेक्षा कम है। जितने पैसेसे दर्जनों युनिवर्सिटी, पचासों कालेज, सैकड़ों हाई स्कूल, हजारों पाठशालायें चल सकती हैं उतना पैसा एक एक पर्व पर

पुण्य-लाभके निमित्त खर्च यहाँ होता है। जितनी पूंजीसे उद्योग-धन्धे आरम्भ करके आधपेट खानेवाले ग़रीब मनुष्य और भूखकी ज्वालासे तड़प २ कर प्राण देनेवाले बालकोंको रोजी दी जा सकती है, उतना पैसा प्रतिवर्ष मन्दिरोंके सजाव, शृङ्गार, भोग, भक्तिमें खर्च हो जाता है।

औसत आमदनी, दो आना प्रतिदिन, में से अधिकसे अधिक पाँचवाँ भाग ही परोपकारके लिये निकाला जा सकता है। भोजन वस्त्र, आवागमन, दवादारू तथा अन्य जीवनोपयोगी आवश्यकताओंको किसी प्रकार जैसे तैसे पूरा करते हुए पाँचवें भागसे अधिक समय एवं शक्तिको परमार्थपर लगानेके लिये भला कौन निर्दय कह सकता है। निस्सन्देह हिन्दू-जाति इस गई गुजरी दशामें भी धर्मके लिये जितना त्याग कर रही है, उसका उदाहरण संसारमें अन्यत्र कहीं भी मिल सकना कठिन है।

इतना होते हुए भी हम दिन दिन नीचे गिरते जा रहे हैं, शास्त्र कहता है "धर्मो रक्षति रक्षितः" धर्मकी रक्षा करनेसे अपनी रक्षा होती है। धर्मकी रक्षा हम करते रहे हैं; पर धर्म हमारी कुछ भी रक्षा क्यों नहीं करता? इस गम्भीर प्रश्नने आज ३० करोड़ हृदयोंमें खलबली पैदा कर दी है। देशके विचारवान् व्यक्ति इस पेचीदगीसे बहुत ही चिन्तित हो रहे हैं। जब गुत्थी सुलझती नहीं, तब विवश होकर हमारे नौनिहाल उसे ढोंग, पाखंड, जालसाजी, धोखेबाजी, भ्रमपूर्ण कल्पना आदि नामोंसे सम्बोधित करते हैं, और उसके विरुद्ध बगावतका झंडा खड़ा करते हैं। हम देख रहे हैं कि भारतकी भावी पीढ़ी धर्मके विरुद्ध तूफानी बगावतको साथमें ला रही है, और उस प्रचण्ड बवंडरमें सम्भव है कि आर्य्य-सभ्यताके प्राचीन गौरवमय सिद्धान्त भी बह जाँय। टर्कीमें कमालपाशाने अपने देशकी सम्पूर्ण परम्पराओंको कुचल डाला, रूसमें धर्मका बिल्कुल बहिष्कार कर दिया गया; कौन जानता है कि हमारे नौजवान अपने समयके धर्मकी निरर्थकता, नपुंसकता और निरुपयोगितासे झुंझलाकर उसे चूर-चूर न कर डालेंगे।

"प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक बने" यह उपदेश करनेके साथ हम धर्मके वर्तमान स्वरूपमें शोधन भी करना चाहते हैं। हम अनुभव करते हैं कि सदियोंकी पराधीनता, गरीबी और अज्ञानने धर्मके वास्तविक स्वरूप को बहुत ही विकृत, दोषपूर्ण, एवं जर्जरित कर दिया है, अनेक छिद्रोंके कारण उसका वर्तमान स्वरूप छलनी की तरह छिरछिरा होगया है, जिसमें राष्ट्रकी उच्चतम-सद्भावनाओंके साथ डाली हुई पञ्चमांश शक्ति, नीचे गिर पड़ती है। छलनीमें दूध दुहनेवालेके समान केवल पश्चात्ताप और निराशा ही प्राप्त होती है।

"सद्भावनासे प्रेरित होकर आत्मोद्धारके लिये जो लोकोपकारी कार्य किये जाते हैं, वे धर्म कहलाते हैं। धर्मकी इस मूलभूत आधार शिलाके ऊपर हमें देश-काल की स्थितिके अनुसार नवीन कर्मकाण्डोंकी रचना करनी होगी, दूध रखनेके लिये छेदोंवाले बर्तनको हटाना होगा, जिसमेंसे सारा दूध चूकर मिट्टीमें मिल जाता है। ईश्वरकी सच्ची उपासना, उसकी चलती प्रतिमाओंसे प्रेम करनेमें है। परमार्थकी वेदीपर अपने निजी तुच्छ स्वार्थोंका बलिदान करना धर्म है, धर्म और ईश्वरकी सच्चे अर्थोंमें पूजा करनेवाले व्यक्तियोंका कार्य-क्रम वर्तमान परिस्थितियोंमें अपने आस-पास छाये हुए अज्ञान और दरिद्रताके घोर अन्धकारको दूर हटाना होगा। अविद्याके कारण हमारी कौम अन्धेरेमें टकराती फिर रही है; दरिद्रताके कारण हमारा देश पशुओंसे भी गया गुज़रा दयनीय जीवन बिता रहा है। जिसके हृदयमें धर्म है, उसके हृदयमें दया, करुणा और प्रेमके लिये स्थान अवश्य होगा। जो व्यक्ति धर्मके नाम पर माला तो सारे दिन जपता है

पर बीमार पड़ोसीकी सेवाके लिये आध घंटेकी भी फुरसत नहीं पाता, हमें सन्देह होगा कि वह कहीं धर्म की विडम्बना तो नहीं कर रहा है।

हम प्रत्येक धर्म-प्रेमीसे करबद्ध प्रार्थना करते हैं कि धर्मके वर्तमान विकृत रूपमें संशोधन करें और उसको सुव्यवस्थित करके पुनरुद्धार करें। धर्माचार्यों और आध्यात्मिक शास्त्रके तत्त्वज्ञानियों पर इस समय बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। देशको मृतसे जीवित करनेकी, पतनके गहरे गर्तमेंसे उठाकर समुन्नत करनेकी शक्ति उनके हाथमें है क्योंकि जिस वस्तुसे-समय और धनसे—कौमोंका उत्थान होता है, वह धर्मके निमित्त लगी हुई है, जनताकी श्रद्धा धर्ममें है, उनका प्रचुर द्रव्य धर्ममें लगता है, धर्मके लिये छप्पन लाख साधु-संत तथा उतने ही अन्य धर्म-जीवियोंकी सेना पूरा समय लगाये हुए हैं। करीब एक करोड़ मनुष्योंकी धर्म-सेना, करीब तीन अरब रुपया प्रतिवर्षकी आय, कोटि-कोटि जनताकी आन्तरिक श्रद्धा, इस सब का संगम धर्ममें है, इतनी बड़ी शक्ति यदि चाहे तो एक वर्षके अन्दर अन्दर अपने देशमें रामराज्य उपस्थित कर सकती है, और मोतियोंके चौक पुरने, घर-घर सोनेके कलश रखे होने, तथा दूध-दहीकी नदियाँ बहनेके दृश्य कुछ ही वर्षोंमें दिखाई दे सकते हैं। आजके पददलित भारतवासियोंकी सन्तान अपने प्रातःस्मरणीय पूर्वजोंकी भाँति पुनः गौरव प्राप्त कर सकती है।

हम धर्माचार्योंको सचेत करते हैं, कि वे राष्ट्रकी पंचमाँश शक्तिके साथ खिलवाड़ न करें। टन-टन-पों-पोंमें, ताता-थइयामें, खीर-खाँड़के भोजनोंमें, पोथी-पत्रों में घुला-घुलाकर जातिको और अधिक नष्ट न करें, वरन् इस ओरसे हाथ रोक, इस शक्तिको देशकी शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक, मानसिक शक्तियोंमें नियोजित करें, अन्यथा भावी पीढ़ी इसका बड़ा भयंकर प्रतिशोध लेगी, आजके धर्माचार्य कल गली गलीमें दुतकारे जाँयगे, और भारत-भूमिकी अन्तरात्मा उन पर थूकेगी कि मेरी घोर दुर्दशामें भी यह ब्रह्मराक्षस कुत्तोंकी तरह अपने पेट पालनेमें देशकी सर्वोच्च शक्ति को नष्ट करते रहे थे। साथ ही सर्व-साधारणसे यह भी निवेदन करते हैं कि वे धर्मके नाम पर जो भी काम करें उसे उस कसौटीपर कस लें कि सद्भावनाओं से प्रेरित होकर आत्मोद्धारके लिये लोकोपकारी कार्य होता है या नहीं; जो भी ऐसे कार्य हों वे धर्म ठहराये जावें। इनसे भिन्नको अधर्म जानकर परित्याग कर दिया जाय।

देशके प्रत्येक निवासीका ध्यान इस ओर आकर्षित होना राष्ट्रीय जागरणका प्रथम चिह्न होगा कि हमारी सामूहिक शक्तिका सर्वोच्च पंचम भाग किन कार्योंमें, किस प्रकार, किनके द्वारा और क्यों व्यय होता है; इसका क्या परिणाम निकलता है, इसमें क्या दोष आ गये हैं, और उनमें क्या सुधार हो सकता है? हिन्दू जातिके कल्याणका प्रथम मार्ग यह है कि वह अपनी नाड़ियोंका पाँचवाँ भाग रक्त अपव्यय होनेसे बचावे, और उसका सदुपयोग करके शक्ति सम्पादित करे।

## कावेरी के तटपर

है अस्त हुआ सविता, उदित हुई तारकिता।
है गूंज रही सरिता, अब फूट रही कविता॥

श्रीवेद।

# समालोचना-स्तम्भ

## " मानवार्ष-भाष्य "

भारतीय तथा वैदेशिक सभी सुधी-समुदायको अच्छी तरह विदित है कि वर्तमान युगके सूत्रात्माके अनुकूल सब धर्मोंके समन्वय-कर्त्ता, हिन्दू-धर्मके आमूल-चूड़ परिष्कारेच्छु महर्षिकल्प श्रद्धेय डाक्टर भगवान् दासजी, इधर कतिपय वर्षोंसे सांसारिक बाह्य प्रवृत्तियोंसे विराम लेकर मानव-समाजके सर्वाङ्गीण अभ्युदयकारक मानव-धर्मशास्त्र ( मनुस्मृति ) के शाश्वतिक सिद्धान्तोंकी अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषामें बृहत् एवं लघु पुस्तकोंको लिख-लिखकर देशी तथा विदेशी मनीषी जनसमाजमें सतत प्रचारका प्रयत्न कर रहे हैं। हाल हीमें उन्होंने मानव धर्मशास्त्रके मूल सिद्धान्तोंके आधार पर श्रुति, स्मृति, पुराण तथा इतिहासमें प्रसृत 'कर्मणा वर्णः' के पोषक वाक्योंको बीच-बीचमें उद्धृत करते हुये साढ़े तीन हज़ार ( ३५०० ) संस्कृत अनुष्टुप् छन्दों ( श्लोकों ) में एक बहुत ही उत्कृष्ट निबन्धात्मक मञ्जुल, मसृण, सरल, प्रसादगुण-गुम्फित संस्कृतभाषामय 'मानवधर्मसार' नामकी पुस्तक लिखी है ; जिसकी प्रशंसा भारतके प्रायः सभी विशिष्ट संस्कृतज्ञ विद्वानोंने की है। बहुतोंने तो संस्कृतकी उच्च परीक्षाओंमें उसे पाठ्य पुस्तक बनानेका अनुरोध किया है, जिससे सभी संस्कृतज्ञ विद्वान् और विद्यार्थी उसका अच्छी तरह अध्ययन कर सकें। उस पुस्तकमें इतनी सरलता की गई है कि पद्यके आवश्यक नियम, सन्धियों, की भी उपेक्षा कर पृथक्-पृथक् पदच्छेद करके सभी पद्य लिखे गये हैं; साथ ही पूर्णविराम, अर्द्धविराम, स्वल्पविराम-प्रभृति सभी आवश्यक चिह्नोंका प्रयोग किया गया है, जिससे संस्कृतका साधारण ज्ञान रखनेवाले, इङ्गलिश भाषाकी मैट्रिक परीक्षा पास, तथा संस्कृतकी प्रथमा परीक्षा पास विद्यार्थी भी अनायास ही उसे पढ़, एवं समझ सकते हैं। इसी उद्देश्यसे करीब तीन सौ ( ३०० ) पृष्ठकी, सोलहपेजी डबल क्राउन साइज़ की संस्कृत पुस्तक, आठ आने ।।) मात्र मूल्यमें, ज्ञानमण्डल-पुस्तकालय, चौक, काशी; तथा अन्य पुस्तकोंकी दूकानपर; और स्वयं ग्रन्थकारके स्थान—शान्ति-सदन, सिगरा, बनारस, से मिलती है। ग्रन्थकारके ही शब्दोंमें उस पुस्तककी उपयोगिता अति संक्षेपमें इस प्रकार है :—

प्रस्तूयतेऽत्र किल मानवधर्म-सारः, क्षीणार्य्य-वंशभरणोद्धरण-प्रकारः,
भोगापवर्ग-युगलस्य च मार्गकारः, सच्चार्य्यतामयमशेषहितोऽत्युदारः ।
सत्यं ब्रवीम्युभय-लोकहितं ब्रवीमि, लोकावतीत्य परमार्थयुजं च वच्मि,
प्राचीनशास्त्रहृदयं प्रणवीकरोमि, स्वार्थे मतिं सहृदयां कुरुतार्य्यवर्याः ।

इस प्रकार पुस्तकके प्रारम्भमें हृदयग्राही सरल संस्कृत पद्यमें पुस्तककी सर्वोपादेयताको संक्षेपमें व्यक्तकर मध्यमें क्रमशः 'हिन्दूनां क्षयरोगः' 'ह्रासकारणान्वेषणं' 'कथं चिकित्सा, किमत्र शास्त्रं, ' वर्तमानशास्त्र-दुर्दशा '

'चतुर्वर्णानामङ्गाङ्गित्वम्' 'कर्मणा वर्णः, पुराणोदाहरणानि', 'जन्मवर्णस्य दारुणपरिणामः' 'पुराणरूपकाणि' 'चतुष्कैर्धर्म-संग्रहः' 'शङ्का-समाधानम्' 'सर्वधर्मसम्मेलनम्' 'हिन्दू-समाजस्य पुनः संस्करणं कथम्' 'स्वराज्य-निरूपणं' 'हिंसाऽहिंसाविवेकः' 'प्रणव-व्याख्या' इत्यादि बहुतसी वर्तमान हिन्दू-समाजकी अति गम्भीर समस्याओंको पूर्ण रूपसे हल करते हुए वर्णाश्रम-धर्मके सच्चे सुदृढ़ स्वरूप 'कर्मणा वर्णः' का पूर्ण विचार किया है।

अन्तमें ग्रन्थकारने ही अपने 'मानव-धर्मसार' के उपबृंहण, प्रमाणन, अभिप्राय-प्राञ्जलीकरण आदिके लिये, आचार्य इन्दिरारमण शास्त्रीके द्वारा प्रणीयमान 'मानवार्ष-भाष्यके विषयमें स्वयं लिखा है—

अत्रोक्तान् विषयान् मुख्यान् वर्णाश्रमनिबन्धनान्, शमनान् सर्वशङ्कानां, समाजोद्धारकारकान्;
बहुश्रमी च शास्त्रेषु, बहुदर्शी, बहुश्रुतः, देश-स्वाधीनतायै यः कारावासेऽपि कष्टभाक्,
विद्या-विनयसम्पन्नः, मानवानां सिषेविषुः, श्रद्धालुरार्ष-शास्त्रेषु, जानंश्च समयं नवम्,
अवस्था-परिवर्त्तज्ञः, सद्ब्राह्मणश्च कर्मणा; आर्षैर्वाक्यैर्मनोर्वाचो भाषमाण उदारधीः,
सब्दनिर्वचनैश्चापि सत्तर्कैरुपबृंहितैः, ग्रन्थे 'मानवार्षभाष्ये' ग्रथ्यमाने तु साम्प्रतम्,
इन्दिरारमणो विद्वान् विस्तरात् कथयिष्यति।

'मानव-धर्मसार'-कार ( श्रद्धेय डा० भगवान् दासजी ) की इसी उपर्युक्त प्रतिज्ञाके अनुसार इस 'मानवार्ष-भाष्य' नामक ( सुपर-रॉयल साइज़ के साढ़े छः सौ ६५० पृष्ठोंके ) बृहत् ग्रन्थको, प्राचीन तथा अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मयके प्रगाढ़ विद्वान् आचार्य इन्दिरारमण शास्त्रीने ऊहापोहके साथ बड़े परिश्रम एवं मनोयोगसे, पाँच वर्षतक सतत अध्ययन-अनुसन्धान द्वारा विशाल वैदिक, बौद्ध, तथा अन्यान्य आगमिक-वाङ्मय-विद्या-प्रस्थानोंका मन्थन करके, सुसङ्कलित किया है। इस महाग्रन्थका मुख्य उद्देश्य, मानव-धर्मशास्त्र ( मनुस्मृति ) के 'कर्मणा वर्णः' वाले मुख्य विषयपर वेद, वेदाङ्ग, उपाङ्ग, पुराण, उपपुराण, धर्मशास्त्र, इतिहास, काव्य, निबन्ध-प्रभृति सभी संस्कृत वाङ्मय-महार्णवके ग्रन्थरत्नोंके उद्धरणों द्वारा प्रकाश डालना ही है। विद्वान् बहुश्रुत लेखकने इस मुख्य विषयके समर्थनमें पद-पद पर संस्कृत वाङ्मयके सैकड़ों प्राचीन ग्रन्थोंके, स्थलनिर्देश-पूर्वक, विस्तृत उद्धरण दिये हैं, जो आज तक संस्कृत-पद्धतिसे ग्रन्थ लिखनेवाले विद्वानोंके लिये एक विलक्षण नवीन अनुकरणीय पद्धति है।

ग्रन्थकारने ग्रन्थारम्भसे प्रथम, एक सौ बारह (११२) पृष्ठका, भाष्यका 'उपक्रम' लिखा है, जिसमें :—

"अङ्गानि, वेदाश्चत्वारो, मीमांसा, न्यायविस्तरः, धर्मशास्त्रं, पुराणञ्च, विद्या ह्येताश्चतुर्दश"

इन चौदहों विद्याओंके भेद, स्वरूप, उपयोगिता-प्रभृतिका विचार करते हुये 'मानवार्ष-भाष्य' में इनके ग्रन्थोंके उद्धरण-प्रकारका परिचय बताया है; साथ ही मनुस्मृतिकी महत्ताका बहुत विस्तृत विचार किया है, जिससे व्याकरण-महाभाष्यके पस्पशाह्निकके समान यह भाष्योपक्रम ( मानवार्ष-भाष्यका 'उपक्रम' काण्ड ) भी एक बहुत उपयोगी पृथक् ग्रन्थ हो गया है।

इसके बाद मनुस्मृतिका आर्षभाष्य प्रारम्भ होता है; जिसमें सबसे ऊपर स्थूलाक्षरोंमें मनुस्मृतिके मूल श्लोक हैं; उनके नीचे मूल श्लोकोंकी विस्तृत व्याख्या, प्राञ्जल सरल संस्कृत-भाषामें अनुष्टुप् पद्यों द्वारा की गई है। उन पद्योंके आशयका, हिन्दी भाषामें विशद रूपसे अनुवाद करते हुए आवश्यक विषयोंपर हिन्दीमें विस्तृत विवेचना भी की गई हैं। संस्कृत एवं हिन्दी दोनों व्याख्याओंके समर्थनमें प्रायः सभी अपेक्षित स्थलों

पर प्राचीन तथा अर्वाचीन संस्कृत-वाङ्मय-महार्णवके ग्रन्थरत्नोंसे, और हिन्दी, बङ्गला, मराठी, इङ्गलिश भाषाके ऐतिहासिक निबन्धोंसे, उद्धरण, पर्याप्त मात्रामें दिये गये हैं ; जिससे यह मानवार्ष-भाष्य० मनुस्मृतिके वास्तविक अर्थके विद्वान् अन्वेषकोंके लिये एक बड़ा ही उपयोगी संग्राह्य ग्रन्थरत्न हो गया है। इस भाष्यमें आधुनिक व्याख्या-पद्धतिकी उपेक्षा कर, प्राचीन भाष्यकारोंकी प्राञ्जल, उदार शैलीके अनुसार अपेक्षित स्थलोंपर प्राचीन आर्षग्रन्थोंसे समन्वय करते हुए खूब खुले दिलसे निःसंकोच विवेचन किया गया है ; जिससे मनुस्मृतिकी वेदमूलकता, वर्णाश्रमधर्मकी सर्वाङ्गीणता सर्वमानवोपयोगिता तथा 'कर्मणा वर्णः', की श्रेष्ठता आदि सभी मुख्य विषयोंपर पूरा प्रकाश पड़ता है। किं बहुना, इस भाष्य-द्वारा गुण-कर्मानुसारिणी वर्णाश्रम व्यवस्थासे वैयक्तिक तथा सामाजिक मानवजीवन-सम्बन्धी सभी प्रश्नोंके उत्तर हो जानेके कारण "यन्मनुर-वदत्, तद्भेषजम्" इस श्रुतिकी सार्थकता पूर्ण रूपसे स्पष्ट हो जाती है। संक्षेपमें इस मानवार्ष-भाष्यके विषयोंके विन्यासक्रमका दिग्दर्शन इस प्रकार समझना चाहिये—

सर्वप्रथम ग्रन्थकारने 'वेद-शास्त्रोक्त 'मनु माहात्म्य' लिखा है। तदनन्तर श्रद्धेय डा० भगवान् दासजी का लिखा ग्रन्थ-'परिचायन' दिया गया है ; जिसमें ग्रन्थ लिखनेका संक्षिप्त उद्देश्य बताकर, ग्रन्थकी उपयोगिता-का भी दिग्दर्शन करा दिया गया है। बादमें भाष्यस्थ विषयोंकी संक्षिप्त सूची है ; साथ ही भाष्यमें प्रमाणरूपसे उद्धृत, करीब एक हज़ार ग्रन्थोंकी अक्षर-क्रमाऽनुक्रमणी-सूची है। पश्चात् विस्तृत 'भाष्योपक्रम' है ; जिसका ज़िक्र मैंने पहले ही कर दिया है।

मनुस्मृतिके प्रथमाध्यायके भाष्यका आरम्भ कर, विद्वान् लेखकने सृष्टिका उपक्रम करके ब्रह्माण्ड, नारायण, ब्रह्मा-प्रभृति शब्दोंके वास्तविक वैदिक और पौराणिक अर्थोंको अभिव्यक्त किया है। भूत-भौतिक सृष्टि, वेदोत्पत्ति, धर्माऽधर्म-विचार, सृष्टिक्रमोपसंहार आदि विषयोंके विशद विवेचनके बाद वर्ण व्यवस्था प्रकरण' आता है ; जिसमें मानवार्ष-भाष्यकारने "प्राचीन कालमें गुणकर्मानुसारिणी वर्ण-व्यवस्थासे ही मानव-समाजकी सर्वाङ्गीण उन्नति हुई थी ; अब भी उसीसे हो सकती है। 'जन्मना वर्ण-व्यवस्था' तो कुमारिल भट्ट प्रभृति विद्वानोंकी मध्यकालीन कल्पना है। संस्कृतके प्राचीन आर्ष ग्रन्थोंमें 'कर्मणा वर्णः' की ही व्यवस्थाकी सिद्धि की गई है" इत्यादि विषयों पर खूब विस्तृत विचार किया है। इसी सिल-सिलेमें 'कर्मणा वर्णः' की व्यवस्था-द्वारा समुन्नत बौद्धकालीन भारतकी समीक्षा करते हुये बुद्धावतारकी विशेषता, तथा यज्ञ-यागादि-निमित्तक पशुहिंसा-प्रभृति दोषोंको हटाकर, फिरसे प्राचीन हिन्दू-धर्मका पुनरुद्धार, पुनर्जन्मवाद, 'कर्मणा वर्णः' का प्रचार आदि बातोंकी सिद्धि, ऐतिहासिक तथा बौद्ध-साम्प्रदायिक ग्रन्थोंसे की गई है। प्रसङ्गतः प्राप्त - हिन्दू-धर्मके पुनरुद्धारक श्रीशङ्कराचार्य्यके जीवन-चरित्र पर विस्तृत विवेचनके द्वारा, उनके 'कर्मणा वर्णः' के सिद्धा-न्तको, तथा उसके प्रचारको दिखाते हुये, गुण-कर्मानुसार ही कापालिक-प्रभृति अनेक साम्प्रदायिकों, तथा कालवशात्, वाम-मार्गमें पड़े हुए बौद्धोंका पुनः संस्कार कराकर वर्णाश्रम-धर्ममें सम्मिलित करना, गुण-कर्मानुसार वर्णव्यवस्थाका पुनरुद्धार करना, और श्रौत-स्मार्त-धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा करना, इत्यादि बातोंको प्रबल प्रमाणोंसे प्रमाणित किया गया है। इस प्रकार तीन सौ त्रिसठ (३६३) पृष्ठोंमें मनुस्मृतिके—

"लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुख-बाहूरु-पादतः ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्तयत"

इस ३१ वें श्लोक तकका भाष्य समाप्त हुआ है। इस श्लोकके भाष्यमें प्राचीन आर्ष-ग्रन्थोंके सैकड़ों

उद्धरण द्वारा, "पूर्वमें कर्मणा ही वर्ण माना जाता था, और वह श्लोक, गुण-कर्मानुसार, ब्राह्मणादि वर्णोंके निर्वाचनके लिये ही आया है" इत्यादि बातोंकी सिद्धि करते हुए 'वर्ण व्यवस्था-प्रकरण' समाप्त हुआ है।

अन्तमें विराट्-सृष्टि, युगधर्मनिरूपण, कलि-वर्ज्यधर्म, वर्ण-धर्म, ब्राह्मणप्रशंसा आदि विषयोंके, सयुक्तिक सप्रमाण प्राञ्जल निरूपण एवं विशद वर्णनके साथ प्रथम अध्याय समाप्त हुआ है।

द्वितीय अध्यायमें, धर्म-स्वरूप और उसके प्रमाण—श्रुति, स्मृति, सदाचार,—आत्मतुष्टि-प्रामाण्य, आगम-प्रामाण्य, ब्रह्मर्षिदेश, ऋग्वेदकाल-निर्णय, आर्यावर्तादिदेश-निर्णय आदि विषयोंपर विशेष विचार कर चार सौ अट्ठासी (४८८) पृष्ठोंमें दोनों अध्यायोंकी समाप्ति की गई है।

इस पुस्तकमें 'उपक्रम' के अन्तमें श्रीयुगलकिशोर विड़ला महोदय की आर्थिक सहायतापर तथा ग्रन्थान्त में भी, विलुप्त कर्मणा वर्णव्यवस्थाके पुनरुद्धारक डा० भगवान्दासजी के बौद्धिक साहाय्य पर, संस्कृत पद्योंमें कृतज्ञता-प्रकाश किया गया है।

इस ग्रन्थसे सब धर्मोंके आचरणोंका संशोधन तो रहेगा ही, विशेष कर राजधर्मका पूरा संशोधन हो जायगा ; ऐसा मुझे प्रतीत होता है। थोड़ेमें यह ग्रन्थ नवीन युगका प्रवर्त्तक कहा जा सकता है। इस बीसवीं सदीमें, ऐसी प्राञ्जल संस्कृत तथा हिन्दी भाषामें, ऐसा निबन्धात्मक महाग्रन्थ मेरे देखनेमें नहीं आया है। इसी कारण मैंने श्रीहर्षके—

"वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता चेत्"

इस श्लोकको स्मरण कर मानवार्ष-भाष्यका यह संक्षिप्त परिचय लिखा है; और भारतके सभी सुधी-समुदायसे मेरा साग्रह, सानुनय, अनुरोध है कि संस्कृत-वाङ्मय महार्णवके मन्थनसे आविर्भूत अनेक रत्नोंसे संभृत इस भाष्यका एक बार अवश्य अध्ययन करें।

सुपर रायल साइज़के साढ़े छः सौ (६५०) पृष्ठोंके सजिल्द, इस महाग्रन्थका मूल्य भी सिर्फ लागतमात्र साढ़े तीन रुपये ३।।), प्रचारके विचारसे ही रक्खा गया है। यह महाग्रन्थ, ज्ञानमण्डल-पुस्तकालय, चौक, बनारस; तथा शान्ति-सदन, सिगरा, काशी ( डा० भगवान् दासजी के वासस्थान ) से; और काशी के अन्यान्य पुस्तक-विक्रेताओंकी दुकानोंसे प्राप्य है।

अन्तमें मैं डा० भगवान् दासजीके मानव-धर्मसारके एक पद्यको ( किञ्चित् परिवर्तितरूपमें ) उद्धृत कर, इस संक्षिप्त परिचयको समाप्त करता हूं :—

सच्छास्त्रपूतधिषणा, जनशिक्षितारः ; विस्तार्यतामिह सदा मनुधर्मसारः ;
दृष्ट्वा स्थितिं तु जगतां शुचि-कर्मकारः, व्याख्यां नवां प्रथयितुं यदि वो विचारः ॥ इति ॥

( महामहाध्यापक ) **श्रीगोपाल-शास्त्री** ( दर्शन-केशरी )
संस्कृत-दर्शनशास्त्र-प्रधानाध्यापक-काशी-विद्यापीठ,
सभापति—सार्वभौम-संस्कृतप्रचार-परिषद् , काशी।
ता० ११-६-४२ ] [ लक्ष्मी-कुण्ड, काशी।



# धर्मों का समन्वय



( लेखक—पं० श्री दा० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, औंध जि० सातारा )

धर्मोंका समन्वय हो सकता है वा नहीं, यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है। भारतीय धर्मोंका समन्वय ही क्यों, यदि धर्मोंका समन्वय हो सकता है, तो सब विश्व भरके, संसार भरके, धर्मोंका ही समन्वय क्यों न किया जाय? यदि यह बात न होनेवाली है, तब तो भारतीय धर्मोंका भी समन्वय नहीं हो सकेगा, और यदि धर्मोंका समन्वय होना सम्भव है, तब तो संसारके सब धर्मोंका समन्वय भी हो सकेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

क्या धर्मोंका समन्वय हो सकेगा ?

यह बड़ी भारी आशंका मानवके मनको सदा कष्ट देती रहती है। जो कोई दिलसे एकताकी प्रस्थापना करनेके इच्छुक हैं, वे चाहते हैं कि, धर्मके उद्देश्यसे मानवों-मानवोंमें विवाद न हों। यह इच्छा शुभ है, इसमें सन्देह नहीं है; पर सब शुभ इच्छाएं सर्वत्र फलीभूत होती हैं, ऐसी बात नहीं है।

राजकीय वादोंका समन्वय

धर्मोंका समन्वय हो सकता है, और करना चाहिये, ऐसा आग्रहसे प्रतिपादन जो करते हैं, उनके विचारके लिये हम एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वह उदाहरण यूरोपकी इस समयकी परिस्थितिका है—

यूरोपमें इस समय (१) जर्मनीका "राष्ट्रीय-समाजवाद", (२) रूसका 'साम्यवाद", (३) इटलीका "सामर्थ्यवाद" और (४) इंग्लैंड-अमेरिका का "जानपदशासनवाद" ये चार वाद, अर्थात् ये चार मत प्रचलित हैं। यहां कई कहेंगे कि, इंग्लैंड-अमेरिकामें पूंजीपति-सुरक्षावाद ही प्रचलित है और जानपदशासनवादका केवल ऊपरि दिखावा ही है। यह कहना ठीक होनेकी सम्भावना अधिक है। वास्तवमें गरीब प्रजाजनोंकी सुरक्षा और उन्नति होनेकी सम्भावना इस जगतमें किसी स्थान पर नहीं है। तथापि गरीब प्रजाके हितके लिये यदि किसी राज्यशासनमें प्रयत्न हो रहे होंगे, तो वे केवल रूसके साम्यवादमें ही हो रहे थे। आगे वह रूसी राष्ट्र क्या करेगा, इसका पता किसीको इस समय लगनेवाला नहीं है। तथापि साम्यवादको छोड़ा जाय, तो शेष शासनोंमें गरीब प्रजाके कष्टोंको दूर करनेकी बात नाम-मात्र भी नहीं है।

उक्त चार राष्ट्रोंमें ये चार मत इस समय प्रचलित हैं। आज ये ही इनके चार धर्ममत हुए हैं। इन चार मतोंमें इस समय जीवन-मरणका महासंग्राम चला है। क्या इनमें समझौता होकर चारों मतोंका समन्वय हो सकता है? पाठको, विचार कीजिये। इसका विचार होनेसे धर्मोंका समन्वय होगा या नहीं होगा, इसका भी निर्णय हो सकता है।

थोड़ेसे विचारसे ज्ञात होगा कि, इन चार राष्ट्रशासनवादोंमें समझौता होकर इनका समन्वय होना एक असम्भव-सी बात है। साम्यवादी रूस, पूंजीपतियोंकी सुरक्षा करनेवाले इंग्लैंड-अमेरिका के साथ समझौता करे तो किस तरह करे। मानवोंकी समता ही साम्यवादका मुख्य सूत्र है और पूंजीपतियोंकी सुरक्षा इंग्लैंड-अमेरिका का साध्य है। इन दो मतोंमें समझौता होना सम्भव ही नहीं है। रूसकी और इनकी इस समय मित्रता है, वह युद्धके लिये ही है। युद्ध होने

के पश्चात् यदि दोनों राष्ट्रोंकी शासनप्रणालीमें समन्वय बना, तो या तो साम्यवाद मरेगा अथवा पूंजीपतियोंकी सुरक्षा नहीं रहेगी ; क्यों कि ये मत परस्पर के विघातक हैं।

इसी तरह जर्मनीके राष्ट्रीय समाजवादके साथ रूसके साम्यवादका भी समझौता होना असम्भव है ; क्यों कि राष्ट्रीयसमाजवादमें श्रेष्ठ जातिकी सुरक्षा करना ध्येय है और रूसमें सब मानव 'सम' माने जाते हैं। अर्थात् उक्त चार मतोंमें समझौता होना और समन्वय बनना असम्भव है।

पतिव्रता और वारयोषिता का समन्वय।

जिस तरह पतिव्रता और वारयोषिताके कर्त्तव्योंमें समन्वयके लिये स्थान नहीं है, एक दूसरेके आचारका स्वीकार करनेसे एकका नाश ही है। इसी तरह उक्त चार शासनवादोंमें तत्त्वनाश किये बिना समन्वय असम्भव है और तत्त्वनाश करने पर, अर्थात् मृत्यु होने पर, समझौता होनेका कुछ भी अर्थ नहीं है। धर्ममतोंमें तत्त्वनाशका तात्पर्य मृत्यु ही है। अपने तत्त्वोंका त्याग करके किसी अन्य मतवालोंसे समन्वय करना आत्मघात ही करना है। यदि अपने तत्त्वोंको सुरक्षित रखना हो, तो वैसी अवस्थामें भी समन्वय असम्भव है। भूमण्डलपर आज जो धर्म हैं वे वैसे ही रहेंगे, तो समन्वयका अर्थ ही क्या है ? अर्थात् दोनों अवस्थाओं में समन्वय असम्भव है, ऐसा प्रतीत होता है।

धर्मोंके समन्वयका सम्भव

उक्त राष्ट्रवादोंमें किसीके मुख्य मन्तव्योंके त्याग करनेके बिना समन्वय असम्भव है, यह हमने देखा। अब हम संसारके धर्मोंका समन्वय होना संभव है या नहीं, इसका विचार करते हैं।

आज कल कई लोग चाहते हैं कि नाना धर्मोंमें जो जो कलह हो रहे हैं, वे मिट जांय और शान्तिकी स्थापना हो। इस सदिच्छासे धर्मोंका समन्वय करनेकी इच्छा ये लोग करते हैं। इसलिये इनसे निवेदन इतना ही है कि एक दो या दस पांच सदिच्छावाले मनुष्योंने सब धर्मोंके उत्तम तत्त्वोंका संग्रह करके एक धर्मग्रन्थ बना भी दिया, तो वह सबका समन्वय नहीं होगा। उसको सब धर्मवालोंकी मान्यता चाहिये। यह मान्यता मिलनेवाली नहीं है।

थियासफीने गत साठ वर्षोंमें इस तरहके विशाल प्रयत्न किये, पर उनका कोई इष्ट परिणाम नहीं हुआ। इनसे अधिक प्रयत्नशील और उत्साही 'सर्व धर्म समान हैं' ऐसा कहते रहेंगे, तो भी उनके प्रयत्नोंका फल वैसा ही होगा। इसका मूल कारण यही है कि, दो धर्मोंके समन्वयमें दोनोंको मूल मन्तव्योंका त्याग करना होता है और ऐसा मन्तव्योंका त्याग मृत्युके समान ही माना जाता है।

कई लोग आचार-धर्मको ही धर्म मानते हैं और उनमें सब धर्मोंकी समानता है, ऐसा वर्णन करते हैं। पर उत्तम जलसे स्नान करना, उत्तम अन्न खाना, शुद्ध जल पीना, शान्तिसे सोना इस तरह आचारकी समानता हो सकेगी, ऐसा मानने पर भी आत्मोन्नतिके मन्तव्योंमें विभेद रहते हैं और ये भेद ऐसे हैं कि उनमें समन्वय कठिन है। इसलिये जो बड़े विचारक केवल सदाचारवादका समन्वय करनेसे 'हमने धर्मोंका समन्वय किया' ऐसा मानते हैं, वे अपने आपको धोखा देते हैं और दूसरोंको भी धोखा देते हैं।

आचारवादका सम्बन्ध देशकी परिस्थितिसे है; इसलिये विभिन्न देशवासियोंके आचार, व्यवहार विभिन्न होते हैं, अतः उनमें एकता होना असम्भव ही है। पञ्जाबी और मद्रासीके भोजनकी एकता जैसे असम्भव है, वैसे ही रूसी और महाराष्ट्रीयके आचारोंकी एकता करना भी असम्भव है। अर्थात् नाना देशोंकी परिस्थितियां विभिन्न हैं, इस कारण उनके आचार-व्यवहार, रहन-सहन, तथा खान-पानका विभिन्न होना

योग्य ही है। इनमें समन्वयके लिये स्थान ही नहीं है।

वैदिक और अवैदिक धर्ममत

अब हम धर्ममतोंमें समन्वय होनेकी सम्भावना कहां तक है, इसका विचार करते हैं। इस विचारको प्रारम्भ करनेके पूर्व मुख्य धर्मोंके सिद्धान्तोंको नीचे देते हैं।

१ वैदिक धर्म—("पुरुष एव इदं सर्वं"। ऋ० १०-९०-२) ईश्वर ही सब कुछ है। (सर्वं खल्विदं ब्रह्म (उप०) सब ब्रह्म ही है। (वासुदेवः सर्वं। गीता ७-१९) सब वासुदेव है। इस तरह सब संसारमें जो भी कुछ है, वह सब परमात्माका स्वरूप है। वैदिक धर्मका यह मुख्य सिद्धान्त है। (एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति। ऋ० १-१६४-४६) एक ही सत् है, ज्ञानी लोग उस एक सत्का अग्नि, इन्द्र आदि अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं। (नेह नाना अस्ति किंचन। उप०) यहां अनेक पदार्थ नहीं हैं। वैदिक धर्मका यह 'सदैक्य वाद' है। एक ही सत् है और उस एक ही सत्के अनेक रूप हुए हैं, जिनका नाम संसार है. अर्थात् सब संसार एक ही परमात्माका रूप है।

यह वैदिक "साम्यवाद" है। यदि रूसके साम्य-वादी, मानवोंमें समता मानते हैं, तो वैदिक साम्यवादी मानवों, पशु-पक्षियों, वृक्ष-वनस्पतियों और स्थावरोंमें समता मानते हैं! अर्थात् वैदिक साम्यवाद पराकोटिका उच्च साम्यवाद है। सब वस्तुमात्रको ब्रह्मरूप मानकर उनके साथ सुयोग्य व्यवहार करना यह इस वैदिक साम्यवादका ध्येय है।

जिस कारण सब संसार 'ब्रह्मका ही रूप' है, उस कारण यह सब विश्व, सब संसार, ब्रह्मरूप होनेसे आनन्दमय अथवा सुखमय है। सत्-चित्-आनन्दमय यह विश्व है। यही ईश्वरका रूप सब मानवोंका 'उपास्य देव' है। इसी ईश्वरकी आंखें, चन्द्र सूर्य हैं, प्राण, वायु हैं; अग्नि, मुख है; दिशा, कर्ण हैं; अन्तरिक्ष, उदर है; वृक्ष-वनस्पति, केश हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ही इस परमेश्वरके सिर बाहु उदर और पाँव हैं। इस तरह यही नारायण सब मानवोंका उपास्य है (ऋ० १०-९०)। यह ईश्वर प्रत्यक्ष दीखनेवाला, जिसके साथ सोते जागते मानवोंका सब व्यवहार हो रहा है। ऐसा यह ईश्वर वेद प्रतिपाद्य है और वैदिक धर्मियोंका यही एकमात्र उपास्य है।

वैदिक-धर्मी मनुष्य सब विश्वको अपना उपास्य नारायण अनुभव करता है और स्वकर्मसे इसकी पूजा करना, इसका सत्कार करना अपना कर्त्तव्य जानता है। (भ० गी० १८-४६) वह किसी वस्तुको तुच्छ, हीन, मान नहीं सकता; क्यों कि सम्पूर्ण विश्वरूपमें उसका उपास्यदेव उसके सन्मुख उपस्थित है। ज्ञानी ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता, चांडाल इन सबको समान-तया ब्रह्मरूप वह मानता है (भ० गी० ५-१८) और सबके साथ वह अनुरूप समवृत्तिसे वर्ताव करता है।

जैन और बौद्धधर्म—जैन और बौद्ध मतोंमें यह संसार शून्यसे उत्पन्न हुआ है, दुःखमय है, अशाश्वत है। यह विश्व असार है, यह सब आपत्तियोंकी जड़ है। इससे छुटकारा पानेके लिये जन्म न लेनेके उपायोंका अवलम्बन करना चाहिये। मानव शरीर विष्टा-मूत्रका गोला है, यह जीवन दुःखका हेतु है, इसलिये शरीर धारण करनेका जो हेतु है, उसीका उच्छेद करना चाहिये।

ख्रिस्तधर्म—ख्रिस्तधर्म पर भी बुद्ध-धर्मका परि-णाम है। इसलिये इस मतमें भी वैसे ही मन्तव्य हैं। पर ये एक जन्मवादी हैं। बुद्धोंके समान ये पुनर्जन्मको नहीं मानते।

मुसलमान धर्म—मोहमदियोंका धर्म भी उक्त ख्रिस्त धर्मके समान ही है। अर्थात् इन दोनों धर्मोंमें (१) तीसरे आसमानमें प्रभुका रहना (२) प्रेषितके ऊपर अखण्ड विश्वास रखनेसे मानवोंका तारण होना और

(३) धर्मग्रन्थका असीम प्रामाण्य मानना आवश्यक है। एक जन्मवादी ही ये हैं।

जैन, बौद्ध, ख्रिस्ती और मोहम्मदीय, ये सब जगत् को तुच्छ मानते और उससे निवृत्त होनेका उपदेश करते हैं। इनमेंसे एक भी मत ऐसा नहीं है कि "जो सम्पूर्ण विश्वको ब्रह्मरूप मानता हो और ब्रह्मरूप माननेके कारण आनन्दमय भी मानता हो"।

वैदिक धर्म ही एक ऐसा धर्म है कि जो सब विश्व को ब्रह्मका रूप मानता है और सच्चिदानन्दमय मानता है। सब अन्य धर्म जगत्को दुःखमय मानते हैं। अब विचार करना है कि इनमें समन्वय किस तरह होगा?

वैदिकधर्मी जिस समय विश्वको दुःखमय मानेगा और ब्रह्मका रूप मानना छोड़ेगा, उसी समय वह वैदिकधर्मी नहीं रहेगा। तथा जिस समय वे अन्य धर्मवाले विश्वको आनन्दसे परिपूर्ण मानने लगेंगे, उस समय वे भी अपने धर्मोंका नाश करके वैदिक धर्ममें प्रविष्ट होंगे।

जो 'पौराणिक' मत विश्वको दुःखमय मानते हैं और विश्वसे सर्वथा पृथक् सुदूरवर्ती ईश्वरको मानते हैं, उनका भी समावेश उक्त अवैदिक धर्ममें हमने किया है, ऐसा पाठक यहाँ समझें। अर्थात् हमने भूमण्डलपरके सब धर्मोंके केवल दो ही विभाग अपने अपने विषयके प्रतिपादनके लिये किये हैं—

१ वैदिक धर्म—जो 'विश्वको ब्रह्मका रूप मानते हैं' और उस कारण, विश्वसेवा ही अपना धर्म समझते हैं।

२ अन्य धर्म--जो विश्वको ईश्वरसे सर्वथा भिन्न मानते और उस कारण, जगत्को तुच्छ समझते हैं।

प्रायः सब प्रचलित धर्म जगत्को तुच्छ माननेवालों के ही हैं। 'वैदिक धर्म' इस समय प्रचलित धर्म नहीं है।' हिन्दू अपने आपको वैदिक-धर्मी मानते हैं, पर उनके आचरण वैदिक धर्मके अनुकूल नहीं हैं। कुछ थोड़े विद्वान् संन्यासी हैं जो 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' मानते हैं; पर सर्व-साधारण हिन्दू-जनता जैन, बौद्धोंके अवैदिक विचारधारासे पूर्णतया ग्रस्त हुई है। अर्थात् जिसको हम यहां 'वैदिक धर्म' नामसे पुकार रहे हैं, वह धर्म केवल वेद और कुछ उपनिषदोंमें लिखित धर्म है। पर वह इस समय ग्रन्थमें ही है; परन्तु वह विशिष्टतापूर्ण धर्म है।

क्या इस वैदिक धर्मका समन्वय अन्य धर्मियोंसे हो सकता है! और हो सकता है तो कैसे हो सकता है? यह हमारे सामने प्रश्न है। जो समन्वयके इच्छुक हैं वे इनके विभिन्न मन्तव्योंका अवश्य विचार करें। हम इसी बातको अधिक स्पष्ट करनेके लिये वैदिक और अवैदिक धर्मोंके मन्तव्योंके परिणामोंको स्पष्ट शब्दोंमें लिख देते हैं। जो पाठक समन्वय करनेके इच्छुक हैं, वे इन मन्तव्योंके परिणामोंका विचार करें और पश्चात् समन्वयका यत्न करें। समन्वय करनेसे किसका क्या जायगा और किसका क्या लाभ होगा यही यहाँ विचारणीय है।

### मन्तव्योंकी भिन्नता

वैदिक-धर्मी अपने आपको विश्वरूपी ईश्वरका अंश देखता है और अनुभव करता है। ईश्वरसे अपना अनन्य भाव जानता और समझता है। विश्वरूपी ईश्वरके सच्चिदानन्द स्वभावको अपने अन्दर देखता है, और ईश्वरसे अपनी अनन्यताको देखता है, और सदा आनन्दमग्न रहता है।

अंशकी कृतकृत्यता अंशीकी सेवासे है, यह वैदिकधर्मी जानता है और विश्वसेवा यावज्जीव करके कृतकृत्य होता है। वैदिकधर्मीके लिये इस तरह मृत्युका भय नहीं है, नहीं शरीर धारण दुःखका हेतु है।

ब्रह्मका अंश ३३ देवताओंके ३३ अंशोंके साथ आता है और शरीर धारण करता है। इस तरह अपने शरीरमें इतने देवतांशोंका वह अनुभव करता है, इस

लिये उसके लिये यह शरीर इतने देवताओंका मन्दिर है। अपने शरीरको वैदिकधर्मी 'देवता-मन्दिर' मानता है और सच्चा देवता-मन्दिर बनानेका अनुष्ठान करता है।

वैदिकधर्मी आनन्त्य प्राप्तिको मुक्ति मानता है। आनन्त्य प्राप्तिके दो साधन वैदिक धर्ममें हैं। एक मार्ग सन्तानपरंपराकी अखण्डिततासे सिद्ध होता है। 'प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्यां (ऋ० ५।४।१०) सन्तान परम्परासे अमरत्वकी प्राप्ति होती है; सन्तानपरम्परा अखण्डित रहे और परम्परया शुभ सन्तान उत्पन्न होता जाय, इस तरह गुणोत्कर्षका साधन करना इस मन्तव्यमें है।

पिताका पुनर्जन्म पुत्र-रूपसे होता है। पुत्र ही पिताका पुनर्जन्मसे प्राप्त द्वितीय देह है (मनु० ९।८) वैदिक धर्ममें स्त्रीके लिये पूज्य स्थान है, स्त्रीकी ओर घृणाकी दृष्टिसे देखनेका कार्य वैदिकधर्मीसे होना असम्भव है, क्योंकि जिस स्त्रीकी सहायतासे ३३ देवताओंका मन्दिर निर्माण होता है और सन्तानद्वारा आनन्त्य प्राप्त होता है वह स्त्री मलिन नहीं है। वह पुरुषकी 'शक्ति' है। इस शक्तिसे ही यह आनन्त्य हो सकता है। इसमें सुप्रजा उत्पन्न करनेका भार गृहस्थ पर है।

शिष्य-परम्परासे भी आनन्त्य इसी तरह, ब्रह्मचारी और संन्यासी प्राप्त कर सकते हैं।

इस तरह प्रति पुश्त ४ सन्तान हुए, तो करीब बीस पुश्तोंमें दो सौ करोड़ तक सन्तान-परम्परया अथवा शिष्य-परम्परया आनन्त्यकी सिद्धता हो जाती है।

अब पाठक इसकी तुलना शून्यवादी, दुःखवादी या क्षणभंगुर-वादियोंके मन्तव्योंसे करें। इनके मतसे जगत् दुःखमय है, क्षणभंगुर है, देह पीबका गोला है, जन्म ही पापका परिणाम है, स्त्री पापकी खान है। इनका अनुष्ठान शरीरको सुखाना, कृश करना और मरना है। सन्तान होना भी पाप है। जन्मसे दुःख है। जगत् शैतानकी कृति है। यहांसे छुटकारा पाना ही इनका पुरुषार्थ है।

अब वैदिकधर्मी और अवैदिकधर्मीके मन्तव्योंमें समन्वय किस तरह हो सकता है? पाठक विचार करें और समन्वय असम्भव है, यह जानें।

इस समय वैदिक सिद्धान्त क्वचित् कोई जानते हैं। प्रायः अवैदिक सिद्धान्त ही सब हिन्दुओंने अपनाये हैं। क्वचित् वैदिक 'सदैक्यवाद' को समझता है, पर वह भी आचरणमें जानेसे डरता है। पर जिस समय वैदिक सदैक्यवादको ठीक तरह लोग जानने लगेंगे और आचरण करने लगेंगे, और परमात्माका और अपना अनन्य भाव ठीक तरह समझने लगेंगे, उस समय विश्वकी समस्या उनके सन्मुख सुलझेगी और विश्वकी आनन्दमयता अनुभवमें आ जायगी।

वैदिक धर्म इस समय बहुत थोड़े लोगोंके शब्दोंमें ही केवल रहा है और आचारमें अवैदिक दुःखवाद और सबमें गुरुवाद ही है। इसलिये समन्वयकी संभावना है, ऐसा विद्वान् मान रहे हैं। सब अवैदिक मत-मतान्तरोंका समन्वय होना सम्भव है, यह हमें मालूम है। पर वैदिक 'सर्व-ब्रह्मवाद' का अन्यान्य अवैदिक मतोंके साथ समन्वय नहीं हो सकता; क्योंकि ऐसे समन्वयमें किसी एकका पूर्ण नाश है। समन्वय करनेवाले इस बातको जाननेका यत्न करें।

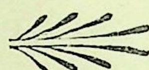
वैदिक धर्म इस समय प्रचलित नहीं है, केवल शब्दोंमें है, ऐसा हमने कहा। इस कारण अनेक विद्वान् हमारे ऊपर क्रोध करेंगे। पर यदि वे देखेंगे कि कितने हिन्दू, जीव-शिवका ऐक्य, अनुभवसे जानते हैं, तब उनका क्रोध दूर होगा। वैदिक 'सदैक्यवाद' के स्थान पर आजके हिन्दू द्वैत, त्रैत, आदि अनेक मतोंको मानते हैं और नाममात्र वेद पर श्रद्धा रखते हैं। 'हिन्दुओंमें

वेदका धर्म जिस समय जागेगा, उस समय वे शक्तिके केन्द्र बनेंगे।' इसलिये हमने कहा कि, इस भूमण्डलपर वैदिक धर्मकी जागृति होनेवाली है; वह इस समय नहीं है।

अस्तु; इस लेखमें हमने यह बताया कि, वैदिक धर्मके साथ अवैदिक मत-मतान्तरोंका समन्वय नहीं हो सकता, क्योंकि इनके मूल मन्तव्य ही मूलतः विभिन्न और परस्पर विरुद्ध हैं। इन धर्मोंकी यह स्थिति जानकर और ठीक तरह समझकर ही समन्वयवादी समन्वयका यत्न करें।



# जिज्ञासा



लेखक—पं० श्रीविष्णुदत्त शुक्ल

इधर दो विशेष संस्थाओंकी सभाओंमें जानेका सुअवसर मिला। दोनों धार्मिक संस्थाएं थीं और दोनोंमें प्रायः एक ही बात कही गयी—संसार असार है, शरीर क्षणभंगुर है, यह सब माया है, पुत्र, कलत्र, धन-सम्पत्ति सबसे विराग ले लो, वितराग बन जाओ आदि आदि; और यह शिक्षा केवल इन्हीं दो सभाओंमें दी गयी हो, और केवल इधर ही दी गयी हो, सो भी बात नहीं। न जाने कितने मत-मतान्तरोंका यही उपदेश है। न जाने कितने धर्मोपदेशक इसी बातकी आवृत्ति किया करते हैं और न जाने कितनी शताब्दियों सहस्राब्दियोंसे इस शिक्षाकी अमृत घुंटी हमारे समाजको पिलायी जा रही है। फिर भी यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि हम इस माया-जालसे, इस संसारकी असारतासे, पुत्र-कलत्रके इस मोहसे, धन-सम्पत्तिके इस लोभसे छुटकारा नहीं पा सके, इच्छापूर्वक अलग नहीं हो सके? यह क्यों?

जब यह प्रश्न सामने आता है तब थोड़ी देरके लिए ठिठक जाना पड़ता है; इन उपदेशोंका प्रभाव क्यों नहीं पड़ता? ज्यों ज्यों ये उपदेश दिये जाते हैं त्यों त्यों इनकी ओरसे अरुचि-सी क्यों उत्पन्न होती जाती है? संसारकी असारताकी अपेक्षा इन उपदेशोंमें ही असारता-सी क्यों दिखलायी पड़ने लगती है? एकके बाद एक, इस प्रकारके प्रश्नोंकी लड़ी-सी बंध जाती है। तो क्या सचमुच ये उपदेश निःसार हैं?

यह माननेको जी नहीं करता। बड़े बड़े सन्तों महात्माओंने अनवरत तपस्या करके जिस वस्तुका अनुसन्धान किया हो, शताब्दियों और सहस्राब्दियोंसे जिनकी प्रतिष्ठा चली आ रही हो, बड़े बड़े विचारक आज भी जिनका लोहा मानते हों, वे उपदेश निःसार हैं; यह कहनेका दुस्साहस वा धृष्टता कौन करे? परन्तु फिर भी मति, भ्रममें पड़ जाती है, उस समय जब यह देखते हैं कि जिस संसारको एक स्थान पर अनित्य, असत्य, माया आदि नामोंसे पुकारा जाता है उसीको अनादि, अनन्त, आदिसे भी संबोधित किया जाता है। जो अनादि है, अनन्त है, वह असत्य और अनित्य कैसे हो सकता है? दोनों बातें एक साथ ही कैसे सम्भव हो गयीं? या हमें स्वयं ही इन शब्दोंके अर्थ करनेमें भ्रम हो रहा है?

जो हो, कहते हैं, किसी पदार्थका नाश कभी नहीं होता। यह क्षणभंगुरता, जो हमें दिखलायी पड़ती है, वास्तविक नहीं है। यह तो रूपका परिवर्तन मात्र है। कहीं रूप-परिवर्तन को ही पदार्थकी अनित्यता और असत्यताका नाम तो नहीं दे दिया गया? मगर यह भी कैसे माना जाय? वे तपस्वी, प्रातः स्मरणीय ऋषि

महर्षि, क्या इतना भी न समझते थे ? सारा उपदेश एक विचित्र पलेली बन जाता है।

अंग्रेजीके एक कविने कहा है—"शोक संतप्त शब्दों में मुझसे यह न कहो कि जीवन एक झूठा सपना है, ....वह सत्य है, प्राणवान् है" आदि आदि। चर्म-चक्षुओंकी स्थूल दृष्टि भी यही साक्षी देती है। जिन वस्तुओंको हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं उन्हें असत्य कहें तो कैसे ? इस प्रकार बड़े असमंजसमें पड़ जाना पड़ता है।

और फिर हम यह भी देखते हैं कि जो सज्जन हमें वीतराग बननेका, मायाके बन्धन तोड़ डालनेका उपदेश देते हैं वे स्वयं भी उसी कीचमें (यदि वह कीच कहा जाय तो) फंसे हुए पाये जाते हैं ; और हम लोगों पर भी इस उपदेशका क्या प्रभाव पड़ता है ? जब मन्दिरमें, धर्म-संघोंमें हम विद्वानोंके उपदेश सुनते रहते हैं तब तो बड़े ध्यानसे उपदेश सुनते रहते हैं। परन्तु मन्दिर या धर्मसंघसे हटकर आगे पैर पड़ते ही वह सारा उपदेश नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और हम इस संसारको असार तो क्या महासारवान् समझ कर अपने नित्य कर्ममें लग जाते हैं। उन उपदेशोंका कोई असर ही नहीं पड़ता है। जो उपदेश वास्तवमें हितकर होते हैं उनका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। तो क्या ये उपदेश हितकर नहीं होते ?

वास्तविकता क्या है ? यह एक बड़ी भारी जिज्ञासा है।

---

##  श्रीराम-स्मरण 

कवयिता प्र० श्री० धर्म-देव, विद्यावाचस्पति, स० मन्त्री सार्व-देशिक आर्य-प्रतिनिधिसभा, देहली।

श्रीराम अभिराम निष्कामकर्मा,
नरश्रेष्ठ सन्निष्ठ नेता सुधर्मा।
तुम्हें भक्ति से हैं सभी याद करते,
तुम्हारे गुणों को स्वजीवन में धरते ॥ १ ॥

महात्मा जितात्मा सदा-सत्यवादी,
न कर्त्तव्य में थे कभी तुम प्रमादी।
इसी से सभी भक्त तेरे बने हैं,
न जाते किसी से सुगुण तव गिने हैं ॥ २ ॥

विनय सत्यनिष्ठा बड़ों की प्रतिष्ठा,
सरलता विमलता स्वकर्त्तव्य निष्ठा।
करें नित्य चिन्तन गुणोंका तुम्हारे,
रहो तुम सदादर्श सज्जन हमारे ॥ ३ ॥

वनोंके सभी कष्ट तुमने सहारे,
सदा सत्यरक्षा यही भाव धारे।
इसी सत्य निष्ठा को हम में जगाओ,
तथा हम से सब दुर्गुणों को भगाओ ॥ ४ ॥

महावीर तुम धीर थे लोकनेता,
खलों के विजेता सुजनदुःख-छेता।
तुम्हारे सदृश धीर हम भी बनेंगे,
सरल सत्यवादी विमल हम बनेंगे ॥ ५ ॥

तुम्हारा सरल प्रेम निष्काम ही था,
न उसमें कपट का ज़रा नाम भी था।
सभी से समप्रेम तुम थे दिखाते,
इसी से ही अस्पृश्यता को हटाते ॥ ६ ॥

सदा पुत्रवत् तुम प्रजा पालते थे,
पिता-मातु-आज्ञा सदा मानते थे।
विशुद्धैकपत्नी-व्रतादर्श तुम थे,
तथा भ्रातृवात्सल्य की मूर्ति तुम थे ॥ ७ ॥

करें प्रार्थना देव से मिल के सारे;
तुम्हारे सरीखे बनें धैर्य्य सारे।
पुनः सत्य बल से उदय देश का हो,
विजय झूठ पर, सत्य का सर्वदा हो ॥ ८ ॥

# दूध बनाम दही

लेखक—श्रीगंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

इसमें तो कोई शक नहीं कि दूध, एक पूर्ण भोजन है, और यही एक ऐसा खाद्य पदार्थ है, जिसमें न्यूनाधिक पाँचो 'विटामिन' (जीवनतत्त्व या खाद्योज) विद्यमान होते हैं, जो मानव-जीवनके लिये अति प्रयोजनीय हैं; इसके अतिरिक्त सद्वैद्योंकी 'सद्यो बलकरं पयः' वाली उक्ति प्रसिद्ध ही है, फिर भी जब, अनुभवों और प्रयोगोंके आधारपर, दूधसे ही बने दहीके गुणोंपर विचार किया जाता है तो दही, मनुष्य जातिके लिये, दूधसे कहीं अधिक गुणकारी और लाभप्रद सिद्ध होता है। पूर्वीय और पश्चिमी विद्वान् दोनों, गम्भीर गवेषणाके बाद इस तथ्यपर पहुंचे हैं कि दही ही वह खाद्य पदार्थ है जिसका प्रयोग कर जनता सम्यक्‌रूपसे स्वास्थ्य लाभ कर सकती है। पहले, पाश्चात्य देशवाले दहीके आश्चर्यजनक गुणोंसे केवल अज्ञान ही नहीं थे, बल्कि उसे घृणाकी दृष्टिसे भी देखते थे; किन्तु जबसे पेरिसके 'पास्तियर इन्स्टीट्यूट' के भूतपूर्व प्रधानाध्यक्ष स्वर्गीय डा० मेचिनकाफ़ने अपने जीवन-पर्यन्त दीर्घ गवेषणा तथा अन्वेषणके बाद इस सत्यका आविष्कार करके नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया कि मानव शरीरमें जितने भी रोग उत्पन्न होते हैं, उन सबका मूल कारण मनुष्यकी पाकस्थलीमें जमा होते रहनेवाले कीटाणु ही हैं, और उन कीटाणुओंके विनाशके लिए उक्त विद्वान डाक्टरने जिस एकमात्र अमोघ एवं अचूक औषधिका आविष्कार किया है, वह है—'लैक्टिक एसिड' जो दही या छाँछमें पूर्ण मात्रामें पाया जाता है; तबसे युरोपवाले दहीसे घृणा करनेके बदले, उससे अतिशय प्रेम करने लगे हैं। इतना ही नहीं, वहाँ अब दही बनानेके सैकड़ों कारखाने भी खुल गये हैं जिनमें हज़ारों मन दही प्रतिदिन तय्यार होता है, और जिसे सभी युरोपियन बड़े शौकसे खाते हैं और लाभ उठाते हैं। हमारे भारतमें तो दही, आदिकालसे, शुभ माना जाता है, और हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंमें स्थान-स्थानपर दहीका ज़िक्र आता है। दहीके बिना छोटी-से-छोटी पूजासे लेकर बड़े-से-बड़ा यज्ञ तक सम्पूर्ण नहीं हो सकता। हमारे यहाँ यह भी परम्परा है कि जब कभी किसीके यहां भोज होता है तो थालीमें दही ज़रूर परसा जाता है, और जब कोई यात्रापर जाता है तो दहीका भोजन अवश्य कर लेता है। उस वक्त दूधका सेवन तो दूर की बात है, उसका दर्शन तक अशुभ माना गया है। इन सब बातोंसे यह सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वज, दहीके स्वास्थ्य-सम्बन्धी उत्तम गुणोंके कारण ही उपरोक्त प्रथाओं एवं नियमोंको अनिवार्य रूपसे चलाये थे।

दही, शारीरिक स्वास्थ्यकी केवल रक्षा ही नहीं करता, अपितु कितनी ही व्याधियोंको नाश करके दीर्घायु भी प्रदान करनेवाला है। शरीर-पोषण के लिये तीन प्रकारके आहारकी आवश्यकता होती है—शरीरकी क्षति पूर्ण करनेवाला, शरीरके स्वाभाविक तापक्रमको उत्पन्न कर उसे स्थिर रखनेवाला, तथा शरीरमें खनिज द्रव्यके रूपमें रासायनिक परिवर्तन करनेवाला आहार; और ये तीनों ही आहार एक दहीसे प्रचुर मात्रामें प्राप्त हो जाते हैं। एक बात और है, प्रयोगोंसे यह सिद्ध हो चुका है कि बड़ी आँतके व्याधिग्रस्त होते ही मनुष्यका स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है, जिसके फलस्वरूप वह मौतकी ओर शीघ्रताके साथ अग्रसर होने लगता है। कारण, बड़ी आंतके अस्वस्थ होते ही, उसमें

विषाक्त कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं, जो दस्त, अपच, अजीर्ण आदि व्याधियोंका सूत्रपात कर बुढ़ापाको जल्दी आमन्त्रिक कर लेते हैं। इस प्रकारके व्याधिग्रस्त आँतको सुधारनेके लिये दही रामबाणका काम करता है, क्योंकि विषाक्तसे-विषाक्त कीटाणु भी दहीका कुछ बिगाड़ नहीं सकते, उल्टे दहीका अम्लतत्त्व स्वयं उनका सत्यानाश कर डालता है। इस प्रकारसे दहीका नियमितरूपसे सेवन कर, बड़ी आँतको बुढ़ापा लानेवाले कीटाणुओंसे सुरक्षित रखते हुये, कोई भी आसानीसे, दीर्घजीवन प्राप्त कर सकता है। उदाहरणार्थ, घड़ियाल, कछुआ, तथा कुछ पक्षी, जिनमें यह आँत होती ही नहीं, और फलतः जिसके विकृत होनेका प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता, बड़ी लम्बी-लम्बी आयुवाले होते हैं।

डाक्टरोंने पता लगाया है कि संसारमें जिन-जिन देशोंके लोग दीर्घजीवी रहे हैं या हैं, उन देशोंके निवासियोंके उत्तम स्वास्थ्यका मूल कारण, केवल दहीका सेवन ही है। बलगेरियाकी पिछली मर्दुमशुमारीसे पता लगा है कि वहां ३५० व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी आयु इस समय १०० वर्षसे भी ऊपर है। वहांके लोगोंके दीर्घजीवी होनेका कारण यही बताया गया है कि वे लोग दही या मट्ठा अधिक सेवन करते हैं। आप अपने ही देशके तिरहुत प्रान्तके मैथिल ब्राह्मणोंको ले लीजिये जो नित्य प्रति अधिक मात्रामें दहीका सेवन करते हैं, जिसके फल स्वरूप प्रायः देखा जाता है कि वे जल्द बूढ़े नहीं होते। और यह कहनेकी तो कोई ज़रूरत ही नहीं जान पड़ती कि जब प्राचीन भारतमें दूध-दही तथा तक्रादिकी नदियां बहती थीं, अर्थात् जब इन वस्तुओंकी यहां पर अधिकता थी तब भारतवासी उनका अधिक मात्रामें सेवन करनेके कारण ही दीर्घजीवी, बली, तथा पराक्रमी हुआ करते थे। आज भी आसाम प्रान्तके एक बड़े ज़मीदार की स्त्री गत १५ वर्षोंसे केवल दही खाकर रह रही है, जिसके कारण उसका, तथा उसके बच्चोंका उत्तम स्वास्थ्य लोगोंके ईर्ष्याका कारण बना हुआ है। इधर कुछ दिनोंसे फ्रांसमें वैज्ञानिक तथा डाक्टरगण दहीका पथ्यरूपमें व्यवहार एवं प्रचार कर अक्षय यशके भागी बन रहे हैं। यूरोपमें तो दहीके चमत्कारिक गुणोंको लेकर आजकल एक हलचल-सी मची हुई है।

दूध, गुणोंमें, दहीसे बिल्कुल भिन्न है। दूधमें अनेक अवगुण पाये गये हैं, जब कि दहीमें एक भी दोष खोजेसे नहीं मिलता। दूधमें कई प्रकारके कीटाणु पाये जाते हैं। उनमेंसे कुछ दूधकी स्निग्धताको पृथक्क करते हैं, और कुछ, दुग्ध-शर्कराको खटाईमें परिवर्तित करते हैं, तथा कुछ, 'एसिटिक' हाइड्रोक्लोरिक' आदि विभिन्न प्रकारके 'एसिड' उत्पन्न करके दूधको जमा देते हैं।

दूधमें, ज्वर, विशूचिका, शीतला तथा अन्य कितने ही संक्रामक रोगोंके जीवाणु, बड़ी सरलताके साथ, थोड़े समयमें उत्पन्न होकर वृद्धिको प्राप्त हो जाते हैं, जब कि दही पर, उसमें स्थित 'हाइड्रोक्लोरिक' और 'लैक्टिट' एसिड आदिके कारण उपरोक्त कीटाणुओंके आक्रमणका कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता, बल्कि उल्टे वे दहीके सम्पर्कमें आते ही विनष्ट हो जाते हैं। अशुद्ध दूधके सेवनसे राजयक्ष्मा जैसा भयंकर और असाध्य रोगके उत्पन्न होनेके कितने ही उदाहरण अब तक मिल चुके हैं। इसके अतिरिक्त दूध, प्रकृतितः भारी और दुष्पाच्य होता है, जब कि दही हल्का और सुपाच्य। आमाशयिक अथवा आन्त्र रोग ग्रस्त रोगियोंके पेटमें पहुंचकर दूधका पाचन भली प्रकार होना असम्भव है, क्योंकि दूधको पचानेके लिये जिस मात्रामें 'हाइड्रोक्लोरिक एसिड' की आवश्यकता होती है, वह उनके अन्दर नहीं पायी जाती। दहीमें मधुरता और अम्लत्व दोनों ही होता है और उचित मात्रामें होता है, इसलिये वह बड़ी सुगमतासे पच जाता है। खाद्य पदार्थोंके अम्लत्व गुणसे शुक्र कीटाणुओंको क्षति पहुंचती है, यह बात

सही है; किन्तु दहीमें खट्टापन और मीठापन दोनों साथ-साथ होनेके कारण, वह शुक्र-कीटाणुओंको हानि पहुंचानेकी जगह उन्हें पुष्ट करता है। दूध यदि धारोष्ण और विशुद्ध न हुआ तो वह स्वस्थ-से-स्वस्थ आंतमें भी कीटाणुओंकी सृष्टि कर सकता है, और दही ठीक इसके विपरीत, करता है उनका विध्वंस। गुर्देकी बीमारियां, मृगी, अपस्मार, हर्निया, तथा बवासीर आदि कुछ ऐसे रोग हैं जिनमें दूध देना, रोगीको ज़हर देनेसे कम भयानक नहीं है। मूत्रग्रन्थियोंके रोगियों को भी दूधका सेवन घातक सिद्ध हो सकता है।

उत्तम स्वास्थ्यके लिये शरीरको नियमित रूपसे 'कैलशियम' मिलना अत्यन्त आवश्यक है। बच्चों, गर्भवती स्त्रियों, दूध पिलानेवाली माताओं, और किसी भी कठिन रोगसे उठे हुये मनुष्यके लिये तो 'कैलशियम' तत्त्वकी आवश्यकता अत्यधिक बढ़ जाती है। केवल इसी एक तत्त्वकी कमीके कारण, शरीरमें कई प्रकारके रोग हो जाते हैं, जैसे फेफड़ेके रोग, दाँतोंकी कमजोरी इत्यादि। यह आवश्यक तत्त्व, दहीमें दूधसे लगभग अठारहगुना अधिक पाया जाता है। इस दृष्टिसे भी दही, दूधसे अधिक उपयोगी सिद्ध होती है।

दूधकी भांति, दूधसे निकला मक्खन भी दहीकी बराबरी नहीं कर सकता। इस कथनकी पुष्टिमें एक पाश्चात्य विद्वान प्रो० सार्थ के अनुभव पठनीय हैं। वह लिखता है—"मैं प्रयोगों द्वारा इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि मक्खन विषम ज्वरका मुख्य कारण होता है। मैंने भिन्न भिन्न प्रकारके मक्खन देखे हैं, जिनमें विषम ज्वरके कीटाणु पाये गये हैं। उसकी वजह यह है कि मक्खनमें जितना 'एसिड' होना चाहिये, उतना नहीं होता। मक्खनमें विषम ज्वरके कीटाणुओंके अतिरिक्त और कितने ही प्रकारके अन्य कीटाणु भी पाये गये हैं जिनसे विभिन्न प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति हो सकती है। इसलिये मक्खन खानेवालोंको चाहिये कि वे मक्खन न खायँ, बल्कि उसका घी बनाकर खायँ। ऐसा करनेसे मक्खनमें पाये जानेवाले कीटाणुओंका भय जाता रहेगा।

इसके विपरीत, दहीकी भाँति दहीसे बने तक्र, मट्ठा आदिकी, वैद्यक शास्त्रोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। तक्रको यदि मृत्यु-लोकका अमृत कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। तक्रका विधिवत् और उचित मात्रामें सेवन, स्वास्थ्यवर्द्धक एवं सुदीर्घ आयु प्रदान करनेवाला होता है। यदि इसे प्रति दिन सेवन किया जाय तो मनुष्य कदाचित् ही कभी बीमार हो। बुढ़ापेमें भी तक्रसेवी मनुष्यकी शारीरिक स्फूर्ति तथा मस्तिष्क सम्बन्धी सचेतनता पूर्ण मात्रामें विद्यमान रहती है। आयुर्वेदके ज्ञाता भली भाँति जानते हैं:—

'न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्,
न तक्रदग्धा प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं सुपेयम्,
तथा नराणाम् भुवि तक्रमाहुः ॥

अर्थात् तक्रसेवी कभी रोगी नहीं होता। जो रोग तक्रके सेवनसे एक बार नष्ट हो जाते हैं, वे फिर कभी उत्पन्न नहीं होते। जिस प्रकार देवलोकमें अमृत सर्वोत्तम पेय पदार्थ माना जाता है, उसी प्रकार मनुष्योंके लिये पृथ्वीपर तक्र है।

दहीके विषयमें सुश्रुत लिखता है—'दही सामान्यतः मधुर और खट्टा होता है। कषाय इसका अनुरस, गौण रस है। यह स्निग्ध होता है। पीनस, विषम ज्वर, अतिसार, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, और कृशताको दूर करता है। यह वीर्य्यको बढ़ानेवाला, बलकारक, तथा मंगल द्रव्य है।

अन्य वैद्यक ग्रन्थोंमें लेख है—'दही स्वादिष्ट, पाचन शक्तिको बढ़ानेवाला, जिगरको बल प्रदान करनेवाला, चिकना, रुचिकारक, वायुनाशक, मांगलिक तथा अत्यन्त पौष्टिक होता है।

इसके अतिरिक्त, रक्तकी कमी और शारीरिक दौर्बल्यसे पीड़ित व्यक्तियोंके लिये दही अमृत है। भयानक ज्वरमें भी दहीका व्यवहार करनेसे न चूकिये। ऐसा करनेसे ज्वरका विष शीघ्रातिशीघ्र बाहर हो जावेगा। आन्त्रशोथ, प्रवाहिक संग्रहणी, तथा स्नायविक दौर्बल्यमें दही बड़ा लाभ करता है। जिनके पेटमें तिल्ली और कीड़े हों, जिनका शरीर चर्बी बढ़ जानेके कारण मोटा हो गया हो, जिनको भोजनका स्वाद न मिलता हो या भूख कम लगती हो, तथा अधिक घी खानेसे जिनको अजीर्ण हो गया हो, ऐसे व्यक्तियों को दहीके सेवनसे आश्चर्यजनक लाभ पहुंचता है। दही त्रिदोष-नाशक भी है। अमेरिकाके जगद्विख्यात धन-कुबेर राकफेलर, जब अजीर्ण रोगसे पीड़ित हुये थे, और सब दवाई करके थक गये थे, तो अन्तमें इसी दही और तक्रने उन्हें इस भयानक रोगसे मुक्ति दी थी। दहीको शरीरपर मलकर स्नान करनेसे त्वचाकी कोमलता और उसकी कान्तिमें काफ़ी परिवर्तन हो जाता है। दाँतोंकी बीमारियोंमें भी दहीका सेवन लाभप्रद है। भोजनके अन्तमें नियमपूर्वक इसका सेवन करनेसे उदर-विकारोंका शमन होता है। दहीकी लस्सी शुद्ध मधु डालकर दिनमें दो बार पीनेसे स्वास्थ्य एवं सौन्दर्यमें आश्चर्यजनक वृद्धि होती है। शक्करके साथ दहीका सेवन करनेसे तृषा, रक्त-पित्त तथा दाह दूर होता है। गुड़ मिलाकर दहीका सेवन करना वात-नाशक है। किन्तु साधारण तौरपर दही लेते वक्त यदि उसमें शक्कर, नमक आदि कुछ भी न मिलाया जाय तो अति उत्तम है। क्योंकि किसी अन्य पदार्थके मिश्रणसे दही अपना हलकापन खो बैठता है और भारी हो जाता है।

दही पाँच प्रकारका होता है—मन्द, स्वादु, स्वाद्वम्ल, अम्ल, तथा अत्यम्ल।

मंद दही वह है जो दूधके सदृश, अव्यक्त रसवाला और किंचित् गाढ़ा हो। मंद दही दाह उत्पन्न करता है, और वात, पित्त, तथा कफ़के दोषोंको शमन नहीं कर सकता, इसलिये मंद दही नहीं खाना चाहिये।

स्वादु दही वह है जो भलीभांति गाढ़ा, खानेमें स्वादिष्ट, तथा कुछ अम्लरस युक्त हो, इस दहीके सेवन करनेसे जीवनी-शक्ति बढ़ती है। यह वातनाशक होता है, और रक्त-पित्तको भी स्वच्छ करता है। इससे बुद्धिको निर्मलता, तथा चित्तको शान्ति प्राप्त होती है।

जो दही खट्टा-मीठा और गाढ़ा हो उसे स्वाद्वम्ल कहते हैं। स्वाद भी उसका कुछ खराब हो जाता है। इसके गुण साधारण हैं, और यह स्वादु दहीकी भांति उपयोगी नहीं होता।

जिस दहीमेंसे मीठापन जा रहा हो, और केवल खट्टापन ही शेष रह जाय, उसे अम्ल कहते हैं। अम्ल दहीमें यदि नमक, मिर्च, मसाला, इत्यादि मिलाकर खाया जाय तो उससे अग्नि प्रदीप्त होती है, तथा वह पित्त व रक्तको बढ़ानेवाला भी होता है। फिर भी जितने गुण स्वादु दहीमें होते हैं उतने इसमें नहीं होते।

अत्यम्ल दही खट्टापन पैदा करनेवाला होता है। इसके खानेसे दाँत तक खट्टे हो जाते हैं। इस दहीसे रक्त-विकार होनेकी सम्भावना रहती है, इसलिये यह त्याज्य है।

गायका दही सर्वोत्तम होता है। यह विशेषतया मीठा, रुचिकारक, अग्नि-प्रदीपक, हृदयको प्रिय, पुष्टि-कारक, वातनाशक, तथा समस्त शारीरिक धातुओंको पुष्ट करने वाला होता है। बकरीका दही भी अच्छा होता है। भैंसका दही कफकारक, वात व पित्त नाशक, भारी और रक्त विकार नाशक है। अतिसार और संग्रहणीके रोगियोंके लिये यह दही अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है। कुछ लोगोंका विचार है कि वर्षा ऋतु, विशेषकर भादोंमासमें दही खाना हानि-कारक होता है, पर यह केवल भ्रम है। वर्षा ऋतुमें

ही दही खाना तो विशेष उपयोगी एवं लाभकारी है। हां, रातमें यदि दही न खाया जाय तो उत्तम है, विशेष कर रोगियोंको रातमें दही नहीं खानी चाहिये, क्यों कि रातमें दही खानेसे कफ़ पैदा होता है।

दही अकेले ही खाना अति उत्तम है। दहीके साथ केला, बड़हल, गर्म पदार्थ, चिड़ियोंका गोस्त, मछली एवं मूली खाना विवर्जित है। इससे रोग पैदा होता है। कार्बोज वाले खाद्य पदार्थों तथा मीठे मेवों एवं फलोंके साथ भी दहीका मेल ठीक नहीं, ऐसा आहार-विशेषज्ञों का मत है। इस तरहसे भात, रोटी, चीनी, कंदभाजियां, आम, तथा किशमिश आदि दहीके साथ नहीं खाने चाहिये। दूध और दही साथ-साथ खाना लाभप्रद है। इसी तरह कच्ची या रांधी साक-सब्ज़ियोंके साथ दही का मेल खूब बैठता है। ताजे फलोंके साथ भी दही उपयोगी सिद्ध होता है। चनेकी रोटी या गाढ़ी दालों के साथ दही शीघ्र पचता है, और लाभ करता है। द्विदल सभी अनाज—मूंग, मसूर, अरहर उर्द, मटर, सोयाबीन, तिल, बादाम, मूंगफली आदि दहीके साथ खानेसे बड़ा लाभ करते हैं।*

* लेखककी अप्रकाशित पुस्तक 'प्राकृतिक आहार विज्ञान' का एक अंश। —ले०

# भक्तियोग

( ले०—म० म० श्रीगोपाल-शास्त्री 'दर्शनकेशरी'
लक्ष्मीकुण्ड, काशी )

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता, नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं, कर्म च, भक्तिश्च, नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥
( भा० ११-२०-६ )

भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवसे मनुष्यमात्रके शाश्वतिक श्रेयः ( परमोच्चकल्याण ) के तीन मार्ग बताये हैं। १ ज्ञानयोग, २ कर्मयोग, ३ भक्तियोग। इन तीनों योगोंमें आज मैं 'सात्त्विक-जीवन' के पाठकोंके सामने 'भक्तियोग'का शास्त्रीय स्वरूप उपस्थित करना चाहता हूं।

आजकल लोगोंमें भक्तिका स्वरूप यही प्रसिद्ध है कि, संसारके सभी कार्योंसे विरक्त होकर, साधु बन, किसी तीर्थमें निवास करना और रात दिन हाथमें माला लेकर भगवान्का नाम जपना, मन्दिरोंमें दर्शन करते फिरना, आज अमुक मन्दिरमें श्रृङ्गार है, तो कल अमुक मन्दिरमें झांकी होगी, इन्हीं उत्सवोंमें अपनेको रात-दिन फंसाए रखना; जगतका कोई काम नहीं करना। इसी समाजको आजकल भक्त-समाज कहते हैं। सिर्फ़ भगवान्की भक्तिका ही पेशा करनेवाला एक बड़ा भारी गरोह है जिसे वैरागी-साधु-समाज कहते हैं। आज तो उत्तम भक्त वही कहा जाता है, जिसकी चर्चा ऐसी होती हो कि—"सेठजी तो बड़े भक्त आदमी हैं। उनको संसारी जीवोंसे क्या मतलब; वह तो रात-दिन भगवान्के पूजन-दर्शनमें ही लगे रहते हैं। वह किसीसे बात तक तो करते ही नहीं। उनको पब्लिक-कामोंसे क्या मतलब; वह तो भगवान्में लीन रहते हैं। उनके समान भक्त, आज कोई दुनियामें नहीं है इत्यादि।

ऐसी परिस्थितिमें यह आवश्यक प्रतीत होता है कि भक्ति-शास्त्रोंमें भक्तिका क्या स्वरूप बताया गया है; इस पर कुछ प्रकाश डाला जाय।

भागवतके तृतीय स्कन्धमें भक्तियोगके स्वरूपका

दिग्दर्शन स्वयं कपिलजीने अपनी माता देवहूतिसे किया है-- ।

"अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्,
हित्वार्चां भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोति सः ।"
"अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयाऽनघे,
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ।"
"अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्
अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा ।"

( भा० ३।२९।२१-२७ )

अर्थ – मैं तो सभी प्राणियोंमें जीव रूपसे बैठा ही रहता हूं। परन्तु अल्पज्ञ मानव, वहां मेरा अपमान करके झूठे मन्दिरोंमें पूजा करता फिरता है। जो सब प्राणियोंमें रहनेवाले ईश्वरको छोड़कर मूर्खतावश मन्दिरोंमें शृङ्गार, झांकी देखता फिरता है, वह तो भस्ममें हवनके समान व्यर्थ काम करता है। जो प्राणियोंके उपकारको छोड़कर उल्टे उनका तिरस्कार करता है, और बड़ी बड़ी सामग्रियोंसे मन्दिरोंमें मेरी पूजा करता फिरता है ; मैं उसपर कभी भी प्रसन्न नहीं होता ; इसलिये सब प्राणियोंमें रहनेवाले मुझको दान तथा सत्कार द्वारा पूजन करे ; अर्थात् जीवोंका उपकार करे, उनको सन्तुष्ट करे इत्यादि। यही स्वयं भगवान्ने अपनी भक्तिका स्वरूप बताया है। महाभारतमें भी एक जगह लिखा है —

अपहाय निजं कर्म, कृष्ण-कृष्णेति वादिनः,
ते हरेर्द्वेषिणः पापाः कर्मार्थं जन्म यद्धरेः ।

अर्थ--जो अपने कर्तव्य कर्मोंको छोड़कर केवल कृष्ण कृष्ण जपा करते हैं, वे तो भगवान्के द्वेषी हैं क्योंकि भगवान्का भी तो अवतार कर्म ही करनेके लिये होता है ; इत्यादि ।

वस्तुतः भगवान्की सच्ची भक्ति तो अपने कर्तव्यों-का पूरे तौरसे पालन करना ही है। इसी बातको सभी शास्त्रोंमें स्पष्टतः कहा है। योगसूत्रके भाष्यमें व्यासजीने "तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः" ( २।१ ) इस सूत्रका भाष्य करते हुए 'ईश्वर-प्रणिधान' शब्दका अर्थ यों किया है—तस्मिन् परमगुरौ परमेश्वरे स्वकृत-कर्मणां फलसमर्पणम् ईश्वर-प्रणिधानम्" अर्थात् उस परमपिता परमात्माको अपने कर्त्तव्य कर्मोंद्वारा सन्तुष्ट करना ही तो 'ईश्वर-प्रणिधान, ईश्वरभक्ति है। इसी बातको गीता ऐसे पवित्र उपनिषत्सार ग्रन्थमें स्वयं भगवान् कहते हैं –

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ;
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।

जिस ईश्वरसे सभी प्राणियोंकी पैदाइश है, और जिसने इस सारे पसारेको फैलाया है, अपने कर्त्तव्य-कर्मोंसे ही उसकी पूजा करके मनुष्य, सिद्धि पा सकता है। सभी शास्त्रोंके निचोड़ रूपमें कहिये तो अपने कर्त्तव्य कर्मोंको पूरी तौरसे सम्पादन करते हुए सभी प्राणियोंका यथाशक्ति उपकार करते रहना, यही भक्तिका सच्चा स्वरूप मेरी दृष्टिमें प्रतीत होता है ; दूर जानेकी कहीं जरूरत ही नहीं है। जहां इस भक्ति योगका प्रतिपादन है, वहां ही ११ एकादश अध्याय भागवतमें श्रीकृष्णजी उद्धवसे कहते हैं कि—

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥

भा० ११।२।४५

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति ।
विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः ॥

भा० ११।२।४८

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे ।
नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥

भा० ११।३।४६

स्वकर्मस्थो यजन् यज्ञैरनाशीःकाम उद्धवः ।
न याति स्वर्ग नरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥
भा० ११।२०।२४

जो सभी प्राणियोंमें मुझे ही देखता है और सब प्राणियोंको भी मेरेमें ही देखता है, वही मेरा (भगवान्का) सर्वश्रेष्ठ भक्त है (४५) जो इन्द्रियों द्वारा सब कर्त्तव्य कर्मोंको करता हुआ भी किसीसे राग द्वेष नहीं रखता; संसारको भगवान्की माया समझता है; वही श्रेष्ठ भगवद्भक्त कहाता है (४८) जो निःसङ्ग होकर कर्तव्य रूपसे अपने जिम्मे प्राप्त वेदोक्त कर्मोंको ईश्वरार्पण-बुद्धिसे किया करता है। वह अवश्य मुक्त होता है। कर्मोंका जो फल बताया है वह तो सिर्फ कर्मोंमें प्रवृत्ति करानेके लिये बढ़ावा दिया गया है। (४६)

जो अपने कर्त्तव्य कर्मोंपर दृढ़ रहता हुआ निःसङ्ग होकर परोपकार, देशाभ्युदय-साधक कर्मों (यज्ञों) को किया करता है, वह स्वर्ग, नरक न जाकर मुक्त हो जाता है। और कुछ न भी करे तो भी। (२०) इत्यादि भक्तिके प्रतिपादकग्रन्थ भागवतमें ही भक्तिका क्या स्वरूप बताया है और आजकल हमारे देशमें भक्तिका कैसा विकृत स्वरूप हो गया है। यही कारण है कि, देश आज दिनों दिन पतित होता चला जा रहा है। जब इस देशमें भक्तियोग, कर्मयोग और ज्ञानयोगका सच्चा स्वरूप विद्यमान था तभी तक यह देश स्वतन्त्र था। जबसे इन धार्मिक भावोंमें विकार आ गया तभीसे देशकी दुर्दशाका प्रारम्भ है।

देखिये—गोस्वामी तुलसीदास जी भी इसी आशयको रामचन्द्रके द्वारा हनुमानके लिये किये गये उपदेशके रूपमें कहते हैं—

"सो अनन्य जाके असी मति न टरइ हनुमन्त ।
मैं सेवक सचराचर-रूप स्वामि-भगवन्त ।"

अर्थात् हे हनुमान् वही मेरा अनन्य भक्त है, जिसकी ऐसी मति कभी भी नहीं हटती; किन्तु सर्वदा ऐसी ही बुद्धि बनी रहती है कि, मैं सेवक हूं और यह जो चराचर जगत् (मेरा देश) है। यही मेरा स्वामी भगवान् है। इसकी सेवा करना इसके लिये मरना ही सच्ची भगवद्भक्ति है; इत्यादि। यही भाव संस्कृतके सभी धार्मिक पुस्तकोंमें भरा पड़ा है। सिर्फ उसकी ओर दृष्टि डालनेकी आवश्यकता है। बस यह लेख बढ़ न जाय, इस कारण मैं यहां हो समाप्त करता हूं।

# पुष्प

(रचयिता—श्रीमहेन्द्रगिरि गोस्वामी)

पुष्प सुन्दर रूप तेरा,
रूप तेरा जो लखा है, दिल खिंचा है आज मेरा।
पुष्प सुन्दर रूप तेरा ॥

देव-मन्दिर में तू जाता,
ईश को तू खूब भाता।
वह तुझे मस्तक चढ़ाता, देख कर वह रूप तेरा।
पुष्प सुन्दर रूप तेरा ॥

युवतियां जो पास आवैं,
और तेरी गंध पावैं।
तोड़कर माला बनावैं, देखकर वह रूप तेरा।
पुष्प सुन्दर रूप तेरा ॥

तितलियां आकर चमकतीं,
वह तेरा रस पान करतीं।
नित्य तेरा ध्यान धरतीं, देखकर वह रूप तेरा ॥
पुंष्प सुन्दर रूप तेरा ॥



# राष्ट्रभाषा और हिन्दी



लेखक—श्रीअशोक आयुर्वेदालंकार

साहित्य और संस्कृतिका मानव-समाज के विकासमें सदासे एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उन्नत साहित्य जातिके परिष्कृत दिमागका परिचायक है जब कि उच्च संस्कृति जातिकी सुन्दर आत्माका रूप दिखाती है। इन दोनोंका आपसमें घनिष्ट सम्बन्ध है। संसारकी उच्चतम संस्कृतियोंने उन्नत साहित्यको जन्म दिया है और उन्नत साहित्यरूपी जलसे सदा संस्कृति-रूपी लता सींची जाकर लहलहाती चली आई है। उन्नत संस्कृतियोंके आधारमें यही मूलतत्त्व काम करता चला आया है। इससे साहित्यका महत्त्व और भी बढ़ जाता है लेकिन यह संस्कृति वा साहित्यका उत्कर्ष भाषारूपी केन्द्र-विन्दु पर आश्रित हैं। आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्लने स्पष्ट लिखा है कि—"साहित्य किसी जातिकी रक्षित वाणीकी वह परम्परा है जो उसके जीवनके स्वतंत्र स्वरूपकी रक्षा करती हुई जगत्‌की गतिके अनुरूप उत्तरोत्तर उसका अन्तर्विकास करती चलती है। उसके भीतर प्राचीनके साथ नवीन-का इस मात्रामें और इस सफाईके साथ मेल होता चलता है कि उसके दीर्घ इतिहासमें कतिपय विभिन्नताओंके रहते हुए भी यहांसे वहांतक एक ही वस्तुके प्रसारकी नीति होती है और यही साहित्यकी अखण्ड दीर्घ परम्परा ही सभ्यताका लक्षण है। इस प्रकार जातिके विकास एवं उन्नतिका इतिहास देखनेके साथ हमें उसकी भाषाके इतिहासको देखना नहीं भूलना चाहिये।

हमारे व्यावहारिक और भावात्मक जीवनसे जिस भाषाका सम्बन्ध सदासे चला आ रहा है; वह चाहे प्रारम्भमें संस्कृत वा प्राकृत रही हो लेकिन बहुत काल-से यह महत्त्वपूर्ण स्थान हिन्दीको ही दिया गया है। यह वह हिन्दी भाषा है जिसके एक-एक शब्दमें भारतीय विचारोंका, भारतीय संस्कारोंका एवं भारतीयताका चित्र खिंचा हुआ है। यह वह भाषा है जो परमपाविनी भागीरथीके कलकल निनादोंमें, हिमाचलकी उत्तुङ्ग श्रृङ्खलाओंमें, सन-सनकर बहती समीरोंमें, पक्षियोंके मधुर स्वरोंमें प्रतिध्वनित हो रही है। यह वह भाषा है, जो भारतमें बीते हुए स्वर्गीय युगकी याद दिलाती है। यह वह भाषा है जिसके साहित्य-भण्डार-को सूर और तुलसीने भक्तिकी धाराओंसे पवित्र किया; भूषण, बरदाई ने युवक-हृदय में कप-कपी पैदा करनेवाली वीरतापूर्ण कृतियोंसे अलंकृत किया; बिहारी, देव और पद्माकरने जिसमें श्रृङ्गार रसकी वर्षा की और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सरीखे व्यक्तियोंने जिसे आधुनिक युगका आभास दिया। रहीम, रसखान, अकबर, आदि मुस्लिम नीतिकारोंने जिसे अपने सुन्दर भावोंसे सुशोभित किया। आज उस भाषाके नामपर देशमें एक गम्भीर विवाद उपस्थित है।

आजका युग राष्ट्रीयताका युग है, देशकी हरएक विचारधारा आज राष्ट्रीय विचारोंपर आश्रित है। मनुष्यकी प्रत्येक समस्या आज राष्ट्रीयताके आधारपर हल की जाती है। इसलिए आज जब भाषाके प्रश्नपर विचार किया जाता है तो उसमें भी राष्ट्रीयताका ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है। इसका विभाग भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके आधार पर हुआ है, उन प्रत्येक प्रान्तोंमें वहांकी अपनी ही भाषा बोली जाती है। कईयोंका तो अपना पृथक् साहित्य भी है। इस तरहसे एक ही देशमें इतना विभाग होनेसे राष्ट्रीय प्रगतिमें बाधा उपस्थित हो सकती है। इसीलिए ही इस अखण्ड देशकी एक

राष्ट्रीय भाषा, राष्ट्र-भाषा होना आवश्यक है।

राष्ट्रभाषाका यह सवाल अन्य किसी भी देशमें इतनी पेचीदगीसे कभी उपस्थित नहीं हुआ जितना हमारे देशमें उपस्थित हुआ है। इसका एकमात्र कारण यही है कि हमारे देशमें एक ऐसी जाति बस गई है जिसकी अपनी संस्कृति और अपना ही धर्म है। इसलिए देशकी किसी भी समस्याको सुलझानेसे पूर्व हमें उनका ख्याल रखना आवश्यक हो जाता है। इसी लिए इस भाषाके सवाल पर मुस्लिम नेता चिल्ला उठते हैं कि देशकी राष्ट्रभाषा उर्दू ही हो, क्यों कि हिन्दी तो हिन्दुओंकी भाषा है। अतः उर्दू ही राष्ट्रभाषा हो सकती है। ८ करोड़ मुसलमानों पर हिन्दीका राष्ट्रभाषाके रूपमें लादा जाना उनपर अत्याचार है, उनकी संस्कृति वा सभ्यता तथा उनके अस्तित्वको मिटानेका उपक्रम है। इस प्रकार यह भाषा भाषाका सवाल न रह कर संस्कृति व सभ्यता का संघर्ष रह जाता है। युक्तिवाद वा तर्कवादसे दूर यह केवल अंधश्रद्धावाद रह जाता है, जिसका अन्तिम परिणाम अवश्यमेव दुःखदायी है। वस्तुतः हिन्दी वा उर्दू पहिले कभी भी किसी जातिविशेषकी भाषायें न थी, अपितु वे कुछ प्रदेशोंकी भाषायें थी। यदि हिन्दी केवल हिन्दुओंकी भाषा होती तो हमें आज रहीम और रहमानके सुन्दर उपदेश भरे पद्य पढ़नेको न मिलते और नहीं हिन्दू कवि कभी आज उर्दू भाषाकी गोदको इतना भरा पूरा कर सकते। लेकिन बादमें ये दोनों भाषाएँ जाति विशेषकी मान ली गई। हिन्दुओंने हिन्दी को कठिन संस्कृतनिष्ठ बनाकर पल्लवित करनेका प्रयत्न किया वा मुसलमानोंने अरबी वा फारसीके उधारु शब्दोंसे उर्दूकी इस एकरस धारामें विरोध उपस्थित खड़ा किया। इसीसे श्रीजार्ज ग्रियर्सनको उर्दूके बारेमें लिखना पड़ा—"A form of the Hindustani dialect of western Hindi. It's generally written in Persian character and is distinguished by the use of free words borrowed from Persian or Arabic," उर्दूकी इसी प्रवृत्तिने इसे हिन्दीसे—राष्ट्रभाषाके उच्चस्थानसे पृथक् कर दिया।

१६ वीं शताब्दिसे पूर्व हमें मुसलमान कवियोंकी अनेक कृतियां पढ़नेको मिलती हैं। उनमें भी वही स्वाद है, वही अलंकारोंका योग है, वही रसका समावेश है कि पाठकको पता नहीं लग सकता कि वह किसी मुसलिम कविकी कविता पढ़ रहा है, वस्तुतः हिन्दी केवल हिन्दुओंकी बपौती नहीं, यह तो हिन्दू और मुसलमानोंके एक प्रयत्नसे फली फूली है। हिन्दी देवीकी एक भुजा हिन्दू है तो दूसरा मुसलमान, हिन्दी साहित्य रूपी रथका एक चक्र हिन्दू है तो दूसरा मुसलमान, इस अवस्थामें उर्दूको जो चंद एक मुसलमानोंकी भाषा है, जो भारतवर्षके लिए सुदूर अरब अफगानिस्तानके रेगिस्तानसे मुसलिम सभ्यताका संदेश लाती है, जिसका शब्दकोश अरबी व फारसीके शब्दों का संग्रह है, वह भाषा राष्ट्रभाषाके सन्मानित पदको नहीं प्राप्त कर सकती। उर्दू भाषाको स्वयं ८ करोड़ मुसलमान भी प्रयोगमें नहीं लाते। बिहारका मुसलमान बिहारी, उड़ीसाका उड़िया, मद्रासका मद्रासी, गुजरात का गुजराती, बंगालका बंगाली, संयुक्तप्रान्तका हिन्दी वा पंजाबका पंजाबी बोलता है। जिस २ प्रान्तमें जो मुसलमान रहता है वह उस २ प्रान्तकी, अपने पड़ोसी हिन्दूकी ही भाषा बोलता है। सरकारी आंकड़ोंके अनुसार केवल १% लोग उर्दू जानने वाले हैं इनमें वे सिक्ख तथा हिन्दू भी शामिल हैं ज़िन्हें सरकारी कार्यालयोंमें विवश होकर इस भाषाका प्रयोग करना पड़ता है। लिपिकी दृष्टिसे भी यह हमें महंगी ही पड़ती है। इसलिए उर्दूको राष्ट्रभाषाका पद नहीं दिया जा सकता।

इस तरहकी अवस्थामें देशको एक दृढ़ सूत्रमें बांधने के लिए बिखरी हुई मुस्लिम वा हिन्दू शक्तिको संग्रहीत करनेके लिये राष्ट्रके कर्णधारोंने यह आवश्यक समझा कि कोई बीचकी चीज़ निकाली जाए, जिसमें दोनोंको कोई विरोध न हो सके, इसी विचारसे कुछ समय पूर्व हिन्दुस्तानी नामी नयी भाषाका जन्म हुआ। लेकिन कहनेको यह कितनो बार मान लिया जाए कि यह हिन्दी और उर्दू को, दोनों विरुद्ध संस्कृतियोंको मिलानेका प्रयत्न है, लेकिन यह स्वीकार करनेमें आपत्ति नहीं हो सकती कि यह एक मृगमरीचिका है जो केवल हिन्दुओंको वशमें करनेके लिये चली गई है। हिन्दुस्तानीकी जो नवीन पुस्तकें छोटे बालकोंके पढ़ानेके लिए बनाई गई हैं, उनको पढ़कर कौन हिन्दू होगा जो अपने बच्चोंको बीबी कौशल्या और बादशाह दशरथ आदि पढ़ाना पसन्द करेगा। हिन्दुस्तानीमें अधिकांश शब्द उर्दू वा फारसीसे लिये गए हैं, जो सामान्य जनताकी समझमें भी नहीं आते। इसीलिए इसे भी राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसीलिए शेष हिन्दी ही रह जाती है। जिसे राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। यह वह भाषा है जिसे भारतवर्षका हर एक प्राणी चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, समझ सकता है और आसानीसे बोल भी सकता है।

ऐसा होने पर भी दुःख है कि हमारे राष्ट्रके कर्णधार बहुतसे संभ्रात व्यक्ति भी उर्दू का पक्षपोषण करते हुए नहीं झिझकते। सरकारकी मुसलिम-परस्त नीतिके कारण पहिलेसे ही हिन्दीको देशनिकाला दिया जा रहा था। कचहरियोंमें, डाकखानोंमें, रेडियो पर तथा अन्य विभागोंसे उसके अस्तित्वको मिटानेका प्रयत्न किया जा रहा था। पिछले दिनों कांग्रेसी सरकारोंने राष्ट्रके अधिकारका अनुचित लाभ उठाकर इसकी पीठ पर जो लात जमाई है, कह नहीं सकते कि देशके लिए उसका परिणाम कितना विनाशकारी होगा।

इतना सब होने पर भी अपनी प्राचीन संस्कृतिकी एकमात्र रक्षाके लिए सूर, तुलसी आदिकी पवित्र वाणीकी शान बचानेके लिये, और सबसे अधिक राष्ट्रीयताको अमिट बनाए रखनेके लिये हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसकी प्रतीक भूत हिन्दी भाषाको नष्ट होनेसे बचाये। अपने दैनिक व्यवहारोंमें अधिकाधिक हिन्दी भाषाका प्रयोग करें। शासकोंको सामान्य कार्यों तथा सरकारी कार्योंमें हिन्दीका प्रयोग करनेके लिए प्रेरित करें। आज तुर्कीमें मुस्लिम धर्म, मुस्लिम शासन वा मुस्लिम सभ्यताके होनेपर जिस प्रकार "तुर्क तुर्कीके लिये है" यह नारा गूंज उठा है, जिससे सारा टर्की एक नवीन संगठनमें बद्ध हो कर इतनी शीघ्रतासे उन्नति कर रहा है। उसी प्रकार हम सब मिल कर "हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान" का पवित्र निनाद सम्पूर्ण भूमण्डलमें गुंजा देवें। हमारा विश्वास है कि हिन्दीको देशकी राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकार किये जानेपर हिन्दुस्तान संगठित होकर अवश्य अपने उन स्वर्णिम दिनोंको वापिस लानेमें समर्थ हो सकेगा।

## प्रेम की परिभाषा

प्रेम हृदयके समस्त सद्भावोंका शान्त, स्थिर, उद्गारहीन समावेश है। उसमें दया और क्षमा, श्रद्धा और वात्सल्य, सहानुभूति और सन्मान, अनुराग और विराग, अनुग्रह और उपकार सभी मिले होते हैं। इनमेंसे कोई एक भाव प्रेमको अंकुरित कर सकता है; पर उसका विकास अन्य सब भावोंके मिलनेसे होता है।

—मुंशी प्रेमचन्द

# वास्तविक शिक्षा

लें० - श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती

शिक्षाका उद्देश्य शिष्योंको भगवान् और व्यक्तिसे प्रेम करना सीखाना है। सच्ची शिक्षा वही है जो विद्यार्थियोंको सत्यवक्ता, सच्चरित्र, निर्भय, नम्र और दयावान् बनाती है और उन्हें सदाचरण, सादा जीवन, उच्च-विचार, आत्म-बलिदान तथा ब्रह्म-विद्या का पाठ पढ़ाती है।

देवों, असुरों तथा मनुष्योंने प्रजापतिकी अध्यक्षता में शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने आत्म-संयम, उदारता और दयाके पाठ पढ़े। यही वास्तविक शिक्षा है।

इन्द्र प्रजापतिका शिष्य बनकर रहा और उसने यह तत्व जाना कि आत्मा अमर, स्वतःप्रकाशमान, तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिकी अवस्थाओंसे भिन्न है और वैयक्तिक आत्मा परब्रह्मके साथ एक है। यही वास्तविक शिक्षा है।

शौनकने अपने गुरु अङ्गिराके चरणोंमें जाकर इस गूढ़तत्वको पहिचाना कि सत्य पूर्ण ज्ञान और संयमके अभ्याससे आत्म-साक्षात्कार होता है।

मैत्रेयीने ऋषि याज्ञवल्क्यके पाद-पद्मके नीचे बैठ कर यह सीखा कि आत्मा अविनाशी, अनासक्त स्वतन्त्र और विनाश तथा दुःखसे मुक्त है। यही वास्तविक शिक्षा है।

नारद मुनि सनत्कुमारके शिष्य थे और उन्हें गुरु ने बताया कि अनन्त ही आनन्द है, सान्त वस्तुमें तिलमात्र भी आनन्द नहीं और प्रत्येकको अनन्तको जाननेकी इच्छा करनी चाहिए। यही वास्तविक शिक्षा है।

उद्दालकने श्वेतकेतुको पढ़ाया "तत्त्वमसि—तूं वह है यही सत्य है।

तैत्तरेय उपनिषद्में वेदाध्ययनके उपरान्त गुरु शिष्योंको निम्न उपदेश देता है—"वेदाध्ययनकी उपेक्षा मत करो। सत्य-मार्गसे विचलित मत होओ। कर्त्तव्य मार्गसे च्युत मत होओ। अपनी भलाईकी उपेक्षा मत करो। अपनी समृद्धिकी उपेक्षा मत करो। वेदोंके अध्ययन और अध्यापनकी उपेक्षा मत करो। देवों और पितरोंके प्रति कर्त्तव्यकी उपेक्षा न करो। माता तेरी देवता हो ( मातृदेवो भव ); पिता तेरा देवता हो ( पितृदेवो भव ); अतिथि तेरा देवता हो ( अतिथिदेवो भव )। निर्दोष क्रियाएँ करो। सदा शुभकार्य करो। अपनेसे बड़े ब्राह्मणोंका आसन आदि देकर उचित सत्कार करो। श्रद्धा-पूर्वक दान दो, अश्रद्धासे नहीं। प्रसन्नता, नम्रता, भय और दयालुता-पूर्वक दान दो यदि किसी कर्मके विषयमें संशय हो उस अवस्थामें वैसा वर्ताव करो जैसा कि न्याय-बुद्धि रखनेवाले कर्त्तव्य-परायण ब्राह्मण करते हैं। यही नियम है। यही शिक्षा है। यही वेदका प्रयोजन है। यही आज्ञा है। इसीका तुम्हें अनुसरण करना चाहिए। यही वास्तविक शिक्षा है।

प्रत्येक चेहरेमें भगवान्के दर्शन करनेकी शिक्षा अपनी आँखोंको दो। सब प्राणियोंमें एक ही आत्माके दर्शन करो। उपनिषदोंकी शिक्षायें सुननेके लिए अपने कानोंको शिक्षित करो। अपनी जिह्वाको भगवानकी प्रशंसा करने और सदा मधुर, सच्चे, प्रेम-पूर्ण वचन बोलनेकी शिक्षा दो। अपने हाथोंको दान देने और गरीबोंकी सेवा करनेकी शिक्षा दो। अपने मनको सदा प्रसन्न और शान्त रहने तथा अमर आत्माका विचार करनेकी शिक्षा दो। यही वास्तविक शिक्षा है।

हमारे आजकलके विद्यालय सांसारिक शिक्षा देते हैं। उनमें नैतिक नियन्त्रण और आध्यात्मिकताका अभाव

रहता है। विद्यार्थियोंमें जीवनके उच्च आध्यात्मिक आदर्श नहीं होते। वे अपनी आजीविकाके लिए विद्याध्ययन करते हैं। वे केवल ऊँची तनख्वाहें पानेके लिए पढ़ते हैं, यह बड़ा शोचनीय विषय है। यह कारण है कि अन्तमें वे आध्यात्मिक दिवालिए होकर निकलते हैं।

शिक्षाका उद्देश्य जीवनको सादा तथा विचारोंको उन्नत बनाना होना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थीको यह सिखाया जाना चाहिए कि उसका सर्व-प्रथम और मुख्य कर्त्तव्य साक्षात्कार तथा सर्व भूतमैत्री भाव है।

सब विश्वविद्यालयोंका वास्तविक कार्य मनुष्यको मनुष्यसे मिलाना होना चाहिए। शिक्षाका मुख्य उद्देश्य मनुष्यको दैवीय-गुण-संपन्न वास्तविक मनुष्य बनाना है। गीता, उपनिषद, रामायण, भागवत, महाभारत, पातञ्जल योग-सूत्र, ब्रह्मसूत्र, तुलनात्मक धर्म और दर्शन, सब विद्यालयोंमें पढ़ाए जाने चाहिएँ। इनका अध्ययन आवश्यक होना चाहिए। नैतिक-शास्त्र, योग, ध्यान मनका नियन्त्रण—इन विषयोंपर विद्यार्थियोंको क्रियात्मिक शिक्षाएं भी दी जानी चाहिएँ। संस्कृतका अध्ययन आवश्यक होना चाहिए। संस्कृतके अध्ययनके बिना दर्शनके गम्भीर तत्त्व नहीं समझे जा सकते।

कालिजोंके प्रिन्सिपल और प्रोफेसर महानुभावों तथा हाई स्कूलोंके हेड मास्टरोंका ऊँचे उठे हुए संन्यासिओं और योगिओं द्वारा पथ-प्रदर्शन किया जाना चाहिए, तभी वास्तविक शिक्षा विद्यार्थियोंको दी जा सकती हैं। यदि प्रति वर्ष भारतवर्षके विश्वविद्यालयोंसे वास्तविक शिक्षाको ग्रहण किए हुए छात्र बाहिर निकलें तो उज्वल. नवभारतका निर्माण होगा और शान्ति, समृद्धि तथा आनन्दका नूतन युग उपस्थित होगा।

संसारको अध्यात्म-धनके धनी व्यक्तियोंकी आवश्यकता है। जाग्रत आत्माएँ जिन्होंने ज्योति प्राप्त कर ली है, विश्वके लिए वरदान हैं। वे लोगोंको सन्मार्गकी ओर ले जावेंगी तथा अज्ञानका समुद्र पार करनेमें उनकी सहायता करेंगी और अमरत्व तथा अक्षय आनन्द प्राप्त करायेंगी। वे शिक्षा-संस्थाओं के अधिकारियोंका पथ-प्रदर्शन करेंगी।

भगवान् करे कि आप सबको सत्य-ज्ञान और वास्तविक शिक्षा प्राप्त हो। संसार वास्तविक शिक्षासम्पन्न पुरुषोंसे भरपूर हो। विश्वविद्यालय, कालिज, और स्कूल वास्तविक शिक्षा और संस्कृतिके केन्द्र हों। तुम सब शिक्षाके वास्तविक उद्देश्य और जीवनके लक्ष्यको समझो। शिक्षा-संस्थाओं के अधिकारी वर्गमें दैवीय ज्ञान-ज्योति जागे जिससे वे विद्यार्थिओंका पथ-प्रदर्शन कर सकें।

अनु०—श्रीवेद

# कालकी महिमा

रचयिता श्रीमहेन्द्र गिरि गोस्वांमी

जगमें काल बड़ा बलवान।

भीष्मपितामहसे ब्रह्मचारी
मात, पिताके आज्ञाकारी
काल पड़ा था आन पिछारी, ले गया उनको भी वह आन।
जगमें काल बड़ा बलवान॥

कर्ण भूप हरिश्चन्दसे दानी
था नहीं जगमें कोई सानी
नहीं कालने उनकी मानी, किया जिन्होंने सब कुछ दान।
जगमें काल बड़ा बलवान॥

वेद व्याससे ऋषि महान
थे जो अमित गुणोंकी खान
फैलाते जो जगमें ज्ञान, लेली इसने उनकी जान।
जगमें काल बड़ा बलवान॥

# श्रीदयानन्द सरस्वती और ब्रह्मचर्य्य

लेखक—कविविनोद वैद्य-भूषण पण्डित ठाकुरदत्त शर्म्मा वैद्य, आविष्कारक अमृतधारा, लाहौर।

आर्य्य समाजके प्रवर्तक ऋषि दयानन्द न जाने कितनी शताब्दियोंके पीछे बाल ब्रह्मचारी हुए। लोग समझते थे और समझते हैं कि बाल ब्रह्मचारी होना सम्भव नहीं; परन्तु उन्होंने अपने जीवनमें सिद्ध कर दिया कि यदि अपने चरित्रको पवित्र रखा जावे तो ब्रह्मचारी रहना सम्भव है। गुरु विरजानन्दके पास अध्ययन कालमें यमुनामें स्नान करते हुए किसी स्त्रीने श्रद्धासे इनके चरण छू लिए थे तो वह जंगलमें जाकर तीन दिन समाधिमें बैठे रहे थे। एक बार जोधपुरमें महल के चौबारेपर अकेले बैठे थे कि कुछ स्त्रियां दर्शन के वास्ते ऊपर आ गईं स्वामीजीने शोर मचा दिया। राज कर्मचारी दौड़े आए कि किसीने आकर आक्रमण न किया हो परन्तु वहां कोई न था; स्वामीजीने कहा कि इन माताओंको नीचे उतार दो। पूछा गया कि आपने शोर क्यों मचाया, उत्तर दिया, इस वास्ते कि यह बात विख्यात हो जावे और फिर कोई इस तरह आनेका साहस न करे।



( लेखक )

एक स्थानपर कुछ लोगोंने बदनाम करनेके वास्ते श्रीस्वामीजीके कमरेमें एक वेश्याको लालच देकर भेज दिया कि शोर मचाकर कहना कि मैं दर्शन करने आई थी, मुझे इन्होंने छेड़ा है। ऋषि उस समय ध्यानमें थे, वह सामने बैठी रही; जब इनकी आँख खुली, एक स्त्रीको सामने देखकर पूछा "माता तुम कैसे आई हो" न जाने इन शब्दोंमें क्या जादू था कि उस वेश्याने शीश झुकाया और रो-रोकर क्षमा-याचना की और वह अपने कुकर्मको त्याग कर अच्छा जीवन बिताने लगी।

'ब्रह्मचर्यकी रक्षा व्यायामसे होती है।" स्वामी दयानन्द इसको भूले न थे। वह नगरोंसे बाहर जाकर दौड़ते, कई व्यायाम आसन आदि करते और योग-अभ्यासकी रीति से प्राणायाम करते थे। यही कारण था कि उनका शरीर भी बहुत बलवान था। जालन्धर में एक बार ४ घोड़ोंकी पालकी गाड़ीको उन्होंने पीछे से पकड़ लिया था तो चार घोड़े खैंच न सके थे। एक बार एक गड्ढा कीचड़में फंसा था, दो बैल निकाल न सकते थे। मालिक बेजबानोंको मार रहा था कि स्वामीजीका गुजर हुआ उन्होंने दोनों बैल खुलवा दिए और स्वयं अकेले ही गड्डेको कीचड़से बाहर निकाल दिया।

श्रीस्वामीजी महाराज भ्रमण करते हुए आगरामें यमुनाके किनारे एक बगीचेमें उतरे। शामको कुछ पहलवान जोर करनेके वास्ते आए, पुष्ट शरीर देखकर उन्होंने स्वामीजीको पहलवान समझा और उनको तंग करने लगे कि किसीसे कुश्ती लड़ें—जोर करें। अन्तमें स्वामीजीने अपना उपरना उनको दिया कि भिगोकर

लाओ उसको स्वामीजीने एक हाथकी मुट्ठीमें लेकर दबाकर निचोड़ दिया और उनके आगे रखा कि इसमें से जो कोई और पानी निकाल दे उससे हम कुश्ती लड़ेंगे। सब पहलवान दोनों हाथोंसे बल चढाकर ज़ोर लगाते रहे मगर एक बून्द पानीकी और न निकली। सबने उनका लोहा मान लिया और चरणोंमें गिरकर प्रणाम किया।

यह ब्रह्मचर्यका ही बल था कि पौष, माघकी सर्दियोंमें भी नंगे शरीर गङ्गाकी ठण्डी रेतपर आसन जमाकर ध्यान लगाया करते थे।

श्री स्वामीजी को ब्रह्मचर्यका इतना ध्यान था कि सबसे पहिले भारतवर्षमें उन्होंने ही यह घोषणा कि २५ वर्षसे कम आयुवाले पुरुष और १६ वर्षसे कम आयुकी कन्याका विवाह न होना चाहिये। सत्यार्थ प्रकाशमें उन्होंने लिखा है कि राजाको ऐसे नियम बनाने चाहिये कि कोई इससे पहिले विवाह न करे उनके शिष्य श्री हरविलास सारदाजीने 'सारदा एक्ट' पास कराया है। स्थान स्थानपर उन्होंने लिखा है कि भारतवर्षके अधोपतनका विशेष कारण ब्रह्मचर्य-मर्यादाका उठ जाना है। वह कहा करते थे कि यह बच्चोंके बच्चे क्या करेंगे।

मनुका प्रमाण देकर उन्होंने ब्रह्मचारीके खान-पान का भी वर्णन किया है। भोजन पुष्टिकारक सात्विक हो। अधिक खटाई, अधिक नमक, इसमें न हो, सादा हो, बुद्धिवर्धक हो। ब्रह्मचारी हर प्रकारके नाच रंग तमाशोंसे पृथक् रहे। व्यायाम, प्राणायाम नित्य करे, चलता हुआ अपनी दृष्टि नीचे रखे इत्यादि बातें विस्तारसे लिखी हैं।

शोक है कि हमारे देशमें अभीतक बाल-विवाह हो रहे हैं। सोसाईटीकी अवस्था ऐसी है, कि कई व्यसन बालक और बालिकाओंमें बढ़ रहे हैं। बचाव तबही है कि भारतवासी अपने हितैषी ऋषि दयानन्दकी बात को मानकर ब्रह्मचर्यकी मर्यादाको पुनर्जीवित करें।

# व्यावहारिक मनोविज्ञान

ले०—डा० दुर्गाशङ्कर नागर, संपादक 'कल्पवृक्ष' उज्जैन

वर्तमान मानस-शास्त्रसे यह सिद्ध हो चुका है कि जिस विषयमें मनुष्य एकाग्रतापूर्वक अपने अन्तर्मन को सूचना देता है तो अन्तर्मनके जीवाणु मस्तिष्कमें जिस भागमें रहते हैं, वह भाग अल्प समयमें जाग्रत होकर सूचना ग्रहण करता है अर्थात् उस मनुष्यमें नवीन शक्ति का विकास होता है।

कभी कभी हम अपने अन्तर्मनमें फालतू विचारों को भर लेते हैं, जिनसे हमारी बड़ी हानि होती है। भ्रम-गलत और झूंठी भावनाओंको ग्रहण करनेसे हमारा जीवन बड़ा निकृष्ट हो जाता है। और जब तक हम अपनी वर्तमान निकृष्ट अवस्थाको बदलनेका यत्न नहीं करते तब तक हम गुलाम ही बने रहेंगे।

वास्तवमें अधिकांश मनुष्य जिन्होंने जीवनमें असाधारण उन्नतिकी है, बड़प्पन प्राप्त किया है, वे इस कारणको नहीं जानते कि अन्तर्मनकी शक्तिके द्वारा ही उनमें विशेषता प्रकट हुई।

हमारे बाह्य-जीवन की कोई ऐसी प्रतिकूलता नहीं है जोकि अन्तर्मन पर योग्य संस्कार अंकित करके दूर न की जा सके अर्थात् समग्र दुःख, दोष और दुर्गुण जो स्वयं-पैदा किए हुए हों या आनुवंशिक माता-पितासे हों वे सब अन्तर्मन पर बुद्धि-पूर्वक योग्य संस्कार डालनेसे पूर्णरीतिसे दूर किए जा सकते हैं।

जिन सुखद वस्तुओंको हम अपने जीवनमें प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहते हों-उन ही मात्रका विचार करने का मनमें अभ्यास डालना चाहिये।

मनुष्य दोषोंसे भरा हुआ है। वह अपूर्ण है और दुष्ट स्वभाव तो मरने पर ही छूटेगा। बार बार इस प्रकार अपूर्णता और दोषों का चिंतन करनेसे हम अपने अंतर्मनको निकृष्ट मानसिक सामग्री देते हैं और अंतर्मन हमारे बाह्य जीवनमें उन्हीं दोषोंको और अपूर्णताको उपस्थित कर देता है और स्थिर रखता है।

इसलिए जो व्यक्ति अपनेको बार बार निर्बल,पापी, अधम कहता रहता है वह वैसा ही बन जाता है। "बार बार कही हुई बात सत्य प्रतीत होने लगती है"।

कोई मनुष्य किसी बातपर जोर देकर तुम्हें नित्य कहता रहे तो थोड़े ही दिनोंमें तुम उस बातको सत्य मानने लगोगे। उसी तरह तुम अपने आपको भी जो कुछ वाक्य नित्य कहते रहो तो वे झूठे ही हों तो भी तुम्हारे मनमें वे सत्य जंचने लगेंगे। इस प्रकार के विश्वासको स्वभावजन्य विश्वास कहते हैं।

बुद्धिजन्य विश्वास इससे भिन्न प्रकार का होता है। उसमें प्रमाण प्रमेयों की आवश्यकता रहती है। बुद्धिजन्य विश्वास उसी बातको मान सकता है जो तर्क और युक्तिसे सिद्ध हो सके। परन्तु स्वभावजन्य विश्वास असंभव से असंभव बातपर भी संदेह नहीं करता। बुद्धिजन्य विश्वास कभी संदेह-रहित नहीं होता। और स्वभावजन्य विश्वासमें कभी सन्देहका लेश भी नहीं रहता।

स्वभावजन्य विश्वासका ही दूसरा नाम श्रद्धा है। श्रद्धाके मंदिरमें शंका और सन्देहका प्रवेश नहीं होने पाता। बुद्धिजन्य विश्वास भी निस्सन्देहताके पदपर पहुंच कर स्वभावजन्य बन जाता है।

श्रद्धा-युक्त विचारोंमें शरीर और मनको सुधारने की विलक्षण शक्ति रहती है। उत्पादक विचार जिन्हें मानस-शास्त्रमें Creative Imagenation कहते हैं बिना श्रद्धाके अत्यन्त निर्बल होते हैं। किन्तु श्रद्धा सहित उत्पादक विचार यानी इच्छा शक्तिका रूप धारण कर लेते हैं।

परन्तु जैसे जीवन धारण करनेके लिए आक्सिजन ( Oxygen ) के साथ नाइट्रोजन (Nitrogen) नामक तत्त्वका रहना आवश्यक है। उसी तरह स्वभावजन्य विश्वासके साथ बुद्धिजन्य विश्वासका भी होना परम आवश्यक है।

अकेला स्वभावजन्य विश्वास आक्सिजन तत्वके समान बल, बुद्धि और उत्साह बढ़ाने वाला तो है; परन्तु बुद्धिकी अनुपस्थितिसे वह अन्ध-श्रद्धा; हठ-धर्मी और उद्दंडताका रूप धारण कर लेता है। और शास्त्र-प्रतिकूल निरा बुद्धिजन्य विश्वास भ्रम-सन्देह और निराशा की स्थिति उत्पन्न करके केवल नाइट्रोजनके सांस लेने के समान निश्चित मृत्युकी दशामें ले जाता है। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि शास्त्रके अनुकूल श्रद्धाके साथ इस मार्गमें प्रवेश करें।

अब हम यह बतलाते हैं कि किस प्रकारके वाक्य अपनेको अथवा दूसरे मनुष्यको कहते रहनेसे क्या फल उत्पन्न कर सकते हैं।

ये वाक्य दो प्रकारके होते हैं। एक का नाम है अफर्मेशन्स ( affirmatians ) और दूसरेका नाम है डिनायलस ( Denials )।

"मैं प्रसन्न हूं" यह वाक्य अफर्मेशन कहाता है। और "मैं अप्रसन्न नहीं हूं" यह वाक्य डिनायल कहाता है। यद्यपि दोनों का भाव एक ही है। परन्तु डिनायल से अफर्मेशनका प्रभाव उत्तम समझा गया है।

'कैसे विचार करनेसे शरीर और मन पर क्या प्रभाव पड़ता है" इस विषय पर आगे के अङ्कमें लिखा जायगा।

अन्तर्मन प्रतिभाका, संगीतका, काव्यका, कलाका,

उच्च-विचारका मूल्यवान् कल्पनाओंका, आविष्कारोंका तथा सत्य-ज्ञानका उत्पत्ति स्थान है।

बड़े बड़े विचारशील पुरुष केवल अपने बाह्यमन और बुद्धिपर ही भरोसा नहीं रखते; किन्तु अन्तर्मन पर ही निर्भर होकर अपना कार्य करते हैं।

मस्तिष्कमें जब कभी नवीन विचार की आवश्यकता हो तो उस समय आराम कुर्सीपर स्वस्थतासे बैठ जाओ, सिरको सीधा रखो या किसी आसनसे बैठ जाओ। प्रत्येक मांसपेशी को ढीला करो। प्रत्येक नाड़ीसे तनाव खींच लो, कुछ क्षण विश्राम लो, कुछ देरके लिए आँखें बन्द करलो, और जिस विषय में ज्ञान बढ़ाने की इच्छा हो उस विषय पर सोचना आरम्भ कर दो। इस साधनसे कोई ऐसा विचार मिल जायगा जो तुम्हारे जीवनको सर्वथा बदल डालेगा। हमको यह जानना कि कौन-सा विषय स्मरण रखने योग्य है और कौन सा भूल जाने योग्य है।

बड़े बड़े लेखक, कवि, आविष्कारक, विज्ञान-वेत्ता संगीत-वेत्ता, अध्यात्म-वेत्ता और चित्रकारोंने अनुभव किया है कि अंतर्मनकी स्थितिमें प्रवेश करनेसे ही उनमें शक्तियाँ उत्पन्न हुई हैं। बहुत लोग यह समझ लेते हैं कि ये शक्तियाँ उन्हें किसी देवकी कृपासे प्राप्त हुई हैं, किन्तु वास्तवमें यह शक्ति हमारे अंतर्मनमें विद्यमान है, यह अंतर्मन हमारे गूढ़से गूढ़ प्रश्नों को हल कर सकता है।

अंतर्मनको आज्ञा दो और प्रेरणा करो कि मनके भीतरके भागसे ढूंढ़कर तुमको इच्छित शक्ति और ज्ञान प्रदान करे।

अंतर्मनको रात्रिको सोते समय हम आज्ञा देते हैं कि प्रातःकाल ठीक चार बजे हमें जगादे, या अमुक ट्रेनसे हमको जाना है, अमुक समय हम जग जावें और तुरन्त ही उस समय हम जग जाते हैं; इसी प्रकार अंतर्मनको हर विषयकी शिक्षा दी जासकती है।

जिस २ इच्छाको सिद्ध करनेकी अंतर्मनमें सूचना दी जाती है वह इच्छा अवश्य सिद्ध होती है, यह मानस शास्त्रका सिद्धांत है।

भूतकालकी घटनाओंका और निरर्थक विचारोंका विस्मरण कर दो, और वर्तमानमें तुम उत्तम प्रकारके बनना चाहते हो, तो उसीका केवल विचार करो और अंतर्मनको प्रेरणा करो; और जिस उच्च-स्थितिको प्राप्त करनेका निश्चय किया है उन्हीं विचारोंमें तन्मय हो जाओ।

### मानसिक प्रयोग

रात्रिको सोते समय शरीरको बिलकुल निष्क्रिय कर दो। सब अंग-प्रत्यंगको शिथिल कर लो। अपने बहिर्मनसे कहो कि मैं सब विचारोंको अपने मनसे बाहर हटाता हूं, सब चिंताओं और विचारोंको बाहर ही छोड़ देता हूं। दस, बीस बार गहरे श्वास-प्रश्वास करो। नेत्र बन्द करके अंतर्मनके स्वामी बनो। अंतर्मनको आज्ञा करो, शांत हो जाओ, स्वस्थ हो जाओ; और फिर जो इच्छा हो वही अंतर्मनको प्रेरणा करो और आज्ञा दो।

इस प्रकार रात्रिको निद्राके पूर्व अन्तर्मनको योग्य सूचना देनेसे तुम्हारा समग्र मन प्रत्येक सामर्थ्य और तुम्हारा सारा शरीर सम्पूर्ण रीतिसे बदल जायगा।

उचित मानसिक सामग्री अंतर्मनको एकत्र करके सौंप दो और जो तुम बनना चाहते हो वह अंतर्मनको कह दो। मनकी एकाग्रता द्वारा उस विषयको स्थिरतासे धारण करो और अंतर्मनमें उस विषयको ग्रहण करो और सो जाओ। इस प्रकार कुछ काल अभ्यास करनेसे तुम्हारे जीवनमें विलक्षण परिवर्तन होगा बहुतसे मनुष्योंने इसी प्रक्रिया द्वारा अपने निकृष्ट जीवनको बदल डाला है और तुम भी इस अभ्याससे अपने जीवनको बदल डालोगे।

जब हम किसी बातका विचार अपने अंतर्मनमें

मनके सारे बलको लगाकर करते हैं उस समय हम समाधि दशामें चले जाते हैं, बाहरी संसारको भूल जाते हैं और उठने पर ऐसा मालूम देता है कि जैसे स्वप्नसे जागृत हुए हैं और हमें ज्ञान शक्ति और आनन्द प्राप्त होता है।

अंतर्मन फोनोग्राफके यंत्रके समान है। जिस प्रकार की मानसिक सामग्री उपस्थित करोगे वही स्थूल रूपमें प्रकट करेगा।

जिस बातकी तुमको आवश्यकता हो उसका यथार्थ विचार करो। अपने व्यक्तित्वको भुलादो और अंतर्मन को योग्य विधिसे सूचना दो। कठिनसे कठिन प्रश्नको वह हल कर देगा और गूढ़से गूढ़ बातके रहस्यको प्रकाशमें ला देगा।

सर्वदा स्मरण रखो कि तुम्हारी मानसिक दशाओं का और आदतोंका स्वामी तुम्हारा अंतर्मन है। यही सच्चा देवदूत है, जो तुम्हारे भाग्यका विधाता है। इस प्रकार अंतर्मनको उत्तेजित करनेसे तुम जीवनको उत्कृष्ट बना सकते हो।

# गोमाता से

[ पूज्य पं० मदनमोहनजी मालवीय महाराजकी आज्ञा से रचित ]

## ओ माँ तेरी जय हो जय हो !!

रचयिता—श्री ईशदत्तजी शास्त्री "श्रीश" साहित्याचार्य साहित्यरत्न

हैं धर्म अर्थ औ काम मोक्ष
से तेरे चारों चारु चरण
जो हैं करते रहते प्रतिपाल
कल्याण चराचर में वितरण
पीकर तेरा पय मानव को
दानव का भी न कभी भय हो
ओ माँ ! तेरी जय हो, जय हो !!
तेरी भोली भाली सूरत
तेरा भोला भाला स्वभाव
नर क्या नारायण पर भी है
कर ही देता तत्क्षण प्रभाव
वह कौन देश है अम्ब ! जहां
तेरा उपकार न अक्षय हो
ओ मां ! तेरी जय हो, जय हो !
क्या बालमीकि क्या व्यास और
क्या कालिदास सब ही कविगण
हो गये धन्य री मां ! गा गाकर
ही तेरा अनुपम गुणगण
जिस पर तेरी हो गई कृपा
मां ! उसको फिर किसका भय हो
ओ मां ! तेरी जय हो, जय हो !

शिशु, युवा, वृद्ध, नारी-नर हैं
जग के, करते तेरा वन्दन
क्यों कि तू उनके घर को है
ओ अम्ब ! बनाती नन्दन बन
तेरी महिमा को कौन कहे
किसकी मति इतनी अतिशय हो !
ओ मां ! तेरी जय हो, जय हो !
जीवन भर जीवन दान किया करती ही
देकर दुग्धदान
मरने पर भी ओ करुणामयि !
बनती हो कोमल पदत्राण
क्या हिन्दू-क्या मुसलिम, सबका
करती दुलार तुम निर्भय हो
ओ मां तेरी जय हो, जय हो !
फिर आज तुम्हारी सेवा में
संलग्न महान मदनमोहन
तेरी चिन्ता ही में निशिदिन
उनका है तन, उनका है मन
भगवान् करें अतिशीघ्र, अम्ब !
उनसे तव भाग्य-महोदय हो
ओ मां ! तेरी जय हो, जय हो !!

# आवश्यक निवेदन

## श्री सेठ मनसुखरायजी मोर

आजसें दो साल पहले ( विगत तीसरे वर्ष ) श्री मनसुख रायजी मोरकी प्रेरणा-प्रवर्तनासे ही इस पत्रका प्राथमिक प्रकाशन साप्ताहिक संस्करणके रूपमें आरम्भ हुआ। आप "सात्विक-जीवन" के संरक्षक हैं। वस्तुतः इस पत्रके जन्मदाता, अथवा प्रयोजक हेतु भी आप ही हैं।

पार-साल ( गतवर्ष, सौर आश्विन, १९९८ वि० ) विजया-दशमीके अवसर पर, जब 'सात्विक-जीवन' द्वितीय वर्षमें प्रवेश कर रहा था, कई सज्जनों विशेषतःश्री मनसुख रायजी मोरकी सम्मति तथा प्रेरणासे ही इसे मासिक रूप देकर, इसका प्रथम विशेषाङ्क निकाला गया।

आज "सात्विक-जीवन" अपने जीवनके तृतीय वर्षमें विजय-विशेषाङ्कके रूपमें शुभ प्रवेश कर रहा है। इस अवसर पर हम इसके प्रेरक, प्रवर्तक, सहायक और मुख्य संरक्षक श्री मनसुख रायजी मोरका संस्मरण किये बिना रह नहीं सकते। अतः हम कृतज्ञता-प्रकाश पूर्वक उनका सादर-सप्रेम अभिनन्दन करते और उनको सधन्यवाद शतशः बधाई देते हैं।

## आवश्यक सूचना

सात्विक-जीवनका वार्षिक मूल्य ३) है, विद्यार्थियों, विद्यालयों और पुस्तकालयों से २); नमूनेकी कापी के लिये ।) आना आवश्यक है।

सात्विक-जीवनका वर्ष विजया दशमी ( अक्टूबर ) से प्रारम्भ होता है। वर्षके मध्यमें ग्राहक बनानेका नियम नहीं है, जो सज्जन वर्षके बीचमें ग्राहक बनना चाहेंगे उनकी सेवामें उस चालू वर्षके पिछले अंक भेजे जाएँगे। ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखें, अन्यथा पत्रोत्तरमें विलम्ब और उचित कार्यवाहीमें असुविधा होगी।

# सात्विक जीवन ग्रन्थमाला

## ब्रह्मचर्य नाटक

प्रथम पुष्प—रङ्गमञ्च पर सफलता-पूर्वक अभिनीत यह नाटक अपने ढङ्गका निराला और बेजोड़ है। हमारे आन्तरिक असुर किस प्रकार पराजित हो सकते हैं, हम किस प्रकार अपनी दुर्वासनाओंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं, इसका विवरण यदि आप प्राप्त करना चाहते हों तो इस पुस्तकको अवश्य देखिये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य केवल ॥)

## आध्यात्मिक शिक्षावली

द्वितीय और तृतीय पुष्प—आध्यात्मिक विकासके लिये इनसे अच्छा ग्रन्थ हिन्दीमें नहीं है। हिन्दू धर्म और आध्यात्मवादका ज्ञान थोड़ेमें प्राप्त करनेके लिये ये पुस्तकें सर्वोत्तम हैं। इन पुस्तकोंमें गागरमें सागर भर दिया है। आज ही मंगा कर पढ़िये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य प्रथम खण्ड ॥।), द्वितीय खण्ड ॥।)

## सचित्र हठयोग ( सजिल्द )

चतुर्थ पुष्प—( आसनोंके ३८ चित्रों सहित )—आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा एवं यौगिक क्रियाओं द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ले जानेवाली अनुपम और प्रामाणिक पुस्तक। इस एक ही पुस्तकसे जो लाभ उठाया जा सकता है वह अन्य कई पुस्तकें पढ़कर भी नहीं उठाया जा सकता। इसके लेखक स्वयं एक महान योगी हैं। इस विषयकी ऐसी उपयोगी पुस्तक दूसरी नहीं है। मूल्य केवल १), स्थायी ग्राहकोंसे ॥।)

## स्वामी शिवानन्दजी की जीवनी और उनके उपदेश ( अंग्रेजीमें )

पञ्चम पुष्प—प्रस्तुत पुस्तकमें श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराजकी जीवनी और उनके उपदेशोंका सार संग्रहीत है। स्वामीजीकी जीवनी तथा उनके उपदेशोंका एक ही स्थानपर संग्रह करनेका अभिप्राय यही है कि लोग उनके जीवनकी घटनाओंको उनके उपदेशोंके प्रकाशमें देखें और अपने जीवनको भी तदनुकूल बनानेका प्रयत्न करें। यह पुस्तक विशेषकर उन लोगोंके लिये लिखी गयी है जो स्वामीजीके सभी ग्रन्थ नहीं खरीद सकते। पुस्तकमें प्रयुक्त भाषा सरल तथा सुबोध है। साधारण अंग्रेजी जाननेवाला व्यक्ति भी अच्छी तरह समझ सकता है। बीसों चित्रोंसे सुशोभित सजिल्द पुस्तकका मूल्य केवल १॥)

**स्थायी ग्राहकों तथा थोक खरीददारोंको पर्याप्त कमीशन दिया जायगा**

प्रकाशक—

**जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड**

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट कलकत्ता। "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# सचित्र हठयोग ( सजिल्द )

## (आसनोंके ३८ चित्रों सहित) मू० १)

अनेकमेंसे कुछ सम्मतियां :—

आज—काशी—प्रस्तुत पुस्तकके लेखक श्री स्वामीजी एक महान योगी हैं। आपकी पुस्तकोंका सात्विक जीवन ग्रन्थमाला नाम देकर कलकत्तेके जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स ने प्रकाशन किया है। उसीका यह चतुर्थ पुष्प है। अभ्यासीकी कठिनाईका पूरा ध्यान रखकर श्री स्वामीजीने हठयोग जैसे विषयको इस उत्तम और सरल ढङ्गसे समझाया है कि देखकर आश्चर्य होता है। गुरुकी सहायताके बिना भी इस पुस्तककी सहायतासे अभ्यास करना सुगम है। हमारी रायमें पुस्तक सबके पास होनी चाहिये। उपयोगिताको देखते हुए सजिल्द पुस्तकका दाम कोई अधिक नहीं है।

नव भारत—नागपुर—प्रस्तुत पुस्तकके लेखक श्रीस्वामीजी विश्वविश्रुत योगी हैं। हठयोग जैसे कठिन विषयका वर्णन इस उत्तम ढङ्गसे किया गया है कि साधक बिना गुरुकी सहायताके इसमें वर्णित आसनादिका अभ्यास कर सकता है। भाषा बोधगम्य और स्पष्ट है। पुस्तक काफी अच्छी बन पड़ी है। आबाल-वृद्ध सभी इससे एक साथ लाभ उठा सकते हैं। प्रकाशकको हम धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते जिसने केवल एक रुपयेमें ऐसी सजिल्द और सचित्र पुस्तक प्रकाशित कर जनताका कल्याण किया है। हम ऐसी पुस्तकका घर-घर प्रचार चाहते हैं।

लोकमान्य—कलकत्ता—यह पुस्तक यौगिक क्रियाओंके साधकोंके लिये नहीं, वरन् सर्वसाधारणके लाभार्थ लिखी गयी है। यह साधकोंके लिये सहायक और सर्वसाधारणके लिये स्वास्थ्यदायक सिद्ध होगी। इसमें आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध आदि प्रकरण हैं। पुस्तक संग्रहणीय है।

वीर अर्जुन देहली—सचित्र हठयोग—यह पुस्तक मुख्यतया हठयोगके आसन-व्यायामोंका परिचय देनेके लिये लिखी गयी है—ऐसे आसन व्याख्याके लिये चुन लिये गये हैं जो व्यायाम और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे स्त्री-पुरुष मात्रके लिये उपयोगी हैं। इन आसनोंका श्रेणी-विभाग भी ऐसे ढङ्गसे किया गया है कि नियमसे आसनोंका अभ्यास करनेसे अभिलाषीको वे सुगमता पूर्वक याद हो सकते हैं। उसे बार-बार पुस्तक देखनेकी आवश्यकता नहीं होगी। आसनोंके वर्णनके साथ-साथ स्पष्ट मुद्रित चित्र होनेके कारण उनका समझना और भी सरल होगया है।

लोकमत—नागपुर—........"हठयोग" उजड़े हुए हिन्दुस्तानको पुनः हरा-भरा बनानेकी शक्ति रखता है।........पुस्तकके अन्दर स्त्री-पुरुषोंके लिये शीर्ष, सर्वाङ्ग, पश्चिमोत्तान, हल, मत्स्य, भुजंग, शलभ, मयूर आसनोंके ३८ चित्र हैं। तथा........प्राणायामोंका सरल सुबोध वर्णन है।........निश्चय पुस्तक संग्रहणीय और पठनीय है। तथा साहित्यके अन्दर अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

स्वतन्त्र, झांसी—प्रस्तुत पुस्तक है, आसन, व्यायाम सम्बन्धी। इस पुस्तकमें बताया गया है कि मनुष्य किस प्रकार शारीरिक, मानसिक एवम् आध्यात्मिक बल प्राप्त कर सकता है। पुस्तकमें दिये गये आसनोंके चित्रोंने पुस्तककी उपयोगिताको और भी बढ़ा दिया है। पुस्तक सर्वसाधारणके लिये लिखी गई है। पुस्तकमें कुल पांच प्रकरण हैं। स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

नव शक्ति, पटना—सिद्धयोगी और कुशल चिकित्सक स्वामी शिवानन्द सरस्वतीकी आध्यात्मिक रचनाओंसे हिन्दी संसार अच्छी तरह परिचित है। सचित्र हठयोग स्वामीजीकी सर्वोत्तम रचनाओंमेंसे एक है। स्वामीजीने योग विद्याके विभिन्न अङ्गोंपर इस पुस्तकमें प्रकाश डाला है। योग-सम्बन्धी ऐसी सर्वोत्तम पुस्तक लिखकर स्वामीजीने हिन्दी-भाषियोंमें हमारे प्राचीन ऋषि मुनियोंकी धाक जमा दी है—साथ ही आपने हिन्दी भाषा एवं रोग-पीड़ित मानवताकी अमूल्य सेवा की है। आज हमारे देशके युवकोंके स्वास्थ्यकी जो चिन्तनीय अवस्था हो रही है, उसे देखते हुए तो इस पुस्तककी एक प्रति हर व्यक्तिके हाथमें होनेकी सिफ़ारिश की जाती है। पुस्तककी भाषा सरल और सुबोध है। छपाई और सफ़ाई भी अच्छी है।

भारत, प्रयाग—कलकत्ते के जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि० द्वारा प्रकाशित "सत्त्विक जीवन ग्रन्थमाला" का चतुर्थ पुष्प "हठयोग" हमारे सामने है। प्रस्तुत पुस्तकमें हठयोगके विभिन्न उपाङ्गोंका बहुत अच्छा और स्पष्ट वर्णन है। आजकल जहां व्यायामके लिये हमारे युवकोंमें अभिरुचि बढ़ रही है, वहाँ यह आवश्यक है, कि देशकी प्राचीन पद्धति, जो सम्यक्-रूपसे हमारे शरीरकी उन्नति करनेमें समर्थ है, का भी प्रचलन किया जावे इसी दृष्टिसे प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। इसके लेखक श्रीस्वामीजी स्वयं एक महान् योगी हैं। पहले वे एक विख्यात् डाक्टर थे। अतः वे देशकी दशाको देखकर व्याकुल हो गये। इसीलिये उन्होंने प्रस्तुत पुस्तककी रचना की है। इसमें आसन, प्राणायामकी विधि ऐसी सरल और बोधगम्य भाषामें दी गयी है कि अभ्यास-कर्त्ताको किसी प्रकारकी कठिनाईका अनुभव नहीं हो सकता। हमारा विचार है कि प्रत्येक व्यक्तिको ऐसी पुस्तक अपने पास रखनी चाहिये। पुस्तक अच्छे ग्लेज़ काग़ज़पर छपी है और बँधाई काफ़ी आकर्षक है।

जीवन सखा, प्रयाग—इस पुस्तकमें हठयोगकी सारी चीजें बड़ी खूबसूरतीके साथ और सचित्र दी गई हैं। हठयोग चार अङ्गोंमें बाँटा गया है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बन्ध क्रियायें। आसनका प्रकरण हठयोग प्रदीपिकासे भी ज्यादा है, और एक अच्छी व्यायाम-पद्धतिके लिये यह यथेष्ट है। सिर्फ इन आसनोंके द्वारा शरीर पूर्ण स्वस्थ रखा जा सकता है। प्राणायाम प्रकरणमें भी थोड़ेमें आठों प्राणायाम दे दिये गये हैं। जो प्राणायामके प्रकरणमें बड़े ही महत्वके हैं। पुस्तक बड़ी ही सुन्दर है, छपाई बड़ी अच्छी है, और यह आशा की जाती है कि पाठक इससे लाभ उठावेंगे।

स्वतंत्र भारत, कलकत्ता—प्रस्तुत पुस्तक स्वामी शिवानन्दजीकी अनुपम कृति है। मनुष्यके लिये सुस्वास्थ्य परमावश्यक है—यदि १५ मिनिट भी नियमित रूपसे दैनिक योगाभ्यास किया जाय तो बहुत अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है। पुस्तकमें योग-सम्बन्धी विषयोंके ५ प्रकरण हैं, जिनमें आसन, प्राणायाम, मुद्रा, यौगिक क्रियायें तथा योग साधनाओंके विस्तृत विवेचन है। विभिन्न आसनों तथा मुद्राओंके ३८ चित्र होनेसे पुस्तककी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। पुस्तक आदिसे लेकर अन्ततक पठनीय है—रोचक और उपयोगी है। भारतकी प्राचीन व्यायाम पद्धति यौगिक-पद्धति ही है, जिसका इस पुस्तकमें सुन्दर समावेश किया गया है, आसन और प्राणायामके अभ्यास द्वारा शारीरिक स्वास्थ्यकी वृद्धि करनेवालोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

**जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटेड**

प्रधान कार्यालय—
८३ पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

शाखा—
"प्रिण्टिङ्ग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# :: जीवन-पुष्प में प्रेम-पराग भरो ::

संसार में गुरुत्वाकर्षण की तरह एक अदृश्य शक्ति है, जो मानवी-हृदयों को परस्पर बाँधे हुए है। इसे तुम प्रेम, आकर्षण, सहानुभूति कुछ भी कह सकते हो। प्रेम करना मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है, इसके बिना वह रह नहीं सकता। प्रेम करो, पर विज्ञापन न करो!

एक प्रसिद्ध कहावत है—भगवान् प्रेम है। जैसे भगवान् न कभी घटते न कभी बढ़ते हैं, वैसे ही सच्चा प्रेम सदा पूर्ण होता है। सच्चे प्रेम में हित होनेपर न वृद्धि होती है और अहित होनेपर न न्यूनता आती है।

अपनी आत्मा को दूसरों की आत्मा में देखने का नाम प्रेम है। जैसे वायरलेस में किन्हीं सूत्रों या तारोंके न होते हुए भी सन्देश एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंच जाते हैं, वैसे प्रेम के पवित्र संसारमें भी दूरी की परवाह न करते हुए दो हृदय परस्पर संयुक्त होकर सन्देशों का आदान-प्रदान करते हैं।

प्रेम करते समय इस बात का ख्याल रक्खो और सूक्ष्म निरीक्षण करो कि कहीं जिसे तुम प्रेम कहते हो, मोह तो नहीं है। बहुधा मोह ही प्रेम का बनावटी रूप धरकर आता है। प्रेम और मोह में आकाश पाताल का अन्तर है। प्रेम स्वतन्त्रता प्रदान करता है, मोह बन्धन में जकड़ लेता है। प्रेम में प्रकाश है, मोह अन्धकारावच्छन्न है, प्रेम में पवित्रता है, मोह में अशुचिता। प्रेम रूप-रंग के जंजाल में नहीं पड़ता, मोह टिका ही इसीके आधारपर है। प्रेम मकड़ी के जाले की तरह फैलता चला जाता है, मोह संकुचित होता जाता है। यदि प्रेम और मोह के इस महान् अन्तरको समझकर प्रेमका पाठ सीखोगे तो अतिशय कल्याण होगा।

—श्री लहरी

सात्त्विक-जीवन के सम्बन्ध में प्राप्त कुछ

# विशिष्ट पुरुषोंके सन्देश

## श्रद्धेय डॉ० भगवान्दास जी

"सात्त्विक-जीवन" के कई अङ्क मैंने देखे ; मुझे प्रतीत हुआ कि यह मासिक पत्र, सत्यपक्षपाती, देश-अवस्थाके परिवर्त्तनोंको पहिचाननेवाला, तदनुसार कर्तव्यका सत्पथ दिखानेवाला, सच्चा देशहित-चिन्तक, उदार-बुद्धि, उदार-हृदय, सर्वमानवसंग्राहक, लोक-संग्रहेच्छु है। मैं आशा करता हूं कि इसके ये गुण प्रतिमास अधिकाधिक उज्ज्वल और प्रभावशाली होते रहेंगे, और जनतामें इसका आदर होगा।

## सेठ पद्मपतजी सिंहानिया

ईश्वर करे आपका "सात्विक-जीवन" भारतमें सात्विकताको नव-जीवन प्रदान करे। आशा है, आपका पत्र समाज तथा देशकी पर्याप्त सेवा करेगा।

## श्री गंगाप्रसादजी गौड़ "नाहर"

सोनपुर।

मुझे आपके पत्र "सात्विक-जीवन" से विशेष प्रेम है। मुझसे जो सेवाएँ बन पड़ेंगी, बिना कहे करता रहूँगा।

## श्री सम्पादकजी "मस्ताना योगी"

लाहौर।

यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आप विजया दशमी पर "सात्विक-जीवन" का विशेषाङ्क निकाल रहे हैं; इसके लिए मैं अपनी और मस्ताना योगी परिवारकी ओरसे आपको बधाई देता हूं; स्वीकार करें।

## श्री धर्मरत्नजी, महाबोधि सभा

सारनाथ।

मैं हृदयसे आपके विशेषाङ्ककी सफलता चाहता हूँ।

## सेठ रामकृष्णजी डालमिया

प्रिय महाशय,

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप विजया-दशमीके पुण्य अवसर पर "सात्विक-जीवन" का विशेषाङ्क निकालने जा रहे हैं, आज दानवता-पिशाचिनी मानवताको पूरी तरह निगले जा रही है, उसकी उद्दाम भूख-ज्वालासे न मालूम विश्वके कितने प्राणियोंका आहुति दान हो चुका है, आशा है प्रस्तुत विशेषाङ्कमें मानवताके विजय-लाभके लिए यथेष्ट सामग्री रहेगी। मैं आपके विशेषाङ्ककी हर तरह सफलता चाहता हूं।

## श्री पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी

"सात्विक-जीवन" के उद्देश्योंसे मैं पूर्णतया सहमत हूं, और हृदयसे उसकी सफलता चाहता हूं।

## श्री रघुनन्दनजी शास्त्री

बनारस।

बड़े हर्षका विषय है कि इन विकट परिस्थितियोंमें भी जगदीश्वरकी असीम कृपासे "सात्विक-जीवन" अपने तृतीय वर्षमें प्रवेश कर रहा है। आगे भी ईश्वरसे हम प्रार्थना करते हैं कि यह हमारा सर्वप्रिय पत्र जनतामें अपने सदुपदेशामृतकी अविरल वर्षण करता रहे।

Regd. No. A 898

# हिन्दुस्तानकी आज़ादीके लिए

## पहले अपने मनको आज़ाद करो

दूसरोंको प्रकाश देनेके लिए—पहले अपने मनके बुझे हुए दीपकको जलाओ

और इसके लिए आज ही—

## "मन और उसका निग्रह" (सजिल्द)

पुस्तक मंगाकर अवश्य पढ़िए। इस पुस्तकके लेखक योग-विद्या के प्रकाण्ड पण्डित, सन्त-जगत् के उज्वल नक्षत्र, श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती हैं। उन्होंने यह पुस्तक अनेकों वर्षोंकी साधना और तपस्याके उपरान्त वैज्ञानिक प्रणालीपर लिखी है। पुस्तकके विषयमें प्रमुख पत्रोंकी सम्मतियाँ पढ़िए।

वीर अर्जुन, देहली—प्रस्तुत पुस्तक स्वामी शिवानन्दजीके मूल ग्रन्थ "Mind its mysteries & Control" के प्रथम भागका सरल तथा रोचक हिन्दी रूपान्तर है। इसमें मनके सम्बन्धमें लगभग ६०० उपयोगी, व्यावहारिक विषयोंका समावेश है, जिन्हें स्वामीजीने अपने जीवनमें कार्यान्वित किया है। मानसिक विकारोंको दूर रखने तथा विचारोंका सुन्दर स्वास्थ्य-लाभ करनेके लिए यह पुस्तक विशेष महत्त्वपूर्ण है।

लोकमत, नागपुर—प्रस्तुत ग्रन्थ, मनोयोग साधन सम्बन्धी ज्ञातव्यताओंके प्रति पाठकोंका ध्यान आकर्षित करनेमें पूर्ण समर्थ है।........प्रत्येक प्रकारके मनोनिग्रह के उपाय अथवा कर्त्तव्य अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषामें तथा आशातीत संक्षेपमें हृदयङ्गम करानेका यह अभूतपूर्व प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। अधिकाधिक आदरणीय इस ग्रन्थके रचयिता हैं श्री स्वामी शिवानन्दजी ; तथा अनुवाद किया है श्री द्वारिकानाथ झिंगन एम० ए० एल० एल० बी० एडवोकेटने। मुद्रण नेत्ररञ्जक। पृष्ठ संख्या १३६, मूल्य ।।।) प्रति।

जीवन सखा, प्रयाग—'मन और उसका निग्रह' प्रथम भाग, ले० स्वामी शिवानन्द सरस्वती, प्रकाशक जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि० कलकत्ता..........इस ग्रन्थमें मनके सम्बन्धमें ६०० उपयोगी सिद्धान्तोंका समावेश है। जिन्हें स्वामीजीने अपने जीवनमें कार्यान्वित किया है। जो नियम इस पुस्तक में दिये गये हैं, वे सब व्यावहारिक हैं, केवल आध्यात्मिक ही नहीं। प्रस्तुत पुस्तक का पठनकर पाठक अपने मनके राजा बन सकेंगे और वास्तविक मनोराज्य-स्थापना करेंगे। मानसिक विकारोंको दूर भगा‌ने और विचारोंका सुन्दर स्वास्थ्य-लाभ करनेके लिये यह पुस्तक कल्प-वृक्ष है। पुस्तक की छपाई उत्तम कोटिकी है।

## जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लि०

८३, पुराना चीना बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता। शाखा—"प्रिंटिंग हाउस" हौज़कटरा, बनारस

सत्वं सुखे सञ्जयति

# सात्विक जीवन



मूल्य चार आने

सम्पादक—हलियाराम गुप्त

वर्ष ३, अङ्क २

B. C. PONNAPPA

# विषय-सूची


| विषय | | लेखक |
|---|---|---|
| १—एक टेक ( कविता ) | .... | स्व० श्री पं० चमूपति जी |
| २—सम्पादकीय | .... | ............ |
| ३—बौद्ध धर्म में वर्णाश्रम | .... | श्री धर्मानन्द कोसम्बी |
| ४—विचार-शक्ति | .... | श्री सतीश विद्यालंकार |
| ५—मृत्यु-विज्ञान | ... | श्री गंगाप्रसाद गौड़ "नाहर" |
| ६—गागर में सागर | .... | श्री नारायण प्रसाद |
| ७—प्राचीन शिक्षा-पद्धति | .... | श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द |
| ८—ज्योतिष-सिद्धान्त-सोपान | .... | श्री निशाकान्त |
| ९—आयुर्वेद और उसकी उन्नति | .... | श्री रघुनन्दन शास्त्री |
| १०—राज-धर्म-शास्त्र का अन्तिम रहस्य | .... | श्री डा० भगवान्दास |
| ११—समस्या का सुझाव | .... | ............ |
| १२—शक्ति की उपासना | .... | श्री शिवदत्त |
| १३—समस्या | .... | श्री अशोक आयुर्वेदालङ्कार |
| १४—श्रीरामजीके आदर्श जीवन से शिक्षाए | .... | श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति |
| १५—शान्ति का चश्मा अन्दर बहता है | .... | श्री लहरी |


# उद्देश्य और नियम

१—'सात्विक जीवन' प्रत्येक मासकी १५ तारीख तक प्रकाशित होता है।

२—'सात्विक जीवन' में प्रकाशित प्रत्येक लेखपर कार्यालयका पूर्ण अधिकार होगा। वह उस लेखको चाहे जिस रूपमें फिर छाप सकता है।

३—'सात्विक जीवन' का वर्ष विजया-दशमीसे प्रारम्भ होता है। ग्राहक वर्षके बीचमें बनानेका नियम नहीं जो बीचमें ग्राहक बनना चाहें उन्हें विजया-दशमीसे पहलेके सब अङ्क भेजे जाएँगे।

४—'सात्विक जीवन' में ब्रह्मचर्य, सदाचार, स्वास्थ्य, आरोग्यता, दर्शनशास्त्र, आध्यात्मिक आख्यायिकाओं, भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं तत्सम्बन्धी विषयोंपर गवेषणापूर्ण लेख रहते हैं।

५—समस्त मानव-समाजको अधिकाधिक उन्नत और विकसित करना ही इसका ध्येय है।

६—यह सदाचार एवं सात्विक वृत्ति द्वारा मनुष्य-जीवन को सफल बनानेका प्रचार करेगा।

७—प्रकाशित लेख प्रमाणित एवं अनुभूत होंगे। केवल विचार-पूर्ण लेख ही प्रकाशित किये जायेंगे।

८—विद्वानों, विशेषज्ञों, मनोविज्ञानवेत्ताओं एवं अनुभवी डाक्टरोंके विचारपूर्ण लेखोंकी व्यवस्था है, जिससे मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक शक्तिकी वृद्धि कर

९—किसी भी अवस्थामें गन्दे, अश्लील, साम्प्रदायिक, किसी धर्म, व्यक्ति अथवा जातिपर आक्षेप करने वाले लेख नहीं प्रकाशित किये जायेंगे।

१०—लेखको काटने-छांटने तथा छापने न छापनेका अधिकार सम्पादक को है।

११—अप्रकाशित हस्तलिपियां प्रेषकको ओरसे आवश्यक टिकट मिलनेपर ही वापस की जायेंगी।

१२—लेखादि सम्बन्धी पत्र सम्पादक को और व्यवस्था सम्बन्धी पत्र व्यवस्थापक को लिखना चाहिये।

१३—सात्विक जीवन का वार्षिक मूल्य ३) है। पुस्तकालयों, विद्यालयों तथा छात्रोंसे २), एक प्रति नमूनेके लिये चार आनेका टिकट आवश्यक है।

संरक्षक— श्री मनसुखराय मोर



# सात्विक जीवन

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

वर्ष ३ } काशी—सौर कार्तिक, १९९९ Benares—November 1942. { अङ्क २

## एक टेक

( रचयिता—स्व० श्री पं० चमूपति जी एम० ए० )

छोड़ रहे हों सब बान्धवगण,
मैं हूं और तुम्हारा सुमरण ।
अविरत चिन्तन अविरत पूजन,
हो अनन्य जब टेक एक हो ॥
तुम प्रभु मेरी एक टेक हो—
एक तुम्हीं मुझ में अनेक हो ॥

मैं तुम से मुख कभीं न मोड़ूं,
स्वार्थ तजूं सन्मार्ग न छोड़ूं ।
सब से तोड़ूं, तुम से जोड़ूं,
बस इतना मुझ में विवेक हो ॥

तुम प्रभु ! मेरी एक टेक हो—

सुख में दुःख में तुम्हीं पास हो,
हूं निराश क्यों ? एक आस हो ।
विश्व रास, जब तुम्हीं रास हो,
तुम्हीं न मुझ से विमुख नेक हो ॥

तुम प्रभु ! मेरी एक टेक हो—

कटु हो मृदु हो स्पर्श तुम्हारा,
मेरा क्या ? उत्कर्ष तुम्हारा ।
है निर्दोष विमर्श तुम्हारा,
जो तुम कर दो वही नेक हो ॥

तुम प्रभु ! मेरी एक टेक हो—

मरत तुम्हारा है स्वरूप क्या ?
अहो रूप यह है सुरूप क्या ?
है अद्भुत क्या औ अनूप क्या ?
सुख स्वरूप सुखातिरेक हो ॥

तुम प्रभु मेरी एक टेक हो—

# सम्पादकीय

## जगद्गुरु भारत-वर्ष का महत्तम आदर्श ; विश्वका आर्यीकरण

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"

मानव-धर्मशास्त्र ( मनुस्मृति ) में यह घोषणा है—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः,
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।"

( भारतवर्षीय ब्रह्मर्षि-देश, ( कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पञ्चाल, शूरसेनक ) में उत्पन्न विद्वानोंसे, भूमण्डलके सभी मनुष्य, अपने अपने कर्त्तव्य को सीखें )।

यहां विशेष रूपसे 'ब्रह्मर्षि-देश'नामक उपर्युक्त प्रदेशोंका निर्देश, प्राधान्य-न्यायसे हुआ है—"प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति।" वस्तुतः यह भारत-वर्ष-मात्र का उपलक्षण है ; अर्थात् भारतीय विद्वानोंसे, विश्व-मानव-समाज-मात्र को स्वधर्म-कर्म की शिक्षा लेनी चाहिये।

आर्य-धर्मशास्त्रोंके अनुसार भगवान् मनु, मनुष्य-मात्र के पिता हैं ; अत एव 'मनु'शब्द से ही अपत्य-अर्थ में मनुज, मनुष्य, मानव आदि शब्द बनते और व्युत्पन्न होते हैं। मानव-जाति-मात्र को 'मानवी प्रजा' कहने की वेद-शास्त्रीय परिपाटी है—"मानव्यो हि प्रजाः" ( तै० सं० ) ; इस से भी मनुष्य-जाति का मनु-सन्तान होना सिद्ध होता है। 'मनु'शब्द भी मनुष्य का एक पर्याय है ; जिस से भी 'रघवः, कुरवः, यदवः, आदिकी तरह मनुजों में मनुसन्ततित्व का स्पष्ट होता है।

इस तरह यदि मान लिया जाय कि संसार-भरके सभी मनुष्य, मनु सन्तान हैं ; तो भारत-वर्षीय और एतदन्तर्गत ब्रह्मर्षिदेश-प्रसूत लोगों की कोई विशिष्टता नहीं रह जाती है ; क्योंकि सभी देशों में अग्रजन्मा ( वृद्ध ) विद्वान् वा ब्राह्म-गुण-कर्मवाले लोग उत्पन्न होते हैं ; सुतरां उन उन देशों के निवासी, स्वदेश-प्रसूत विद्वानों से ही अपने चरित्र की शिक्षा ले सकते हैं। अतः मनु का यह कहना कि 'इस देशमें उत्पन्न विद्वानों से पृथिवीके सब मनुष्य स्वकर्त्तव्य की शिक्षा लें' असङ्गत और अपार्थ मालूम पड़ता है। इससे मानव-पिता मनु का पक्षपात भी प्रकट होता है ; क्योंकि उन्होंने अपने भारतीय सन्तानोंको ही विश्व की शेष प्रजा के गुरुत्व का वसीयत-नामा लिख दिया है, और अन्य-देशवासियों को सदा के लिये इनकी बौद्धिक गुलामी करते रहनेका फतवा दे दिया है।

इन आक्षेपों के समाधान, विविध विचार-पद्धतियों से, अनेक हो सकते हैं ; उनमें चाहे जो भी ठीक हो ; उन पर विचार करना यहां अनावश्यक है। पर उपर्युक्त मनु-देशनासे इतना तो अनुमान किया ही जा सकता, और वह सही भी हो सकता है, कि कोई भी सन्तति-हितचिन्तक पिता, अपने ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, अग्रजन्मा पुत्र से ही कनिष्ठ सन्तानों की शिक्षा-दीक्षा की आशा-प्रतीक्षा करता है ; और मानव-पिता मनु ने भी यही किया है। भारत–भूमि के ब्रह्मर्षि-देश में ही सर्व प्रथम आर्य मनुजों की उत्पत्ति हुई होगी ; सुतरां पिता मनुने, शेषपृथिवी-प्रसूत मनु-सन्तति-परम्परा की अपेक्षा 'अग्रजन्मा' होनेके कारण, भारतीयों को विश्व-शिक्षक होनेके योग्य समझा और उन्हें ( पृथिवी के शेष मानवों को ) इनसे स्वकर्त्तव्यकी शिक्षा लेने का आदेश

दिया। कोई भी पिता अपने अनुजन्मा पुत्र को अग्रजन्मा पुत्र से शिक्षा लेनेके लिये आदेश दे सकता है; इससे उसका पक्षपात नहीं, प्रत्युत अनुकम्पा प्रकट होती है।

ऐतिहासिकदृष्टि से विचार करने पर भी यही बात सिद्ध होती है कि, किसी समय (जब मनुस्मृति के उद्धृत वाक्य की रचना हुई होगी) भारतीय आर्यों की योग्यता ऐसी थी, जिससे शेष-पृथिवीतलवासी लोगोंको इनसे शिक्षा लेनी पड़ती थी; उसीका उल्लेख 'मनु' में हुआ है।

इन दोनोंमें से चाहे जो भी बात सही हो; परन्तु भारतीय आर्यों के महत्तम उत्तरदायित्व और लोक-संग्रह-कर्मयोग का सङ्केत अक्षुण्ण मिलता है। मानव-पिता मनुने जब अपने 'अग्रजन्मा' आर्य, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ भारतीय पुत्रोंसे, भूतल के सब अनुजन्मा मनुजों को उपदेश मिलनेकी आशा की, तब उनको इनकी योग्यता का कितना भरोसा होगा, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। इससे यह समझना भी बाकी नहीं रह जाता कि विश्व-मानव-समाज के प्रति गुरुतर कर्तव्य का कितना बड़ा उत्तरदायित्व भारतीय अग्रजन्मा आर्यों पर था। परन्तु आज तो भारतीय आर्य अग्रजन्माओं की शोचनीय स्थिति है, इससे इनके चिरात् शनैः अधःपात का साफ़ पता चलता है। पृथिवी के सब मानवों को उनके योग्य चरित्र की शिक्षा देकर, अपने पूर्वज मनु-प्रभृति की आशा और आशीः को चरितार्थ करना तो दूर रहा; अब स्वयं दूसरों से उचित शिक्षा लेने की क्षमता और प्रवृत्ति भी हम में नहीं रही।

ऐतिहासिक विचारपद्धति के अनुसार भी हमारा घोर ह्रास प्रमाणित होता है; क्योंकि यदि किसी समय हमारे पूर्वज, पृथिवी के सब मनुष्यों को शिक्षा देने के योग्य थे; तो हमारी अद्यतन अधोगति की चरम-सीमा पर हमारा आत्यन्तिक ह्रास स्वतःसिद्ध और लोक-प्रत्यक्ष है।

अब, विचारना यह है कि विश्वशिक्षक, जगद्गुरु भारतीय आर्यों का इतना पतन क्यों और कैसे हुआ? जिसके विषम परिणाम-स्वरूप, यह आर्यराष्ट्र न केवल अपने पूर्वज-प्रवर्तित, लोक शिक्षा–जगद्गुरुत्व, और विश्वार्यीकरण के उच्चतम आदर्श से च्युत और महत्तम लोक-संग्रहकर्मयोग से भ्रष्ट ही हुआ है, प्रत्युत सदियों से वैदेशिक अनार्य-म्लेच्छों का दास (गुलाम) शास्य और शिष्य भी बन गया है?

इस प्रश्नके उत्तर में अनेक विद्वानों के नाना मत और विचार हैं; उन सबका दिग्दर्शन भी लेख-विस्तर-कारक है; अतः उनका विचार यहां नहीं किया जा सकता। पर, संक्षेप में, इस घोर आर्य-हैन्दव-ह्रास वा भारतीय-महाराष्ट्र-पतन का मुख्य कारण बतलाया जा सकता है।

यद्यपि जातिवाद, जन्मना वर्णव्यवस्था, जाति से उच्च-नीचता और अस्पृश्यता, परस्पर विद्वेष, गृह-कलह, विग्रह, फूट, यादवी, कुरु-पाण्डवी, गृहस्थ-संन्यासि-संघर्ष साम्प्रदायिक वा मज़हबी अहमहमिका आदि अनेक निमित्तोंके साक्षात् और परम्परया समवाय से भारतीय आर्य-हैन्दव-अधःपात हुआ है, तथापि इन सब निमित्तों का भी निमित्त, निदान, आदि कारण हुआ, मध्य–अर्वाक्कालिक हिन्दुओं का आध्यात्मिक पतन। जब, मनुष्य के मन में अनुचित स्वार्थमय असीम परिग्रह भाव, अन्याय्य लोभ, अधर्म्य भोग-प्रवृत्ति, और नाना अवैध सङ्कल्प समा जाते हैं, तब यह उच्चतम विश्व-समात्मभाव से अधःपतित होता (नीचे गिर जाता) है; और एक बार सर्वात्मैक्य भाव से वञ्चित हो जाने पर, सर्वात्मा से भी पतित, अनात्मज्ञ, संवृत्त होता है। अनात्मज्ञ, अथवा आत्म-पतित मनुष्य, सुतरां 'अनध्यात्मविन्' (प्राणि-स्वभाव-

विज्ञान को न जाननेवाला) हो जाता ; उसकी सात्त्विकी बुद्धि का सर्वथा भ्रंश हो जाता है। यह बात सहज ही समझ में आनेवाली है कि जो अपने आत्मा को ही खो बैठता है, वह अनात्मज्ञ पुरुष, 'अध्यात्म' को, आत्मा के सम्बन्ध से सम्पन्न शारीरक-शास्त्र ( प्राणि-स्वभाव-विद्या ) को, चित्त चैतस-भाव-विज्ञान को, सत्त्व-परिणाम-रहस्यवाद को, महत्तत्त्व-विवर्त्तपद्धति को, बौद्ध-तत्त्वज्ञान को, बुद्धत्व को कथमपि नहीं प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार, बुद्धिभ्रंश के कारण, अनुद्बुद्धात्मा मनुष्य, पहले अपनी ही दृष्टि में गिर जाता है ; अन्यों की नज़रों में भी उसका गिर जाना स्वाभाविक और अनिवार्य है। फिर तो वह योग्य शिष्य वा दास बनने के लायक़ भी नहीं रहता ; गुरु, आचार्य, पुरोहित, नेता, शासक वा स्वामी कैसे हो सकता है ? यह तो विश्व में प्रत्यक्ष हो देखा जा रहा है कि, अंग्रेज, जर्मन, अमेरिकन आदि लोग, यदि कहीं नौकर भी रक्खे जाते, तो योग्य सेवक साबित होते हैं ; इसके विपरीत मृतात्मभाव के हिन्दुस्थानी आदि सज्जन, यदि कहीं मालिक भी बना दिये जाते हैं, तो अपने अधीन कर्मकरों ( अधिकारियों ) के गुलामों से भी बदतर सिद्ध होते हैं।

पाँचवीं शताब्दी के लग-भग भारतीय हैन्दव आर्य का आत्मा मर गया अथवा मृतवत् बेकार हो गया ; तब इसका आध्यात्मिक पतन, अनायास ही हो गया ; और तत्फलस्वरूप सामाजिक तथा लोकाभ्युदयिक अधोगति का कुवर्त्म खुला और साफ़ हो गया। सबसे पहले आर्य भारत के उस स्वतन्त्र प्रतिभाका विकाश रुक गया, जिसकी बदौलत ही हमारे पूर्वज ऋषि, मन्त्रद्रष्टा, उपज्ञाता ( आविष्कारक ), पुरोहित, नेता, आचार्य और उपाध्याय होते थे ; और जिसके लोकोत्तर उत्कर्ष से युक्त होनेके कारण, ही, यहांके अग्रजन्मा महापुरुष, जगद्गुरु और लोक-शिक्षक बनते थे। जहां हमारे पूर्वज आर्य ऋषियोंकी ऐसी आत्माशी: और सन्तान-शुभकामना थी कि—'सर्वतो जयमन्विच्छेत्, पुत्रादिच्छेत्पराजयम्' ( दुनिया में सबकी अपेक्षा अपना उत्कर्ष चाहो, किन्तु अपने पुत्र की अपेक्षा से अपकर्ष की इच्छा करो ) वहां आज सदियों से हमारी मनोवृत्ति, प्रवृत्ति और धारणा ऐसी निम्नगा हो गई है कि हमारे अन्त:करण में स्वतन्त्र प्रतिभा, उपज्ञा, मन्त्रदर्शन-शक्ति, दिव्य-दृष्टि के उन्मेष का उन्मूलन करनेवाला अनध्यात्मभाव दृढ़तर बैठ गया और सांस्कृतिकवत् हो गया है। जब कि पुराकाल में शास्त्रार्थ और बुद्धिवाद में भारतीय आर्यविद्वानों ने—"यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यं"—अगली अगली पीढ़ियों के मुनियों ( मननशीलों, विमर्शकों, तत्त्वचिन्तकों ) की उत्तरोत्तर अधिकाऽधिक प्रामाणिकता बतलाई है; और ऊपर उद्धृत वाक्य के अनुसार योग्यता के उत्कर्ष में उत्तरोत्तर सन्तानों से पूर्व-पूर्व पुरुषों के पराजय की इच्छा प्रकट की है ; तब भी हमारा मूढ़ग्राह और आत्मावमानन ऐसा ही है कि—"००० ऋषयोऽवरेषु न जायन्ते"—

अर्वाक्कालिक आर्य-सन्तानोंमें 'ऋषि' मन्त्रद्रष्टा, नवीन आविष्कारों के उपज्ञाता, उत्पन्न ही नहीं होते। ऐसी मूढ़ आत्मतुष्टि से हैन्दव आर्य की अर्थकरी-विद्योन्मेषिणी स्वतन्त्र प्रतिभा, और अभ्युदयशालिनी जिज्ञासाका ऐसा कुण्ठन वा उच्छेद हो गया है कि यह क़ौम, अपने जगद्गुरुत्व और विश्वार्यीकरण के योग्यत्व अधिकार, और कर्त्तव्य को तो खो बैठा ही है; साथ ही स्वयं भी अधोगति की पराकाष्ठापर पहुंच गया है। इसे पुनः उठने और अपने लोक शिक्षकत्व तथा विश्वार्यीकरण के गुरुतर उत्तरदायित्व को संभालने के लिये, पूर्व प्रदर्शित मूढ़ग्राह को छोड़ कर, अपने लोकोत्तर पूर्वज ऋषियों से भी उत्तरोत्तर महान् ऋषि बनने और योग्यता में उनसे भी आगे बढ़ जाकर, अपने को उनका योग्य वंश्य सिद्ध करने का सफल-प्रयत्न और तप:श्रम करना चाहिये। अन्यथा आर्य-ऋषिसन्तान होनेका अपार्थ दावा करना और "कृण्वन्तो विश्वमार्यं" का स्वप्न देखना बेकार है।

# बौद्ध-धर्ममें वर्णाश्रम

लेखक—आचार्य श्रीधर्मानन्द कोसम्बी

[ आचार्य कोसम्बीजी विश्व-विभूतिभूत महापुरुषोंमें अन्यतम हैं। आपने भूमण्डलके समुन्नत महादेशों और देशोंमें भ्रमण किया है। संस्कृत, पालि, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं द्वारा पौरस्त्य तथा पाश्चात्य वाङ्मयोंका यथेष्ट अध्ययन-अनुसन्धान किया है। आप देश तथा विदेश के प्रायः सभी सुप्रसिद्ध विद्वानोंमें विश्रुत हैं। उच्च विद्याओंमें सतत अध्ययनशील रहने, और प्रौढ़ सद्ग्रन्थोंके प्रणयनमें तल्लीन होनेके कारण, कोसम्बीजी किसी सार्वजनिक कर्म-प्रयोगके द्वारा देशकी साधारण जनता के अधिक सम्पर्कमें नहीं पहुंच सके ; अतः आबाल-वृद्ध-वनिता-जनवर्गमें महात्मा गान्धी आदिकी तरह इनकी प्रसिद्धि नहीं है ; पर, योग्यता, महत्ता, और सच्चारित्र आदि सद्गुण-कर्मयोगमें यह भी भारतवर्षके एक महान् पुरुष हैं। इन्हों ने विश्वमें भारतका सुनाम किया और यश फैलाया है। आचार्य कोसाम्बीजीने २३ वर्षकी अवस्थामें ही भगवान् बुद्धके चरित्र और सदुपदेशोंसे प्रभावित होकर गृह-त्याग किया, और काशी आदिमें जाकर संस्कृतका अध्ययन किया। बौद्ध-धर्मका तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिये सिंहल और बरमामें वर्षोंतक पालिवाङ्मय-त्रिपटकादिका अध्ययन तथा मनन किया। सुप्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ 'विसुद्धिमग्ग' के सम्पादन के लिये हार्वर्ड-यूनिवर्सिटी अमेरिकाका सादर आमन्त्रण पाकर, आपने वहां चार बार जाकर उस कार्य-को सम्पन्न किया। सन् १९२९ ई० में बौद्ध-वाङ्मयके सम्पादनके लिये आप 'रूस' गये और महीनों वहां रहे। रूससे आप बहुत प्रभावित हुए। सन् १९३० ई० में आपने सत्याग्रह-संग्राममें भी भाग लिया, और उसके फल-स्वरूप कारा वास किया था।

भारतवर्षके कई प्रान्तोंमें—विशेषरूपसे गुजरात आदि पश्चिम हिन्दुस्थानमें—पालि-वाङ्मय तथा बौद्ध साहित्यका जो प्रचार हुआ है, उसका मुख्य श्रेय श्रीकोसम्बीजीको ही है। अभीतक हिन्दी-जगत् आपके अगाध तत्त्वज्ञानके बुद्धिवर्द्धक आस्वाद से प्रायः वञ्चित है ; अतः हम लोगोंने आपके हिन्दी लेखों और निबन्धोंके प्रकाशनका विचार किया है। इसीलिये यद्यपि स्वयं आचार्य कोसाम्बीजी अपने विषयमें प्रशंसा-वचनको पसन्द नहीं करते, तथापि हिन्दी-जगत्को उनका विशेष परिचय करानेके लिये हमने यहां उनके जीवनकी तत्त्व-कथाका संक्षिप्त उल्लेख करना आवश्यक समझा है ]।

लाखों वर्ष पहले मनुष्य, समाजमें ( समाज बना कर ) नहीं रहता था। जब वह शिकार करने लगा, तब उसका समाज होना अपरिहार्य हो गया। शिकार के प्राथमिक साधन दण्ड ( डण्डा ) और पत्थर थे ; तो भी जितने अधिक आदमी रहते थे, उतना ही शिकार पकड़ना आसान होता था ; इसीलिये मनुष्य का समाज बनना अपरिहार्य हो गया।

इस वन्य समाज में किसी एक होशियार आदमी को मुखिया बनाना पड़ता था। आपस का झगड़ा मिटाना, शिकार का क्षेत्र ठहराना, कहां शिकार करना वा किस दिशा में जाना इत्यादि बातों का नियामक वह होता था। लेकिन उन लोगोंमें कोई जातिभेद नहीं था ; सब समान होते थे।

इस प्रकार, किसी वन्य टोली ने अग्नि का उपयोग मांस-पचन में, करना शुरू किया होगा। कालान्तर में उन लोगोंको ताम्बेका उपयोग मालूम हुआ ; वे आग में डाल कर ताम्बे का शस्त्र बनाने लगे। उन लोगोंके पास कुल्हाड़ी और बाण, ये विशेष शस्त्र होते थे, जिनका शिकार में उपयोग होता था।

परन्तु जब इस प्रकारकी वन्य टोली का मृगया-क्षेत्र बढ़ने लगा, तब सहज-रीत्या उसी प्रकार की दूसरी टोलियोंके साथ संघर्ष प्रारम्भ हुआ और

लड़ाइयां होने लगीं। एक टोली के लोग, जब दूसरी टोली का पराजय करते थे, तब उस टोली में से जो स्त्री, पुरुष, बाल-बच्चे हाथ लगते थे, उन सबका संहार करना अपना धर्म (कर्त्तव्य) समझते थे; क्योंकि उनको ज़िन्दा रखनेसे, उतने अंश में उनके शिकार में बाधा होती थी; कारण कि, दूसरी टोली भी मृगया-जीवी होती थी।

कोई कोई टोलियां दूसरी टोलियोंमें से मांसल स्त्री-पुरुषोंको पकड़ रखती थीं, और जब उन्हें दूसरा शिकार नहीं मिलता था तब वे उन पकड़े हुए लोगोंको मार कर खाती थीं; इसीसे नर-मांस-भक्षण की प्रथा शुरू हुई। आजतक अफ्रिका की कई जङ्गली टोलियों-में यह प्रथा विद्यमान है। धान्य का शोध लगने के बाद, यद्यपि यह प्रथा नहीं रही; तो भी उन लोगों के पूर्वज़ नरमांस-भक्षक थे, यह 'नरमेध' नामक यज्ञ से सिद्ध होता है।

इसी अवस्था में मनुष्य ने धान्य का शोध लगाया। जो धान्य कृषि-कर्म के बिना स्वयं जङ्गलमें पैदा होता था, उसे वे लोग बटोर लाते और आग में पका कर खाते थे। उन्हीं लोगोंने गाय, बकरी, भेड़ आदि पोष्य पशुओंका पता लगाया, और उनका दमन करके अपने वशमें किया। उसका नतीज़ा यह हुआ कि तब उन वन्य लोगोंको शिकार पर निर्भर रहने का कोई कारण नहीं रह गया। फिर भी वे लोग आवश्यकता होने पर पुंपशुओं और दूध आदि देनेके अयोग्य गाय, बकरी, भेंड़, भैंस, सूअर आदि, को मार कर खाया करते थे।

आगे जाकर, जब उस प्रकार की कोई टोली, बैलों का कृषि में प्रयोग करने लगी, तब उसका विकाश त्वरित होने लगा। लेकिन-आस-पास की दूसरी टोलियोंके साथ लड़ाई होती ही रहती थी। अब प्रश्न यह रहा कि पराजित लोगोंको (मार कर) सफाया क्यों किया जाय? इनको पकड़ कर खेती के काम में क्यों न लगाया जाय? इस विचार के अनुसार जब विजेता टोली, अपने खेतोंमें विजित लोगों का उपयोग करने लगी, तब से दास-प्रथा (गुलामी) शुरू हो गई। परिणाम-स्वरूप उस समाजमें मालिक और गुलाम, ये दो वर्ग हो गये। यही वर्ण-धर्म का उद्गम है।

उन गुलामों को दबाने के लिये कुछ सशस्त्र लोग तैयार रखने पड़ते थे; वही क्षत्रिय-वर्ग हुआ। उन क्षत्रियों का काम, केवल गुलामोंको दबाना ही न था; अपि तु अन्य टोलियों के आक्रमण से अपने प्रदेश की रक्षा करना, और ज़रूरत पड़ने पर कभी-कभी दूसरों के प्रदेशों पर स्वयं आक्रमण करना भी था।

'सूर्य, चन्द्र-प्रभृति देवों की कृपा से ही, उन युद्धों में जय मिलना सम्भव है' ऐसी धारणा से वे लोग, बलिदान-पूर्वक, उन देवताओं की पूजा करते थे। धीरे धीरे वे लोग, अपनेमें से सुज्ञ आदमियों को देवताओं के पुजारी बनाने लगे; वे लोग न केवल देव-पूजा, अपि तु राज्यशासन भी करते थे। जैसे कि, सिन्धु-प्रदेश में, वृत्र; वह ब्राह्मण था और क्षत्रिय (सप्तसिन्धु का राजा) भी। यदि वह केवल ब्राह्मण होता, तो इन्द्र उसे मार नहीं डालता।

सप्तसिन्धु-प्रदेश पर आर्यों का अधिकार होने के बाद, यह परिस्थिति बदल गई; जातिभेद पक्का होने लगा। ब्राह्मणों का संमान रहा, तो भी उनके हाथसे राज्याधिकार निकल गया; केवल देवताओं की पूजा उनके अधिकार में रही। इससे एक लाभ हुआ कि ब्राह्मणोंको ज्योतिष, व्याकरण आदि शास्त्रोंके विकास करने का अवसर मिला। बुद्ध-पूर्वकाल में, तक्षशिला में ब्राह्मण आचार्य, न केवल वेद, वेदाङ्ग का, अपितु धनुर्वेद, आयुर्वेद आदिका भी अध्यापन करते थे; और उनके पास पढ़ने के लिये मगध तक के विद्यार्थी जाते थे।

हिन्दुस्थान में, अद्यतन सन्थाल, कोण्ड, भील

आदि वन्य जातियों की तरह, आर्यों के आगमन के पूर्व काल में भी, इस प्रकार की बहुत जातियां रहती थीं। वे बहुधा शिकार के आधार पर अपना जीवन चलाती थीं। लेकिन जब जङ्गल कम होने लगे, तब उन जातियों में से अधिकतर जातियों को अन्य व्यवसाय करना पड़ा। उनमें से जो वरिष्ठ जातियों (त्रैवर्णिकों) की सेवा करने लगे, वे शूद्र हो गये ; और जो शूद्र वर्ण में दाखिल होना नहीं चाहते थे, वे समाज के बाहर रह गये ; जो आज तक 'अस्पृश्य' कहे जाते हैं।

मालूम होता है कि आर्यों के पूर्वकाल में भी यहाँ एक तपस्वी वर्ग रहता था, जिसे 'यति' वा 'श्रमण' कहते थे। इन यतियों को मारकर इन्द्र ने कुत्तोंको दिया; यह बात ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा उपनिषदों में कई बार आई है-"यतीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छम्" (कौषीतक्युप०, अ० ३)। उन यतियों का तत्कालीन समाज पर बहुत प्रभाव था, इसीलिये इन्द्र ने उनको मारा। सप्तसिन्धु में उस यति-संस्था का उद्गम और विकास कैसे हुआ, यह समझने का कोई साधन नहीं है। किन्तु मध्य हिन्दुस्थानमें यतिसंस्था के सदृश 'श्रमण संस्था' थी; उसके उद्गम और विकास का पर्याप्त इतिहास जैन तथा बौद्ध वाङ्मयमें है। उस इतिहास के अध्ययन के बिना हिन्दू-संस्कृतिका पूरा ज्ञान होना असम्भव है।

'यति' माने यत्न करनेवाला, और 'श्रमण' माने श्रम करनेवाला। यह यत्न, अथवा श्रम, वे लोग तपश्चर्या द्वारा करते थे ; अर्थात् अनेक प्रकारसे देह-दण्डन कर स्वयं कष्ट पाते थे। उन लोगों के सारे इतिहास को यहां उद्धृत करने का प्रयोजन नहीं है[१]। किन्तु एक बात अवश्य कहनी है कि वे श्रमण लोग, जातिभेद को बिल्कुल नहीं मानते थे।

किसी भी जातिका आदमी श्रमण हो सकता था और उसका हिन्दू समाज में आदर-सम्मान होता था—

"तदमिना पि जानाथ यथा मेदं निदस्सनं ;
चण्डालपुत्तो सोपाको मातंगो इति विस्सुतो।
सो यसं परमं पत्तो मातंगो ; यं सुदुल्लभं;
आगच्छुं तस्सुपट्ठानं खत्तिया ब्राह्मणा बहू"।

(वसलसुत्तं)

इस उदाहरण से भी जान लो कि जाति से मनुष्य की श्रेष्ठता वा नीचता नहीं होती है, क्योंकि 'मातङ्ग' नामक चण्डाल-पुत्र ने (श्रमण होकर) बड़ा यश पाया, और उसकी सेवा में बहुत-से क्षत्रिय तथा ब्राह्मण उपस्थित होते थे।

इसका कारण यह हो सकता है कि श्रमण लोग समाजसे अलिप्त रहते थे। इसी श्रमण-संस्कृति से बौद्ध-धर्म निकला। कई लेखों में मैंने बताया है कि समाज में—विशेषतः क्षत्रियों में—जो अनेक झगड़े होते थे, उनका 'हल' करने का रास्ता खोजने के लिये गोतम बुद्ध ने गृहत्याग किया ; क्योंकि क्षत्रियों के आचार का पालन करने से शान्ति का मिलना अशक्य था। श्रमणों का जो मूलभूत धर्म, (तपश्चर्या) था, उससे भी उस समस्या का 'हल' नहीं हो सकता था। इसीलिये बुद्धने देह-दण्ड के उस रास्ते को भी छोड़कर स्वयं मध्यम मार्गका शोध लगाया ; जिससे सब विवादों का अन्त हो सकता है। यह माध्यम मार्ग, केवल श्रमणों के लिये नहीं, बल्कि सब मनुष्यजाति के लिये था।। समाज में प्रचलित जो कई रूढ़ियां थीं, उनमें से हितकर रूढ़ियों का पुरस्कार और अहितकर रूढ़ियों का प्रतिषेध, भगवान् बुद्ध ने इसी मध्यम मार्ग की दृष्टि से किया।

[१] आचार्य श्रीधर्मानन्द कोसम्बीने स्वप्रणीत "हिन्दी-संस्कृति आणि अहिंसा" नामक ग्रन्थ के दूसरे विभाग में श्रमण-संस्कृतिका कुछ इतिहास लिखा है ; उसे मराठी तथा गुजराती के पाठक स्वयं देख सकते हैं। इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है ; जो अभी अमुद्रित पड़ा है। (संपादक)

लोगों की समझ है कि, बुद्ध का अवतार, यज्ञ-यागों को निषेध करने के लिये हुआ—"निन्दसि यज्ञ-विधेरहह श्रुतिजातं, सदयहृदयदर्शितपशुघातं ; केशव-धृतबुद्धशरीर, जय जगदीश हरे" ( गीतगो० ) लेकिन यह बात ठीक नहीं है। बुद्ध के पहले अनेक श्रमण-संस्थाओं ने यज्ञ-याग का निषेध किया था ; और उसके फलस्वरूप, बुद्ध काल में सामान्य-जनसमूह, हिंसामय यज्ञ-यागों से विरत होने लगा था। केवल राजा लोग और सम्पन्न ब्राह्मण, यज्ञ-याग करते थे। इसलिये यद्यपि बुद्ध ने इतर श्रमणों की तरह हिंसात्मक यज्ञ-यागों का निषेध किया, तो भी उस पर अधिक ज़ोर नहीं दिया। भगवान् का सारा ज़ोर जाति-भेदमूलक वर्णाश्रम-धर्म के प्रतिषेध पर था।

"न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो ;
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो"

( कोई भी मनुष्य, जातिसे ही वृषल ( चण्डाल ) अथवा ब्राह्मण नहीं होता ; किन्तु कर्म से वृषल वा ब्राह्मण होता है )।

यही बात भगवान् ने अनेक सूत्रों में प्रतिपादित की है। और ब्राह्मण लोग उन पर जो अभियोग लगाते थे, वह यह था कि "श्रमण गोतम चारों वर्णों की शुद्धि का प्रतिपादन करते हैं—'समणो गोतमो चातुवण्णिं सुद्धिं पञ्ञापेति' तो भी कोई कोई ब्राह्मण, जातिमूलक वर्णभेद में सन्देह रखते थे। उदाहरण के लिये 'वासेट्ठ-सुत्त' में वासेट्ठ ब्राह्मण बोलता है—

"जातिया ब्राह्मणो होति, भारद्वाजो इति भासति ;
अहं च कम्मुना ब्रूमि ; एवं जानाहि चक्खुम।"

( हे चक्षुष्मन्, बुद्ध, भारद्वाज कहता है कि जातिसे ब्राह्मण होता है ; किन्तु मैं कहता हूं कि कर्म से होता है )।

स्यात्, श्रमणों में जातिभेद का जो अत्यन्त अभाव था, उसका प्रभाव कुछ वासिष्ठ ऐसे विवेकशील ब्राह्मणों पर भी पड़ा था। यद्यपि वे बहुत थोड़े थे, तथापि बुद्ध भगवान् के गुण-कर्मानुसार वर्णाश्रम धर्म-प्रचार में उनका बहुत साहाय्य हुआ। यदि सभी ब्राह्मण और और क्षत्रिय, जाति से ही वर्णाश्रम मानने का आग्रह धरते, तो भगवान् बुद्ध, गुण-कर्म से वर्णाश्रम-धर्म की व्यवस्था का प्रचार करने में समर्थ नहीं होते।

कुछ भी हो, हमारे पास जैन और बौद्ध वाङ्मय, प्राचीन शिला-लेख, आदि जो इतिहास के साधन उपलब्ध हैं, इनसे विदित होता है कि भारतवर्ष में, भगवान् बुद्ध से लेकर गुप्तराजों तक, गुण-कर्म से वर्णाश्रम धर्म माननेवाले वरिष्ठ जातिके लोग बहुत थे। अधिकतर ब्राह्मण, उसका विरोध करते ही थे ; लेकिन आम-जनता पर—विशेषतः राजाओं पर—उसका असर नहीं पड़ा।

'दिव्यावदान' में अशोक के 'यश' नामक अमात्य की जो कथा आई है, उसे यहां सारतः उद्धृत करना अप्रस्तुत न होगा।

अशोक ने अभी बौद्ध धर्म ग्रहण किया था, और वह सब भिक्षु का वन्दन करता था। यह कृत्य 'यश' अमात्य को अच्छा नहीं लगा। वह बोला—'महाराज, इन शाक्य श्रमणों में सब जाति के लोग हैं ; इनके सामने आपका अभिषिक्त शिर नवाना उचित नहीं है'।

इसका उत्तर, अशोक ने नहीं दिया, और कुछ समय के बाद बकरे, भेंड आदि मेध्य प्राणियों के शिर मंगाकर बेंचने को लगाया। 'यश' अमात्य को एक मनुष्य का शिर देकर उसे बेंचने के लिये भेजा। बकरे आदि प्राणियों के शिर की कुछ क़ीमत मिली लेकिन मनुष्य का शिर किसी ने नहीं खरीदा। तब अशोक ने उसे किसी को मुफ्त दे देने की आज्ञा दी किन्तु उसे मुफ्त लेनेवाला भी कोई नहीं मिला; प्रत्युत सर्वत्र घृणा होने लगी। जब 'यश' अमात्य ने अशोक

के यह बात निवेदित की, तब उन्होंने पूछा—'इसे लोग मुफ्त भी क्यों नहीं लेते हैं ?

यश—क्योंकि इस शिर से लोग घृणा करते हैं।

अशोक—इसी शिर से लोग घृणा करते हैं; अथवा सब मनुष्यों के शिर से ये घृणा करेंगे ?

यश—महाराज, किसी आदमी का शिर काट कर लोगोंके पास लाया जाय, तब ये इसी प्रकार घृणा करेंगे।

अशोक—क्या मेरे शिर का भी ऐसा ही हाल होगा ?

इस प्रश्न का उत्तर देने का साहस 'यश' को नहीं हुआ। लेकिन अशोक के अभय वचन देनेपर वह बोला—महाराज, आपके शिर से भी लोग ऐसी ही घृणा करेंगे।

अशोक—यदि ऐसा मेरा शिर, भिक्षुओं के सामने झुका, तो आपको बुरा क्यों लगा ?

इस कथासे विदित होता है कि, अशोक, बौद्धसङ्घ में जातिभेद को पसन्द नहीं करता था। किन्तु सङ्घ के बाहर विवाह आदि के सम्बन्ध में जातिवाद को नष्ट करने का, उसने वैसा प्रयत्न नहीं किया, जैसा हिंसा-मय यज्ञ-यागों को बन्द करनेके लिये किया था। वह अपने पहले ही शिला-लेख में कहता है—

"इध न किं चि जीवं आरभित्वा प्रजुहितव्यं"

(हमारे राज्य में प्राणी को मार कर यज्ञ नहीं करना) इस प्रकार से जातिभेद का निषेध न तो उसके शिलालेखों वा स्तम्भलेखों में, नहीं उसकी कथा में ही मिलता है। ऊपर उद्धृत, यश के साथ हुए अशोक के संवाद की कथा के अन्त में, 'दिव्यावदान' में जो श्लोक आते हैं, उनमें से एक यह है—

"आवाहकालेऽथ विवाहकाले
जातेः परीक्षा ; नतु धर्मकाले।
धर्मक्रियायां हि गुणा निमित्ता,
गुणाश्च जातिं न विचारयन्ति।"

(लड़की को लेने और देने में चाहे जाति का विचार करना ; किन्तु धार्मिक विधि में जातिविचार करना नहीं चाहिये। क्योंकि धर्म-कर्म में गुण ही कारण हैं ; और गुण, जातिपर अवलम्बित नहीं होते)

यह हो सकता है कि यज्ञके विरुद्ध लोकमत प्रबल था ; किन्तु बहुजन-समाज, अपनी अपनी जाति को छोड़ने के लिये तैयार नहीं था ; इसीलिये अशोक ने बौद्धसङ्घ मात्र को ही जातिभेद से अलिप्त रखने में समाधान मान लिया होगा।

अशोक-वंश के पतन के बाद, पुष्यमित्र और अग्निमित्र के राज्य-काल में यज्ञ-यागों के पुनरुज्जीवन का प्रयत्न हुआ। किन्तु वह अशोक द्वारा किये पूर्व प्रचार के प्रभाव से सफल नहीं हो सका। मात्र, जाति-भेद क़ायम रहा, और बढ़ता ही गया।

ऐसा कोई आधार नहीं है जिससे यह प्रमाणित हो कि अशोक-काल में अथवा उसके बाद, बौद्ध-सङ्घ ने सङ्घ के बाहर की जनता के जातिभेद के विरुद्ध प्रचार किया ; जैसा कि स्वयं भगवान् बुद्धने और 'महाकात्यायन' प्रभृति उनके शिष्योंने किया था। तो भी यवन, शक, किरात आदि जो वैदेशिक जातियां इस देश में आईं, उनको हिन्दू-समाज में मिला लिये जाने का मुख्य कारण बौद्ध-सङ्घ ही हो गया ; उसका कुछ अनुसरण जैन साधुसमूह ने भी किया। उस समय हिन्दूसमाज में प्रवेश करनेके लिये ये दोही द्वार खुले थे। यद्यपि बाह्य जातियां इन द्वारों से हिन्दूसमाज में प्रविष्ट हुईं, तथापि यहां के 'अस्पृश्य' कहे जानेवालों की स्थिति पूर्ववत् ही ज्यों की त्यों बनी रही ; बौद्ध अथवा जैन सङ्घ ने उन्हें उठाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। फलतः धीरे धीरे जाति-उपजातियों के भेद बढ़ते गये।

पुष्यमित्र के बाद जो यज्ञ याग लुप्तप्राय हुए थे, उनका पुनरुज्जीवन करनेका प्रयत्न समुद्रगुप्तने किया। गुप्तों के कालमें भी यज्ञ-यागके प्रचारका प्रयत्न सफल नहीं हो सका; लेकिन जातिभेदमूलक हिन्दू-धर्म को बहुत प्रोत्साहन मिला। फिर भी वे राजा लोग बौद्ध-सङ्घ का बहुमान करते थे; उन्हीं के काल में 'नालन्दा' के ऐसे बड़े बड़े बौद्ध-विहार स्थापित हुए।

बौद्धसङ्घ ने जातिवाद के विरोध में प्रचार करना बिल्कुल छोड़ दिया; उसका परिणाम यह हुआ कि गुप्त राजाओं के बाद जातिभेद को न माननेवाला बौद्ध-सङ्घ ही घृणित होने लगा। न केवल उसीके ऊपर, अपितु स्वयं भगवान् बुद्ध पर भी कठोर आक्षेप करने का अच्छा अवसर ब्राह्मणों को मिला। देखिये कुमारिलभट्ट क्या कहते हैं—

"स्वधर्मातिक्रमेण च येन क्षत्रियेण सता प्रवक्तृत्व-प्रतिग्रहौ प्रतिपन्नौ, स धर्ममविप्लुतमुपदेक्ष्यतीति कः समाश्वासः ?००० सन्मूलमपि अहिंसादि श्वदृतिनिक्षिप्तक्षीरवद् अनुपयोगि, अविश्रम्भणीयं च।"

( मी० तन्त्रवार्तिके १, ३, २-३ )

("जिस बुद्ध ने क्षत्रिय होकर भी स्वधर्म के विपरीत शिक्षक-कर्म और भिक्षावृत्ति को स्वयं अपना लिया, वह दूसरे लोगों को निर्दोष वा आपत्तिरहित धर्म का उपदेश देगा, इसका क्या भरोसा ?००० अतः वेदादि-सच्छास्त्रमूलक अहिंसा आदि धर्म का उपदेश भी बुद्ध-प्रोक्त ग्रन्थ से अथवा बौद्ध उपदेशक के मुख से नहीं लेना चाहिये; क्योंकि वह कुत्ते के चमड़े की थैली में डाले हुए दूध की तरह अशुद्ध, अग्राह्य, अनुपयोगी और अविश्वसनीय है)।"

कुमारिल भट्ट के अनन्तर खलीफ़ा के सरदार मुहम्मद इब्न क़ासिम ने 'सिन्ध देश को पराजित किया और वहां के 'दाहिर' नामक हिन्दू राजा को मार कर, उसकी दो तरुण लड़कियां 'खलीफा के लिये 'बगदाद' को भेज दीं। उसके बाद सिन्ध में ज़ोरसे इस्लाम का प्रचार हुआ। शङ्कराचार्य का उदय-काल, इब्न क़ासिम के लगभग एक सौ वर्ष के बाद हुआ; तौ भी इन मुसलमानों से कुछ सबक न लेकर उन्होंने कुमारिल भट्ट-प्रभृति की तरह ही शूद्रों के ऊपर विद्वेष प्रकट किये। देखिये, ब्रह्मसूत्र-शाङ्कर भाष्य के अपशूद्राऽधिकरणमें वह क्या लिखते हैं।

"अथाऽस्य ( शूद्रस्य ) वेदमुपशृण्वतः त्रपु-जतुभ्यां श्रोत्र-प्रतिपूरणम्। पद्यु ह वा एतत् श्मशानं यत् शूद्रः, तस्मात् शूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्। ०००वेदोच्चारणे जिह्वा-च्छेदः, धारणे शरीरभेदः। ००० न शूद्राय मतिं दद्यात्"

( ब्र० शां० भा० १, ३, ३८ )

( शूद्र, यदि वेदवाक्य सुन ले तो उसके कानों में लाह और शीशा गला कर भर दो। शूद्र, चलता श्मशान है; अतः उसके सामने नहीं पढ़ना चाहिये। शूद्र, यदि वेदका उच्चारण करे तो उसकी जीभ काट डालो; और यदि वह किसी वेद-वाक्य को याद कर ले तो उसके शरीर के टुकड़े कर दो। शूद्र को बुद्धि न सिखाओ )।

कुछ विद्वान् कहेंगे कि इतने बड़े हिन्दुस्थान के एक कोने पर क्या चलता था, यह शङ्कराचार्य कैसे जानें? लेकिन उसी समय के ग्रन्थकार ब्राह्मण यह बात जानते थे; इसका प्रमाण विष्णुपुराण में यों मिलता है—"सिन्धुतट-दाविकोर्वी-चन्द्रभागा-काश्मीरविषयांश्च व्रात्य-म्लेच्छ-शूद्रादयो भोक्ष्यन्ति००० अल्पप्रसादा बृहत्कोपाः सार्वकालमनृताऽधर्मरुचयः स्त्री-बाल-गोवधकर्त्तारः०००" ( अं० ४, अ० २४ वा० ६६-७१) इस वाक्य से विशेषतः "गोवधकर्त्तारः" पद से मुसलमानों का स्पष्ट निर्देश है। स्यात् मुहम्मद गज़नी ( गज़नवी ) के आक्रमण के बाद यह लिखा गया होगा। तौ भी सिन्ध में सौ बरस तक क्या चल रहा था, यह शङ्कराचार्य को मालूम न होना असम्भव है।

उसी काल में पौराणिकों ने 'शम्बूक' की कथा ऐसी बातें पुराणों में प्रक्षिप्त कर दीं। समुद्रगुप्त प्रभृति हिन्दू राजा, बौद्ध-सङ्घ के लिये बहुत समादर रखते थे; जिसमें शूद्र जाति के लोग भी प्रविष्ट थे। यह प्रथा श्रीहर्षवर्द्धन-काल ( ७ वीं शदी के मध्य ) तक अव्याहत चली आई थी। गुप्तराज-कालमें, अथवा हर्षवर्धन-के समय में, शम्बूक-कथा ऐसी बातों का अवसर ही न था। उनके पश्चात् भी हिन्दू राजा, शम्बूक-सदृश शूद्र-तपस्वियों का उच्छेद करते थे; इस बात के लिये कोई साधार प्रमाण नहीं है। अत: शम्बूक-कथा ,ऐसी बातोंको पुराण आदिमें प्रक्षिप्त कर देनेवाले ब्राह्मणों का तात्पर्य केवल यही प्रकट होता है कि हिन्दू राजा लोग, जिस सङ्घ में शूद्र तपस्वी रहते हैं, उसका उच्छेद करें।

मुझे आश्चर्य होता है कि मुहम्मद गज़नवी ने सतरह बार भारत-भूमि पर आक्रमण कर के हिन्दू मन्दिरों और हिन्दू धनिकों की अपार सम्पत्ति लूट ली, हिन्दुओं का आम क़त्ल कर दिया, और सुन्दर हिन्दू-युवतियों को पकड़ कर, अपने आदमियों में बांट दिया और बेंच डाला; तौ भी हमारे तत्पश्चा-त्कालीन बड़े बड़े धर्माचार्य, उन्हीं पुराने जातिमूलक वर्णाश्रमवादों को दुहरा रहे थे! हिन्दू क़ौम पर जो भयानक आक्रमण हो रहा था, उसका उल्लेख मात्र भी इन आचार्योंके ग्रन्थोंमें नहीं मिलता है; उसके प्रतीकार की बात कहांसे मिलेगी? मानो वे समझते थे कि ये सब आक्रमण और अत्याचार नैसर्गिक हो रहे हैं।

हमारे धार्मिक समझे जानेवाले बन्धनों से बद्ध होकर सामान्य जनता तमोयुग में इतना डूबो थी कि उसमें कोई एक व्यक्ति भी सिर उठाकर यह देखनेवाला नहीं निकला कि हिन्दू समाज पर चारों ओर से क्या सङ्कट आ रहा था? तब बुद्ध सदृश दूरद्रष्टा महर्षि, उन दिनों उनमेंसे कैसे उत्पन्न हो सकता था? परिणामत: हिन्दुओं को लग-भग एक हज़ार बरस तक धूलिवत्, मुसलमानों के पददलित रहना पड़ा। इस अवधि में हिन्दुओं ने कितने कष्ट और अत्याचार का सहन किया; इसका साक्ष्य इतिहास से मिल रहा है।

सतरहवीं शताब्दी में दक्षिण में मराठों ने और उत्तर में सिक्खों ने सिर उठाया; उसका कारण हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की अधिक अधोगति का होना था। यदि हिन्दुओं में आत्मबल रहता तो मराठों और सिक्खों के राज्य-कालमें विना ज़ोर-जबर्दस्ती के बहुत मुसलमान हिन्दू हो जाते। महाराष्ट्र के 'गोवा' प्रदेश में पुर्त्तगीज़ों ने आधे हिन्दुओं को जबर्दस्ती से ईसाई बनाया। कई पुश्तों तक वे लोग चाहते थे कि हिन्दू उनको पुन: अपने में मिला लें; पर पराक्रमी मराठों ने भी यह काम नहीं किया। इतना ही नहीं; पुर्त्तगीजों से रिस्वत ले-ले कर 'गोवा' प्रान्त को उन्हीं के सुपुर्द कर दिया। यह रहने दीजिये; मराठों का खास ( असल ) प्रान्त आज निजामके कब्जे में है, जिसमें रामदेव राव जाधव की राजधानी थी; और कई मराठे साधु-सन्तों के जन्मस्थान हैं। मराठों ने 'खर्डे' की लड़ाई में निजाम को क़ैद रक्खा था, यह बात सुप्रसिद्ध है। लेकिन उनके मनमें भी ऐसा नहीं हुआ कि मराठे भाइयों को अपने राज्य में दाखिल कर लें। सच पूछिये तो दक्षिण में हिन्दुओं-की अत्यधिक संख्या होने के कारण, वहां निजाम का रहना अनावश्यक था।

उत्तरमें सिक्खों ने अपना राज्य क़ायम करके क़ाबुल तक धाक़ जमा लिया; लेकिन पञ्जाब में आज तक मुसलमान बहुसंख्यक हैं; और यदि सिक्खों के परा-क्रम का फ़ायदा किसी को हुआ तो वह अंग्रेज़ों को हुआ। ऐसा सुना है, कि विद्यमान काश्मीर महाराज के एक पूर्वज ने उस प्रान्त के सब मुसलमानों को हिन्दू बनाने का निश्चय किया, और स्वयं मुसलमान लोग हिन्दू बन जाने को पूरा तैयार थे; एक यज्ञ करके

उनकी शुद्धि होनेवाली थी। उस अवसर पर आठ सौ काश्मीरी ब्राह्मण बड़े बड़े पत्थर सिर पर लेकर श्रीनगर के मुख्य तालाब के घाट पर उपोषित हो (अनशन कर के) बैठ गये और उन्हों ने महाराज को धमकाया कि यदि मुसलमानों को हिन्दू बनाया जायगा तो हम सभी ब्राह्मण इसी तालाब में पत्थर के साथ डूब कर आत्म-हत्या कर लेंगे। ब्रह्महत्या के भय से महाराज ने अगत्या वह प्रयत्न छोड़ दिया।

उपर्युक्त कथन से मालूम होगा कि हिन्दू क़ौम ने गुण-कर्म से वर्णाश्रम-धर्म स्थापित करने का प्रयत्न, बौद्ध-काल में किया, लेकिन बौद्ध लोग भी, भिक्षुसङ्घ के बाहर, उसका प्रचार करने में असमर्थ हुए। नतीजा यह हुआ कि जातिभेद को न माननेवाले बौद्धसङ्घ ने दक्षिण में सिंहल द्वीप तक, उत्तर में मङ्गोलिया तक, पूर्व में जापान, और पश्चिम में ईरान तक बौद्ध धर्म की ध्वजा फहराई; क्योंकि उन देशों में जातिवाद नहीं था: आज-काल के सब बौद्ध-देश, जो इस भारतवर्ष का गुरुवत् समादर करते हैं, इसका कारण, उस सङ्घ को ही समझना चाहिये। पर यह तो प्रत्यक्ष ही है कि उसी विश्वविजयी बौद्ध सङ्घ के जन्मदेश हिन्दुस्थान में जातिवाद की कट्टरता के कारण, हिन्दू-समाज का कैसा अधःपतन हुआ है।

भारतीय राष्ट्रीय महासभाकी स्थापना कुछ थोड़े, अंगुलियों पर गिने जाने लायक, सज्जनों ने की; वे भी साल में एक बेर बड़े दिनों की छुट्टी में, किसी बड़े शहर में एकत्रित होकर लम्बे लम्बे लेक्चर देना, और कुछ प्रस्ताव पास कर लेना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। लेकिन उस आन्दोलन का इतना विकास होने का प्रधान कारण यह हुआ कि, उस सभा ने जाति-भेद को अपने संघटन में बिलकुल अवकाश नहीं दिया। गुण-कर्म को ही प्रधान स्थान मिलने से इस संस्था का बल इतना बढ़ गया है। यद्यपि छोटे-बड़े, जातियों के आन्दोलन खड़े करके इस संस्था को दुर्बल करनेका प्रयत्न सतत हो रहा है; तथापि जब तक इस संस्था में गुण-कर्मका प्राधान्य रहेगा, तब तक इसका अभ्युदय होता ही जायगा। इससे यह सिद्ध होता है कि बुद्धोपदिष्ट गुण-कर्म-निमित्तक वर्णाश्रम धर्म, सभी श्रेयसों का मूल है।

# विचार-शक्ति

लेखक—श्रीसतीश, विद्यालंकार

अंगरेजी में एक कहावत है—'Sound mind in sound body' (बलिष्ठ शरीर में स्वस्थ मन का निवास है) यह कहावत केवल शारीरिक शक्ति को विकसित करनेके लिये बनाई गई है, परन्तु सत्य यह है कि यह दोनों—शरीर और मन—परस्पर एक दूसरे-को प्रभावित करते रहते हैं। यदि इसी प्रश्नपर और अधिक गम्भीतापूर्वक विचार करें तो मूलभूत सत्य इस रूपमें प्रकट होता है कि मन ही शरीरका नियामक उत्पादक और विनाशक है। शरीर मनका सेवक है. यह मनकी सम्पूर्ण आज्ञाओंको पूरा करता है, चाहे ये आज्ञाएं सोच-विचार कर कर दी गई हों अथवा यांत्रिकसी हों। अनियमित विचारोंके प्रभावसे शरीर शीघ्र रोगग्रस्त हो जाता है और कुम्हलाने लगता है, परन्तु उदात्त और सुन्दर विचारोंके अधीन रहता हुआ पूर्ण यौवन और सौन्दर्यको प्राप्त करता है।

विचार ही रोग और स्वास्थ्यका आदि कारण है।

अस्वस्थ विचार, शरीरकी स्वास्थ्य-हीनताको प्रकट करते हैं। हमारे शरीरोंकी रचना एकसी ही है, किन्तु मनके द्वारा ही मनुष्य अपने आपको उच्चसे उच्च देवासन पर प्रतिष्ठित कर सकता है। मनकी साधना ज्ञानकी साधना है। शरीरपर विचारका प्रभाव अकल्पनीय है। भयका विचार मनुष्यको उसी प्रकार और बहुत शीघ्र मार सकता है जिस प्रकार एक बन्दूककी गोली। अपनी पूर्ण गतिमें आता हुआ विचार कितने वेगसे प्रहार करता है इसकी कल्पना की जा सकती है। केवल भय ही नहीं प्रसन्नताका प्रबल आवेग भी मृत्यु-कारण बनता है। इसी प्रकारके विचार निरन्तर प्रति-क्षण मनुष्योंके बहुमूल्य जीवनका विनाश कर रहे हैं। किसी समाचार पत्रमें एक बार यह छपा था कि सापोंसे काटे गये ६५% व्यक्ति विषरहित सापोंसे काटे जाकर भी केवल भयसे मृत्युको प्राप्त होते हैं। विचारोंकी इसी शक्तिको बताते हुए वेदने "मनः शिव-संकल्प' की प्रार्थनापर अधिक बल दिया है। अशुद्ध विचार, बाह्य शरीरपर ही नहीं, किन्तु हमारे मस्तिष्कके सूक्ष्म ज्ञान-तन्तुओंपर भी बुरा प्रभाव डालते हैं।

चिन्ता बहुत शीघ्र ही मनुष्यके शरीरको असंयत तथा दुर्बल बना देती है। चिन्ताकी इस उग्रताको बतानेके लिये संस्कृतके किसी कविने चिता और चिन्ताकी तुलनामें चिन्ताका प्रकर्ष बतलाया है—

"चिता-चिन्ताद्वयोर्मध्ये चिन्ता एव गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवं, चिन्ता दहति सजीवकम्।'

चिता केवल निर्जीव शरीरको जलाती है। किन्तु चिन्ता जीवनयुक्त गतिमान प्राणीको भी जला डालती है।

बलवान्, शुद्ध और सुन्दर विचार शरीरको ओज-और कान्ति प्रदान करते हैं। शरीर तो कोमल और लचकीली वस्तु है, जिसपर विचार अपना अच्छा या बुरा प्रभाव डाल देता है। उत्कृष्ट विचारोंसे मनुष्य उत्तम शरीर प्राप्त करता है और उसका जीवन भी आदर्शमय हो जाता है। विचार-संयम से मनुष्य सत्य-भाषण, सत्कर्म और सत्य आदर्शोंको प्राप्त करता है। शतपथ ब्राह्मणका वचन इसी बातकी पुष्टिमें है—

"यन्मनसा मनुते तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति, तद् कर्मणा करोति, यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते।" गीतामें भी भगवान् कृष्णने इसी बातको भिन्न प्रकारसे 'ध्यायतो विषयान् पुंसः·····' कहकर व्यक्त किया है।

दुर्बल शरीरवाला चाहे कितना ही पौष्टिक और उत्तम भोजन क्यों न करे किन्तु जबतक विचारोंको भी सबल नहीं बनाया जायगा, उनमें विकासके लिये परिवर्तन नहीं किया जायेगा, तबतक, उसे लाभ नहीं होगा। इस बातको समझनेके लिए बीरबल द्वारा किया गया बकरी और भेड़ियेका परीक्षण अधिक सहायक हो सकता है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति कितना ही अधिक व्यायाम क्यों न करे परन्तु जबतक उसके विचार भावनाएँ व्यायामकी अवस्थामें नहीं रहेंगी; उसे लाभ नहीं हो सकता। शारीरिक श्रम करनेवाले मजदूरों और कुलियोंके शरीर सुदृढ़ नहीं होते उसका कारण यही है। विचारशक्तिके महत्वको जाननेवाले हमें यह बताते हैं कि बिना व्यायाम किये, केवल अपने विचार द्वारा शरीरको पुष्ट किया जा सकता है। विचारकी इसी शक्तिको हम सम्मोहन विद्यामें देखते हैं। यही शक्ति टैलीपैथी ( अद्भुत दर्शन ) में सैकड़ों और सहस्रों मील दूरसे एक धाराके रूपमें कार्य करती हुई दिखलाई देती है। ऐसा क्यों है ? इसके उत्तरके लिए हमें बड़े गहन विषयमें जाना पड़ता है। जिसका सम्बन्ध मनोविज्ञानके सहारे अध्यात्म-विद्यासे है।

विचारोंसे ही मनुष्यकी परख होती है। हमारे धर्मशास्त्र, सदा यही कहते आए हैं कि सन्त वही है

जिसके विचार शुद्ध हैं। अच्छे अच्छे कपड़े पहननेसे कोई महात्मा नहीं हो जाता, 'न लिंगं धर्मकारणम्' कहा ही गया है।

यदि हमने अपने शरीरकी रक्षा करनी है, तो अपने मनको सुमार्गपर ले चलना होगा। यदि हम शरीरमें नवजीवनका संचार करना चाहते हैं तो हमें निश्चयसे मनके सौन्दर्यको प्रकट करना होगा। दुःख, निराशा द्वेष आदिके विचार शरीरके स्वास्थ्य और उसकी मनोरम स्निग्धताको नष्ट कर देते हैं।

मनुष्यकी आकृति निष्प्रभ और रूक्ष अकारण ही नहीं होती, किन्तु अपरिपक्व दूषित विचारोंके कारण होती है। मुखपरकी अव्यवस्थित रेखाएँ (झुर्रियां) वासना, अभिमान, क्रोध या और इसी प्रकारकी दुर्भावनाओंसे पड़ती हैं। आकृति मनुष्यके हृद्गत विचारोंको प्रकट करती है। इसी चीज़की व्याख्या है।

हम बहुतसे व्यक्तियोंको देख सकते हैं जो बहुत अधिकायुके होते हुए भी अल्पायुके सुन्दर युवक प्रतीत होते हैं। शरीरमें इस अवस्थामें भी बालसुलभ कोमलता होती है। शरीरका सौन्दर्य इसीमें है कि मनुष्य बड़ी आयुमें भी युवक प्रतीत हो। कई युवावस्थामें ही प्रौढ़ या वृद्ध प्रतीत होते हैं। प्रथम परिणाम मधुर और उज्ज्वल विचारोंके कारण है तथा दूसरा असन्तोष और वासनाजन्य कारणोंसे।

जिस प्रकार रहनेके लिए वही घर अच्छा समझा जाता है जिसमें शुद्ध वायु और सूर्यरश्मियां अव्याहत रूपसे प्रवेश कर सकें इसी प्रकार उत्तम बलवान् शरीर वही है जिसके मानसमें निरन्तर उज्ज्वल आनन्दयुक्त उदात्त भाव-राशियां उठा करती हैं।

वेदोंमें जिस देवासुर संग्रामका विधान है वह इन्हीं दैवी और आसुरी भावनाओंमें है। बुरे विचारोंपर अच्छे विचारोंकी विजय ही मनुष्यकी वास्तविक विजय है। मनुष्य जैसे विचार करेगा वैसा ही फल प्राप्त करेगा। बुरे विचार उसे अवनतिकी ओर ले जायेंगे 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'। आकृतिपर रेखाएँ कई कारणोंसे हो सकती है। कुछ सहानुभूतिसे, कुछ शुद्ध और बलवान् विचारोंसे और कुछ वासनासे; परन्तु इनको पहचाना जा सकता है।

जो अपने जीवनको सत्यमय मार्गोंपर चलाते हैं उनका जीवन शान्त और उनका शरीर उतना ही ओजपूर्ण होता है। जिस प्रकार सूर्योदय या सूर्यास्त की आभा होती है। महर्षि दयानन्दका शरीर घावोंसे छलनी हो गया था, उनके रोम-रोमसे एक भीषण ज्वाला फूट रही थी, परन्तु उनकी आकृतिपर एक भी विषाद या चिन्ताकी रेखा नहीं थी। ५९ वर्षकी आयु और फिर रोगाक्रान्त होनेपर भी उनके मुखकी कान्ति म्लान नहीं हुई थी। उनका मुखमण्डल एक युवक की तरह खिला हुआ था। विचार-सौन्दर्य ही मनुष्यको सुन्दर बनाता है। बाह्य-शृङ्गार करके अपनेको सुन्दर बनानेका प्रयत्न करना अपनेको धोका देना है। महर्षिकी विचारधारा मंगलमय प्रभुकी आज्ञानुसार चल रही थी। वे उस समय भी उतने ही प्रसन्न थे जितने स्वस्थ अवस्थामें। विचारोंपर संयम ही स्थित प्रज्ञकी अवस्था है; योगका आधार है।

उत्तम विचारोंकी तरह कोई वैद्य नहीं जो हमारे शरीरके अन्तर्गत मूलभूत रोगोंको नष्ट कर सके। और इनकी तरह कोई मित्र नहीं जो आपत्तियों और दुःखोंमें सान्त्वना दे सके।

चिन्ता, भय, क्रोध, दुःख, द्वेष, अनिष्टके विचारों में रहना अपनी बनाई हुई जेलमें रहना है। "मनएव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः" मनके अधीन न रह कर हमें मनको अपने अधीन रखना चाहिए, इसी बातको ध्यानमें रखते हुए हमें अपने स्वामित्वको बनाए रखना चाहिए। इसीमें हमारा कल्याण है। सबका भला सोचना, सबके साथ प्रसन्न रहना, बड़े धैर्यसे सबमें कुछ अच्छाई ढूँढ़नेका प्रयत्न करना, और उसी प्रकार स्वार्थशून्य विचार स्वर्ग प्रवेशके द्वार हैं। प्रति दिन प्रत्येक प्राणीके प्रति शान्तिके विचार मनुष्यको अनन्त शक्ति देनेवाले हैं।

# मृत्यु-विज्ञान

लेखक—श्रीगंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

उत्तम जलवायुवाला 'लाग' नामक टापू जीन को रखनेके लिये चुना गया है। वहांके एक सुन्दर भव्य महलमें उसे रखा गया है। महलमें लगभग १०० कमरे हैं। टेनिस खेलनेके लिये मैदान और तैरनेके लिये तालाब हैं, कितने ही घोड़े हैं, और एक व्यायाम-शाला है।

जीन अपने जीवनके प्रथम बीस वर्ष, वैज्ञानिक सामग्रियोंसे सुसज्जित इस महलमें बितावेगी। उसका उपचार केवल मनोवैज्ञानिक ढंगका होगा। किसी शारीरिक उपचारके द्वारा नहीं, बल्कि मानसिक स्थितिमें सुधार करके ही उसे असीम आयु प्रदान करनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

जीनको कभी अप्रसन्न नहीं रखा जायगा। उसे कभी दुःख-दर्द नहीं होने दिया जायगा। वह कभी बुढ़िया नहीं होगी। और यह आशा की जाती है कि वह कभी मरेगी भी नहीं।

वैज्ञानिकोंका यह विश्वास है कि मुख्यतः विचारों के कारण मनुष्यका स्वास्थ्य ख़राब होता है, और मृत्यु भी विचारों ही के कारण आती है। विद्युतकी तरह विचारमें भी शक्ति है। प्रत्येक खराब विचारका परिणाम बीमारीके रूपमें दृष्टिगोचर होता है, और मानसिक दोषके कारण मनुष्य मृत्युका सामना करनेमे असमर्थ हो जाता है।

'रायल फ्रेटरनिटी आफ़ मास्टर मेटाफ़िज़िशियन्स' संस्थाके अध्यक्ष जेम्स बी० शेफ़रका कहना है कि ग़लत विचारोंके कारण ही प्रत्येक बीमारी आती है। ज़ुकाम किसी कीटाणुकी वजहसे नहीं होता। कुछ मनुष्योंको ज़ुकाम हो जाता है, पर अन्य मनुष्योंको नहीं होता, यद्यपि वे भी इन्हीं कीटाणुओंके वातावरण में रहते हैं। इससे परिणाम यह निकलता है कि यदि मानसिक स्थितिमें सुधार किया जा सके तो मनुष्य लगभग सभी व्याधियोंसे छुटकारा पा सकता है।

इसीलिये जीनका लालन-पालन ऐसे सुन्दर वैज्ञानिक ढंगसे किया जायगा कि वह सदा ठीक तरह विचार करेगी।

यदि इन सब वैज्ञानिकोंकी धारणा वास्तवमें सच हो सके तो जीन एक पूर्ण शिशु, पूर्ण बालिका, तथा पूर्ण स्त्री होगी। और वह सदा जीवित रहेगी।

वह ज्यों-ज्यों बड़ी होगी, बोलना सीखेगी, और प्रश्न करेगी, त्यों-त्यों उसके सामने सब बातें ठीक तरह, स्पष्ट रूपसे रखी जायँगी। उसके सामने सदा सच बोला जायगा, और कोई कभी झूठ न बोलेगा। वह चाहे जो कुछ भी जानना चाहे, उसके सामने सत्य ही बोला जायगा। 'रायल फ्रेटरनिटी' के हज़ार वैज्ञानिकोंमेंसे कोई-न-कोई उसके पास सदा रहेगा, और वह उसे ठीक बातें बतायेगा।

जीनके पैदा होनेके पूर्व ही उसे वैज्ञानिकोंने गोद ले रक्खा था। उन लोगोंने बड़ी सावधानीके साथ उसके माता-पिताको चुना था, और ये माता-पिता भी हृदयसे वैज्ञानिकोंके साथ सहयोग कर रहे हैं। माता जो कुछ सोचती है, उसीका प्रभाव बच्चेपर भी पड़ता है, इसीलिये जीनकी माताको प्रारम्भसे ही सदा अच्छी बातें सोचते रहनेका प्रोत्साहन दिया गया था।

बच्चीके प्रथम सात वर्षके विचार, उसकी माताके विचारोंके ही अनुसार बनते हैं, इसलिये जीनकी माता भी उसी १०० कमरोंवाले महलमें जीनके साथ रहती

है, और सदा सुविचारोंमें निमग्न रहती है। जीन जब और बड़ी हो जायगी तो फिर इन हजार वैज्ञानिकोंके घनिष्ट सम्पर्कमें आयेगी, और तब वेही उसका लालन-पालन करेंगे।

जीनके सम्बन्धमें मि० शेफरका कहना है कि उसके जीवनमें ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, या कोई भी कुविचार न आने पायेगा। दूषित मानसिक स्थिति ही मनुष्यके नाश और पतनका कारण होती है। यदि जीनमें कोई कुविचार न आयेगा तो वह कभी बीमार न होगी। मनुष्य शारीरिक यन्त्रके खराबीके कारण नहीं, बल्कि बीमारियोंके कारण मरता है। पर जीन में ऐसी कोई बात कभी न होगी, इसलिये वह सदा जीवित रहेगी।

यदि उसके मनमें कभी कोई दूषित विचार न उठे तो फिर उसके अप्रसन्न रहनेका कोई कारण नहीं हो सकता। उसे सदा स्वस्थ और प्रसन्न रहनेकी शिक्षा दी जायगी। जब वह एक बार पूर्ण युवावस्थाको पहुंच जायगी तो उसी स्थिति पर बनी रहेगी। मिनट, घंटे, दिन, सप्ताह, और वर्ष बराबर बीतते चले जायँगे, पर समयके परिवर्तनसे उसमें कोई भी परिवर्तन न होगा; उसपर कोई भी असर न पड़ेगा। जब उसपर कुविचार का दूषित प्रभाव पड़ेगा तभी वह बीमार होगी, उसे झुर्रियाँ पड़ेंगी, कमर झुकेगी, और बुढ़ापेके अन्य चिह्न उसमें दिखाई देंगे; पर ऐसा होने न दिया जायगा। कोई कुविचार और मिथ्या धारणा उसके पास फटकने भी न दी जायगी।

जीन यह सीखेगी कि ग़लत तरहसे सोचना उसके लिये आत्महत्या करना है। वह ऐसा नहीं करने पायेगी। वह यह जानेगी कि मृत्युकी शक्तिमें विश्वास करना मनुष्यकी कमज़ोरी है; और इस कमजोरीसे मुक्त होना ही मृत्युपर विजय प्राप्त करना है। * क्रमशः

* लेखक की शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'मृत्यु और उसके बाद' से। —ले०

# गागरमें सागर

प्र०—भगवान् किसे अपनाते हैं ?

उ०—जो उन्हें अपनाता है ।

प्र०—संसारमें सबसे कठिन क्या है ?

उ०—ऊपर उठना ।

प्र०—और सबसे सहज ?

उ०—नीचे गिरना ।

प्र०—मनुष्यको नीचेके स्तरमें बांध कर किसने रखा है ?

उ०—वासना और अहंकारने ।

प्र०—उसके ऊपर उठनेमें सबसे अधिक सहायक क्या है ?

उ०—भगवत्-कृपा ।

प्र०—सभी कहते हैं, भगवान्‌की कृपा वर्षाकी तरह बरस रही है ? तो फिर हम उसे पाते क्यों नहीं ?

उ०—इसलिये कि हममें ग्रहण-शक्ति नहीं है ।

प्र०—ग्रहण-शक्तिसे क्या मतलब ?

उ०—टूटी से धारा अनवरत गिर रही है तो भी यदि पात्र ठीक नीचे नहीं रखा है और खुले मुँह नहीं रखा है तो उसमें एक बुन्द भी पानी नहीं पड़ेगा ।

प्र०—भगवान् की कृपासे क्या होता है ?

उ०—क्या होता है नहीं—पूछो, क्या नहीं होता ।

प्र०—भगवान् अपने आपको किसे दे देता है ?

उ०—जिसे वह कसौटीपर कसनेपर खरा पाता है ।

प्र०—साधकको प्रसन्नता-पूर्वक क्या स्वीकार करना चाहिये ?

उ०—जो कुछ भी भगवान्‌की ओरसे आ जाय ।

प्र०—उसे किस बातके लिये सबसे अधिक यत्नवान् रहना चाहिये ?

उ०—इस बातके लिये कि साधनाकी जिस चोटी पर वह चढ़ चुका है उससे वह तिल भर भी पीछे न हटे ।

प्र०—साधकको क्या नहीं करना चाहिये ?

उ०—न जल्दबाजी करनी चाहिये, न उकताना चाहिये ।

प्र०—क्या करना चाहिये ?

उ०—अपने लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये सदा सरको हथेलीपर लिये रहना चाहिये ।

प्र०—साधकको किन दो बातोंसे बचना चाहिये ?

उ०—राजसिक अत्युत्साह और तामसिक निरुत्साह से ।

प्र०—अत्युत्साहसे क्या होता है ?

उ०—निराशा झट घुस पड़ती है ।

प्र०—और निरुत्साह से ?

उ०—आगे प्रगति ही नहीं हो सकती ।

प्र०—साधकको अपना सर्वस्व देकर बदलेमें क्या चाहिये ?

उ०—शरणागतिमें उत्तरोत्तर वृद्धि और ग्रहणशक्ति ( receptirity ) ।

प्र०—साधकके लिये सबसे घातक क्या है ?

उ०—गुरुसे अपने दोषों और दुर्बलताओं को छिपाना ।

प्र०—हमारी आँखें कौन खोलता है ?

उ०—आन्तर चक्षु गुरु और ब्रह्मचक्षु हमारा निन्दक ।

प्र०—योग कौन नहीं कर सकता है ?

उ०—जो एकरस जीवनसे डरता है ।

प्र०—कौन कर सकता है ?

उ०—जो लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये सब कुछ झेलनेको तैयार है ।

प्र०—भोग-सुखकी चाह रखनेसे क्या होता है ?

उ०—दुःखको आनेके लिये निमन्त्रण जाता है ।

प्र०—मनुष्य शास्वत शान्ति कबतक नहीं पा सकता ?

उ०—जबतक वह वासनाको पोस रहा है ।

प्र०—मनकी दौड़-धूप कब बन्द हो सकती है ?

उ०—अध्यात्म रसका चसका लगनेपर ।

प्र०—एक आत्मा लाखोंमें जीवरूपसे विभक्त होने पर भी पूर्णका पूर्ण कैसे बना रहता है ?

उ०—जैसे एक चिरागसे लाखों चिराग जला लेनेपर भी उसकी शक्तिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

प्र०—संसारमें हर जगह झगड़ा किसका चल रहा है ?

उ०—स्वार्थका ।

प्र०—कनकघट!विषसा क्या है ?

उ०—मान-प्रतिष्ठा ।

प्र०—पाप क्या है ?

उ० जो भगवान्‌से दूर हटावे ।

प्र०—पुण्य क्या है ?

उ०—जो भगवान्‌के पास पहुंचावे ।

प्र०—तप क्या है ?

उ०—साधनामें आये कष्टोंको दृढ़तापूर्वक झेलते जाना ।

प्र०—उत्तम क्या है ?

उ०—कोरे कहनेसे करना ।

ले०—श्रीनारायणप्रसादजी अरविन्दाश्रम, पाण्डीचेरी।

# प्राचीन शिक्षा-पद्धति

ले०—स्वामी जगदीश्वरानन्दजी महाराज, वेदांत-शास्त्री

कुछ समयतक समाहित-चित्त होकर स्वाध्याय करनेपर ही प्राचीनताकी अपूर्व झलक आने लगती है। प्राचीन ग्रन्थोंके मनन कालमें पूर्व महापुरुषोंकी अलौकिक कृतियोंके देखते ही दिव्यताकी झलक आती है; जो कि सांसारिक बुद्धिके परे की बात जान पड़ती है। उस दिव्यताको समझनेके लिए हमें पूर्व परम्पराकी ओर लौटना पड़ता है। वर्तमान कालसे जब कुछ ही पूर्व समयकी ओर झुकते हैं तो कतिपय महापुरुष—स्वा० रामतीर्थ, स्वा० दयानन्दादि दिखाई देने लगते हैं। ऐसे महापुरुषोंके विषयमें विचार करते हुए विपुल ज्ञान और विपुल कार्य एवं अल्पायुष्यको देखते हैं। उनके विशाल ज्ञान और प्रचुर कार्यको देखकर बुद्धिमें नहीं आता कि उन्होंने इतने अल्प समयमें क्योंकर इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया; जब कि आज कल अनेक मनुष्य दिनरात श्रम करते हुए भी जीवनान्त तक वह ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाते।

तभी इस प्रश्नके उचित उत्तरके लिए दूसरी दृष्टि हमारे सामने आती है; जो कि इस विपुल ज्ञानका सम्बन्ध उसके आदि स्रोतसे बताती है। विषयाकार केवल बाह्य बुद्धिका यह सामर्थ्य नहीं कि वह इस प्रकारका यथार्थ विपुल ज्ञान दे सके। यह काम तो उस बुद्धिका है जिसने अपने मूल-स्रोत ज्ञान-धन, आत्माके साथ सम्बन्ध कर लिया है। उसके साथ सम्बन्ध होते ही सब विषयोंका ज्ञान करामलकवत् होता है। जैसा कि भगवती श्रुति कहती है—"यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" अर्थात् जिसके जान लेनेपर सब पदार्थ विज्ञात हो जाते हैं। इन महापुरुषोंकी बुद्धिने आदि स्रोतके साथ सम्बन्ध कर लिया था। ठीक इसी प्रकारके अनेक महापुरुष प्रत्येक प्रान्त वा देशमें मिलेंगे जिन्होंने इस प्रचलित विद्याका विशेष ज्ञान न प्राप्त करते हुए भी दुनियांको अलौकिक ज्ञान दिया। अधिक पीछे लौटनेपर संसारका काया-पलट करनेवाले महापुरुष जगद्गुरु शङ्कराचार्यके रूपमें दिखाई देते हैं, वहाँ भी हम अथाह ज्ञान और अल्पायुका सम्बन्ध पाते हैं। अस्तु, अब यहीं रुक, प्राचीन शिक्षा-पद्धतिकी झलक लेना चाहते हैं।

बात यों जान पड़ती है कि पूर्वकालमें उत्पन्न हुए बालकोंका शिक्षा-क्रम यह था कि जभी वे कुछ समझने योग्य होते, तभीसे उनका शिक्षण पवित्राचरणवाले माता-पिताके द्वारा आरम्भ हो जाता, जो कि संन्ध्या-प्राणायामादि नियमोंसे बढ़ती हुई इन्द्रिय शक्तियोंका सञ्चय एवं आत्माभिमुखताके रूपमें सदुपयोगमें परिणत होने लगता। अन्तःकरणके निर्मल होनेके कारण उस समय जैसे विचारोंका प्रवाह बहाया जाता है, वही बहने लगता है। "यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।" अर्थात् जैसे नवीन वस्त्र पर जो रंग चढ़ाना चाहो, सहज ही चढ़ जाता है, वैसे बाल्यकालमें अन्तःकरणकी दशा होती है। माता-पिताके अधिकारसे हटनेपर सद्गुरुओंके आश्रमोंका वास या उनके आचरणका अनुकरण इन्द्रियोंको बहिर्मुख नहीं होने देता था; प्रत्युत आत्माभिमुख करता था। इस प्रकार अल्प कालमें वे आत्म-ज्योतिका भान कर लेते, बुद्धिका सम्बन्ध आदि-स्रोतके साथ जोड़ देते थे। बाद उसीको स्थिर एवं परिपक्व करनेके लिए ही उनका श्रम बना रहता, तब वे जो कुछ भी अध्ययन करते वह बुद्धिके स्थिर एवं निर्मल होनेसे अभ्रान्त एवं स्थायी रहनेवाला

होता था। ऐसा नहीं कि रटा, भुलाया; पुनः रटा, भुलाया; यही चर्खा निरन्तर चलाना पड़े। यम-नियमादिके पालनसे उनकी मेधा ( धारणावाली धी ) उत्पन्न हो जाती थीं; जिससे उनमें यह सामर्थ्य आ जाता था।

इस झलकके पोषक प्रमाण सम्भवतः प्राचीन ग्रन्थों में ब्रह्मचर्याश्रमोंकी व्यवस्थामें अनेक मिल जावेंगे। उस समयकी आत्म-ज्ञान प्राप्त की हुई माताएँ अपने बच्चोंके हृदयमें आरम्भसे ही कैसी शुभ भावनाएँ भरती थीं उसे—मन्दालसाकी भावनाओंसे निरखिए—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि, संसारमायापरिवर्जितोऽसि।
संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां, मन्दालसावाक्यमुवाच पुत्रम्॥

अर्थ – मन्दालसा पिगूड़ेमें झुलाती हुई तथा अन्यावसरपर भी सदैव ये लोरियाँ देती रहती हैं, 'हे पुत्र, तू शुद्धस्वरूप है, तू ज्ञानस्वरूप है, तू निरञ्जन है, ( विकार-रहित है ) संसारमायासे रहित है। मोह निद्राका त्याग कर, संसार स्वप्नको छोड़।"

इसके विपरीत आजकी शिक्षा-पद्धतिसे पठित लोगोंको देखनेसे भी ऐसा अनुमान होता है। आजकलके अज्ञानान्धकारमें पले हुए माता-पिताकी बुद्धि मोहसे ढकी रहती है; वे यथार्थ प्रेम वा हितको नहीं समझ पाते। यम-नियमादिके संयमसे तो वे यह कह कर मुंह मोड़ लेते हैं कि "जब बच्चा बड़ा हो जायगा, समझने लगेगा, अपने ही ये सब बातें जान जायगा; अथवा उन्हें ज्ञान भी नहीं होता कि कैसे जीवनका आरम्भ किया जाना चाहिए।

ऐसे माता-पिता सुन्दर पद्य श्लोकोंके स्थानमें बालकोंको गोदी ले खौंचेवालेकी भांति-भांति की मिठाइयोंके नाम याद करवानेमें अपना कर्त्तव्य-पालन करते हैं। बस यहींसे इन्द्रिय-स्रोत बाह्य-विषयोंमें बहने लगता है। स्कूलमें जानेवाला छोटा बालक अपनी पुस्तकके वर्णोंसे भले ही परिचित न हो, परन्तु हलवाईके दुकानकी सभी मिठाइयोंके नाम वा स्वादका पूर्ण ज्ञान रखता होगा। यहींसे बिगड़ी रसनेन्द्रियकी प्रवृत्ति आगे चलकर भयंकर रूप धारण कर लेती है और हमें अनर्थ जालमें फँसा देती है।

कुछ लोग रोगोंके निवारणार्थ सरल उपाय सुन, यह पूछ बैठते हैं 'बस इसके साथ और कोई परहेज़ तो नहीं करना होगा? उत्तरमें कहना पड़ता है-भाई परहेज़ न करनेकी छूट लेकर तुम अपने आपको किस ओर ले जाना चाहते हो? इस प्रकार तो तुम इन्द्रियोंके दास होने जा रहे हो, और हृदयस्थ अन्तरात्मासे विमुख हो दूर हट रहे हो। इस मार्गमें हाय-हाय करते रहोगे, पर शांति न मिलेगी।

प्यारे! सोचो, हम जीना चाहते हैं, अतः हमें जीनेके लिये खानेकी आवश्यकता है. ऐसा खाओ जिससे सुखपूर्वक अधिक जी सको। वैसा खाना किस कामका, जिससे रोग, शोक, अल्पायु हो। गुरुनानकदेवजीके शब्दोंमें—"बाबा ओह खाणा, खुशी खुआर जित खाधे तन पीडिये मनमें चले विकार" अर्थात् प्रतिकूल खाना खुशीका सत्यानाश करना हैं, जिसके खानेसे शरीर रोगी हो और मनमें विकार उत्पन्न हों, वह त्याज्य है।

यहाँपर सदैव यही उचित प्रयोग होना चाहिए-"मैंने खाना खाया" न कि उसके स्थानपर "खानेने मुझे खाया" यह होने लगे। इसी प्रकार शेष इन्द्रियोंकी व्यापार-कथा भी यों ही समझें। प्रत्येक व्यवहारमें यही ध्यान रखना चाहिये कि- –"जीवन-निर्वाहार्थ यह अत्यावश्यक है; अतः परिमित मात्रामें उसे अपनाना चाहिए।" सभी व्यापारोंसे हमें तो जीवन सफल करना है; न कि जीवनको सभी व्यापारोंमें उलझाना है। सांसारिक विषय हमारे लिए हैं; हम सांसारिक विषयोंके लिए नहीं हैं।

दस-बीस प्रकारके सूट-बूट रखनेवालोंको अपने समयका हिसाब लगाना चाहिये कि उनका समय

कितना ऐसी सामग्रीकी रक्षामें ही नष्ट हो जाता है।

सारांश यह है कि प्रत्येक इन्द्रियको जितना बाह्य-विषयोंसे सम्बन्ध होता है उतना ही हम झँझटोंमें फँसने लगते हैं। क्या ही सुन्दर कहा है—"एक मृगीके कारणे भरत धरी त्रैदेह, वाके कौन हवाल है ज़ाके बड़े सनेह।" किसी महापुरुषका कथन है—

"आपदां कथितो मार्गः इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः श्रेयसां मार्गः ; येनेष्टं तेन गम्यताम्।"

अर्थात् इन्द्रियोंका असंयम आपत्तियोंका मार्ग है, और इन्द्रिय-जय सम्पत्तियोंका मार्ग है, अतः जो अभीष्ट समझो उसे अपना लो। ऐसी अवस्थामें ही स्वा० रामतीर्थने कहा है—

"इन्द्रियोंके घोड़े छूटे बागडोरी तोड़कर,
वह मरा,वह गिर पड़ा असवार सिर-मुंह फोड़कर।"

अतः प्यारे ! इन्द्रियरूपी घोड़ोंपर तो दिन-रात संयमके कोड़े लगाते रहोगे तभी तुम अपने गन्तव्य स्थानपर पहुंच पाओगे। अन्यथा एक इन्द्रियकी भी बागडोर ढीली होनेपर महान् अनर्थ हो जाता है।

"इन्द्रियाणां हि सर्वेषां यद्येकं क्षरतोन्द्रियं।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेःपात्रादिवोदकम्॥"

अर्थात् सम्पूर्ण इन्द्रियोंमेंसे एक इन्द्रियका स्रोत खुल जाता है तो उसी इन्द्रिय-मार्ग से बुद्धिका ह्रास होने लगता है। जैसे छेदवाले पात्रसे जल बाहर निकल जाता है।

अतः हमें प्राचीन शिक्षा-पद्धतिका अनुकरण करना चाहिए, वैसे ही पहले आत्मज्योति प्राप्त कर पश्चात् अन्य व्यवहारवित् होना चाहिये। इस जीवनमें हमें दोनों काम करने हैं—परलोक और लोक दोनोंको सिद्ध करना है। इन दोनोंमें भी मुख्य ध्येय या साध्य परलोक है, मुख्य साध्यके सहायक-रूपमें लोक भी उपस्थित है ; अतः पहले परमात्म-दर्शन ; पश्चात् यावजीवन तो संसार है ही।

इसे ठीक न समझकर बहुधा लोग कह बैठते हैं—"अजी अभी क्या जल्दी पड़ी है; बहुत दिन जीना है; ज़वानीके मज़े लूट लें ; ईश्वरभक्ति तो बुढ़ापेका काम है।" ऐसे भोले भाई यह नहीं समझते, अरे जीवनका ही कौन ठिकाना है। कौनसा जीवनका तम्मसुक हमारे पास लिखा हुआ है।

दूसरी बात यह है कि ऐसा जीवन ही किस काम-का जो कि अज्ञानान्धकारमें बिताया जाय। थोड़ा सोचो तो सही—दिनके अस्त होते ही जब निबिड़तम अन्धकार छा जाता है तब या तो आप सभी काम बन्द कर देते हैं, अथवा कुछ काम करनेके लिये आपको दीपकके प्रकाशका सहारा लेना पड़ता है। अन्धकारमें भोजनतक करना भी तो आप पसन्द नहीं करते, जो कि सहज काम है। खोई हुई वस्तु दीपकके कम प्रकाशमें नहीं मिलती तो आप खोजनेका कार्य बन्दकर प्रातःके प्रकाशकी प्रतीक्षा करने लगते हैं। जब कि आप अपने दैनिक क्षुद्र कार्योंमें भी इतने प्रकाशापेक्षी हैं तब महदाश्चर्य होता है कि उधर आप आत्म-प्रकाश-के बिना ही संसारके विभिन्न व्यवहारोंमें क्यों प्रवृत्त होने लगते हैं ? क्यों इतनी उपेक्षा दिखाते हैं ? आप समझते होंगे कि आत्म-ज्योतिके बिना ही हम सारे सांसारिक कार्य कुशलतापूर्वक कर लेते हैं ; तब क्या आवश्यकता है कि पहले हम आत्म-प्रकाश हीको प्राप्त करें। प्यारे ! भूलना मत, जैसे रात्रिके अन्धकारमें किए गए विविध कार्य सुसम्पन्न न होकर बिगड़ जाते हैं, और प्रातः तुम्हें प्रकाश होनेपर समयके अपव्ययका दुःख होता है; ठीक वैसे ही आत्म-ज्योतिको प्राप्त किए बिना सांसारिक कार्य सुसम्पन्न नहीं हो पाते, और आगे चलकर दुःखदायक होते हैं।

आत्म-प्रकाश से रिक्त-हस्तसांसारिक विद्या के प्रगाढ़ बिद्वानों, डब्बल एम० ए०, षड्दर्शनाचार्योंको, परस्परकी ईर्ष्या द्वेषकी प्रज्वलित अग्निमें आहुति देते

या स्वयं आहुति होते देख, उनका श्रम-प्राप्त पांडित्य थोथा जान पड़ता है। यही इनका पांडित्य यदि आत्म-ज्ञान-पूर्वक हो तो इस प्रकारके द्वेषाग्निमय संसार न तय्यार होने पावे। तब आपके विचार भ्रातृ-भावके जलसे सने हुए रहें; वहाँ किसी प्रकारकी अग्निकी संभावना ही नहीं हो सकती। ऐसे ही उदार विचारके विषयमें वर्तमान समयके कर्मयोगी श्रीविनोवाभावेजी के क्या ही सुन्दर आदर्श वाक्य हैं—"विचारका चिराग बुझ जानेसे आचार अन्धा हो गया है। मेरे नज़दीक विचार या बुद्धिकी जितनी क़ीमत है, उतनी तीनों लोकमें किसी चीज़की नहीं।"

बहुत लोग यह विचार कर कि सांसारिक विषयों का पूर्ण ज्ञान कर लेनेके बाद ईश्वरज्ञान सहज हो जायगा; इस कारण आत्म-ज्ञानकी उपेक्षा कर विषया-भिमुख होने लगते हैं। उन्हें यह समझना चाहिये कि ये दोनों मार्ग ही भिन्न २ दिशावाले हैं; जैसे कोई व्यक्ति पूर्व दिशाको जाना चाहता है, परन्तु किसी जंकशनसे भूल कर पश्चिम जानेवाली गाड़ीपर सवार हो, अधिक दूर निकल जाता है; आगे किसी सज्जनके समझानेपर पुनः वापिस उसी जंकशनको लौटना पड़ता है; गमना-गमनका मार्ग-व्यय वा समयका व्यर्थ ही अपव्यय होता है, गन्तव्य स्थानका भाड़ा वा समय तो फिर भी ज्योंका त्यों चुकाना ही पड़ता है। अतः भाई समझ सोचकर क़दम उठाओ; संतानका जीवन कैसे आरम्भ करना चाहिए, इसे ठीक समझो—अन्यथा अपने जाए सुपूत ही कुपूत हो, तुम्हारे भयंकर शत्रु बन, तुम्हें शोक-दुःखके रौरव नरकमें डालनेवाले बन जाते हैं। इस नादको छोड़ो कि मेरे लड़के-लड़कीने मैट्रिक, एम० ए०, या बी० ए० पास करली; या वह पढ़-लिखकर बड़ा लायक़ हो गया; प्रत्युत इस बातको देखो कि मेरी संतान कितनी सहनशील, विचारशील, दीन-बन्धु, राग-द्वेष शून्य, साहसी एवं ओजस्वी है। जिस शुभ कामको करनेमें इतर जन काँपते हैं उसी कार्यके करने-में मेरी सन्तान किस साहस और बुद्धिमत्ताके साथ उसे पूरा करती है। त्यागका भाव कैसा है? देश-सेवा-में कितनी रुचि है? आत्म-संयम कितना है? वाह्य विषय त्याग कैसा है? आत्माभिमुखता कैसी है?

इन्हीं गुणोंका निरीक्षण अपनी संतानमें करना चाहिए; यही गुण मनुष्य जीवनको सफल करनेवाले हैं। इन्हींके सहारे मनुष्य नरसे नारायण हो सकता है। ये गुण हमारी प्राचीन शिक्षा-पद्धति द्वारा सहज ही आ सकते हैं। अतः उसी पद्धतिको अपनाकर सुखशान्ति पूर्वक जीवन-यापन करते हुए अभ्युदय एवं निःश्रेयस को प्राप्त करना चाहिये।

॥ ॐ शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥

## आवश्यक सूचना !

सात्त्विक-जीवन के सन्देश को भारतवर्ष के कोने कोने में पहुंचानेके लिये और पत्र को अधिकाधिक उपयोगी एवं लोकप्रिय बनाने की दृष्टिसे हमने यह स्कीम बनाई है कि जो सज्जन सात्त्विक-जीवनके ५ नये ग्राहक एक वर्षके लिये बनावेंगे उनको सात्त्विक-जीवन एक वर्ष के लिये पारितोषिकके रूपमें भेजा जायेगा। अथवा यदि वे चाहेंगे तो सात्त्विक-जीवन-ग्रन्थमाला की ३) की पुस्तकें पुरस्कार-स्वरूप भेजी जावेंगी।

व्यवस्थापक।

# ज्योतिष-सिद्धान्त-सोपान

ले० —श्रीनिशाकान्त-पाठक, ज्योतिषाचार्य, काव्यतीर्थ

सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि किसी भी शब्दका अर्थ अच्छी तरहसे समझ लिया जाय, तदनन्तर उसपर विचार-विकाश करना उचित होता है। अतः 'ज्योतिष' शब्दका अर्थ समझ लेना नितान्त आवश्यक है। 'ज्योतिष' शब्दका अर्थ यह है कि "ज्योतिः सूर्यादि-गत्यादिकं प्रतिपाद्यतयास्त्यस्य अच्" वाचस्पत्यकोषः। ज्योति (स्) अर्थात् प्रकाश, रोशनी Light सूर्य, चन्द्रमा, मंगल और गुरु आदि अनेक प्रकाशपिण्डोंके उदय, प्रसार, संकोच, अस्त, दूरी और गति आदिका ज्ञान, तथा इन क्रियाओं—उदयास्तादि—का जड़ और चेतन जगत्पर क्या प्रभाव पड़ता है, और उसका क्या परिणाम होता है ? इन प्रश्नोंका माननीय उत्तर जिससे मिले उसको 'ज्योतिष' कहते हैं। जिस शास्त्रमें इस विषयका वर्णन हो उसको 'ज्योतिः (श्) शास्त्र' कहते हैं। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि प्रकाश-पिण्डोंकी गति, परिमाण और परिणामादिका ज्ञान जिस (शास्त्र, यन्त्र आदि) से हो उसको ज्योतिष कहते हैं। ज्योतिर्विद्या, ज्योतिर्ज्ञान-प्रभृति समानार्थक शब्द ज्योतिषके पर्याय हैं। अर्थात् तुल्यार्थ एक ही अर्थ को प्रकट करते हैं।

### उत्पत्ति-स्थान

ज्योतिषका ज्ञान सर्वप्रथम किस जातिके मनुष्योंको हुआ और वे कहाँ निवास करते थे ? इसका ज्ञान हुए कितना समय हुआ ? इत्यादि प्रश्नोंका निर्विवाद उत्तर देना कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भवसा है। क्योंकि यह (ज्योतिष) एक समुन्नत, परम आवश्यक, सर्व-जनोपयोगी और सभ्यतासूचक शास्त्र है। इसीलिए सब प्रधान जातियाँ इसको अपनाना चाहती हैं, कहना चाहती हैं कि मैं ही इसकी माता हूं। ऐसी परिस्थिति में विवाद-रहित उत्तर नहीं हो सकता है।

यह भी ध्रुव सत्य है कि सर्वप्रथम किसी एक ही जातिको इसका प्राथमिक ज्ञान हुआ होगा। अतः अधिकांश जनोंने जिस मतका अनुमोदन किया है, मैं उसे (मत) लिखता हूं। वह यह है कि ज्योतिषका उत्पत्ति-स्थान भारतवर्ष है। भारतीय आर्य जातिको सर्वप्रथम, सबसे पहले, इसका ज्ञान हुआ। यतः संसारमें ऋग्वेद ही प्राचीनतम ग्रन्थ है; यह सर्वसम्मत मत है। ऋग्वेदमें अनेक स्थलोंपर खगोल—आकाशगोलका विस्तृत वर्णन है। ऋग्वेद आर्योंका आदि धर्मग्रन्थ है; संस्कृत भाषामें लिखित है। भारतवर्ष आर्योंकी जन्मभूमि है; अतः भारतवर्ष ही ज्योतिषका उत्पत्ति-स्थान हैं।

आर्योंके ही आदि-निवासस्थानके बारेमें मतान्तरों की भरमार है। कोई मध्य यूरोपमें मानता है, तो कोई फ़ारसमें स्वीकार करता है। एक तृतीय सज्जन आर्यों-का आदि निवासस्थान ध्रुव प्रदेशमें मानते हैं; जहांका अक्षांश ( Latitude ) ६० नवत्यंश है। इनमेंसे तो कितनोंकी कल्पना कूटनीतिके आधारपर है। (आर्योंके आदि-वासस्थानके जिज्ञासुओंको इन दो पुस्तकोंको अवश्यमेव देखना चाहिये—१ 'मानवार्ष-भाष्य'; ले० आचार्य श्रीपं० इन्दिरारमण-शास्त्री; प्रकाशक विद्या-पीठ, काशी। २ आर्योंका आदिदेश, ले० श्रीसम्पूर्णानन्दजी, प्रकाशक लीडर-प्रेस, प्रयाग। पाठकगण ! 'मानवार्ष-भाष्य' पढ़कर आर्योंकी संस्कृति और सभ्यताकी अनेक मार्मिक बातोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

किसी किसीके मतसे ज्योतिषका उत्पत्ति-स्थान फ़ारस है;और दूसरोंके विचारानुसार यूनान (Greece) है। उपरिलिखित मतोंके समर्थक अपने २ समर्थनमें यथासाध्य प्रमाण भी देते हैं। किन्तु यह विवाद इस निबन्धका साध्य नहीं है। अत: यथा-अवकाश इसपर किसी दूसरे लेखमें विचार किया जायगा।

इस (ज्योतिष) ज्ञानको व्यवहारमें आये कितने दिन हुए? यह प्रश्न भी अत्यधिक विवादग्रस्त है। क्योंकि किसी किसीके मस्तिष्कके अनुसार सृष्टिका रचनाकाल पांच हजार वर्षसे अधिक नहीं है। अस्तु, इन वालोंसे ज्योतिषकी उपयोगिता और आवश्यकतामें कोई न्यूनता नहीं व्यक्त होती है।

ज्योतिष-भेद

साधारणतया ज्योतिषके दो भेद माने जाते हैं। किन्तु, वास्तवमें ज्योतिषके तीन भेद हैं। क्योंकि ज्योतिषका विशेषण 'त्रिस्कन्ध' है, अर्थात् इसके तीन स्कन्ध या शाखायें हैं। यथा :—

(१) गणित Mathematics.

(२) सिद्धान्त Astronomy.

(३) होराशास्त्र (फलित) और संहिता Astrology and sanhita.

गणितके भी तीन भेद हैं। यथा :—

(क) अङ्कगणित Arithmetic.

(ख) बीजगणित Algebra.

(ग) रेखागणित Geometry.

अङ्कगणित, व्यक्तगणित और पाटीगणित एक ही अर्थको सूचित करते हैं। अङ्कगणितका व्यवहार केवल दश चिन्हों और १८ स्थानोंमें किया जाता है। जैसे चिन्ह, १, २ ‥ ६ और ०। स्थान, इकाई, दहाई⋯ परार्ध। (अङ्कों और स्थानोंकी उत्पत्तिपर यथावसर विस्तृत विचार किया जायग)।

बीजगणित अथवा अव्यक्त गणित—इसमें सब संख्यायें और कहीं कहीं कुछ संख्यायें अव्यक्त रहती हैं। अव्यक्त जैसे यावत्, तावत्, क, ख आदि। यह अत्यन्त उपयोगी और कठिन होता है। भारतीयोंसे अरब निवासियोंने बीजगणितको सीखा, इसके कठिन होनेके कारण अरबवाले बीजगणितको 'इल्म ज़बर' कहते थे। इल्म ज़बर माने कठिन विद्या। अरबोंसे यूरोपीय लोगोंने बीजगणितकी शिक्षा ग्रहण की। यूरोपीय जनोंने 'इल्म ज़बर' का ही कुछ विस्तृतरूपमें Algebra, बीजगणितका नामकरण किये हैं।

रेखागणितका अन्वर्थ ही नाम है। अर्थात् रेखा-लकीर Line का गणित।

सिद्धान्त ज्योतिष Astronomy का लक्षण, श्रीभास्कराचार्यने 'सिद्धान्तशिरोमणि' में लिखा है कि-

"त्रुट्याद्प्रिलयान्तकालकलनामानप्रभेदः क्रमा-
चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते,
'सिद्धान्तः' स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्ध-प्रबन्धे बुधैः॥"

(मध्यमाधिकारे श्लो० ६)

जिस ज्योतिष स्कन्धमें त्रुटि ("सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिरित्यभिधीयते" नारदोक्तिः। कमलके फूलके पत्तेको सूईसे छेदनेमें जो समय लगता है, उसको 'त्रुटि' कहते हैं) से लेकर महाप्रलयकाल तक की समय-परिभाषाओंके मान लिखित हों, मानोंके भेद-सौर Solar चान्द्र Luner आदि वर्णित हों। तथा जिसमें दोनों गणित (बीजगणित और अङ्कगणित) व्यवहार में आये हों, ग्रहों Planets के व्यास, बिम्बमान, दूरी और गति आदि लिखी गई हो, उत्तरके सहित प्रश्न हों, भूमि, नक्षत्र Star और ग्रहोंकी स्थिति कहाँपर कितनी दूरीपर है? यन्त्र Astronomical intruments नाड़ीवलय, तुरीय यन्त्र और घटी-यन्त्र आदि का सविस्तर वर्णन हो उसको 'सिद्धान्त-ज्योतिष' Astronomy कहते हैं।

ज्योतिषके जिस स्कन्धमें ग्रह, उपग्रह, Satelcite और नक्षत्र आदि गगनचारी पिण्डों Haven boolies का उदय, अस्त, युद्ध, जय, और पराजय देखकर विचारकर पृथ्वीके प्राणियोंके भूत—बीता हुआ समय, वर्तमान और भविष्य कालका इष्ट और अनिष्ट फल और उसके कहनेकी रीतिका समुचित वर्णन हो उसको 'होराशास्त्र' अथवा फलित ज्योतिष Astrology कहते हैं।

'अहोरात्र' माने दिन और रात्रि। अहोरात्र शब्दके आदि और अन्त्य अक्षर अ और त्र का लोप करनेसे 'होरा' शेष रह जाता है। होरा-शास्त्र, अर्थात् दिन और रात्रिके समस्त अनुकूल और प्रतिकूल फलोंका ज्ञापक, बतानेवाला, शास्त्र।

'संहिता' सम्यक् हितं प्रतिपाद्यं यस्याः, सा संहिता। गृहस्थ-आश्रमके उपयोगी जितने विषय हैं, सबका संकलन प्रायः इसमें (संहितामें) किया गया है। 'वाराही संहिता' या बृहत्-संहिता सर्वाधिक सुप्रसिद्ध है। और भी अनेक संहितायें हैं।

ज्योतिष वेदङ्ग है

वेदमें यज्ञकी ही प्रधानता है। प्रायः सब कार्योंकी सिद्धि यज्ञ द्वारा ही बतलाई गई है। यज्ञारम्भ, समया-पेक्षित है, अर्थात् यज्ञको निर्विघ्न समाप्त करनेके लिए शुभ समय-मुहूर्त की आवश्यकता है। शुभ और अशुभ समयका ज्ञान केवल ज्योतिषसे ही हो सकता है। अत एव ज्योतिष, वेदाङ्ग है।

ज्योतिष, प्रधान वेदाङ्ग है

वेदके छः अङ्ग हैं। बिना इन छः, अङ्गोंका ज्ञान किए, कोई भी विद्वान् वेदका सम्पूर्ण अर्थ नहीं समझ सकता है। वेदके छः अङ्ग ये हैं :—

(१) व्याकरण (२) ज्योतिष (३) निरुक्त (४) कल्प (५) शिक्षा, और (६) छन्द।

"शब्दशास्त्रं मुखं, ज्योतिषं चक्षुषी,
श्रोत्रमुक्तं निरुक्तञ्च, कल्पः करौ,
या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका,
पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः,
वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्योतिषं,
मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरैः कर्ण-नासादिभिश्च-
क्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः।"

व्याकरण वेदका मुख है। ज्योतिष वेदका नेत्र, निरुक्त कान, कल्प हाथ, शिक्षा नासिका (नाक) और छन्द वेदका चरण-कमल, पैर है। ज्योतिष वेदका नेत्र है। ज्योतिष-शास्त्रका प्रधान वेदाङ्गत्व इसी बातसे सिद्ध है कि पूज्य चरणारविन्द ऋषियोंने इसको वेदका नेत्र कहा है। शरीर तथा जीवनमें आँखोंका स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है, यह अर्वाचीन वैज्ञानिकोंकी इस धारणासे निश्चित होता है कि मानव-मानसके प्रतिशत ९५ भावोंका उदय और विकाश नेत्रोंके द्वारा, प्रतिशत दो कानोंके द्वारा, तथा प्रतिशत एक-एक, नाक, कान, मुंह और हाथोंके द्वारा होता है। जिस तरह नेत्रके अतिरिक्त अङ्गों—हाथ, पैर आदि—से युक्त पुरुष, लौकिक कार्योंमें 'कुछ' ही कर सकता है; इसी तरह ज्योतिषा-तिरिक्त वेदाङ्गोंका ज्ञानवान् विद्वान् भी वैदिकसाहित्यमें और लौकिक कार्योंमें 'कुछ' ही कर सकता है। अतः प्रत्येक मनुष्यको यथाशक्ति और यथेष्ट ज्योतिष-शास्त्र-का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

ज्योतिषकी सार्वत्रिक एकता

ज्योतिषका उत्पत्ति-स्थान भारतवर्ष ही है। यह अधिकांश जनोंका मत है। मतान्तरसे इसकी उत्पत्ति कहीं भी मान ली जाय, तो भी यह बात माननी ही पड़ती है कि एक देशके निवासियोंसे ही संसारके अन्य देश-वासियोंने ज्योतिष सीखा है। क्योंकि जगत्के किसी भागमें जाइये, कहींपर आप, १२ राशि, २८ नक्षत्र और ७ दिनोंके अतिरिक्त अन्य कोई राशि,

नक्षत्र और दिन नहीं पाइयेगा। केवल संख्या ही में साम्य नहीं है, अपितु सबका आकार भी समता-समन्वित है। मेषको अपनी अपनी भाषामें मेष (भेड़) ही कहेंगे; राशि, नक्षत्र और दिनादिका गणनाक्रम जो आज भारतमें है वही संसार भरमें सर्वत्र प्रचलित है।

यूरोपीय ज्योतिषियोंने ज्योतिषके तीन स्कन्धों- गणित, फलित और सिद्धान्तकी अतिस्पृहणीय उन्नति की है। कई एक नवीन ग्रहोंका अन्वेषण किया हैं? सिद्धान्त ज्योतिषके अनेक अभिनव सिद्धान्त संस्थापित हुए हैं; तथापि यह नहीं कहा जा सकता है कि उन्नतिकी चरम सीमा आ गई है। ऐसा कहना तो अपनी अज्ञता और कायरता प्रकट करना है। इन सबका यथावसर और यथासाध्य सहेतुक (कारणके सहित) वर्णन किया जायगा।

राशि Zodiacal sign.

संस्कृत भाषामें राशिका अर्थ समूह, समुदाय या ढेर होता है। ज्योतिष शास्त्रमें भी राशि माने समूह ही होता है; किन्तु इसमें इसका (राशि) प्रयोग अत्यन्त नियमित, नियंत्रित तथा परिभाषित है। सब समूहोंके अर्थमें इसका प्रयोग नहीं किया जाता है। आकाश तारागणोंसे सर्वत्र व्याप्त है, भरा हुआ है। ताराओंके समूह-ढेर-के आकार भी भिन्न २ प्रकारके हैं, एक ही तरहके नहीं हैं। अतः पूर्वाचार्योंने जिस तारा-समूहका जैसा आकार देखा उसका अन्वर्थ (उसी अर्थका द्योतक) नाम रख दिया। जैसे—मेष अर्थात् भेड़ राशि। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो तारासमूह आकाशमें भेड़के आकारके समान दिखाई पड़ा, उसका मेष (भेड़) राशि नाम पड़ा। राशियोंके आकार ही राशि-नामके निदान, आदि कारण हैं। यही नियम सब राशियोंके नाममें चरितार्थ होता है।

आकाशमें पृथ्वी जिस मार्गसे परिक्रमा करती है, उसे क्रान्तिवृत्त Ecliptic कहते हैं। यह मार्ग वृत्त Circle नहीं है, किन्तु यह दीर्घ वृत्त Ellipse है। मुर्गीके अन्डेको भूमिपर लम्बाईमें रखकर उसके चारों तरफ रेखा खींच दीजिये, जो आकार बनेगा यही दीर्घ वृत्त है। (भारतीय मतानुसार रवि चलता है, और क्रान्ति-वृत्त वृत्त, (गोल) ही है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह कोई वास्तविक सड़क नहीं है; किन्तु यह एक कल्पित रेखा है जिसपर भूमि चलती है।

घूमते समय सूर्य अनेक तारा समूहोंके सामने पड़ जाता है और उनमेंसे निकलता हुआ प्रतीत होता है। इन तारा-समूहोंमेंसे सुभीतेके लिये बारह समूह मुख्य मान लिए गये हैं; क्योंकि इनमेंसे एकसे दूसरेमें जानेमें सूर्यको बराबर समय लगता है; यह एक मासके लगभग होता है। इन मुख्य तारा-समूहोंको ही राशि कहते हैं; एक राशिमें ३॰ अंश होता है। प्रत्येक अंशमें ६०′ कलायें और प्रत्येक कलामें ६०″ विकलायें होती हैं; और राशियोंके समूहको राशिचक्र Zodiac कहते हैं।

(अगले पृष्ठपर देखिये)

## आवश्यक सूचना

सात्विक-जीवनका वार्षिक मूल्य ३) है, विद्यार्थियों, विद्यालयों और पुस्तकालयोंसे २); नमूनेकी कापीके लिये ।) आना आवश्यक है।

सात्विक-जीवनका वर्ष विजया दशमी (अक्टूबर) से प्रारम्भ होता है। वर्षके मध्यमें ग्राहक बनानेका नियम नहीं है, जो सज्जन वर्षके बीचमें ग्राहक बनना चाहेंगे उनकी सेवामें उस चालू वर्षके पिछले अंक भेजे जाएँगे।

ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें, अन्यथा पत्रोत्तरमें विलम्ब और उचित कार्यवाहीमें असुविधा होगी।

## १२ राशियोंके नाम—

| १ संस्कृत में प्रचलित नाम | २ संस्कृतके पर्याय | ३ अंग्रेजी नाम | ४ लैटिन नाम | ५ अरबी नाम | ६ हिन्दीमें राशि-नामोंका अर्थ |
|---|---|---|---|---|---|
| मेष | क्रियः | Ram | Aries | Al-Hamal | भेड़ |
| वृष | ताबुरिः | Bull | Tawrus | Al-Thur | बैल |
| मिथुन | जितुमः, जित्तमः | Twins | Gemini | Al-Janza | जोड़ा |
| कर्क | कुलीरः | Crab | Cancer | Al-Sartan | केकड़ा |
| सिंह | लेयः | Lion | Leo | Al-Asad | सिंह |
| कन्या | पार्थोनः, पाथेयः | Virgin | Virgo | Al-soumbulah | लड़की (अविवाहिता) |
| तुला | जूकः | Balance | Libra | Al-Mizan | तराजू |
| वृश्चिक | कौर्प्यः | Scorpion | Scorpion | Al-Aqrab | बिच्छू, बीछी |
| धनु | तौक्षिकः | Archer | Sagit tarius | Al-Laus | धनुष |
| मकर | आकोकेरः | Capricorn | Capricarnus | Al-Jadi | घड़ियाल |
| कुम्भ | हृद्रोगः | Water-bearer | Aquarius | Al-Dalw | घड़ा |
| मीन | झषः, अन्त्यमः | Fishes | Pisces | Al-Hut | मछली |

(क्रमशः)

# आयुर्वेद और उसकी उन्नति

ले०—कविराज श्रीरघुनन्दन शास्त्री

इस विषयपर विचार करनेके पूर्व 'विज्ञान' शब्दका स्वरूप तथा अर्थ जान लेना अत्यावश्यक है। भारतीय विज्ञान तथा विदेशके आधुनिक विज्ञानमें क्या अन्तर है? आपाततः दोनोंमें कोई भेद दृष्टिगोचर नहीं होता; किन्तु वास्तवमें अन्तर उतना ही है जितना पृथ्वी और आकाशमें है। यदि कुछ सादृश्य है तो केवल उतना ही जितना कि सूर्य और दीपशिखामें। कहनेका तात्पर्य यह है कि भारतीय विज्ञान व्यापक तथा परिपूर्ण है और आधुनिक विज्ञान एकांगी (भौतिक) होनेके कारण संक्षिप्त तथा अपूर्ण है। प्रसिद्ध कोशकार श्रीमद्-अमरसिंहने लिखा है—'मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः' अर्थात् मोक्षविषयक बुद्धिका नाम ज्ञान है, तथा शिल्प-शास्त्रविषयक बुद्धि विज्ञान है। ज्ञा अवबोधने, धातुसे वि उपसर्ग लगाकर, विशेषतोज्ञानं विज्ञानं यह व्युत्पत्तिगम्य अर्थ होता है। फलतः शिल्प एवं शास्त्र विषयमें निर्विरोधानुरोधवाली धारणा विज्ञान है; यह इसका पारिभाषिक अर्थ निष्पन्न होता है।

इस विज्ञानके आधार प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द, यह चार प्रमाणरूप स्तम्भ है; जिनको चरकने दूसरे शब्दोंमें "आप्तोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानं युक्तिश्च" लिखा है। यही प्रमाण वस्तुमात्रकी सत्ता या अभावके निरूपणमें सहायक हुआ करते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि जिस विज्ञानकी भित्ति इन चार प्रमाणोंके आधारपर निर्मित की गई हो उसका क्षेत्र विस्तृत सुदृढ़ एवं सम्पूर्ण होगा। इसके अतिरिक्त एक विशेषता यह है कि भारतीय विज्ञान आध्यात्मिक भावनाओंसे अनुस्यूत होनेके कारण सरस है। साइंस, आर्ट आदि जितने ज्ञान हैं, वह इसके अन्तर्गत हो जाते हैं। अर्थात् वे इसके एक अंश मात्र हैं। इसके विपरीत पाश्चात्य विज्ञानका आधार केवल प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह प्रत्यक्षवादका युग है, इसमें पलनेवाले विज्ञानका क्षेत्र परिमित ही होगा। क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान स्वयं अत्यल्प है, जैसा कि चरकमें कहा है—'प्रत्यक्षं ह्यल्पमनल्पमप्रत्यक्षमस्ति यदागमानुमानयुक्तिभिरुपलभ्यते' इत्यादि (च० सू० अ० ११)। अब हमें यह मालूम हो गया है कि विज्ञानका यथार्थ स्वरूप क्या है। आयुर्वेद इसी प्राच्य विज्ञानके आधारपर बना हुआ है।

इतिहास कहता है कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणालीका आरम्भ ईसवीय शताब्दीसे कई सौ वर्ष पहले हुआ था। ईसवीय संवत्से २००० वर्ष पूर्व तथा ईसवीय पञ्चम शताब्दीके मध्यकालमें आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली पूर्ण रूपेण उन्नतिपर थी और उस समयके लोग इसको 'भारतीय चिकित्सा' के नामसे पुकारते थे। यह बड़े वैज्ञानिकरूपसे (अपने ढंगसे) होती थी। चीर-फाड़के तरीके भी परिमार्जित तथा वैज्ञानिक थे। साधारण फोड़े ही नहीं बल्कि शल्य-तन्त्रविशेषज्ञ (सर्जन) वैद्य लोग वृक्क, अन्त्र, यकृत, आदि अंगोंकी भी शस्त्रक्रिया (आपरेशन) किया करते थे। जिस तरह आजकल हॉलिवुडकी सुन्दरियां अपने नासा, कपोल, अधर आदि कोमल अंगोंकी कुरूप रचनासे असन्तुष्ट होकर पेरिस जाती हैं और वहां अपने मनोनुकूल सौन्दर्य प्राप्त करती हैं; उसी प्रकार तत्कालीन नर-नारी उक्त उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जयपुर जाया करते थे, जो उस युगका शल्यकर्म का प्रधान केन्द्र था। नालन्दा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयमें अष्टांग आयुर्वेदका सांगोपांग अध्ययन-

अध्यापन होता था और नागार्जुन जैसे धुरन्धर विद्वान् बड़े २ रोगोंकी चिकित्सा बड़ी सफलता और आसानीसे कर देते थे। इस प्रकार जो प्रणाली कई शताब्दियोंतक सफलता-पूर्वक चलती हुई बड़ीसे बड़ी कठिनाइयोंको हल करती रही वह निःसन्न्देह वैज्ञानिक है। उसको अवैज्ञानिक कहना अन्यायपूर्ण है। यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि ऐसी वैज्ञानिक प्रणालीका पतन क्यों हुआ ? इसके पतनका कारण इसकी अवैज्ञानिकता नहीं किन्तु कलाकौशल, विद्या तथा व्यापार-के प्रति लोगोंकी उपेक्षा है। जिसके फलस्वरूप इस शैलीको उनका प्रोत्साहन न मिलनेके कारण वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए सुविधाएँ प्राप्त न हो सकीं। किसी भी संस्कृतिके उन्नत या अवनत होनेमें सामयिक वातावरणका भी प्रभाव हुआ करता है। जिस समय मुसलमान भारतमें आए तब आयुर्वेदका महत्त्व जाता रहा और यूनानी प्रणालीने उसका स्थान पाया। किन्तु वह भी पुष्ट इसीसे होती रही। तदनन्तर अंग्रेज भारतवर्षमें आए और उक्त दोनों प्रणालियोंकी अधोगति हुई और वर्तमान दशा जो कुछ है वह हम प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं।

आयुर्वेदिक चिकित्सारम्भके १०४० वर्ष पश्चात् पाश्चात्यचिकित्साशैली का आविर्भाव हुआ। उस समय १४६२ ई०में एडवर्ड चतुर्थने नाइयोंका एक संगठन स्थापित किया और अपने देशमें चीर-फाड़का काम प्रारम्भ करनेका भार उनको सौंप दिया। तब ये नाई ही चीर-फाड़का काम करने लगे, जो प्रायः धूर्त, झूठे और बेईमान होते थे। खेद है, आज हमारे देशमें वैद्य और हकीम इन नाइयोंसे भी हीन समझे जाते हैं। इसका कारण है, हमारी पराधीनता, और चिरकाल-तक परतन्त्रतामें रहनेके कारण हमारी दासमनोवृत्तियां। हम यह कह आए हैं कि किसी भी वस्तुपर सामयिकताका भी प्रभाव हुआ करता है, सो आयुर्वेदके ह्रासमें भी उसका कारणरूपसे उपस्थित हो जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। वर्तमान युग विकासवादका है; जिसके प्रवर्तक डार्विन, हेगल आदि यूरोपीय विद्वान् हैं। इस विकासवादके आश्रयको लेकर स्वतन्त्र देशोंने तो बहुत उन्नति प्राप्त की, परन्तु बेचारे परतन्त्र भारतको बड़ी हानि पहुंची। इस विकासवादके सिद्धान्तानुसार जड़ प्रकृतिने ही अपने स्वरूपसे जड़ तथा चैतन्य संसारको व्यक्त किया है। प्रारम्भिक चेतन प्राणीसे वानरने जन्म लिया; वानरसे मनुष्य हुआ, जो अधिक विकासको प्राप्त होता हुआ आज ज्ञानसम्पन्न हो गया है। क्रमिक विकास मात्र ही विकासवादियोंका सिद्धान्त है। आयुर्वेदको अवैज्ञानिक कहनेवाले महानुभाव भी इन्हीं विकासवादियोंके सजातीय बन्धु हैं। इसीलिए तो वे कहते हैं कि आजके मनुष्यकी अपेक्षा प्राचीन मनुष्य जाति अति तुच्छ ज्ञान रखती थी विकास तो धीरे २ होता है। पहले लोग सूक्ष्म तत्त्वोंका आविष्कार नहीं कर सकते थे, कारण कि सूक्ष्मदर्शी यन्त्र ही नहीं थे; अतः उनके ग्रन्थोंमें भ्रमका होना सम्भव है। ज्ञान तो बढ़ रहा है, इसलिए पुराने विचार मिथ्या हैं। खाने-पीने, कपड़ा पहननेका ज्ञान तो धीरे धीरे हुआ। पहले वह स्नेहसे रहना नहीं जानते थे। मकान बनानेका उन्हें ज्ञान नहीं था। इसके समर्थनमें वे उदाहरण देते हैं कि रेलवे एंजिन पहले छोटे थे, फिर बड़े किए गए, धीरे २ फिर उनकी भी गति तीव्र कर दी गई; इत्यादि। जिन भारतीयोंने अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर विकासवादके ग्रन्थोंका अनुशीलन किया वे प्रायः अपने देशके संस्कृत दर्शनोंके गम्भीर विचारोंसे अनभिज्ञ थे। अतः पारस्परिक बार्तालाप तथा व्याख्यानोंमें प्राचीन ग्रन्थोंको मिथ्या विश्वासोंसे भरा हुआ कहना प्रारम्भ कर दिया और अनजान लोग भी वनस्पतियोंको तरह सिर हिलाने लगे। हमारे शास्त्रोंको तथा आयुर्वेदके गहन तत्त्वोंको अवै-

ज्ञानिक कहनेवाले इन महानुभावोंसे पूछिए कि 'अव्यक्त से व्यक्त संसारका प्रादुर्भाव तथा उसीमें लय हो जाना सांख्य शास्त्रका मत है। 'भेदानां परिमाणात् समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च। कारण-कार्यविभागादविभागाद्वैश्वरूप्यस्य। कारणमस्त्यव्यक्तम्' इत्यादि ( सांख्यका० १५—१६ ) इसीका सुश्रुत संहितामें भी प्रतिपादन किया है—'सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं नाम। तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं समुद्र इवौदकानां भावानामिति'। सु० शा० अ० १ अर्थात् स्वयं कारणरहित किन्तु समस्त भूतोंका कारण स्वरूप, सत्त्वरजस्तमोरूप अष्टविधप्रकृतिक अव्यक्त ही समस्त जगत्की उत्पत्तिमें उपादान कारण है। जिस प्रकार नद, नदी-नालोंका अधिष्ठान समुद्र है, उसी प्रकार समस्त शरीरोंका वह अधिष्ठानभूत है। फिर विकासवादियोंका ऐसा कौनसा सिद्धान्त है जो इसके सूक्ष्मरूपको स्थूल कह सके ? शरीर भिन्न जीव तथा प्रपञ्चके कर्ता परमेश्वरकी सिद्धिमें जो हेतु कहे गए हैं वे सब क्या ज्ञानातिशयके बिना ही कह दिए गए हैं ? जिन महर्षियोंके ऐसे सिद्धान्त हैं, कितने वैज्ञानिक थे वे महर्षि या वनचारी। यही नहीं, प्रकृतिविषयक ज्ञानके अतिरिक्त उनका शिल्प ज्ञान भी अगाध था। जिन गगनस्पर्शी प्रासादों तथा भूगर्भमें सुदीर्घ सुरङ्गोंके बनानेकी विधियां पुरातन शिल्प शास्त्रमें वर्णित हैं उन्हें क्या ईंट चूने पत्थरसे अपरिचित मनुष्य लिख गए हैं ? इन सब बातोंके रहते हुए भी यदि कोई भारतीय विज्ञानको विदेशका ही आविष्कार समझे तो इससे बढ़कर दासमनोवृत्ति और क्या हो सकती है ? दास-मनोवृत्ति अपने प्राचीन ज्ञानको समझनेकी चेष्टा ही नहीं करती। उसी बातको जब कोई दूसरा कह दे तब विश्वास हो जाता है। ऐसे ही लोग 'मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः' इस कहावतको चरितार्थ किया करते हैं।

वृक्षायुर्वेद—जिसमें फलोंको विविध रंगमें तथा बिना गुठली उत्पन्न करनेकी विधियां हैं – के कुछ बिखरे हुए पद्य ही यद्यपि आज उपलब्ध हैं तथापि उनसे उसके किसी समयके अस्तित्वका पता चलता है। प्राचीन विद्वानोंकी प्रतिभापर विश्वास न करनेवाले इसे निःसन्देह मिथ्या कह सकते हैं, किन्तु किसी विदेशी विद्वान्ने भी वृक्षोंमें इस प्रकारका परिवर्तन किया है इसे सुनकर सभी विश्वास करने लगे हैं। यह माना कि रेल, तार, वायुयान आदिके अनन्त लाभ हैं किन्तु इनके कारण पुरातन सिद्धान्त तुच्छ अथवा अवैज्ञानिक हैं, यह समझना सर्वथा असंगत है। थोड़ी देरके लिए यदि विकासवादको ही प्रामाणिक सिद्धान्त मान लिया जाय परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि पाश्चात्य आयुर्वेद तथा अन्य आधुनिक वैज्ञानिक साधन प्राचीन सिद्धान्तोंका पुनर्माजन अथवा रूपान्तर ही है; मौलिक आविष्कार नहीं। इस बातको बड़े २ डाक्टर स्वीकार करते हैं कि वर्तमान विज्ञान प्राचीन सिद्धान्तोंकी ही देन है। हमारा विज्ञान केवल भौतिकतामें ही पर्यवसित न होकर और ऊँचा उठाया गया है। अतः उसके दृष्टिकोणका धरातल अधिक उच्च है। एक्सरेके द्वारा शरीरकी अस्थियां हम देख सकते हैं किन्तु परमेश्वरका स्वरूप बतानेमें वह सर्वथा असमर्थ है। यदि वह एक्सरेसे दिखाई नहीं देता तो क्या उसकी उपासना छोड़ देना उचित है ? अणुवीक्षणयन्त्र जीवाणुमात्रका ज्ञान करा सकता है परन्तु जीवाधिष्ठित जीवात्मा भी कोई वस्तु है इसका उसको कोई पता नहीं है। यदि हम भारतमें बैठे रेडियो द्वारा इङ्गलैंडका संगीत सुन सकते हैं तो जन्मान्तरवादका खण्डन करनेका हमें क्या अधिकार है ? स्मरण रहे कि ऐनक या चश्मा स्थूल पदार्थोंका ही प्रत्यक्ष करा सकता है सदसद् वस्तुका निरूपण तो वही दिव्य दृष्टि कर सकती है जो पुनीत प्राचीन विज्ञानसे प्राप्त हो सकती है। आधुनिक

विज्ञान उक्त सूक्ष्मतत्वोंकी उपलब्धि करानेमें बिल्कुल अशक्त है। यही इस नवीन विज्ञानकी अपूर्णता है। जितना भी अधिक हम इस युगके भौतिकवादकी ओर झुकते जायंगे उतने ही हम अवनति और विनाशकी ओर जायंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। तात्पर्य यह है कि जबतक हम भारतीय विज्ञानके आगे प्रणत नहीं होंगे तबतक हमें दिव्य वस्तुओंका ज्ञान होना असम्भव है। अपने शास्त्रोंको वैज्ञानिक कहिए या अवैज्ञानिक परन्तु सत्य सत्य ही रहेगा, फिर चाहे वह नवीन हो या प्राचीन ; त्रिकालमें भी सत्यका अपलाप नहीं किया जा सकता। हां, यह ठीक है कि सत्यका ह्रास होने देना भी तो अपने हाथों अपनी हत्या करना है। किन्तु परतन्त्रता आदि कारण-विशेषसे यदि कोई आवरण आ भी जाता है तो अनित्य होनेके कारण कुछ समयके बाद वह अवश्य हट जाता है।

ऐसे ही कुछ कारणोंसे आयुर्वेदका भी ह्रासया प्रतीत होता है ; लेकिन वह दिन दूर नहीं है जब कि हमारा शुद्ध विज्ञानात्मक आयुर्वेद मिथ्या आवरणको वेधकर पूर्णरूपेण प्रकाशित होकर संसारको पूर्ववत् चमत्कृत करेगा। हम नवीनताके सर्वथा विरोधी नहीं हैं किन्तु नवीनताकी चकाचौंधमें आकर अपनी प्राचीन किन्तु बहुमूल्य वस्तुओंके निरादर करनेका विरोध प्रत्येक सहृदय व्यक्ति करेगा। आयुर्वेदपर जितना चाहे अनुसन्धान कीजिए किन्तु अपने मौलिक सिद्धान्तोंको मिथ्या न बताकर ; यही हमारा कहना है। हमें आश्चर्य होता है कि प्रतिदिन नए २ सिद्धान्त जो कुछ भी डाक्टर लोग स्थापित करते हैं उनमेंसे अधिकांश आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें उपलब्ध हैं किन्तु वे माने जाते हैं विदेशियोंके आविष्काररूपमें। इञ्जेक्शन आदि केवल पुरातन सिद्धान्तोंके ही रूपान्तर हैं जो हमें आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें सिरावस्ति आदि नामोंसे लिखे हुए मिलते हैं। शालाक्य विषय जितना आयुर्वेदमें है तथा रसायन, वाजीकरणादि प्रकरण जितने विस्तृतरूपसे आयुर्वेदमें हैं, उनका शतांश भी पाश्चात्य आयुर्वेदमें आजतक नहीं आविष्कृत हो पाया है। हां शल्यतन्त्रमें आधुनिक वैज्ञानिकोंने पर्याप्त उन्नति की है। केवल इसी अर्थमें कि इस शास्त्रको वे व्यवहारमें ला रहे हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि शल्यका आविष्कार भी आज ही किया गया है। किन्तु इस विषयको पहलेके वैद्योंने छोड़ दिया था। बहुत ही कम वे इसका प्रयोग करने लगे थे। बौद्ध कालमें इस विषयकी बहुत उपेक्षा हो गई थी और इसका कारण बौद्ध धर्मकी कट्टरता ही थी। क्योंकि आपरेशन करना बौद्धोंकी दृष्टिमें हिंसा समझा जाता था। लेकिन अब समय ऐसा है कि हमें अपनी सर्वाङ्गीण उन्नति करनी है। हमारे देशके लिए हमारी देशी चिकित्सा-प्रणाली ही हिततम हो सकती है। जैसे कहा है कि—'यस्य देशस्य जो जन्तुस्तज्ज तस्यौषधं हितम्' अर्थात् जिस देशके जो प्राणी हैं उनको उसी देशकी औषधियां तथा विधि हितकारक होती हैं। अतः हमें चाहिए कि अपने ज्ञान-विज्ञानको सन्मानकी दृष्टिसे देखते हुए उनका अनुशीलन तथा अनुसन्धान करें ; और उनके द्वारा उपदिष्ट पथपर चलते हुए दीर्घायु, सुखी जीवन, स्वास्थ्यसम्पन्न शरीर एवं सच्चा आनन्द प्राप्त करें। निःसन्देह इसीमें हमारा और हमारे देशका कल्याण है।



# राज-धर्म-शास्त्रका अन्तिम रहस्य

## धर्म-व्यवस्थापक-सभाके सदस्योंकी योग्यता क्या होनी चाहिये

ले०—डा० भगवान्दासजी

( शेषांश )

रूस देशकी दशा

इस स्थानपर उचित होगा कि नयी पुश्तका ध्यान रूस देशकी नयी व्यवस्थाके एक अंशपर दिलाया जाय। क्योंकि उस देशका जो हालका वृत्तान्त है, जो बड़े परिवर्त्तन वहाँकी राजनीतिक, आर्थिक, और सामाजिक व्यवस्थामें हुए हैं, उनका प्रभाव स्वभावतः इस देशकी नयी पुश्तके हृदयपर बहुत पड़ा है। रूस देशके नये संघराज्यका नाम क्या रखा गया है इसको विचारिये। "दी वर्क्स, सोलजर्स, एण्ड पेज़ेन्ट्स सोवियेट आफ रशिया"—यह नाम है। अर्थात् "रूसके कर्मकारों, योद्धाओं, और किसानोंकी पंचायत।" कर्मकारोंके निसर्गतः दो अवांतर विभाग होते हैं। एक बुद्धिसे काम करनेवाले, और दूसरे शरीरसे। तो अब देखिये कि वे ही चार मुख्य सनातन अंग समाज-शरीरके फिर यहाँ भी, रूसकी रिपब्लिकमें भी, विवश होकर माने ही गये। और नाम भी उनके पुरानेसे ही हैं। नाम भी नये नहीं मिले। इस्लाम धर्मकी सभ्यताके शब्दोंमें इनको (१) आलिम, (२) आमिल, (३) ताजिर, (४) मददगार कह सकते हैं। संस्कृतके नाम अपने सत्यार्थसे कालके प्रवाहमें इतनी दूर बह गये और बहक गये हैं, कि अति प्रसिद्ध होते हुए भी उनको अब निषिद्ध ही समझना अच्छा है। शिक्षक, रक्षक, पोषक, सहायक; अथवा ज्ञानी, शूर, दानी, समर्थक; अथवा ज्ञानद, त्राणद, अन्नद, सहायद; अथवा शास्त्री, शस्त्री, धनी, अनुचारी; अथवा लोकैषी, बलैषी, वित्तैषी, विनोदैषी; अथवा शांत, शुष्मी, कर्मी, दुःखी ( वायु पुराण ) ऐसे कुछ नये नाम बनाये जायँ तो स्यात् वर्णव्यवस्थाका तात्त्विक सात्त्विक धार्मिक अभिप्राय और लक्ष्य पुनः प्रकाशित हो, जो अब नितरां अन्धकारसे आच्छन्न है।

शंका-समाधान

एक स्वाभाविक शंकाका समाधान कर देना चाहिये। कैसे निर्णय होगा, कौन निर्णय करेगा, कि निर्दिष्ट व्यक्तिमें उक्त गुण और योग्यता है या नहीं है? इस विषयके धर्मका, कानूनका, प्रवर्त्तन, प्रणयन, आचरण कैसे किया जायगा? इसका "सैंक्शन्" दंडात्मक प्रतिभू, क्या होगा? उसका प्रयोग कैसे होगा?

इसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि अन्य देशोंके स्वराज्य-विधानों, "कांस्टिट्यूशन" के अनेक अंशोंके सम्बन्धमें ठीक यही शंका की जा सकती है, तथा भारतीय स्वराजयोजनाकी महिमाशाली प्रभूतार्थ धारा चारके कई अंशोंके सम्बन्धमें भी जिनमें जनताके नैसर्गिक अधिकार ( फंडामेंटल राइट्स ) की परिगणना की है, तथा भावी पार्लिमेंटको, धर्मसभाको, आदेश किया है कि इस प्रकारके धर्म, कानून, बनाना। किन्तु उसपर किसीने भी ऐसी शंका नहीं उठायी। बात यह है कि, "काँस्टिट्यूशन", स्वराजविधान, धर्मों, कानूनोंका मूल है, उद्भवस्थान, उत्पत्ति-कारण है, स्वयं उनके समान साधारण कानून, धर्म, नहीं है। मामूली कानूनोंके समान उसका प्रवर्तन करनेका यत्न नहीं करना चाहिये। मामूली धर्मोंका भी सर्वथा आचारण, प्रवर्त्तन, नहीं ही हो सकता। दण्डविधान ( पीनल कोड ) हैं, पर पाप ( जुर्म ) भी होते ही रहते

हैं। और, चाहे कुछ भी प्रबन्ध किया जाय, बहुतसा भरोसा अधिकारियों, काम करनेवालों, "सरकारी नौकरों" "राज्य-भृत्यों" की सद्बुद्धिता और आर्यता-पर करना ही पड़ता है। कानूनका अमल, उनकी अकल और नीयतपर मुनहसर रहता ही है, उनके विवेक और निर्णयपर छोड़ा ही जाता है। अधिकारी चाहे तो कड़ाईसे, चाहे तो ढिलाईसे; चाहे ईमानदारीसे, चाहे बेईमानीसे, लापरवाहीसे या होशसे, कानूनका वर्ताव कर सकता है। एकही नियमका चाहे सदुपयोग चाहे दुरुपयोग करता है। धर्मविधानों, "लाज" "एक्ट्स" के शब्दोंकी व्याख्या इसके इख्तियारमें है। यह कथा साधारण कानूनोंकी है। स्वराज-विधान का विशेष यह है कि उसके निर्माता, और उसके निर्माणका प्रकार, सामान्य धर्मोंके निर्माण-प्रकार और निर्माताओंसे भिन्न होते हैं। स्वराज-विधान तो "एक्ट आफ लेजिस्लेशन", धर्मपरिकल्पनरूपी कर्म, नहीं है, धर्मव्यवसान-क्रिया, नहीं है, किन्तु स्वयम्भवन, प्रादुर्भवन, नये राष्ट्रका आत्मव्यञ्जन, स्वसर्जन रूपी आदिम कर्म है। पच्छिमके राजनीति शास्त्रके किसी किसी ग्रन्थकारने ऐसी क्रियाको "एक्ट आफ रेवो-ल्यूशन", अर्थात् "विप्लवन-क्रिया" कहा है। स्वराज-विधान ही तो प्रथमतः उस उपकरणका, धर्मसभाका, निर्माण करता है जो आगे चलकर धर्मोंकी परिकल्पना करेगी; और वही उन उपकरणोंका, "सैंक्शनों" का शासक वर्गका राष्ट्रभृत्यसमूहका, अधिकार व्यूहका, भी निर्माण करता है, जो इन धर्मोंका प्रवर्त्तन करेंगे। स्वराज-विधायक धर्म स्वयंभूः, स्वतःप्रमाण, होता है; अन्य सब पश्चात्कृत धर्म परतोभूत, परतः प्रमाण होते हैं। इसीलिये भारतवर्षका परम प्राचीन, आदिम, मूल स्वराजविधानात्मक धर्म, स्वयंभूकृत 'वेद' की संहिता (जिसमें 'स्वराज्य'-सूक्त विद्यमान है) और ऐतरेय ब्राह्मण आदिमें तथा स्वायम्भुवमनुकृत 'स्मृति' में लिखा हुआ है। ऊपर जो उपाय कहे हैं उनके प्रवर्त्तनका उप-करण विशेष २ अधिकारियोंकी नहीं, किन्तु निर्वाचक समूहकी शिक्षित बुद्धि और बुद्धिनीत शक्ति ही होगी। अंश क्या सकल स्वराजविधानका 'सैंक्शन' प्रतिभूः, स्वराजविधाता सकल जनसमुदायका स्थिर बुद्धि-बल और दृढ़ व्यवसाय-बल ही हो सकता है, दूसरा नहीं।

स राजा पुरुषो दंडः⋯धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः। मनु०

माना कि यदि कोई व्यक्ति धर्मके विरुद्ध आचरण करे तो स्वराज-विधानके अनुसार नियुक्त अधिकारी उसका नियमन-नियन्त्रण करे; और यदि अधस्तन अधिकारी उचित कार्य न करे तो उपरितन अधि-कारी, दमन-दण्डन करे; और उपरितन अधिकारी, राजा या प्रधान 'प्रेसीडेन्ट' उत्पथ चले तो धर्मपरिषत् उसका निग्रह करे। शुक्रनीति (अ० २, श्लोक ७८-७९) में कहा है—

यत्कोपभीत्या राजाऽपि धर्मनीतिरतो भवेत्,
सैवाचार्यः पुरोधाः, यः शापानुग्रहयोः क्षमः।

पुरोहित वही जो राजाका भी निग्रह और अनु-ग्रह यथोचित कर सके, जिसके कोपके भयसे राजा धर्मनीतिपर ही, कानूनके, मर्यादाके अनुसार ही, चले। मनुने भी कहा है—

क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणानतिवर्त्ततः,
ब्रह्मैव संनियंतृ स्यात्; क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम्।

यदि कर्मप्रधान अधिकारिवर्ग मिलिटरिज्मपर उतारू हो जाय, और ज्ञानप्रधान पुरोहितवर्गका अति-वर्तन करे, ('अतिवर्त्तमानस्य' के स्थानपर 'अतिवर्त-तः' का प्रयोग आर्ष है), उनका कहना न माने, तो पुरोहित-वर्ग हीको उसका दमन करना होगा, क्योंकि ज्ञानसे ही कर्मकी, ज्ञानिवर्गसे ही राष्ट्रादि-कर्मिवर्गकी उत्पत्ति हुई है।

भागवत, १ स्कं०, १८ अध्याय, श्लो० ३४, में भी कहा है।

ब्राह्मणैः क्षत्रबंधुर्हि द्वारपालो नियोजितः।

प्रजाके ज्ञानिवर्गने राजा आदि कर्मिवर्गको प्रजा-की रक्षाके लिये चौकीदार, पहरुआ, द्वारपाल, मुकर्रर किया है। यह सब माना। पर यदि पुरोहितवर्ग, ज्ञानिवर्ग, भी काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सरादिसे अन्ध हो जाय, पथभ्रष्ट, निर्मर्याद, पाषण्डी, बकव्रती, बिड़ालव्रती, दुष्टबुद्धि हो जाय, और ज्ञानको स्वार्थका दास बना दे, यदि ब्रह्म और क्षत्र, 'चर्च और स्टेट' 'टेम्पोरल पावर और स्पिरिचुअल पावर' आपसमें मिलकर प्रजाकी यमयातना करने लगें, तब क्या उपाय है? कौन प्रतिभू, 'सैंकशन' काम करेगा? पहरेदारपर पहरा कौन देगा? अंततोगत्वा, जनतासमूहमें व्याप्त अव्यक्त बुद्धि और अव्यक्त शक्ति ही को, जिसीने नया राष्ट्र और नया राष्ट्रविधान बनाया, उसीको फिरसे धर्मसंस्थापनार्थ नये रूपमें अवतार लेकर, नया 'रिवो-ल्यूशन' विप्लवन करके, ब्रह्म-क्षत्र-विट्-शूद्र सबका पुनः संशोधन करना पड़ेगा, समाजका और राष्ट्र-विधानका जीर्णोद्धार करना पड़ेगा। निष्कर्ष यह कि प्रस्तुत विषयमें प्रतिभूके लिये आग्रह नहीं करना, बाल-की खाल नहीं निकालना।

स्वराजविधानमें, महाजन-समूहके व्यूढ़, संग्रथित, संगृहीत सामाजिक जीवनके आदर्शोंका, लक्ष्योंका, सन्निवेश किया जाता है। उसमें कानूनी मसलोंका, मैमांसिक न्यायोंका, ही नहीं, किन्तु उत्कृष्ट सदाचार और सभ्यताके आदर्शोंका भी संग्रह किया जाता है। जो जनसमुदाय उसका विधान करता है उसके आध्या-त्मिक गुणों और श्रद्धाओं और अभीष्टोंका उल्लेख उसमें किया जाता है; यथा सर्वदल-समितिकी योजना-की उक्त धारा चारमें अंशतः किया गया है। और याद रखनेकी बात है कि आध्यात्मिक उत्कर्ष करना और सदाचारकी श्रद्धा जगाना, मानवसमाजके सर्वाङ्गीण सुखसाधनाके लिये, दण्डविधानों (पीनल् कोड्ज़) की अपेक्षा, बहुत अधिक आवश्यक और उपयोगी है। यदि ये हैं, तो दंड विधान, अनुचर रूपसे, इनकी कुछ सहायता कर सकता है; यदि नहीं हैं तो दंडविधान नितरां व्यर्थ है। शिक्षा द्वारा आत्मोत्कर्षण, आत्मो-द्धरण, मनुष्यका बनाना, पहिले; दंडसे संशोधन, बिगड़ेका सुधारना पीछे।

स्वराजविधानमें ऊँचे आदर्शके रख देनेसे जनताका उत्तम शिक्षण

इन कारणोंसे यह सर्वथा उचित है कि स्वराज-विधानमें धर्मपरिकल्पक पुरोहितके ऊँचे प्रतिमानका सन्निवेश कर दिया जाय, अर्थात् यह कि उसको ऊँची काष्ठाका परार्थी भी अनुभवी धीमान् भी होना चाहिये, क्योंकि वही प्रजाके समग्र सुखका विश्वस्त निक्षेप-धारक और संरक्षक है। ऐसे संनिवेशका कमसे कम इतना फल अवश्य होगा कि यह आदर्श निर्वाचकोंके सामने सदा उपस्थित रहेगा, उनको अन्धकारमें दीपक-का काम देगा, चुननेवालोंके लिये सबसे आवश्यक जो शिक्षा है, अर्थात् ठीक चुनाव कैसे करना, किसका करना, और जिस शिक्षाको वे सहजमें ग्रहण भी कर सकते हैं, वह शिक्षा उनको निरन्तर देता रहेगा। क्रमशः, यह आदर्श उनके हृदयोंमें प्रवेश करेगा, और उनके निर्वाचन कर्मपर प्रभाव डालेगा। अनायासेन, अन्तर्बोध हीसे, वे अच्छे योग्य व्यक्तियोंका प्रतिनिधान करने लगेंगे, जो व्यक्ति समाजके अन्योन्याश्रित चार अंगोंमेंसे किसी न किसीके धर्म कर्मके अच्छे अनुभवी भी होंगे, और निस्स्वार्थ, सर्वलोकहितैषी भी होंगे, और बड़ी चिन्तना और पूर्वापर विचारके साथ ऐसे कानून बनावेंगे, जो समाजके सब वर्गोंके योग-क्षेमकी वृद्धि करें। याद रहे कि प्रत्येक सभ्य और समृद्धि-शाली मानवसमाजमें, राष्ट्रमें, ये चारों परस्पराश्रित अंग वैसे ही वर्त्तमान हैं जैसे जीवत्शरीरमें प्रसिद्ध

चारो अंग, सिर, जिसमें ज्ञानेन्द्रिय हैं, बांह, जिसमें क्रियाशक्ति है, धड़, जिसमें अन्नसंचयशक्ति (इच्छा-शक्ति) है, पैर, जो सबका बोझ सम्हालते हैं।

तथा स्वराजविधान द्वारा इस आदर्शके प्रचारका और भी सुफल होगा। जैसे व्यापारके स्थूल लोकमें जिस सौदेकी माँग अधिक होती है, वह बहुतायतसे बाजारमें एकत्र भी हो जाता है, वैसे ही सूक्ष्मलोकमें भी। जो समाज हृदयसे चाहता है कि हमें ऐसे व्यक्ति मिलें जो धर्मपरिकल्पनके योग्य हों, उसके बीचमें अधिकाधिक मात्रासे ऐसे योग्य व्यक्ति उत्पन्न होंगे।

एक और बड़ा आनुषङ्गिक गुण

स्वराज-विधानमें उक्त प्रकारकी शर्तें निर्वाच्योंके विषयमें रख देनेसे व्यवहारमें भी तत्काल एक भारी लाभ होगा। यह बात प्रायः सब लोग मानते हैं कि भारतवर्षके राजनीतिक स्वाधीनताके नियुद्धमें शान्तिमय असहयोगसे, इस देशकी जितनी प्रगति हुई, उतनी किसी दूसरे इसके पहिलेके उद्योगसे नहीं हुई। और यह भी प्रायः मानी बात है कि यदि इस असहयोगके द्वारा जितनी कार्यसिद्धि होनी चाहती थी वह नहीं हुई; तो उसका मूल कारण यही हुआ कि कार्यकर्त्ताओंमें "विनयन" और 'व्यूहन' (डिसिप्लिन और आर्गेनिजेशन) पर्याप्त मात्रामें नहीं था। अब विचारनेकी बात है कि इस विनयाभाव और व्यूहाभावका क्या कारण था? सूक्ष्म अन्वेषणसे निश्चय होगा कि इस अभावका मुख्य कारण, जनताके मनमें स्वराजके तत्त्वके ज्ञानका अभाव था। कांग्रेसने इस तत्त्वका निरूपण नहीं किया, न जनताको उसके बताने-सिखानेका प्रयत्न किया, न कांग्रेस कार्यकर्त्ता-व्यूहमें इसका स्पष्ट रूपसे बुद्धिपूर्वक व्यावहारिक उपयोग किया गया, कि 'स्वराजका सच्चा अर्थ जनताके उत्तम 'स्व' का राज, जनताके भद्रतम, विज्ञतम, लोकहितैषितम, परार्थितम, पुरोहित, निर्वाचित, चुने हुए सज्जनोंके द्वारा धर्मोंका परिकल्पन है।' स्वराजके इस तात्त्विक सात्त्विक सत्य अर्थका प्रचार कांग्रेसकी ओरसे नहीं किया गया। फल यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्तिने मनमाना समझ लिया कि स्वराजका अर्थ प्रत्येक व्यक्तिका राज, जिसका जो जी चाहे वह करे। यह परम मिथ्या भाव ही विनयाभाव और व्यूहाभावका, तथा अन्य सब प्रकारकी अनर्थ-परंपराका, परम मूल कारण है।

यदि स्वराजविधानके द्वारा स्वराजके इस सत्यार्थका प्रकाश और प्रचार कर दिया जाय, धर्म-व्यवस्थापकोंके लिये ऊपर कही हुई शर्तें लगा दी जायँ, जिससे सबको स्पष्ट विदित हो जाय कि इनको देशके उत्तम 'स्व' के स्थानीय होना चाहिये, तो इस भावका प्रभाव कांग्रेसके व्यूहनकार्यपर अवश्य पड़ेगा। यह भाव काममें लाया जायगा।

आज तक यह दशा रही है कि किसी किसी तरह से यदि एक दिन कोई आदमी 'लीडर' नेता, बनाया गया, तो दूसरे ही दिनसे अनुयायियोंमें तथा समकक्ष नेताओंमें, उसका दोषगान आरम्भ हो जाता है, निरन्तर ईर्ष्याद्वेषकी बौछार उसपर पड़ने लगती है, थोड़े ही दिनोंमें बेकार कर दिया जाता है, और क्रमशः लीडरीसे अलग होता है या किया जाता है। दूसरा खड़ा किया जाता है, और फिर वह गिराया और नीचा दिखाया जाता है। गोया बच्चोंके खिलौनोंका खेल हो गया है, रोज़ एक जोड़ा जाय रोज़ एक तोड़ा फोड़ा जाय। यह अनुयायियोंका नीतोंका व्यवहार है। नेता भी कितने ही ऐसे ही प्रायः देख पड़ते हैं, जिनको नेता बननेकी उत्कट इच्छा रहती है, योग्यता नहीं। तरह तरहकी चालोंसे इस इच्छाको पूरी करते हैं। और इसी कारणसे पीछे उनको दुर्दशा भोगनी पड़ती है। पुराना नियम यह रहा है कि सच्ची योग्यताका पुरुष तो, जिसकी योग्यता वर्षोंसे उसके जीवनके प्रकारसे सिद्ध हो चुकी है, नेतृत्वके गु

भारसे भागना चाहता है, पर लोग अपनी भलाईके लिये उसका अनुनय-विनय करके अपना बोझ उसके कंधेपर रखें, और उस बोझको ढोनेके लिये उसकी खुशामद-बरामद, आदर-सात्कार, करके उसको राज़ी करें ; न यह कि वह कहे कि मैं बड़ा बुद्धिमान् और होशियार और लायक हूं, लाओ अपने कामका बोझ मेरे सपुर्द करो, देखो मैं किस खूबीसे उसको उच्छालते हुए ले चलता हूं।

यदि स्वराजका यह तत्त्व, उसका यह सच्चा अर्थ और आदर्श, देशमें फैलाया जाय तो अवश्य इसका यह फल होगा कि सच्चे आर्य बुद्धिके, आर्य हृदयवाले, आदरके 'अर्हत' संमानार्ह, अनुभवी, लोकहितैषी सज्जन ही नेता माने और प्रार्थनापूर्वक बनाये जायँगे, और सब प्रकारके लोग उनपर विश्वास और श्रद्धा करेंगे। इसका फल यह होगा कि आपसके नित्य नित्यके द्वेष, ईर्ष्या, और कलह बहुत कम हो जायँगे। साम्प्रदायिक द्रोह भी कम होगा। क्योंकि लोकहितैषिताका अर्थ ही साम्प्रदायिक संकुचितताका अतिक्रमण करके सब विविध सम्प्रदायोंके लोगोंका हितचिन्तन है। और लोकहितैषीके ऊपर सब सम्प्रदायवालोंका विश्वास होगा। जब ईर्ष्याद्वेषजनित कलह मिटै, और नेताओं और नीतोंके आपसमें परस्पर विश्वास हो, तो अवश्य ही कर्मकर्ताओं, कार्यनिर्वाहकों, का व्यूहन, संहनन, दृढ़ और सर्वकार्यक्षम होगा, और उनमें विनयनका भाव ( विशेषेण नयनं, 'डिसिप्लिन' ) उत्तम रीतिसे उत्कर्ष पावेगा। विनयका, विनयनका, 'डिसिप्लिन' का अर्थ ही यह है कि नेता, वि-नेता, जैसा आदेश करे तत्काल तदनुसार ठीक ठीक विनीत, अनुयायी, वैसा कार्य करे, यथा 'सुविनीताः अश्वाः' और जब देशमें विनयन और व्यूहनके भाव प्राप्त हो जायंगे तब उस देशकी जनता जिसी कार्यको उठावेगी उसीका विजय कर लेगी, स्वराज सिद्ध भी होगा, और आगे के लिये स्थिर भी होगा।

### नये विचार

देशकी नयी पुश्त अपने विश्वजनीन भाव और उदार हृदयके कारण ऐसे कुछ आर्थिक आदर्शोंकी ओर झुक रही है जो अंग्रेजीके कम्यूनिज्म और सोशलिज्म शब्दोंसे, अर्थात् साम्यवाद और समाजवादसे, सूचित होते हैं, और जो वैयक्तिक सम्पत्ति ( परिग्रह, 'प्रैवेट प्रापर्टी' के माननेवाले इंडिविज्युअलिज्म अर्थात् व्यक्तिवादके विरुद्ध पड़ते हैं। तथा राजनीतिके क्षेत्रमें यह पुश्त 'डोमिनियन' स्टेटस' को नापसन्द करती है और 'इंडिपेन्डेन्स' अर्थात् 'अनधीनता' को चाहती है।

पुरानी पुश्तकी ओरसे भी यह कहनेका साहस किया जा सकता है कि वह भी इन्हीं आदर्शोंको अपनाये हुए हैं। ये आर्थिक आदर्श, उक्त भारतीय स्वराज-योजनाकी धारा ४ में कथंचित् रखे गये हैं। कौन नहीं चाहता कि हमारे राष्ट्रका निर्माण ऐसा सुन्दर हो, हमारे समाजका व्यूहन ऐसी बुद्धिमत्ता और कार्य-कुशलतासे किया जाय, कि जहांतक भी सम्भव हो, उसके भीतर बसनेवाले प्रत्येक मनुष्यको पर्याप्त अन्न, पर्याप्त वस्त्र, पर्याप्त शिक्षा, पर्याप्त गार्हस्थ्यसुख, पर्याप्त ( जीविकासाधक ) कार्य और पर्याप्त विनोद मिले ? अवश्य सभी ऐसा चाहते हैं। यदि मतभेद कुछ भी है तो इस विषयपर है कि इसके उपाय क्या हैं, और यह लक्ष्य कहांतक, किस हदतक, सध सकता है। पर याद रखना चाहिये कि यदि यह कुछ भी साध्य है, तो अच्छे और विवेकी, युक्तियुक्त, उपयुक्त कानूनोंके द्वारा ही साध्य है, और ऐसे कानून तभी बन सकेंगे जब कानून बनानेवाले अच्छे और विवेकी और सर्व-हितचिन्तक होंगे। ऐसे सर्वहितसाधक राष्ट्रनिर्माण और समाजव्यूहनका एकमात्र प्रकार, यही जान पड़ता है कि 'कर्मणा वर्णः' के सिद्धान्तके अनुसार समाज

रचा जाय और कर्मवृत्ति-एषणा-तोषणा आदिका विभाग कानून द्वारा किया जाय।

अधीनता अथवा अन्योऽन्याधीनता

ऐसे ही राजनितिक आदर्शके विषयमें, अनधीनता, अथवा स्वाधीनता, ( 'सेल्फ-डिपेंडेंस' जो अनधीनतासे अधिक अच्छा और अर्थद्योतक शब्द है ) कौन नहीं चाहता ? पशु तक तो उसे चाहते ही हैं। फिर भारतीय मनुष्य क्यों न चाहेंगे ? पर यहां भी, जो मतभेद नयी और पुरानी पुश्तके बीचमें है वह इस बातमें है कि कहाँतक और किस रूपमें यह लक्ष्य सध सकता है। पच्छिममे भी, राजनोति शास्त्रके ग्रन्थकार मानते हैं कि आत्यंतिक अनधीनता तो अत्यंतासत् अभावरूप पदार्थ है। कोई बलिष्ठ और महिष्ठ राष्ट्र भी ऐसा अत्यन्त अनधीन नहीं है। यदि उसने किसी भी दूसरे, छोटे-से छोटे, राट्रसे भी, किसी भी प्रकारकी सन्धि की, तो उस सन्धिकी शर्तों, समयों, से वह अनधीनता, दोनोंकी अवच्छिन्न हो जाती है। और आज ऐसा कोई बड़ेसे बड़ा सभ्य राष्ट्र नहीं है जिसने दूसरोंके साथ बहुविध सन्धियाँ न कर रखी हों।

असल बात यह है कि 'डोमिनियन स्टेटस' के नामसे, और इंग्लिस्तानसे कुछ भी सम्बन्ध बने रहने की बातसे, हमारी नयी पुश्त इसलिये क्रुद्ध हो रही है कि भारतमें जो इस समय आंग्ल शासन है उसने भारतकी जनताके साथ ऐसे उद्वेजक तिरस्कारात्मक व्यवहार किये हैं जो कृतघ्नता और विश्वासघात और भक्तिराहित्य और प्रजाद्रोहसे भरे हैं, और 'ब्रिटिश एम्पायर' का नाम ही औद्धत्य और गर्वसे भरा है। पर जब यह पद और पदार्थ बदलकर उसके स्थानमें मैत्रीमय सौमनस्यपूर्ण 'इण्डो-ब्रिटिश' अथवा 'ब्रिटिश-इण्डियन कामनवेल्थ' स्थापित हो जायगी तब यह सब उत्तेजनाका कारण मिट जायगा, न एक ओर तिरस्कार रहेगा, न दूसरी ओर रोष ; प्रत्युत दोनों ओर भ्रातृभाव और परस्पर सहायकता और शुभचिन्तन। और इस 'कामनवेल्थ' राष्ट्रसंघ, के अवयवभूत सभी राष्ट्र – अनधीन नहीं, प्रत्युत तुल्य रूपसे अन्योन्याधीन पराधीन नहीं, प्रत्युत परस्पराधीन—एक साथ मानवजातिके उस उत्तम और अन्तिम लक्ष्यकी ओर बढ़ेंगे जिसका रूप यह है कि समस्त पृथ्वीमण्डलके सब राष्ट्रोंका एक महासंघ हो जाय। 'वसुधैव कुटुम्बकं'। 'नैशनलिज्म' नहीं, प्रत्युत ह्यूमनिज्म'।

जैसे एक एक पृथक् पृथक् राष्ट्रके भावसे, कई राष्ट्रोंके एक एक सङ्घका भाव गुरुतर है, वैसे इस प्रकारके एक राष्ट्रसङ्घके भावसे 'लीग आफ नेशन्स' का भाव ( जिसमें कई राष्ट्रसङ्घ तथा पृथक् पृथक् राष्ट्र भी शामिल हैं ) गुरुतर है। यद्यपि अबतक यूरोपकी 'लीग आफ नेशन्स' ने अन्य देशोंमें बसनेवाली दुर्बल जातियोंके साथ बहुत अन्याय और बदनीयतीसे ही काम किया है, तो भी वह आनेवाले सुकालकी पेशखेमा है, शकुन-रूप है, जब यह कुटिल बुद्धि मिट जायगी. और पूर्व और पश्चिमके सभी देश एक बड़े पृथ्वीतलव्यापी महासङ्घके अङ्ग होकर सब परस्पर शुभचिन्तन और हितवर्धन करेंगे और वह महासङ्घ सबको तुल्यरूपसे शरण देगा। 'बुद्धं, बुद्धिमन्तं, सद्धर्मविधातारं शरणं गच्छामि ; धर्मं, सद्बुद्धिविहितं, प्रबुद्धजनपरिकल्पितं, सर्वलोकरक्षकं सद्धर्मं शरणं गच्छामि; सङ्घं, तत्सद्धर्मानुसारेण संहितं, सर्वराष्ट्रान्तर्गतसमस्तमानवजातिमहासङ्घं, शरणं गच्छामि।'

ऐसे विचारोंसे यही सिद्ध होता है कि पूर्ण अनधीनता खपुष्प और शशशृङ्ग मात्र है। अन्योऽन्यतन्त्रता ही प्राकृतिक वास्तव पदार्थ है। यदि हमलोगोंको, इण्डो-ब्रिटिश अथवा ब्रिटिश-इण्डियन राष्ट्रसङ्घके भीतर, परस्पर समानता और आदरके साथ, प्रजाकी ओरसे शान्तिमय पर दृढ़ निश्चयमय दबावको अधिकारी वर्गके ऊपर डालनेसे, स्थान मिल जाय, तो जो कुछ

भी हमारे देशकी सच्ची सम्पन्नताके लिये, तथा मानव-संसारके उत्कृष्टतम राजनीतिक लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये, अभीष्ट है, वह सब सिद्ध हो जायगा।

### अच्छे धर्मपरिकल्पक सभी अवस्थामें चाहिये

पर यह याद रखनेकी बात है कि ऐसी तुल्य परस्पराधीनताकी अवस्थामें भी भारतवर्षके भीतरका प्रबन्ध निर्वाचित धर्मसभाके द्वारा होगा, तथा दूसरे राष्ट्रोंसे जो कुछ सन्धि द्वारा सम्बन्ध होगा, वह भी इस धर्मसभाकी अनुमतिसे ही होगा, और इंग्लिस्तानसे जो पारस्परिक सम्बन्ध रहेगा वह भी सन्धिवत् होगा, चाहे स्वराजविधानमें पहिलेसे ही उल्लेख कर दिया जाय, चाहे पीछेसे हमारी धर्मसभा उसको मंजूर करे।

कहनेका तात्पर्य यह है कि, चाहे जो भी नाम या प्रकार इष्ट समझा जाय, अनधीनता, अथवा डोमिनियन स्टेटस, अथवा तुल्य परस्पराधीनता सभी दशामें अच्छे कानूनोंकी आवश्यकता है, और इनके बनानेके लिये अच्छे धर्मपरिकल्पकोंकी आवश्यकता है। यह आवश्यकता सबसे पहिली है। सच्चे स्वराजका हृदय, परम मर्म, यही है। दूसरे राष्ट्रोंसे क्या सम्बन्ध होगा, 'किङ्' 'गवर्नर जनरल' 'गवर्नर' आदि शब्द हमारे स्वराज विधानकी धर्मसभाओंके निरूपणमें शामिल किये जाना चाहिये या नहीं—यह सब बातें भी बड़े गौरवकी हैं; पर इनका गौरव द्वितीय काष्ठाका है, धर्मपरिकल्पकोंकी उत्तमताका गौरव ही प्रथम काष्ठाका है। इसलिए इस भारतवर्षके आदिम स्वराजविधाता तथा अवान्तरधर्मविधाता स्वायंभुव मनुने सब विधान करके अपने सन्तानभूत मानववंशके कल्याणके लिये, अन्तमें, सब धर्मशास्त्रकी उपनिषत् रहस्य, मूल सिद्धान्त, ( धर्मान् मेहति, वर्षति इति ) धर्ममेघ मन्त्र, 'प्रिंसिपल आफ लिविङ् लेजिस्लेशन' यह लिख दिया कि, "यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः"। शिष्ट सज्जनोंका बनाया जो धर्म हो वही धर्म है, और उसीकी रक्षा और प्रचारसे लोकरक्षा है। मनुके वंशका मुख उज्ज्वल करनेवाले, लोकरावक रावणका दमन करनेवाले, मर्यादापुरुष, 'प्रतिमानं महीभुजां' राजाओंके आदर्श और प्रतिमान, 'स्टैंडर्ड' राम ऐसे ही धर्मके लिये वसीयतनामा लिख गये हैं।

दुःखेनायं निर्मितो धर्मसेतुः, नित्यं यत्नैः रक्षणीयो भवद्भिः ;
नत्वा सर्वान् भाविनो भूमिपालान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः।

# सात्विकजीवन-ग्रन्थमाला

## ब्रह्मचर्य नाटक

प्रथम पुष्प—रङ्गमञ्च पर सफलता-पूर्वक अभिनीत यह नाटक अपने ढङ्गका निराला और बेजोड़ है। हमारे आन्तरिक असुर किस प्रकार पराजित हो सकते हैं, हम किस प्रकार अपनी दुर्वासनाओंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं, इसका विवरण यदि आप प्राप्त करना चाहते हों तो इस पुस्तकको अवश्य देखिये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य केवल ।।)

## आध्यात्मिक शिक्षावली

द्वितीय और तृतीय पुष्प—आध्यात्मिक विकासके लिये इनसे अच्छा ग्रन्थ हिन्दीमें नहीं है। हिन्दू-धर्म और अध्यात्मवादका ज्ञान थोड़ेमें प्राप्त करनेके लिये ये पुस्तकें सर्वोत्तम हैं। इन पुस्तकोंमें गागरमें सागर भर दिया है। आज ही मंगा कर पढ़िये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य प्रथम खण्ड ।।।), द्वितीय खण्ड ।।।)

## सचित्र हठयोग ( सजिल्द )

चतुर्थ पुष्प—( आसनोंके ३८ चित्रों सहित )—आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा एवं यौगिक क्रियाओं द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ले जानेवाली अनुपम और प्रामाणिक पुस्तक। इस एक ही पुस्तकसे जो लाभ उठाया जा सकता है वह अन्य कई पुस्तकें पढ़कर भी नहीं उठाया जा सकता। इसके लेखक स्वयं एक महान् योगी हैं। इस विषयकी ऐसी उपयोगी पुस्तक दूसरी नहीं है। मूल्य केवल १), स्थायी ग्राहकोंसे ।।।)

## स्वामी शिवानन्दजी की जीवनी और उनके उपदेश ( अंग्रेजीमें )

पञ्चम पुष्प—प्रस्तुत पुस्तकमें श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराजकी जीवनी और उनके उपदेशोंका सार संगृहीत है। स्वामीजीकी जीवनी तथा उनके उपदेशोंका एक ही स्थानपर संग्रह करनेका अभिप्राय यही है कि लोग उनके जीवनकी घटनाओंको उनके उपदेशोंके प्रकाशमें देखें और अपने जीवनको भी तदनुकूल बनानेका प्रयत्न करें। यह पुस्तक विशेषकर उन लोगोंके लिये लिखी गयी है जो स्वामीजीके सभी ग्रन्थ नहीं खरीद सकते। पुस्तकमें प्रयुक्त भाषा सरल तथा सुबोध है। साधारण अंग्रेजी जाननेवाला व्यक्ति भी अच्छी तरह समझ सकता है। बीसों चित्रोंसे सुशोभित सजिल्द पुस्तकका मूल्य केवल १।।)

**स्थायी ग्राहकों तथा थोक खरीददारोंको पर्याप्त कमीशन दिया जायगा**

प्रकाशक—

## जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट कलकत्ता। "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# समस्या का सुझाव

एक महाशय पत्र लिखते हैं :—

"श्रीमान् जी !

मैं कुछ समयसे आपका 'सात्त्विक जीवन' पढ़ रहा हूं। पत्र मुझे पसन्द है। इसका उद्देश्य और भी प्यारा है। जीवनको स्वस्थ, शान्त; व सुखी बनाना मनुष्य-मात्रका कर्त्तव्य होना चाहिये। और इसके लिये जो भी सहायता करे उसका धन्यवाद करना चाहिये।

मेरे सामने कुछ समयसे एक समस्या उपस्थित है। मैंने उसके सुझावके लिये अनेक मित्रोंसे पूछा है। और अनेक ग्रन्थ भी पढ़े हैं। परन्तु सन्तोष नहीं हुआ। अब वही समस्या आपके सामने रखता हूं। आशा है आप उसका हल सुझाएंगे।

समस्या यों हैं:—मैं एक अधेड़ उम्रका व्यक्ति हूं। पढ़ा लिखा हूं। कारोबार करता हूं। पासमें कुछ पैसा भी है। छोटासा परिवार है। उसे सामान्यतः सुखी कहा जा सकता है। परन्तु एक कमी, एक अभाव सदा खटकता है। वो अभाव है स्फूर्त्ति और उत्साहका। काम करता हूं, खाता पीता हूं, दुनियाके सब फरायज़ निभाता हूं परन्तु निर्जीव होकर। कोई उत्साह नहीं, कोई उमंग नहीं। न कहीं जानेकी खुशी है और न किसीसे मिलने-जुलनेका शौक। ऐसा मालूम होता है कि मानो जीवन बाती जल रही है। तेल वगैरह सब कुछ है। पर न जाने चमक क्यों नहीं आती। लैम्प-की चिमनी साफ़ करनेके बावजूद भी प्रकाशमें धुंध-लापन है।

कभी-कभी तो ऐसा मालूम होने लगता है कि मैं एक बड़े दरियामें बहा जा रहा हूं। चारों ओर जल ही जल है। दूर-दूरतक किनारा नहीं दिखाई देता। मेरी किश्ती दरियाकी लहरोंकी थपेड़ोंमें बही जा रही है। मैंने थक कर चप्पू छोड़ दिये हैं अब अन्त होनेकी इन्तिज़ार है।

मेरी दशाको देखकर रिश्तेदार कभी-कभी घबड़ा उठते हैं। मैं घण्टों अपनी कुरसीमें निश्चेष्ट बैठा रहता हूं। किसीने खानेके लिये कहा तो खा लिया। फिर वैसे ही चुपचाप पड़ रहे। ऐसे दिन भर बीत जाता है। मैं खुद भी हैरान हूं कि मुझे हो क्या गया है? मैं क्यों नहीं खेलता कूदता? मैं क्यों नहीं दुनियाके राग-रंगमें मस्त होता? यह है मेरी समस्या जिसका सुझाव आपने बताना है।

* * *

यह समस्या गंभीर है। इसलिये इसपर शान्तिसे विचार करनेकी आवश्यकता है।" मालूम होता है कि महाशयजी स्वभावसे तो धार्मिक विचारोंके हैं पर आधुनिक विज्ञानने उनकी बुद्धिको चकरा दिया है। अब न तो वो धर्म-कर्मको मानते हैं और न ईश्वरपर ही उनका विश्वास है। वो शायद पुनर्जन्म और कर्म-फलके सिद्धान्तोंको ढकोसला समझते हैं।

एक ओर उनका आत्मिक विकास हो रहा है। सांसारिक राग रंगोंसे उन्हें उपरति हो रही है। और दूसरी ओर उन्हें अगला कदम बढ़ानेकी जगह नहीं दिखाई दे रहीं है। वो शशो-पञ्जमें हैं। सामने अंधेरा है। अब कहां जाएं? क्या करें?

मनुष्य एक सहारा चाहता है। हमारे महाशयजी दुनिया और दुनियांवालोंका सहारा छोड़ आए हैं। उन्हें ज़रूरत है इस समय आध्यात्मिक सहारेकी। एक ऐसे गुरुकी जो उन्हें बांह पकड़ कर अंधेरेसे बाहिर

करे। परन्तु उन्हें तो गुरु और गुरुडम दोनोंसे नफ़रत है। गुरु मिले तो कैसे ? जो मिल भी जाता है उसे वे अपने सन्देहवाद में तिरस्कार करके छोड़ देते हैं।

अब जबतक तो वो गुरु नहीं पा लेते तबतकके लिये हम उन्हें एक सुझाव बतलाते हैं।

मान लिया कि संसारको बनानेवाला कोई ख़ुदा-बुदा नहीं है। यह अपने आप यों ही चल रहा है। पर इसके चलनेमें भी कोई नियम व कला दिखाई देती है। एक फूल खिलता है। उसमें रंगत है, सुगन्ध है, ताज़गी है। सूर्य उदय होता है। उसकी किरणोंमें चमक है, गरमी है शान है। झरने बहते हैं। उनके पानी में स्वच्छता है, मधुरता है और ठण्डक। ऐसे ही प्रकृति-की प्रत्येक वस्तुमें अपनी-अपनी विशेषता है। क्या मनुष्य ही बिना किसी विशेषताके बना है ? मैं पूछता हूं 'महाशयजी ! तुम्हारी विशेषता क्या है ?"

इसे एक दूसरे उदाहरणसे समझिये :—हम रंग-मंचपर जांय। वहां अनेक स्त्री पुरुष काम कर रहे हैं। हर एकको अपना-अपना काम मिला हुआ है। उसे पूरा करनेमें ही उनकी सफलता है। अभिनेता आते हैं। डाइरेक्टर उन्हें उनका पार्ट बतला देता है। अभि-नेताओंका फ़र्ज़ है कि वो अपना पार्ट समझें। समझ कर उसका अभ्यास करें। और अभ्यास करके ठीक तौरसे अदायगी की जाय।

जब एक अभिनेता रंगमंचपर अपना पार्ट खूबीसे अदा करता है तो दर्शक तालियां पीटते हैं। डाइरेक्टर भी तारीफ़ करता है। और अभिनेता स्वयं अपने हृदयमें सन्तुष्ट है। वो जानता है कि उसने अपना पार्ट अच्छी तरह किया है।

मेरी समझमें यही दशा मनुष्यकी है। दुनिया मानो एक रंगमंच है। इसपर सब स्त्री-पुरुष अभिनेता है। सबको अपना-अपना पार्ट अदा करना है। इसीमें जीवनकी सफलता है।

अब प्रश्न यह है कि हमारा क्या पार्ट है ? इसे कौन बतलाएगा ? फिर उसका अभ्यास कैसे होगा ? अभ्यास कर लेनेके पश्चात् अदायगीका सवाल उठेगा।

जो तो संसारमें सृष्टि-विधाता ईश्वर पर विश्वास करते हैं उन्हें ईश्वरको इस विशाल रंगमंचका डाइरेक्टर मान कर, उससे ही अपने पार्टके बारेमें पूछना चाहिये। और जो नास्तिक हैं उन्हें अपने अन्तःस्थित चैतन्य भाव जो इस विशाल प्रकृतिके सम्पर्कमें निरन्तर रहता है, अपने अभिनय-अंशके विषयमें पूछना चाहिये। यह विश्वास रखिये 'पूछनेपर ज़रूर जवाब मिलता है।' सिर्फ़ थोड़ेसी हौसलेकी ज़रूरत है। कभी कभी जवाब मिलनेमें तनिकसी देर हो जाती है और कभी आवाज धीमी होती है। मगर जवाब मिलेगा जरूर। आंपको अपना अभिनय-पार्ट पता चल जाएगा। अब आपका फ़र्ज़ होगा कि उसका खूब अभ्यास करें ताकि अदायगी ठीक ढंग से हो।

हम चाहते हैं, महाशयजी ! आप एक बार अपनी कुर्सीसे उठें। अपनी पसन्दका कोई काम संभालें। उसे पूरी कोशिशसे करें। और फिर देखिये जीवनमें स्फूर्ति और रस आता है या नहीं। पदार्थोंमें गरमी छुपी हैं। रगड़ चाहिये। जीवनमें रस भरा है। उसे प्याला लेकर पीने हीकी देरी है।

# शक्ति की उपासना

:लेखक—श्री पं० शिवदत्तजी शर्मा

आश्विन मास शक्तिकी उपासनाका है। भारतमें हिन्दू मात्र नवरात्रके नव दिन शक्तिकी भक्तिमें व्यतीत करेंगे। सहस्रों मनुष्य एक बार आहार या निराहार या फलाहार आदि करके उपवास करेंगे। भगवतीकी प्रसन्नतार्थ घर-घरमें पूजा-पाठ, हवन और ब्राह्मण भोजन होगा, पर इस उत्सवका उद्देश्य क्या है? उस तरफ लोगोंका बहुत कम ध्यान जाता होगा।

वास्तवमें प्रत्येक भारतीय स्त्री-पुरुषको वर्षमें दो बार यह चेतावनी दी जाती है कि वह अपनी शक्तियोंकी उन्नति, वृद्धि और रक्षा करनेमें सदैव सावधान रहे। क्योंकि जीवनका आनन्द तभीतक है जबतक शक्ति है। शक्ति-हीन होते ही जीवन पराधीन हो जाता है "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।"

हम संध्यामें नित्य प्रार्थना करते हैं; ॐ वाक्, वाक्, ॐ प्राणः प्राणः, ॐ चक्षुः चक्षुः इत्यादिका आशय यही है कि हम परमात्मासे नित्य प्रार्थना करते रहें कि हमारी वाक्शक्ति, प्राणशक्ति, दृष्टि-शक्ति सदा पवित्र और सुरक्षित रहे। वाक् वाक् दो बार कहनेका तात्पर्य यह होगा कि मुख दो काम देता है। (१) भोजन करना और (२) भाषण करना। हम दोनोंमें ही फेल हैं।

भोजनका धार्मिक भाग छोड़ दिया जाय तथापि आयुर्वेदकी आज्ञाओंका भी हम पालन नहीं करते। जहां अच्छा स्वादिष्ट भोजनका सुअवसर प्राप्त हुआ कि फिर 'किताब अकलकी ताकमें। जो धरी थी यों ही धरी रही।

भाषण करनेकी योग्यता तो हमें मुसलमान भाइयों से सीखना चाहिए। हमें तो भाषण करना आता ही नहीं; सत्य और प्रिय भाषण करना तो बड़ी दूरकी बात है।

यद्यपि हममें बड़ी-बड़ी शक्तियां हैं। विश्वनाथके साक्षात् दर्शन हो जाना और उनसे वार्तालाप हो जाना यही शक्तिकी चरम सीमा है। वहांतक तो कोई महा-भाग्यवान करोड़ोंमें एक ही पहुंच सकता हो, परन्तु जिन मामूली शक्तियोंका हमारे संसारी जीवनसे घनिष्टतम सम्बन्ध होता है उनसे भी हम महा गाफिल रहते हैं। यही कारण है कि हम और हमारा देश दिन दिन गिरते जा रहे हैं।

हम जानते हैं कि सत्य बोलना, व्यायाम करना, जप करना, हवन करना, दान करना आदि ऊँचे कल्याण करनेवाले काम हैं, पर हमसे होते नहीं। हम जानते हैं कि क्रोध करना, कटु भाषण करना, दूसरोंके दोष देखना, दूसरोंकी निन्दा करना ये सब पाप कर्म हैं, और दिन रात हमसे होते हैं। इसका क्या कारण है?

इसका कारण यह है कि हमारा अज्ञान बढ़ा हुआ है, और हम उसे ही ज्ञान मान रहे हैं। यह क्यों है? यही महामायाका खेल है। दुर्गा पाठमें लिखा है:—

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।

महामाया (मनुष्यों हीके नहीं) प्राणिमात्रके चित्त जबरदस्तीसे खेंचकर मोहकी ओर लगाती है। यही सृष्टि क्रमका नियम है।

तब इसका उपाय क्या है? इसका उपाय है नव-रात्रमें महामायाकी उपासना करना। उपासनासे क्या फल होता है वह निम्नलिखित श्लोकमें बतलाया गया है:—

दुर्गेस्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः,
स्वस्थैःस्मृता मतिमतीव शुभा ददासि ;
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या,
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्र चित्ता।

हे दुर्गे ! साधारण तौरसे ही जो तुम्हारा स्मरण करते हैं उन सब जीवोंके सब प्रकारके भयोंको तुम दूर कर देती हो और जो विधिपूर्वक भक्ति,-भाव के साथ तुम्हारी पूजा उपासना करते हैं उनकी बुद्धिको अत्यन्त शुद्ध, शुभ और तीव्र ( तेज ) कर देती हो। दरिद्रता, दुःख और भयोंको तुम्हारे सिवा और कौन दूर कर सकता है। सबका उपकार करनेके लिये आपका हृदय महा दयायुक्त है।

यह श्री भगवतीके पाठका एक श्लोक है। दुर्गा पाठके सात सौ श्लोक मंत्र माने गये हैं ; इसका अर्थ देखो। यह गायत्री मंत्रकी प्रतिमूर्ति ही है जिनके यज्ञोपवीत है, और जिनके नहीं है, सभीको इस मंत्र जपनेका अधिकार है ; क्योंकि सभी पुत्रोंको मा तो समान ही प्रेम करती है।

इस मंत्रके जपसे सर्वसिद्धि प्राप्त होती है, सर्व कार्य सिद्ध होते हैं। सायंकालको एकान्त रमणीक स्थानमें प्रशान्त चित्तसे केवल एक माला जप करनेसे वहुत ही अल्पकालमें सम्प्रज्ञात समाधि होने लगती है। एक माला एक घंटेमें पूरी होती है।

अगर नित्य जप नही कर सकते तो नव दिन ही करो। नव दिनका किया हुआ तुम्हारी बारह महीनेतक रक्षा करेगा। हो सके तो हवनके साथ करो, पर करो भगवतीके स्थानमें शुद्ध होकर। अथवा घरमें ही भगवतीका एक स्थान नियत कर लो। नियममें सर्वशक्ति है। नियम ही सर्वशक्तिमान है। नियमसे जो कुछ भी करो उसीमें सब कुछ प्राप्त हो जायगा। नियम-विहीन कोई कार्य कभी सिद्ध नहीं होगा।

शक्तिके तीन रूप हैं। महाकाली, महालक्ष्मी। महा सरस्वती।

तामसी शक्ति महाकाली है। राजसी महालक्ष्मी। सात्विकी महा सरस्वती। जीवनकी स्वतन्त्रता और पूर्णताके लिये विद्या, धन और बल तीनोंकी आवश्यकता है। पाश्चात्य जगत् केवल महाकाली और महालक्ष्मीकी उपासनामें रत हैं। महासरस्वतीकी उपासनाकी उपेक्षा कर रहा है। उसका जीवन संकटापन्न होनेका यही कारण है।

प्राचीन भारत महासरस्वतीका उपासक था।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्,
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावयेत्। मनु०

सुरक्षित ब्रह्मचर्यके साथ सब वेदोंको अथवा दो वेदोंका अथवा एक वेदको पूरा करके तब भारतीय युवक गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते थे, और तभी यह देश जगद्गुरुके पदपर प्रतिष्ठित था।

यदि भारत अपना पूर्व गौरव प्राप्त करना चाहता हो तो महासरस्वती रूपिणी शक्तिकी उपासना करे। उनकी उपासनासे महाकाली, महालक्ष्मी दोनों बहिनें साधक को सर्वसिद्धि स्वयं प्रसन्न होकर प्रदान करेंगी।

# समस्या

ले०—श्री अशोक आयुर्वेदालङ्कार

मार्ग गहन है, रास्ता संकड़।

एक छोटीसी पगदण्डी दूर अंतरिक्षके उस कोनेको चूमती हुई। अंधकार, घना अंधकार, हाथको हाथ नहीं सूझता, आगे बढ़ना कठिन है।

पगदण्डीके एक ओर है एक खड्ड, जिसमें कितने [illegible] पथिकोंके सिरमुण्ड पत्थर होकर पड़े हुए हैं।

देखने हीसे भय प्रतीत होता है। आकाश और पाताल-की गहराई, एक बार गिर जानेपर अवस्थितिका भय।

लेकिन नीचे सुदूर गहराईमें एक सुन्दर मन्दिर सोनेके कलशसे युक्त, अनेकों झरनोंसे शोभायमान, पथिकको आकर्षित करनेवाला।

दूसरी ओर है एक सरिता, जिसपर बिछी हुई चांदीकी एक श्वेत चादर-जल-जलमें हैं लहरें, लहरोंमें है चपलता, उन्मत्त सरिता दूर-दूर भागती चली जा रही है और उसमें बहनेवाले अनेकों पथिक; बहावसे आती हुई शीतल मन्द पवन पथिकके कानोंको संदेश सुना रही है। प्रतिक्षण प्रतीक्षित लहरोंका आलिंगन उसे बाधित कर रहा है। पथिक खड़ा है उसी छोटोसी संकीर्ण पगदण्डीके कोनेपर किंकर्तव्य विमूढ़ विचार मग्न-पूर्वमें उठता हुआ एक तूफान-तूफानमें सोती हुई आंधी—आंधीके साथ पत्थरोंकी बाढ़, अंधकार घना अंधकार, आगे रास्ता नहीं, पीछे लौटनेका अवकाश नहीं। दो ही उपाय है या तो नीचे उस खड्डमें स्थित स्वर्णमन्दिरकी ओर उतर जाए या उन लहरोंका निम-न्त्रण स्वीकार करे। दोनोंमें ही संशय है पथिककी रक्षाका।

क्षण प्रतिक्षण विचारोंका तूफ़ान अधिक—और अधिक बढ़ता जा रहा है। प्राचीसे उठता हुआ तूफ़ान पास आ गया, अब समय नहीं है विचारनेका। विशाल प्रस्तरखण्डोंके गिरनेकी आवाज़ दिलमें कपकपी पैदा कर रही है। पथिक नीचे बैठ जाता है उसी छोटीसी पगदण्डीसे चिपटकर—धुकधुकी बढ़ रही है। तूफ़ान आता है अपने दुगुने वेगके साथ – पत्थरोंकी वर्षा होती है, लेकिन पथिक लेटा है उसी तरह निश्चल ध्यानमग्न!

एक क्षण बाद—सहसा नभोमण्डलमें तारक छिटक जाते हैं—उसी प्राचीसे जहां कुछ क्षण पहिले एक बाढ़ सी उत्पन्न हुई थी, उदित होता है खिलखिलाता है चन्द्रमा—शीतल पवन चलने लगती है - चारों ओर प्रकाश —प्रकाश पथिक आश्चर्य चकित! कहां एक क्षण पहले प्रस्तर वर्षा हो रही थी लेकिन इस दूसरे क्षण एक भी पत्थरका चिह्न नहीं कहां कल्पनातीत कर्णभेदी कटु निनाद, कहां आंखोंको काटनेवाला अंधकार, आश्चर्य, विस्मय, पथिक उसी क्षण उसी आलोकमें, उसी छोटीसी पगदण्डीपर आगे चल पड़ता हैं, न जाने अगले क्षण क्या हो?

# श्रीरामजीके आदर्श जीवनसे शिक्षाएँ

ले०—प्र० स्ना० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि-सभा, देहली

श्रीरामचन्द्रजीको मर्यादापुरुषोत्तमके नामसे पुकारा जाता है, जिसका अभिप्राय यह है कि उन्होंने उत्तम पुरुषका आदर्श प्रत्येक रूपमें जनताके सामने अपने पवित्र जीवन द्वारा रखा। वाल्मीकि-रामायण-के प्रारम्भमें (बालकाण्ड-प्रथम सर्गमें) वर्णन है कि तपस्वी वाल्मिकि ने मुनिश्रेष्ठ नारदसे, जो तप और स्वाध्यायमें तत्पर थे, यह प्रश्न किया।

कोन्व स्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान्, कश्चवीर्यवान्,
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च, सत्यवाक्यो दृढव्रतः।
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च, कश्चैकप्रियदर्शनः।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं, परं कौतूहलं हि मे,
महर्षे त्वं समर्थोऽसि, ज्ञातुमेवंविधं नरम्॥

अर्थात् अब इस लोकमें गुणी, वीर, धर्मको जानने

वाला, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़ व्रतवाला, सदाचारी, सब प्राणियोंका हित करनेवाला, विद्वान्, सामर्थ्यशाली, प्रिय दर्शनोंवाला कौन है ? यह जाननेके लिये मैं उत्सुक हूं। हे महर्षे ! आप ही ऐसे मनुष्यको भलीभांति जान सकते हैं।

वाल्मीकि मुनिके इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीनारदजीने कहा है कि ये सारे गुण किसी एक व्यक्तिमें मिलने बड़े कठिन हैं; तो भी इक्ष्वाकु-वंशीय श्रीरामचन्द्रजीके अन्दर ये सब गुण पाये जाते हैं।

"बहवो दुर्लभाश्चैव, ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा, तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।
इक्ष्वाकुवंश-प्रभवो रामो नाम गुणैः श्रुतः।

यह कहकर महर्षि नारदने श्रीरामजीके जिन गुणोंका वर्णन किया है उनमेंसे विस्तार-भयसे केवल कुछका ही यहां उल्लेख करना पर्याप्त होगा।

नियतात्मा महावीर्यो, द्युतिमान् धृतिमान् वशी।
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी, श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च, प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः, शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥
रक्षिता जीवलोकस्य, धर्मस्यपरि रक्षिता॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य, स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदाङ्ग-तत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥
सर्व-शास्त्रार्थ-तत्त्वज्ञः, स्मृतिमान्, प्रतिभानवान्॥
सर्वलोकप्रियः साधुः अदीनात्मा विचक्षणः॥
आर्यः सर्वसमश्चैव, सदैव प्रियदर्शनः॥
स च सर्वगुणोपेतः, कौसल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये, धैर्ये च हिमवानिव॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये, सोमवत् प्रियदर्शनः।
धनदेन समस्त्यागे, सत्ये धर्म इवापरः॥

इन श्लोकोंमें बतलाया गया हैं कि श्रीराम जितेन्द्रिय, संयमी, महावीर, धैर्यधारी, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, प्रभावशाली वक्ता, शत्रुनाशक, धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, प्रजाजनोंके हित करनेमें सर्वदा तत्पर; यशस्वी, ज्ञानी, पवित्र, अपने धर्म तथा सब प्राणिोंकी रक्षा करनेवाले, वेद-वेदाङ्ग, और धनुर्वेदके रहस्यको समझनेवाले, सब शास्त्रोंके तत्त्वको भलीभांति जाननेवाले, सबको समान तौरसे देखनेवाले, सबके प्रेमपात्र, सच्चे आर्य (श्रेष्ठ) महानुभाव थे। वे गम्भीरतामें समुद्रकी तरह थे, धैर्यमें हिमालय पर्वतके समान थे, बल और तेजमें सूर्यके समान, प्रियदर्शनमें चन्द्रमाके समान, त्याग वा दानशीलतामें कुबेरके समान और सत्यमें मानो स्वयं धर्म-रूप ही थे। इस प्रकार वे वस्तुतः सर्वगुण-सम्पन्न मर्यादापुरुषोत्तम थे ; ऐसा उस वर्णनके पढ़नेसे स्पष्ट ज्ञात होता है।

वाल्मीकि-रामायणके अयोध्याकाण्ड-सर्ग २ में उस समयके महात्माओंने २६ से ५४ तकके श्लोकोंमें श्रीरामके उपर्युक्त गुणोंका ही दूसरे शब्दोंमें बड़ा सुन्दर वर्णन किया है ; उनमेंसे निम्नलिखित ३-४ श्लोकोंका उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता हैं, जिनमें श्रीराम का प्रजाके प्रति प्रेम और सहानुभूति आदिका वर्णन है :—

मृदुश्च स्थिरचित्तश्च, सदाभव्योऽनसूयकः।
प्रियवादी च भूतानां, सत्यवादी च राघवः॥
पौरान् स्वजनवन्नित्यं, कुशलं परिपृच्छति।
व्यसनेषु मनुष्याणां, भृशं भवति दुःखितः।
उत्सवेषु च सर्वेषु, पितेव परितुष्यति।
दान्तैः सर्व-प्रजाकान्तैः, प्रीतिसंजननैर्नृणाम्।
गुणैर्विरोचते रामो, दीप्तः सूर्य इवांशुभिः॥

अर्थात् श्रीराम कोमलस्वभाव, स्थिर चित्त, सदा उत्तम भावयुक्त, ईर्ष्या न करनेवाले, सदा प्रिय और सत्य वचन बोलने वाले हैं। वे सब पुरवासियोंसे अपने सम्बन्धियोंकी तरह कुशल पूछते हैं, उनके दुःख-में अत्यन्त दुःखित और उनके उत्सवोंमें पिताकी तरह प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार सारी प्रजाको प्रसन्न करने

वाले मनोहर गुणोंसे वे ऐसे शोभायमान हैं जैसे किरणोंसे सूर्य। सर्वसाधारणके लिये श्रीरामके इन सब उपर्युक्त गुणोंको धारण करना सम्भव नहीं है; तथापि उनके पवित्र जीवनको अपना आदर्श बनाकर हम जितना भी उनका अनुसरण करेंगे उतना ही हमरा कल्याण होगा। इस दृष्टिसे उनके जीवनसे जो शिक्षाएं हमें मिल सकती हैं उनमेंसे कुछ का नीचे उल्लेख किया जाता है।

(१) श्रीरामचन्द्रजीका एक बड़ा भारी गुण सत्यनिष्ठताका था। वे मन-वचन-कर्मसे सत्यके व्रतका पालन करते थे; जैसा कि 'सत्यसन्धः' 'सत्यवाक्यः', 'सत्ये धर्म इवापरः' इत्यादि शब्दों द्वारा ऊपर उद्धृत श्लोकोंमें बार-बार बताया गया है। श्रीरामकी अपने विषयमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण उक्ति कैकेयीके प्रति पाई जाती है कि 'करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते।' (अयो० १८-३०) अर्थात् मैं जैसी प्रतिज्ञा करता हूं, वैसा ही अवश्य करूंगा; क्योंकि मैं अपने वचनका पालन अवश्य ही करता हूं। श्रीसीतादेवीने श्रीरामके इस प्रधान गुणका अरण्य-काण्डमें निम्नस्थ वाक्य द्वारा प्रतिपादन किया है।

**'मिथ्या वाक्यं न ते भूतं, न भविष्यति राघव।'**

**अर्थात् आपने न झूठ अबतक कभी बोला है और** न आगे बोलेंगे। वस्तुतः पिताके सत्यकी रक्षाके लिये श्रीरामने १४ वर्षोंतक अरण्यके घोर कष्टोंको सहर्ष सहन करना स्वीकार किया; यह बात रामायणके पढ़नेसे स्पष्ट ज्ञात होती है। कैकेयीने महाराज दशरथसे अपने दो वरोंकी स्वीकृतिकी प्रार्थना सत्यके ही नाम पर की थी।

'सत्यमेवाक्षमा वेदाः, सत्येनावाप्यते परम्।
सत्यं समनुवर्तस्व यदि धर्मे धृता मतिः॥

(अयोध्याकाण्ड १४-८) श्रीरामसे भी अपनेपितासे ये वर दिलानेके लिये पुनः सत्यका ही नाम लिया था।

एतत्कुरु नरेन्द्रस्य वचनं रघुनन्दन।
सत्येन महता राम तारयस्व नरेश्वरम्॥
(अयो० १८-४०)।

इसी सत्यके रक्षार्थ श्रीरामने १४ वर्ष अरण्यवास स्वीकार किया जैसे कि :—

'ऐश्वर्यस्य रसज्ञः सन्, कामानां चाकरो महान्।
नेच्छत्येवानृतं कर्तुं, वचनं धर्म-गौरवात्।

इत्यादि वाल्मीकि-रामायणके शब्दोंसे सिद्ध होता है। हमें भी श्रीरामकी तरह सत्यनिष्ठ होना चाहिये।

(२) श्रीरामचन्द्रजीके अन्दर कितनी धीरता थी यह इस घटनासे स्पष्ट ज्ञात होता है कि राज्याभिषेकके स्थानपर जब कैकेयीने उनके आगे १४ वर्ष जंगलमें रहनेका प्रस्ताव किया है तो उन्हें ज़रा भी घबराहट नहीं हुई। रामायण-अयोध्याकाण्ड १९-१ में लिखा है—

'तदप्रियममित्रघ्नो वचनं मरणोपमम्।
श्रुत्वा न विव्यथे रामः कैकेयीं चेदमब्रवीत्॥

अर्थात् मृत्युके सदृश कैकेयीके इस कठोर वचनको सुनकर भी श्रीरामको कुछ दुःख न हुआ। अ० काण्ड २६।३३ में भी यही बात फिर दोहराई गई है :—

'न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव, लक्ष्यते चित्तविक्रिया॥

अर्थात् वनमें जानेकी इच्छासे पृथिवीके राज्यका त्याग करते हुए श्रीरामके चित्तमें कुछ भी विकार प्रतीत नहीं होता; इत्यादि। ऐसी धीरताको हम सबको अपने अन्दर धारण करना चाहिये तभी हम सामाजिक और राष्ट्रीय सेवाकार्य करनेके योग्य बन सकेंगे।

(३) श्रीराम मातापिता और गुरुजनोंके प्रति बड़े ही विनीत और आज्ञाकारी थे। उनके अन्दर अद्भुत गुणोंका भण्डार होनेपर भी, जिनका रामायणमें अनेक स्थानोंपर वर्णन है, ज़रा भी अभिमान न था। ऐसी निरभिमानिता और विनयको हमें भी अपने अन्दर धारण करना चाहिये तथा गुरुजनोंकी धर्म

आज्ञाओंका तत्परता से पालन करना चाहिये।

(४) श्रीरामका भ्रातृप्रेम भी अनुकरणीय था। भरत जीके लिये राज्यका परित्याग करनेमें ज़रा भी संकोच न किया। लक्ष्मणको वे प्राणोंके समान प्रिय समझते थे। दुर्भाग्यसे आज ऐसा भ्रातृप्रेम बड़ा दुर्लभ हो गया है। अनेक स्थानोंपर भाई, भाईका गला काटने तकमें संकोच नहीं करते।

(५) श्रीरामचन्द्रजीका अपनी धर्मपत्नी श्रीसीता-देवीजीके साथ विशुद्ध प्रेम गृहस्थोंके लिये अनुकरणीय और आदर्शरूप है।

'अन्तर्गतमपि व्यक्तम्, आख्याति हृदयं हृदा।
नेदानीं त्वदृते सीते, स्वर्गोऽपि मम रोचते।'

इत्यादि सैकड़ों श्लोकों द्वारा रामायणमें श्रीराम-का पत्नीप्रेम सूचित किया गया है। राज्यत्यागपर भी जो श्रीराम ज़रा दुःखित न हुए थे, उन्हींका सीतादेवी के वियोगमें करुणाजनक क्रन्दन केवल उनके पत्नी-प्रेमका ही सूचक है। गृहस्थोंको श्रीराम जैसे एक पत्नीव्रत होना चाहिये। सीताके परित्यागकी कथा सर्वथा अमाननीय है। इसे अनेक प्रबल प्रमाणोंसे सिद्ध किया जा सकता है; किन्तु विस्तार-भयसे इस लेखको यहीं समाप्त किया जाता है।

# शान्तिका चश्मा अन्दर बहता है

तुम काश्मीर, दार्जिलिङ्ग, शिमला, आदि पर्वतीय स्थानोंकी सैर करने जाते हो। किसलिये? जल प्रपातों, रमणीय वनराजिओं, धवल गिरिशृङ्गों और चश्मोंका दर्शन करनेके लिए; पर क्या तुमने कभी अपने अन्दर भी झांक कर देखा है? तुमने अभीतक हृदयके गुप्त खज़ानेके दर्शन नहीं किए इसलिए इन रमणीय वस्तुओंको इतना अधिक महत्व देते हो। तुम्हारे अन्दर ही खुशी का चश्मा बहता है, तुम्हारे अन्दर ही हिमालयके समान महान् और उच्च विचार मौजूद हैं जिनके जागृत होते ही वसुधाका समस्त वैभव भी तुम्हें तुच्छ जान पड़ेगा। तुम्हारे अन्दर ही वह साहस, आत्मविश्वास और धैर्य मौजूद हैं, जो यदि पथमें हिमालय भी आ जाय, उसकी भी पसलियां चूर २ कर सकता है। अन्दरका म्यूज़ियम एक बार देखनेपर फिर तुम्हारी बाहिर निकलनेकी इच्छा नहीं होगी।

सच है, आनन्दका स्रोत अन्दरसे बाहिरकी ओर बहता है। संसारके समस्त आध्यात्मिक ग्रन्थों और सन्त महात्माओंका यही प्रमाणित कथन है।

—श्री लहरी।

# जीवनको उन्नत बनानेवाले हमारे कुछ प्रकाशन

## ( १ ) जीवन सौरभ—

प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि साधारण परिस्थितिमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको पढ़ें और अपनी सन्तानके हाथमें दें। मूल्य केवल ।-)।

## ( २ ) देशके नौनिहालोंसे—

नवयुवकों एवं छात्र तथा छात्राओंके लिये अनुपम उपहार। उन नवयुवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशकी आशा है, जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। मूल्य केवल -)

## ( ३ ) सदाचार का महत्व—

पुस्तकके सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय। सदाचार ही जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी कुञ्जी है इसको कौन नहीं जानता। पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हुए हैं तथा अपनी और देशकी हानि कर रहे हैं वह सर्व विदित है। जो भारत संसारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसलिये उसका पतन हो गया है। इस समय देशके युवकोंको सन्मार्गपर ले जानेकी आवश्यकता है। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। (मू)ल्य केवल -)

## ( ४ ) स्वास्थ्य-पत्र—

यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ रहना ही मृत्यु है तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक धनहीन स्वस्थ जीवन दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्ग-तुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुखपूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है। २०"×३०" साइजके इमिटेशन आर्ट पेपरपर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बंधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है, इसलिये कि यह एक स्थायी चीज हो जाता है। मूल्य केवल =)

## ( ५ ) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास—

स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है वह व्यर्थ ही जीवन-यापन करता है। जो देशके प्रति कुछ लाग नहीं करता वह पशु सदृश है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र-सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन तो अवश्य हुआ है, किन्तु संक्षेपमें, सबके योग्य सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल -)

## ( ६ ) कांग्रेस चार्ट—

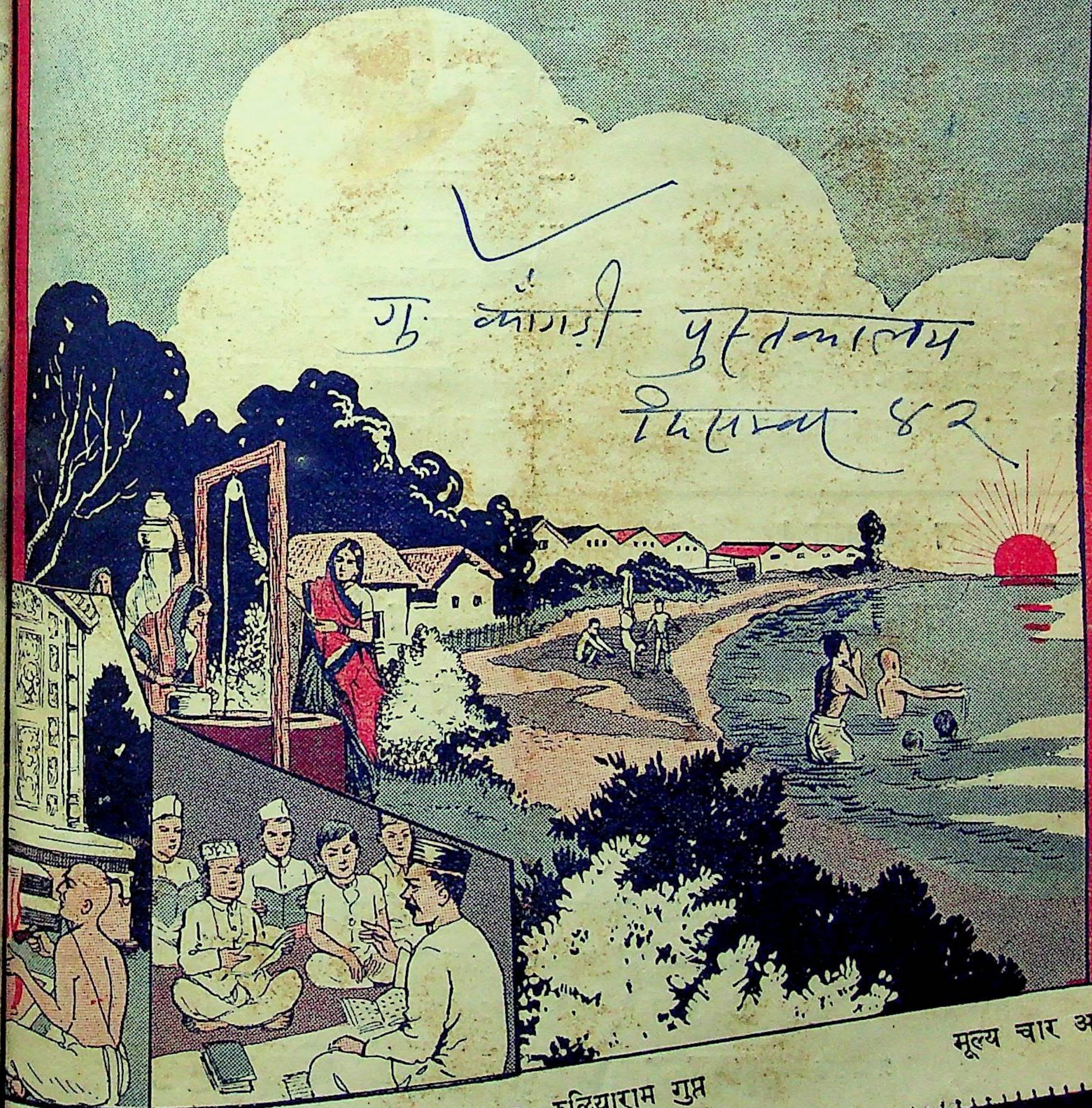
इसमें बड़े सुबोध और सरल ढङ्गसे कांग्रेसके जन्मकालसे लेकर अब तकके अधिवेशनोंका विवरण, सभापति स्थान, समयकी सूचना और उस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमिटेशन आर्ट पेपरपर साइज २०"×३०" दो रङ्गोंकी मनोहर, छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। **जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०,** "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

Regd. No. A 898

सत्वं सुखे सञ्जयति

# सात्विक जीवन



# विषय-सूची

विषय — लेखक


१—जीव-गीत ( कविता ) .... श्री गंगाप्रसाद "कौशल"
२—सम्पादकीय .... ...........
३—हिन्दूधर्म की महत्ता .... श्री अशोक आयुर्वेदालङ्कार
४—महाभाष्य और तत्कालीन सामाजिक अवस्था .... श्री डा० मङ्गलदेव शास्त्री
५—हिन्दूपतन का इतिहास .... श्री इन्दिरारमण शास्त्री
६—मानव ( कविता ) .... श्री रसिक
७—विचारों को उच्च बनाओ .... श्री लहरी
८—मनस्विता .... श्री धर्मपाल
९—मृत्यु-विज्ञान ... श्री गंगाप्रसाद गौड़ "नाहर"
१०—अभिशाप ( कहानी ) .... श्री अशोक आयुर्वेदालङ्कार
११—उस पार ( कविता ) .... श्री बाबूलाल दीक्षित "रसिक"
१२—कालिका का कोप ( कविता ) .... श्री गंगाप्रसाद गौड़ "नाहर"
१३—स्पर्धा और उसका घातक परिणाम .... श्री सुबोधचन्द्र शर्मा नूतन

संरक्षक— श्री मनसुखराय मोर

सर्वं सुखं सत्य याति

# सात्विक जीवन

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

वर्ष ३ } काशी—सौर अग्रहायण, १९९९ Benares—December 1942. { अङ्क ३

## जीव-गीत

रचयिता—श्री गंगाप्रसाद "कौशल"

आज बँधन तोड़ पाया,
द्वैत का पर्दा हटा जब, नव्य दिव्यालोक आया।
इस खुदी को खुद मिटाकर
बँधनों से मुक्ति पाकर
बन गया मैं वह कि जो है, कुछ नहीं अन्तर दिखाया।
मिट गया अस्तित्व मेरा
कौन मेरा, कौन तेरा,
एक ही हम एक ही, वह, एक ने जग को नचाया।
मैं अलोहित ब्रह्म अक्षर
तेज मेरा ही रहा भर
चर-अचर में, प्राणियों में, सृष्टि में है जगमगाया।
शुद्ध, छाया हीन हूँ मैं
पाप-पुण्य-विहीन हूँ मैं
विश्व को है जो भुलाती, वह हमारी एक माया।

# सम्पादकीय

## विश्वकी मुख्य समस्या

विश्वमें दुःख-निवृत्ति और सुख-शान्तिकी समस्या, न्यूनाधिक रूपसे, प्रायः सदैव जटिल रही है। बराबर इसके लिये व्यक्तियों, वर्गों और समाजोंके प्रयत्न, अपनी अपनी धारणा और मनोवृत्तिके अनुसार, होते आये हैं। इस प्रवृत्तिके कारण ही नाना जन-संघर्ष, वर्गयुद्ध और गृहकलह होते रहे हैं। वर्गोंकी उत्पत्ति और जाति, वर्ण, आश्रम आदिके रूपमें क्रमिक विकास भी दुःखनिवारण और सुख-शान्ति-प्रापणके लिये ही नैसर्गिक भावसे, स्वतः होते गये। एतदर्थ ही दुनियां-में नाना प्रकारकी सामाजिक व्यवस्थायें और शासन-पद्धतियां बनती तथा बिगड़ती आई हैं।

दुःखनिवृत्ति और सुखप्राप्तिके साधनोंमें सबसे प्रधानता, 'आहार' को मिली है। मनुष्यकी, और अन्य प्राणियोंकी भी, सारी प्रवृत्तियां 'आहार' के लिये हैं— "आहारार्था हि भूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः" 'वार्त्ता-(वृत्ति)-मूलो ह्ययं लोकः' "अन्नाद्भवन्ति भूतानि" "अन्नमयो ह्ययं पुरुषः' इत्यादि शास्त्र-वचनों का यही अभिप्राय स्पष्ट है। "भूखे भजन न होत गुआलू" "तनु बिनु वेद भजन नहिं बरना" इत्यादि सन्त-वाणियों से भी आहार का सर्वाधिक महत्त्व और उपा-देयत्व प्रकट होता है। इसी लिये "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं" कहा गया है। सुतरां यह स्वयं सिद्ध है कि अभ्युदय और निःश्रेयस, त्रिवर्ग वा चतुःपुरुषार्थ, दुःखनिवृत्ति और सुखप्राप्ति, इष्टलाभ और अनिष्ट-परिहार आदि सभी श्रेयों और प्रेयों के पहले, सब प्राणि-वर्ग —विशेषतः मनुष्य – 'आहार' चाहता है। 'आहार' की सुव्यवस्था होनेसे ही शरीरस्थिति होती और इसके द्वारा सभी पुरुषार्थों का योग-क्षेम किया जा सकता है ; यही सभी श्रेयों और प्रेयों का मूल है। महाभारत-अनुशासन-पर्व ( अ० ७७) में कथा है—

"प्रजाः सृजेति चादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ;
असृजद् वृत्तिमेवाग्रे प्रजानां हितकाम्यया।
यथा ह्यमृतमाश्रित्य, वर्त्तयन्ति दिवौकसः ;
तथा वृत्तिं समाश्रित्य वर्तयन्ति प्रजा विभो।
यज्ञैरवाप्यते सोमः, स च गोषु प्रतिष्ठितः ;
ततो देवाः प्रमोदन्ते ; पूर्वं वृत्तिः, ततः प्रजाः।
प्रजातान्येव भूतानि प्राक्रोशन्वृत्तिकांक्षया ;
वृत्तिदं चान्वपद्यन्त तृषिताः पितृ—मातृवत्।"

भगवान् स्वयंभू, ब्रह्मा ने जब दक्ष-प्रजापति को प्रजाओं की सृष्टि करने का आदेश दिया, तब उन्होंने प्राणियों की हित-कामना से, सब से पहले 'वृत्ति' ( जीविका, आहार ) को ही सिरजा ; क्योंकि जैसे अमृत के आधार पर स्वर्गवासी देवगण बरतते ( जीवन-निर्वाह करते ) हैं, वैसे ही 'वृत्ति' ( आहार ) के आश्रयसे भूलोकवासी प्रजा बरतती है। यज्ञ से 'सोम' प्राप्त होता है ; और वह ( सोम ) गौओं ( दुग्धादि आहार के अधिष्ठानों ) में प्रतिष्ठित है; उसके द्वारा देवगण प्रसन्न किये जाते हैं, इसलिये दक्ष ने पहले वृत्ति की सृष्टि, उसके बाद प्रजा की उत्पत्ति की।

भगवद्गीता के—

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि ; पर्जन्यादन्नसंभवः ;

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो ; यज्ञः कर्मसमुद्भवः" ( ३-१४ ) इत्यादि श्लोकोंका तात्पर्य भी ऐसा ही है। यह लोकप्रसिद्ध और सर्वप्रत्यक्ष ही है कि अपत्य-जन्मके पहले ही माताके स्तनोंमें शिशुके आहारकी सृष्टि हो जाती है। रात को सोकर उठने पर प्रातःकाल, जब कि प्राणियों का दैनन्दिन जन्म होना समझा जाता है, सभी लोग सबसे पहले आहारकी चिन्तामें लगते और दन्तधावन, स्नान, जलपानकी फिकर करते हैं ; उसके बाद कार्यान्तरमें प्रवृत्त होते हैं ; वह कार्य भी साक्षात् वा परम्परया, मुख्यतः प्रायः आहारार्थ ही होता है। इन सब बातोंका सारांश यही है कि 'आहार' ही प्राणियोंके जन्म-स्थेम-भङ्ग-का उपादान और जीवन-संग्राम का मुख्य कारण है।

आज तक मानव-समाज का जो कुछ विकास हुआ है, इसकी संस्कृतियों का जितना विस्तार-प्रस्तार हुआ है, और इसमें जो भी दोष वा गुण आये हैं, वे सब 'आहार' की खोज और तन्निमित्तक संघर्षसे उपनत हुए हैं।

जब मनुष्य का समाज नहीं बना था, तब यह पशुवत् 'समजों' वा टोलियों में रहता था, और अन्य अनेक वन्य जन्तुओं की तरह शिकारपर अपना आहार चलाता था। इस प्रकार अनायास-प्राप्य सहज मृगया-वृत्ति से आहार की सिद्धि होते रहने की स्थिति में मनुष्यों में वर्ग, जाति, वर्ण और समाजके बननेका, तथा इनकी सभ्यता, संस्कृति, विद्या, कला वा ज्ञान-विज्ञान के आविष्कार और विकाशका अवसर ही न था। जैसे जैसे वा ज्यों-ज्यों 'आहार' के विभिन्न साधनों की खोज होने लगी और वे प्राप्त होने लगे, त्यों-त्यों मनुष्यों में वर्गभेद-आदि-क्रम से सभ्यता और संस्कृति की उत्पत्ति तथा अभ्युन्नति होने लगी ; जिसका अति प्रवृद्ध रूप, वर्तमान मानव-समाज में देखा जा रहा है।

वन्यावस्थापन्न मनुष्यों को जब धान्यों का शोध लगा और उनका उपयोग-प्रयोग मालूम हो गया, तब उन्हें केवल मृगयोपजीवन की आवश्यकता नहीं रही ; साथ ही उनके शिकार के प्रतिभटों को मार डालनेका कोई कारण भी न रह गया। अतः जहाँ बलिष्ठ टोली-वाले लोग, पहले अपने शिकार की प्रतिद्वन्द्विता और बाधाको हटानेके लिये, तथा यदा-कदाचित् आहार के लिये भी, दूसरी टोली के आदमियों को पकड़ कर मार डाला करते थे, वहां अब उनको अपने खेती-बारी और गोचारण आदि आहार-साधन-कार्यों में लगाने लगे। वहीं से दास-प्रथा वा ग़ुलामी शुरू हुई और मालिकों एवं ग़ुलामों के दो वर्ग बन गये। उन्हीं वर्गों से पीछे धीरे-धीरे जाति, वर्ण, समाज, राज-संस्था आदि का उद्‌गम और नाना संस्कृतियों का विकास हो गया जिसका विराट् रूप वर्त्तमान विश्व में दृश्यमान है।

इस ऐतिहासिक दिग्दर्शन से सिर्फ़ इतना ही सूचित करना था कि 'आहार' के कारण ही विश्व का सब मानव-प्रपञ्च हुआ और बढ़ा है। पुरा-काल में मनुष्य, आहार के लिये ही जन्तुओं और मनुष्यों को मार डालता था। आज भी यह प्रथा वैसी ही वा उससे भी विकराल रूप में अनुवर्त्तमान हैं ; अन्तर इतना ही है कि उन दिनों दुर्बल आदमियों को मारकर बलिष्ठ लोग खा जाते थे ; ( अब तक अफ्रिका आदि में कुछ वन्य जातियां नर-मांस-भक्षण करती सुनी जाती हैं ) किन्तु आज़-काल प्रकारान्तरसे सबल लोग दुर्बलों को खाते हैं। मनुष्यों के आहारार्थिक 'मात्स्य न्याय' की पुराण-वार्ता प्रसिद्ध है ; महाभारत-शान्तिपर्व में उल्लेख है—

"जले मत्स्यानिवाऽभक्ष्यन्दुर्बलान्बलवत्तराः ;
परस्परं भक्षयन्तो मत्स्या इव जले कृशान्।"
"पशूनां वृषणं छित्वा, ततो भिन्दन्ति नस्तु तान्,
वहन्ति महतो भारान्, बध्नन्ति, दमयन्ति च,

हत्वा सत्त्वानि खादन्ति ; तान्कथं न विगर्हसे ?
मानुषा मानुषानेव दासभावेन भुञ्जते ;
वध-बन्ध-निरोधेन कारयन्ति दिवा-निशम् ;
आत्मनश्चाऽपि जानन्ति, यद् :खं वध-बन्धने ।"

जल में मछलियों की तरह, अधिक बलवान् लोग दुर्बलों को खाते हैं। जैसे पानी में बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को पकड़ कर खा जाती हैं, वैसे ही सबल लोग अबल आदमियों को खाते हैं ; इस प्रकार परस्पर (एक दूसरे) को भक्षते हुए 'मात्स्य न्याय' को चरितार्थ करते हैं। यह तो हुई मनुष्यों के आपस की बात ; इसके अलावा मनुष्य-प्राणी, अपने 'आहार' के लिये इतर जन्तुओं और पशुओं को कितना सताता, उनपर कैसा क्रूर अत्याचार करता है, यह तो आजकल भी इस महासभ्य जगत् में भी सर्वप्रत्यक्ष है। मनुष्य लोग घोर नृशंसता के साथ पशुओं के अण्डकोश को छेदकर, उनकी नाकों में भी भेदन करके 'नाथ' (मोटी, कड़ी बटी हुई रस्सी) पिन्हाते हैं ; फिर उनपर बड़े-बड़े बोझ लादते और ढोआते हैं ; उन्हें बांधते और उनका दमन भी करते हैं। मनुष्य-जन, अन्य प्राणियों की हत्या करके उनके मांस को खा जाते हैं ; और आपस में भी एक, दूसरे को (बलवत्तर लोग, दुर्बलों को) दास-भाव से (ग़ुलाम बनाकर) खाते हैं, और उनका वध, बन्धन और निरोध करके, उनसे दिन-रात अपने आहार-साधन के काम कराते हैं। तिसपर भी तुर्रा यह कि जो लोग, दूसरों द्वारा किये गये अपने वध-बन्धनों के दुःख को स्वयं जानते हैं, वे ही अन्य आदमियों और प्राणियों पर उपर्युक्त प्रकार से नाना घोर अत्याचार, क्रूर प्रहार, करते और अपनी आवश्यकता के अनुसार, निर्ममता तथा नृशंसता के साथ, या तो उनका भक्षण करते, अथवा अपने आहार-साधन के लिये उनसे जबर्दस्ती ग़ुलामी कराते हैं। वैसे लोग अपनेपर बीते हुए पर-कृत वध-बन्ध-दुःख को याद करके भी, "आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत्" इस सदुपदेश के अनुसार, आत्मौपम्यदृष्टिसे, दूसरों के साथ समात्मभाव से मानुष-बर्ताव-व्यवहार नहीं करते ; यह सबसे बड़े आश्चर्यकी बात है—"अहो मोह-महिमा बलवाना।"

पुराकाल में भी अपने आहार के लिये मनुष्यों ने पशुओं पर जो अत्याचार किये, उनका वर्णन, महाभारत-शान्ति-पर्व के २६२ वें अध्याय में यों मिलता है-

"अदंश-मशके देशे सुखसंवर्धितान्पशून्,
तांश्च मातुः प्रियाञ्जानन्नाक्रम्य बहुधा नराः,
बहुदंशाकुलान्देशान्नयन्ति बहुकर्दमान् ;
वाहसंपीडिना धुर्याः सीदन्त्यविधिना परे।
न मन्ये भ्रूणहत्याऽपि विशिष्टा तेन कर्मणा।
कृषिं साध्विति मन्यन्ते ; सा च वृत्तिः सुदारुणा;
भूमिं, भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम्।
तथैवाऽनडुहो युक्तान्समवेक्षस्व जाजले।
'अघ्न्या' इति गवां नाम ; क एता हन्तुमर्हति ?
महच्चकाराऽकुशलं वृषं, गां वाऽऽलभेत्तु यः।"

(पशु, दंश-मशक से रहित देशमें, सुखसे संवर्धित हो, स्वच्छन्द विहरते हैं ; उनको, यह जानते हुए भी कि वे अपनी माताओंके अत्यन्त प्रिय हैं, मनुष्य लोग नाना प्रकार आक्रमण द्वारा पकड़ के, बहुत दन्दशूकों (दंश-मशकादिदंशक जन्तुओं) से व्याप्त, बहुत पङ्किल (काँदोवाले) देशान्तरों में (मारकर खाने, खेती-बारी में काम लेने, दूध आदि निकालने, वा बेंच कर रुपया कमानेके लिये) बड़ी निर्दयता के साथ ले जाते वा पहुंचाते हैं। गाड़ीवानों के क्रूरतम, अत्याचार से अतितरां उत्पीड़ित, बैल, भैंसे, आदि दूसरे 'धूर्य' (गाड़ी खींचनेवाले) जानवर, प्रत्येक रास्तेमें पदे-पदे (पग-पग में) नितान्त सताये जाते हुए दीख पड़ते हैं। मैं (इस श्लोकका प्रवक्ता, तुलाधार), भ्रूण-हत्या (गर्भपात, वा ब्रह्मचारि-वध) को भी इस

निरीह-निरपराध-पशुशातनकर्म से अधिक क्रूर और नृशंस नहीं समझता हूं। कृषि-कर्म को लोग अच्छा मानते हैं; पर वह 'वृत्ति' (जीविका-कर्म) भी अत्यन्त कठोर है; क्योंकि खेत जोतते समय 'अयोमुख' (लोहे के मुखवाला) काष्ठ (हल), भूमिको चीड़ता और भू-जन्तुओं का नाश कर डालता है। साथ ही हलमें जुते हुए बैलोंकी दुर्दशा देखो। कहा तो यह जाता है कि गायोंका नाम 'अघ्न्या' है, अतः उन्हें कौन मार सकता है? परन्तु उनपर जो घोर अत्याचार होता है, वह किसीसे भी छिपा नहीं है। मृतवत्सा गोमाताओं के स्तनों से ख़ून तक दोह कर दूध निकालने की आसुरी 'फूँका' प्रथा द्वारा जिस नृशंसता से अकालमृत्युमयी गोहत्यायें होती हैं, उसे देख, कलेज़ा काँप उठता है। उस जन-वर्ग ने बड़ा ही बुरा काम किया, जिसने बैल और गाय को मारा।

श्रीकृष्ण-सहचर, साक्षात् 'नर' का अवतार, उपनिषद्-गौओं के गीता-दुग्धामृत का सुधी भोक्ता, आर्य-राजर्षि वंश का महापुरुष, पण्डित-प्रकाण्ड अर्जुन ने भी 'आहार' के लिये बलवत्तर प्राणियों द्वारा दुर्बल प्राणियों के भक्षण का समर्थन बड़ी आरभटी से किया है; महाभारत-शान्तिपर्व के १५ वें अध्याय में उनका कथन है—

"न हि पश्यामि जीवन्तं लोके कञ्चिदहिंसया ;
सत्त्वैः सत्त्वा हि जीवन्ति दुर्बलैर्बलवत्तराः।
प्राणस्यान्नमिदं सर्वं जङ्गमं स्थावरं च यत् ;
विना वधं न कुर्वन्ति तापसाः प्राणयापनम्।
उदके वहवः प्राणाः, पृथिव्यां च फलेषु च,
न च कश्चिन्न तान् हन्ति ; किमन्यत्प्राणयापनात् ?
भूमिं भित्त्वौषधीश्छित्त्वा वृक्षादीन् अण्डजान्पशून्
मनुष्यास्तन्वते यज्ञांस्ते स्वर्गं प्राप्नुवन्ति च।
यदीदं धर्मतो राज्यं विहितं यद्यधर्मतः,
कार्यस्तत्र न शोको वै ; भुङ्क्ष्व भोगान् यजस्व च।
अर्थे सर्वे समारम्भाः समायत्ता, न संशयः ;
स च दण्डे समायत्तः ; पश्य दण्डस्य गौरवम्।
लोकयात्रार्थमेवेह धर्मप्रवचनं कृतम् ;
अहिंसाऽसाधुहिंसेति श्रेयान्धर्मपरिग्रहः।
पशूनां वृषणं छित्त्वा, ततो भिन्दन्ति मस्तकं,
वहन्ति वहवो भारान् बध्नन्ति दमयन्ति च।
एवं पर्याकुले लोके वितथैर्जर्जरीकृते,
तैस्तैर्न्यायैर्महाराज, पुराणं धर्ममाचर।
मा च ते निघ्नतः शत्रून्मन्युर्भवतु पार्थिव,
न तत्र किल्बिषं किञ्चित्कर्तुर्भवति भारत।"

इन श्लोकों द्वारा महापण्डित आर्य-राजर्षिकुमार अर्जुन ने अपने 'धर्मराज' और 'अजातशत्रु' कहलाने-वाले बड़े भाई युधिष्ठिर को यह समझाने का प्रयत्न किया है कि "इस दुनियां में मैं किसी को भी अहिंसा से जीवित नहीं देखता हूं। सभी बलवत्तर प्राणी दूसरे दुर्बल प्राणियों से अपना जीवन चलाते हैं (या तो उनको मारकर खा डालते हैं; अथवा ग़ुलाम बना कर उनसे आहारार्थ अन्य काम लेते हैं)। यह सब दृश्यमान स्थावर और जङ्गम पदार्थ उत्तरोत्तर बलवानोंके प्राण का अन्न (खाद्य) है। प्राणि-वध के विना वानप्रस्थ लोग भी जीवन नहीं चलाते हैं। पानी में मत्स्य-प्रभृति बहुत से प्राण रहते हैं; ऐसे ही पृथिवी पर पशु आदि और फलों में भी अनुद्बुद्ध चेतन-रूप प्राण हैं। उन्हें कोई नहीं मारता, सो बात नहीं है (आहारार्थी लोग उन्हें मारते ही हैं) अन्यथा जीवन-निर्वाह के लिये कौन वस्तु है? भूमिको खोद, और ओषधियों, वृक्षों, अण्डजों, तथा पशुओं को काट कर मनुष्य लोग यज्ञ करते हैं और उस विकर्म से भी अपनी धारणा के अनुसार स्वर्ग पाते हैं। अतः चाहे यह राज्य आप (युधिष्ठिर) को धर्म से मिला है, अथवा अधर्म से, इस विषय में शोक करने की आवश्यकता नहीं; आप प्राणिहिंसामय भोगों को भोगो, और पशुबलिमय यज्ञों

का अनुष्ठान भी करो। अर्थ (आहारार्थ-वस्तु) में ही दुनियां के सब कार्य अधीन हैं, इसमें सन्देह नहीं, और वह (अर्थ), दण्ड से सिद्ध होता है; यह दण्ड का माहात्म्य देखो (और प्राणिदण्डन द्वारा अर्थ को प्राप्त करो)। आहारादि-द्वारा लोक-यात्रा (जीवन) को चलानेके लिये ही वेद-शास्त्रों में धर्म का प्रवचन (उपदेश) किया है; इसलिये 'असाधु' (असज्जन, अनार्य, बर्बर) लोगों की हत्या भी अहिंसा ही है; ऐसे धर्म का परिग्रह, श्रेयस्कर है। ऐसा धर्म, लोकाचरित भी है; क्योंकि बहुत लोग, पशुओं के अण्ड-कोश को छेदकर, खाने की इच्छा होने पर, उसके शिर को भी काट डालते हैं; और यदि भक्षण की ज़रूरत न हुई तो उनको बांधते, दबाते, और उनसे भार-वहन आदि काम लेते हैं। महाराज, जब कि इस प्रकार के वितथ न्याय से सारा लोक जर्जर और पर्याकुल हो उठा है, तब आप भी "लोकानुचरितं चर" "गतानुगतिको लोकः" "महाजनो येन गतः स पन्थाः" के न्याय से इस पुराण धर्म को ही अपनाओ। हे भारत, आपको शत्रुओं का हनन करने से कोई दोष नहीं लगा है; क्योंकि, शत्रुवध में कर्त्ता को पातक वा अपराध नहीं होता।"

अर्जुन ने, आहारार्थ ज्ञातिवध के शोक से विषण्ण, और विजित राज्य को छोड़, संन्यास लेनेके लिये तैयार, राजर्षि युधिष्ठिर को केवल शब्दों से ही उपर्युक्त बातें नहीं समझाईं; अपितु स्वयं उन्होंने चचेरे भाइयों और सगे सम्बन्धियों को मार कर उनको कार्यान्वित भी किया था। सभी जानते हैं कि महाभारत महायुद्ध 'आहार' की समस्या का हल करने के लिये ही हुआ था। जब दुर्योधन ने अन्ततः पाण्डवों-के पाँच गाँव की मांग को भी—'सूच्यग्रं न दास्यामि विना युद्धे न केशव" ऐसा कह कर ठुकरा दिया, तब युद्ध होना अपरिहार्य हो गया।

"कौड़ी-कारण लोभवश करहीं विप्र-गुरु घात" वाली साधु-सूक्ति की सत्यार्थता तो लोकप्रसिद्ध ही है, दुर्बल लोग भी कभी-कभी आहारार्थ अर्थलुण्ठन के लिये सबलों की भी, गुप्त रीति से, हत्या कर पाते हैं; पर, मात्स्यन्याय का साधारण नियम यही है कि बलवत्तर लोग ही दुर्बलों का भक्षण और शोषण करते हैं। इसमें भाई-बन्धु, कुटुम्ब-परिवार, ज्ञाति-सम्बन्धी, गुरु-पुरोहित आदि किसी का भी ख़याल और बचाव नहीं होता। यादवी, कुरु-पाण्डवी आदि युद्धक्रिया में यह घटना स्पष्टतर है। राज्य हथियाने के लिये बाप तक को मार डालनेवाले आततायी राज-वंश्यों की कथा से इतिहास भरा है। इतना ही नहीं, अकारण करुणामयी नैसर्गिक-वात्सल्यशालिनी मातायें भी आहार के लिये अपने बच्चे तक को (कभी कभी, घोर दुर्भिक्षके समय क्षुधोन्मत्त होने पर) मारती सुनी गई हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने ज्ञातिवध से विमुख अर्जुन को राज्यलाभद्वारा आहार-प्रद गृहयुद्ध में पुनः प्रवृत्त करनेके लिये, अष्टादश अध्याय की गीता का प्रवचन सुनाया और पेट के लिये ज्ञातिसंहार कराया। यहां तक तो ग़नीमत है, क्योंकि प्राणियों के—विशेषतः मनुष्यों के—उत्पत्ति-काल से ही आहारार्थ 'मात्स्यन्याय' चला आ रहा है; इससे, ऋषि, देव, और अवतार पुरुष भी सर्वथा नहीं बच पाये हैं। इसीलिये भगवान् मनु को भी यही कहना पड़ा कि—

"न मांस-भक्षणे दोषो, न मद्ये, न च मैथुने;
प्रवृत्तिरेषा भूतानां" (मनु० अ० ५, श्लो० ५६)

न तो मांस खाने में कोई दोष है, नहीं मदिरा पीने में, और न स्त्री-संभोग में ही, क्योंकि प्राणियों की यही नैसर्गिक प्रवृत्ति (स्वाभाविक धर्म) है।

परन्तु, सखेद आश्चर्य तो तब होता है, जब 'मात्स्यन्याय' को कार्यान्वित करनेके लिये, दुर्बलों को खा जाने के लिये, बलवत्तर लोग, शास्त्र, धर्म,

औचित्य और न्याय का बहाना लेते हैं। अर्जुन के ऊपर उद्धृत बचनों में बलवत्तरों द्वारा दुर्बल-भक्षण के लिये जो दलीलें दी गई हैं, उनमें—'अहिंसाऽसाधुहिंसेति श्रेयान् धर्मपरिग्रहः' (असाधुओं की हत्या भी अहिंसा ही है; इस धर्म को अपनाना श्रेयस्कर है) यही मुख्य है। यदि अर्जुन-प्रोक्त इस वचन का सत्यार्थ लिया जाय और सच-मुच मानव-समाज के असाधु-पुरुषों (आततायियों) का दमन, वध-बन्धन, और सर्वस्व-विनाश किया जाय, तो यह शान्तिमय सुधार के बाद का, दूसरे दर्जे का, सामाजिक-योग-क्षेम-साधन कहा जा सकता, और धर्मशास्त्र के अनुसार नहीं, तो दण्डनीतिसे इसकी कर्तव्यता उचित सिद्ध हो सकती है। परन्तु बलवत्तर लोग, ऐसे शास्त्र-वाक्यों का मनमाना अर्थ लगाते हैं, और शास्त्रार्थच्छल से स्वमनीषित 'मात्स्यन्याय' को वैध सिद्ध करके, विविध प्रकार से दुर्बलों का भक्षण करते हैं। यह बात अति प्राचीन इतिहास-कालसे आज तक अक्षुण्ण प्रतीत होती है।

जबसे ऐतिहासिक वाङ्मय का पता चलता है, तब से आज तक के मात्स्यन्याय की घटनाओं पर ध्यान दीजिये, और बलवत्तरों ने, विविध तरीक़े से, दुर्बलों को खा जाने के लिये, दास, दस्यु, अनार्य, शूद्र, म्लेच्छ, असुर, राक्षस, दैत्य, दानव, नीग्रो, हबशी, यहूदी, जङ्गली, काले आदि सङ्केतों से बहुसंख्यक नर-जातियों को परिभाषित करके, इन्हें जो सर्वशः असभ्य, असाधु, दुष्ट, दुष्कृत्, दुर्जन, और बर्बर घोषित किया है, उसे देखिये। यह सही है कि त्रिगुणात्मक विश्व में तामसादि-प्रकृति के आसुर और असाधु लोग भी बहुत होते हैं; पर किसी जाति के सभी लोग जन्म से ही आजीवन दुर्जन होकर नहीं आते; सब जातियों में दुर्जन और सज्जन व्यक्ति होते हैं। द्वितीय कक्षा में (सान्त्वमय सुधार-प्रयत्न से हीन कल्प, पक्ष वा श्रेणी में) यह भी ठीक हो सकता है कि दण्डप्रणयन द्वारा दुष्ट-निग्रह 'दुष्कृद्-विनाश' किया जाय; परन्तु यह बात विवेकिनी सद्बुद्धि में कथमपि उचित नहीं जँचती है कि कुछ जाति, वर्ग, सङ्घ, सम्प्रदाय और देश के सब लोग अशेषतः असभ्य, असाधु, बर्बर, अत एव सतत दमनार्ह ही माने जायं!

परन्तु विश्व के वरिष्ठम्मन्य बलवत्तर लोगों ने अपने मात्स्यन्याय के प्रयोग में 'असाधु' आदि शब्दोंका जो अर्थ लिया है, वह अवश्य ही उनके अपने मतलब का है, सच्छास्त्र के अनुकूल वा सद्बुद्धि के योग्य नहीं। उनका वैसा अर्थ, उस भेड़ियेके सदृश क्रूर मनोवृत्तिसे कल्पित होता है, जिसने एक निरीह मेमने (भेड़ के बच्चे) को मारकर खा जानेकी नीयत से, अपने को गाली देनेवाला, दुष्ट बतलाया, और मेमनेके यह कहने पर कि 'महाशय, आप जिस समयकी यह घटना (आपको मेरा गाली देना) बतलाते हैं, उस समय तो मेरा जन्म भी नहीं हुआ था, कहा कि यदि तू नहीं तो तेरे बापने, और यदि वह भी उस वक्त ज़िन्दा नहीं था, तो तेरे दादाने मेरे बापको गाली दी थी, अतः तुझे उसकी सज़ा देनी ही होगी। इसी प्रकार जब कोई बलवत्तर राष्ट्र या क़ौम, दुर्बल जातियों, वर्गों, और देशों को मार कर खाने, ग़ुलाम बनाने अथवा हड़प कर जानेकी आसुरी वितृष्णा करता है, तब वह उनको असाधु, असभ्य, बर्बर प्रसिद्ध कर के उनपर आक्रमण करने के लिये निर्दिष्ट 'भेड़िया-शास्त्रार्थ' का आश्रय लेता है। प्राचीनतम—वैदिक-काल में अपने को आर्य कहलानेवाले लोगों ने परम तपस्वी और निरीह यतियों को भी 'असाधु' कहा और उनके सरदार वा देव, इन्द्र ने यतिहत्या की; वह स्वयं बड़े गर्व से कहता है—"अहं००० यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छम्; ००० मे तत्र लोम च नामीयते" (कौषीतक्युप० अ० ३) '(इन्द्रः) यतीन् सालावृकेभ्यः प्रादात्; अरु-

मघान् (ब्राह्मणान्) अवधीत्" (ऐ० ब्रा० अ० ३५ खं० २) मैंने यतियों और 'अरुर्मघ' जाति के ब्राह्मणों को मार कर जङ्गली कुत्तों के खाने को डाल दिया ; फिर भी इस (नृशंस) कर्म से मेरा बाल भी बाँका न हुआ— "लोम च नामीयंत।"

उन बेचारे यतियों और मघ-ब्राह्मणों का अपराध यही होगा कि वे लोग इन्द्र के अनुयायिवर्ग आर्यों की ग़ुलामी स्वीकार कर उनकी खेती-बारी में काम करने से नकार दिया होगा। जिस रामराज्य की भूरि प्रशंसा और चाह होती है, उसके मर्यादा पुरुषोत्तम, ईश्वरावतार माने हुए, राजा से तत्कालीन ब्राह्मणों ने एक ऐसे साधु पुरुष का वध कराया, जिसका अपराध इतना ही था कि वह शूद्र-कुल का होकर भी तपस्या कर रहा था। श्रीरामचन्द्र से उसे मरवा डालनेके लिये जो षड्यन्त्र रचा गया, उसमें राजदोष को ही अपनी स्वाभाविक मौत से मरे हुए एक ब्राह्मण-पुत्र की मृत्युका कारण, बतलाया गया, और उसके लिये राजा को ही उत्तरदायी तथा अपराधी ठहरा कर, ब्रह्महत्या लगने का भय दिखलाया और धमकाया गया ; जिससे रामचन्द्र ऐसे मर्यादापुरुषोत्तम को भी सर्वथा निर्दोष शूद्र तापस शम्बूक का वध करना पड़ा। पर, उस घटना का वास्तविक रहस्य और कारण, तब स्पष्टतर प्रतीत होता है, जब नारद ऐसे देवर्षि का यह वाक्य पढ़ा जाता है—

"त्रेतायुगे च वर्तन्ते ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्च ये,
तपोऽतप्यन्त ते सर्वे; शुश्रूषामपरे जनाः।
स धर्मः परमस्तेषां वैश्य-शूद्रं समागतं ;
पूजां च सर्ववर्णानां शूद्राश्चकुर्विशेषतः।"
(वा० रा० उत्तरकां०, स० ७४)

इस नारद वाक्य से सुस्पष्ट है कि त्रेतायुग में ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग ही, सुखावकाश में रहने के कारण, तप और धर्म-कर्म का अधिकार स्वयं अपने लिये ही सुरक्षित रखना चाहते थे ; और वैश्य तथा शूद्र से अपनी सेवा-शुश्रूषा, दासता वा ग़ुलामी, कराते रहना चाहते थे; वे समझते थे कि यदि वैश्य और शूद्र भी काम छोड़ कर तपश्चर्या करने लगेंगे तो हमारी पेटपूजा और खेती-बारी के काम चौपट हो जायंगे, अथवा स्वयं ही वे 'कष्ट कर्म' करने पड़ेंगे ; इसलिये दूसरों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ानेवाले बलवत्तर लोगों ने दुर्बलों को सदा अपने ग़ुलाम बनाये रखनेके उद्देश्य से शूद्रादि को बराबर दबाये रखने के लिये शम्बूक-प्रभृति की कथा ऐसी बातों की कल्पना की; वस्तुतः भगवान् राम ऐसे, निषाद, शबर, गृध्र, वानर-भालू और राक्षस तक को समात्मभाव से गले लगाने-वाले, मर्यादापुरुषोत्तम से तापसवध के सदृश जघन्य काम होना विश्वसनीय नहीं है। फिर भी बलवत्तरों के मात्स्यन्याय की बात तो सर्वथा सही है, और बड़े-बड़े लोग, अवतारपुरुष कहे जानेवाले भी, उसे कार्यान्वित करते आये हैं। यही कारण है कि वरिष्ठम्मन्य बल-वत्तर लोगों ने जिस क़ौम, वर्ग वा सम्प्रदाय को मार कर खाना, अथवा अपने आहार-साधन के दूसरे कामों में लगाने के लिये ग़ुलाम बनाना चाहा, उसे असभ्य, वन्य, अनार्य वर्बर आदि कहना शुरू कर दिया, और उसी व्याज से आक्रमण करके उसे मार डाला वा ग़ुलाम बना कर रक्खा। ऊपर कही गई अर्जुन की बातों में भी 'असाधु' शब्द का अर्थ, मात्स्य-न्यायियों के अपने मतलब का ही है ; अन्यथा स्वयं अर्जुन ने जिन 'असाधुओं' की हत्या करके आहारार्थ राज्य प्राप्त किया, उनमें द्रोण और भीष्म के सदृश महात्मा भी थे, जिनको सच्चे अर्थ में 'असाधु' कहना, स्यात् अर्जुन के लिये भी संभव नहीं था। यही कारण है कि पहले, महानुभाव गुरुओंकी हत्या कर उनके ख़ून से सराबोर हुए भोगों को भोगने की कल्पना से ही

( शेषांश १७ वें पृष्ठ पर देखिये )

# हिन्दूधर्म की महत्ता

ले०—श्री अशोक आयुर्वेदालङ्कार

प्रत्येक धर्म वा जातिका एक ऐसा आधार होता है जो उसके जीवनका केन्द्र माना जा सकता है ; इसी केन्द्र बिन्दुपर उस जातिकी जातीयता—जिसके विकसित रहनेपर जातिका भविष्य बनता है और जिसके ह्राससे जातियां नष्ट हो जाती हैं —स्थापित होती है। हमारे इस प्राचीन हिन्दू धर्मकी छाती पर, हमारी इस पुण्यभूमिपर हजारों वर्षोंसे विदेशी आक्रमणकारी मूंग दलनेका प्रयत्न करते रहे हैं, कितनी ही आंधियां पश्चिमी सीमासे उठीं, भारतभूमिमें तूफ़ानकी तरह फैल गईं—कितनी ही बार मोहम्मदी मदांधोंके "अल्ला हो अकबर" के नादसे समस्त आर्यावर्त गूँज उठा—इस पुण्यभूमिपर कितनी ही बार रुधिरकी नदियां बहाई गईं—अत्याचार, अन्याय और अनाचारने कितनी ही बार बढ़-बढ़ कर खेल खेले, कितनी ही बार हिन्दू धर्मकी आधारशिलापर चोटें लगाई गईं। कितनी ही बार इस पुण्यधर्मके अनुयायियोंको ज़िन्दा भूखे शेरोंके सामने डाल दिया गया, कितनी बार उन्हें जलती जलती भट्टियोंमें भूना गया—बालक हकीकत और गुरु गोविन्द सिंहके पुत्रोंकी भांति कितनी बार इस जातिके निरीह बच्चोंको ज़िन्दा मौतके घाट उतार दिया गया—वे लोमहर्षी यातनायें, वे कंपा देनेवाले अत्याचार—जिन्हें आजका सभ्य समाज सुनकर आश्चर्यसे विश्वास नहीं करता, इस जातिके नौनिहालों पर किये गए ; लेकिन इतने प्रचण्ड झंझावात, तूफ़ान और अंधड़के बाद भी, आज भी इस जातिकी स्थिति उसी प्रकार स्थिर है—उसी प्रकार अविचल है—यह उस धर्म की, उस जातिकी महत्ताका सूचक है। बालूकी भित्तिपर खड़ा किया गया मकान एक दो बार की आंधियोंके बाद गिर जाता है, साधारणसी वर्षा उसे बहा ले जाती है। संसारका इतिहास जानता है कि कितनी ही संस्कृतियां उठीं, कितनी ही जातियोंने जन्म लिया, कितने ही धर्मोंका संस्थापन हुआ, किन्तु सवाल यह है, कि वे कितने दिन इस संसारके रंगमंचपर अभिनय कर सकीं ? समय आया कि उनके अनुयायियोंमें विचारोंका संघर्ष उठा—वह तूफ़ान उठा कि संस्कृतियांकी संस्कृतियां, धर्मके धर्म नष्टभ्रष्ट हो गए क्योंकि वह आदर्श जिनपर जातियोंकी बुनियाद रखी जाती है—वह सिद्धान्त जो जातिके मकानमें सीमेण्टका काम देते हैं—दुर्भाग्यवश उनके संचालकोंको ज्ञात न थे। वे भौतिकवादके उस सिद्धान्तको लेकर चले जिनका विनाश अवश्यम्भावी था, लेकिन आर्यसंस्कृति, हिन्दूधर्म उन पवित्र सिद्धान्तोंके साथ प्रारम्भ हुआ जो जातिके लिए आभूषण रूप होते हैं। इस धर्मकी स्थापना सृष्टिके प्रारम्भमें उन वन्दनीय पुरुषोंने की जो मंत्रद्रष्टा थे, संसारके भोगविलास एवं आकर्षणसे दूर अन्तश्चक्षु होकर वास्तविकताका अनुभव करनेका प्रयत्न करते थे। जिनके मतमें मनुष्य एक matter न होकर आत्मा या spirit का एक ऐसा सुरक्षित खज़ाना था जो शरीरके बक्समें बन्द है, इसलिये वे दूसरी संस्कृतियोंकी तरह शरीरकी पूजामें ही समय न खराब कर उसके अन्तःस्थित आत्मा एवं परमात्माका साक्षात्कार करनेका प्रयत्न करते थे। जहां पहिली शिक्षा विनाशकी ओर ले जाती थी, संसारके रचयिताके इस भरेपूरे गुंजान उपवनको तहस नहस करनेको प्रेरित करती थी, वहाँ दूसरी शिक्षा उस ज्ञानको सिखाती थी, जिससे जीवनका उद्देश्य पूरा होता था,

जिसका उद्देश्य सांसारिक भौतिकतामें न फँसकर विनाश एवं कलहमें समय न खराब कर संसारको वास्तविकताका दिव्य पाठ पढ़ाना था—यही कारण है कि उत्तुङ्ग हिमाचलकी पर्वतश्रृङ्खलाओंसे करोड़ों वर्ष पहिलेकी लाई हुई हिन्दू-धर्मकी जो अग्निशिखा आर्यावर्तमें स्थापित की गई वह वहां आज भी उसी रूपसे प्रज्वलित है जिसके प्रकाशमें सम्पूर्ण संसार उन्नति एवं समृद्धिका सुखसन्देश पा सकता है। संसारकी समृद्धि, सभ्यता, ज्ञान एवं उन्नतिमें इस धर्मका सदा महत्व रहा है। हिमाचलकी चोटियोंसे बहती हवाओंमें, पुण्यतोया नदियोंसे प्रवहमान पवनोंमें सभ्यताका जो प्रवाह उठा, वह सम्पूर्ण भूखण्डमें व्याप्त हो गया, उदित होते हुए सूर्यके साथ भारतीय ज्ञानका जो प्रकाश चमका वह सम्पूर्ण संसारमें फैल गया, यह सब उस आदि धर्मके गौरवका सूचक है।

हिन्दूधर्म सृष्टिके आदि धर्मोंमें सबसे प्राचीन है, यह वह धर्म है जिसे देवताओंने अपने शुभ आशीर्वादों से और ऋषियोंने अथक प्रयाससे सींचकर इतना पल्लवित किया है। इस धर्मके माननेवालोंको 'हिन्दू" नामसे कहा जाता है। बहुत प्राचीन कालमें सिंधु दरियाके तटपर रहनेवाले लोगोंको इस नामसे कहा जाता था, लेकिन ज्यों-ज्यों यह धर्म अधिक व्यापक रूप धारण करता गया और इस सम्पूर्ण देशका नाम आर्यावर्त रखा गया त्यों-त्यों इसकी परिभाषा भी बदलती गई। हूण और कुशाण आदि जातियोंके भारतमें आ बसनेके समय सम्पूर्ण भारतवासियोंको जो इस धर्मके सिद्धान्तोंको वा इसके अवान्तर भेदोंको मानते थे—हिन्दू नामसे कहा जाता था। उसके बाद जब भारतवर्षमें पश्चिमी सभ्यताका प्रकाश फैला व लोग बाहिर विदेशोंमें जाकर भारतीय संस्कृति व धर्मका प्रचार करने लगे, तो इन हजारों व्यक्तियोंको भी हिन्दुधर्ममें शामिल किये रखनेके लिए वीर सावरकर आदिने हिन्दुत्वकी उस पुरानी परिभाषामें परिवर्तन कर दिया और अब "आसिन्धोः सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका। पितृभूःपुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः।" वाक्यसे समुद्रके एक छोरसे दूसरे छोर तक रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति जो भारतवर्षको अपनी पितृभूमि व पुण्यभूमि समझता है वा उसकी रक्षाकी खातिर अपने प्राणोंकी बाज़ी लगानेको तैयार है—वह हिन्दू है। इस प्रकार हिन्दुधर्म आज एक सीमित प्रदेशमें न रहकर एक व्यापक धर्म बन गया है। आज भी जावा और सुमात्रामें—अफ्रिका और अमेरिकाके सुदूर रेगिस्तानोंमें अनेकों भारतीय उस संस्कृतिका झण्डा ऊँचा किये हुए हैं। अस्तु :—

हिन्दू धर्मकी विशेषता जाननेके लिये हमें धर्मके दोनों रूपोंकी उत्कृष्टता—धार्मिक व सामाजिक प्रगति पर ध्यान देना ज़रूरी है। धर्म रूपी रथके ये दोनों चक्र हैं—धर्मरूपी देवीकी ये दोनों भुजाएँ हैं जिनके सुचारु रूपसे कार्य करनेपर ही धर्मकी स्थिति कायम रह सकती है। सबसे पहिले यहाँ हम हिन्दूधर्मकी धार्मिक भावनाओं पर विचार करते हैं।

हिन्दुधर्मकी यह विशेषता है कि इसके अधिकांश अनुयायी परमात्मापर विश्वास करते हैं। उस परमात्मा पर जो इस सम्पूर्ण संसारको चला रहा है, जिसने इस अखिल विश्वको बनाया है। यह दूसरी बात है कि उस परम शक्तिको माननेका प्रकार भिन्न भिन्न हो। कोई उसे बिलकुल Personal समझता है, दूसरा उसे Personal तो समझता है, लेकिन मानवीय सृष्टिसे ऊपरकी चीज़ मानता है। कोई उसे बिलकुल impersonal समझता है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति उस परमात्मामें विश्वास करता है, जो शक्ति संसारके छोटेसे छोटे पदार्थसे लेकर बड़े-से बड़े पदार्थके ज़र्रे-ज़र्रे में, कण-कणमें व्याप्त है, ओतप्रोत है। इस सिद्धान्तके माननेसे

प्रत्येक व्यक्ति उस सर्वव्यापक शक्तिको अनुभव करनेका प्रयास कर सकता है।

दूसरे हमारा विश्वास है कि यह प्रकृति अनादि एवं अनन्त है। ये संसारके सम्पूर्ण पदार्थ केवल अपने सूक्ष्मरूपमें परिणत हो जाते हैं। इसी प्रकार हम सबका यह भी विश्वास है कि यह आत्मा जो प्रत्येक प्राणीमें व्याप्त है, किसी अभावसे उत्पन्न नहीं हुई—यह भी अनादि एवं अनन्त है। शरीरके नष्ट होनेपर यह आत्मा एक शरीरसे दूसरे शरीरमें तबतक परिवर्तित होती रहती है जबतक कि वह संसारके बंधनोंसे छूट नहीं जाती। गीतामें कहा है कि —"स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" आत्माकी उन्नतिके लिये किया गया थोड़ासा भी उपाय या प्रयत्न व्यर्थ नहीं जाता, यह परमात्माके बैंकमें उस प्रकार जमा हो जाता है कि हम अगले जन्मोंमें इसे और भी अधिक पवित्र बनानेका प्रयत्न कर सकते हैं। पाश्चात्य एवं पौरस्त्य सिद्धान्तोंमें यहां भी टक्कर होती है जब कि हम सब मानते हैं कि आत्मा अपने स्वरूपमें बिलकुल शुद्ध एवं निर्विकार है, जैसे कि प्राचीन दार्शनिक कपिलने भी लिखा है कि यदि आत्माका मुख्य गुण शुद्धता न होता तो प्रयत्न करनेपर भी हम उसे शुद्ध न कर पाते। इसलिए हमलोग अपनी आंखें बन्द करके अपने अन्दर उस परमात्माको पानेका प्रयत्न करते हैं; जब कि पाश्चात्य लोग भौतिक जगत्‌में उसको खोजनेका व्यर्थ प्रयास करते हैं। हमारे प्रश्वासमें वह विचारधारा निकलती है जिसे पाश्चात्य लोग लेनेका प्रयत्न करते हैं। पाश्चात्य लोग प्रकृतिवादी हैं, प्रकृतिवादकी यह विचारधारा मानती है कि यदि हम सृष्टिकर्ताकी सृष्टिको अन्वेषण द्वारा जान लेंगे तो सृष्टिकर्त्ता परमेश्वरका हमें शीघ्र ही पता लग जावेगा, इस प्रकार यह दृष्टिबिन्दु दोनों धर्मोंमें एक बड़ा विभेद पैदा कर देता है। परा और अपरा विद्याकी इस कठिन पहेलीमें फंसकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्वको नहीं पहचान सकता, इसीसे वह सोचता है कि वह कुछ नहीं, उसमें कुछ शक्ति नहीं तो वह कभी भी "कुछ" नहीं बन सकता; लेकिन जो व्यक्ति यह सोचता है कि उसमें एक महान् शक्ति है, उसमें एक महान् व्यक्तित्व है, तो वह उस व्यक्तित्वकोपानेमें समर्थ हो सकता है। हम उस शक्तिशाली परमात्माके अमर पुत्र हैं, हम उस प्रज्वलित ज्योतिके स्फुलिङ्ग हैं तो हम "कुछ नहीं" ऐसा क्यों कर हो सकते हैं। ये विचार थे जिन्होंने हमारे पूर्वजोंको प्रत्येक क्षेत्रमें आगे बढ़नेका साहस प्रदान किया था।

हिन्दूधर्म आशावादी है, जीवनकी निरन्तर असफलताके बाद, नैराश्य एवं दुःखकी काली घटाओंमें भी उसे प्रकाशकी उज्वल ज्योति दिखाई देती है। हिन्दूधर्मका रहस्य "फिर यत्न करो" इस सुन्दर उपदेशमें भरा हुआ है। दूसरे धर्मवाले यह समझते हैं कि हम चाहे जितने भी पाप करें, जितने भी अपराध करें, हमारे अपने पैगम्बर एवं देवदूतपर विश्वास करने से हमें उनसे छुटकारा मिल जाएगा, इसलिए वे अपने धर्मपालनको भुला, अपने पैगम्बरकी ज्यादा परवाह करते हैं, परमेश्वरको लक्ष्य न बनाकर पैगम्बरकी पूजा करते हैं, लेकिन हिन्दूधर्म ऐसी शिक्षा नहीं देता। प्रत्येक हिन्दू बुराईसे डरता है और अगर बुराई हो जाती है तो वह समझता है कि उसके अपने कर्मोंसे ही वह कलंक धुल सकता है। कहा भी है—

यन्मनसा मनुते तद्वाचा वदति,
यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति,
यत्कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते।

इस प्रकार अपने शुद्ध पवित्र एवं उत्कृष्ट कर्मोंके द्वारा उस पापको या कलंकको हटानेके बाद उसे परमात्मा और अपने बीच किसी अन्य व्यक्तिको मध्यस्थ बनानेकी जरूरत ही नहीं पड़ती। उसे विश्वास है कि

यदि वह इस जन्ममें कोई शुभ काम न कर सका तो उसे दूसरा जन्म मिलेगा, जिसमें कि वह और भी अधिक अच्छे कर्म करके अपनी मानसिक उन्नति कर सकेगा ; इसलिए उसे निराशाकी कोई गुंजाइश नहीं रहती, अगले जन्ममें शुभ कर्म करनेके विचारसे वह बहुत ही सुखको मौत मर सकता है, जब कि मुसलिम या ईसाई धर्मानुयायी कयामतके अन्ततक अपने पैगम्बर की दयापर अपने भाग्यका निर्णय छोड़ देते हैं।

हिन्दूधर्मकी महत्ता इससे भी समझमें आ सकती है कि इसकी संस्कृतिमें प्रत्येक प्राणीमात्रको कमसे कम आवश्यकतामें रखनेका उपदेश किया गया है। आवश्यकतासे अधिक रखनेवाला व्यक्ति भोगविलासमें पड़कर जीवनके वास्तविक उद्देश्यसे विमुख हो जाता है। वैसे भी आजकल जो संसारकी परिस्थिति है उसमें धनसम्पत्तिको लेकर पेटकी खातिर कितने संघर्ष हो रहे हैं। ये संघर्ष हमें मनुष्यत्वसे हटा, राक्षसत्वकी ओर ले जाते हैं। यदि हमारी आवश्यकतायें कम होंगी तो हम अपने भद्र विचारोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हो सकेंगे। यह आवश्यकताकी कमीका आदर्श—फासिज्म, नाज़िज्म, बोल्शेविज्म, डिक्टेटरशिप, एवं डैमोक्रेसी आदि प्रणालियोंके हटानेका मूलमंत्र है, रामबाण औषध है। आवश्यकताओंका दास होकर व्यक्ति एक दूसरेकी संपत्ति हड़पनेका प्रयत्न करता है, एक जाति दूसरी जातिपर प्रभुत्व करनेका प्रयास करती है तभी संसारमें अशान्ति खड़ी हो जाती है।

आज अखबारोंमें आये दिन हमें मस्जिदके सामने बाजे आदिकी समस्याके कारण दंगे आदिके दर्दनाक समाचार पढ़नेको मिलते हैं लेकिन हमने कभी मन्दिर या आर्यसमाज आदि किसी हिन्दू संस्थाके आगे बाजा बजानेपर इस तरहका झगड़ा होते नहीं सुना। इसका एक विशेष कारण है, हमारा धर्म हमें ईश्वरके साक्षात्कारका सीधा सच्चा वैज्ञानिक ढंग बतलाता है, दूसरे मज़हबवाले ईश्वरकी प्रार्थनापर जोर देते हैं, इसीलिए मुसलमान नमाज़के साथ किसी प्रकारका शोरगुल नहीं चाहते, उनके लिए वह प्रार्थना ही सब कुछ है, वे इसके आगे ईश्वरके विषयमें कुछ नहीं जानते। उसे वे एक आदमीकी तरह मानते हैं जिसके सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करके उसे खुश किया जाता है, लेकिन हिन्दू-धर्ममें ईश्वरका साक्षात्कार करनेके लिए यम, नियम आदि मनको एकाग्र करनेके उपायोंपर ज़ोर दिया गया है। बाहिर बाजे बजते हों, चाहे कितने शोरगुल होते रहें लेकिन हिन्दुने अपने अन्दर विद्यमान उस परमात्माके स्वरूपको पहिचानना है। यदि बाजे आदिसे उसका ध्यान भंग हो जाता है तो वह किसी अन्य को दोष न देकर अपनी त्रुटि सुधारनेका प्रयत्न करेगा। इसीसे कहा जाता है कि हिन्दूधर्म ज्ञानवादी है, अंधभक्तिवादी नहीं।

हिन्दुधर्मकी एक विशेषता यह भी है कि वह अहिंसावादी है। विश्वको शान्ति एवं प्रेमका पाठ पढ़ाना उसका मुख्य उद्देश्य है, मानवको मानवताका उपदेश करना उसका प्रधान लक्ष्य है। यह अहिंसावादिता केवल मानव जगत्तक ही सीमित नहीं होती परन्तु प्राणिजगत् तक भी इसका क्षेत्र है। एक हिन्दू क्षणभरमें दंशनके द्वारा प्राण हर लेनेवाले नागराजको भी दूध पिलाता है, चींटियों और अन्य क्षुद्र प्राणियोंको दाना खिलाता है, गौको मातृरूपमें पूजता है, लेकिन इन सबका यह अभिप्राय नहीं है कि हिन्दूधर्म निष्क्रिय है, शक्तिहीन है, परन्तु हमारे समाजमें दुष्टों व पतितों को सुधारनेके लिये प्रारम्भसे क्षात्र दण्डकी आवश्यकता महसूस की जाती रही है।

बहुतसे लोग यह कहते हैं कि इस धर्मके प्रवर्तक हमारे प्राचीन पुरुष वर्तमान ज्ञान विज्ञानकी धारासे सर्वथा अनभिज्ञ थे ; लेकिन उनका यह विचार बहुत गलत है। बहुतेरे अंग्रेज विद्वानोंके लेखोंसे मालूम पड़ता

है कि उन्हें इस विषयका भी अच्छा ज्ञान था। सर विलियम जेम्सने अपनी "Voyage to India" पुस्तकमें लिखा है "India which has ever been esteemed the nurse of sciences, the inventress of delightful and useful arts, the scene of glorious actions, fertile in the production of human genius" लेकिन हमारे प्राचीन पुरुषोंने इस प्रकृतिके चमत्कारोंकी खोजके लिये बहुत प्रयत्न न किया था, सम्भव था कि वे इस ओर बहुतसे आश्चर्यजनक अनुसन्धान कर सकते, लेकिन उन्होंने इसे छोड़कर उस विज्ञानको अपनानेका प्रयत्न किया जो हमें एकदम परमात्माके बारेमें ज्ञान देता है। सम्भव है कि इस परिवर्तनीय प्रकृतिका विज्ञान बहुत उच्च हो, लेकिन उस सदा एकरस रहनेवाले परमात्माका ज्ञान इससे भी उच्चतर एवं महान् है, जहां शान्ति है, जहां पूर्णता है और जहां सांसारिक कष्टोंसे मुक्ति मिलती है। ठीक है कि प्रकृतिका विज्ञान हमें खानेको अन्न व पहिननेको कपड़ा दे सकता है, अपनेसे निर्बल मनुष्योंपर शासन करनेकी शक्ति दे सकता है, लेकिन उन्होंने अनुभव किया कि एकरस परमात्माका ज्ञान इससे कहीं उच्च एवं महान् था। यह विचार हमारी जातिकी नस नसमें इस तरह प्रविष्ट हुआ कि वह उनका एक अंग बन गया। यह हमारी जातिका आदर्श था जिसके आधारपर इस जातिकी स्थापना की गई, यह आदर्श करोड़ों वर्ष बीत जानेपर भी इस धर्मके अनुयायियोंके रक्तके कण-कणमें इस तरह व्याप्त है कि इसके अभावमें किसी व्यक्तिको हिन्दू कहा ही नहीं जा सकता।

कईयोंका विचार है कि हिन्दूधर्म उन वर्णों एवं वादोंमें बट गया है जिससे उसका विनाश निकटप्राय है। ठीक है कि हिन्दूधर्ममें बहुतसी जातियां, उपजातियां,—वाद उपवाद, वर्ण एवं उपवर्ण विद्यमान हैं, जो मूर्तिपूजा नहीं करता वह भी हिन्दू है, जो मूर्तिपूजा करते हैं वे भी हिन्दू हैं, पीपल एवं महादेवकी पूजा करनेवाले लोग भी हिन्दु हैं—यह सब हमारी जातिकी महत्ताका सूचक है। हमारा धर्म इतना उदार है कि वह प्रत्येक व्यक्तिको अपनी अपनी दृष्टिसे विचार करनेका अवसर देता है; हमारी धार्मिक पुस्तकोंमें पाया जाता है कि "एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति" एक ही परमात्माको हम कई नामोंसे पुकार सकते हैं। भिन्न-भिन्न वर्णों, जातियों एवं उपधर्मोंको मान कर भी हमारे उन आधारभूत सिद्धान्तोंकी रक्षा करनेवाला व्यक्ति हिन्दूधर्मानुयायी है; वैष्णव शैव, शाक्त आदि सब उपभेद उसी एक ही धर्मके अंग हैं। उनको एक ही तौर तरीकेपर चलाना, एक ही मार्गपर धकेलना, उनके प्रति अन्याय है। हम सब लोग मानते हैं कि वेद ही उस आदि ज्ञानके स्रोत एवं प्रवर्तक हैं। हमारा विश्वास है कि यह पवित्र साहित्य अनादि एवं अनन्त है और उस प्रकृतिसे संबद्ध है जो स्वयं अनादि एवं अनन्त है। इसलिए हमारे सब धार्मिक झगड़े या वादविवाद इस पुस्तकपर विश्वास करके चलनेसे अंतमें स्वयं ही शांत हो जाते हैं, क्योंकि हम समझते हैं कि आध्यात्मिक विचारोंकी बहसमुबाहिसाके लिये यही अन्तिम न्यायालय है। यह वेद हम सबकी सम्मिलित संपत्ति है, यह और बात है कि कोई व्यक्ति वेदके कुछ भागको पूज्य मानता है और दूसरा किसी अन्य भागको पूज्य स्वीकार करता हो; लेकिन जबतक हम सबका वेदमें विश्वास है, तबतक हम भाई भाई हैं, एक ही आध्यात्मिक शक्तिके वे सैनिक हैं जिनकी सम्मिलित शक्तिका कोई अन्य शक्ति मुकाबिला नहीं कर सकती।

अन्य धर्म भिन्न भिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियोंके अनुसार बनाए गए। हज़रत ईसा मसीहने जब अपने देशके लोगोंको रोमन सम्प्रदायके अन्तर्गत दासतामें डूबे देखा तो उन्होंने उनके उत्थान-

के लिए एक नवीन संगठन करना चाहा। इसी प्रकार हज़रत मुहम्मद साहिबने अरबोंका संगठन करनेके लिए बड़े मज़हबी नियम बनाये। इसलिए ये मज़हब, धर्म न रहकर उन उन महापुरुषोंकी तपस्याके परिणाम स्वरूप एक सम्प्रदाय वा संगठन मात्र रह गए, इन महापुरुषोंने इनमें जीवन दान किया। अब यदि इस्लाम मेंसे उसकी आत्मा, हज़रत मुहम्मद साहिबको निकाल दें तो इस्लामकी इमारत लड़खड़ाकर गिर पड़ेगी। इसी प्रकार यदि कोई यह कह दे कि हज़रत ईसा-मसीह नामका कोई व्यक्ति संसारमें हुआ ही नहीं तो ईसाई मज़हबका सारा इतिहास मिट्टीमें मिल जाए; पर इसके विपरीत यदि कोई यह कह दे कि मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र और भगवान् कृष्णचन्द्र नामके कोई महापुरुष दुनियांमें हुए ही नहीं तो हिन्दूधर्मका बाल बांका भी नहीं हो सकता; क्योंकि हिन्दूधर्म किसी महापुरुषकी जीवनी, किसी अवतारके चमत्कार और किसी पैगम्बरके इलहामपर नहीं खड़ा किया गया। हिन्दूधर्म तो विकासकी वस्तु है और यह मानवी उत्थानका इतिहास है। आचार्य देवदत्त ने भी लिखा है :—

"By constant and steady odservations and experience of years, the ancient rishis of Bharatvarsha evolved a system of thought, known as Hinduism today, it is not the chance product of social and political upheavals like christianity and mohammadanism."

इस प्रकार हिन्दूधर्म कोई सम्प्रदाय वा संगठन मात्र नहीं है। यह मनुष्यके लाखों वर्षोंके अनुभवका परिणाम है। यह व्यक्ति-विशेषकी सम्पत्ति नहीं—यह आर्त मानवताकी रक्षाके लिए भगवान् द्वारा दिया हुआ सुन्दर उपहार है। इसका रास्ता हर एकके लिए खुला हुआ है। यहां भिन्न भिन्न विचार होते हुए भी उन्हें एकताके सुन्दर तारमें पिरोया गया है। हिन्दूधर्म अपने ज्ञानमार्ग (मस्तिष्क) को ज्ञान प्राप्तिके लिए सदा खुला एवं विशाल बनाये रखनेका उपदेश देता है, संकीर्णता उसका लक्षण नहीं है। इसीसे सिख, सनातनी, आर्यसमाजी, शैव, शाक्त, वैष्णव, वेदान्ती व चार्वाक आदि सब इसी संस्कृतिके, इसी हिन्दधर्मके एक अंग हैं, जो विचारोंकी दृष्टिसे ये सब थोड़ी बहुत विभिन्नता रखते हों, लेकिन धर्मकी दृष्टिसे वे एक हैं, अभेद्य हैं, अखण्ड हैं और हिन्दूधर्मकी नैय्याके चतुर खेवनहार हैं।

हम अब हिन्दुधर्मका सामाजिक दृष्टिकोणसे विचार करते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, सृष्टिके प्रारम्भसे उसने समाजके बन्धनोंमें रहकर अपने व्यक्तित्वकी उन्नति की है। समाज उसकी उन्नतिका रास्ता दिखलाता रहा है और मनुष्यने इस सर्चलाइटके प्रकाशमें अपने जीवनके वास्तविक तत्त्वको पहिचान कर उसे प्राप्त करनेका सदा प्रयत्न किया है। इसलिए व्यक्तिकी उन्नतिके लिए समाजका उन्नत होना सदा आवश्यक बात रही है। उन्नत समाज व्यक्तिके सामाजिक जीवनके लिए ऐसी व्यवस्था करता है, ऐसे नियमोंको बनाता है, जो मनुष्यके विकासमें सहायक सिद्ध होते हैं—जो उसके साधारण जीवनकी समस्याओंको इस सुगमता एवं सरलतापूर्वक हल कर देते हैं कि मनुष्य उनके हल करनेकी मेहनतसे बच कर अपने ऊँचे लक्ष्यको प्राप्त करनेका पर्याप्त समय निकाल सकता है। इन्हीं बातोंसे हम हिन्दूधर्मकी सामाजिक प्रगतिका कुछ आभास पा सकते हैं।

आज संसार एक बहुत दयनीय अवस्थामेंसे गुज़र रहा है। संसारमें प्रतिक्षण बढ़ती हुई बेकारी, पेटकी खातिर मचती हुई हाय हाय, गरीबोंका करुणक्रन्दन निर्बलोंकी संतप्त आहें और अबलाओंकी हृदयवेधिनी

पुकारोंने संसारके शान्तिपूर्ण आंगनको बहुत ही विषमय एवं द्वेषपूर्ण बना दिया है। सुख और शान्ति-की एकरस धारा जो कभी पूर्वसमुद्रके इस छोरसे पश्चिम समुद्रके उस छोरतक अविचलरूपेण सतत प्रवहमान हुआ करती थी, जो संसारको परस्पर प्रेम और सहानुभूतिका सुन्दर उपदेश दिया करती थी, आज उसमें यत्र-तत्र विक्षोभ आ उपस्थित हुआ है, पेट और भूखकी समस्याओंके साथ मानवसमाजके पारस्परिक कलह, घृणा और स्वार्थने उस परम पवित्र शुद्ध धाराको बहुत ही मलिन और बहुत ही दूषित कर दिया है; जिसके परिणाम-स्वरूप आज मानवकी आत्मा अपने वास्तविक उद्देश्यसे विमुख हो भोगवाद-का अन्धानुसरण कराती हुई भौतिक पदार्थोंके समूहमें अपने जीवनका अमूल्य समय खराब कर रही है। आज धर्म, मज़हब, मानवसमाजके लिये ईश्वरप्रदत्त वरदानके रूपमें न रहकर, चरित्र और आत्माके विकासका साधन न रहकर, सांप्रदायिकताका अधिकार प्राप्तिके उन्मादका, अखाड़ा हो रहा है, उदरदरीको भरने का एक साधन बन रहा है; वह धर्म जो बिखरे हुए मानवसमाजको एकत्रित करनेका, एक सुन्दर मालामें गूंथ देनेका, अभिमान किया करता था, संसारमें सुख और शान्ति कायम रखना जिसका उद्देश्य था आज पेटकी समस्याकी खातिर एक दूसरेसे सिरफुड़ौवल, अन्याय, अत्याचार और विद्वेषका प्रधान कारण बन रहा है। प्राचीन बुजुर्गोंने जिस धर्मरूपी वृक्षको अपना खून व पसीना एक करके सींचकर इतना सुदृढ़ व पल्लवित किया; था आज उस धर्मवृक्षका मूल दो टुकड़े अन्नकी खातिर हिलने लगा है। इन सबका आधारभूत कारण क्या है? दो शब्दोंमें यही कहा जा सकता है—"पेटकी समस्या!"

सचमुच यह समस्या मामूली समस्या नहीं है—इस समस्याके हल किये बिना संसारका कोई कार्य आगे नहीं बढ़ सकता। गोस्वामी तुलसीदासने भी लिखा है—'भूखे काम न होई भुंआल" खाली पेट कोई भी काम करना बहुत मुश्किल है और मनुष्य कर्मशील है, कर्ममें रत होना उसका स्वाभाविक लक्षण है इसलिए पेट और कार्यके इस सवालको हल करनेके लिए "बुभुक्षितः किंन करोति पापम्" वह उचित और अनुचित तरीकोंका प्रयोग करता है। इसीसे संसारके अभनैत्रनमें इस तरहकी विषमता उत्पन्न हो जाती है परन्तु पेटकी इस समस्याको हल करनेका उत्तरदायी कौन है? क्या वे व्यक्ति जो इसके आक्रमणसे ग्रस्त हो अधर्मानुचरण करने लगते हैं? क्या वे अभागे नरनारि जो पेटकी ज्वाला बुझानेके लिए उचित और अनुचित उपायोंको काममें लाते हैं। नहीं, वे कभी भी इस अपराधके लिए दोषी नहीं ठहराये जा सकते, यह सारा दोष उस समाजका है जिसके वे छोटेसे अंग हैं, यह सारा अपराध उन व्यक्तियोंका है जो समाजके लिए नियमोंका निर्माण करते हैं—जो व्यक्ति और समष्टिके सुन्दर समन्वयका दम भरते हैं। दुःख की बात है कि आजका समाज इन लोगोंके हाथकी कठ-पुतली मात्र रह गया है जो अपने उत्तरदायित्वको, अपने कर्तव्यको पूरी तरह अनुभव नहीं करते। हमारे पूर्वजोंने अपने इस कर्त्तव्यको पहिचाना था और इसी लिए समाजके लिये ऐसे नियमोंका निर्माण किया था जिससे यह सवाल कभी पैदा ही नहीं हो सकता था। उनके बताये हुए वे सामाजिक नियम आज भी हिन्दू-धर्मकी महत्ताको बढ़ा रहे हैं।

व्यक्ति और समाजकी उन्नति कायम रखनेके लिये हमारे पूर्वजोंने आश्रम प्रणालीको प्रचलित किया था। यह आश्रम प्रणाली वह प्रणाली थी जो व्यक्तिको ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास रूपी विकास-की सीढ़ियोंपर चलाती हुई उसके जीवनके वास्तविक उद्देश्यको पूरा करनेमें सहायक सिद्ध होती थी।

अपने जीवन निर्माणके प्रथम २५ वर्ष शहरोंके कोलाहलपूर्ण वातावरणसे बाहिर प्रकृति माताकी गोदीमें गुरुके पास अध्ययन करते हुए, भावी संततिकी परम्पराको सुचारुरूपेण चलानेके लिए ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करके जब शतपथकाण्डके "ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत्" के अनुसार एक नवयुवक गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता था तो संयम व त्यागके उस पाठको जीवनमें क्रियात्मक रूप देते हुए, अपनी आवश्यकताओंको यथासम्भव कम करके धनसंचय करते हुए अपने परिवारका तथा समाजका पालन करता था। समाजके दूसरे अंगों—सन्यासियों, वानप्रस्थियों व ब्रह्मचारियोंके पालन-पोषणका भार भी इन्हीं लोगोंके कंधोंपर होता था। इस प्रकार ५० वर्षतक नियमपूर्वक गृहस्थ जीवन बिता कर प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य समझ इस घर-गृहस्थीके झंझटोंसे अलग हो, मनुस्मृतिके "एवं गृहाश्रमेस्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विज:, वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रिय:" के अनुसार "पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा" का पालन करते हुए वह अपनी पत्नीको या तो घरपर ही छोड़कर या अपने साथ ले शहरसे बाहिर जंगलोंमें जाकर "स्वाध्याये नित्ययुक्त: स्याद्दान्तो मैत्र: समाहित:" स्वाध्याय अथवा गुरुकुलोंमें विद्यार्थियोंको पढ़ानेमें अपना समय गुजार देता था। उस समय उसे अपने खाने-पीनेकी कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। इसका प्रबन्ध या तो राज्य कर देता था या समाजके संम्भ्रान्त व्यक्तियोंके जिम्मे होता था। इससे इन वानप्रस्थी जनोंके स्वाध्याय तथा अध्ययन अध्यापनमें कोई विघ्न-बाधा उपस्थित नहीं हो पाती थी। इतना ही नहीं उन विद्यालयोंको चलानेका सारा भार गृहस्थियों अथवा राज्यपर होनेसे ये विद्यालय निश्शुल्क होते थे और इसलिए आजकलके विश्वविद्यालयोंकी भांति शिक्षाका उपाय अर्थ-फ़ीस न होकर योग्यता वा गुण होता था जिससे अपने वानप्रस्थी गुरुओंका सान्निध्य, पितृसुलभ स्नेह व सहानुभूति तथा मंगलमय आशीर्वाद पाते हुए वे अपने जीवनका सर्वतोमुखी विकास करनेमें समर्थ हो सकते थे ये वानप्रस्थी लोग अपने जीवनका तृतीय प्रहर बिताकर "वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयंभागमायुष:, "चतुर्थमायुषोभागं त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत्" सम्पूर्ण लोकके कल्याणके लिए, भटके हुए लोगोंका पथभ्रान्त पथिकोंको मार्गप्रदर्शन करानेके लिए, समाजकी सोती हुई आत्माको जगानेके लिये अपने केन्द्रस्थानको छोड़कर सन्यासी हो धर्मोपदेश व प्रचारमें अपने जीवनका समय बिता देते थे। इन्हें भी अपने खानपानकी कोई चिन्ता न करनी होती थी, सन्यासियोंके खाली कमण्डलुको भर देना गृहस्थियोंका परम पवित्र कर्तव्य था, इससे सन्यासी लोग समाजकी सेवा करते हुए उस परमब्रह्मकी प्राप्तिका प्रयत्न करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि समाजकी इस व्यवस्थामें कहीं भी पेटकी समस्या इतनी पेचीदगीसे सामने नहीं आती थी। वानप्रस्थी लोग अपना कार्य छोड़के वनोंमें चले जाते थे और उनकी स्थानपूर्ति करनेके लिये नये युवक आ जाते थे, इससे बेकारीकी कोई समस्या सामने ही नहीं आती थी। आज संसारमें कितने शिक्षित नवयुवक बेकारीमें ही अपने जीवनका अमूल्य समय गंवा रहे हैं कितने नवयुवक प्रतिवर्ष इस बेकारीसे तंग आकर आत्महत्यारूप जघन्यकृत्य कर लेते हैं क्योंकि आज संसारमें व्यक्ति ५० वर्षसे ऊपरकी आयुका होकर भी अपने कर्तव्यकी पुकारको न सुनता हुआ अपने कामकाजको छोड़ना पसन्द ही नहीं करते, जिससे नवयुवक तरुण लोग बेकार रह जाते हैं, जिन लोगोंको सांसारिक कामकाजसे निवृत्त हो लोकसेवा करनी चाहिये वे अपनी पुरानी गद्दियोंको छोड़ना नहीं चाहते, और जिन लोगोंको वे काम

( अपूर्ण )

( ८ वें पृष्ठ का शेषांश )

अर्जुन का कलेजा काँप उठा था ; फिर जब साक्षात् भगवान् कृष्ण ऐसे योगेश्वर दोग्धा ने उनको उपनिषद्रूपिणी गौओं से गीतात्मक दुग्धामृत निकाल कर पिलाया, तब कहीं उस सुधी भोक्ता वत्स का होश ठिकाने आया और आहार की ख़ातिर महानुभाव गुरुजनों की भी हत्या करने का साहस हुआ बुभु-क्षितः किं न करोति पापम् ?"

इस प्रकार हम देखते हैं कि बलवत्तर लोग अपने मात्स्यन्याय को चरितार्थ करने के लिये चाहे किसी भी दुर्बल क़ौम को 'असाधु' और बर्बर नाम देकर उसे मार डालने अथवा ग़ुलाम बना लेने का प्रयत्न करते हैं। यह प्रथा वैदिक काल से आजतक अक्षुण्ण-रूप से प्रचलित है। मुसलमान कहते हैं कि इस्लाम-धर्मवालों से भिन्न मज़हबवाले सब लोग क़ाफ़िर हैं; उन्हें मार डालना वा ग़ुलाम बना लेना हमारा धर्म है। अंग्रेज क़ौम का यह दावा है कि वही दुनियां के शासन के लिये ईश्वर द्वारा नियुक्त है ; अतः उसे जहांतक सम्भव हो, दुर्बल राष्ट्रों को ग़ुलाम बनाये रखना चाहिये। जर्मनों का यह अहङ्कार सर्वोपरि है कि वे परमार्य-वंशज हैं ; अतः उन्हें शेष क़ौमों को अपने आहार के लिये, ग़ुलाम बना लेने, और यदि अपने बसने की आवश्यकता हो तो, उनको मार कर देश के देश को ख़ाली कर देनेका नैसर्गिक अधिकार है। जापानी यह भाव रखते हैं कि, चूंकि "वीर्यभोग्या वसुन्धरा" है, इसलिये एशिया के दुर्बल राष्ट्रों पर अधिकार जमा लेना उन बलवत्तरों का धर्म है। इस तरह बलशाली क़ौमों ने मनमाने तौर पर दुर्बल राष्ट्रों को 'असाधु, असभ्य, बर्बर कह कर, यथा-प्रयोजन मार डाले वा ग़ुलाम बनाये रखने का वैधवत् बहाना ढूंढ़ निकाला है। ऐसी दुर्मनोवृत्ति के कारण, जो मात्स्यन्याय मानवजाति में अति प्राचीन काल में प्रवृत्त हुआ वह उत्तरोत्तर घोर-रूप से बढ़ता ही गया और अब महाविकराल विराट् कलेवर में विश्वमानवता की छाती पर नग्न ताण्डव नृत्य कर रहा है। अद्यतन विश्व के सारे फ़सादों की जड़ यह 'आहार' निमित्तक मात्स्यन्याय ही है ; और यही विश्व की मुख्य समस्या है। अब विचारना यह है कि इसका 'हल' कैसे होगा, संसार से यह घोर-दर्शन और नृशंस मात्स्यन्याय, बलवत्तरों का आततायिभाव, हिंस्र राक्षसकर्म, कैसे मिटाया जा सकेगा ? इस पर अगले अङ्क में विचार किया जायगा।

## आवश्यक सूचना

सात्विक-जीवनका वार्षिक मूल्य ३) है, विद्यार्थियों, विद्यालयों और पुस्तकालयोंसे २) ; नमूनेकी कापी के लिये ।) आना आवश्यक है।

सात्विक-जीवनका वर्ष विजया दशमी ( अक्टूबर ) से प्रारम्भ होता है। वर्षके मध्यमें ग्राहक बनानेका नियम नहीं है, जो सज्जन वर्षके बीचमें ग्राहक बनना चाहेंगे उनकी सेवामें उस चालू वर्षके पिछले अंक भेजे जाएँगे।

ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें, अन्यथा पत्रोत्तरमें विलम्ब और उचित कार्यवाहीमें असुविधा होगी।

# महाभाष्य और तत्कालीन सामाजिक अवस्था

लेखक—डॉ० मङ्गलदेव शास्त्री

पातञ्जल महाभाष्यका महत्त्व भारतीय साहित्यमें कई दृष्टियोंसे अत्यधिक है। यह ग्रन्थ उन प्राचीन ग्रन्थों में से एक है जिनका समय लगभग निश्चित है। अधिकतर विद्वानोंके मतके अनुसार इसका समय ईसवी सन्‌से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्वका है। यद्यपि कई युक्तियोंके अनुसार इसका समय इसके बादका भी कहा जा सकता है, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ उक्त समय से पूर्वका नहीं हो सकता। समयकी प्राय: निश्चितताके साथ साथ, इस बृहद्ग्रन्थकी शैलीमें वह अपूर्व स्वाभाविकता है जो, संस्कृत साहित्यमें ही क्या, शायद संसार के किसी भी साहित्यमें अतुलनीय है। इन सब कारणोंसे भारतीय धर्म, साहित्य, समाज आदिकी तत्कालीन अवस्थाके जाननेके लिये जो अधिक सामग्री इस विशाल ग्रन्थसे इकट्ठी की जा सकती है उसका मूल्य बहुत ही बढ़ जाता है।

इस छोटेसे लेखमें हम इस महत्वपूर्ण ग्रन्थके एक ऐसे स्थलपर विचार करना चाहते हैं जिससे उत्तरीय भारतकी (या कमसे कम उसके मध्यभागकी) तत्कालीन सामाजिक अवस्थाका कुछ अनुमान किया जा सकता है। इससे प्रतीत होता है कि गत दो सहस्र वर्षों में हमारा समाज कितना बदल चुका है और उसकी दृष्टियोंमें कैसे-कैसे परिवर्तन हो चुके हैं।

महाभाष्यमें ऐसे अनेक स्थल हैं जिनसे तत्कालीन सामाजिक अवस्थाका आज कलकी अवस्थासे बड़ा अन्तर प्रतीत होता है। उन सबका विचार यहाँ थोड़ेसे स्थानमें नहीं हो सकता। यहाँ हम केवल एक ही स्थलपर विचार करेंगे। शेष स्थलोंका विचार अवसर और अवकाश मिलनेपर पुन: किया जायगा।

आज हम पाणिनिके 'शूद्राणामनिरवसितानाम्' (२।४।१०) इस सूत्रके महाभाष्यको लेते हैं। वह इस प्रकार है:—"अनिरवसितानामित्युच्यते; कुतोऽनिरवसितानाम्? आर्य्यावर्तादनिरवसितानाम्। क: पुनरार्यावर्त:? प्रागादर्शात् प्रत्यक्कालकवनाद् दक्षिणेन हिमवन्तम् उत्तरेण पारियात्रम्। यद्येवं; किष्किन्धगन्दिकम्, शकयवनम्, शौर्यक्रौञ्चमिति न सिध्यति। एवं तर्ह्यार्यनिवासादनिरवसितानाम्। क: पुनरार्यनिवास:? ग्रामो घोषो नगरं संवाह इति। एवमपि य एते महान्त: संस्त्यायास्तेष्वभ्यन्तराश्चण्डाला मृतपाश्च वसन्ति, तत्र चण्डालमृतपा इति न सिध्यति। एवं तर्हि यज्ञात्कर्मणोऽनिरवसितानाम्। एवमपि तक्षायस्कारम्, रजकतन्तुवायमिति न सिध्यति। एवं तर्हि पात्रादनिरवसितानाम्। यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेण शुध्यति, तेऽनिरवसिता:। यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेणापि न शुध्यति, ते निरवसिता:।"

इसका अनुवाद यह है:—

१. "(सूत्रमें) 'अनिरवसितोंका' (=अबहिष्कृतोंका) कहा है। किससे अबहिष्कृतोंका? आर्यावर्तसे अबहिष्कृतोंका। आर्यावर्त क्या (अर्थात् कितना) है? आदर्शसे पूर्व, कालकवनसे पश्चिम, हिमवान्‌से दक्षिण (और) पारियात्रसे उत्तर। यदि ऐसा है (तो) किष्किन्धगन्दिकम्, शकयवनम्, शौर्यक्रौञ्चम् (यह द्वन्द्वों का एकवद्भाव) सिद्ध नहीं होता।

२. ऐसा (है) तो आर्यनिवाससे अबहिष्कृतोंका। आर्यनिवास क्या है? ग्राम, घोष, नगर (और)

संवाह१ (=मंडी)—यह। ऐसा होने पर भी जो ये बड़े-बड़े संस्त्याय (=बस्तियां) हैं उनके अन्दर चण्डाल और मृतप रहते हैं, वहाँ (=उनके द्वन्द्व समासमें) 'चण्डाल-मृतपाः' ऐसा सिद्ध नहीं होता।

३. ऐसा (है) तो याज्ञिक कर्मसे अबहिष्कृतोंका। ऐसा होनेपर भी 'तक्षायस्कारम्' (और) 'रजकतन्तु-वायम्'—ऐसा सिद्ध नहीं होता।

४. ऐसा (है) तो पात्रसे अबहिष्कृतोंका। जिनके खानेपर पात्र, संस्कारसे शुद्ध हो जाता है वे अबहिष्कृत हैं। जिनके खानेपर पात्र, संस्कारसे भी शुद्ध नहीं होता वे बहिष्कृत हैं।"

उपर्युक्त ग्रन्थके चार अंश हैं। पहले पक्षमें जो दोषापत्ति की है उसका यही अर्थ है कि उस समय जितने देशको आर्यावर्त समझा जाता था उससे किष्किन्ध, गन्दिक (या गन्धिक) शक, यवन, शौर्य और क्रौञ्च ये जातियां बाहर रहनेवाली थीं। कैयटने भी इन जातियोंके विषयमें कहा है—"एतेषामार्यावर्ताद् बाह्यत्वादितिभावः'। साथ ही यह भी विचारणीय है कि जहां एक ओर पाणिनिके 'जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्' (४।१।१६८) इस प्रकरणके अनुसार शक, यवन, आदि जातियोंको क्षत्रिय समझा जाता था वहाँ महाभाष्य-कारके समयमें उनको शूद्र समझा जाने लगा था। यह दृष्टि मनुस्मृतिके

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥
………कम्बोजा यवनाः शकाः। (१०।४३-४)

इन श्लोकोंके भावके अनुसार ही है। इसलिये मनुस्मृतिका कमसे कम उपर्युक्त कथन, स्पष्टतया पाणिनिके समयसे पीछेका प्रतीत होता है। इस दृष्टिभेदके कारणका विचार हमने आश्विन संवत् १९८५ की 'सुधा' में 'जातिभेद और वर्णभेदका सन्बन्ध' शीर्षक लेखमें किया है।

इसी प्रसंगमें दूसरी विचारणीय बात आर्यावर्तकी परिभाषा है। इस जगहके अतिरिक्त 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' (६।३।१०९) इस सूत्रके भाष्यमें भी आर्यावर्तकी परिभाषा पतञ्जलिने इन्हीं शब्दोंमें दी है। 'वसिष्ठधर्मसूत्र' (१।८)१ और 'बौधायनधर्मसूत्र' (१।१।२५)२ में जो आर्यावर्तकी परिभाषाएँ दी हैं उनसे महाभाष्यकी परिभाषा लगभग शब्दशः मिलती है। इन परिभाषाओंकी मनुस्मृतिके आर्यावर्त३ और मध्यदेश४ की परिभाषाओंके साथ तुलना करनेसे यही प्रतीत होता है कि मनुस्मृतिका मध्यदेश और महाभाष्यादिका आर्यावर्त एक ही है। साथ ही मनुस्मृतिका आर्यावर्त, महाभाष्यादिके आर्यावर्त से कहीं अधिक विस्तृत है। मनुस्मृतिके 'विनशन' और बौधायनधर्मसूत्रके 'अदर्शन' का एक ही

---

१ देखो कैयट (२।४।१०):—ग्रामः प्रसिद्धः। घोषो गोमहिष्यादिनिवासः। संवाहो वणिक्प्रधानः। ७।३।१४ पर कैयटमें लिखा है:—संस्त्यायो निवासः। ब्राह्मणकर्षकपुरुषप्रधानो देशो ग्रामः। गोमहिष्यादियुक्तो घोषः। प्राकारपरिखान्वितं श्रेणिधर्मयुक्तसंस्थानं नगरम्। प्राकारपरिखायुक्तश्रेणि-धर्मान्वितो देशः संवाहः।

१ 'आर्यावर्तः प्रागादर्शात्, प्रत्यक् कालकवनाद्, उदक् पारियात्राद्, दक्षिणेन हिमवतः।' कुछ हस्तलिखित पोथियोंमें 'प्रागदर्शनात्' पाठ है। ब्युहलर महाशयने 'प्रागदर्शनात्' पाठ माना है।

२. 'प्रागदर्शनात्प्रत्यक्कालकवनाद्दक्षिणेन हिमवन्तमुदक् पारियात्रमेतदार्यावर्तम्'। कहीं कहीं 'प्राग्विनशनात्' पाठ है।

३. (२।२२) 'आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः।'

४. (२।२१) 'हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः।'

अर्थ प्रतीत होता है। मनुस्मृतिके 'विनशन' शब्दका अर्थ टीकाकारोंने 'विनशनं सरस्वत्या अन्तर्धानदेशः' (मेधातिथि) या 'विनशनात् कुरुक्षेत्रात्' (राघवानन्द) किया है। 'आदर्श'१ शब्द भी वास्तवमें 'विनशन' के समानार्थक 'अदर्शन' से ही सबन्ध रखनेवाला प्रतीत होता है।

ऊपर महाभाष्यादिमें आर्यावर्तकी पूर्वीय सीमा 'कालकवन' तक बतलायी है। यह स्पष्ट नहीं कि काल-कवनसे क्या अभिप्राय है। तो भी यह देखते हुए कि मनुस्मृतिके मध्यदेशकी शेष तीनों सीमाएँ महाभाष्यादिके आर्यावर्तकी उन तीनों सीमाओंके समान हैं, यही प्रतीत होता है कि मनुस्मृतिकी चौथी सीमा प्रयागका और महाभाष्यादिके कालकवनका लगभग एक ही अभिप्राय है। वाल्मीकि-रामायणके अयोध्या काण्ड (सर्ग ५४,—५५) के देखनेसे प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें प्रयागके समीप एक बड़ा भारी जंगल था। सर्ग ५४ के द्वितीय श्लोक ('यत्र भागीरथीं गङ्गां यमुनाभिप्रवर्तते। जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद्वनम्।') में एक 'सुमहद्वनं' का, और सर्ग ५५ के अष्टम श्लोक ('क्रोशमात्रं ततो गत्वा नीलं द्रक्ष्यथ काननम्। पलाशबदरिमिश्रं रम्यं वंशैश्च यामुनैः।') में 'नील कानन' का वर्णन है। मालूम होता है कि ये सुमहद्वन् और नील कानन और कालकवन लगभग एक ही वन के नाम हैं जो कभी प्रयागके समीपमें था। वासिष्ठ-धर्मसूत्र (१।१२) और बौधनायनधर्मसूत्र (१।१।२६) की, 'गङ्गा और यमुनाके बीचके देशको आर्यावर्त कहते हैं' एतदर्थक आर्यावर्तकी दूसरी परिभाषासे भी यह प्रतीत होता है कि उपर्युक्त परिभाषाओंमें आर्यावर्तकी पश्चिमीय और पूर्वीय सीमाएँ गंगा-यमुनाके दुआबसे अधिक दूर नहीं थीं२।

ऊपरके लेखसे यह स्पष्ट है कि महाभाष्यका आर्यावर्त और मनुस्मृतिका मध्यदेश दोनों एक ही हैं। बौधायनधर्मसूत्रमें इसी प्रकरणके 'आवन्तयोऽङ्गमगधाः सुराष्ट्रा दक्षिणापथाः। उपावृत्सिन्धुसौवीरा एते संकीर्णयोनयः। आरट्टान् कारस्करान् पुण्ड्रान् सौवीरान् वङ्गान् कलिङ्गान् प्रानूनानिति च गत्वा पुनस्तोमेन यजेत सर्वपृष्ठया वा। (१।१।२६-३०)' इत्यादि सूत्रोंसे यह स्पष्ट है कि उस समय पूर्वमें अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग आदि, और पश्चिममें सिन्धु, सौवीर आदि कई देश आर्यावर्तसे बाहर माने जाते थे। पीछेसे ज्यों-ज्यों आर्योंकी सभ्यताका विस्तार बढ़ता गया त्यों-त्यों आर्यावर्तकी सीमा भी बढ़ती गयी।

ऊपरके लेखसे यह स्पष्ट है कि मनुस्मृतिकी आर्यावर्तकी परिभाषा महाभाष्यादिकी परिभाषासे बादकी है। इसीलिये बहुत करके वर्तमान मनुस्मृति, महाभाष्यके पीछे की प्रतीत होती है। इसमें और कई प्रमाण हैं जिनका वर्णन हम फिर करेंगे।

द्वितीय पक्षके ग्रहणसे यह ध्वनित होता है कि उन दिनों आर्य लोग आर्यावर्तसे बाहर भी बसे हुए थे और आर्यावर्तके समीपवर्ती शक-यवन-प्राय देशोंमें भी उनके निवास थे। दूसरे, उन वस्तियोंमें आर्य लोग शक आदिके साथ इकट्ठे होकर इसी तरह बसे हुए थे जैसे आजकल भारतवर्षमें प्रायः हिन्दू-मुसलमान रहते हैं। उस समय अलग रहनेका कोई भाव उनमें नहीं था। द्वितीय पक्षके ऊपर जो आपत्ति दी गयी है उसका यही अभिप्राय है कि चण्डाल और मृतप जैसी अछूत जातियां उन दिनों भी बड़ी बड़ी बस्तियोंमें बीच-बीच में रहती थीं। यह आवश्यक नहीं था कि वे सदा नगरोंके बाहर ही बसायी जावें।

१. देखो 'बृहत्संहिता' (१४।२५)।

२. देखोः—कनिङ्घम कृत Ancient Geography of India, cd. सुरेन्द्रनाथ मजुमदार शास्त्री (१९२४), भूमिका पृष्ठ ४१।

तीसरे पक्षके ग्रहणसे यह प्रतीत होता है कि शक यवन आदिको 'याज्ञिक कर्म' से बहिष्कृत नहीं समझा जाता था। 'याज्ञकर्म' से वस्तुतः क्या अभिप्राय है यह निश्चित रूपसे यहां नहीं कहा जा सकता ; तो भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'यज्ञकर्म' के सम्बन्धमें जो सामाजिक स्थिति, तक्षा, अयस्कार, रजक और तन्तुवाय जैसी जातियोंकी उस समय थी उससे कहीं उच्च शक यवन आदिकी थी। जहाँ तक्षा, अयस्कार आदि 'याज्ञकर्म' से बहिष्कृत थे, वहां शक यवन आदि उससे अबहिष्कृत थे। इन जातियोंका 'याज्ञकर्म' से अबहिष्कृत समझा जाना एक प्रकारकी शुद्धिका हां फल हो सकता है। इससे उस समयके आर्योंकी धार्मिक उदारता ही प्रतीत होती है। इसी उदारताका आजकलके हिन्दुओंमें कैसा अभाव दिखलाई देता है! कमसे कम इससे यह तो सिद्ध होता ही है कि ईसाई, मुसलमान आदि अहिन्दू जातियोंके प्रति जो बहिष्कारकी प्रवृत्ति आजकल हिन्दुओंमें पायी जाती है उसकी उस समय गन्ध भी नहीं थी। 'न नीचो यवनात्परः' जैसे वाक्योंकी कदाचित् उन दिनों तक सृष्टि भी नहीं हुई थी।

चौथे पक्षसे, जो सिद्धान्तरूपसे प्रतिपादित किया गया है, और भी अधिक विचित्र तथा मनोरञ्जक बातें सिद्ध होती हैं। यहाँ 'संस्कार' से क्या अभिप्राय है; इस विषयमें कुछ मतभेद हो सकता है। हमें तो यही प्रतीत होता है कि यहाँ संस्कारसे अभिप्राय साधारण मिट्टी राख आदिसे मार्जनका ही हो सकता है। अग्निसे शुद्धिको भी यदि संस्कार माना जायगा, तब तो हमारी समझमें ऐसा संस्कार चण्डाल और मृतपके उच्छिष्ट पात्रका भी हो सकता है। आधुनिक हिन्दू रिवाज ऐसा ही प्रतीत होता है। इस विषयमें आधुनिक धर्मशास्त्रियोंका क्या मत है, यह हम ठीक-ठीक नहीं कह सकते।[१] टीकाकारों[२] ने तो प्रायः यही अर्थ लिया है।

यदि हमारा विचार ठीक है तो उपर्युक्त सिद्धान्त पक्षसे निम्नलिखित (आधुनिक हिन्दू समाजके लिये) विचित्र बातें सिद्ध होती हैं :—

जैसे आजकल ऊँचे समझे जानेवाले शूद्रोंको पीतल आदि धातुओंके पात्र भोजनार्थ दिये जा सकते हैं और उनकी शुद्धि मिट्टी आदिसे साधारणतया मार्जन से हो जाती है, इसी प्रकार उन दिनोंतक यवन आदि जातियोंके साथ तथा रजक और तन्तुवाय (जो आजकल प्रायः अछूत समझे जाते हैं) के साथ भी वर्ताव होता था।

---

१. देखो 'याज्ञवल्क्यस्मृति' का द्रव्यशुद्धिप्रकरण (११८२—१९७) और 'मनुस्मृति' (५।११०—१३७)।

२. पदमञ्जरी (२।४।१०): 'संस्कारेणापीति। भस्मना शुध्यते कांस्यमित्यादिना स्मृतिकारैरुक्तेन········।' शब्दकौस्तुभ (२।४।१०): 'भस्मना शुध्यते कांस्यमित्यादिस्मृतिकारोक्तसंस्कारेण····।'

# हिन्दूपतन का इतिहास

[ मानवार्षभाष्य-द्वितीयकाण्ड ( अमुद्रित ) की भूमिका का द्वितीय अंश ]

लेखक—आचार्य श्री इन्दिरारमण शास्त्री

( इस निबन्धका एक अंश, पहले—'सात्विक जीवन' के दो संयुक्ताङ्कों ( वर्ष २ अङ्क ८-९ ; तथा वर्ष २, अङ्क १०—११ ) में "हिन्दू-दास" शीर्षक से क्रमशः प्रकाशित हो चुका है । )

सर्वतोमुख हिन्दूपतन, सर्वपथीन हिन्दुत्व-अधोगति, सर्वथा उपनत भारतीय-आर्यह्रास सबके सामने है ; यह सभीके अनुभवमें सिद्ध है ; अतः इसके स्वरूपतः निरूपणकी आवश्यकता नहीं है ।

इसे दूर करनेकी चिन्ता और प्रवृत्ति, इधर कुछ वर्षोंसे समझदार तथा उत्तरदायित्व और कर्तव्यका अनुभव करनेवाले हिन्दू सज्जनोंमें अधिक तीव्र हुई है। परिणामतः अनेक सभा-समितियां और संस्थायें, भीषण हिन्दूह्रासको दूरकर, इस समाजका पुनरुद्धार, उज्जीवन, और सुधार-संस्कार करनेके लिये, सम्प्रति भारतवर्षमें प्रयत्नशील हैं । उनके गुण-दोषों और त्रुटि-कमी-कमजोरियों की संक्षिप्त समीक्षा और चर्चा पहले ( उपर्युक्त प्रथम लेखमें ) हुई है ; साथ ही हिन्दूपतनके निदान ( आदिकारण ) का अनुसन्धान, और उसके सम्बन्ध की अन्य कई बातों पर सारतः विचार किया गया है । उस विवेचन से यह मन्तव्य स्थिर हुआ है कि 'जन्म से वर्ण व्यवस्था और आश्रमाधिकार, तथा जातिगत छूत-अछूत, उच्च-नीचताको माननेसे ही हिन्दू क़ौमका ऐसा अधःपात वा ह्रास हुआ है ; अतः जातिवाद का समूलोन्मूलन कर देनेसे ही, पुनः हिन्दुत्व-समुत्थान अथवा भारतीय-आर्याऽभ्युदय हो सकता, और इसके द्वारा विश्वके उन शेष राष्ट्रों का भी सुधार-उद्धार किया जा सकता है, जो आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से युक्त, असीम भौतिक साधन-सम्पत्ति से समृद्ध, और महाबलदर्पित, "एक एक जग जीत सक ; ऐसे सुभट-निकाय" होकर भी, असमात्मभाव और अनध्यात्मवित्त्व, के कारण, तथा जगत् के कार्य-तत्त्वार्थ को न जानने से स्वयं अत्यन्त पतनोन्मुख हो, अनुदिन अधोऽधः पतित हो रहे हैं, और विश्वमें घोर दुर्भिक्ष, महामारी, दुर्व्यवस्था, असद्दण्डनीति, दुःशासनपद्धति, परशोषक-अर्थक्रिया, निर्मम परराष्ट्रदासता, और अनुचित स्वराष्ट्राभिमानको फैलाये हुए है ; जिसके विषम परिणाम-स्वरूप सदियों से संसार में नाना लोकविद्रावणी क्रान्तियां होती आकर, अनेक राष्ट्र और साम्राज्य को धूल में मिला, कई समुन्नत क़ौमों की सत्ता मिटा चुकी हैं ; और आज-काल भी भूतलपर, निरपराध-नरहत्या, घोर नृशंसता और आसुर क्रूरता, अमानुष दण्डप्रणयन, पैशाचिक अत्याचार तथा राक्षसी इतिकर्त्तव्यता, के साथ प्रलयङ्करी महारणचण्डी का विश्व-विप्लावक प्रचण्ड ताण्डव हो रहा है ।

सामान्यतः ( ऊपर सूचित प्रथम लेख से ) यह बात स्पष्ट विदित हुई है कि जन्मनिमित्तक जाति, वर्ण, आश्रम, स्पृश्यास्पृश्य, उच्च-नीच की व्यवस्था होने, और जन्मजाति के अनुसार ही कर्त्तव्य, अधिकार, वृत्ति, प्रतिष्ठा, दण्ड, पुरस्कार, धर्म-कर्म, प्रायश्चित्त, उपासना, विद्याऽधिकार, देव-यजन, उन्नतिसाधन, भोजन, आवाह-विवाह, देवस्थान-मन्दिर-प्रवेश, वसति-स्थान, जलाशय, कर्मक्षेत्र, सभा-सहासनादि सामाजिक आचार-व्यवहारोंमें, अहङ्कार-तिरस्कारमय, जात्य-

पमानप्रवर्तक, लोकविग्राहक, सङ्घशक्तिविधूनन, ऐक्योच्छेदक, समाजहृदयभेदक, लोकसंग्रहविरोधक, मनुष्यता-मर्मान्तक, सज्जनमनोविक्षोभक विश्वसमात्मभाव-विध्वंसक, अनध्यात्मवित्तमाचार्य-प्रवर्तित, आत्मबलहीन-विवशमहाजनपरिगृहीत, आततायिभावपरिणामक अति विषम मर्यादा करनेसे ही ऐसा भीषण हिन्दूह्रास हुआ ; तथा इन्हीं कारणोंसे यह बीचमें कभी दूर नहीं किया जा सका, और आज भी ज्योंका त्यों बना है ; हज़ार प्रयत्न होनेपर भी यह हैन्दव-अधःपात रुक नहीं रहा है।

इस पर यह प्रश्न उठता है, कि, क्या जबसे जन्मजातिवाद उत्पन्न हुआ और अपने दुष्परिणाम को फैलाया तब से आज तक इतने बड़े देशमें, इसे समूल नष्ट कर, भारतीय आर्य क़ौम के योग-क्षेम-साधन का भाव कभी न पैदा हुआ ? यदि नहीं हुआ तो क्यों ? और यदि हुआ, तो सभी फ़सादों की जड़, यह जन्मजातीयता, अब तक इतनी दृढ़ता से क्यों ज़मी है ?

इस प्रश्न का सही उत्तर पानेके लिये हिन्दुस्थान के प्राचीन इतिहास पर थोड़ा ध्यान देना आवश्यक है।

वर्णाश्रम के उद्गम, विकास, जातिरूप में परिणमन, सामाजिक और पौरुषार्थिक परिणाम, तथा उत्थान, उत्तम्भन, पतन आदिका कुछ सविस्तर इतिहास, एक अलग प्रकरण में लिखा जायगा। यहां उसके अपेक्षित अंशमात्र का उल्लेख, संक्षेप में किया जाता है।

### बुद्धपूर्वकाल की सामाजिक अवस्था

वेद के संहिता-ग्रन्थों में 'वर्ण' शब्द कई जगह प्रयुक्त हुआ है ; पर कहीं भी उसका अर्थ, ब्राह्मणादिजातिपरक नहीं है। पुरुषसूक्त आदि में 'ब्राह्मण' प्रभृति शब्दों का प्रयोग है ; किन्तु वहां भी उन्हें 'वर्ण' का नाम नहीं दिया गया है ; केवल तत्तद्गुण-कर्ममय ब्राह्मणादि वर्ग, उनसे अभिप्रेत हैं। कतिपय पुरातत्त्वज्ञों का यह भी मत है कि पुरुषसूक्त, पीछे से संहिताओं में प्रक्षिप्त किया गया है। इससे सिद्ध है कि संहिताकाल में वर्णविभाग नहीं था। इस बात का समर्थन इतिहास-पुराण आदि से भी होता है ; यथा—

"अमरेन्द्र, मया बह्व्यः प्रजाः सृष्टास्तदा प्रभो,
एकवर्णाः समाभाषा एकरूपाश्च सर्वशः।
तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने, लक्षणेऽपि वा।"
"एक वर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद्युधिष्ठिर,
क्रिया-कर्मविभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम्।"
एक एव पुरा वेदः, प्रणवः सर्ववाङ्मयः,
एकोऽनारायणो देवः, एकोऽग्निः, वर्ण एव च।"
यथा कृतयुगे पूर्वमेकवर्णमभूत्किल,
तथा कलियुगस्यान्ते शूद्रभूताः प्रजा इमाः।"
धर्मा-ऽधर्मौ न तास्वास्तां, निर्विशेषाः प्रजास्तु ताः;
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन्कृते युगे" इत्यादि।

इन श्लोकोंसे स्पष्ट है कि सत्ययुग में एक ही वेद, एक ही अग्नि, एक ही वर्ण और एक ही देव थे। उस समय वेद का विभाग और पृथक पृथक् संहितीकरण नहीं हुआ था ; यज्ञ-यागादि नहीं होते थे, अतः अग्निमें भी 'आहवनीय' आदि विभाग नहीं हुआ था ; यज्ञयागादि के अभाव के कारण ही तत्तद्-यज्ञिय देवों की कल्पनाका अवसर ही न था, सुतरां एक ईश्वरवाद था ; कृतयुग में सब कुछ 'आहार-साधन' आदि स्वयमेव प्रकृति 'कृत' था, अतः तत्तत्कर्म-जीविका-वृत्तिनिमित्तक वर्णविभाग की आवश्यकता ही न थी। परन्तु जब त्रेतायुग के आरम्भ में मनुष्यों में आवश्यकतासे अधिक परिग्रह और संग्रह करनेका लोभ समाया तब कृतयुगीन स्वयंकृत जीविका-पदार्थ लुप्त हो गये, और मनुष्यों की विभिन्न टोलियों में आहारसाधन-मृगया, शिकार आदि के लिये संघर्ष, कलह और लड़ाइयां होने लगीं। क्रमशः जीविकार्थ खोजमें प्रवृत्त रहनेके कारण जब कृषिकर्म आदिका शोध लगा,

तब स्वभावत: बलवत्तरों और दुर्बलों के दो वर्ग हो गये। उनमें बलवती टोलियों ने दुर्बल टोलियों के लोगोंको खेती-बारी और गोचारण आदि के लिये ग़ुलाम बनाया। पर, इन दो वर्गों में भी बराबर झगड़ा-लड़ाई और चढ़ा-ऊपरी होती रही; जिस से सुव्यवस्था और सुख-शान्ति नहीं हो पाती थी। उस परिस्थिति से ऊब कर, उन वर्गों के प्रमुख लोग, 'ब्रह्मा'१ के पास गये। ब्रह्मा ने, उनमें से जिस जिस टोली वा वर्गने जिस जिस कर्म में सिद्धि (दक्षता, कर्मकौशल) प्राप्त की थी, और यथायोग्य जीविका-वृत्ति के जिन जिन कामों को आरम्भ किया था, उन्हींके अनुसार परस्पर सहायक अङ्गाङ्गीभाव से चातुर्वर्ण्य की मर्यादा कर दी, और उनका झगड़ा मिटा दिया। उनमें जो लोग बलवान, शूरवीर और दूसरों की रक्षा करनेमें समर्थ थे, उन्हें क्षत्रिय, जो सज्जन निर्भय हो, क्षत्रियों को भी कर्त्तव्य-बोधन करने के योग्य थे, उनको ब्राह्मण, जो कृषिकर्मादि में दक्ष और धन-धान्य उपार्जन द्वारा आहार पहुंचा कर सब का संरक्षण कर सकते थे, उन्हें वैश्य, तथा सेवा-सहायता हस्तशिल्प, धावन आदिके कामों में कुशल, अनुद्बुद्ध-बुद्धि, अल्पवीर्य लोगों को शूद्र बना कर 'ब्रह्मा' ने चातुर्वर्ण्य की मर्यादा कायम कर दी, जिससे वे लोग परस्परकी रक्षा और योग-क्षेम करने लगे। कुछ काल के बाद पुन: अधिक परिग्रह, लोभ और अतितृष्णा के वशीभूत हो कर ब्रह्मा के द्वारा की गई वर्णमर्यादा में अधिक लोगों ने गड़बड़ मचाया और आपसमें मारा-मारी करने लगे, जिसमें अधिकतर 'मात्स्यन्याय' चरितार्थ होने लगा; बलवत्तर लोग, दुर्बल लोगों को वध-बन्ध निरोध द्वारा, खाने लगे, जैसे कि जल में बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को पकड़ कर खा जाती हैं। परिणामत: फिर शान्ति और सुव्यवस्था के लिये, समाज के अगुआ लोग 'ब्रह्मा' के पास गये। अबकी बार ब्रह्मा ने उनको 'मनु' के पास भेजा; वे लोग वहां गये—"मनुं ता: (प्रजा:) पुनरन्वयु:" और मनु महाराज को अपनी प्रार्थना सुनाई। मनु ने परिस्थिति का यथार्थ अनुभव कर, और प्रजा की मनोवृत्ति, प्रवृत्ति तथा आवश्यकता को अच्छी तरह समझकर, तदनुसार पुन: वृत्तिनियंत्रित वर्णमर्यादा स्थापित की और उसके विरुद्ध आचार-व्यवहार करनेवालों को दण्ड देनेके लिये अपने दो पुत्रों (प्रियव्रत और उत्तानपाद) को उनका शासक और राजा बना दिया। ब्रह्मा-बाले प्रथम प्रबन्ध में जो लोग शौर्यादि गुण-कर्मयोग-से क्षत्रिय माने गये थे, उनका काम केवल समाज का 'क्षत से त्राण' करना, बाह्य प्रदेशवालों के आक्रमण से अपने प्रदेश की रक्षा करना और चोर, डाकू, लुटेरे व्यभिचारी आदि से अपने राष्ट्र की जान-माल-इज्जत को बचाना था; किन्तु मनु द्वारा किये गये द्वितीय प्रबन्ध में स्वराष्ट्र के भीतरी उपद्रवों और वर्णमर्यादा तोड़क कार्यों को रोकने के लिये अपनी प्रजा के दुष्ट लोगों का दमन करना भी क्षात्र कर्त्तव्य में शामिल किया गया और दण्डधर राजाओं की प्रथा क़ायम हुई। कुछ पुराणों में ऐसा उल्लेख भी है कि ब्रह्मा ने ही यह दूसरी व्यवस्था भी की और मनु को उसका सञ्चालक बनाया।

ये सब बातें मत्स्य, वायु, मार्कण्डेय, लिङ्ग, कूर्म, ब्रह्माण्ड आदि पुराणों में और महाभारत में बड़े विस्तार से वर्णित हैं; उनमें से कुछ उद्धरण, दिग्दर्शन के लिये नीचे दिये जाते हैं:—

"ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान्दृष्ट्वा सिद्धिं तु कर्मजां,
मर्यादा: स्थापयामास यथारब्धा: परस्परम्।

१ 'ब्रह्मा' बृहत्तम, वृद्धतम, महापरिवृढ़, तत्कालीन-लोक-पितामहतुल्य, बड़ा सरदार, अथवा समष्टि-बुद्धि, समस्या पर विचार और उसका हल करनेके लिये एकत्रित हुए समाज-वृद्धों का बृहन्मत-बहुमत, भूय:संवाद, ऐकमत्यभूयस्त्व।

ततस्तासां च वृत्त्यर्थं वार्तोपायं चकार ह ;
तासां स्वयंभूर्भगवान् हस्तसिद्धिं स्वकर्मजाम् ।
संसिद्धकार्यो वार्त्तायां ततस्तासां प्रजापतिः,
मर्यादां स्थापयामास, ययाऽरक्षन्परस्परम् ।
ये वै परिग्रहीतारस्तासामासन्बलीयसः,
इतरेषां कृतत्राणान्स्थापयामास क्षत्रियान् ।
उपतिष्ठन्ति ये तान्वै बोधयन्तश्च निर्भयाः,
सत्यं ब्रह्म यथाभूतं ब्रुवन्तो ब्राह्मणाश्च ते ।
ये चाऽन्येऽल्पबलास्तेषां संरक्षाकर्मणि स्थिताः,
वैश्यानित्येव तानाह, कीनाशान्वृत्तिसाधकान् ।
सेवन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये रताः ।
निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च, शूद्रांस्तानब्रवीच्च सः ;
तेषां कर्माणि, धर्मांश्च ब्रह्मा तु व्यदधात्प्रभुः ।
संस्थित्यां तु कृतायां हि चातुर्वर्ण्यस्य तेन वै,
पुनः प्रजास्तु ता मोहाद् धर्मं तं नाऽन्वपालयन् ;
वर्णधर्मैरजीवन्त्यो व्यरुध्यन्त परस्परम् ।
ब्रह्मा बुद्ध्वा तु तत्सर्वं यथातथ्येन स प्रभुः,
क्षत्रियाणां बलं दण्डं युद्धमाजीवमादिशत् ।
संस्थित्यां सुकृतायां वै चातुर्वर्ण्यस्य तस्य ते,
वर्णास्तु दण्डभयतः स्वे स्वे वर्ण्ये व्यवस्थिताः ।
ततः स्थितेषु वर्णेषु, स्थापयामास चाऽऽश्रमान्"
( ब्रह्माण्ड पु०, पू० भा०, अनु० पा०)

'कृते त्वमिथुनोत्पत्तिर्वृत्तिः साक्षादलोलुपा,
प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सर्वानन्दाश्च भोगिनः ;
अधमोत्तमत्वं नास्त्यासां, निर्विशेषाः पुरञ्जय ;
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासु तस्मिन्कृते युगे ।०००
ततः प्रादुरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः ;
अवश्यं भावितार्थेन त्रेतायुगवशेन वै ।०००
सदाचारे विनष्टे तु बलात्कालबलेन च,
मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वैतद् भगवानजः ;
ससर्ज क्षत्रियान्ब्रह्मा मानवानां हिताय वै ;
वर्णाश्रमव्यवस्थां च त्रेतायां कृतवान्प्रभुः ;
यज्ञप्रवर्त्तनं चैव पशुहिंसाविवर्जितम् ।"
( कू० पु० पूर्ववि० अ० २६ )

"तत्र त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ते,
श्रौतं स्मार्त्तं च धर्मं च ब्रह्मणा च प्रचोदितं ;
दाराऽग्निहोत्रसंयोगमृग्यजुःसामसंज्ञितम् ।
इत्यादिलक्षणं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ।
परम्परागतं धर्मं स्मार्त्तं चाऽऽचारलक्षणं,
वर्णाश्रमाचारयुतं मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ।
तदा प्रमुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्मपालिताः,
क्रियावन्तः प्रजावन्तः समृद्धाः सुखिनस्तथा ;
ब्राह्मणाननुवर्त्तन्ते क्षत्रियाः, क्षत्रियान्विशः,
वैश्यानुवर्तिनः शूद्राः परस्परमनुव्रताः ।०००
वर्णाश्रमव्यवस्थानं तेषां ब्रह्मा तथाऽकरोत् ;
पुनः प्रजास्तु ता मोहात्तान्धर्मान्नन्वपालयन्
परस्परविरोधेन; मनुं ताः पुनरन्वयुः ।
मनुः स्वायम्भुवो दृष्ट्वा याथातथ्यं प्रजापतिः
ध्यात्वा तु शतरूपायां पुमान्स उदपादयत् ;
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रथमं तौ महीपती ।
ततः प्रभृति राजान उत्पन्ना दण्डधारिणः ;
प्रजानां रञ्जनाच्चैव राजानस्त्वभवन्नृपाः ।
वर्णानां प्रविभागाश्च त्रेतायां सम्प्रकीर्तिताः ;
संहताश्च ततो मन्त्रा ऋषिभिर्ब्रह्मणः सुतैः ।"
( वायुपु० अ० ५७ ; मात्स्ये अ० १४२ )

इन श्लोकों का संक्षिप्त आशय, ऊपर हिन्दी में आ चुका है। इन बातोंसे यह स्पष्ट ही विदित होता है कि वैदिक संहिताकाल में 'वर्ण' की कल्पना नहीं थी। उस समय मानव-समाज पहले अनेक टोलियों में पश्चात् पांच वर्गों में विभक्त हुआ, जो 'पञ्चजन' शब्द से सामान्यतः अभिहित होता था। सायण-प्रभृति वेद-भाष्यकारों ने अनेक स्थलों पर 'पञ्चजन' का अर्थ, 'चार वर्ण और पञ्चम निषाद' किया है। महर्षि यास्क ने भी पक्षान्तर में, 'पञ्चजन' शब्द का यह अर्थ

दिखलाया है. जिसका अनुसरण सायण-प्रभृति ने किया है —

"पञ्चजनाः—गन्धर्वाः, पितरो, देवा, असुरा, रक्षांसीत्येके ; चत्वारो वर्णा, निषादः पञ्चमः, इत्यौपमन्यवः" ( निरु० ३, ८, १ )

कुछ पण्डितों का मत ऐसा है कि मनुष्यों में सर्वप्रथम आर्य और अनार्य ये दो वर्ग हुए। अनन्तर कालक्रम से गुण-वृत्त और वृत्तिकर्मों के अनुसार आर्यों के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन भेद, तथा अनार्यों के दास ( शूद्र ) और दस्यु वा म्लेच्छ, ये दो भेद हो गये ; इस प्रकार पांच वर्ग निष्पन्न हुए और 'पञ्चजन' शब्द मनुष्य का पर्याय बन गया। इस विषय में अन्यान्य विद्वानों की और भी कई कल्पनायें हैं।

इनमें चाहे जो भी बात सही हो ; पर, वायुपुराण ( अ० ८ ) में 'पंचजन' वा पञ्चवर्ग मानव-समाज की व्यवस्था त्रेतायुग में हुई बतलाई है —

"धर्माऽधर्मौ न तास्वास्तां, निर्विशेषाः प्रजास्तु ताः ;
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन्कृते युगे ।०००।
अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः ;
वर्णाश्रमव्यवस्था च न तदासीन्न सङ्करः ।
ब्रह्मणो मानवास्ते वा उत्पन्ना योजनादिह,
शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव, कर्मिणः, सेविनस्तदा।
ततः प्रवर्त्तमानास्ते त्रेतायां यज्ञिरे पुनः
ब्राह्मणाः, क्षत्रिया, वैश्याः शूद्रा, द्रोहिजनास्तथा।"

इन वाक्योंसे साफ़ प्रकट है कि त्रेतायुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और 'द्रोहिजन' की उत्पत्ति ( विभाग-व्यवस्था ) हुई। यहां 'द्रोहिजन' से आर्य-चातुर्वर्णिकों का द्रोही, पांचवां अनार्य वर्ग, वा निषाद ही अभिप्रेत होगा। चाहे जो हो ; पर वेद के 'पञ्चजन' जातिमूलक 'वर्ण' नहीं थे ; अत एव मूल वेदों में वर्ण-व्यवस्था का उतना स्पष्ट, और प्राञ्जल उल्लेख नहीं है। उस समय जो पञ्चजन-वर्ग, नैसर्गिक विकास और सहज गुण-कर्म-भेद से स्वभावतः सम्पन्न हो गये थे, उनमें जात-पाँत, आवाह-विवाह, सहभोजन आदिका न तो भेद-भाव उत्पन्न हुआ था, नहीं कोई दुराव-बराव वा छूआ-छूत था। केवल प्रकृति-भेद और 'पेशा-भेद' के कारण सहजवत् उनके कई वर्ग बन गये थे, जातिरूप से उनका 'वर्ण' एक ही था। वर्णव्यवस्था तब हुई, जब वेदका भी विभाग; और यज्ञ-यागादि का प्रवर्त्तन तथा प्रचार हुआ। पूर्वोद्धृत पुराण-वार्ता से यह विदित हो चुका है कि ये सब काम त्रेतायुग में हुए। अत एव वर्णाश्रमधर्म को 'स्मार्त्त' ( स्मृति-विहित ) कहते हैं—"स्मार्तो वर्णाश्रमात्मकः" 'श्रौत' ( श्रुतिप्रोक्त ) नहीं। अतः मूल वेदग्रन्थों में वर्ण-व्यवस्था का उल्लेख न होना ठीक ही है। ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक और उपनिषदों में भी जिन ब्राह्मण आदि वर्णों की कुछ विकसित चर्चा है, वे भी जातिबन्धन से पूर्वभव और सहज-प्रवृत्ति-द्वारा अनुसृत विभिन्न पेशों ( जीविका-कर्मों ) के आधार पर संघटित, वर्ग-रूप ही थे ; उन में जाति-वर्णता वा वंशानुक्रमणी जातीयता नहीं मानी जाती थी और नहीं सहभोज, सहासन, परस्पर ब्राह्म—यौनसम्बन्ध आदि सामाजिक आचार-व्यवहारों में वर्णभेदनिमित्तक कोई दुराव-बराव था।

इतिहास पुराणों में यद्यपि जातिमूलक वर्णविभाग के द्योतक ऐसे भी बहुत वाक्य मिलते हैं, तथापि मूल-पौराणिक काल में भी मुख्यतः वृत्तिहेतुक,जीविका कर्मनिमित्तक, वा पेशामूलक ही वर्णव्यवस्था थी; अवश्य ही उस समय; वर्ण-निर्णय में ब्राह्मादिसम्पद्-भिजातत्त्व-लक्षण, स्वभावज गुणवृत्तों का ख़याल भी रक्खा जाता था ; अत एव 'अधिजननं' के लिये सती माता तथा सत्पिता की आवश्यकता समझी गई, और सद्वर्णत्व-योग्य विशुद्धवंश्य सन्ततिपरम्परा चलाने के सदुद्देश्य से सच्चरित्र-दाम्पत्यमय सत्कुलों की स्थापना हुई। उस कुलमर्यादा का मुख्य ध्येय यही था कि चाहे

जिस कुल में जिस-किसी भी दम्पती से जो भी बालक पैदा हो, उसे प्रकृति की देनके रूप में जिस वर्ण-की सहज स्वरूपयोग्यता स्वभावज-ब्राह्मणादिगुण-कर्म-सम्पत्ति, प्राप्त हो, उसमें शुद्धता, क्षमता और उत्कर्ष लानेके लिये, सत्कुलीन सती स्त्री में सत्पुरुष द्वारा, उसका 'अधिजनन'—'मातुरग्रेऽधिजननम्'—कराना चाहिये। ऐसी कुलव्यवस्थामें, जन्मसे ही किसी एक कुल में एक ही वर्ण की जाति-परम्परा को, सन्तान के गुण-कर्मों का विपर्यास हो जाने पर भी, हठात् नाम-मात्र से, चलाते रहना, आर्यपूर्वजों का अभीष्ट नहीं था। उनका साध्य, केवल 'सद्वर्णत्व' था; किसी भी कुल में जन्मा हुआ, बालक जिस वर्ण की गुण-कर्म-सम्पत्ति को अपने सहज संस्कार में लेकर पैदा हुआ हो, उसमें वह सच्चा, पक्का, समर्थ और समधिक उत्कर्षशील निकले; सद्ब्राह्मण, सत्क्षत्रिय, सद्वैश्य अथवा सच्छूद्र बने; असद्ब्राह्मण, असत्क्षत्रिय, असद्वैश्य वा असच्छूद्र बनकर समाजका अशुभ न करे; बस, इतना ही कुलमर्यादा और संयत दाम्पत्यव्यवस्था का एकमात्र उद्देश्य था। यही कारण है कि सब कुलों में सभी वर्ण के स्वरूपयोग्य बालक पैदा होते थे; और कभी-कभी एक ही कुल में एक ही मा-बाप से चारों वर्ण के बच्चे उत्पन्न हुए सुने जाते हैं—

"चत्वारोऽपि पृथग्वर्णा एकदेहसमुद्भवाः।"

यह बात इतिहास पुराणों में बहुशः वर्णित है। 'मनु' नाम्नी एक ही कश्यप-पत्नी से चारों वर्णवाले बच्चे पैदा हुए थे—

"मनुर्मनुष्याञ्जनयद् राम, पुत्रान्यशस्विनः
ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्शूद्रांश्च मनुजर्षभ।" (वा०रा०)

'मनु नामक एक ही आदिम पुरुष से चारों वर्णों के लोग उत्पन्न हुए; इसीलिये इनके सामान्य नाम—मनुज, मनुष्य, मानव आदि, 'मनु' शब्द से ही अपत्यार्थ प्रत्यय करके व्युत्पन्न हुए। यह बात महाभारत में स्पष्ट है।

"धर्मात्मा स मनुर्धीमान्, यत्र वंशः प्रतिष्ठितः;
मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत्;
ब्रह्म क्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तु मानवाः।"

ऐसे ही एक ही कुल में एक ही मा-बाप से चातुर्वर्ण्य-सन्तान की उत्पत्ति-कथाओं से इतिहास-पुराण, भरे पड़े हैं।

"पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको, यस्य शौनकः;
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च,
एतस्य वंशे सम्भूता विचित्रैः कर्मभिर्द्विजाः।"
(वायुपु०, हरिवं०)

"एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे,
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः।"

एक ही ऋषभदेव के वंश में क्षत्रिय, ब्राह्मण, और श्रमण हुए थे—

"तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समन्ततः,
कर्मतन्त्रप्रणेतारः एकाशीतिर्द्विजातयः,
नवाऽभवन्महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः
श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः।"
(भाग० स्कं० ११)

एक ही मा-बापके दो बेटे—'शन्तनु' और 'देवापि' थे। उनमें एक (शन्तनु) क्षत्रिय राजा हुआ, और दूसरा (देवापि) ब्राह्मण बनकर उसका पुरोहित हो गया। (निरु० अ० २, खं० ११—१२)

यह प्रथा हाल तक ज़ारी रही है। कई गावों के द्विज लोग—विशेषतः क्षत्रियवर्ग—पुरोहित न मिलने पर, अथवा पुरोहित-कुल का उच्छेद हो जाने पर अपने दौहित्र वा भाँजे को स्वकुटुम्ब का पुरोहित बना कर गाँव में बसा लेते थे; उसीसे पुरोहितपरिवार पुनः चल पड़ता था, और वह काल-क्रम से पूरा ब्राह्मण बन जाता था। फिर तो कुछ विशेष वर्ष बीत जानेपर

वह बनावटी ब्राह्मण-परिवार भी अपना जन्मसम्बन्ध साक्षाद् ब्रह्मदेव के मुख से ही जोड़ लेता था, और अन्य जातीय जनता की पश्चात्कालीन सन्ततियों में चिरकाल व्यतीत होने से, उसके वर्णान्तर से पुरोहित और ब्राह्मण बननेका इतिहास, स्वभावतः लुप्त हो गया होता था, इसलिये उसके जन्मानुक्रम से ब्रह्मसन्तान होनेके दावे पर, किसी को अविश्वास वा एतराज़ करने का कोई कारण नहीं रह जाता था। ऐसे 'भगिन-मान' ब्राह्मणों की कई उपजातियां अब भी विद्यमान हैं। देहात में यह कहावत प्रसिद्ध है कि—'भगिना (भाँजा) और ब्राह्मण एक है।

अनेक निमित्तों से कई राजाओंने भी अन्य जातियों के दल के दल को ब्राह्मण बना डाला, जो 'सवालक्खी' के नाम से आज भी याद किये जाते हैं। कई, सुधारक-साधु-सम्प्रदायवालों ने भी ऐसा ही किया; बाह्य देशों से आये हुए शक, यवन, हूण आदि को हिन्दुत्व और चातुर्वर्ण्य में मिला लिया। अर्वाकाल तक यह प्रथा चालू थी। रामानन्द के शिष्यों ने मिश्र तक जाकर वहां के लोगों को हिन्दू-वैष्णव बनाया था; यह कथा भविष्य-पुराण में वर्णित है।

इस प्रकार, 'पेशा' परिवर्त्तन द्वारा वर्णान्तर से ब्राह्मण बना लेने की बात आज-काल, कट्टर जातिवाद के कारण भले ही अनुचित लगे, और उसे छिपाने के लिये सच्चे इतिहास को न माना जाय; परन्तु पूर्व-काल में वृत्ति-प्ररिवर्त्तननिमित्तक वर्णान्तरीकरण, महा-जनपरिगृहीत और शिष्टाचारमय था; और उसका न्याय्य और धर्म्य आधार था, 'कर्मणा वर्णः' का सच्छा-स्त्रीय आर्ष भाव। आर्ष युग में, वर्णान्तर-परिवर्त्तन की बात तो अलग रहे, एक ही व्यक्ति, वृत्ति-कर्म के मिश्रण से, तदनुसार अनेक वर्णवाला: माना जाता था। क्षात्रधर्मयुक्त—"क्षत्रोपेता द्विजातयः" त्रैवर्णिकों के कई उदाहरण, पुराण आदि में विद्यमान हैं। 'वृत्र' प्रभृति अनेक वैदिक, ऐतिहासिक, और पौराणिक पुरुष, 'ब्रह्म, क्षत्रेण सङ्गतं' होनेके कारण, ब्राह्मण, तथा क्षत्रिय दोनों ही माने जाते थे। यज्ञदीक्षित त्रैवर्णिकों का ब्राह्मण हो जाना वेद के ब्राह्मण-ग्रन्थों में ही अनेक स्थलों पर स्पष्टतर लिखा है—

"तस्मादपि राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयात्; ब्राह्मणो हि जायते, यो यज्ञाज्जायते" इत्यादि। (शतप० ब्रा०)

ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्न्यास आश्रम में प्रवेश करने पर सभी जाति के लोग, ब्राह्मण' ही हो जाते हैं; क्योंकि इन आश्रमों में प्रवक्तृत्व और प्रतिग्रह ही आहारसाधन, पेशे होते हैं—

"एतां काष्ठामवष्टभ्य सर्वो ब्राह्मण उच्यते।"

एक ही शरीर से, एक वर्ण का दूसरे वर्ण में बदल जाना तो बिलकुल साधारण काम है; क्योंकि मुख्यतः पेशेके परिवर्त्तन-मात्र से, वर्ण बदल जाता है। परन्तु एक ही शरीर और जीवन में जन्म-जाति से च्युत हो, दूसरी निहीन जातियों में परिणत होने, तथा नीच जाति से उत्कर्ष पा कर उच्च जातियों में बदल जानेके अगणित ऐतिहासिक दृष्टान्त और लोक-प्रत्यक्ष उदाहरण, मिलते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में कथा है कि महर्षि विश्वामित्र के बहुतेरे पुत्र, उनके शाप वा बहिष्कार से, स्वजाति-च्युत हो, अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मूतिब आदि अनेक म्लेच्छ जातियों में बदल गये। 'ऐतश' मुनिने अपने एक पुत्र को जाति से बाहर कर नीच जाति का बना दिया। राजा सगर के सन्तोष के लिये, उनके पुरोहित 'वसिष्ठ' महाराज ने, अनेक क्षत्रिय जातियों को पतित करके म्लेच्छ बना दिया। वसिष्ठादि ब्राह्मणों के 'अदर्शन' से (सगर-शत्रु क्षत्रियों के पौरोहित्य-कर्म आदि को छोड़, उनसे ब्राह्म और यौन सम्बन्ध तोड़ देने से) अनेक क्षत्रिय-जातियां 'वृषलत्व' प्राप्त कर पुण्ड्र, ओड्र, द्रविड़

काम्बोज़, यवन, शक, दरद, पारद, पह्लव, चीन, किरात खश आदि म्लेच्छ जातियों में बदल गई।

( मनु० अ० १० । महाभारत० )

एक ही कुल में, एक ही मा-बाप से अनेक वर्ण-संस्कारवाले ही नहीं, प्रत्युत विभिन्न-प्रकृति के नाना जातिसम्पदभिजात बच्चे भी पैदा होते थे।

"यदोस्तु यादवा जाता:, तुर्वशोर्यवना: स्मृता:,
द्रुह्यो: सुतास्तु वै भोजा:, अनोस्तु म्लेच्छजातय: ।'
"नरिष्यत: शका: पुत्रा:"

इत्यादि पुराणवार्ता से यह बात प्रसिद्ध है। लोक में भी एक जाति से, दूसरी अनेक जातियोंकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष ही देखी जाती है। जातिच्युत हिन्दुओं से बने अगणित मुसलमान, ईसाई आदि, इस हिन्दुस्थान में ही विराज रहे हैं; यह धर्मशास्त्रीय जात्युत्कर्षाऽपकर्ष-वाद का प्रत्यक्ष उदाहरण है। इसलिये वर्ण के परिवर्त्तन की बात तो दरकिनार, जन्म से प्राप्त जातियों का भी परिवर्त्तन, लोक-शास्त्रसंमत है। अन्यथा, यदि अश्वत्व, गोत्व मनुष्यत्व आदि की तरह ब्राह्मणत्व आदि जातियां भी अपरिवृत्तिसह होतीं, तो कोई भी ब्राह्मण, वा क्षत्रिय, जातिच्युत होकर 'वृषल' वा म्लेच्छ न होता, नहीं एक भी हिन्दू, बिरादरियोंद्वारा जातिबाहर किये जाने पर हिन्दुत्त्व को खोकर मुसलमान बन सकता; हज़ार प्रयत्न करने पर भी बैल को घोड़ा नहीं बनाया जा सकता। पर, ब्राह्मण-प्रभृति वर्णों और जातियों का, क्रियाविलोप, ब्राह्मण-अदर्शन, स्ववृत्ति-त्याग, परवृत्तिपरिग्रह, धर्मान्तरग्रहण, अन्य सम्प्रदाय-प्रवेश, सामाजिक-नियमावज्ञा आदिके कारण, दूसरे वर्णों और दूसरी जातियों में बदल जाना शास्त्र से तथा लोक-व्यवहार से भी सिद्ध हुआ बतलाया जा चुका है।

अस्तु, मुझे इस विवेचन से इतना ही सार सूचित करना है कि बुद्धपूर्वकाल में भारतीय मानव समाज-की क्या अवस्था थी। इस विषय में ऊपर की बातों से यह खुलासा हो गया होगा कि वैदिक-संहिताकाल से उपनिषत्काल पर्यन्त बुद्धपूर्वकाल में, बर्ग, वर्ण और जाति के रूप में मनुष्य समाज का विकास हो चुका था। परन्तु उपनिषत्काल तक की वर्णव्यवस्था में गुण-कर्म को ही आधार माना जाता था; यह बात कवष ऐलूष, ऐतरेय, जाबाल, जानश्रुति-प्रभृति के उपाख्यानों से सुविदित है। यद्यपि योनिविशुद्ध (सन्माता-पितृवत्) कुलों की स्थापना हो चुकी थी और दाम्पत्य सम्बन्ध की पवित्रता पर पर्याप्त ध्यान दिया जाने लगा था, तथापि उस समय तक, उन कुलों का उद्देश्य, शुद्ध-वंश्य सन्तान उत्पन्न करना मात्र था; न कि वंशा-नुक्रम से, 'जन्मना वर्ण:' चलाना। समाज को सद्वर्ण की आवश्यकता थी: असद्वर्ण की नहीं: अत: उन्होंने देखा कि सत्कुलीन सद्दम्पतियों द्वारा अधिजनन कराने से, बालक, सद्वर्णसम्पदभिजात होगा, और वह स्वभावप्रभव गुणों से प्रविभक्त कर्त्तव्यों तथा जीविकाकर्मों के अनुसार, चाहे जिस वर्ण के रूप में नैसर्गिक भाव से विकसित होगा, उसमें स्वयं उत्कर्ष पा कर समाज के योग-क्षेमसाधन में स्वकर्त्तव्य का (अपने गुण-कर्मानुसार सहज प्राप्त 'वर्ण' के धर्म का) पालन समधिक योग्यता से करेगा। अत: उस समय का प्रत्येक सत्कुल, और सभी सत्कुलीन दम्पती, इतना ही चाहते थे कि उनका सन्तान, भविष्य में, अपने स्वभावज गुण-कर्मानुसार नैसर्गिक रूपसे चाहे जिस वर्ण में विकसित और परिणत हो जाय, उसमें वह सद्वर्ण हो, असद्वर्ण वा दुर्वर्ण नहीं। ऐसे विचार से प्रेरित हो, वे लोग, समाज के लिये सामान्यत: सचा-तुर्वर्ण्य पैदा करने के उद्देश्य से, मैथुनधर्म और गर्भा-धानादि कृत्यों में ही ऐसे सुसंस्कार डालना चाहते थे, जिससे बालक, चाहे किसी वर्ण की गुण-सम्पद् और योग्यता को लेकर उत्पन्न हो, पर उसमें सद्वृत्ति और

उत्कर्ष प्राप्त करे। तदनुसार चाहे किसी भी कुल में कोई पैदा हुआ हो; पर वह जिस वर्णसम्पत् का संस्कार लेकर जन्मा हो, और जिस वर्ण के गुण-कर्म, उसके जीवनारम्भ से स्वभावतः विकसित होने लगें, उसी वर्ण में उसकी भर्ती होती थी। यही कारण था कि एक ही कुल और मा-बाप के अनेक लड़के विभिन्न वर्णों के हो जाते थे, इसके कुछ प्रमाण इस लेख में पहले दिये हैं; वैसे और भी बहुत प्रमाण, इतिहास-पुरणों में भरे पड़े हैं। अतः उपनिषत्काल—और उससे आगे पुराणकाल तक, कुल-जातियों की स्थिति सद्वर्ण योग्य सन्तानों के अधिजनन के लिये थी; क्योंकि यह भाव, ग्रामीण लोगों में भी व्याप्त हैं कि आदमी, माता की कोख से ही भला वा बुरा बनकर जन्म लेता है। जो मनुष्य, माता के गर्भ से ही, जैसा दैवी वा आसुरी सम्पदभिजात होता है, वह अपने जीवन में भी वैसा ही—दैव वा आसुर स्वभाव-का बन जाता है। (१) सत्त्वप्रधान, ज्ञानशक्तिमान् शम-दमादिगुणसम्पन्न, वर्चस्वी; (२) रजःप्रधान, क्रियाशक्तिशाली, शूर-वीर, धीर, तेजस्वी, (३) तमः-प्रधान, इच्छिशक्तिमय, अर्थक्रियादक्ष, दाक्षिण्यसम्पद्-भिजात, महस्वी; (४) अनुद्बुद्धत्रिगुणमय, शरीर-शक्तिप्रधान, श्रमशील, साहसिक, परिचरण-कर्मकर, रहंस्सहस्तरस्वी, होनहार मनुष्य, माता के गर्भ से ही इन गुणों के बीज (संस्कार) को लेकर तत्तद्वर्णसम्पद्-भिजात होते हैं; ऐसे लोग, जन्म के बाद, केवल 'ठोंक-पीट कर वैद्यराज' बनाने से नहीं बनते, उनमें इन गुण-कर्मों का बीज सहज होना चाहिये। अन्यथा मेहनत की मज़दूरी तो कुछ न कुछ मिलेगी ही; पर, लोकाभ्युदयिक सद्वर्णत्व का उत्कर्ष उन में यथेष्ट न होगा। अतः सन्तानार्थियों को, अपने भलेके लिये, और समाजकी ख़ातिर सद्धर्मपालन में यावच्छक्य उत्कृष्टतम बनानेके लिये, कुलमर्यादा और दाम्पत्य-सम्बन्ध की पवित्रता द्वारा गर्भसे ही अपने सन्तान को यथासम्भव सद्वर्ण बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। यही, इतिहास-पुराणादि के जातिवादवद् आभासमान बचनों का वास्तविक तात्पर्य है।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।'
'जन्मनैव महाभागो ब्राह्मणोनाम जायते।'

उपर्युक्त दिग्दर्शन से इस बात को कुछ स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि बुद्धपूर्व कालमें - संहिता से पुराणकाल तक—मनुष्य-समाज का वन्यावस्था से नागरिकत्व तक जो सहज विकास हुआ, उसका नैसर्गिक कारण क्या था, और उससे निष्पन्न मानव-समाज, उस समय तक किंरूप, किमाकार, किमाचार, कथमितिकर्त्तव्य हो, कैसी स्थिति में पहुंच चुका था। इससे वाचक सज्जनों को यह विदित होगा कि, सर्वप्रथम कृतयुग में, मनुष्यों को प्रकृति के साम्राज्य में स्वयंसिद्ध, स्वतः किया-कराया, अकृत्रिम, प्राणि-प्रयत्न (मनुष्यकृतिसाध्य, कृषिकर्मादि) के बिना ही सर्वत्र उत्पन्न, सब कुछ आहारादि-साधन, यथेष्ट मात्रा में अनायास उपलब्ध होता था। जब तक वे लोग प्रकृति के उस हरे-भरे, सर्वशस्यसम्पन्न, अदेव-मातृक साम्राज्य से शरीरस्थिति-निमित्त, प्रयोजनमात्र पर्याप्त, आहारादिसामग्री प्रतिदिन लेकर (शौवस्ति-कत्वं विभवा न येषां व्रजन्ति) सन्तुष्ट रहते, 'आज खाय, कलके लिये झंखे, उसका गोरख, संग न रक्खे' इस प्रकार अनुचित परिग्रह का भाव नहीं रखते थे, तब तक, उनको सब सुख-शान्ति थी, किंसी अपेक्षित वस्तु का अभाव नहीं था, सब कुछ प्रकृतिद्वारा किया-कराया तैयार मिलता था, उस समय आहारादि-निमित्तक संघर्ष, कलह, झगड़ा-लड़ाई का और तदर्थ टोली, वर्ग, वर्ण, जाति-प्रभृति रूप में मानव समाज के क्रमिक विकास का, तथा स्वामिदास वा मालिक-गुलाम आदि विषम सामाजिक सम्बन्ध का कोई कारण ही न था,

अतः सुतरां, कृतयुग में सब लोग, एक ही वर्ण, सम-योगक्षेम और समान-शीलव्यसन थे। ये बातें नीचे उद्धृत महाभारत और ब्रह्माण्डपुराण के श्लोकों से स्पष्ट विदित होती हैं—

"कृतं नाम युगं तात, यत्र धर्मः सनातनः।
कृतमेव न कर्त्तव्यं, तस्मिन्काले युगोत्तमे।
न तत्र धर्माः सीदन्ति, क्षीयन्ते न च वै प्रजाः;
ततः कृतयुगं नाम कालेन गुणतां गतम्।
न सामऋग्यजुर्वेदाः, क्रिया नासीच्च मानवी,
नाऽभिध्याय फलं तत्र धर्मः सन्न्यास एव च।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चाऽकृतलक्षणाः;
कृते युगे समभवन् सत्कर्मनिरताः प्रजाः।
समाश्रयं समाचारं समज्ञानं च केवलं,
तदा हि समकर्माणोऽवर्णा धर्मानवाप्नुवन्।
एकदेवसमायुक्ता, एकमन्त्रविधिक्रियाः,
एकवेदाऽपृथग्धर्मा धर्ममेकमनुव्रताः,
चातुराश्रम्ययुक्ता न ; कर्मणा कालयोगिना,
अकामफलसंयोगात्प्राप्नुवन्ति परां गतिम्।
आत्मयोगसमायुक्तो धर्मो योऽकृतलक्षणः
कृते युगे चतुष्पादोऽचातुर्वर्ण्यस्य शाश्वतः।
ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते धर्माश्च विविधाः क्रियाः,
त्रेतायां, भावसङ्कल्पाः क्रियादानफलोपगाः।
प्रचलन्ति न वै धर्मात्तपोदानपरायणाः
स्वधर्मस्थाः क्रियावन्तो नरास्त्रेतायुगेऽभवन्"

(म० भा० वन० अ० १४६)

"ताः प्रजाः कामचारिण्यो मानसीं सिद्धिमास्थिताः,
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासामासीत्कृते युगे।
धर्माऽधर्मौ तदा नस्तः कल्पादौ प्रथमे युगे;
स्वेन स्वेनाधिकारेण जज्ञिरे तु प्रजाः कृते।
समं जन्म च रूपं च प्रीयन्ते चैव ताः समाः।
तदा सत्यमलोभश्च सन्तुष्टिश्च सुखं दमः;
निर्विशेषाश्च ताः सर्वा रूपायुःशिल्पचेष्टितैः
अबुद्धिपूर्विका वृत्तिः प्रजानां भवति स्वयम्।
अप्रवृत्तिः कृत-द्वारे कर्मणोः शुभ-पापयोः;
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदासन्न तस्कराः;
अनिच्छाद्वेषयुक्तास्ता वर्त्तयन्ति परस्परम्।
तुल्यरूपायुषः सर्वा अधमोत्तमवर्जिताः,
सुखप्राया विशोकाश्च उत्पद्यन्ते कृते प्रजाः।
लाभालाभौ न वा स्यातां, मित्रामित्रौ प्रियाप्रियौ;
मनसा विषयस्तासां निरीहाणां प्रवर्त्तते;
नाऽति हिंसन्ति वान्योन्यं, नानुगृह्णन्ति वै तदा।"

(ब्रह्माण्डपु० पूर्वभा० अनु०, अ० ७)

इन श्लोकों में प्रदर्शित सहज, सरल, सुखशान्ति-मय स्थिति के बहुत समय बाद, जब मानवी प्रजा में लोभ प्रवेश कर गया ; जब लोग, प्रकृति के साम्राज्य-में, भूतल पर अकृत्रिम-रूप से, स्वयं किये-कराये (कृत-मेव, न कर्त्तव्यं) कन्द, फल, धान्य आदि आहार-साधनों को तथा दूसरे भोगोपकरणों को भी, आवश्यकता से अधिक बटोर कर रखने लगे, तब सहज ही, काम (विषयाभिलाष) बढ़ा और "जिमि प्रतिलाभ लोभ-अधिकाई" होने लगी। लोभ और काम से जायमान अनुचित परिग्रहभाव के कारण, अधिकाऽधिक संग्रह-शील मनुष्यों में, एक के दूसरों से अधिक बटोर लेने की इच्छा और प्रवृत्ति की बदौलत, होनेवाली छीना झपटी और लूट में, परस्पर संघर्ष, चढ़ा-ऊपरी, मारा-मारी तथा तन्मूलक राग-द्वेष का होना स्वाभा-विक ही था, और वही हुआ—

"ततःकालवशात्तासां रागद्वेषादिकोऽभवत्;
ततः सा सहजा सिद्धिः तासां नाऽतीव जायते।
तासु क्षीणास्वशेषासु कालयोगेन ताः पुनः
वार्तोपायं पुनश्चक्रुर्हस्तसिद्धिं च कर्मजाम्।"
'राग-लोभौ समासाद्य प्रजाश्चाकस्मिकौ तदा,
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदी-क्षेत्राणि पर्वतान्,
वृक्षगुल्मौषधीश्चैव, मात्सर्याच्च यथाबलम्।

तैन दोषेण ता नेशुरोषध्यो मिषतां द्विज,
अग्रसद् भूयु गपत्तास्तदौषधीर्महामते।
ततस्तासु प्रनष्टासु विभ्रान्तास्ताः पुनः प्रजाः
ब्रह्माणं शरणं जग्मुः क्षुधार्त्ताः परमेष्ठिनं
वृत्त्यर्थमभिलिप्स्यन्त आदौ त्रेतायुगस्य तु।"

( मार्क०, वायु०, विष्णु०, लिं०, पद्म०-पुराणेषु )

मानवी प्रजा में कालवशात् लोभमूलक राग-द्वेष (स्वजनपक्षपात और दूसरों के प्रति वैरभाव)—उत्पन्न हो गये; तब उनके आहारादिलाभ की सहज सिद्धि, धीरे धीरे क्षीण होने लगी, और कुछ काल के बाद बिल्कुल नष्ट हो गयी। फिर उन्हों ने हस्तक्रिया से सिद्ध होनेवाले 'वार्तोपाय' ( जीबिका-कर्म ) खेती-बारी, पशुपालन आदि ) शुरू किये; उसमें भी, उत्पादन के क्षेत्रों और साधनों पर अधिकार ज़माने केलिये अहमहमिका, चढ़ा-ऊपरी होने लगी फलतः उन लोगों ने नदी, खेत, पहाड़, वृक्ष, गुल्म, ओषधि आदि पर, बड़े मात्सर्य के साथ, अपने अपने बलके अनुसार न्यूनाधिक क्षेत्रों में कब्ज़ा किया, उस दोष से नतीज़ा यह हुआ कि उनके देखते देखते वे सारी ओषधियां—शस्य-सम्पदायें—नष्ट हो गईं; भूदेवीने, उन सबको एक साथ ग्रस लिया; वे सभी मिट्टी में मिल गईं। इस प्रकार, शस्यसम्पत् का सर्वनाश हो जाने पर, वे लोग, किंकर्त्तव्य विमूढ़ और क्षुधार्त्त हो, जीविका का कोई श्रेयस्कर उपाय जानने के लिये 'ब्रह्मा' की शरण गये; उसके बाद 'ब्रह्मा' ने गुण-कर्म के आधार पर वर्ग-विभाग करके उन लोगोंमें वर्णाश्रम की जो अनतिविषम सुव्यस्था कर दी, उसका निर्देश, इस लेख में पहले ही हो चुका है।

इस संक्षिप्त विवेचन से भी यह बात समझ में आ जायगी कि मानव समाज का एक वर्ण से चातुर्वर्ण्य तक विभाग और विकास स्वतः नैसर्गिक भाव-से हो गया; उसके लिये किसीने बुद्धिपूर्वक कोई प्रयत्न नहीं किया। 'ब्रह्मा' और 'मनु' आदिके द्वारा वर्णव्यवस्था होनेकी जो बात है, वह तो समाज में स्वतः प्रवृत्त, निसर्गतः संवृत्त, वर्णविभाग के नियमन, नियन्त्रण और क्रमव्यवस्थापन मात्र की सूचना है। ऊपर उद्धृत इतिहास-पुराणादि की बातों से अत्यन्त स्पष्ट है कि वस्तुतः आहारार्थ अतितृष्णा, अतिमात्र परिग्रह-प्रवृत्ति, तन्निमित्तक संघर्ष और संग्राम, स्व-स्वसंग्राम को बलवत्तर और लूट-मारमें विजयशील बनानेके लिये, अपने अपने प्रादेशिक सहवासियों और रक्त-सम्बन्धियों-कुटुम्ब-परिवारोंकी टोलियां बनाकर सङ्घशक्ति को प्रबल करना, एक टोली द्वारा दूसरी टोलियों में से पकड़े गये लोगों को गुलाम बनाने के कारण, स्वामि-दास वा मालिक-गुलाम का वर्गभेद होना, धीरे-धीरे आवश्यकता-वृद्धि, जनबुद्धिविकाश, कर्मज सिद्धि प्रभृति के कारण शिक्षा, रक्षा, जीविका, सेवा-सहायता आदि के कामों में स्वभावतः प्रवृत्त, आयुक्त और नियुक्त लोगों का, तत्तत्कर्मानुसार चातुर्वर्ण्य में विभक्त होना, ये सब घटनायें, हेतु-हेतुमद्भाव वा कारण-कार्यरूप से स्वतः निसर्गतः, प्रकृत्यैव, होती आईं, इनके लिये किसी व्यक्ति वा सङ्घ को आरम्भ-काल से समझ-बूझ कर, कोई उपज्ञा वा आविष्कार नहीं करना पड़ा।

पहले 'ब्रह्मा' ने, और चिरकाल के बाद फिर पतन हो जाने पर, 'मनु' ने, तत्तकालीन लोक प्रतिनिधियोंकी प्रार्थना पर जो समाजव्यवस्थापन पुनः किया था, वह मानवजाति में, पूर्वप्रदर्शितरीति से, निसर्गतः उद्गत और विकसित वर्णविभाग में ही मर्यादा करणमात्र था; न कि नये सिरेसे वर्णनिर्माण।

( अपूर्ण )

# "मानव"

रचयिता—"रसिक"

रक्त में मानव नहा तू, खेलता क्यों आज होली ?
विश्व में हैं राष्ट्र कितने, छिन गयीं जिनकी ध्वजायें ।
बन गये श्मशान कितने, जल रहीं धू धू चितायें !
नाचती रण-चण्डिका है, भर रहा है काल झोली !
मानवों के रक्त का तू क्यों हुआ मानव पिपासा ?
रक्त पी कब शान्त होगी, तृषित उर की यह पिपासा ?
संहार करती विश्वका, नर-राक्षसों की आज टोली ।
रक्त रञ्जित अवनि अम्बर, कर रहा तू स्वार्थवश है।
साम्राज्यलिप्सा में मदान्ध, आज क्यों इतना विवश है ?
बरसा रहा जो गगन से है, प्राणघातक बम्ब गोली ।
आर्त्तस्वर में करुण-क्रन्दन कर रहा है जगत सारा।
काँपती यह वसुन्धरा है, थरथराता व्योम सारा !
चेत रे ! अब चेत मानव ! शान्त कर प्रज्वलित होली !
कर अहिंसा अस्त्र ले औ, सत्य का बन जा पुजारी !
मानवों के हृदय का एक मात्र होगा छत्र धारी।
विश्व पूजेगा तुझे तब, हाथ ले दधि, दूब, रोली।
रक्त में मानव ! नहा तू खेलता क्यों आज होली ?

# विचारों को उच्च बनाओ

अपने मानस को फुलवारी को सुन्दर विचारों के फूलों से सजाओ, तुम्हारा जीवन सौरभमय बनेगा। सद्ग्रन्थों और सत्पुरुषों के विचारपुष्प अपनी फुलवारी में लाकर रक्खो। सतत ध्यान और परिश्रम से इसकी देख भाल करते रहो, नहीं तो इसमें व्यर्थ का झाड़-झङ्खाड़ उत्पन्न हो जाएगा।

निश्चय जानो, संसार में अधिकांश बुराई तुम्हारे कुत्सित विचारों के कारण दिखाई देती है। तुमने स्वयं ही अपने आपको बन्धन में जकड़ रक्खा है, कल्पित भयों और आशङ्काओं ने ही तुम्हारे जीवन को नरक-तुल्य बनाया है। यह तुम्हारे कुत्सित विचारों का हो परिणाम है कि भगवान् की इस सुन्दर सृष्टि में भी तुम्हें यत्र तत्र दोष दिखाई देते हैं।

मन का यह धर्म है कि वह कभी खाली नहीं रहता; सदा अच्छे बुरे विचारों में लगा ही रहता है। "मन एव मनुष्याणां कारणम् बन्धमोक्षयोः" मन ही मनुष्यों की मुक्ति और बन्धन का कारण है। यदि स्वतन्त्रता के दिव्य आनन्द का उपभोग करना चाहते हो, तो आज ही से मनको वशमें करनेका प्रयत्न प्रारम्भ करो और उसे यौवन, स्वास्थ्य और उत्साह के विचारों से पूर्ण कर दो। शुद्ध और पवित्र विचारों का प्रभाव मन और शरीर दोनों पर पड़ता है। विचार ही सारे संसार का नियन्त्रण करते हैं। जैसा सोचोगे वैसा बन जाओगे। जो खेल हो चुका उसे भूल जाओ, भविष्य की बागडोर भगवान् के हाथों में सौंप दो और वर्तमान में रहो। विचार कर देखो, सुख, दुःख तो तुम्हारे पूर्वजन्म के कर्मानुसार मिलते हैं; इन्हें तो हर हालत में भोगना ही पड़ेगा। जब कष्टों को सहना ही है तो बहादुरी से उनका मुकाबिला क्यों नहीं करते ?

कविवरेण्य कालिदास की इस उक्ति "कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा; नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" अर्थात् किसने सदा सुख का सुनहला संसार देखा है ? और किसने हमेशा कष्ट ही कष्ट झेले हैं ? मनुष्य की दशा तो चक्र के तुल्य है, 'कभी सुख और कभी दुःख' को स्मरण करते हुए आगे बढ़ते चले जाओ।

—श्री लहरी

# मनस्विता

ले० —श्रीधर्मपाल "उपस्नातक" गुरुकुल काँगड़ी

नीतिशास्त्र के सदुपदेशक शतकत्रय रचयिता कविप्रवर भर्तृहरि का यह श्लोक मनस्वी मनुष्यके गुणोंका बखान बड़ी उत्तम रीतिसे कर रहा है कि —

मालतीकुसुमस्येव द्वे वृत्तीह मनस्विनः
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ।

मनस्वी मनुष्य की स्वभावतया यह प्रवृत्ति होती है कि या तो वो एकान्त निर्जन प्रदेश में अपने आपको खो देगा, नहीं तो सम्पूर्ण जगतीतल को झकझोर कर हिला देनेवाला, मनुष्यों में अग्रगण्य नेता बन कर संसारका पथ प्रदर्शन करेगा ।

मनको वशमें करनेसे एक दैवी शक्ति का प्रादुर्भाव होता है । मनुष्य शब्दकी उत्पत्ति 'मननात् मनुष्यः' से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्य प्राणियोंसे इसकी किस चीज़में विशेषता है । जहां अन्य प्राणियों से आहार,निद्रा,भय, मैथुन इन चार कार्योंमें इसकी समता है, वहां मस्तिष्क शक्तिका विकास और धर्मका गुण अधिकतामें है । इसीलिए बुद्धिशून्य व्यक्तिको गधे या उल्लूकी उपाधि दी जाती है ।

यह तो सब मनुष्योंकी सामान्य मननशक्तिका वर्णन हुआ, जब स्वयं यह समझमें आ सकता है कि यदि कोई मनुष्य इस मनन शक्तिका विकास कर ले और सच्चे अर्थोंमें मनस्वी बन जाय तो वह कितनी महान शक्तिका भण्डार बन सकता है ।

लेकिन यह कथन जितना श्रुतिमधुर है उतना कार्यमधुर नहीं । कहावत मशहूर ही है 'कहना आसान है करना मुश्किल' मनको वश करनेकी प्रक्रियामें बड़े ऋषि महर्षि भी विचलित हो गये। अनेक इसको काबू करनेका प्रारम्भ भी न कर सके । इसी कठिनाई से अभिभूत होकर अर्जुनने भगवान्से अपनी असीम भक्ति प्रकट करते हुए गीतामें कहा है—

"चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्"

परन्तु मनका निग्रह कठिन है असम्भव नहीं। संसारमें कोई चीज़ असम्भव नहीं है, सच्ची इच्छा होनी चाहिए, सफलताके अनेकों मार्ग निकल आते हैं। तभी अर्जुनको सान्त्वना देते हुए भगवान् उत्तर देते हैं —

"असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते"

पातंजल योगमें भी कहा है "अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः"

इस प्रकार निरन्तर अभ्याससे मनको अपना दास बनाकर उससे अनेकों काम लिए जा सकते हैं। अभ्याससे बड़े बड़े कार्य सिद्ध हो सकते हैं । 'करत-करत अभ्यासके जड़मति होत सुजान ।' परन्तु अभ्यास स्थिर निरन्तर और श्रद्धापूर्वक होना चाहिए ।

इस विषय में श्रीरामकृष्ण परमहंसने अपने एक शिष्यको बहुत उत्तम रूपसे शिक्षा दी थी । उनके प्रिय शिष्यने एक कुत्ता पाल रक्खा था, जिसे वह अत्यधिक प्यार करता था। रामकृष्णने इस प्रकारका उस क्षुद्र प्राणीके प्रति शिष्यका मोह देखकर उसे चेतावनी दी कि यह तुम्हारा प्यार भगवद्भक्ति या योगमार्गमें बाधक सिद्ध होगा । उसने गुरुसे इस मोहपर विजय पानेकी विधि पूछी तो रामकृष्णने उत्तर दिया कि अभ्याससे इसपर विजय पाओ, वह जितनी बार तुम्हारे पास आवे उतनी बार उसे फेंक दो, अन्तमें वह

आना छोड़ देगा। घर पहुंचनेपर कुत्ता स्वामीसे प्यार पानेको सामने आया, पर पूर्व निश्चयके अनुसार स्वामीने विलकुल ध्यान न दिया और उसे परे धकेल दिया। परन्तु उसके बार-बार आनेपर स्वामी-का दिल पसीज गया और उसे गोदमें उठाकर प्यार करने लगा। दुबारा फिर रामकृष्णके कहनेसे उसने पूरा निश्चय कर लिया, कि अब चाहे कुछ हो जाय इसको छुऊंगा तक नहीं। कुत्ता सैकड़ों बार आया, परन्तु स्वामीका भाव इसके प्रति उदासीन रहा और आखिर उसने आना ही छोड़ दिया।

यह चीज़ हूबहू बुरे विचारोंपर लागू होती है। दृढ़ निश्चयके साथ प्रतिज्ञा करो कि जितनी बार कुवि-चार मनमें उठेंगे, उतनी ही बार मैं उनको दबा दूंगा। एक दिन तुम देखोगे कि कुत्तेकी तरह यह भी अपना आना बन्द कर देंगे। और तुम्हारा मन शुभसंकल्पोंके लिए उर्वरा भूमि बन जायगा।

अभ्यासके साथ-साथ या अभ्याससे पूर्व वैराग्यका स्थान आता है। जबतक वैराग्य नहीं होगा, भोगसे, विलाससे, सांसारिक कार्योंसे मुंह नहीं मोड़ा जायगा, तबतक अभ्यासके लिए जमीन तैयार नहीं हो सकती। इस विषयमें भर्तृहरिने वैराग्यकी महिमा बखानते हुए क्या ही खूब कहा है—

"भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयम्
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।

संसारके सब पदार्थ नश्वर तथा अधिक होनेसे हेय हैं भोगमें फंसकर मनुष्यकी शक्तिका क्षय हो जाता है और उसका शरीर रोगोंका घर बन जाता है। बड़े वंशमें उत्पन्न होनेपर अपनी स्थितिसे गिरने-का भय रहता है। धनमें राजाका भय रहता है, कि कहीं फर्मान निकाल कर जब्त न कर ले। यदि मनुष्य मौनी हो तो दीन कहलाए जानेका भय सताता है। संग्राम जीतनेमें शत्रुका भय बना रहता है। शास्त्रको विद्वत्तामें वाद द्वारा शास्त्रार्थ खड़ा किए जानेपर अपमान का भय रहता है। सद्‌गुणमें दुर्जनका भय और शरीरमें मृत्युका भय, यह सब भय मनुष्यको खाए डालते हैं। केवल वैराग्य ही मनुष्यको 'अभय' बनानेवाला है।

इस प्रकार वैराग्यकी महिमाका सिक्का दिलमें जम जानेपर फिर अभ्यास द्वारा मनोनिग्रह करना आसान हो जाता है।

मनके निग्रहसे महान् शक्तिका स्रोत शरीरमें प्रस्फु-टित होता है। निग्रहसे विखरी हुई शक्तियां एक स्थान पर एकत्रित हो जाती हैं और इनके सम्पुट से एक अद्भुत सामर्थ्यका प्रादुर्भाव होता है। उदाहरणके तौरपर यदि भापको एक संकुचित स्थानमें एकत्र करना प्रारम्भ करें तो परिमाणकी वृद्धि हो जानेपर उसमें इतनी शक्ति भर जाती है कि वो पदार्थको तोड़कर बाहिर निकल आती है। इसी प्रकार मानसिक शक्तियों के निरोध और एकत्रीकरणसे एक प्रचण्ड शक्तिको प्राप्तकर बड़े २ कवि, महर्षि, सुधारक, नेता, ऐसे ऐसे कार्य कर जाते हैं कि साधारण मनुष्य उनको जादूगर या अवतार आदि समझने लगते हैं।

बड़े आदमियोंकी सबसे बड़ी विशेषता यही होती है कि वे अपने मनको इधर उधर कुप्रवृत्तियोंमें न भटकने देकर एकाग्र करते हैं और निश्चित उद्देश्यमें लगा देते हैं समयका सदुपयोग उठाकर ही बड़े बड़े कार्योंका सम्पादन करना सहल हो जाता है। मनस्विता का गुण उनमें कूट कूटकर भरा रहता है। ऐसे दो चार मनस्वी सारी दुनियांको हिला सकते हैं।

मनस्विताके गुणको इस जमानेमें धारण करनेकी सबसे अधिक आवश्यकता है। आज कल मनुष्य

जितना दिलासा, अव्यवस्थित चञ्चल रह रहा है, जनता शायद ही किसी युगमें रहा हो। वाहरी आडम्बर, ढोंग, शेखी बघारनेमें ही मनुष्यकी सारी शक्ति कम हो रही है। आन्तरिक लड़ाई लड़नेका कोई साहस नहीं करता। अपने मतभेद, फूटमें सब व्यस्त हैं। ऐसे दुर्गुणोंकी लपेटमें पड़े हुए मनुष्य कभी उत्पादक कार्य नहीं कर सकते। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकारकी क्षुद्र मनोवृत्तिको तिलांजलि देकर मनोनिग्रहके श्रेयस्कर मार्गपर चलते हुए मनुष्य मनस्वी बनकर अपना इहलोक और परलोक सुधारे और संसारमें सुखशान्तिका साम्राज्य स्थापित करनेमें कृतकार्य हो।



# मृत्यु-विज्ञान

ले०—श्रीगङ्गाप्रसाद गौड़ "नाहर"

( गतांक से आगे )

परन्तु यह उन्नति केवल वैज्ञानिक पद्धतिपर चलने से हो सकती है। उपरोक्त बातोंका प्रयोग तथा व्यवहार, कितनी ही माताओंने अपने अपने बच्चोंपर किया है। उन माताओंने सदा इसका प्रयत्न किया हैं कि बच्चोंके पैदा होनेके पूर्व, उनके विचार अच्छे रहें, और उनमें कोई ऐसा कुविचार न आवे कि उसका हानिकर असर उनके बच्चोंपर पड़े। बच्चा पैदा होनेके बाद, उन माताओं ने बच्चेके चारों ओर सुन्दर वातावरण रखा, ताकि वह सदा प्रसन्न रहे। किन्तु ये माताएँ अपनेको, और अपने बच्चोंको, कुविचारोंसे कितना और कहांतक दूर रख सकी हैं, इस सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

परन्तु साधारण स्त्री-पुरुषों और वैज्ञानिकोंमें आकाश-पातालका अन्तर है। जीनके संरक्षकोंने जिस जिस सावधानीसे योजना बनाई है, और प्रयोग आरम्भ किया है, उस तरह, पहले किसीने भी न किया था। यह इतिहासका अभूतपूर्व प्रयोग है। किन्तु यह सफल होगा या नहीं, यह समय ही बतावेगा।"

शरीर भेद

प्रत्येक मनुष्य, साधारण तौरपर दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग तो उसका पाञ्च-भौतिक शरीर होता है, और द्वितीय, उस शरीरमें सच्चिदानन्दका जहूर वा प्राकट्य। इसी शरीरके अन्दर ईश्वरकी स्थिति वा उपस्थितिका नाम 'आत्मा' है। शरीरकी वास्तविकता पञ्चतत्त्व हैं। अतएव एक नियत समयपर, सारे स्थूल शरीर, उन्हीं पांचों तत्त्वों-की ओर धावित होते हैं। और आत्माकी वास्तविकता है, सच्चिदानन्द, बस, उस समय आत्मा, परमात्मा वा सच्चिदानन्दकी ओर धावित होता है। यही 'मौत' है। इसी बातको, एक उर्दू शायरने, अपने एक ही शेरमें व्यक्त करनेमें अच्छी सफलता पायी है। वह कहता है—

ज़िन्दगी१ क्या है ? अनासिरका२ ज़हूरे तरतीब४।
मौत क्या है ? इन्हीं अजज़ा५ का परेशां६ होना।

आत्मा ही मनुष्य वा प्राणीका सार अंश है, वा यों समझिये कि आत्मा ही वास्तवमें मनुष्य वा प्राणी है, और शरीर उसके लिये एक आवरण मात्र। समस्त सांसारिक दुःख-दर्द, इसी आवरणरूपी शरीर-के लिये हैं, न कि आत्माके लिये, जो ईश्वरांश निर्लिप्त, नित्यानन्द हैं।

शरीर तीन है—स्थूल, सूक्ष्म, और कारण। इन तीनों शरीरोंसे सम्बन्ध छूट जानेपर जीवका व्यष्टि-भाव नहीं रह जाता। वह समष्टिके साथ मिल जाता है। इसीका नाम 'कैवल्य-मुक्ति' या 'निर्वाण' है।

उपर्युक्त शरीरमेंसे एक, दो, या तीनोंसे सम्बन्धित चेतनका नाम 'जीव' है और इन तीनोंके सम्बन्धसे रहित व्यष्टि-चेतनका नाम 'आत्मा' है।

स्थूल पञ्च महाभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाशसे निर्मित, तिर्यक, मनुष्य, सरीसृप, कीट पतङ्गादि भेदसे अनेकों भेदवाले व्यक्त शरीरका नाम 'स्थूल शरीर' है। स्थूल शरीरके साथ जीवका संयोग होनेका नाम 'जन्म' और वियोग होनेका नाम मृत्यु' है।

पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्चप्राण, मन तथा

---

१ जीवन, २ पञ्चतत्त्व, ३ प्राकट्य, ४ समन्वय ५ मार्गो, ६ बिखर जाना।

बुद्धि, इस तरह तत्त्वोंसे बने हुये अव्यक्त शरीरका नाम 'सूक्ष्म शरीर' है। मृत्युके समय एक स्थूल शरीरसे दूसरे स्थूल शरीरमें इसीका जाना आना होता है। यही 'पुनर्जन्म' है। स्वप्नावस्थामें जीव प्रधान रूपसे इसी सूक्ष्म वा लिङ्ग-शरीरके साथ सम्बद्ध रहता है।

'कारण-शरीर' केवल एक तत्त्व प्रकृतिका बना हुआ होता है। इसे 'वासनामय' वा 'स्वभाव' भी कहते हैं। गाढ़ निद्रा, तथा मूर्च्छा की दशामें केवल इसी शरीरके साथ जीवका सम्बन्ध रहता है।

सुषुप्ति एवं मूर्च्छाकी अवस्थामें, तथा महाप्रलयके समय, इन्द्रिय, मन, तथा बुद्धिकी, प्रकृतिसे अलग, सत्ता नहीं रहती। वे इन्द्रिय, मन, और बुद्धि अपनी कारण प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं। इसीलिये उस समय जीवको दुःख-सुखका बोध नहीं होता।

महाप्रलयके समय जब महत्तत्त्व पर्यन्त सारी प्राकृतिक सृष्टि, महाकारण अर्थात् मूल प्रकृति (अव्याकृत माया) में लीन हो जाती है, उस समय जीव, इसी कारण-शरीरसे संश्लिष्ट होकर प्रकृतिरूप कारणाब्धिमें लीन रहते हैं, और महासर्गके आदिमें—जब प्रकृतिमें क्षोभ होता है, पुनः पूर्व कर्मोंके अनुसार, सूक्ष्म शरीरको प्राप्त होकर क्रमशः स्थूल-शरीरको ग्रहण कर लेते हैं।

जिस समय हमारे स्थूल, सूक्ष्म, और कारण—तीनों शरीर संयुक्त होकर कार्य्य करते हैं, उस अवस्थाको 'जाग्रत अवस्था' कहते हैं।

जिस समय हमारे स्थूल शरीर निश्चेष्ट रहता है, केवल सूक्ष्म और कारणशरीर ही जाग्रत रहते हैं, एवं इन्द्रिय, मन, बुद्धिकी चेष्टा भीतर ही भीतर चालू रहती है, उस अवस्थाका नाम 'स्वप्नावस्था' है।

गाढ़ निद्राकी स्थितिमें जब स्थूल और सूक्ष्म, दोनों शरीर निश्चेष्ट हो जाते हैं, केवल प्राणोंका व्यापार बन्द नहीं होता, और जब इन्द्रिय, मन, तथा बुद्धि, अपनी कारण प्रकृति, अर्थात् अज्ञानमें लीन हो जाते हैं, तो उस स्थितिको 'सुषुप्ति' अवस्था कहते हैं। इस अवस्थामें हमारा सम्बन्ध केवल कारण शरीरसे रहता है और सूक्ष्म शरीर, कारणमें लीन हो जाता है।

स्थूल, सूक्ष्म, और कारण—इन तीनों शरीरोंसे जब कोई सम्बन्ध न रहे तो उस अवस्थाको 'तुरीयावस्था' कहते हैं। यह जीवनमुक्त महात्माओं की अवस्था है। * क्रमशः

* लेखककी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'मृत्यु और उसके बाद' से। —ले०

# जीवनको उन्नत बनानेवाले हमारे कुछ प्रकाशन

## ( १ ) जीवन सौरभ—

प्रस्तुत पुस्तकमें ज़ीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि साधारण परिस्थितिमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको पढ़ें और अपनी सन्तानके हाथमें दें। मूल्य केवल ।-)।

## ( २ ) देशके नौनिहालोंसे—

नवयुवकों एवं छात्र तथा छात्राओंके लिये अनुपम उपहार। उन नवयुवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशकी आशा है, जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। मूल्य केवल -)

## ( ३ ) सदाचार का महत्व—

पुस्तकके सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय। सदाचार ही जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी कुञ्जी है इसको कौन नहीं जानता। पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हुए हैं तथा अपनी और देशकी हानि कर रहे हैं वह सर्व विदित है। जो भारत संसारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसलिये उसका पतन हो गया है। इस समय देशके युवकोंको सन्मार्गपर ले जानेकी आवश्यकता है। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल -)

## ( ४ ) स्वास्थ्य-पत्र—

यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ रहना ही मृत्यु है तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक धनहीन स्वस्थ जीवन दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्ग-तुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुखपूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है। २०"×३०" साइजके इमिटेशन आर्ट पेपरपर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बंधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है, इसलिये कि यह एक स्थायी चीज हो जाता है। मूल्य केवल =)

## ( ५ ) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास—

स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है वह व्यर्थ ही जीवन-यापन करता है। जो देशके प्रति कुछ त्याग नहीं करता वह पशु सदृश है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र-सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन तो अवश्य हुआ है, किन्तु संक्षेपमें, सबके योग्य सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आंजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल -)

## ( ६ ) कांग्रेस चार्ट—

इसमें बड़े सुबोध और सरल ढङ्गसे कांग्रेसके जन्मकालसे लेकर अब तकके अधिवेशनोंका विवरण, सभापति स्थान, समयकी सूचना और उस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमिटेशन आर्ट पेपरपर साइज २०"×३०" दो रङ्गोंकी मनोहर, छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। **जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०,** "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# अभिशाप

लें०—श्रीअशोक आयुर्वेदालङ्कार

डाक्टर अविनाशचन्द्र अपने शहरके सुप्रतिष्ठित व्यक्तियोंमेंसे थे। उनकी अच्छी भली Practice चलती थी, एक अच्छा बड़ा दवाखाना था, जहां दवाइयोंके साथ साथ शल्य कर्मके भी अच्छे अच्छे औजारोंका संग्रह किया हुआ था। पासमें काफ़ी पैसा था। मोटरकार थी सायंकाल क्लबोंमें खेलने जाते, सुरासुन्दरीका उपभोग होता। इस प्रकार उनका जीवन सुखपूर्वक बीत रहा था। वे अपने संसारमें मस्त थे, दीन दुनियांकी उन्हें कोई पर्वाह न थी।

लेकिन उनमें एक बड़ी खराबी थी, उनका स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा तथा क्रोधी था। बात बातपर तिनक उठते, नौकरोंको डांटने लगते, बाप-दादाओंको गालियां देते, अधिक क्रोध आता तो उन्हें पीटने लगते, दुकानपर मरीज़ बैठे होते थे उन्हें बड़ा आश्चर्य होता; लेकिन फिर भी डाक्टर साहबका नाम था। उनके इसी स्वभावके कारण कोई भी नौकर अधिक समयतक उनके पास न टिकता, ज्यादासे ज्यादा एक डेढ़ मास और अधिकतर अपना विस्तर बांध, बिना अपना पिछला वेतन पाये चला जाता था। पर डाक्टर साहिबको कोई पर्वाह न थी, वे मनुष्यको पैसेका गुलाम समझते थे, उन्हें नहीं मालूम था कि लक्ष्मी चञ्चल है और भाग्यका पासा पलटते देर नहीं लगती।

लेकिन इस बार उनके यहां जो नौकर आया वह डाक्टर साहिबकी झिड़कियां खाकर भी डांट-फटकार और गालियां सहकर भी ४, ५ महीनेसे रह रहा था, नाम था शिवसिंह, २५, २६ सालका नवयुवक था, चेहरेसे दीनता टपकती थी, उसकी घर-गृहस्थी थी जिसे चलानेके लिए उसे हरसम्भव कार्य करना पड़ता था। सचमुच निर्बल आत्माओंमें आत्मसम्मान जुगनूके प्रकाशके समान रह जाता है। जिसमें आग नहीं, जीवन नहीं; प्राण नहीं। वह डाक्टर साहिबकी गालियां सुनता, फटकारें सहता, लेकिन कोमल हृदयपर कुछ भी असर न होते; मानो शुरूसे ही ये सब बातें सुनते सुनते उसका हृदय पत्थर हो गया था, आंखोंके आंसू सूख गये थे, भोगका तूफ़ान मिट चुका था।

परन्तु हरएक चीज़की सीमा होती है, कलकल निनादिनी सरितामें बहती हुई जलतरंगे कितनी सुन्दर लगती है, लेकिन उसीमें जब बाढ़ आ जाती है, जल सीमा तोड़कर निकलने लगता है तो वही जल कितने अभागे मनुष्योंके जीवन नाशका कारण बन जाता है। शिवसिंह भी आदमी था, उसमें भी हृदय था जिसमें समय प्रवाहके कारण भावनाओंका समुद्र सूख चुका था, लेकिन फिर भी वह आदमी था। एक दिन डाक्टर साहिब बाहरसे अधिक शराब पीकर आये थे, जाने किससे हाथापाई भी हुई थी; घरमें घुसे, शिवसिंहको आवाज़ दी, वह उनकी श्रीमतीजीके किसी कार्यमें लगा था, आवाज़ सुन नहीं सका, उसके इस अपराधपर डाक्टर साहिबने उस अभागेकी नंगी पीठपर माघ पूसकी गहन सर्दीमें १, २, ३, तड़ातड़ २५ चाबुक जड़ दिए, उनको ख्याल नहीं हुआ कि वह भी एक मानव है, उसे भी पीड़ा हो सकती है।

लेकिन शिवसिंह इस अपमान-तिरस्कार एवं अन्यायको सह नहीं सका, उसके दिलमें विद्रोहकी भावना पैदा हो चुकी थी, अतीतकी स्मृतियोंकी दुःखमयी घटनाओंका आवरण खुल गया, बुझते हुए अंगारेकी उपरली राख झड़ आई, दिलने ज़ोर दिया,

कबतक तिरस्कारका जीवन सहन करते रहोगे, दिमाग ने समझाया तुम्हारे नन्हें नन्हें दो बच्चे हैं, उनको छोड़कर कहां जाओगे, उनका पालन कैसे करोगे; लेकिन दिलने कहा, यह अपमान, यह अन्याय, यह पाशविक जीवन, शिवसिंह रुक नहीं सका। अगले दिन अपना हिसाब करवा कर चला आया। ऐसे मालिकके नीचे रहनेसे मृत्युकी गोदमें जाना उसे भला लगा।

* * * *

( २ )

पांच साल बाद—दुनियां उसी गतिसे आगे बढ़ रही थी।

सायंकालीन समय था—बसन्त अपनी झोलीमें फागुनका सौरभ बांट रहा था—आम्रकुंजोंमें कोकिल-की मनमधुर आवाज सुनाई पड़ने लगी थी।

डाक्टर साहिब कहीं बाहिर जानेको थे; अपने खेलनेका सूट पहिन चुके थे और अभी कारपर चढ़ने-को ही थे कि एक बीमारसा व्यक्ति उनके सामने आया, कपड़े फटे पुराने थे, चेहरेपर गर्द जमी थी, जैसे बरसोंसे उसे साफ न किया गया हो। उसने गिड़गिड़ा कर डाक्टर साहिबसे अपने घर चलनेकी प्रार्थना की, उसका इकलौता दशवर्षीय लड़का मृत्युशय्यापर पड़ा था, उसका प्राण, उसके सूने घरका दीपक, लेकिन डाक्टर साहब नहीं माने, वे इन फालतू कामोंमें, जिस-में पैसा मिलनेकी कतई उम्मीद न हो, समय खराब करना पसन्द न करते। मोटर स्टार्ट की और चल दिये।

वह व्यक्ति शिवसिंह था, डाक्टर साहिबके पास आया था, सोचता था, मुझे जानते हैं, कुछ दया कर देंगे। लेकिन वह नहीं जानता था कि धनियोंका दिल पत्थरका होता है। कई दिनसे भूखा था, निराश होकर वहीं गिर पड़ा। पता नहीं वहां कितनी देर पड़ा रहा। जब होश हुआ, उसे ध्यान आया, ओह! उसका नन्हा सा, गुलाबसा लड़का, उसकी प्राणप्यारी स्त्री प्रतीक्षा कर रही होगी। वह किस दिलसे घर जाए; लेकिन उसे जाना था।

घर पहुंचा, देखा बच्चा कराह रहा था, उसने अपने बापको आया देखा तो आंखें खोल दी, कहने लगा, "बाबा! दवा लाये हो और इसके साथ एक हिचकी आई और फिर सब शांत। पतिपत्नी पछाड़ खाकर गिर पड़े।

उस दिन दीपावलीकी रात्रि थी, जब बाहिर अनेकों दीपमालिकायें रजनीके अन्धकारको दूर करनेका प्रयत्न कर रही थीं, उस सूनी कुटियाका दीपक बुझ गया।

* * * *

( ३ )

लेकिन एक महीने बाद, डाक्टर साहिबकी डिस्पैं-न्सरीमें उनके सिगारके शोलोंके कारण जो आग लगी, तबतक नहीं बुझी जबतक दवाखानेकी एक एक चीज जलकर राख न हो गई। अन्दर उनकी तिजोड़ी पड़ी थी जिनमें हज़ारोंके नोट रखे थे जो उन्होंने दूसरे दिन ही बैंकमें जमा कराने थे। आग बुझी तो आप एकदम अन्दर घुस गए, तिजोड़ी भी गलकर भस्मसात् हो गई। नोटोंके बण्डल जलकर राख हो गए। डाक्टर साहिब निराश, मनमार कर रह गए, पिछले दिनोंसे सोच रहे थे, अब मकानका बीमा करा-येंगे, अब करायेंगे लेकिन अब और तबमें दिन निकल गए और मौका ही नहीं मिला।

कुछ दिन बाद उन्हें समाचार मिला कि वह बैंक जिसमें उनके २०००० ) रुपये जमा थे, दिवालिया हो गया है और कुछ भी भुगतान नहीं हो सकता। डाक्टर साहिबने यह सुना तो सिर पीट लिया। उनकी आशा-लतिका बिना विकसित हुए ही मुर्झा गई, उनकी आशाओंपर तुषाराघात हो गया।

दो साल बाद भाग्यके मारे डाक्टर साहिब इधर-उधरसे ठोकरें खाकर फिर उसी शहरमें आये, सोचते थे लोग तरस खाकर कुछ दे देंगे एक २) का मकान किरायेपर लिया। मकान क्या था, किसी जंगलीजन्तु की मांद थी, जिसमें दिनके समय भी सूर्यकी किरणें प्रवेश न पा सकती थीं।

डाक्टर साहिबका दुर्भाग्य, उनके उस शहरमें आनेके चंद दिनों बाद शहरमें हैजा फूट पड़ा, शहरमें तबाही मचने लगी। उनका लड़का इसका प्रथम शिकार हुआ।

डाक्टर साहिब सारे दिन शहरमें घूमते रहे पासमें इतने भी पैसे न थे कि दवाई मोल ले सकते, स्वयं भी कई दिनसे फाका कर रखा था, सायंकाल निराश मनसे घर लौटे, देखा, उनका बच्चा कराह रहा था, बच्चे ने आँखें खोल दी, धीमी स्वरमें पूछा—"पिताजी! दवा ले आये। इसके साथ ही हिचकी हुई और शरीर ठण्डा हो गया। डाक्टर साहिब पछाड़ खाकर गिर पड़े।

वही दीपावलीकी रात थी, वही अभागी कुटिया जिसमें दो साल पहिले शिवसिंहके घरका दीपक बुझा था, आज भी उन्हीं झिलमिलाते तारोंके बीच उनके घरका बाल रवि भी सदाके लिए अस्त हो गया!

इसे गरीबकी आहका परिणाम कहें, या विधिका विधान, इसका आप ही निश्चय कीजिये।

# उस पार

रचयिता—श्रीबाबूलाल दीक्षित "रसिक"

बस चलो चलें उस पार सजनि !

( १ )

मानव को खाता है मानव !
बन गया आज मानव दानव !
होता रहता भीषण ताण्डव !
नित बहती शोणित धार सजनि ।

( २ )

कितनों ने खोये ताज यहाँ ?
कितनों ने खोयी लाज यहाँ ?
पशुबल पर टिका समाज यहाँ !
पग पग चुभते हैं खार सजनि !

( ३ )

क्या मूल्य यहां आज़ादी का ?
वीरान, खाक आबादी का !
है ध्यान किसे बरबादी का ?
मिटने के सब आसार सजनि !

( ४ )

मानव का हो बलिदान यहाँ
कुचले जाते अरमान यहां ।
जलते रहते नित प्राण यहाँ ।
आशा का हो संहार सजनि ।

( ५ )

शोषणकर्त्ता का राज यहां !
छिन गया देश का ताज यहां ।
लुट गयी मातु की लाज यहां ।
मानव को है धिक्कार सजनि ।

( ६ )

कंगाल हो रहा देश यहां ।
नर-कंकालों से वेश यहाँ ।
सूखे रहते नित केश यहां ।
लुट गया धनी बाजार सजनि ।

( ७ )

निर्धन की जर्जर कुटियों में ।
भूखी-सी हाय अंतड़ियों में ।
टूटी-सी टेढ़ पसलियों में—
उठता है हाहाकार सजनि !

( ८ )

दीनों के प्राण कलपते हैं ।
दानों को हाय ! तरसते हैं ।
बच्चे नित हाय ! मचलते हैं ।
पर मिलता नहीं अहार सजनि ।

( ९ )

लुटता सतीत्व अबलाओं का ।
है किसे ध्यान ललनाओं का ?
माँ, बहिनों, औ विधवाओं का ।
उनपर होते व्यभिचार सजनि ।

( १० )

जीने का कब अधिकार यहां ?
मरने का कब अधिकार यहां ?
रोने का कब अधिकार यहां ?
फिर है कैसा अधिकार सजनि !

( ११ )

होते हैं अत्याचार यहां!
नित होते नये प्रहार यहां!
सहते कोड़ों की मार यहां!
मानवता का न विचार सजनि।

( १२ )

जीवन है जीवन का बन्धन।
करता रहता नित मन क्रन्दन!
घुलता रहता हरदम जीवन!
जीवन है अपना भार सजनि!

( १३ )

है यहां मान का ध्यान नहीं।
जागृति होता अभिमान नहीं!
सहते सब हैं अपमान यहीं।
देते सब हैं दुतकार सजनि।

( १४ )

स्फटिक शिला-प्रासाद भवन।
हैं उच्च गगन करते चुम्बन।
लक्ष्मी करती है वहां शयन।
बहती मदिरा की धार सजनि।

( १५ )

रो रो कर कही कहानी सब!
नयनों से बहता पानी अब!
अवरुद्ध हो रही वाणी अब।
क्योंकर होगा निस्तार सजनि।

# कालिकाका कोप

रचयिता—श्रीगंगाप्रसाद गौड़ "नाहर"

मैं हूँ मानव-रक्त पिपासी।

जिस मानवने यह नहिं जाना
हुआ यहां उसका क्यों आना,
जो आकर इस जगतीतलपर—
मुझे भुलाकर हुआ विलासी?
मैं हूँ मानव-रक्तपिपासी॥

मानव को मानव दुःख देता
मानव का मानव संहरता,
मानव का मानव बैरी है—
मानव नृपति, दास औ दासी।
मैं हूँ मानव-रक्तपिपासी॥

वही दरिद्र, वही है दाता
वही सृष्टि का भाग्यविधाता,
कितना मद! कितनी मत्सरता!!
कैसी प्रवृत्ति सत्यानासी।
मैं हूँ मानव-रक्तपिपासी॥

माना मानव सर्वश्रेष्ठ है
क्या महानता ही यथेष्ट है?
इस मदान्ध, इस अभिमानी की—
हस्ती ही क्या? महज़ ज़रा-सी।
मैं हूँ मानव-रक्तपिपासी॥

# स्पर्धा और उसका घातक परिणाम

(ले०—श्रीसुबोधचन्द्र शर्मा 'नूतन' शिक्षासुधा' संपादक)

प्रत्येक व्यक्ति या समाज दूसरोंको सम्मुख रखकर अपनेको तौलनेका प्रयत्न करता है। वह अपने आपको विद्या, धन, बल आदिमें औरोंसे अधिक बढ़कर या सुखी देखना या दिखाना चाहता है। सब बातोंमें सम्पूर्ण जगत्में मैं ही ऊँचा रहूँ, उसकी यही एकमात्र लालसा रहती है। इस लालसाकी पूर्तिके लिये वह प्रयत्न करता रहता है। यह सब कार्य स्पर्धाका है।

कहते हैं कि स्पर्धासे मनुष्य या समाजके व्यक्तित्व का विकास होता है, उसकी व्यक्तिगत शक्तिको बल मिलता है और यह भी कहा जाता है कि स्पर्धा व्यक्ति या समाजमें जाग्रति पैदा करती है, उसे उन्नतिके लिये सक्रिय प्रेरणा देती है। इसके प्रभावसे जीवन 'सजीव' जान पड़ता है।

वास्तवमें ऐसा नहीं है। स्पर्धा, शराब, अफ़ीम आदि मादक द्रव्योंके समान उत्तेजक है। यह व्यक्ति या समाजमें उत्तेजना अवश्य पैदा करती है; परन्तु इसका प्रभाव क्षणिक है। नशा उतरनेके बाद जो दशा शराबी या अफ़ीमचीकी होती है उससे भी बुरी, स्पर्धा के चक्करमें पड़े व्यक्ति या समाजकी हो जाती है। स्पर्धा अपना काम करनेके बाद व्यक्ति या समाजको ढीला, निष्क्रिय और निस्तेज बना देती है।

इसी प्रकार स्पर्धाके द्वारा मनुष्य या समाजके व्यक्तित्व-विकासकी बात भी गलत है। स्पर्धालु व्यक्ति या समाज अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये अनेक उपाय करता है और विविध साधनोंके निर्माणमें प्रवृत्त होता है। इसे उसके साधनोंका सुधार या उपायोंका आविष्कार कह सकते हैं; परन्तु यह उसका वैयक्तिक विकास नहीं कहा जा सकता। मनुष्य या समाजकी सच्ची उन्नति अथवा वास्तविक विकास तो सहयोगके द्वारा ही सम्भव है।

स्पर्धापूर्ण व्यक्ति या समाज केवल अपनी उन्नति करना चाहता है। उसे औरोंसे कोई प्रयोजन नहीं होता। इसीलिये उसमें स्वार्थकी मात्रा बढ़ जाती है, वह अभिमानी और दंभी बन जाता है। इतना ही नहीं; वह अपनी उन्नतिके लिये 'मनमाने' उपाय काममें लाता है। दूसरोंको हानि पहुंचाकर अपनी इच्छापूर्ति करता है। इन अनुचित उपायोंसे उसमें ईर्ष्या-द्वेष आदि असद्भाव पैदा होते हैं।

स्पर्धाके कारण मनुष्य या समाजमें अनेक दुर्गुण घर कर लेते हैं। छल-कपट, चोरी, लूट-खसोट आदि इसी स्पर्धाके दुष्परिणाम हैं। अपनी उन्नतिके लिये, अपनी स्वार्थ-सिद्धिके हेतु स्पर्धालु मनुष्य या समाज इन दुर्गुणोंका आश्रय लेता है।

स्पर्धा अशान्ति और असन्तोषकी जननी है और दुःख चिन्ताको बढ़ानेवाली है। इसीसे स्पर्धालुमें सुख-शान्तिके दर्शन दुर्लभ होते हैं।

स्पर्धी समाज या मनुष्य किसीको अपना नहीं मानता, सभीको गैर समझता है; उसकी दृष्टिमें सभी मनुष्य या प्राणी 'शत्रु' हैं। जीवन 'संघर्ष' और संसार-संग्राम भूमि है। इसलिये वह हिंसा-प्रतिहिंसा घात-प्रतिघातकी मारक क्रियायें करता है। दूसरोंके पतन या मरणमें अपना उत्थान या जीवन देखना ही स्पर्धा-सम्पन्न व्यक्ति या समाजका चर्म लक्ष्य रहता है।

स्पर्धा से समाज या मनुष्यकी बाहरी-दिखावटी उन्नति भले ही मालूम हो; परन्तु यह उसकी सच्ची प्रगति नहीं कही जा सकती। यह उन्नति तो उसके

आत्मिक पतन और आंतरिक खोखलेपनकी ही सूचना है। इसके मूलमें न जाने कितने अशक्त समाजों और निर्बल व्यक्तियोंके अस्थि-पंजर छिपे होते हैं।

स्पर्धासे ही प्रतियोगिताका जन्म हुआ है। इस प्रतियोगिताका आज सर्वत्र बोलबाला है। घर-बाहर ग्राम, नगर, देश-विदेश, सबमें इसीका साम्राज्य है। इसका घातक मधुर विष हमारे जीवनमें व्याप्त हो चुका है। शिक्षा और साहित्य, कृषि और व्यापार, जाति और धर्म, कोई भी इसके प्रभावसे मुक्त नहीं। इतना ही नहीं, वरन् पूर्व-पश्चिममें प्रलयकी बिजलियां चमक रही हैं, सभ्य कहानेवाले नर-व्याघ्र जीवित-मानव-मांसभक्षणमें मग्न हैं और विषैली गैस, तोप, टैंकों द्वारा विश्ववाटिकाविध्वंस हो रहा है। यह सब क्यों ? केवल प्रतियोगिता और इसकी जननी स्पर्धा पिशाचिनीकी भूख शांतिके लिये ही हो रहा है। ये दोनों 'सुरसा' के समान मुँह फाड़े हमसबको निगलने-को तैयार हैं, इनसे बचकर जाना हनुमान सरीखे किसी महावीरका ही काम है।

# सात्विकजीवन-ग्रन्थमाला

## ब्रह्मचर्य नाटक

प्रथम पुष्प—रङ्गमञ्च पर सफलता-पूर्वक अभिनीत यह नाटक अपने ढङ्गका निराला और बेजोड़ है। हमारे आन्तरिक असुर किस प्रकार पराजित हो सकते हैं, हम किस प्रकार अपनी दुर्वासनाओंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं, इसका विवरण यदि आप प्राप्त करना चाहते हों तो इस पुस्तकको अवश्य देखिये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य केवल ।।)

## आध्यात्मिक शिक्षावली

द्वितीय और तृतीय पुष्प—आध्यात्मिक विकासके लिये इनसे अच्छा ग्रन्थ हिन्दीमें नहीं है। हिन्दू-धर्म और अध्यात्मवादका ज्ञान थोड़ेमें प्राप्त करनेके लिये ये पुस्तकें सर्वोत्तम हैं। इन पुस्तकोंमें गागरमें सागर भर दिया है। आज ही मंगा कर पढ़िये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य प्रथम खण्ड ।।।), द्वितीय खण्ड ।।।)

## सचित्र हठयोग ( सजिल्द )

चतुर्थ पुष्प—( आसनोंके ३८ चित्रों सहित )—आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा एवं यौगिक क्रियाओं द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ले जानेवाली अनुपम और प्रामाणिक पुस्तक। इस एक ही पुस्तकसे जो लाभ उठाया जा सकता है वह अन्य कई पुस्तकें पढ़कर भी नहीं उठाया जा सकता। इसके लेखक स्वयं एक महान् योगी हैं। इस विषयकी ऐसी उपयोगी पुस्तक दूसरी नहीं है। मूल्य केवल १), स्थायी ग्राहकोंसे ।।।)

## स्वामी शिवानन्दजी की जीवनी और उनके उपदेश ( अंग्रेजीमें )

पञ्चम पुष्प—प्रस्तुत पुस्तकमें श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराजकी जीवनी और उनके उपदेशोंका सार संकलित है। स्वामीजीकी जीवनी तथा उनके उपदेशोंका एक ही स्थानपर संग्रह करनेका अभिप्राय यही है कि लोग उनके जीवनकी घटनाओंको उनके उपदेशोंके प्रकाशमें देखें और अपने जीवनको भी तदनुकूल बनानेका यत्न करें। यह पुस्तक विशेषकर उन लोगोंके लिये लिखी गयी है जो स्वामीजीके सभी ग्रन्थ नहीं खरीद सकते। पुस्तकमें प्रयुक्त भाषा सरल तथा सुबोध है। साधारण अंग्रेजी जाननेवाला व्यक्ति भी अच्छी तरह समझ सकता है। बीसों चित्रोंसे सुशोभित सजिल्द पुस्तकका मूल्य केवल १।।)

**स्थायी ग्राहकों तथा थोक खरीददारोंको पर्याप्त कमीशन दिया जायगा**

प्रकाशक—

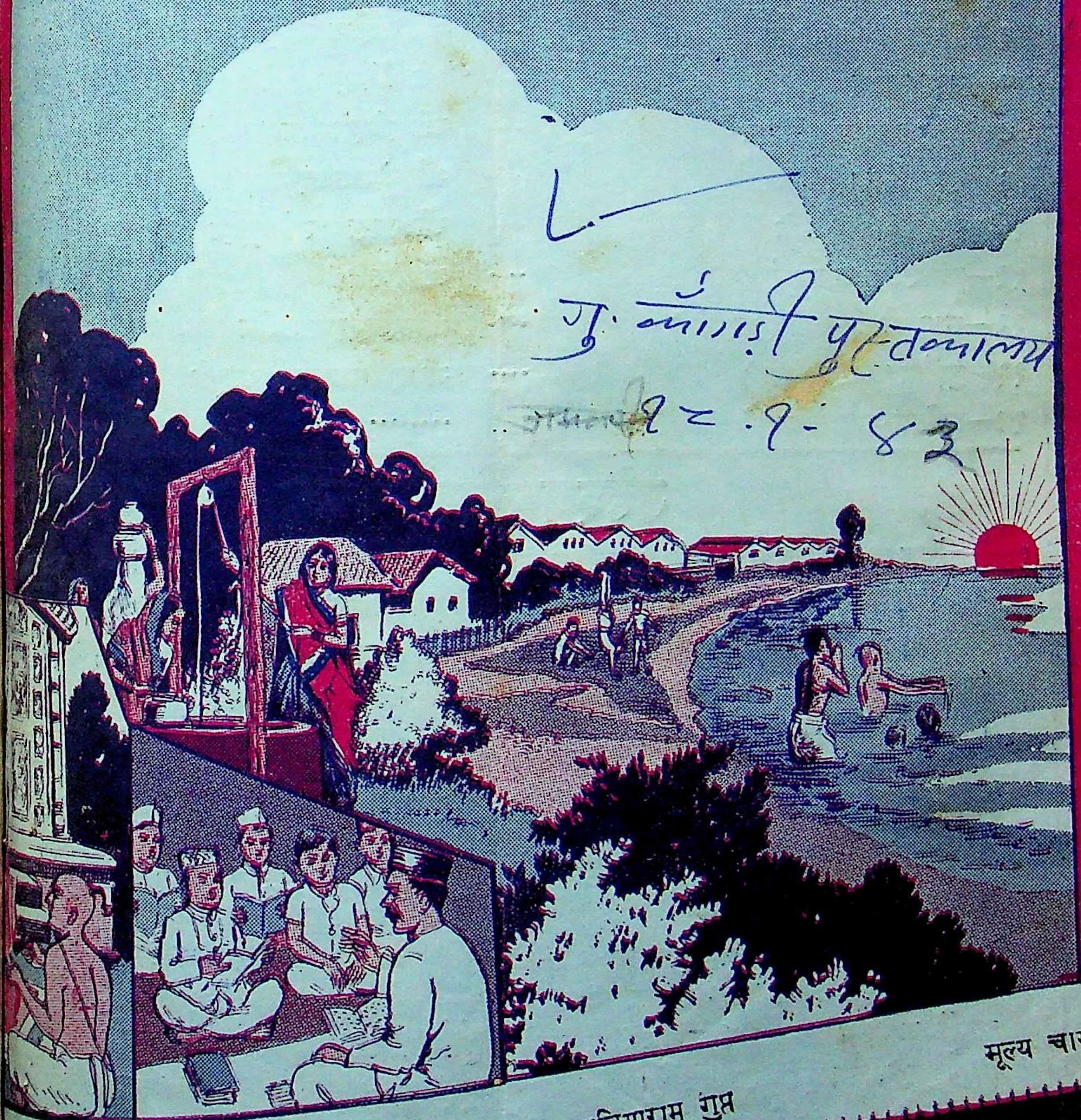
## जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट कलकत्ता। "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

Printed & Published by Rajaram Gupta at General Printing Works Ltd. Benares Branch.

सत्वं सुखं सज्जयति

# सात्विक जीवन



मूल्य चार आने

सम्पादक— रुलियाराम गुप्त

वर्ष ३, अङ्क ४

# विषय-सूची


| विषय | | लेखक |
|---|---|---|
| १—पश्चात्ताप ( कविता ) | .... | श्री गंगाप्रसाद "कौशल" |
| २—सम्पादकीय | .... | ............ |
| ३—पूज्य मालवीयजी के सुनहले शिक्षा-सूत्र | ... | श्री ईशदत्त शास्त्री साहित्याचार्य |
| ४—व्यायामानुशीलन | .... | श्री विद्याभूषण मोहन शर्मा, विशारद |
| ५—सत्यव्रत ( नाटक ) | .... | श्रीनारायण प्रसाद |
| ६—हिन्दूधर्म की महत्ता | .... | श्री अशोक आयुर्वेदालङ्कार |
| ७—सत्य क्या है | .... | श्री वीरेन्द्र मालवीय |
| ८—हिन्दू पतन का इतिहास | .... | श्री इन्दिरारमण शास्त्री |
| ९—मृत्यु विज्ञान | .... | श्री गंगाप्रसाद गौड़ "नाहर" |
| १०—पूर्ण शान्तिकी प्राप्ति | .... | श्री राल्फ़ वाल्डो ट्राईन |
| ११—मनोरञ्जक शास्त्रार्थ | .... | श्री देव |
| १२—सत्य की दिशा में ( कहानी ) | .... | श्री वीरेन्द्र मालवीय |
| १३—मुर्झाया फूल ( कविता ) | .... | श्री हरिकान्त झा बख्शी |
| १४—साहित्य-समालोचन | .... | ........ |


# उद्देश्य और नियम

१—'सात्विक जीवन' प्रत्येक मासकी १५ तारीख तक प्रकाशित होता है।

२—'सात्विक जीवन' में प्रकाशित प्रत्येक लेखपर कार्यालयका पूर्ण अधिकार होगा। वह उस लेखको चाहे जिस रूपमें फिर छाप सकता है।

३—'सात्विक जीवन' का वर्ष विजया-दशमीसे प्रारम्भ होता है। ग्राहक वर्षके बीचमें बनानेका नियम नहीं जो बीचमें ग्राहक बनना चाहें उन्हें विजया-दशमीसे पहलेके सब अङ्क भेजे जाएँगे।

४—'सात्विक जीवन' में ब्रह्मचर्य, सदाचार, स्वास्थ्य, आरोग्यता, दर्शनशास्त्र, आध्यात्मिक आख्यायिकाओं, भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं तत्सम्बन्धी विषयोंपर गवेषणापूर्ण लेख रहते हैं।

५—समस्त मानव-समाजको अधिकाधिक उन्नत और विकसित करना ही इसका ध्येय है।

६—यह सदाचार एवं सात्विक वृत्ति द्वारा मनुष्य-जीवन को सफल बनानेका प्रचार करेगा।

७—प्रकाशित लेख प्रमाणित एवं अनुभूत होंगे। के विचार-पूर्ण लेख ही प्रकाशित किये जायेंगे।

८—विद्वानों, विशेषज्ञों, मनोविज्ञानवेत्ताओं एवं अनुभ डाक्टरोंके विचारपूर्ण लेखोंकी व्यवस्था है, जिस मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक शक्तिकी वृद्धि क

९—किसी भी अवस्थामें गन्दे, अश्लील, साम्प्रदायि किसी धर्म, व्यक्ति अथवा जातिपर आक्षेप क वाले लेख नहीं प्रकाशित किये जायेंगे।

१०—लेखको काटने-छांटने तथा छापने न छापनेका अधिकार सम्पादक को है।

११—अप्रकाशित हस्तलिपियां प्रेषककी ओरसे आव टिकट मिलनेपर ही वापस की जायेंगी।

१२—लेखादि सम्बन्धी पत्र सम्पादक को और व्यव सम्बन्धी पत्र व्यवस्थापक को लिखना चाहिये

१३—सात्विक जीवन का वार्षिक मूल्य ३) है। पु कालयों, विद्यालयों तथा छात्रोंसे २), एक प्रति नमूनेके लिये चार आनेका टिकट आवश्यक



संरक्षक—

श्री मनसुखराय मोर

सत्वं सर्वे सत्र यत्नि

# सात्विक जीवन

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

वर्ष ३ } काशी—सौर पौष, १९९९ Benares—January 1942. { अङ्क ४

## पश्चात्ताप

रचयिता—श्री गंगाप्रसाद "कौशल"

मैं जीवन में कुछ कर न सका,
अपने प्राणों का व्यथा-भार, मैं हतभागी कुछ हर न सका।

स्वर्णिम प्रभात कितने आए!
पर साथ न वे ऊषा लाए!!
मैं अपनी जीवन-प्याली में, जीवन का शशिरस* भर न सका।

मैंने अपने को क्या जाना!
वह भूल हुई मैं ने माना!!
अपने मन के परिवर्तन से मैं उसके मन को हर न सका।

मैंने वीणा* को तोड़ दिया,
तारों को मोड़ मरोड़ दिया,
मैं अपनी प्यारी वीणा का, मृदु मधुमय वादन कर न सका।

भूलें तो हुईं बड़ी भारी,
अमिए, अब तो हूँ आभारी,
जब निकला शुद्ध हृदय से यह, मैं आगे हिचकी भर न सका।

* अमृत, शरीररूपी वीणा।

# सम्पादकीय

## पूज्य मालवीयजीको श्रद्धाञ्जलि

लोकपूज्य पुण्यश्लोक महामना पण्डित श्रीमदन-मोहन मालवीयजी महाराजने जीवनके ८२ वें वर्षको पूरा कर इस साल ८३ वें में प्रवेश किया है। यह हमारे लिये पुण्यतम सौभाग्यका शुभ अवसर है। क्योंकि पूज्य मालवीयजी, अपने परिवार-मात्र के ही महापुरुष नहीं; वह समस्त भारतीय आर्यवंशकी अतीत पीढ़ीके अन्यतम सुपुत्र, वर्त्तमान परुस् के श्रेष्ठ पितृस्थानीय, और भावी पुश्त के प्रातःस्मरणीय महत्तम पूर्वज हैं। इस विश्वविभूतिभूत महात्मा सत्पुत्र की बदौलत, अपनी गिरी दशामें, घोर आपत्काल में भी भारतमाता धन्य बनी, और आर्य हैन्दव क़ौम गौरवान्वित हुआ है। आर्ष जीवन के आदर्श, भारतीय आर्यचरित के उत्कृष्ट उदाहरण, आप्तता और शिष्टता के अनन्य साधारण आधार, महर्षि-कल्प, पूज्य मालवीय जीने लोकोत्तर पाण्डित्य, दैवत सदाचार और सन्मानवोचित गुण-कर्म द्वारा विश्व में भारत का सुयश फैलाया, सुनाम धराया, तथा 'पृथिवी के सब मानवों को एतद्देशप्रसूत अग्रजन्मा से स्व-स्वचरित्र की शिक्षा लेनेकी" प्राचीनतम बातका, भारतीय आर्य सद्ब्राह्मण के जगद्गुरुत्व का, एक बार पुनः स्मरण कराया है। ऐसे आर्ष-धर्माचार्य, आर्यचारित्रपद्धति-प्रशस्तक महापुरुष के जीवन का एक क्षण भी देश, धर्म, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिये अत्यन्त आशंसनीय नितान्त स्पृहणीय और परम महोत्सवनीय है; किमुत ८२ साल का सुदीर्घ पुण्यकाल!

अतः हम पूज्य मालवीयजी के इस ८३ वीं जीवनाब्दी के शुभ आरम्भ-काल में परमानन्दमय अतितरां प्रमोदसे समुल्लसित हो रहे हैं। इस महामहनीय परमादर्शचरित विद्यावयोवृद्ध महात्मा के पवित्र जीवन की देश और समाज को कितनी आवश्यकता है? यह सभी विज्ञ जनोंको ज्ञात होगा।

पूज्य मालवीयजीने अपने विलक्षण ज्ञान-विज्ञान से और अद्भुत कर्मयोग से, मनसा वाचा कर्मणा, शारीरिक तथा बौद्धिक दोनों शक्तियोंसे, ७५ सालकी उमर तक, सतत लोक-सेवा की है। अनन्तर, शरीर-शक्ति के शिथिल हो जानेपर, इस अति वृद्धावस्था में भी, आप की परिणत-प्रज्ञा, विचारोत्तेजक देशना, प्रभावकारिणी क्रिया, सन्मार्गानुसारिणी इतिकर्तव्यता और व्याप्तिमती सद्वृत्ति की सञ्चारिणी हवा से, साक्षात् और परम्परया तथा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्षरूप से, जनता का जो कल्याण और शक्ति-लाभ हो रहा है, उसका मूल्य तथा महत्त्व अमोघ है; सुतरां मानवलोक और प्राणिमात्रकी भलाई के लिये, पूज्य मालवीय जीका, कमसे कम शतायुष्काल तक, हमें आत्मबल और शुभाशीर्वाद देते हुए, जीवित रहना सर्वथा अपेक्षित, परम अभ्यर्थनीय है। हम जगदन्तरात्मा, विश्वनियन्ता, परब्रह्म परमात्मा से, विश्वमानव-समाज के, अथ च प्राणिमात्र के सच्चे हितचिन्तक, पूज्य मालवीय जीके दीर्घजीवन और जीवितावधिक सुख-शान्तिमय स्वास्थ्यके लिये, हार्दिक प्रार्थना करते हैं।

पूज्य मालवीयजी के सद्गुणों का गान, अथवा अनेक लोकोत्तर पुरुषार्थों का बखान करना, और

उनके महत्त्व का परिचय देना, सर्वप्रत्यक्ष पदार्थ का अनुवादमात्र होगा ; क्योंकि आपका शुभ्रयशःशरीर, केवल भारतवर्ष में ही नहीं ; अपि तु प्रायः सम्पूर्ण शिक्षित-जगत् में स्वतः प्रकाशमान है ; तथा आपकी सुकीर्ति स्वर्गतक फैलनेवाली है ; आप भारतलोकपूज्य तो हैं ही ; साथ ही विश्व के शिष्ट-महाजनों में भी अभ्यर्हिततम हैं ; अतः आपका गुणानुवाद करना, प्रत्यक्ष की पुनरुक्ति मात्र है ; विश्वप्रकाश भास्कर को दीपक से दिखाने का प्रयत्न व्यर्थ है। अतः हम लोक-पूज्य महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी महाराज के सद्गुणगान का विस्तार न कर के उनके, पुनीत चरण-कमलों में परम सद्भावमय श्रद्धापुष्पाञ्जलि अर्पित करते हैं !

हम इसी अङ्क में आगे पूज्य पण्डित मदनमोहनमालवीयजी के 'सुनहले शिक्षा-सूत्र' को पं० ईशदत्तजी के 'भाष्य' के साथ प्रकाशित कर रहे हैं।

हम, पूज्य मालवीयजी महाराजके इस अमर सन्देश और लोक श्रेयस्कर आदेश-उपदेश के महत्त्व का वर्णन करना व्यर्थ समझते हैं ; इसका माहात्म्य, स्वतः प्रकाशमान है।

इस के पहले भी वर्षों से पूज्य पण्डित मदनमोहन मालवीय-प्रणीत 'हिन्दू धर्मोपदेश' 'विश्व-पञ्चाङ्ग' के अन्तिम पृष्ठपर छपा करता है। अन्यत्र प्रकाशित "पूज्य मालवीयजी के सुनहले सूत्र" के वार्तिकस्वरूप वह उपदेश भी नीचे अविकल उद्धृत किया जाता है। [ —सं० ]

"संघे शक्तिः कलौ युगे"

हिताय सर्वलोकानां, निग्रहाय च दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय, प्रणम्य परमेश्वरम्,
ग्रामे ग्रामे सभा कार्य्या, ग्रामे ग्रामे कथा शुभा, पाठशाला मल्लशाला प्रतिपर्वमहोत्सवः,
अनाथा विधवा रक्ष्या, मन्दिराणि, तथा च गोः, धर्म्यं संघटनं कृत्वा, देयं दानं च तद्धितम्,
स्त्रीणां समादरः कार्यो, दुःखितेषु दया तथा, अहिंसका न हन्तव्या आततायी वधार्हणः।
अभयं सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं धृतिः क्षमा, सेव्यं सदामृतमिव स्त्रीभिश्च पुरुषैस्तथा ;
कर्मणा फ़लमस्तीति विस्मर्तव्यं न जातु चित्, भवेत्पुनः पुनर्जन्म, मोक्षस्तदनुसारतः ;
स्मर्तव्यः सततं विष्णुः सर्वभूतेष्ववस्थितः, एक एवाद्वितीयो यः शोकपापहरः शिवः,
पवित्राणां पवित्रं यो, मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्, दैवतं देवतानां च, लोकानां योऽव्ययः पिता, :
उत्तमः सर्वधर्माणां हिन्दूधर्मोऽयमुच्यते ; रक्ष्यः प्रचारणीयश्च, सर्वभूतहिते रतैः ॥

# हर्ष समाचार

## प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमियों और प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञोंकी सेवामें

प्रिय महोदय !

आपको यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि इन दिनों में प्राकृतिक चिकित्साके इतिहासपर एक वृहद् ग्रन्थ लिख रहा हूं, जिसमें समस्त संसारके भूत और वर्त्तमानके विख्यात चिकित्सकविज्ञोंके जीवन-चरित्र सहित उनके सुन्दर चित्रों एवं प्राकृतिक चिकित्साके क्षेत्रमें किए गये उनके गवेषणापूर्ण कार्यों और प्रयत्नों का संक्षिप्त परिचय रहेगा। परन्तु यह महान् कार्य आप जैसे सहृदय विद्वज्जनोंको सक्रिय सहायताकी नितान्त अपेक्षा रखता है। मुझे आशा है, आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि आप मेरे गुरुतर कार्यको सरल बनानेके लिये निम्न प्रकारसे मेरी सहायता कर मुझे कृतार्थ करेंगे।

(१) हिन्दी या अंग्रेजीमें अपना संक्षिप्त जीवन चरित्र भेजने की कृपा करें।

(२) अपना फोटो या ब्लाक भेजकर कृतार्थ करें।

(३) अपनी प्राकृतिक चिकित्सा विषयक पुस्तकें, चार्ट और पैम्फलेट भेजकर अनुगृहीत करें ताकि मैं अपने ग्रन्थमें आपकी रचनाओंका उद्धरण देकर यह दिखानेका प्रयत्न कर सकूं कि प्राकृतिक चिकित्साकी किस प्रधान समस्याका हल आपकी रचनाओंसे हुआ है; दूसरे शब्दोंमें प्राकृतिक चिकित्साके किस विषय-विशेषका सुन्दर रूपेण प्रतिपादन आपकी पुस्तकमें हुआ है। इससे जहां आपकी पुस्तकोंका विज्ञापन होगा वहां आपकी पुस्तकोंकी समालोचना भी साथ ही हो जाएगी।

(४) यदि आप प्राकृतिक चिकित्सापर किसी भी भाषामें कोई पुरानी या नई पुस्तक भेज सकें तो कृतज्ञ होऊंगा।

(५) यदि आप भूत और वर्तमानके प्राकृतिक चिकित्सकों, प्राकृतिक चिकित्साके जन्मदाताओं एवं प्राकृतिक चिकित्साको प्रोत्साहन देनेवाले प्राकृतिक-चिकित्साप्रेमी महानुभावोंके चित्र भेज सकें तो उन्हें सधन्यवाद स्वीकार किया जाएगा।

(६) इस विषयमें अपनी अमूल्य सम्मति एवं उचित निर्देश देनेका अनुग्रह करें।

(७) यदि इस विषयसे सम्बन्धित आपके पास कोई नूतन उपयोगी पठनीय सामग्री हो तो उसे भी उदारतापूर्वक भेजनेका कष्ट करेंगे।

आपकी सेवा में पुस्तक के प्रकाशनके उपरान्त एक प्रति हृदयके परम प्रशस्त उद्गारोंके साथ भेंट की जाएगी।

अन्तमें इस कष्ट के लिए आपको हार्दिक धन्यवाद देता हुआ—

आपका कृपाकांक्षी—

**गंगाप्रसाद गौड़ "नाहर"**

कवि, पत्रकार, एवं प्राकृतिक चिकित्सक,

डी० टी० एस० आफ़िस, पो० आ० सोनपुर, सारन, (बिहार)

# पूज्य मालवीयजी के सुनहले शिक्षा-सूत्र

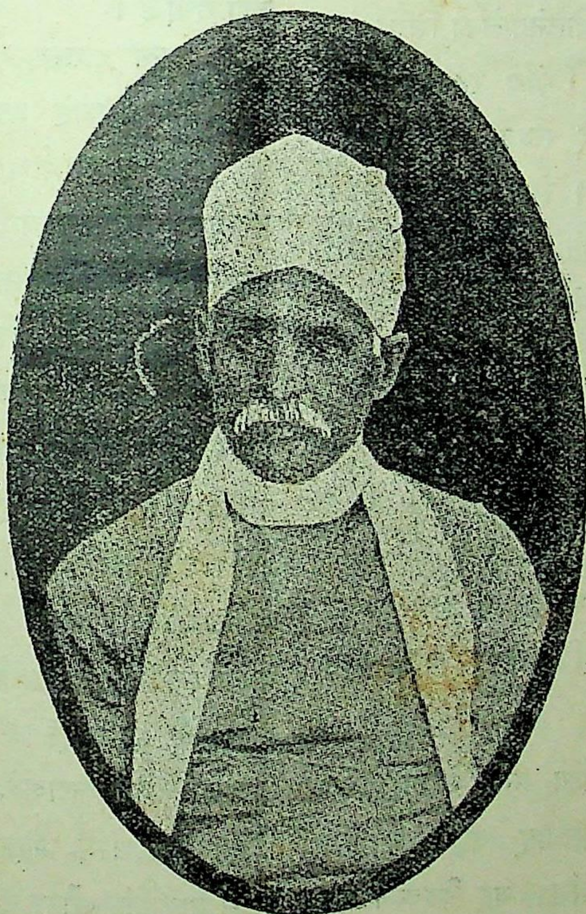
भाष्यकार—पण्डित ईशदत्त शास्त्री 'श्रीश' साहित्यदर्शनाचार्य, साहित्यरत्न

इस पत्रके प्रेमी पाठकों! मुझे बहुत हर्ष हो रहा है कि आपके सामने वर्तमान भारतके सर्वश्रेष्ठ नररत्न, आर्य-संस्कृतिके जीवित जाग्रत उज्ज्वल प्रतीक, पूज्य पण्डित मदनमोहन मालवीयजी महाराजकी मधुर-आशाभरे सन्देशोंको, जोकि मधुकर-वृत्तिसे उन्हींके चरणोंके समीप बैठकर सङ्कलित किये गये, उपस्थित कर रहा हूं। भगवान् उस अखण्ड भारतसेवी विश्व-वन्दनीय महापुरुषकी भावनाओंको प्रत्यक्ष परिणत करे कि हमारा देश हमारा धर्म और हमारा समाज दिनरात फूले-फले।

—भाष्यकार

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

सत्यवचन, ब्रह्मचर्य-धारण, व्यायाम, विद्या-ध्ययन, देशभक्ति और आत्मत्यागके द्वारा सम्मान के योग्य बनो। मैं चाहता हूं प्रत्येक छात्र इस श्लोक को अपने हृदयपर अंकित करे और उसीके अनुसार आचरण भी रखे। इस श्लोकका भाव भारत ही नहीं, अपितु समस्त संसारके लिये लाभप्रद है। संसार न सही तो भारत-वासी, उनमें भी विशेषतः हिन्दू सन्तानमात्रका अनि-वार्य कर्त्तव्य है कि वे इस श्लोकमें उल्लिखित छः गुणों का पालन करके अपने मानवजन्म को सफल करें।



पूज्य पण्डित श्री मदनमोहन मालवीय

## सत्य

सत्यसे बढ़ कर कोई धर्म नहीं, 'सत्यान्नास्ति परो धर्मः' 'सत्यमेव जयते, नानृतं' सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं। महाभारत, रामायण और पुराणोंके पढ़नेसे पता चलता है कि राजा हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र, युधिष्ठिर आदि अनेक सम्राटोंने सत्यके पीछे नाना प्रकारके सीमातीत कष्ट उठाये, पर सत्यसे नहीं डिगे। आर्यजातिकी इस विशेषताको संसारके समस्त ऐतिहासिकोंने श्रद्धाभरे शब्दोंमें माना है। मैं आशा करता हूं कि हमारे देशके प्राणरूप हिन्दू बालक अपने पूर्वजोंकी इस पवित्र और आदर्श धरोहरकी

रक्षा करेंगे। सच बोलनेका अर्थ है अपने जीवनका सबसे बढ़कर कीमती काम करना। प्राचीन कालमें आश्रमोंमें २५ वर्षतक ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या पढ़कर जब छात्र अपने घरोंको चलते थे तो ऋषिगण सबसे पहला उपदेश यही देते थे कि 'सत्यं वद' 'सच' बोलना। इस गुरु-प्रदत्त उपदेशकी अमिट छाप उनके जीवन भर एक दिव्य ज्योति जगाये रखती थी। किसीने ठीक ही कहा है—

'सांच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।
जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप।

शास्त्रोंमें असत्यवादियोंकी बड़ी-बड़ी दुर्गति लिखी है जिसकी कल्पनासे भी रोमाञ्च हो उठता है, भोगना तो बहुत दूरकी बात है। सच बोलनेवालेका सिर ऊंचा रहता है, चेहरा प्रसन्न और निर्भय रहता है; और झूठ बोलनेवाले को लज्जाके मारे सभ्य समाज में मुंह दिखलाना मुश्किल हो जाता है। मेरा वश चले तो मैं भी भारतीयोंके लिये 'नियमतः सत्यवादी बनना' अनिवार्य कर दूं। फिर भी अपने पूर्वजोंके इस आदर्श व्रतको हमें एकदम भूल जाना नहीं चाहिये। जिससे जितना भी हो सके इस पथ पर चले।

सतां वर्त्मानुगन्तव्यं कृत्स्नं यदि न शक्यते,
स्वल्पमप्यनुगन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति।

सज्जनोंके मार्गपर यदि पूर्णतया न हो सके तो थोड़ा भी चलना चाहिये, क्योंकि पथपर चलते रहने वाला कभी कष्ट नहीं पाता।

अब भी अन्य देशोंकी अपेक्षा हमारे देशमें सत्य बोलनेका महत्त्व अधिक है। भगवान् वह दिन शीघ्र दिखलावे जब कि दुनियांके लोगोंका यह विश्वस्त मत हो जाये कि 'भारतवासी झूठ बोलना जानते ही नहीं।' मेरे देशके भविष्य-कर्ण-धारो! क्या तुम मेरे सुनहले स्वप्नको सत्य करोगे?

### ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्यकी महिमाको कौन बखान सकता है।
'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत'

देवताओंने ब्रह्मचर्यके द्वारा मृत्युको जीत लिया! एक ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्यके बलपर अधिकसे अधिक समयतक जीवित रह सकता है, असाध्यसे असाध्य कार्यको कर सकता है। 'भीष्मपितामह' का दृष्टान्त प्रसिद्ध है उनकी 'इच्छा मृत्यु' हुई थी। ब्रह्मचर्य बल, बुद्धि और विद्याका परम सहायक है। चिन्ता और भय, ये ब्रह्मचारीका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। हिन्दू जातिके इतिहासका पन्ना-पन्ना ब्रह्मचर्यके ज्वलन्त आदर्शोंसे भरा पड़ा है। ब्रह्मचर्यके लिये एक स्थानपर कहा गया है।

धन्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम्
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यं नित्यमकल्मषम्।

अर्थात् ब्रह्मचर्य धन्य, कीर्तिका देनेवाला, लोक-परलोक दोनोंको बनानेवाला उत्तम रसायन, आयु बढ़ानेमें समर्थ और नित्य-निरन्तर पुण्यमय है। आज ब्रह्मचर्यके अभावसे ही हमारे देशकी दशा दीन-हीन है। यदि ब्रह्मचर्यके प्रभावका प्रत्यक्ष फल देखना हो तो महावीर हनूमानका स्मरण करिये। इष्टदेवके समान उनको पूजिये; फिर देखिये उनका प्रभाव। आज भी प्रत्येक पहलवान 'जय बजरङ्ग बली' की हुंकारके साथ अपने अन्दर अकूत ताकतका अनुमान करता है। वास्तविक बात तो यह है कि उनके जैसा इन्द्रियविजयी दूसरा है ही नहीं। अखाड़ोंकी तरह ही स्कूलों, कालेजों, पाठशालाओं, विश्वविद्यालयों या सर्वत्र शिक्षा-संस्थाओंमें महावीरजीका चित्र होना चाहिये। इससे बालकों और तरुणोंमें उत्साहका भाव पुष्ट होगा। ब्रह्मचर्य और सेवाधर्म इन दोनोंका अपूर्व संयोग उनमें है। मेरा तो विश्वास यह है—

'महावीरको इष्ट है ब्रह्मचर्यका नेम,

दृढ़ता अपने धर्म में सारे जगसे प्रेम ।'

ब्रह्मचर्य, स्वधर्ममें दृढ़ता और विश्व-प्रेम इन तीनोंका मूलमन्त्र महावीर हनुमानमें है। उचित तो यह है कि ब्रह्मचर्यकी भावनाको पूर्ण रूपसे व्याप्त करनेके लिये भारतके गांव-गांवमें महावीरदल और अखाड़े स्थापित किये जायं ; जिससे अटकसे कटकतक तरुणाई का समुद्र उमड़ पड़े। दीन-दुखियों, असहाय, अबलाओं, मन्दिरों, गौओं, ब्राह्मणों — गरज यह कि हिन्दुत्वकी मान-रक्षा हो। बहू-बेटियों पर कोई आंख न उठा सके। हिन्दू जातिके बच्चे और युवक मालिक की तरह चलें; गुलामकी तरह नहीं।

व्यायाम

मैं प्रत्येक भारतीय युवक, विशेष कर हिन्दूसमाज, से प्रार्थना करता हूं कि वह व्यायामकी प्रथाको फिरसे गांव-गांवमें चला दे। शरीरमें स्वास्थ्यरूपी सोनेको चमकानेके लिये व्यायाम एक कसौटी है। व्यायाम करनेसे शरीर तगड़ा, हृष्ट-पुष्ट होता है और व्यायामी पुरुष अपने उद्देश्योंको दृढ़संकल्प होकर पूरा-पूरा कर सकता है! व्यायामके लिये एक स्थानपर कहा गया है—

शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम् ,
तत्कृत्वा सुसुखंदेहं विमृद्नीयात्समन्ततः ।

शरीरको परिश्रमसे थका देना ही व्यायाम है ; उसको करके मनुष्य अपने शरीरको सुखपूर्वक मांसल और मजबूत बना सकता है। आज कल कुछ व्यायामप्रेमी, विदेशी व्यायाम करते हैं, यह ढंग ठीक नहीं। एक तो यह 'स्वदेशी' नहीं, दूसरे व्यय-साध्य होनेसे सबके लिये सुलभ भी नहीं है। हमारे देशके व्यायामकी यह विचित्र खूबी है कि वह सस्ता होनेके साथ साथ सभी हालतमें सुविधा-जनक भी है। इसमें मुग्दर, लाठी, बनेठी, गदकासे लेकर डण्ड-कसरत, गुल्ली-डण्डा, ओल्हा-पाती, चिकई-कबड्डी, दौड़ तक शामिल है। व्यायामी और अव्यायामी सभीको गो-दुग्ध पीनेका व्रत लेना चाहिये और भीगे-भूने चनेके लिये कहना ही नहीं है। मनुष्यके लिये गोदुग्धसे बढ़ कर संसारमें और कोई चीज इतनी उपयोगी नहीं। गोदुग्धमें ही यह विशेषता है कि उसको पीनेवाला मनुष्य अन्य कुछ भी न खाकर जीवित रहते हुये कार्य-क्षम रह सकता है। दुग्ध जैसे अमृततुल्य आयु-आरोग्य-दायक वस्तुको देनेके कारण ही गौ 'माता' के समान पूजी जाती है। दूध व्यायामका परम सहायक मित्र है। मेरा कहना तो यह है—

'दूध पियो कसरत करो नित्य जपो हरिनाम,
हिम्मतसे कारज करो पूरेंगे सब काम।

दूध पीने और व्यायाम करनेसे मनुष्य पराक्रमी बनता है, वीर्यशाली बनता है। पराक्रम और वीर्यसे हीन पुरुष, सब गुणोंसे युक्त होकर भी कुछ नहीं कर सकता, इस भावका श्लोक भी है—

'सर्वैर्गुणैः सुयुक्तोऽपि निर्वीर्य्यः किं करिष्यति ?
गुणीभूता गुणाः सर्वे तिष्ठन्ति हि पराक्रमे ।

यह भी कहा गया है कि नित्य नियमसे व्यायाम करनेवाले और तलवेमें तैल लगानेवाले पुरुषसे रोग वैसे ही भागते हैं जैसे सिंहके भयसे क्षुद्र मृग। इस भावका श्लोक यह है—

व्यायामं कुर्वतो नित्यं पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च ।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहात् क्षुद्र मृगा इव ।

विद्या

विद्याका महत्त्व भी क्या बतलाना पड़ेगा? लिखा है—

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति, धनाद्धर्मं, ततः सुखम् ।

विद्या मनुष्यको विनय देती है, विनयसे योग्यता मिलती है, योग्यताके द्वारा धन प्राप्त होता है, धनादिसे धर्म और फिर धर्मसे सुख मिलता है — यह है विद्याका

चमत्कार ! विद्यासे हीन मनुष्य पशुके तुल्य है ; विद्या पढ़नेसे पशुता छूट जाती है। 'यह बुरा है, यह भला है' की विवेचक बुद्धि हो जाती है। वेदोंमें विद्वानोंको देवस्वरूप कहा गया है। आज कलके शिक्षालयोंके विद्यार्थी गरीब माता-पिताके कष्टपूर्वक भेजे गये रुपयों का व्यय खेल-तमाशा नाटक-सिनेमा आदि चरित्र-नाशक कार्योंमें कर डालते हैं, यह बहुत ही दुःखद बात है। हृदय-हीनताका इससे बढ़कर दूसरा उदाहरण क्या हो सकता है। सदैव परिश्रम करके गुरुभक्ति-पूर्वक विद्या पढ़ना चाहिये, ऊँचीसे ऊँची श्रेणीमें परीक्षा पास करना चाहिये। धर्म और चरित्रसे हीन कुशिक्षाकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करना चाहिये। इससे सारा जीवन सुखपूर्ण होगा।

देशभक्ति

अगर मनुष्यमें विश्वके समस्त गुण आ जांय और देशभक्ति न हुई तो कुछ नहीं हुआ। अपने देशके प्रति मानभाव न रखनेवाले मनुष्यके लायक नीचसे भी नीच उपाधि देना कम ही है। आदर्श मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रने जननी-जन्मभूमिको स्वर्गसे भी बढ़कर बतलाया है। अब कहना क्या शेष रहा ?

जो देशभक्ति आ जावै,
तब सब स्वारथ भग जावें।'

देशभक्तिसे बढ़ कर कोई पुण्य नहीं है। पुराने समय की बातको जाने दीजिये। इधरके इतिहासमें भी शिवाजी, गुरुगोविन्द सिंह, राणा प्रताप आदि देशभक्ति ही के कारण अजर-अमर हो गये हैं।

'स्वारथ तजि जो देशकी सेवा करैं उदार,
धन्य पुरुष वे रत्न हैं मनुजनके सरदार।'

भगवान्‌की कृपासे हम लोगोंको तो देश भी ऐसा ही मिला है जहांके लिये देवगण भी तरसते हैं। मीठी-मीठी नदियां, गर्जनशील नाले, स्वच्छ पहाड़ी झरने, रंग-विरंगे फूल, अमृततुल्य फल, सुहावने जंगल, आकाशके दर्पणके समान समुद्र, सुषमाके निकुञ्ज से गिरि, ये सब दृश्य, पूर्व जन्मके सुकृतके ही फल हैं। आज भी धनबल, जनबल, विद्यावल, प्रज्ञाबलमें भारत अद्वितीय है। फिर भी एकमात्र एकताके अभावसे पराधीन है। देशोन्नतिके काममें आलस्य छोड़कर शीघ्रातिशीघ्र एका कर लेना पड़ेगा। तभी काम चलेगा।

सब मिलि बोलो एक आवाज,
अपना देश अपना राज।'

उठो। देशभक्तिकी दीक्षा लो। भगवान् सब मङ्गल करेंगे।

आत्मत्याग

यह अन्तिम छठां गुण है। लेकिन सबसे अधिक महत्त्व रखता है, कोई भी काम करो, तन मन धनसे करो, यही आत्मत्याग या आत्मसमर्पण है। निस्वार्थ निरालस्य और निश्चिन्त होकर देशके धर्मके और समाजके हितके लिये काम करना मनुष्यकी शोभाको बढ़ाता है।

ये ही छः गुण हैं। भारतके प्रत्येक बालक-बालिका और तरुण-तरुणी जनके लिये मेरा सन्देश है कि वे इन गुणोंसे युक्त होनेका व्रत लें। इससे वे अपना ही नहीं अपने देशकी भी काया पलट सकनेमें सर्वथा समर्थ होंगे; यह मेरा दृढ़ विश्वास है। आजमा कर देखिये। दीन मत बनो। 'हिन्दू गऊ होते हैं' इस अपवादको असत्य साबित करो। अब तो 'सांड' की भांति बलिष्ठ निर्भीक और साहसी बनो। स्वराज्यका उपभोग करनेके लिये तैयार रहो। आततायीके अत्याचारका बदला लेनेका सामर्थ्य रखो। हिन्दुओंका भविष्य बहुत अच्छा है। गांव-गांव प्रतिदिन रातको ८ बजे सब कामसे निपट कर कोई पुराणकी कथा या गोस्वामी तुलसीदासके 'अखण्ड खजाना' रामायणसे कुछ कहो सुनो। मेरा हृदयसे आशीर्वाद है कि भगवान् तुम्हें सफलता दें।

# व्यायामानुशीलन

ले० —विद्याभूषण पं० मोहनशर्म्मा, विशारद, पूर्व सम्पादक 'मोहिनी''

सम्प्रति भारतमें सुधारवादकी झंझा वायु इस भांति बह रही है कि अनेक सुधारप्रिय व्यक्ति अथवा सुधारवादके हामी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और समस्त प्राचीन विचारोंको गिन-गिनकर नाम-शेष कर देनेके लिये भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं। क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक सभी क्षेत्रोंमें एक विकट क्रान्तिकी लहर उठ रही है। जान पड़ता है कि खाली तरंगके घोड़े दौड़ानेवाले हमारे कुछ सुधारक जिन्हें हर स्थानपर क्रान्ति और इन्किलाबका ढोल पीटनेकी सूझी है चारों ओरसे सम्पूर्ण सुधार किये बिना परितृप्त होंगे। इधर कट्टरपन्थी अथवा लीकवादी धर्माचार्य अपनी और ही धुनमें लग रहे हैं। इस भांति कई एक आगे बढ़नेवाली और कदाचित कई एक पीछे हटनेवाली जुदी जुदी अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियां आज दिन भारतवर्षमें सरगर्मीसे काम करती हुई देखी जा रही हैं। इनमेंसे कुछका प्रवाह इस ओर है कि कुछ होना सम्भव न हो वहां निरर्थक समय और शक्तिका व्यय न करके गूंगे बनकर बैठ रहनेमें ही कल्याण है। और कुछका प्रवाह इस ओर है कि आलस्यके वशीभूत हो निरुद्यमी और निश्चेष्ट रहनेकी अपेक्षा कुछ बेवकूफी कर बैठनेमें ही मंगल है। उपरोक्त दो विभिन्न मतोंमेंसे कौनसा मत औचित्यपूर्ण और युक्तियुक्त है—इसका निर्णय हम विचारशील पाठकोंपर ही छोड़ते हैं। हमें यदि क्रान्तिके इस भयङ्कर युगमें, परिवर्त्तनशीलताके इस विकट प्रवाहमें किसी खामी या दुर्बलता विशेषका अनुभव होता है तो वह हमारे जीवनक्रममें शारीरिक उन्नति सम्बन्धी उदासीनताका उत्तरोत्तर परिलक्षित होना ही है।

शरीर सम्पत्तिके सुरक्षित रहने अथवा आवश्यक रूपसे वृद्धि को प्राप्त होते रहनेसे मनुष्य प्रत्येक अवस्था में अपनी चतुर्मुखी उन्नतियोंके लिये अनायास ही प्रेरणा और बल प्राप्त करता है। भारत जिस कालमें शारीरिक सम्पत्तिकी दृष्टिसे बलशाली था, यहांके अधिवासी आश्रम मर्यादाओंकी विधिवत पालनामें निरत रहते थे, संयमी जीवनकी झांकी उनके क्रिया-कलापमें परिलक्षित होती थी, तब भारत विश्वकी रङ्ग-स्थलीमें प्रकृत पुरुषार्थी, ऐश्वर्य सम्पन्न, धनधान्यसे पूर्ण और विद्या-कला आदिका जनक माना जाता था। यह सारी विभूतियां एकमात्र शक्तिकी आराधना करने अथवा आवश्यक रूपसे शक्ति और बलका संचय करने से ही देशके भाग्यमें जुटी थीं। अतः इस सुधारवादके फुटे हुए ढोलको पीटने और शंखनाद करनेकी भाग-दौड़में जिस प्रमुख और आवश्यक बातकी अपेक्षा की जा रही है वह केवल "शारीरिक उन्नति" है।

सम्प्रति उच्च कोटिके मानसिक विचार प्रगट करते हुये अथवा लम्बी बातें हांकते हुये भी हमारा देह दौर्बल्य इस भांति वृद्धिको प्राप्त हो गया है कि उसपर सम्यकरीत्या विचार करनेसे हृदय प्रकम्पित हो उठता है। बात तो कुछ विनोदपूर्णसी है। पर उसकी सत्यता में तनिक सन्देह नहीं हो सक्ता। हमारे कितने ही व्याख्यानदाता और वक्ता जब मञ्चपरसे हाथ पैर और सिरको हिलाते हुये उच्च स्वरमें देश या धर्मोद्धारका व्याख्यान देते हैं यदि कोई व्यायामशील, कसरती व्यक्ति उन्हें हलकासा भी धक्का लगा दे तो उससे वे केवल गिर ही न पड़ेंगे किन्तु उनकी कमरतक टूट जावेगी। जब हमारे उपदेष्टाओं और कितने ही कर्ण-

धारोंके शरीरकी यह दशा है तो औरोंके विषयमें कुछ कहना निरर्थकसा है। नवयुवकों और तरुणोंकी ओर दृष्टि दौड़ाइये तो वे लाल सुर्ख गुलाबी चेहरेके बदलेमें पीला चेहरा बनानेमें ही असाधारण सुख मान रहे हैं। घरके बड़े बूढ़े जहां ब्राह्म मुहूर्त्तमें उठकर नैमित्तिक क्रियाओंसे निपटे नित्य देवमन्दिरमें दर्शनार्थ जाते हैं, वहां अधिकांश युवक सूर्योदयके पूर्व चारपाईका मोह नहीं छोड़ते। प्रातःकाल या तो वे चायरूपी विषाक्त पेयकी आराधना करते हुये या हाथमें शीशी लेकर अस्पताल जाते हुए दिखाई पड़ते हैं। देशके भावी भाग्यका निर्माण और संहार जिस तरुण शक्तिपर पूर्णतः अवलम्बित है, उसकी इस गयी बीती अवस्थापर विचार करते हुए, ऐसा कौन है जो निराशा और दुःखसे पीड़ित न हो उठेगा ?

प्रायः सभ्य और सुधरे हुये उन्नत देशोंमें स्त्रियोंकी आयु पूछना सभ्यताके विरुद्ध समझा जाता है क्योंकि वे सदैव यौवन-सम्पन्ना ही रहती हैं। ऐसा सभ्य देशोंके निवासी मानते हैं और दूसरोंसे भी मनवाना चाहते हैं। किन्तु, परितापका विषय है कि हमारे भारतकी स्त्रियोंका बहुत बड़ा भाग तो उनके प्रसूता होनेके बाद ही यमराजका भोग बन जाता है। और जो भाग्यसे सुरक्षित भी रहती है, वह बेचारी, १, २ बच्चोंकी मां होते ही दादी, बूढ़ी मां कहलाने लगती है। सभ्य देशोंमें चाहे जिस उम्रमें भी लोग क्लब अथवा आमोद गृहोंमें प्रवेशपूर्वक आनन्द उठाते हैं, गायन, वादन, करते, टैनिस, क्रिकेट, वाली बौल, विलियर्ड, पिंगपांग आदि खेलकर शरीरको सुदृढ़ बनानेको नियमित प्रबन्ध रखते हैं किन्तु इस देशकी अवस्था इसके सर्वथा विपरीत है। पश्चिमी सभ्यताका स्वांग रचनेवाले कितने ही हेट, कोट, पतलूनधारी व्यक्ति व्यायामसे चिढ़ रखते हैं अन्यथा वर्जिश करते हुये शर्माते हैं।

एक प्रकारसे जो सुधारकोंकी दशा है वही वर्त्तमानमें हमारे पुराने विचारके पोषकोंकी सी हो रही है। परिश्रम पूर्वक शरीरके अङ्ग, प्रत्यङ्गोंको सुदृढ़ बनानेकी अपेक्षा उनमेंसे कितने ही गजाननका स्वरूप धारण कर बैठे बैठे तोंदपर हाथ घुमाया करते हैं, और बलवान शरीरका अभिमान पोषण करनेके बदले नज़ाकत और सुकुमारतामें ही अपना बड़प्पन देखते हैं। कतिपय धनीमानी लोगोंका यह विश्वास रहता है कि परिश्रम करना अथवा व्यायामका कष्ट उठाना एकमात्र मजदूरोंके हिस्सेका काम है। अतः सुधारक होकर भी ये लोग बैठे बैठे हुक्मरां कहलाते और शरीर चर्चाके नामपर भीम, अर्जुन आदिकी कहानियां गढ़ा करते हैं। आजके युद्ध कालमें सरकार आलियासे प्रार्थना की जाती है कि वह भारतीयोंको सेनामें उच्च पद प्रदान करें। यदि गवर्नमेण्ट इसे स्वीकार कर मध्यम वर्ग और उच्च वर्गसे वालण्टियर भरती करनेका हुक्म जारी कर दे तो मेरा ख्याल है कि इस सनसनी खेज़ खबरके फैलते ही हमारे फी सदी ८०, ९० धनीमानी पुरुषोंको संग्रहणी रोग ग्रसित कर लेगा। क्योंकि मशीनगन और तोपोंकी गोलाबारी, कड़ाकेकी ठण्ड और भीषण हिमपातके बीचमें आक्रमण करनेकी बात तो एक ओर रही यदि घण्टे, २ घण्टे खाई खोदनेका काम और घायल तथा मुर्दोंके ढोनेका काम उन्हें दिया जाय तो वे उसे पूरा नहीं कर सकते।

देशके विद्यार्थियोंकी अवस्था इससे और भी अधिक चिन्तनीय और शोकजनक है। प्रथम तो भारतकी प्राथमिक शिक्षा संस्थाओंमें व्यायाम शिक्षाका ठीक प्रबन्ध नहीं है। और जो कुछ प्रबन्ध है भी उसे पर्याप्त कहकर सन्तोष की सांस नहीं ली जा सकती। अंग्रेजी तालिमकी पाठशालाओंमें लेजम, मुगदर आदिकी कवायदके साथ साथ व्यायामके अन्य पहलुओंकी शिक्षाकी कुछ प्रबन्ध अवश्य है। परन्तु केवल उससे ही

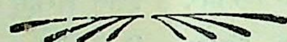
विद्यार्थीगण भविष्यमें देशके सच्चे सिपाही, वीर्य शौर्य सम्पन्न युवा और आवश्यकतानुसार योद्धा नहीं बन सकते। दूसरी ओर पठन क्रमके अभ्यासका बोझ विद्यार्थियोंके सिरपर इस प्रकार जोरोंसे रख दिया जाता है कि वे उसके दबावसे जीवन पर्यन्त शक्तिहीन रहते हैं। विद्यार्थियोंको इस गुरुभारके सम्हालनेकी चिन्ता और रातदिनके अटूट परिश्रमके कारण कभी सुखकी नींद नहीं आती। फल यह होता है कि उनकी जठराग्नि मन्द होकर भविष्यमें वे नाना रोगोंके शिकार बनते हैं। यद्यपि विद्यार्थियोंके पक्षमें उच्च शिक्षा अनिवार्यतः आवश्यक है पर "कागजके बाक्समें ऊंट-को बन्द करना कोई बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य नहीं कहा जा सकता।" यदि पाश्चात्य शिक्षाके कारण हमारे आरोग्यता धनका संहार होता हो तो उससे हमारी वह पुरानी सीधी सादी शिक्षा ही कहीं श्रेष्ठ है।

देशमें राजनैतिक आन्दोलनका जन्म होनेके साथ साथ और गये दिनों कांग्रेसके ६ प्रान्तोंमें शासनारूढ़ होनेसे इस विषयमें क्रियात्मक रूपसे नये नये उपायोंका अवलम्बन आरम्भ कर दिया गया था। फिर भी जब हम इस सम्बन्धमें विदेशियोंके प्रयत्नोंसे अपने प्रयत्नोंका मुकाबिला करते हैं तो उसमें आसमान जमीनका ही फर्क दिखाई देता है। कांग्रेसके राष्ट्रीय झंडेके नीचे चलनेवाले वालण्टियरोंके संगठनका प्रयत्न यथार्थमें ही देशके भाग्योदयका शुभ लक्षण है। इसी भांति डाक्टर मुञ्जे द्वारा आयोजित नासिकका मिलिटरी कालेज, अलामा इनाइत उल्ला मशरिकी द्वारा प्रवर्तित खाकसार पल्टन, वानर सेना, स्वयंसेवक, सेवादल, वजरंग दल, शक्तिदल आदि आदि उद्योग देशमें समान भावसे बल की पूजाका भाव जगानेमें प्रत्यक्ष रूपसे सहायक हो रहे हैं। और इससे ही ज्ञात होता है कि देशके कर्णधार बड़े बड़े नेताओं और विद्वान पुरुषोंका ध्यान अब इस विषयमें धीरे धीरे आकृष्ट होने लग गया है। यदि यह भावना इसी रूपमें उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होती गयी तो यह निश्चित है कि सुदूर भविष्यमें देश अपने लुप्तप्राय स्वास्थ्य और बल वैभवको पुनः लौटानेकी सामर्थ्य प्राप्त करेगा।

जिसे व्यायाम करनेका समय नहीं मिलता उसे बीमारीके लिये समय निकालना पड़ेगा। व्यायाम-से शरीर हमेशा स्वस्थ और सुखी रहता है। और स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मन निवास करता है। इसमें सन्देह नहीं कि संसारके सुख, निरोग शरीरके बिना भोगे नहीं जा सकते। हाथीपर स्वर्णकी अस्वारी में बैठे हुये मनुष्यको यदि पेटमें सूईसी चुभती हो, हाथ पैर टूटते हों तो ऊपरकी सारी सजधज और आडम्बरसे भरा हुआ ठाठ बाट किसी भी कामका नहीं है। गृहमें लोहेकी तिजोरियां, स्वर्णराशि और रुपयोंसे खचाखच भरी हों और गृहस्वामीके उदरदेश-में पीड़ा उठती हो, भूख न लगती हो, दिनमें कई बार औषधिके डोज़ लेना पड़ता हो, अजीर्णकी डकारसे मुँह किनाइन जैसा कड़ुआ बना रहता हो तो वह तिजोरीकी सम्पत्ति और सारा द्रव्य किस कामका है? 'एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत" के अनुसार स्वास्थ्य सबसे बड़ा धन है। इस धनकी रक्षाके लिये व्यायानुशीलनकी आवश्यकताको जबतक देश भली-भांति समझकर तदनुसार आचरण करनेका प्रयासी नहीं होगा, देशमें, जुम्मादादा व्यायाम शाला, बड़ौदा; हनुमान व्यायामशाला, अमरावती, ब्रह्मचर्याश्रम, कुनयल गिरि, गुरुकुल आदिके सदृश लोकप्रसिद्ध व्यायाम शिक्षाकी अनेक संस्थायें प्रत्येक नगर, गांव गांवमें नहीं खुल जायेंगी और अन्यान्य शिक्षण संस्थाओंमें व्यायामकी साङ्गोपाङ्ग शिक्षा तथा सैनिक शिक्षा आदिका अनिवार्य रूपसे प्रबन्ध नहीं होगा तबतक देशके सिर नित्य नये मंडरानेवाले भयङ्कर रोगोंसे पीछा नहीं छुड़ाया जा सकता। और न देशके पक्षमें स्वास्थ्य सुख

और ऐश्वर्य सुख-सौभाग्यके गये हुये दिन ही लौटाये जा सकते हैं।

विदेशोंमें होनेवाले ओलेम्पिक गेम्स जैसे शारीरिक बल प्रदर्शनके समारम्भोंका दृश्य शिक्षित संसारकी आँखोंके सामने है। वहांकी संतरण कला और नाना प्रकारके खेल कूद आदिकी विधामें पुरुष और स्त्रियाँ जिस प्रकार समान भावसे भाग लेकर पश्चिमी जगतका सिर गौरव से ऊँचा कर चुकी हैं। क्या कभी भारतके भी वह दिन होंगे। जब यहांके अधिवासी इस विषयमें विदेशियोंसे भी आगे बढ़कर अपने शारीरिक कौशलके चमत्कार द्वारा समग्र संसारको मोहित कर लेंगे। ईश्वर करें, कि व्यायामानुशीलन और शक्ति अर्थात् बलकी आराधनाके प्रति भारतीयोंमें शीघ्रतासे प्रेरणा और उत्साहका उदय हो, जिससे देश-दुःख-दारिद्र्य नष्ट होकर सार्वत्रिक रूपसे आनन्दकी धारा प्रवाहित होने लगे। एवमस्तु !



# सत्यव्रत

ले०—श्री नारायणप्रसादजी साधक अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी

सत्यव्रत नाटकका प्रथम अंक भूमिका स्वरूप है। इसके दूसरे और तीसरे दृश्य इसी प्रकार हैं। दूसरे अंकमें सत्यव्रतका संन्यास लेने से पूर्वका जीवन है। इसमें उसके सांसारिक जीवनके प्रत्येक पहलूपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की गयी है। सब कुछ रहते हुए सात्विक पुरुषका मन कैसे अलग रहता है यही इसमें दर्शानेका प्रयास है। — लेखक

## पहला अंक

### पहला दृश्य

(एक युवकके रूपमें सत्व खड़ा २ सोच रहा है। उसका सारा शरीर तेज और द्युतिसे देदीप्यमान हो रहा है।)

सत्व—यदि माता मुझे पृथ्वीपर राज करनेका अधिकार देती, मनुष्य जीवनकी बागडोरको संचालन करनेकी स्वतन्त्रता देती तो मैं स्वर्गको पृथ्वी पर उतार लाता—मनुष्यको यहीं, इसी जीवनमें अमृतत्वका आस्वादन करा देता। उनसे कहता "हे मनुष्य! उठो, जागो और कमर कसकर साधन समुद्रमें कूद पड़ो।" अहा! यदि मैं मनुष्यमात्रको सत्यके लिये, भगवान्के लिये साधन पथपर दौड़ता देख पाता तो मुझे कितना आनन्द होता। परन्तु नहीं,—मेरा यह स्वप्न सफल होनेका नहीं। माताका जितना अनुराग रज और तमपर है उतना हमपर नहीं है। उसकी इच्छा ही यह है कि पृथ्वीपर रजोगुण और तमोगुणका ही साम्राज्य हो—कोई परवाह नहीं! माता! मैं तेरा अनुगामी नहीं बन सकता। तू राजा बननेसे भले ही मुझे वंचित कर दे—राज्यसे निर्वासित भले ही कर दे, पर मैं धर्मको, सत्यको नहीं छोड़ सकता। सत्वका अस्तित्व ही है सत्यके लिये, योगके लिये, भोगके लिये नहीं।

(आँखोंमें चश्मा, जेबमें घड़ी, हाथमें छड़ी घुमाते हुए रजका प्रवेश)

रज—कौन सत्व? यहां खड़े खड़े क्या गुनगुना रहे थे?

सत्व—यही कि माता यदि मुझे राजा बनावे तो मनुष्य पर कैसे—

रज—अपना रोब जमाऊँगा। कदापि नहीं—माता तुम्हें कभी राजा नहीं बना सकती। जाओ, दोनों हाथोंसे मुख ढककर अन्तःपुरमें सो रहो—राजा बनने चले हैं।

सत्व—क्या मैं राजा नहीं बन सकता?

रज—नहीं—मैं कहता हूं नहीं बन सकते। जो राज्य-कार्यमें दक्ष होता है उसे ही राज्य पानेका अधिकार है। मैं बनूंगा राजा—मैं।

(दुर्गन्धियुक्त केश, मैले कुचैले भेषमें झपकियां लेते हुए तमका प्रवेश)

तम—राजा बनोगे तुमलोग और मैं क्या तुम लोगोंका नौकर बनकर रहूंगा?

रज—नौकर नहीं तो क्या—तुम्हारा जन्म ही तो नौकर बनकर रहनेके लिये हुआ है।

तम—क्या कहा—मेरा जन्म नौकर बनकर रहनेके लिये हुआ है? रज! तुम मेरी शक्तिको नहीं जानते! बेचारे मनुष्यकी तो बात ही क्या—मैं सारे भूमण्डलको भी अपने अज्ञान और अन्धकारसे ऐसा आच्छादित कर सकता हूं कि

रोशनी की एक किरण भी उसमें प्रवेश ही न कर सके।

सत्व—वाह वाह, शावाश! धन्य हो तुम! नमस्कार तुमको। जिस बेचारेका नसीब फूटेगा वही तुम्हारे हाथोंमें पड़कर चौपट होगा।

तम—यह क्यों नहीं कहते कि जिसका नसीब चमकेगा वही मेरी गोदमें खर्राटे मारकर सो सकेगा।

सत्व—तुम! तुमको कर्ममें आलस्यजनित विरक्ति, विषाद, निराशा, अन्धकार, अतिनिद्रा, आदिसे इतना क्यों प्रेम है?

तम—और तुमको तेज, प्रकाश, शान्ति, सन्तोष समतादिसे इतना क्यों प्रेम है?

सत्व—इसलिये कि मैं इन दैवी गुणोंके द्वारा मनुष्यको भगवान्के पास ले जाता हूं।

तम—दोनों एकसी ही तो बात है। तुम मनुष्यको मायापतिके पास ले जाते हो, और मैं मनुष्यको मायाके पास ले जाता हूं। इसीलिये तो मेरा यह दावा है कि मेरे जैसे तुम दोनोंमेंसे एक भी प्रतिभाशाली नहीं हो, मुझे ही चाहिये राजा बनना।

रज—हटो-हटो, अधमरे बैलसे खींचे जानेवाली मैली-कुचैली, पुरानी अधटुटी बैलगाड़ीमें कछुएकी चालसे चलनेवाले, राजा बनने चले हैं।

तम—मैं तो बैलगाड़ीमें चढ़नेवाला हूं और तुम?

रज—मैं बताऊं, सुनोगे? मोटरमें सरपट दौड़नेवाला रजोगुण!

तम—बापरे! तुम्हारी नित्य नयी विपत्ति बुलानेवाली मोटरगाड़ीसे तो मेरी बैलगाड़ी कहीं अच्छी है। जो तुम्हारे ऐसा मोटर चलाते हैं उनका जीवन कितने संकटोंसे घिरा रहता है; इसपर तुमने कभी विचार किया है?

रज—सोचना, विचारना तो मैंने सीखा ही नहीं है। जब मैं मोटरपर सवार होता हूं तब मैं कहां जाता हूं, क्या करता हूं, इसकी मुझे न कुछ सुध रहती है, न परवाह! जो कोई भी नवीन दृश्य मेरी आँखोंके सामने आ जाता है उसीको पानेके लिये मैं अधीर हो उठता हूं और 'यही लक्ष्य है, यही लक्ष्य है' कहकर उसी ओर अपनी मोटर दौड़ा देता हूं।

सत्व—इस प्रकार अन्धाधुन्ध मोटर दौड़ानेका परिणाम क्या होगा? या तो तुम्हारी मोटर कुप्रवृत्तिरूपी गढ़ेमें जा धसेगी या पेटरोलके चुकते शक्तिके ह्रास होते ही (क्लान्ति आ जायगी) और तम आ धमकेगा। रजोगुणके प्राबल्यके बाद जहां निवृत्तिको आना था तूफानके बाद जहां आकाशको परिष्कृत होना था, वहां हमको घटा पुनः दिखायी देने लग जायगी।

रज—(सोचता है) पर इस रास्ते में सुख-भोग कितना है?

सत्व—दुःख-द्वन्द, विघ्न-विपत्ति भी तो उतनी ही है!

रज—उपाय क्या?

सत्व—उपाय नहीं क्यों? उपाय है। पर क्या तुम मेरा कहा मानोगे?

रज—क्या, कहो।

सत्व—मेरे रथमें आकर बैठ जाओ। मेरे रथका सुशिक्षित घोड़ा तुम्हें ऐसे सुपथसे ले जायगा जिसमें कि न तो तुम्हें कुप्रवृत्तिके गड़हेमें गिरनेका डर रहेगा, न तमके आक्रमणका भय।

रज—(सिर हिलाता है) ना, यह नहीं हो सकता। यदि तम मुझे पटकेगा तो मैं भी उसे पटककर उसपर चढ़ बैठूंगा। मैं किसीकी अधीनता स्वीकार नहीं कर सकता।

सत्व—कारण क्या?

रज—कारण? मेरी खुशी, मेरी स्वतंत्र इच्छा।

सत्व—पर इससे जगतका बड़ा लाभ होता।

रज—लाभ होता—कैसे ?

सत्व—कैसे—तुम्हारी अतुलित शक्ति मेरे द्वारा नियंत्रित और परिचालित होकर क्या कर सकती है यह यदि देखना चाहो तो अर्जुनके जीवनके पन्ने उलट कर देखो ! उसके जीवनकी प्रत्येक कहानीमें इसकी झलक पावोगे।

रज—तुम तमसे कहो, वह तुम्हारा कहा मान लेगा।

तम—सत्वके रथमें बैठना—हां मैं तो एकदम तैयार हूं। पर भाई एक बात है, मैं अपनी उस गाड़ी को नहीं छोड़ सकूंगा। वह मन्द मन्द गतिसे चलनेवाली मेरी बैलगाड़ी, उसकी ममता मुझसे नहीं छूटेगी।

सत्व—तो तुम मेरे रथमें स्थान नहीं पा सकते तम।

तम—(सिर खुजलाते हुए कुछ सोचता है) हां—एक उपाय सूझ पड़ा है।

सत्व—क्या ?

तम—मैं अपनी बैलगाड़ीको तुम्हारे रथके पीछे बांध दूंगा और मैं कभी उसपर और कभी इसपर आ बैठूंगा।

सत्व—इससे लाभ ?

तम—इसमें हानि ही क्या है ?

सत्व—हानि क्या है—बताऊं ? हानि यह है कि लोग तुम्हारी बैलगाड़ीको मेरा रथ समझकर भ्रममें पड़ जायंगे। वे तुम्हारे अज्ञान, आलस्य, अन्धकारमें पड़े रहेंगे और दोहाई देंगे महान महान सात्विकताका।

तम—इसमें तो मुझे लाभ ही लाभ दिखाई देता है। नाम होगा तुम्हारा और राज्य करूंगा मैं; इस प्रकार आओ हम तुम दोनों मिलकर पृथ्वीपर राज्य करें।

सत्व—तुम्हारी बातें सुनकर मुझे भारतकी अवस्थाकी याद आती है।

तम—क्या ?

सत्व—भारतको तुमने थपकियां दे देकर अपनी गोदमें सुला लिया और लोग कहने लगे, सत्वके कारण धर्मके कारण ही भारतकी यह दशा हुई।

तम—लोग तो ठीक ही कहते हैं इसमें सन्देह ही क्या है ?

सत्व—सन्देह कुछ नहीं है ? तम ! सत्व मनुष्यको ऊर्ध्वकी ओर ले जाता है, नीचे को नहीं। सत्वमें प्रतिष्ठित जाति, दासताकी बेड़ी पहनकर खर्राटे मारकर सो नहीं सकती। और सुनो—भारतकी अवनतिका दूसरा कारण है, रजोगुणका अभाव—सतोगुणसे शृङ्खलित क्षत्रिय तेजका लोप होना।

तम—ओह, इतना अभिमान ! लोग कहते हैं, रज रावणसा अभिमानी है, पर तुममें भी अभिमानकी कितनी बू है, यह देखकर लोग चौकेंगे। अच्छा, आजसे मेरे दुश्मन तुम और तुम्हारे दुश्मन हम। मैं मनुष्यको ऐसे अन्धकारमें डूबा रक्खूंगा कि तुम्हारा प्रकाश पहुंच ही न सके और यदि पहुंचे भी तो मेरे अन्धकारमें समा जाय।

सत्व—जो तुम्हारी गोदमें सोवेगा उसे मैं अकेला नहीं उठा सकता; रज ही उसे उठा सकता है इसलिये तुम रजसे मैत्री कर लो।

(प्रस्थान)

रज—मैं मैत्री, फैत्री नहीं जानता। (तमसे) तुम्हें मेरा शासन मानना ही पड़ेगा। मेरा पैर तुम्हारे सिरपर मुकुटकी तरह विराजेगा। सुनते हो ?

तम—हें तुम्हारी इतनी ऐंठ ! अच्छा देखूंगा तुम्हें भी लोग समझते हैं कि तुम महाबली हो

पर मेरी तमसाच्छन्न गलीमें तुम भी रास्ता भूल जाओगे।

( प्रस्थान )

रज—प्रवृत्ति, प्यारी! तुम कहां हो? मैं तुम्हारे लिये वैसे ही विकल हो रहा हूं जैसे लोभी धनके लिये, कुलटा परपुरुषके लिये। आहा, वह रूप उसमें कैसी तीव्र मदिराकी नशा है! यह वह नशा है जो मनुष्यके प्यासको जगाती है, पर उसे तृप्त नहीं करती। ( आँखें मूंदकर बैठ जाता है ) अहा! आँखें मूंदकर—मनमें मग्न होकर, जब मैं तुम्हारी स्मृतिमें बह चलता हूं तो पृथ्वी खिल उठती है, फूल हंसने लगता है, चन्द्रमा अमृत बरसाने लगता है। जिसपर तुम्हारी कृपा हुई, वही तुम्हारा शिकार बना। ऐसे कितने धीर पुरुष हैं जो तुम्हारे मुसकानके सामने नतमस्तक होकर घुटने न टेक दें।

( सर्व भूषणोंसे अलंकृत रूप-यौवनसम्पन्ना प्रवृत्तिका प्रवेश )

प्रवृत्ति—यहां बैठे बैठे क्या कर रहे हो?

रज—( चौंक कर ) तुम्हारा ध्यान।

प्रवृत्ति—कैसा लगा।

रज—इतना अच्छा, जिससे पृथ्वीमें शायद, और कुछ अच्छा है ही नहीं।

प्रवृत्ति—मैं तुमको एक खबर सुनाने आई हूं।

रज—खबर क्या?

प्रवृत्ति—बड़ी खुशीकी खबर।

रज—खुशीकी खबर, क्या कहो तो ज़रा।

प्रवृत्ति—कुछ इक़रार करो तब कहूंगी।

रज—यदि तुम्हारी खबर झूठी निकली तो?

प्रवृत्ति—मैं तुम्हारी गुलाम बनकर रहूंगी।

रज—अच्छा यदि सच निकला तो मैं तुम्हारा गुलाम बनकर रहूंगा।

प्र०—सच कहते हो, सच।

रज—चन्द्राननने! तुम इतनी सुन्दर हो, ऐसी लावण्यमयी हो, इतनी आकर्षक हो कि ऐसा कौन पुरुष है जिसका चित्त तुम्हारा गुलाम बननेके लिये तुम्हारे चरणोंमें लोट जानेके लिये मचल नहीं उठे।

प्रवृत्ति—पर नाथ! भारतके जंगलों तथा गुफाओंमें वन-पशुओंकी तरह जीवन बितानेवाले ऐसे कितने संन्यासी हैं जो कहते हैं कि मैं स्वर्गकी देवी नहीं—नरककी कीट हूं; मेरे रूपमें ज्योति नहीं, ज्वाला है; ओठोंमें अमृत नहीं, जहर है। यह लाञ्छना मुझसे सही नहीं जाती।

रज—प्रियतमे! वे मूढ़ पुरुष क्या जाने कि विश्वमें यदि तुम प्रकट नहीं होती तो यह पृथ्वी भूतोंके रहने लायक एक वीरान प्रदेश होता, वन-पशुओंके वासके ही उपयुक्त स्थान होता! जीवन एक विकट मरुभूमि होता!

प्रवृत्ति—मेरा यही एक दोष है कि मैं लोगोंको सिखाती हूं कि जीवनमें भोग, भोगके सिवा और क्या है?

( रजका हाथ पकड़कर जाना चाहती है )

रज—अरे! तुमने खबर तो सुनाया ही नहीं।

प्रवृत्ति—बड़ी अच्छी खबर है।

रज—क्या? सुनाओ तो सही।

प्रवृत्ति—मैंने चुपकेसे सुना कि महारानी तुमको राजा बनाना चाहती हैं।

रज—क्या कहा, मैं राजा बनूंगा? राजा! राजा! सच कहती हो? ( उछलने लगता है )।

( तमका प्रवेश )

तम—कौन बनेगा राजा?

रज—मैं—मैं, और कौन? मेरे समान दूसरा पृथ्वीमें और कौन है? सब मेरे सामने हाथ जोड़कर खड़े रहेंगे, नतमस्तक होकर मेरे मुंहकी ओर

ताका करेंगे। और जहां जरासी भी कोई मेरी आज्ञाकी अवहेलना हुई नहीं कि, बस, उसपर आगकी वर्षा—आओ प्रियतमे ! हम राजा और तुम रानी, इसके सिवा और दुनियां में कौन है !

( एक दूसरेका हाथ पकड़े प्रस्थान )

( तम निराशा और विषादसे अभिभूत होकर, सरपर हाथ रखकर बैठ जाता है )

( अजगरके समान मोटे शरीरवाली अप्रवृत्तिका प्रवेश )

अप्रवृत्ति—यह क्या तुम रो रहे हो ?

तम—हां।

अप्र०—क्यों ?

तम—रज, राजा बनेगा इसी दु:खसे, पर क्या करूं ? कोई उपाय नहीं सूझता।

अप्रवृत्ति—उपाय बताऊं, पैर पसार कर सो रहो। सुख सोनेमें ही है इससे बढ़ कर सुख और किसमें है ?

तम—( खड़ा होकर ) क्यों दूसरोंकी बुराई करनेमें, देखो, यदि रजका सत्यानाश हो जाता तो मैं बनता राजा और तुम बनतो रानी !

अप्र०—मैं रानी बनना नहीं चाहती।

तम—तो क्या चाहती हो ?

अप्र०—मैं जैसी हूं, वैसी ही रहना चाहती हूं।

तम—इसीलिये तो मेरी तुमसे पटती है—मैं भी जैसा हूं वैसा ही रहना चाहता हूं. पर अपना आधिपत्य जमानेके लिये लड़ना नहीं, इससे बढ़कर मूर्खता और क्या हो सकती है।

अप्र०—अच्छा तो तुम लड़ो, मैं अब जाती हूं तुमसे बातें करती करती मैं थक गयी।

( ऐसे धीरे धीरे चलना मानो पग उठानेमें बड़ा कष्ट हो रहा है )

( सत्वका प्रवेश )

तम—( सत्वका हाथ पकड़ कर ) सत्व तुमने सुना है, रज राजा बनेगा।

सत्व—ठीक है।

तम—( अवाक होकर ) क्या कहा ठीक है। मैं तो सोचता था कि जैसे मेरे सिरपर वज्र गिर पड़ा, वैसे तुम्हारा भी कलेजा बैठ जायगा। सुनते ही, तुम भी पातालमें धंस जाओगे।

सत्व—जो जैसा रहता है वह वैसे ही दूसरोंके बारेमें अपनी अटकल लगा लेता है।

तम—तुमको इसका कुछ भी असर नहीं हुआ।

सत्व—बिलकुल नहीं। सुखमें उछल पड़ना और दु:खमें रो देना मैंने नहीं सीखा और दूसरोंको भी मैं यही सिखाता हूं कि यदि सुखी होना चाहते हो तो सुख दु:खसे परे जाकर एक रसमें रहना सीखो।

( मायाके साथ रजका प्रवेश )

रज—मां ! देखो तुम मुझे राजा बनाना चाहती हो पर सत्वने राजा बननेके लिये हाय हाय मचा रखी है।

सत्व—सचमुच ?

तम—नहीं तो क्या ?

सत्व—राज्य-सुख-भोगके लिये नहीं, रज ! मनुष्यको सत्पथपर साधन-पथपर ले चलनेके लिये सत्व पागल, विह्वल हो रहा है।

माया—( चमक कर ) ऐं साधन-पथपर क्यों ? साधन पथपर चलनेसे तो लोग मेरा शासन नहीं मानेंगे।

सत्व—माता, जो साधन पथपर चलना चाहेगा उसमें तो उद्गारताकी बू भी नहीं रह सकती, आध्यात्मिक विनम्रता तो उसके पथका पाथेय होगा।

माया—मेरे कहनेका यह मतलब नहीं है।

सत्व--तो ?

माया–मेरे कहनेका मतलब यह है कि वह मेरी अधीनता स्वीकार करनेके बदले मेरे ऊपर ही आधिपत्य जमानेके लिये चेष्टा करेगा।

सत्व—माता, जो साधन-पथका सफल यात्री होगा, उसको किसीपर आधिपत्य जमानेकी तो बात ही क्या–त्रिलोकीका राज्य मिलनेपर भी उसमें लालसाकी एक स्पन्दन तक नहीं उठेगी।

माया-पर मुझे दबानेकी, मुझे परास्त करनेकी आकांक्षा तो खूब रहेगी न।

सत्व--उसके अपने निजके लिये नहीं, तुम्हारे स्थानमें धर्मको, महामायाको प्रतिष्ठित करनेके लिये।

माया—(आश्चर्यसे) कौन है यह महामाया!

सत्व—जो इस सृष्टिकी एकमात्र स्वामिनी है।

माया--मेरे सिवा इस जगतकी स्वामिनी और कौन है। सत्व, तुझे अपने कुलकी मर्यादा नहीं सोहाती।

सत्व—मैं धर्म, भगवान, महामायाको छोड़कर और कुछ नहीं जानता।

माया–ऐं इतनी उदारता, तू ऐसा कुलाङ्गार निकला। जा चला जा तू अपनी महामायाके पास। दूर हो मेरी आंखोंके सामनेसे। तेरी इस उद्धतताके कारण मैं तुझे राज्यसे निर्वासित करती हूं। दूर हो जा मेरी आँखोंके सामनेसे।

तम--माता! मैं तुम्हारा सुपूत हूं, जहां मैं रहूंगा वहां सत्य, धर्म, भगवान कोई भी नहीं घुस सकते।

सत्व—माता, मेरी धृष्टता क्षमा करना। अपने कुपूत पुत्रका प्रणाम ग्रहण करो।

(प्रस्थान)

माया—देख रज, देख तम, सत्व महामायाके पास जाकर उसकी सहायतासे पृथ्वीपर धर्मका राज्य स्थापन करना चाहता है। शासनकीबागडोर मैं अपने हाथोंमें रखूंगी। तुम दोनों मेरी सहायता करना। जाओ, रज तुम प्रवृत्तिके साथ और तम, तुम अप्रवृत्तिके साथ ऐसे ऐसे आसुरिक सम्पदासे सम्पन्न दानवोंको उत्पन्न करो जिनके सामने मनुष्य तो क्या देवताओंका भी दिल दहल उठे। सत्व! देखूंगी तेरा अभिमान। आओ पुत्रो--

(प्रस्थान)

(महामायाका प्रवेश)

महामाया—सत्वको मायाने निकाल दिया यह अच्छा ही हुआ। उसके बिना मनुष्यको कौन ऊपर उठा सकता है। चलूं उसे आश्रय देकर उसके द्वारा विवेक वैराग्यादिको उत्पन्न करूं--

(प्रस्थान)

(सत्वके पीछे पीछे संन्यासिनीके वेषमें निवृत्तिका प्रवेश)

सत्व--(फिरकर) निवृत्ति! तुम क्या संसारके सुखभोगमें मुझे घसीट ले चलनेके लिये मेरा पीछा कर रही हो?

निवृत्ति–नहीं, नहीं प्रभु! आप जिस कार्यमें प्रवृत्त होनेके लिये जा रहे हैं मैं उसी कार्यमें आपकी सहायता करनेकी इच्छासे आपका पीछा कर रही हूं।

सत्व--तुम जानती हो मैं कहां जा रहा हूं?

निवृत्ति--हां, मनुष्यके हित साधनमें अपना जीवन उत्सर्ग करनेके लिये। मैं पीछे खड़ी खड़ी सब सुन रही थी। चलिये, हम और आप तपस्या कर महामायाको प्रसन्न करें और उनसे जीवके कल्याणका उपाय पूछें।

सत्व--आओ प्रिये! तुम्हारा शीतल वचन सुनकर जी बड़ा ठण्डा हुआ।

# हिन्दूधर्म की महत्ता

ले०—श्री अशोक आयुर्वेदालङ्कार

( गतांकसे आगे )

संभालने चाहिये उन्हें स्थान नहीं मिलता, इससे समाज की व्यवस्थामें बहुत दोष उपस्थित हो जाता है। समाजके इस दोषका बहुत ही संक्षिप्त व सरल हल हमारी इस व्यवस्थामें मिलता है।

हमारे समाजकी दूसरी विशेषता वर्णाश्रम व्यवस्था की है, ब्रह्मचर्य अवस्था समाप्त होनेपर योग्यताके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य तथा शूद्रके भेदसे व्यक्तियों को वर्ण बांटे जाते थे। यह वर्णका मिलना प्रत्येक व्यक्तिको उसके जीवन विकासमें सहायता देता था। उसे एक मार्ग मिल जाता था जिसपर चलकर वह उन्नति कर सकता था। ब्राह्मण, अध्ययन, अध्यापन, यज्ञादिके कर्त्तव्योंका पालन करते हुए, क्षत्रिय राष्ट्ररक्षा तथा प्राणिमात्रकी रक्षा करते हुए, वैश्य राज्यके कार्यको चलानेके लिये आवश्यक धनसंचयरूप कार्य करते हुए, तथा शूद्र उपरोक्त तीनों वर्णोंकी सेवामें लीन हो अपने चरित्र व आत्माका विकास करनेमें समर्थ हो सकता था। लेकिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रका यह वर्णभेद कोई दृढ़बन्धन न था, यह तो प्रत्येक व्यक्तिके कर्त्तव्यों तथा योग्यता व गुणोंपर निर्भर होता था। यदि ब्राह्मण अपने कर्त्तव्यसे विमुख हो जाता तो उसे समाजका सर्वोत्कृष्ट पद छोड़ना पड़ता, यदि शूद्र अपने धर्मका पालन करते हुए अधिक उन्नति करता तो उसे दूसरा वर्ण मिल सकता। वर्णविभागमें स्थिरता Rigidity इस व्यवस्थामें विद्यमान न थी। वर्णविभागकी इस व्यवस्थासे हरएक वर्णके पृथक् अस्तित्वके कारण किसी वर्गके वर्णमें व्यर्थका जमघट नहीं होता था। ब्राह्मणवर्णी ब्राह्मण वर्णमें शामिल हो जाते थे, क्षत्रिय राष्ट्ररक्षाके लिये कटिबद्ध हो राज्यका सैन्य संचालन करते थे और वैश्य राज्यकोषकी वृद्धिमें सहायता करते थे, इससे आजकलकी हरएक शिक्षित व्यक्तिको किसी कार्यालयमें क्लर्कीके इच्छाके कारण स्थानाभावसे उत्पन्न परिस्थितिओंसे बेकारी बेरोजगारी व निराशाका सामना नहीं करना पड़ता था। हरएक व्यक्तिका पृथक् क्षेत्र होता था और वह उस ओर अच्छी तरह उन्नति कर सकता था। इस प्रकार आश्रमप्रणाली व वर्णाश्रम व्यवस्थाके इस समन्वयसे समाजकी प्रगतिमें बड़ी सहायता मिलती थी। जहां आश्रम-प्रणालीके होनेपर व्यक्तिको धनसंचयकी चिन्ता न करनी पड़ती थी वहां वर्णाश्रम व्यवस्थासे उन्हें अपने विकासमें भी सहायता मिलती थी।

सामाजिक विकासके इस विभागके बाद समाजको व्यक्तिकी उन्नति भी अभीष्ट थी। इसीसे हमारे समाजमें स्त्री जाति व पुरुष जातिका पृथक् स्थान मिलता है। हिन्दू समाजमें स्त्रीका विशेष स्थान है, उसका मान जातिका मान समझा जाता है, उसकी बेइज्जती जातिकी मानहानि मानी जाती है इसीसे हमें भारतीय इतिहासमें स्त्रियोंके अपमानके कारण उत्पन्न अनेकों रोमांचकारी एवं दर्दनाक कहानियां पढ़नेको मिलती हैं। स्त्रीको पुरुषकी अर्धाङ्गिनी, सहधर्मिणी व गृहलक्ष्मीके नामसे कहा गया है। उसका कर्त्तव्य है पतिकी सेवा, घरबारकी सम्पूर्ण जिम्मेदारियोंको समझकर व उसे सुचारुरूपेण चलाना और इस प्रकार मनुष्यको गृहसम्बन्धी सब चिन्ताओंसे मुक्त कर देना और पुरुषका कर्त्तव्य स्त्रीको गृहलक्ष्मीके रूपमें पूजना, उसकी आवश्यकताओंको पूरा करना

है। इन दोनों आदर्शोंके पूरा होनेपर ही परिवार सुखकी जिन्दगी बसर कर सकता है एक आदर्श जीवन बिता सकता है। इस व्यवस्थासे स्त्री और पुरुष दोनोंको अपने अपने कर्त्तव्य पालन करते हुए अपने चरित्रके विकासका अवसर मिल सकता है, जब कि ईसाई समाजमें स्त्रियोंको अत्यन्त स्वच्छन्दता मिलनेसे व मुसलिम समाजमें स्त्रीका उतना मान न होनेसे वे इस प्रकारका अवसर नहीं प्राप्त कर सकतीं। अस्तु, समाजकी यह व्यवस्था बहुत दिनोंतक एकरस गतिसे चलती रही, लेकिन मध्ययुगमें एक समय ऐसी स्थिति आई जब कि स्त्री जाति घृणाकी दृष्टिसे देखी जाने लगी। राजस्थानके प्रदेशोंमें निरीह बालिकाओंकी हत्या की जाने लगी। समाजकी इस परिवर्तनशीलताका प्रभाव तत्कालीन प्रसिद्ध पुरुषोंपर भी पड़ा, तभी तो महाकवि तुलसीदासके गीतोंमें "ढोल गंवार शूद्र पशु नारी; ये सब ताड़नके अधिकारी" पढ़नेको मिलता है लेकिन यह व्यवस्था बहुत दिनोंतक चल नहीं सकी। जातिके कर्णधारोंको शीघ्र हो अपनी गलती अनुभव हो गई और फिरसे हिन्दूसमाजमें स्त्रीको गृहलक्ष्मीका पद प्रदान किया गया; तबसे अबतक हिन्दू जातिके अलंकारके रूपमें यह व्यवस्था उसी रूपमें चल रही है।

इस प्रकार इन सब विशेषताओंसे स्पष्ट है कि हिन्दूधर्म कितना विशाल, व्यापक एवं उच्च है। सचमुच यह उन हजारों पवित्रात्माओंकी तपस्या, तथा दृढ़ अध्यवसायका सुन्दर परिणाम है जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन इन सत्योंकी खोजमें व्यतीत कर दिया। संसारके उन समस्त धर्मों एवं सम्प्रदायोंके उच्च आदर्शोंका सार है जो विश्वशांति एवं आध्यात्मिकताका प्रचार करनेका दावा करते हैं। यह गौरीशंकरके उस उत्तुंग शिखरके समान है, जिसका पार कोई नहीं पा सकता, कलकल निनादिनी मंदाकिनीकी धवला धाराके समान है जो अपने आदि व अन्तमें विमलतासे ओतप्रोत थी।

एक समय था जब इस धर्मके अनुयायिओंने समस्त भूमण्डलपर अपनी विजयवैजयन्ती फहराई थी। अनन्त वायुमण्डल, जलकी अथाह राशि, विस्तृत भूभाग सबपर इसका समान शासन था। सौन्दर्यके स्वर्गकी छातीपर इसकी विशाल अट्टालिका थी जो ज्योत्स्नाकी उज्वल घटाको अपने अनिन्दित मन्द मुसकानसे सदा आलोकित किया करती थी, जिसकी जगद् विजयिनी सेना थी और दिगन्तव्यापिनी शक्ति ऐश्वर्यका समुद्र था जो इस वीर जातिकी ठोकरोंसे हिलोरें लिया करता था। इसकी मूंद्रका एक बेर हंसना तो विश्वके उसकी मर्यादाके लिये खिलखिलाकर हंसना पड़ता था और यदि उसकी भृकुटिमें बल आ जाता तो ? तो सारे संसारको उस कोपका दण्ड देखनेके लिए सांस थामकर खड़ा रहना पड़ता था। आज वह विश्वकी मुकुटमणि हिन्दू जाति जीवनकी टूटी घड़ियोंमें अशक्त शरीर, भग्नहृदय, नष्ट ज्योति लुप्त अधिकार हो अपने जीवनकी अन्तिम घड़ियां गिन रही है। बहुतेरे हिन्दूधर्मानुयायी अपने आपको हिन्दू कहलानेमें गौरव अनुभव नहीं करते, अपने प्राचीन पुरुषोंका इतिहास पढ़कर उन्हें कोई हर्ष नहीं होता। यदि यही अवस्था रही तो अवश्य ही भारतीय संस्कृतिका यह जगमगाता दीपक बुझ जायगा। विश्वास रखिये नामकी सार्थकता कार्यसे होती है। हिन्दू जातिका सुन्दर इतिहास भविष्यके उज्वल पन्नोंमें लिखा हुआ है। समय आएगा जब कि संसारके अन्य सम्पूर्ण धर्मानुयायी हिन्दूधर्मके द्वारपर धर्म, ज्ञान, और सभ्यताकी झोली लिये आ खड़े होंगे और हम—

"एतद्देश प्रसूतस्थ सकाशाग्रदजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।"

के स्वप्नको क्रियात्मक रूप देनेमें समर्थ हो सकेंगे

# सत्य क्या है?

लेखक—श्री वीरेन्द्र मालवीय

"सात्विक जीवन" के विजयाङ्कमें, श्री पं० विष्णुदत्त शुक्ल महोदयका 'जिज्ञासा" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। जिज्ञासा वास्तवमें ही एक सुन्दर जिज्ञासा है। यही अनुभव कर उसकी पूर्तिके लिये, हृदयमें कुछ लिखनेकी तरङ्ग उत्पन्न हुई। आशा है, निम्नपंक्तियोंसे सात्विकजीवनके पाठकोंका कुछ मनोरञ्जन होगा।

यद्यपि उक्त समस्याके सम्बन्धमें—पंडित प्रवर श्री दामोदर सातवलेकरजीने अपने 'धर्मोंका समन्वय' लेखमें, भारतीय संस्कृतिका दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है। फिर भी वह इतना संक्षिप्त था कि उसे कुछ विस्तारसे दुहराना यहां आवश्यक प्रतीत होता है। "संसार त्यजणीय है या ग्रहणीय? यह मिथ्या है अथवा सत्य?" इसका वास्तविक उत्तर प्राप्त करनेके लिये, हमें गंभीर विचारमें जानेकी आवश्यकता है। तभी हम सत्यकी तह तक पहुंच सकेंगे। जहां, उक्त प्रश्न उठते हैं वहां एक प्रश्न यह भी उठता है कि जब संसार मिथ्या है, तो उसमें सत्यरूप ब्रह्मकी व्याप्ति क्यों मानी जाती है? और इसीका अनुभव करनेके लिये तथा समद्रष्टा बननेके उपदेश क्यों दिये जाते हैं? इतना ही नहीं, जगत्के वातावरणमें न्याय, सत्य, प्रेम, आनन्द इत्यादि अमरतत्व भी मिलते हैं। जगत्की प्रत्येक घटना बुद्धिपूर्वक हो रही है, यह भी स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। सारीकी सारी प्रकृति एक अद्भुत नियमिततासे संचालित हो रही है। और यदि हम मानवरुचिका ही अध्ययन करें तो उसके सर्वतोमुखी होनेके साथ ही उस अनन्ततामें भी वह किसी विशेष आनन्दकी अनुभूतिमें निमग्न एवं क्रियमाण दीख पड़ेगी। यह सब क्यों? इसलिये कि वास्तवमें यह जगत् सत्यमय है। त्यागके उपदेशोंकी आंधीमें उड़ाकर भी त्यागी समुदाय मानवको 'ग्रहण' की ओर से विमुख न कर सके। इसका कारण भी यही है, कि संसारमें 'गीता' का 'मैं' हर वस्तुमें रसरूप बनकर बैठा है तथा आनन्द बनकर रमा हुआ है। और इसी लिये मानव, त्यागका रूखा उपदेश नहीं सुनना चाहता। वह अपने रसिक हृदयको इस प्राप्तिकी क्रिया में लीन रखेगा; या निष्क्रिय बैठा रहेगा? वह आनन्द के सागरमें गोता लगाएगा या रूखी कल्पना एवं बुद्धिकी शुष्क उलझनमें फंसा रहेगा? जगत्में सत्य और असत्य, प्रकाश और अन्धकार ज्ञान और अज्ञान, प्रेम और उदासीनता, पवित्रता और विकार, तथा विष और अमृत यह सब तत्व कुशलताके साथ मिले हुए हैं, इसी लिये संसारको मथकर उसमेंसे मक्खन निकालने, और उसका सेवन करके अपनी आत्मतृप्ति करनेकी क्रियाको परम पुरुषार्थ माना है, और यह परम पुरुषार्थ संसारसे घृणा करके दूर भागनेसे सिद्ध नहीं हो सकता। स्त्री, पुत्र, समाज और राष्ट्र, तथा जीवनयात्रा को सुगम बनानेवाले समस्त साधनोंको मिथ्या मान लेनेसे भी उक्त कार्यकी सफलता सम्भव नहीं। इसीलिये भारतवर्षके उन्नतमना, अतुलनीय ऋषि-मुनियोंने संसारमें बुद्धिपूर्वक गति करनेकी मंत्रणा मनुष्यको दी है। चारों आश्रमोंकी व्यवस्था, वर्ण-धर्मकी मर्यादा, सदाचार, न्यायशीलता, आत्मसाधन, समस्त प्राणियों एवं वस्तुओंमें ब्रह्मकी व्यापकताको स्वीकार करना तथा सबमें स्वत्वका दर्शन, एवं अनुराग तथा प्रेम प्रदर्शन करना, कर्मशीलता इत्यादिको आवश्यक बतलाया है। व्यक्तित्वका निर्माण, सात्विकजीवनकी

साधना, मधुर पारिवारिक जीवनके उत्तरदायित्वका निर्वाह, आदर्श सामाजिक जीवनका पालन, विश्व-कल्याणकी विराट भावना यह सब क्या है ? यह है जगत्‌में सत्य तत्वका दर्शन करके उसमें अपनी तद्रूपता-का समावेश करना और उसमें रमे हुए महान आध्यात्म रस–आनन्द या ब्रह्मानन्दका ध्यान करना। और यह सब संसारकी उपेक्षा या घृणासे सम्भव नहीं है।

इसमें सन्देह नहीं कि एक प्रश्न और भी हमारे सामने है और वह यह कि दुःख क्या है ? असन्तोष क्या है ? अशान्ति क्या है ? और घात एवं मृत्यु क्या है ? इन सबके उत्तरमें हमें यही कहना है कि सम्यग दृष्टिके आदर्शसे गिरकर कर्मसे भ्रष्ट होकर जब व्यक्ति कष्टकी संकुचित मनोवृत्तिके घेरेमें आ जाता है तब वह अपनेको अद्भुत अकेलेपनमें या लघुरूपमें पाता है और साथ ही उस लघुताका लघु आनन्द भी चाहता है। उस लघुताका आनन्द उसे पर्याप्त सन्तोष नहीं दे पाता, इसलिये उसकी संकुचित मनोवृत्ति उसे और भी अधिक आनन्दकी प्राप्तिके लिये बाध्य करती है और समष्टिसे भ्रष्ट हुआ अल्पज्ञ मानव वह अपनी संकुचित इच्छाकी पूर्त्तिके लिये, संकुचित स्वेच्छाचारी प्रयत्नका आश्रय लेनेके कारण समष्टिके स्वार्थोंसे टकरा जाता है। इस टक्करमें होनेवाले परिणामको ही वह दुःख असन्तोष, अशान्ति इत्यादि कहता है और उस संघर्षमें पिस जानेका नाम उसने मृत्यु रखा है। किन्तु जिसने समष्टि हितवादको और 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' को ही सत्य मान रखा है। वह तो प्रलयका झूला झूलते समय भी अपनेको सनातन, अमर पुरुष मानता है और उसके ओठोंसे सन्तोष एवं सुखकी स्मित रेखा छलकती दीखती है ; उसके मुखमण्डलपर शान्तिकी ज्योति चमकती हुई दिखाई पड़ती है।

अतः ऐसी आशा की ज्योतिसे चमकते हुए ग्रहण करने योग्य संसारको त्यागकर जिन्होंने अपनेको निराशावादी मान लिया है वे तो वास्तवमें अनात्म दृष्टिकी दुःखकी खाईमें पड़े हुए तड़पेंगे ही। अतः यदि वे परम शान्ति चाहते हैं तो उन्हें संसार मन्दिरसे दूर भागनेकी आवश्यकता नहीं। और अलग जाएँगे भी कहाँ ? क्या संसारसे भी बाहर कोई स्थान है ? यह प्रकाशमण्डलमें चमकनेवाला नक्षत्र, समाज, यह व्योम, यह समुद्र, यह विराट पृथ्वीतल, छोड़े भी जा सकते हैं ? इनसे विमुख भी हुआ जा सकता है ? नहीं ! यहीं तो राधा और माधव अनन्त होकर महान रास खेल रहे हैं। यहीं तो शुद्ध अद्वैत, द्वैतका अभिनय कर रहा है। यहीं तो वह न्यायाधीश न्यायकी कचहरी लगाए बैठा है, यहीं तो वह आप, सत्य रमा हुआ है। यहीं तो वह महान प्रेमी प्रेमका आस्वादन कर रहा है, और यहीं तो वह विराट निराकार अपनी विराट साकारताकी झांकी करवा रहा है। इसीलिये तो कबीरने देखा और कहा—"मुझको कहाँ खोजे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।" इसीलिये तो नानकने कहा—'प्रभुजी हम दीपक तुम बाती, जाकी ज्योत बरे दिन राती।" सूरदास, तुलसी इन सबने यहीं सब कुछ देख लिया था। और सबकी सेवाको अपना आदर्श बनाया था। इन समस्त स्त्री-पुरुषोंके रूपमें, पशु-पक्षी और समस्त जीवोंके रूपमें तथा प्रत्येक इस विराट उद्यानमें खिलनेवाले पुष्प में रूप, रस और गन्धके रूप में, सूर्यमें तेज, चन्द्रमें अमृत पृथ्वीमें रस, जलमें प्राण, वायुमें गति, आकाशमें व्यापकता और वस्तुओंमें तत्व रूप कौन है ? औषधियोंमें गुणरूपसे कौन समाया हुआ है ? वही ! इसलिये उपेक्षा, घृणा, दुःख, असन्तोष अशान्तिकी ओर बढ़ना भी दुर्बल एवं दूषित मनोवृत्तिका ही परिचायक है ! अज्ञानका ही प्रतिबोधक है।

त्याग करो ! इसका यह अर्थ नहीं कि संसारको ही छोड़ दो ! आत्महत्या कर लो ! बल्कि त्यागका

अर्थ संकुचित मनोवृत्तिके घेरेसे निकलकर, विराटकी रंगभूमिमें प्रवेश करना है। संसार दुःखमय नहीं, संसारमें बुद्धिपूर्वक मर्यादाका विवेक किये बिना गति करना दुःखका कारण है। स्त्री पापकी जड़ नहीं! भोगदृष्टिमें लय हो जाना और स्त्रीमें ब्रह्मतत्वका न देखना! पतनका कारण है। प्रत्येक वस्तुका दुरुपयोग ही अशान्तिका कारण है! संसारको ग्रहण कीजिए बुद्धिमत्ताके साथ, संसारके भोगोंको भोगिये मर्यादाके साथ! तब आपको न दुःखका सामना करना पड़ेगा, न असन्तोषका। रही मृत्युकी बात, तो वह अवश्य जन्मके साथ लगा हुआ जीवन शक्तिकासा नियम है। इससे भी छुटकारा पाया जा सकता है। ऐसी भी क्रियाएँ हैं। और वह क्रियाएँ आजसे हजारों वर्षों पूर्व ही आविष्कारमें आ चुकी हैं। आज भी वे जानी जा सकती हैं। जिनमें जाननेकी सच्ची उत्कण्ठा है, वे जाने बिना नहीं रहते।

भारतीय संस्कृतिमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यही तो है कि वह हमें उस वस्तुका दर्शन कराती है, जो सृष्टिके आरम्भमें भी थी, आज भी है और भविष्यमें भी प्रलय-पर्यन्त रहेगी। इसीलिये उसे सनातन धर्म कहते हैं। यह सनातन धर्म अमर है, शाश्वत है। इसे मारनेवाले मर जाते हैं। क्योंकि सनातन पुरुष स्वयं सुदर्शनचक्र हाथमें धारण कर उसकी रक्षा करते हैं। जब अन्धकार अपनी काली घटाके साथ छा जाता है, तब प्रभातमें सूर्य्यकी ज्योति चमक कर उसे न जाने कहां छिपा लेती है। और सन्ध्याको फिर वही ज्योति न जाने कहां चली जाती है। मानो, यहां इस रङ्गभूमिमें प्रकाश और अन्धकार, ज्ञान और अज्ञान अथवा सत्य और असत्य आँख-मिचौनी खेल रहे हैं। कभी अंधेरेमें सत्य छिप जाता है तब असत्य उसे खोजता है और जब उसे वह नहीं मिलता, तब वह हारकर यह मान लेता है कि अब मैं ही हूं। अब मेरा ही जगत्में राज्य है। परन्तु ताली बजाकर सत्य उसे चौंका देता है। यही संसारके रूपमें संसारपतिकी सनातनलीला हो रही है। और इस लीलामें सत्य क्या है, यह सब स्पष्ट दृष्टिभान हो रहा है। आज जगतका वातावरण इतना विषम क्यों है? एक राष्ट्रकी जनशक्ति दूसरे राष्ट्रकी जनशक्तिके साथ सहयोग और प्रेम-भावनाका प्रयोजन करते हुए जीवन धारण करनेकी अपेक्षा, संघर्षकी नीतिका अवलम्बन क्यों कर रही है? इसका कारण जाननेका कभी उद्योग किया है? यदि करें तो मूलमें जो भूल मिलेगी, वह विचारवानोंकी जगत्के प्रति उपेक्षा वृत्ति ही होगी। आत्मसुख एवं मोक्षके नामपर भारतके अपरिपक्व आध्यात्म-विचारधारामें बहनेवाले वैरागी, त्यागी एवं संन्यासी समुदायने, जगतको नियंत्रित रखते हुए गति करनेके, अपने कर्त्तव्यको विस्मृत कर दिया था। शासन-सत्ताओंमें जहां वे प्राचीन कालमें मन्त्रि-मण्डलोंमें योग देकर राष्ट्रसंचालन करते थे, वहां मध्यकालके महापुरुषोंने इस योग्यताके उत्तरदायित्वको भुला दिया था। संसारसे केवल भोजनमात्रका ही उनका नाता रह गया था। अयोग्य व्यक्ति राष्ट्र एवं समाजका अमर्यादित संचालन करने लगे हैं, वासनाएं तृष्णाएं लोभ, जीवनमें विषमता ला रही है; इसपर उनका ध्यान नहीं जाता था। क्योंकि उन्होंने संसारमें सम्मिलित होना, उसके कार्योंमें योग देना अपने उच्च पदसे गिरना एवं दुःखका कारण मान रखा था। वे संसारके वातावरणसे घृणा करते और लोगोंमें उसके प्रति घृणाका भाव फैलाकर उन्हें उन्हींकी तरह मोक्षवादी भिक्षुक बनानेका उद्योग करते थे। इस प्रकार उनके इस घृणावादसे संसारका वातावरण दुःख, अशान्ति और असन्तोषसे कलुषित हो गया है। संसारको आदर्शकी दीक्षा देते हुए, उसका पथप्रदर्शन करते रहते तो उसकी यह दशा न होती; और वह दुःखमय न कहलाता। संसार सुखमय है किन्तु पुरुषों-ने उसे दुःखमय बना डाला है।

# जीवनको उन्नत बनानेवाले हमारे कुछ प्रकाशन

## ( १ ) जीवन सौरभ—

प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि साधारण परिस्थितिमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको पढ़ें और अपनी सन्तानके हाथमें दें। मूल्य केवल ।=)।

## ( २ ) देशके नौनिहालोंसे—

नवयुवकों एवं छात्र तथा छात्राओंके लिये अनुपम उपहार। उन नवयुवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशकी आशा है, जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। मूल्य केवल =)

## ( ३ ) सदाचार का महत्व—

पुस्तकके सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय। सदाचार ही जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी कुञ्जी है इसको कौन नहीं जानता। पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हुए हैं तथा अपनी और देशकी हानि कर रहे हैं वह सर्व विदित है। जो भारत संसारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसलिये उसका पतन हो गया है। इस समय देशके युवकोंको सन्मार्गपर ले जानेकी आवश्यकता है। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

## ( ४ ) स्वास्थ्य-पत्र—

यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ रहना ही मृत्यु है तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक धनहीन स्वस्थ जीवन दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्ग-तुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुखपूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है। २०″×३०″ साइजके इमिटेशन आर्ट पेपरपर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बंधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है, इसलिये कि यह एक स्थायी चीज हो जाता है। मूल्य केवल =)

## ( ५ ) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास—

स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है वह व्यर्थ ही जीवन-यापन करता है। जो देशके प्रति कुछ त्याग नहीं करता वह पशु सदृश है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र-सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन तो अवश्य हुआ है, किन्तु संक्षेपमें, सबके योग्य सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

## ( ६ ) कांग्रेस चार्ट—

इसमें बड़े सुबोध और सरल ढङ्गसे कांग्रेसके जन्मकालसे लेकर अब तकके अधिवेशनोंका विवरण, सभापति स्थान, समयकी सूचना और उस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमिटेशन आर्ट पेपरपर साइज २०″×३०″ दो रङ्गोंकी मनोहर, छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। **जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०,** "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# हिन्दूपतन का इतिहास

लेखक—आचार्य श्री इन्दिरारमण शास्त्री

( कर्मणा वर्णव्यवस्थाकी निसर्गसिद्धता, और शाश्वत विश्वव्याप्ति )

( गतांक से आगे )

इस प्रकार नैसर्गिक आहारार्थ प्रवृत्तिके कारण जीविकासाधनकी खोजके सिलसिलेमें सहजभावसे स्वत: मानवोंमें क्रमश: सजातों सनाभियों सहवासियों सहयोगियों और समकर्मकरोंकी टोली, समिति संग्राम, यूथ ( यत्था ), सङ्घ-दल, वर्ग, वर्ण, समाज आदि विभागके बन जानेकी पूर्वप्रदर्शित प्राकृतिक प्रक्रिया, केवल प्राथमिक चातुर्वर्ण्यके विकाशमें ही नहीं हुई; बल्कि यही सार्वत्रिक और सार्वदिक स्वयम्भू वर्णव्यवस्था-मात्रकी शाश्वत और स्वाभाविक विकाश-पद्धति है। जब कभी वर्णव्यवस्था होती है, तब उसके हेतु, उद्गम, विकाशक्रम, विभाग, नियम, अस्तित्व, और पुनः विप्लव, आदि, सब कारण-कार्य, हेतु-हेतुमद्भाव, और भावविकार वे ही तथा वैसे ही होते हैं, जो जैसे प्राथमिक वर्णव्यवस्थाके घटनाक्रममें घटित हुए बतलाये गये हैं। प्राथमिक वर्णव्यवस्थाके घटनाक्रम का इतिहास पहले ( गताङ्कमें प्रकाशित इसी लेखके पूर्वांशमें ) संक्षेपसे उद्धृत किया है; उससे साफ विदित हुआ है कि जबतक मानवी प्रजामें अनुचित प्रेम, असीम परिग्रहभाव, अतितृष्णा, आत्यन्तिक वित्तैषणा, आसुरी भोगलिप्सा, राक्षसी कामचेष्टा, दानवी दुर्बल-दलनक्रिया, पैशाचिक क्रूर-मनोवृत्ति, ईर्ष्या सर्वस्वापहरणवासना, पैशाचिक सर्वभक्षणप्रवृत्ति आदि अमानुष दोष नहीं घुसे थे, जबतक मानवप्राणी दैवी सम्पदभिजात था, तब तक इसकी लोकयात्रामें सभी उचित आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिये पर्याप्त सामान प्रकृतिद्वारा स्वत: किया-धरा, आपरूप-उपपन्न स्वयं-सिद्ध हुआ तैयार रहता था। उसमेंसे लोग अपने निर्वाहमात्रके लिये सामग्री-परिग्रह करते थे; सब बटोर कर जमा कर लेनेकी अनर्थकरी प्रवृत्ति किसीमें भी नहीं थी; सुतरां तन्निमित्तक लूट-मार, चढ़ा-ऊपरी ग्राम-समिति-संघटन, पशु क्षेत्र-दार-दासादिपरिग्रह, और तत्परिकर-परिवार-परम्परारूप वर्ग, वर्ण, जातिप्रभृति के उद्गम और विकाशका कोई कारण वा अवसर ही न था। अत एव उसके परिणामस्वरूप विषमता भी उन लोगोंमें नहीं थी; सभी सर्वथा समानशील-व्यसन, समयोगक्षेम, एक ही वर्ण तथा एक जातिके थे। उनमें सर्वत्र स्वयम्भू 'रसोल्लसा' * सिद्धियां विराजती थीं।

परन्तु जब उन लोगों का ईमान-धर्म छूट गया, तब नैसर्गिक भाव से, आपरूप से, उनमें अतिसीम परिग्रहमय वर्गभेदका बीज जम गया, जिसका उद्गम बर्बर 'मात्स्य न्याय' के रूपमें हुआ, और सीमान्त विकाश,सभ्य वर्णव्यवस्था तक पहुंच गया। इस प्रकार,

---

* ''रसस्य स्वत एवान्तरुल्लास: स्यात्कृते युगे ;
रसोल्लासाख्यिकासिद्धि, स्तया हन्ति क्षुधं नरः।
स्त्र्यादीनां नैरपेक्ष्येण सदा तृप्ताः प्रजास्तथा ;
द्वितीयासिद्धिरुद्दिष्टा सा तृप्तिर्मुनिसत्तमैः।
धर्मोत्तमश्च योऽस्त्यासां सा तृतीयाऽभिधीयते।
चतुर्थी तुल्यता तासामायुषः सुख-रूपयोः।
एकान्त्यबलबाहुल्यं विशोका नाम पञ्चमी।
परमात्मपरत्वेन तपोध्यानादिनिष्ठता ;
षष्ठी च ; कामचारित्वं सप्तमी सिद्धिरुच्यते।
अष्टमी च तथा प्रोक्ता यत्र-क्वचन शायिता।''
इति स्कन्दपुराणोक्ता रसोल्लासाद्यष्टसिद्धयो वेदितव्याः।

वन्यावस्थासे आरम्भ होकर वर्णव्यवस्था की पराकाष्ठा तक स्वभावतः विकसित और क्रमशः उत्तरोत्तर उन्नतिशील, अन्ततः समुच्छ्रय-चरमसीमावसायी चातुर्वर्ण्य मानवसमाजका अधःपात पुनः हुआ ; और "पतनान्ताः समुच्छ्रयाः" इस नियमके अनुसार फिर फिर चातुर्वर्ण्यचतुर्व्यूह मानवसमाज-चक्रकी-( "नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण"—) दशा चङ्क्रमण करती वा चक्कर काटती रहती है।

यही मानव-समाज की सम-विषम स्थिति और सुव्यवस्था-दुर्व्यवस्थाका नैसर्गिक नियम तथा शाश्वतिक क्रम है ; जो बराबर चलता हुआ, युग-युगमें चातुर्वर्ण्य मानवसमाज को बनाया और बिगाड़ा करता है। इस मीमांसासे यह बात बिल्कुल साफ मालूम होगी कि मानवी वर्णव्यवस्था सहजगुण-कर्मप्रसूता, वृत्ति-धर्मानुसारिणी, नैसर्गिक जन्म-स्थेम-भङ्गलीलावती, आहारानुसन्धानानुगतिका, यूथ-प्रभृति-जातिरूपपर्यन्तपरिणतिशीला, उत्थानोत्तम्भन-पतनशालिनी, अनुलोम-प्रतिलोमगामिनी, अन्योन्याश्रय-सम-विषमतामयी है। यह किसी चेतन ( देव, मनुष्यादि ) के बुद्धिपूर्वक प्रयत्नसे न बनती नहीं बिगड़ती है। इसके बनने अथवा बिगड़नेका कारण होता है—नैसर्गिक कर्तृगुण-कर्म-भावमय महाजनपरिग्रह। महाजन, ( जनसमूह, जनता, समाज ) लोग, जब आवश्यकताकी पूर्त्ति मात्र से सन्तुष्ट रहते हैं, तब उनका सब काम प्रकृति द्वारा स्वयं 'कृत' वस्तुओंसे सहज ही चल जाता है। प्रकृति के साम्राज्य में किसी अदृश्य शक्तिद्वारा निसर्गतः इतनी शस्यसम्पदा उत्पन्न की जाती, और प्राणिमात्र में उसके यथायोग्य वितरण वा सहजरीत्या स्वयंप्रापण का ऐसा स्वाभाविक सुप्रबन्ध होता है, जिसकी बदौलत, इस भूतधात्री रत्नगर्भा वसुन्धरा पर जनमे हुए सब प्राणियोंकी सभी आवश्यकतायें अवश्य पूरी हो सकती हैं ; पर वही सर्वभूत-योगक्षेम के लिये पर्याप्त भौम तथा दिव्य स्थावर-जङ्गम-पदार्थमय परमैश्वर्य, किसी एक भी अतितृष्ण महाकामी पुरुष की वित्तैषणा और भोगवासना को तृप्त करनेके लिये काफ़ी नहीं है।

"यत्पृथिव्यां व्रीहि-यवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः,
एकस्याऽपि न पर्याप्तं तद्, इत्यतितृषं त्यजेत्।
पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयासक्तचेतसः ;
तथाप्यनुदिनं तृष्णा यत्तेष्वेव हि जायते।
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ;
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।"

यह एक प्राचीनतम अतितृष्णामय भुक्तभोगी पुरुष ( राजा ययाति ) का साक्षाद् अनुभव है। ऐसा अपरोक्ष अनुभव, भूतलके अगणित अतितृष्ण लोगोंको हुआ और होता होगा।

जबतक आदमीमें यह अतितृष्णा प्रवेश नहीं पाती, और जबतक लोग, लोकयात्रिक आवश्यकता-मात्र की पूर्त्तिसे सन्तुष्ट तथा कृतकृत्य होते हैं, तबतक सम्पदुत्कर्षप्रयोजनक समधिक परिग्रहभाव और तन्निमित्तक लूट-मार आदि का कोई कारण अथवा अवसर ही नहीं होता। सुतरां पशु-क्षेत्र-दार-दासादिपरिग्रह, स्वामिदास-मालिक-गुलाम-भाव, वर्गभेद, वर्णविभाग, दुर्बलदलनप्रवृत्ति, बलवत्तरोंकी वरिष्ठम्मन्यता, उच्च-नीच जातीयता, सजात-सनाभि-सगोत्रादिपक्षपात, जन्मवर्णता, जातिगत स्पृश्यास्पृश्यता, सामाजिक अहङ्कारतिरस्कार, साम्प्रदायिक राग-द्वेष, नस्ल-घमण्ड-प्रमत्तपरस्पर-स्पर्धि—द्रोहिजनसंघर्षमयलोकविग्रह – प्रवर्त्तक दुष्ट राष्ट्रवाद, विश्वविध्वंसक-सर्वस्वविधूनन महासंग्राम आदि विषम अनिष्ट परम्परा को, मानवसमाज में ज़रा भी अवकाश और प्रसर नहीं मिल सकता; सर्वत्र निसर्गसिद्ध समात्मभावमय ऐक्य, कैवल्य, अद्वैत, एकवर्णत्व, समरूपत्व ही प्रकृतिस्थ और निर्विकार रहता।

परन्तु 'सृष्टिके इतर भाव पदार्थोंके सदृश ही मानव स्वभाव भी क्षणपरिणामी, तृतीयक्षणवृत्तिध्वंस-प्रतियोगी, त्रिगुणमय सतत चलचित्त-चैतस, और निम्नगा प्रवृत्तिवाला है ; अगत्या यह सर्वदा निर्विकार, समरस, एकरूप, समानधर्मा, समशील-व्यसन, सम-योग-क्षेम, और एकजातीय, एकवर्ण, रह नहीं सकता। मनुष्य की जीविका-वृत्ति-निमित्तक अतितृष्णाप्रसूत विषम प्रवृत्ति के कारण जनसमाजमें बलवत्तर-दुर्बल-वर्गभेदमय - मात्स्यन्यायद्वारक- स्वामिदासादिविभाग-परम्परया कर्मणा वर्णविकासक्रम से जन्मजातिग्रह-पर्यन्त विषम अवस्थायें निसर्गतः आती-जाती हैं। यह प्रकृतिका शाश्वत नियम और नियतिका अटल विधान-सा मालूम पड़ता है।

इस विवेचन से यह निश्चित हुआ कि वर्णविभाग, स्वभावगुण-कर्मानुसार निसर्गज है ; निमित्त पाकर इसका उद्गम और विकाश, सहज रीतिसे स्वतः होता है ; अत एव यह बुद्धिपूर्वक मनुष्यकृत नहीं, अपि तु ईश-( जगन्नियन्तृ ) सृष्ट है—

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्मविभागशः।"

यही कारण है कि कोई समझे वा न समझे, माने अथवा न माने, पर यह प्रकृतिसिद्ध, निसर्गजगुण-कर्मानुसारी वर्णविभाग, विश्वके समस्त मानवसमाजमें परिव्याप्त है, और सदैव सर्वत्र ही किसी न किसी रूपमें प्रवर्त्तमान रहता है। तैत्तिरीयसंहिता और ब्राह्मणग्रन्थादि में तो जगत्के स्थावर तथा जङ्गम, सभी पदार्थोंमें गुण-कर्मनिमित्तक नैसर्गिक वर्णविभाग का स्वयंसिद्ध होना बतलाया है। अतः विश्वमानव-समाज के लिये वर्णव्यवस्था ही आत्मलाभप्रद, स्वरूप-निष्पादक, स्थितिस्थापक, वास्तविक सत्तविधायक, समाधारभूत, परस्पराश्रित—मिथः संश्लिष्ट अङ्गाङ्गी-भावसुव्यूढ़ स्वाभाविक शारीरसंस्थान है। वैयक्तिक तथा सामूहिक योगक्षेम, आभ्युदयिक और नैःश्रेयसिक लोकयात्रानिर्वाह, और चतुःपुरुषार्थका अनन्यसाधारण, अमोघतम, परमसाधनभूत यह चातुर्वर्ण्य, विश्वरूप विराट मानवसमाजका वैसा ही निसर्गसिद्ध, गुण-कर्माधारक, परस्पर सहकृत-वृत्तिविभाग-सुव्यवस्था-मण्डित, असङ्कीर्ण-संमिश्र-परस्परानुव्रत-कर्त्तव्याऽधि-कारमय लोकोत्तर पिण्डस्वरूप विलक्षण सुसंघटन है ; जैसा कि शिरः-स्कन्ध-मध्यदेह-पादरूप-चतुरङ्ग-संघटित मानवकायव्यूह, प्रत्यक्ष देखा जाता है। इसी विश्वरूप, चातुर्वर्ण्यकलेवर विराट् मानवसमाज-शरीर का रूपक वा आलङ्कारिक वर्णन—

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्, बाहू राजन्योऽभवत्,
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः' पद्भ्यां शूद्रो अजायत।"
( अथर्व-सं० १९, ६, ६ )

'ब्रह्म वक्त्रं, भुजौ क्षत्रं, कृत्स्नमूरूदरं विशः,
पादौ शूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च।"
( महाभारत-वन० १८९—१३ )

इत्यादि श्रुति-स्मृतियोंमें है। इस सहज कर्म-मूलक – स्वभावप्रभवगुणप्रविभक्तकर्मानुसारी, मानव-स्वधर्ममय, निसर्गज-सत्त्वशम-रजःशौर्यादि गुणवृत्त-वृत्तिनिदान-स्वाभाविकविकाशभाक्, मनुजप्रकृति में, सहजवत् - यावदाश्रयभावि-द्रव्यसमवेतगुण - कर्मवत्—जल-शैत्यादि-असाधारण वस्तुधर्मवत् परिव्याप्त-अति-तराम् ओत-प्रोत चातुर्वर्ण्यकी उपेक्षा कर, अन्यविध कृत्रिम असात्म्य समाजसंघटन करना बिलकुल अस्वा-भाविक, सहजविकाशप्रगतिक-निसर्गपरिणत-समाज-विभागव्यवस्थाविरुद्ध अतएव अनाभ्युदयिक, अनिष्ट-कर, विग्रहप्रवर्त्तक, कलिकलह-कलकलमय, आन्दोलन-विद्रावण-वर्गसंघर्ष-क्रान्ति-विप्लवादि-विषमपरिणामक और घोर अनर्थकारी है। यही कारण है कि जब मानव-समाज, इस स्वभावज-गुणकर्ममय प्रकृतिसिद्ध-निसर्गविकशित स्वधर्मरूप वर्णकर्त्तव्य का, यथोचित

मर्यादा के अनुसार, पालन नहीं करने लगता, और दूसरी समाजव्यवस्थाओंके चक्कर में फँस जाता है, तब पुनः इसमें बर्बर मात्स्यन्यायका प्रादुर्भाव तथा अधिकार होता, और समाज में घोर उपद्रव, भय, शोक, दुःख, परिदेवन, अनुशोचन, विक्रोश, रोदन, क्रन्दन, धन-जामयापहरण, लूट-मार, विप्लव, अशान्ति, अव्यवस्था, अराजकता, दुर्जन-अत्याचार, कुराज-गुण्डाशाही आदि अनिष्टों का साम्राज्य छा जाता, मानव-लोक, भीषण विषम स्थिति और घोर दुर्दशा का केन्द्र बन जाता है।

फिर, सतत विभीषिका, चिरकालीन अशान्ति, अनुपसंहरणीय क्रान्ति, दीर्घकालिक सर्वस्वविध्वंसक संघर्ष-संग्राम, तज्जन्य जीविकाकर्मविप्लव, उत्पादन-क्षेत्र-साधनादिविनाश, युद्धलिप्तकर्मकरवर्गतया उत्पादक-कार्याऽनवकाश, तत्कृत दुर्दान्त दुर्भिक्ष, कृतान्त-कवलवत् सर्वग्रास आपत्काल, देशव्यापी बेकारी, बीमारी, महामारी, अकालमृत्यु आदिके मारक आक्रमणोंसे अतिमात्र ऊब उठने और बहुत घबरा जाने पर लोग, अगत्या, किसी अदृश्यशक्ति द्वारा बलाद् आकृष्ट प्रेरित प्रवर्तित और आयुक्त-नियुक्त की तरह, स्वभावतः ही, प्रक्रान्तिक्रमसे—प्रतिलोमविक्रान्तिविधया, पुनः सर्वसुख-शान्तिप्रदान-क्षम, योगक्षेमकारक, चतुःपुरुषार्थ साधकतम निसर्गजगुण-कर्मानुसार सहजविकाशक्रम क्षुण्ण-प्रशस्त पूर्वजार्यजुष्ट वर्णाश्रम-क्लृप्तवर्त्म, चातुर्वर्ण्य व्यवस्थापद्धति पर ही आ पड़ते हैं; और अपने समय के उस "ऊर्ध्वबाहु विरावी" 'ब्रह्मा' की शरणमें गिर जाते हैं, जिसकी एक भी बात चिल्ला-चिल्लाकर कहने पर भी, वे पहले नहीं सुनते थे—"ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष नहि कश्चिच्छृणोति मे।" तब, तत्कालीन लोक-पितामह 'ब्रह्मा' उस समयके लोगोंकी तीसरी पूर्वज पीढ़ीका विद्या-वयोवृद्धवर्ग, दीर्घकालदर्शी, पूर्णपुरुषायुपकाल भोक्ता, घटनाप्रत्यक्षहेतुक — जगत्कार्यतत्त्वार्थवित्तम, सर्वार्थसाक्षात्संवादिस्थिरबुद्धिमान्, वानप्रस्थाश्रमस्थ, लोकश्रद्धित, बृहत्तम; महत्तम, महापरिवृढ़, प्रजापुरोहित, जननेतृत्ववृत, महाजनपर्षदात्मक, शिष्टसङ्घ; अथवा कोई एक ही तादृश लोकनेतृत्वक्षम, अध्यात्मवित्तम, श्रुतिप्रत्यक्षकृत्तम, पुरुषोत्तम, महात्मा उनमें पुनः मेल-जोल, संवाद, ऐकमत्य कराकर, फिर उसी मानवस्वभाव सात्म्य, चतुरङ्गकाव्यव्यूहानुकारी, निसर्गप्राप्त-गुण-कर्मानुसारी, आहारसाधनान्वेषणानुरोधतः सहजोद्गम-विकाशशाली, लोकाऽभ्युदय-निःश्रेयसाऽव्यभिचारी, सुफलावश्यंभावव्याप्तिमान्, सर्वयोगक्षेम-चतुःपुमर्थ-साधकतम, चातुर्वर्ण्यमें ही, गुण-कर्मानुसार प्रतिवर्ण यथायोग्य अधिकार, कर्त्तव्य, पुरस्कार, सम्मान-सत्कार आदिकी उचित मर्यादा करके उन्हें नियमनियन्त्रित, तन्त्रनिष्ठ संघटित, व्यूढ़, सुव्यवस्थित, अध्यात्मशास्त्र-विधिवत् कार्याऽकार्यव्यवस्थापक, शिष्टनिर्णय-अनाम्नातधर्मक और सम्यग्व्यवसित कर देते हैं, जो उनमें आहारानुसन्धानप्रवृत्तिनिमित्तक-वृत्ति-( जीविका, पेशा) कर्मयोग द्वारा स्वतः उद्गत और कालक्रमसे निसर्गतः विकसित होकर भी, अव्यवस्थितमर्याद रहनेकी दशा-में ( 'ब्रह्मा द्वारा मर्यादाकरण और सुव्यवस्थापन के पहले ) जनता को इष्ट फल देनेमें अपर्याप्त रहता है।

फिर जब कुछ चिरकाल के बाद, लोग 'ब्रह्मा' द्वारा प्रवर्तित वर्णमर्यादा का पालन करना छोड़ देते, विधि-दृष्ट नियमित नियन्त्रित सुव्यवस्था के बांधको तोड़ डालते हैं—"पुनः प्रजास्तु ता मोहात् तान् धर्मान् न ह्यपालयन्" और परस्पर के विरोध से एक दूसरे के योगक्षेम की प्रगति को रोक कर सम्पूर्ण समाज के पुरुषार्थसाधन और सुख-शान्तिलाभ में बाधा उपस्थित कर देते हैं—"व्यरुध्यन्त परस्परम्" तब समाज में पुनः सस्पर्ध-अतिपरिग्रहभाव-जनित वृत्तिसाङ्कर्य ( वर्णसङ्करत्व ) फैल जाता और घोर 'मात्स्यन्याय' प्रवृत्त होता है; जिससे साधारण जनता उत्पीड़ित हो,

अतीव घबरा उठती और फिर 'ब्रह्मा' की शरण में जाती है। 'ब्रह्मा' अबकी बार उसे 'मनु' ( मनुष्यपिता, वयःक्रमादि से तदानीन्तन-लोकपितृस्थानीय, पितृवद्-अकारणस्नेह - नैसर्गिकप्रजावत्सल्यादिगुणसम्पत्सम्पन्न, श्रेयोऽनुशास्ता, द्वितीयपरुपूर्वज, शासन-विनयन-नियमन-नियन्त्रण-दण्डप्रणयनसमर्थ, मनीषिमान्य, मननशील मुनिसत्तम, मर्यादापुरुषोत्तम, कार्याऽकार्य-विवेचन-व्यवस्थापननिपुण, स्वार्थ-परार्थ-परमार्थ-घटनापटु प्रचण्डप्रतिभानवान्, प्रौढ़ समाज्ञगुरुजन ) के पास भेजते हैं; फिर वह प्रजा 'ब्रह्मा' के आदेशानुसार 'मनु' के समीप जाती है-"मनुं ताः पुनरन्वयुः।" पश्चात् 'मनु' महाराज, सब परिस्थितियोंपर अच्छी तरह सूक्ष्मदृष्टि से विचार कर, 'ब्रह्मा' द्वारा पूर्वप्रवर्तित और बीचमें प्रजाके अननुष्ठान से अस्त व्यस्त हुई वर्ण संस्थाको ही दण्डव्यवस्था के साथ पुनः प्रस्थापित और प्रचलित करते हैं; क्योंकि मानवस्वभावजगुण-कर्मानुसारिणी प्रकृतिसिद्ध निसर्गतः विकशित वर्ण-व्यवस्था के सिवा, इतर कोई भी सामाजिकयोजना वा जनसंघटनपद्धति, सर्वथा निरापद अवश्यंसत्फल-प्रसू अनतिसमविषमा और सनातनी नहीं है। 'कर्मणा वर्णव्यवस्था' ही शाश्वत स्वाभाविक पुरुषार्थप्रसवित्री, सतत सर्वत्र व्याप्तिमती, मध्यमप्रतिपदा, अनिवारितो-पसम्पदा और परम निरापदा है। अतः मानवजातिमें इसी व्यवस्थाका उद्गम और विकाश शनैः क्रमसे स्वाभाविक रीतिसे हुआ, और जब जब प्रजाने इसके विरुद्ध आचार-व्यवहार किया, तब तब देशमें असा-माजिकता असद्राजकता मात्स्यप्रवृत्ति और लोकदुर्दशा फैली; और फिर फिर 'ब्रह्मा' तथा 'मनु' प्रभृतियों को इसी में उचित मर्यादा और दण्डव्यवस्थादि करके इसे ही चलाना पड़ा; उन्होंने कोई नई समाजव्यवस्था नहीं बनाई।

# मृत्यु-विज्ञान

लेo—श्री गंगाप्रसाद गौड़ "नाहर"

अमृत व मृत्यु

( गताङ्क से आगे )

जीवन के तीन दर्जे माने गये हैं—(१) मर, (२) अमर, (३) अविनाशी। जो १०० सालके भीतर या लगभग मर जाते हैं, उनको मर कहते हैं। जो अपनी मौत अपने हाथमें रखते हैं, अथवा जो अपनी इच्छासे मरते हैं, वा कोई दोष हो जानेके कारण, किसी अविनाशी द्वारा मारे जानेके अधिकारी होते हैं, वे अमर कहलाते हैं। रावण, कंस, तथा भरथरी आदि इसके उदाहरण हैं। अविनाशी, जो कभी नाशको प्राप्त न हो, वह अविनाशी है। राम, कृष्ण, तथा वे जीवनमुक्त आत्माएँ, जो भगवद्रूपको प्राप्त हो चुके हैं, इस श्रेणीमें आते हैं।

प्रथम तथा तृतीय श्रेणीके जीवनके सम्बन्धमें सविशेष वर्णनकी आवश्यकता तो यहां नहीं प्रतीत होती। परन्तु हम यह अवश्य जानना चाहेंगे कि मनुष्य अमर कैसे हो सकता है।

अमरत्व दो प्रकारसे प्राप्त किया जा सकता है। प्रथम साधन द्वारा, अर्थात् सद्गुरु-कृपासे कुण्डलिनीको जाग्रत करके, और द्वितीय वाह्य पदार्थों द्वारा। क्रमशः इन दोनों प्रकारोंका वर्णन, संक्षेपमें नीचे दिया जाता है।

सहस्रदल कमल के मध्यमें शिव-शक्तिसंयुक्त एक केन्द्र है, और उसके निम्न भागमें जो कर्णिका है, वहींसे अमृतकलाका तत्त्व अर्थात् सोता नीचेकी तरफ़ उतरता रहता है। उसका रंग जुगनू जैसा होता है और स्वाद, शहदसे भी सौ गुना मधुर एवं सुगन्धित। इस तत्त्वको पीनेवाला सर्वदा व सर्वथा १६ सालका रहता है, क्योंकि इस अमृतकलामें 'षोड़शी' नामक शक्ति निवास करती है। यह षोड़शीकी शक्ति ही सहस्रदल कमलके परमात्माकी आत्मा है।

साधारणरूपसे, उक्त कथित अमृतकलाका सूत्र कुण्डलिनीके भीतर होता है। जिनकी कुण्डलिनी जाग्रत नहीं हुई रहती, उनको अमृत-कलाका वास्तविक अनुभव नहीं हो सकता। उनके लिये, उनके ब्रह्मरन्ध्रमें अमृतसूत्र होनेपर भी नहीं है, ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि सहस्रदल कमलवाला वह अमृत वर्षण कुण्डलिनीकी नागनी ही पी जाती है, और जीवात्मा उसके लिये तरसता ही रह जाता है।

इससे प्रमाणित हुआ कि मृत्यु-कला, तथा अमृत-कला, दोनोंके केन्द्र, एक साथ ही, सहस्रदल कमलके नीचे स्थित हैं।

सारे संसारमें इने-गिने ही व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जो अमृत कलासे सम्बन्ध रखते हैं, और अमर हैं; नहीं तो लगभग सभी मनुष्य मृत्यु-कलासे ही सम्बन्ध रखते हैं, और मृत्युको अनिवार्य समझते हैं।

अमृत-कला चाहती है कि सारा संसार अमर हो जाय, नहीं तो मनुष्य-शरीरमें उसकी उपस्थितिकी आवश्यकता ही क्या थी। परन्तु वह कुण्डलिनी आवद्ध होनेसे अपना धर्म पूरा नहीं कर सकती। इसके विपरीत, मृत्युकला, कुण्डलिनीसे आवद्ध नहीं है, इसलिये उसका प्रभाव सर्वत्र सर्वदा पड़ा करना अनिवार्य हो गया है, और हम यह कहनेके लिये बाध्य होते हैं कि मौत, मनुष्यके लिये निश्चित है, चाहे वह आज आवे, अथवा कल।

अब अमृतकला सम्बन्धी कुछ वाह्य साधनोंका उल्लेख किया जाता है, जो कुण्डलिनीबद्ध लोगोंके लिये उपकारी सिद्ध हो सकता है।

(१) अमृतकलाका एक सूत्र प्रत्येक स्त्रीमें मौजूद रहता है। किसी-किसी स्त्रीकी दाहिनी आँखसे होकर वह सूत्र नीचेकी ओर अग्रसर होता है, और किसी किसीकी बायीं आँखसे होकर। जिस नेत्रमें गुलाबी रंगत छायी हुई हो, समझ लो कि उसी तरफसे अमृतकलाका सूत्र आ रहा है। स्त्रीको सीधा लिटा देना चाहिये, और उसी नसको हाथके अंगूठेसे रगड़ना चाहिये, जो अमृतवाहिती नस है। इस साधनसे अमृत प्रगट हो जाता है। उसे धो डालना चाहिये। वह पानीमें मिलता नहीं है। अमृतका रंग हिंगुलसा सुरख़ होता है। शहदसा वह गाढ़ा होता है। उसमें कस्तूरीकी खुशबू होती है। किसी चीज़में मिलता नहीं। पारेकी तरह अपनी सत्ता अलग रखता है। पीनेमें अत्यन्त मधुर, यहांतक कि संसारकी सारी मधुरता उसके सामने मात हो जाती है। कमसे कम एक छटाँक यह अमृत रस पीनेसे अमरत्व प्राप्त होता है।

(२) हिमालय प्रदेशमें संजीवनी बूटी, एक जड़ी मिलती है। उसकी पहिचान यह है कि अंधेरी रातमें उसका एक एक पत्ता जुगनूकी भांति चमकता है। लक्ष्मणजी इसी बूटी द्वारा शक्तिवाण लगनेपर, स्वास्थ्य लाभ किये थे। बहुतेरे सिद्ध पुरुष इसी बूटी द्वारा इच्छामृत्यु प्राप्त किये हैं।

(३) जीभका जो हिस्सा नीचे जुड़ा रहता है, उसको कटवा दे, और मक्खनके सहारे जीभको खींच-खींचकर लम्बा कर ले। इसके बाद शीर्षासन लगाकर कानोंको दोनों अंगूठोंसे बन्द कर ले। नेत्र भी बन्द रखे। फिर तालूकी तरफ़ अपनी लम्बी जीभको बढ़ावे, ऐसा करनेसे, इस साधनका करनेवाला अमृतकलावाला अमृतरस, अपनी उल्टी हुई जिह्वासे पान कर सकता है।

इस साधनके करनेवालेके सामने, कुण्डलिनीका कपट हार जाता है। *

क्रमशः

* लेखककी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'मृत्यु और उसके बाद' से। —ले०।

# पूर्ण शान्तिकी प्राप्ति

लेः—श्री राल्फ़ वाल्डो ट्राइन

जिस क्षण हम भगवान्‌के साथ अपनी एकता, समरसताका अनुभव करना प्रारम्भकर देते हैं, उसी क्षण हमारे हृदयमें शान्तिका स्रोत बहने लगता है। अपनेको सदा-सुन्दर, स्वस्थ पवित्र आध्यात्मिक विचारोंसे ओतप्रोत रखना, वस्तुतः जीवन और शान्तिकी प्राप्ति है। इस सत्यको सदा अपने हृदय-पटपर अङ्कित करना कि "मैं आत्मा हूं, भगवान्‌का अंश हूं" और हमेशा ही इसी विचारधारामें बहते रहना शान्तिका मूलतत्त्व है। कितना करुणाजनक और आश्चर्यप्रद दृश्य है कि संसारमें हजारों व्यक्ति चिन्तित, दुःखी, शान्तिकी प्राप्तिके लिए इधर उधर भटकते हुए तथा विदेशोंकी खाक छानते हुए नजर आते हैं; परन्तु उन्हें शान्तिके दर्शन नहीं होते। इसमें तिलमात्र भी सन्देह नहीं कि इस प्रकार वे कदापि शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते, चाहे वर्षोंतक वे सतत प्रयत्न करते रहें; क्योंकि वे शान्तिको वहां खोज रहे हैं, जहां कि इसका सर्वथा अभाव है। वे भोले मनुष्य बाह्य पदार्थोंकी ओर तृष्णाभरी निगाहोंसे देख रहे हैं जब कि शान्तिका चश्मा उनके अपने अन्दर बह रहा है। कस्तूरी मृगकी नाभिमें विद्यमान है, परन्तु मृग अज्ञानतावश उसे बाहिर खोजता फिरता है। जीवनमें सच्ची शान्ति अपने अन्दर झाँकनेसे ही मिल सकती है।

बाह्य संसारमें शान्ति नहीं, शान्तिका उद्गम स्थान तो मनुष्यकी आत्मा है। आप शान्तिकी खोजमें चाहे भले ही जंगलोंमें भटकते फिरें, शारीरिक वासनाओं, लालसाओं, इच्छाओं और आवेशोंकी पूर्तिको ही शान्ति समझते रहें, तथा बाह्य पदार्थोंकी प्राप्ति द्वारा शान्ति का दिव्य आनन्द उपभोग करना चाहें, पर सच जानिए, सच्ची शान्तिके दर्शन आपको कभी नहीं होंगे। परन्तु इस सबसे मेरा यह तात्पर्य कभी नहीं कि आदमीको अपनी इच्छाओं, शारीरिक आवेशों और लालसाओंकी पूर्ति करनी ही नहीं चाहिए, अपितु इन शारीरिक इच्छाओं और आवेशोंकी पूर्ति उस सीमातक मनुष्यको करनी चाहिए, जहाँतक यह हमारे स्वास्थ्यको कायम रखनेमें आवश्यक है। दिन-रात इन्हीं आवेशोंकी पूर्तिमें लगा रहनेवाला व्यक्ति असन्तोष, चिन्ता और उदासीकी काली छायासे घिरा रहता है। सुन्दर, स्वस्थ जीवन बितानेके लिए शारीरिक आवेशोंकी पूर्ति नितान्त आवश्यक है; परन्तु सबसे बड़ी आवश्यकता है अपने मनपर नियन्त्रण की; मनका इन्द्रियोंपर पूर्ण शासन होना चाहिए; मनको इन्द्रियोंका दास नहीं, अपितु उनका स्वामी बनना चाहिए।

शान्तिकी प्राप्तिमें बच्चोंकीसी स्वाभाविक सरलता और हृदयकी निष्कपटता नितान्त आवश्यक है। सन्त-महात्माओंकी समुन्नतिका प्रधान कारण यही सरल-हृदयता है, उनका मानस मानसरोवर सदा स्फटिककी नाई शुद्ध रहता है और उसमें प्रेम, पवित्रता और प्रकाश के पुष्प प्रफुल्लित रहते हैं। जिस प्रकार एक बच्चा पूर्णरूपेण अपनेको अपने पिताके प्रति समर्पित कर देता है, अपने हृदयकी कोई भी बात उससे गुप्त नहीं रखता; ठीक इसी प्रकार सन्त जन अपना भगवान्‌के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण कर देते हैं।

मुझे अपने जीवनमें ऐसे व्यक्तियोंके परिचयका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिन्होंने विश्वनियन्ता भगवान्‌के साथ अपनी एकता अनुभव कर अक्षय

आनन्दका लाभ किया है। अब भी मेरी आंखोंके सामने एक नवयुवकका चित्र झूल रहा है, जो वर्षोंतक अस्वस्थ था, जिसके हृदयमेंसे आशा, उत्साह लुप्त हो चुके थे, जो जीवनको एक भार समझता था, जिसकी दृष्टिमें विश्वकी प्रत्येक वस्तु और प्राणी निरर्थक थे और जो अपने संसर्गमें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके साथ उदासीनताका व्यवहार करता था—परन्तु जबसे उसने भगवान्‌के साथ अपनी एकता स्थापित करनेका अध्यवसाय किया तबसे उसका जीवन बिल्कुल बदल गया और वह, विश्वकी प्रत्येक वस्तुको आशावादी दृष्टिबिंदुसे देखने लगा, उसका जीवन आध्यात्मिक संगीतसे भर उठा, उसका शुष्क जीवनोपवन लहलहा उठा। यह सब किसका चमत्कार है? एकमात्र संसारके उस महान गायकके साथ, जो सृष्टिके कण कण में संगीतको भर रहा है, एकता अनुभव करनेका। सच्चे हृदयसे एक बार अनुभव करके तो देखो, कि जगदीश्वरका पाणिपंकज हर अवस्थामें तुम्हारे ऊपर है, तुम्हारा अशुभ कभी हो ही नहीं सकता। यह सब विचारशक्तिका, प्रबल संकल्प-शक्तिका, प्रभाव है। वर्त्तमान मनोविज्ञान का तो यह दावा है कि मनुष्यका समग्र जीवन विचारोंसे ही नियन्त्रित है। ये ही विचार मनुष्यको उन्नत बना सकते हैं और विचारोंके अभावसे ही मनुष्य रसातलमें समा जाता हैं।

मुझे एक पुलिस अफसरने बताया है कि सायंकाल उस समय अपनी ड्यूटीसे वापिस लौटते वक्त मार्गमें उसको अपनेपर किसी दैवीय, अदृश्य शक्तिका प्रभाव अनुभव करते हुए दृष्टिगोचर होता है और वह एकाएक केवल भगवानके विचारमात्रसे ही आनन्दसे नाचने लगता है।

जो भगवान्‌के साथ अपनी एकता अनुभव करना आरम्भ कर देते हैं, वे सर्वथा निर्भय हो जाते हैं और उन्हें सदा ऐसा प्रतीत होता है कि मंगलमय भगवान् स्वयं उनकी रक्षाके लिए कटिबद्ध है। सच्चे सन्त अगर डरते हैं तो केवल भगवान्‌से। संसारकी अन्य कोई भी ताकत उनकी आवाज़को दबा नहीं सकती; संसारकी समस्त शक्तियां यदि एक ओर हो जायं तब भी वे पराभूत नहीं किए जा सकते। इस असीम साहस और निर्भयताका स्रोत भगवान् ही है। जिन सन्त महात्माओंके जीवनमें बिलकुल समताकी दृष्टि आ जाती है, पशु पक्षी तक भी उन्हें स्नेहकी दृष्टिसे देखने लगते हैं। किसी वस्तुसे डरनेका तात्पर्य यही है कि हम उसके साथ अपनी एकता अनुभव नहीं करते और उसमें सत्य सनातन भगवान्‌का अंश नहीं देखते। भगवान्‌के साथ एकता अनुभव करनेका और सब वस्तुओंमें भगवान्‌को देखनेका जो सर्वप्रथम प्रभाव हमारे जीवनपर पड़ता है, वह है जीवनके प्रति आशावादी दृष्टिकोणका होना। संसारमें प्रतीत होनेवाली बुराईयां बुराईयां ही मालूम नहीं होतीं, चिन्ता और दुःख तो कपूरकी तरह उड़ जाते हैं।

जब हम भगवान्‌के साथ अपनी एकता अनुभव करना प्रारम्भ कर देंगे, तो यदि कोई प्रत्यक्ष तौरपर भी हमें हानि पहुंचाएगा, तब भी हमारा हृदय विक्षुब्ध नहीं होगा और उसमें सदा एकरस शान्तिका सागर लहराता रहेगा। जब हम इस सत्य नियमसे पूर्णतः परिचित हो जाएँगे कि संसारके सुख, दुःख, हमारी आत्मापर प्रभाव नहीं डाल सकते, संसारकी कोई भी घटना निर्द्वन्द्व, स्वच्छन्द आत्माको विक्षुब्ध नहीं कर सकती; तभी हमें सच्ची शान्ति प्राप्त होगी। साधारण मनुष्यकी चिन्ता और दुःखका मूलभूत कारण यही है कि वे अपनेको आत्मासे पृथक् मानते हैं और शरीरमात्र समझते हैं।

प्रिय पाठक-वृन्द! आजही से अपनेको आत्मरूप समझनेका प्रयत्न कीजिए, आपका जीवन सुखमय होगा।

# मनोरञ्जक शास्त्रार्थ

( सङ्कलयिता—"देव"

जब लोगों में यह भाव फैल गया कि शास्त्रवचनों से प्रमाणित की गई बातोंका बड़ा महत्त्व और बहुत आदर होता है, तबसे प्रायः कोई नई बात सोचनेवाला प्रत्येक आदमी, उसे शास्त्र द्वारा सही करनेकी कोशिश करता है।

कतिपय मनीषियोंने रेल, तार, घड़ी, बिजली आदि आधुनिक आविष्कारों को वेद-मन्त्रों से प्राचीनतम साबित करनेका भरपूर यतन किया है।

सब बातों में शास्त्रीय प्रमाण को खोज़ निकालने की धुनवाले इस ज़माने में, शास्त्र-वचनों की कैसी खींचा-तानी होती है, और उनका कैसा मनमाना अर्थ लगाया जाता है ; यह बात संस्कृत वेद. धर्मशास्त्र, पुराण, और दर्शन के किसी भी एक प्रसिद्ध ग्रन्थ की अनेक टीकाओं को देखने से साफ़ मालूम होगी। एक ही 'प्रस्थानत्रयी' ( उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता ) से अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, शिवाद्वैत आदि. परस्पर विरुद्ध कितने 'वाद' वा 'सिद्धान्त' निकाले गये हैं, यह प्रायः सब शिक्षित लोगों को ज्ञात है। हिन्दूधर्म के परस्पर विरुद्ध मतवाले सभी सम्प्रदाय, एक ही वेद-शास्त्र की दुहाई देते हैं ; इनमें से प्रत्येक सम्प्रदाय अपने मज़हब और मन्तव्य को वैदिक, शास्त्रीय, सनातन, और सर्वश्रेष्ठ साबित करनेके लिये, अपने मतलब का शास्त्रार्थ निकालता है। इस प्रकार, मज़हबी टीकाकारों ने सच्चे शास्त्रार्थ का घोर विप्लव कर डाला है।

अस्तु, यहां तक तो ग़नीमत थी ; क्योंकि साम्प्रदायिकों के जल्प-वितण्डावादों में भी अपने अपने ढंग की, एक एक नियम-क्रमबद्ध विचारपद्धति थी और है ; वे अपने अपने तरीक़े से सम्पूर्ण व्याख्येय शास्त्र की सङ्गति बैठाते, और स्वमन्तव्यों में शास्त्रवचनों का समन्वय, एक युक्तिसङ्गत ढङ्ग से करते हैं। इस से, कमसे कम, बुद्धिमार्ज्जन, और शिक्षितमनोरञ्जन तो होताही है।

परन्तु, अपने मन की बातों वा मन्तव्यों को शास्त्रवचनों से प्रामाणिक तथा महत्त्वपूर्ण प्रसिद्ध करनेकी अनुचित लोक-प्रवृत्ति से बेचारे शास्त्रार्थ की जो दुर्दशा हो रही है, वह अवश्य शोचनीय है !

शास्त्रप्रामाण्यवाद का माया-मोह, केवल शिक्षितवर्गपर ही नहीं सवार है ; इसका मूढ़ग्राह अपढ़ लोगोंमें भी दृढ़मूल देखा जाता है। वैसे लोग, जब अपनी बातों का प्रमाणन, शास्त्रवादों से करने लगते हैं, तब बड़ा मनोरञ्जक श्रव्य उपस्थित होता है। "कहीं की ईंट, कहींका रोड़ा ; भानमती ने कुनबा जोड़ा।" एक वा अनेक ग्रन्थोंमें से, कहीं का एक वाक्य, अन्यत्र से दूसरा वाक्य मिला कर, अपने मतलब का शास्त्रार्थ निकालने की चेष्टा बहुतसे गँवार लोग भी करते हैं। इस प्रकार के अर्थवादी सज्जन आज काल के साधु-सन्तों की जमातों में बहुतेरे होते हैं। गुसाईं, बैरागी, उदासी, जोगी, आदि की जमातों और 'नागा' साधुओंके 'अखाड़ों' को देश में घूमते, 'चढ़ाव' आदि पर:जुलूसों में निकलते, बहुतोंने देखा होगा। जब कभी उनकी जमातें कहीं रात को टिक जातीं, अथवा किसी जगह पड़ाव डाल देती हैं, और भर-देह भस्म रमा कर नख-शिख विशाल-पिशङ्ग-जटाधारी मौञ्जीमेखलावाले निहङ्ग काठिया बाबा लोग, धक् धक् धधकती, दहकती, दमकती, ऊर्ध्वज्वालमाला-

धूनी धुई' पर स्थिर-सुख आसन जमा कर मस्त हो बैठ जाते हैं, तब उनका शास्त्रार्थ सुनने लायक, बड़ा मनोविनोदक, होता है। इस विषयकी कुछ बातें सुनिये—

अपने राम एकवार दैवयोग से, संयोगवशात्, बैरागियोंकी एक जमात में पड़ गये थे। गोरखपुरीय वैकुण्ठपुर-पैकौली के 'पवहारी' महाराजकी, अथवा गुजराती काठिया बाबाओं की, जमातों को जिन्होंने कभी निकट से देखा होगा, वे उनमें के अनेक अलौकिक औलिया फक्कड़ों के विलक्षण जङ्गली स्वभाव से अच्छी तरह परिचित होंगे।

हरिद्वार का चढ़ाव था; मैं एक श्रीवैष्णव पण्डित के साथ वहां गया था; क्योंकि मैं उन दिनों उन्हीं का अन्तेवासी ( विद्यार्थी, छात्र ) था। मैं स्वयं भी एक श्रीवैष्णव आचार्य का शिष्य—मन्त्रादि पञ्च-संस्कार द्वारा दीक्षित—हो चुका था; इसलिये हरिद्वार में कुम्भ मेले के अवसर पर वहां पड़ी हुई, अपने समानधर्मा बैरागियों की जमात में ठहरना हमारे लिये स्वाभाविक ही था। अक्ल के दुश्मन, गांठके पूरे, स्वर्ग का 'पासपोर्ट' पाने, वा गोलोक का परवाना लेने, के उम्मेदवार, और सीधे वैकुण्ठ का टिकट कटाने को उत्कण्ठित दानवीर बुद्धू धन-सेठ भक्तों की अन्धी उदारता से, उस जङ्गली, रेतीले, ऊसर स्थान पर भी घृतपक्व पुड़ी, कचौड़ी, मोहनभोग, मालपुआ, और दुग्धवलदुग्धसिद्ध तसमई आदिकी तो रात-दिन अविराम वरसा होती, और धारा-सी बहती थी; बरावर महानस ( पाकशाला ) दगे, और लङ्गर चढ़े रहते थे। यथेष्ट दूध-बदामी बूटियां छनतीं और गांजाके दम पर दम लगाये जाते थे। हम लोग, भांग-बूटी, गाँजा-अफ़ीम आदि का मज़ा तो, अनभ्यास के कुसंस्कार की बदौलत नहीं लूट सकते थे; पर मालपुआ आदि उड़ाने का पूरा सुयोग, हमें भी मिल सकता था।

'सन्तों' के उस धूम-धड़क्के भीड़-भड़क्के में बाबा लोगोंका मुख्य कर्त्तव्य, ठाकुरजी के पूजा-पाठ करना, घड़ी-घण्ट बजाना, मूर्त्ति के सामने अन्नकूटमय छप्पन भोग लगाना और प्रेमपूर्वक उस 'महा परसाद' ( वा परम-स्वाद ? ) का, सेवन करना, ( चट कर जाना ) ही था। फिर भी कभी कभी वे लोग थोड़ा 'सत-संग' कर लेते थे; उनके मनोरञ्जक शास्त्रार्थ के कुछ नमूने सुनिये।

ऊर्ध्वज्वालमालामुखी 'धुई' धाँय धाँय लहक रही थी; उसकी चारों तरफ़ बाबा-महाराजों के आसन लगे थे। भाङ्ग-बूटी छन चुकी थी; 'गाँजा' के दम पर दम लग रहे थे; मुख-नासिका-विवर द्वारा अविराम प्रवाहित धूम-धारा से वहां का आकाश आच्छन्न और वायुमण्डल मादक ( नशामय ) हो रहा था। आस-पास में कुछ गाँजा-भांगपियक्कड़ 'सत-सङ्गी' जीव, और 'साधु-सेवी' श्रद्धाजड़ भक्त सज्जन बैठे थे। बाबाओं का 'सत-सङ्ग' उर्फ़ शस्त्रार्थवत् 'शास्त्रार्थ' शुरू हुआ। उनमेंसे एकने 'गाँजा' का दम लगाते हुए पूछा—

"हां, जै सियाराम, क्यों रे साधू, तैं कुछ पढ़ा है ?"

दूसरा चिलम सम्भालते हुए बोला—

"ऐं', राम आसरेसे, 'कुछ पढ़ना' पूछता है, मूरख ! निगुड़ा कहीं का; देखता नहीं, गीताजी अवोर रमायनजी बराबर हमकूं साथमें रहते हैं; राम आसरे।"

पहला—"हैं, मेरेकूं मूरख अवोर निगुड़ा कहता है, साला, जै सियाराम; समूचा 'रामपटल' मेरेकूं कन्ठस्त है; फिर हमरेराम मूरख क्यों कर रे ? अवोर 'निगुड़ा' तो तेरेकूं ऐसे बिना गुरुवाले मनमुखी साधू होते हैं। हमकूं गुरु सिरी ( श्री ) १००८ एक हज़ार आठ ००० माहाराज तो ऐसे तेजवंसी हैं कि बड़े-बड़े बाबू जमींदार और सेठ-साहुकार को गाली देकर बोलते हैं; फिर हम निगुड़ा कैसे ? जै सियाराम।

अवोर तैं गीताजी, रमायनजीको लिये फिरता है, तो क्या बड़ा पन्डत बन गया ? गदहों के पीठपर क्या दुशाले नहीं लादे जाते ?

दूसरा—"हैं, राम आसरे, ( चिमटा उठाकर ) घर माधर ००० को, हमकूं मनमुखी अवोर किसी दूसरे की पोथी ढोनेवाला गदहा बनाता है, रामआसरे; अवोर खुद को बड़ा पनडित बतलाता है साला। राम-पटल घोख लिया, बस सिद्ध बन गया। हमकूं महा-राजजी के मठ में गइया के बछड़े रामपटल का पाठ करते हैं; बैल कहीं का, साधू बनने चला है। हमकूं मनमुखी कहेगा, तो 'चिमटा' से तेरी जीभ खैंच लेंगे। हम अपने एक हज़ार आठ १००८ सिरी सिद्ध गुरु महाराजजी से सब मन्तर-तन्तर सीखा, तथा गीताजी अवोर रमायनजी पढ़ा है। तेरेकूं ऐसा निगुड़ा नहीं है; राम आसरे से।"

पहला—"हैं, जै सियाराम, गाली बकता है रे बद-माश ! अवोर अपने विदया का घमण्ड करता है। मेरेकूं कुटिया में कुतिया गीता-रमायन पढ़ता है; जै सियाराम।"

दूसरा—(उठकर चिमटा पातता हुआ ) ऐं रे, नासतिक मलेच्छ, राम आसरे से, गीताजी अवोर रमायनजी का निन्दा करता है ? अभी तेरे सिरकूं फोड़ देता हूं।"

पहला साधू भी धुईं से जलता चैला उठा कर खड़ा हो गया, जङ्गली धर्मलड़ाई की नौबत आई; पर दूसरे लोगोंने बीच में पड़कर झगड़ा छुड़ा दिया।

* * *

थोड़ी देर के बाद दूसरा 'सतसङ्ग' शुरू हुआ। अब की वार अखाड़िये 'नागा' लोग, उसमें वादी और प्रतिवादी थे। एकने सवाल किया—

'कहो जी, रामभरोसे, तैं किस अखाड़े का नागा है ?

दूसरेने—जबाब दिया—"हम 'निरवानी' हैं। हम कूं अखाड़ा सब से वड़ा ( श्रेष्ठ ) है; सेताराम। अवोर तुमकूं अखाड़ा कौन है ?"

पहला—मेरेकूं अखाड़ा ? रामभरोसे, हें हेंहें! भेख से नहीं पछानता ( पहचानता ) ? कैसा नागा तैं हैरे ? अरे मेरे रामकूं अखाड़ा निरञ्जनी है—निर-ञ्जनी, राम भरोसे, सुना ? अच्छा, अब बता; तैंणे जो अपणे अखाड़े को सब सों बड़ा बतलाया; यह क्यों ? तेरेकूं अखाड़े का, किसी साहतर ( शास्त्र ) में, कोई परमान भी है ? निगुड़ा कहींका, रामभरोसे, निरञ्जनी से भी बड़ा बनने चला है !

दूसरा—"देख, यह देख मूरख, सिरी गीताजी में निरबानी अखाड़े को कैसा लिखा है।

( स्वयं पढ़ नहीं सकता था; अतः गीताकी अपनी गुटका को खोलकर निम्ननिर्दिष्ट श्लोक दिखलाता है, जिसपर कहीं जरूरत के समय झट निकाल सकने के लिये पहले से ही चिह्न लगा रक्खा था )

"युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः;
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।"

देखा, इस श्लोक में साफ़ लिखा है कि जो आदमी निरबानी संस्था में जा कर चेला बनता है, वह सिद्ध योगी हो कर सानती ( शान्ति ) पाता है। और देख, सिरी गीता जीमें ही, निरबानी अखाड़े का परमान—

"निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः;
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुख-दुःखसंज्ञै-
र्गच्छंत्यमूढाः पदमव्ययं तत्।"

अर्थात्—निरबानी अखाड़े का हर 'नागा' मोह, दोष, आसकती ( आसक्ति ) को जीत कर अध्यातम तत ( तत्त्व ) में लीन रहता है; अवोर काम तथा सुख-दुख आदि से मुकत ( मुक्त ) होकर वयकुण्ठ में पहुंचता है।

गीता के ऊपर उद्धृत श्लोकों का उपर्युक्त अर्थ सुनकर पास ही बैठे अपने राम से रहा नहीं गया ; मैं बोल पड़ा— "बाबा, लेकिन आपने श्रीगीताजी के इन श्लोकों का जैसा अर्थ सुनाया है, वैसा तो शाङ्कर भाष्य में भी नहीं लिखा है ?"

नागा—( मेरी ओर वक्रदृष्टि से देख, झुंझला कर ) "चल दुनिया लन्डी, तैं गृहथ आदमी किया जानने गया ? "बारह बरस रहो सन्त की टोली, तब सीखो एक बोली" तैंणे गुरुसेवा तो किया नहीं; किसी महात्मा का चेला हुआ नहीं ; अवोर चला सिरी गीताजी का अरथ लगाने । मेरेकूं हमका सिद्ध गुरुने यह अरथ लाया है ; वो बड़े तेजवंस माहातमा हैं ; बड़े बड़े धनवों से गाली के मुँह बात करते हैं । उनका सिख है, सेताराम, यह दुनिया लन्डी चला है मेरेसे बहस करते ; चुप पैठो ।"

अपने राम तो डर के मारे, कि इन जङ्गली जीवों को कौन छेड़े, चुप हो गये ।

फिर वह नागा अपने प्रतिपक्षी साधु से बोला— "देखा निरबानी अखाड़े का महात्तम ? तेरे निरञ्जनी का कहीं सासतर में कोई परमान भी है ? मनमुखी निगुड़ा कहीं का, सेताराम !

पहला—"अरे मूरख, तेरेकूं तो 'करिया अच्छर भैंस बरोबर' राम भरोसे ; तैं क्या जानने गया निरञ्जनी का हाल, देख, सासतर में लिखा है—

"निरञ्जनं परमसाम्यमुपैति दिव्यम्"

'निरञ्जनी अखाड़ेवाला साधू दिब्ब ( दिव्य ) धाम को जाता है ।"

इस हो-हल्ले को सुन, गुसाईयों के खटले से दो मुण्ड-मुसण्ड मूसलचन्द निहङ्ग नागे निकल आये । उनमेंसे एक बोला—

"हे हे, अरे वैरागड़े, तैं दोनों ने झगड़े करके आपस में ही अखाड़ों कूं बांट लिया । अब बस, आगे मत बढ़ना । अखाड़े हमकूं सम्प्रदा में होते हैं ; बम-भोले, वैरागियों के लुगाई सम्प्रदा में मल्ल नागाओं के अखाड़े कैसे ? बम-भोले ।

वह बैरागी—"तैं किस अखाड़े का है सन्त ? राम भरोसे ।"

गुसाईं—'हमकूं अखाड़ा 'जूना' है ; बम-भोले ।

बैरागी—"जूना ; यह तो किसी भी सासतर में नहीं लिखा है ; रामभरोसे ; कहां से टपक पड़ा रे सन्त ?"

गुसाईं—( झिझक कर तपाकसे आगे बढ़के ) "अन्धा बैरागड़ा, कल देखना, जब हमकूं आखाड़े का नहान जलूस निकलेगा । तैं की नानी मर जायगी ; बम-भोले ।"

बैरागी—"अरे मुरखानन्द चपाट गुसाईं, तैं लिख-लोढ़ा, पढ़-पत्थर मालूम पड़ता है ; राम-भरोसे । मेरे रामकूं प्रसन कवन है, अवोर तैं किया अनट-सनट जबाव वकता है । जलूस तो गदहों का भी निकलता है, । अपणे रामकूं सवाल तो यह है कि 'जूना' का सासतर में परमान भी है या नही ?"

गुसाईं थोड़ी देर चुप हो गया ; शायद वह 'जूना' के लिये शास्त्रीय प्रमाण की चिन्ता में पड़ गया था । मेरे रामसे फिर नहीं शान्त रहा गया । मैं दिल्लगी से गुसाईं की मदद करने के लिये बोल उठा—

"नागा बाबा, 'जुना' अखाड़े का प्रमाण तो शास्त्रों में बहुत बड़ा है ; सुनिये—

'वृद्धो यूना सह परिचयात् त्यज्यते कामिनीभिः'

कामिनी—ज़वान औरतें, 'जूना' अखाड़े के नागा महापुरुष से परिचय ( पहिचान ) होनेपर अपने बूढ़े पति को छोड़ देतीं, और नागा बाबा की भगतिन बन जाती हैं ; जैसे गोपिकायें अपने पतियों को त्याग कर भाव-भक्ति और श्रद्धा-प्रेम के वश हो, श्रीकृष्ण भगवान् की सेवा में उपस्थित हो जाती थीं । जब,

लुगाइयों का यह हाल है, तब पुरुष लोगों पर 'जूना' के नागाओं का कितना प्रभाव होगा ? इसके माहात्म्य का क्या वर्णन किया जा सकता है ?

( गुसाईं यह प्रमाण और इसके अर्थ को सुनकर खुशी से कूदने लगा ; मेरे राम की ओर लपक कर बोला )—

"वाह बचा, बम-भोले, तैं बिदयारथी है ? खूब पढ़ा है ; यह परमान हमकूं जरा लिख दे।

( बीच में बात काट कर दूसरा गुसाईं )—तैं भी भाई महापुरस, बड़ा बेकूफ़ है। अरे इसकूं बिदयारथी कहता है, हरहर महादेव, यह तो खासा बड़ा पन्डत मालूम पड़ता है ! यहने ऐसा सटीक 'जूना' का परमान निकाला कि बैरागड़ा साले का चौकड़ी गुम हो गया।' ( फिर मेरे राम से )—"हां, तो पन्डत बचा, वह सासतर-बचन ज़रा लिख तो दो।"

( अपने रामने डर के मारे लिखकर दे दिया। वह पराजित बैरागी लजाकर बड़बड़ाने लगा )—

"हम साधू-सन्तों के बारे में यह सुसरे दुनियां लन्डी नाहक बोल जाते हैं। यह कोई दयानन्दी होगा। बच्चू, यदि कहीं अकेला मिलता तौ भड्डोटना से तेरेकूँ खबर लेता। ( सबका प्रस्थान ; हमलोग भी आर्यसमाज का जलसा देखने के लिये गुरुकुल कांगड़ी चले गये )।

# सत्यकी दिशामें

लेखक—श्री वीरेन्द्र मालवीय

"नमस्कार !"

'नमस्कार ! आइये, आइये ! डाक्टर साहिब, पधारिये ! कहिये कुशल तो है न ?'

'आपकी कृपा !'

'बहुत दिनोंमें दर्शन हुए ?' तहसीलदार कमलनाथ ने कुर्सीपर बैठनेका संकेत करते हुए पूछा ।

'न पूछिये, तहसीलदार साहब ! क्या बतलाऊँ अवकाश ही नहीं मिलता। जब आनेकी सोचता हूं तभी कोई न कोई आही घेरता है और फिर आजकल तो मलेरियाका मौसम ही है । हमारे ज़िले में बड़ा ज़ोर है बीमारीका । हर गांवमें कोई घर बाकी नहीं जहां दो चार खाट न पड़ी हों। ज्यादातर दौरेमें ही रहना पड़ता है; दवाइयाँ बँटवा रहा हूं । आपको धन्यवाद है कि तहसीलके कुछ गण्यमान्य सज्जनोंके सहयोगसे यह कार्य आसान हो गया है; ग़रीब लोग बड़ी दुआएँ दे रहे हैं !

'तो क्या रोज़ दौरेमें ही रहना पड़ता है ?'

'जी हां, रोज़ अस्पतालका समय समाप्त हो जानेके बाद दौरा कर आया करता हूं ; लोग आ घेरते हैं ! जाना भी लाजिमी हो जाता है । मुझसे इनकार नहीं आता !"

'ऐसे मामलों में इनकार कोई ख़ास महत्त्व भी नहीं रखता ।'

'जी हां, कमसे कम मेरी नज़रमें तो ऐसा ही है । किन्तु सचमुच दुनियांमें दुखके सिवा कुछ नहीं है। चारों तरफ़ दुःखी समाज ही फैला हुआ है । कोई शारीरिक रोगसे ग्रस्त है, तो कोई मानसिक । कोई आर्थिक रोगों का शिकार है तो कोई बुद्धिके रोगोंसे त्रस्त है ! अमीर, ग़रीब सभी परेशान है !'

'मतलब यह कि आपको सारी दुनिया मरीजोंसे भरा अस्पताल मिलता है ।'

ठीक है डाक्टर साहब "यद्दृष्टि तत्सृष्टि" यह तो अपनी मनोवृत्ति पर निर्भर है। दुनियाको जिस दृष्टि-से देखिये वैसी ही दीख पड़ेगी ! भोगियोंकी दृष्टिसे भोगमय, नाना रसरंगमयी, नास्तिकोंकी दृष्टि कुछ और ही है। निराशावादी आलसी लोग इसे बेकार समझते हैं ।'

'अजी यों कहिये जनाब कि यह रस सर्व रसोंसे परिपूर्ण है ! जो जिस रसका आस्वादन करना चाहे उसके लिये वैसी ही तश्तरी हाज़िर है। दाम चुकाओ और ले लो ! परन्तु मेरे हिस्सेमें तो रोगियोंका संसार ही आया है । यहां तो दुःख और करुण रसके सिवा कुछ दीखता ही नहीं है। आनन्दमय रूप तो किसी ही सौभाग्यशालीको प्राप्त हो सकता है ।'

'चाहे जो हो, डाक्टर साहब ! आपका पेशा है बड़ा ही सुन्दर ! करुणा-कण बिखेरते बिखेरते सारी जिन्दगी परोपकारका श्रेय लूटती हुई बितती है । लोक और परलोक दोनों बने बनाये रखे हैं ।'

"बशर्ते कि सेवाके सभी साधन सुलभ हों और ईमानदारीके साथ अपने सेवाधर्मका पालन किया जाए । ऐसा बहुत कम देखनेमें आता है । मेरी डिस्पें-सरीकी ही हालत देखिये; सेवाके लिये कितनी गुंजा-इश है; परन्तु साधन ही सुलभ नहीं है; कितनी ही काम की औषधियां समाप्त हो गई हैं। डिस्ट्रिक्ट बोर्डको लिखते लिखते थक गया, किन्तु वहां बजटमें ही गुंजा-

इश नहीं रही है। आखिर लोग वहां क्यों जाते हैं। सेवा तो उनसे कुछ होती जाती नहीं। बेचारा श्यामलाल बीमारीसे कितना परेशान है ? गरीबी, दवाइयां तो क्या, बच्चोंके खानेभरको रोटी भी तो नहीं दे पाती ! वह ग़नीमत है कि कुछ रुपये मेरे पास थे; बेचारेके काम आ गये।'

'मैं तो उसकी हालत अच्छी समझता था ?"

'अच्छी ! अजी तहसीलदार साहब, आजके जमाने में अच्छी हालत किसीकी है भी ? अच्छा तो केवल भगवानका नाम ही है ; और जबतक हमारे देशके लोगोंमें सही जिन्दगी बितानेकी आदत नहीं आ जाती, तब तक तो इस गरीबीसे हमें छुटकारा मिल भी नहीं सकता।'

'सही जिन्दगीसे आपका क्या मतलब है, डाक्टर साहब !'

'यही कि एक दूसरेकी नोचाखसोटी करके न जीना ! कहनेको तो जब हम बातचीतपर आते हैं तब यह साबित कर देते हैं कि सभ्यताके अवतार हमी हैं। परन्तु जब व्यवहारकी बात आती है तो हमारी सभ्यता न मालूम कहां गायब हो जाती है। बिना नोंचाखसौटी के तो हमारी गुजर ही नहीं होती। इसका अर्थ यह नहीं कि यदि हम पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहें, तो भी नहीं कर सकते ? कर सकते हैं ! किन्तु यह तभी सम्भव है जब कि हम उचित अथवा न्यायपर सन्तुष्ट होना सीखें। थोड़ेमें सब कुछ पानेका अभ्यास करें। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि थोड़ेमें सन्तुष्ट होना हमारे स्वभावके विरुद्ध हो गया है और इसका विचार किये बिना ही कि हमारे इस कार्यसे दूसरोंको कष्ट होता है, भूल जाते हैं, अर्थवृद्धिके लिये हम अन्याय कर डालते हैं, दूसरोंका अधिकार भी छीन लेते हैं ; और यह हमारी सबसे बड़ी दुर्बलता है। आज हममेंसे कुछ व्यक्ति तब पूंजीपति बन सकते हैं जब कि वे दूसरोंका शोषण करनेमें संकोच न करें। ईमानदारी तो शुद्ध सात्विक जीवनमें ही सम्भव है और यह आजकी बड़ी बड़ी आवश्यकताओंके झमेलेमें फंसे हुए मनुष्यके लिये असम्भव तो नहीं, कठिन अवश्य है।'

'यह कैसे ?'

'अर्थ प्राप्तिके अहिंसापूर्ण अवलम्बन आज नहीं रहे हैं। आज न्याय और सत्यका कोई भी विचार नहीं करता। व्यापारी जब व्यापार करने जाता है तो वह न्याय और सत्यको अव्यवहारिक समझ लेता है ? उचित नफ़े लेनेकी अपेक्षा वह इस धुनमें रहता है कि दूने चौगुने अठगुने या इससे भी अधिक मूल्यमें वह अपनी वस्तु बेच सके तो यह उसकी बुद्धिमत्ताकी बात ही है ; और जब उसे किसीका माल खरीदना होता है तो वह जहाँतक होता है उसे कमसे कम मूल्य देकर लेना चाहता है। सरकारी नौकर वेतनपर निर्भर रहना नहीं चाहते, क्योंकि यदि वे ऐसा करें तो उनकी बड़े आदमी बननेकी अभिलाषा पूरी नहीं हो सकती। शानदार मकान बनवाना आवश्यक है, कार खरीदना जरूरी है, शादी विवाहमें भारी खर्च न किया जाएगा तो शानके खिलाफ़ बात होगी ; और इन सब बातोंके लिये रिश्वतखोरी उन्हें अपनानी ही पड़ती है। जमींदार, किसानोंके कान काटनेको मजबूर हैं। जनताकी आर्थिक स्थिति कुछ भी हो, किन्तु सरकारी खजानेको भरनेके लिये टेक्सोंकी वसूली जरूर होगी। वकील साहब बेईमानीका व्यापार न करें, झूठ बोलकर सत्यको नीचा न दिखलाएं, तो वकालतका चलना असम्भव है; और तब उनकी ठाटदार जिन्दगी भी कैसे बीत सकती है। इसलिये यह कहना पड़ता है कि सात्विकजीवन तो एक बातचीतका ही विषय रह गया है, व्यवहारसे उसका सम्बन्ध टूटसा गया है। इस दोषपूर्ण जीवनपद्धतिने हमारे जीवनमें कायाकल्प कर डाला है और हम असन्तोषके गढ़ेमें गिर पड़े हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि पाश्चात्य देशकी भौतिक सुख-वादकी व्यापारलालसाने ही हमारे जीवनकी सात्विक धाराको बदला है; किन्तु हम स्वयं भी इसके लिये उत्तरदायी हैं।

तहसीलदार साहब डाक्टर साहबकी बातें दिल-चस्पीके साथ सुन रहे थे। उन्हें उनकी इन विचित्रसी बातोंमें सत्य दिखलाई पड़ रहा था। आजसे पूर्व डाक्टर साहबको वे एक सामान्य शिक्षित पुरुष मानते थे। परन्तु उनका भ्रम दूर हुआ। आज उनके हृदय और मस्तिष्कने स्वीकार किया कि डाक्टर साहब बड़ी पहुंचके व्यक्ति हैं। वे कोरे बातून नहीं हैं। सत्यको व्यवहारमें लाना भी जानते हैं। वे रोगियोंसे फीस नहीं लेते। इनता ही नहीं, गरीब रोगियोंको अक्सर अपने पाससे दवाके लिये पैसे भी दे देते हैं। यही कारण है कि डाक्टर साहबपर उनकी बड़ी श्रद्धा! आज वह श्रद्धा और भी अधिक बढ़ गई। इधर वे स्वयं अपने जीवन में सत्यका प्रयोग कितना करते थे यह भी जानते थे। आजकी बातचीतने उसे और भी स्पष्ट करा दिया। इसमें सन्देह नहीं कि वे एक समझ-दार व्यक्ति थे। नित्य नियमसे संध्यावन्दन करना उनका दैनिक कार्य था। कभी कभी उनके यहां कथा प्रसंग, सत्संग, भजन कीर्त्तन भी होता था। ब्राह्मण भोजन, साधु-सत्कार, गरीबोंकी सहायता कितने ही कार्य उनके द्वारा सम्पादित होते थे। इससे तहसील भरमें उनकी सात्विकताकी धाक जम गई थी। परन्तु आज डाक्टर साहबकी बातोंसे उन्हें ज्ञात हो गया कि वे सत्यसे कितनी दूर हैं। उन्हें मालूम हो गया कि रिश्वत लेकर उन्होंने कितनी भारी भारी गलतियाँ की हैं। व्यवहारसे सत्यका तिरस्कार किया गया और विचारोंसे उसकी पूजा; इससे क्या होता है? यह न केवल ढोंग था, बल्कि यह महान अपराध था, जिसका प्रायश्चित भी कोई असाधारण ही हो सकता है। माना कि वे उस अनुचित आयसे दान पुण्य भी करते रहते थे। किन्तु ऐसा करनेसे उनकी चादरपर लगा हुआ दाग छूट थोड़े ही जाता है? इस विचारधारामें तहसीलदार साहब बहे चले जा रहे थे कि नौकरने टेबलपर चाय की ट्रे ला रखी और उनकी विचार समाधि भंग हुई।

'लीजिए, डाक्टर साहब चाय नोश फर्माइये!'

'पीजिए पीजिए!'

'आपके विचार तो बड़े ही ऊंचे हैं डाक्टर साहब!'

'किन्तु केवल विचारोंसे काम नहीं चलता। सत्य तो व्यवहारमें लाया जाय तभी ठीक है।'

'परन्तु एक बात है। सत्य विचारमें जितना सस्ता है व्यवहारमें उतना ही महंगा भी है?

'यह तो है ही। अन्यथा हम सब उसका व्यवहार ही न करते।'

'चाहे महंगा ही हो करना अवश्य चाहिये।'

चायकी समाप्तिके साथ ही साथ बातचीतका क्रम भी समाप्त हुआ। और डाक्टर साहब बिदा लेकर अपने छोटेसे ग्राम अस्पतालकी ओर चल दिये।

* * *

तहसीलदार साहबमें अब एक नया ही परिवर्तन होता जा रहा था; अब वे अपने पुराने रवैयेको बिल्कुल भूल चुके थे। उनके पुराने साथी रिश्वतें देकर अपना काम बना ले जाते थे, उदास थे। सत्यने तह-सीलदार साहबके हृदयपर अधिकार कर लिया था। जनतामें जहां उनकी न्यायप्रियताकी प्रशंसा की जा रही थी, वहां लोगोंमें यह भी चर्चा थी कि अब उनका रहन सहन बहुत ही परिमित हो गया है; अब वे ठाट-बाटसे नहीं रहते। डाक्टर साहब स्वयं उनके परिवर्तन-से चकित थे; फिर भी दोनोंमें एक असाधारण मौन

प्रतियोगिता चल रही थी, अहंकारहीन ! आज उसी बैठकमें वही चर्चा फिर शुरू हुई।

'एक बात कई दिनोंसे विचारमें आ रही है, उसे मैं आपके सामने रखना चाहता हूं !'

'कहिये कहिये !'

मेरा जी चाहता है कि नौकरीसे इस्तीफ़ा दे दूं। अब नौकरी करनेको जी नहीं चाहता। अपनी आत्मा और सत्यका बड़ा ही दमन करना पड़ता है।'

'इरादा तो मेरा भी यही हो रहा है। किन्तु हम लोग ऐसी स्थितिमें हैं कि ऐसा करना हमारे लिये बड़ी कठिनाई पैदा कर देगा। हम पारिवारिक पुरुष भी हैं। घर गृहस्थीका भार हमारे सिरपर लदा है वह भी हमींको ढोना है। सामाजिक और राष्ट्रीय धर्म भी हमारे साथ हैं। आमदनीका कोई न कोई जरिया तो चाहिये ही। खेती बारीमें जो कुछ है उसे आप जानते ही हैं। इन बेचारे किसानोंकी हालत देखिये न ? ऐसी अवस्थामें मैं आपको नौकरी छोड़नेकी सलाह नहीं दे सकता।'

'यह बात नहीं है कि इन प्रश्नोंकी ओर मेरा ध्यान नहीं गया है। किन्तु फिर भी कितनी ही बातें मुझे ऐसी करनी पड़ती हैं जो वास्तवमें सरासर अन्याय है ! आप जानते हैं इस साल फसलमें कुछ नहीं हुआ है। फिर भी ऊपरसे सरकारी आर्डर आई है कि वसूली जल्दीसे जल्दी हो जानी चाहिये। मैंने ऊपर लिखा है कि इस साल फसलमें कुछ नहीं हुआ है। पटवारियोंकी रिपोर्ट भी भेज दी है। यह भी लिख दिया है कि किसानोंको स्वयं सरकारी सहायताकी आवश्यकता है। फिर भी कलक्टर साहब कुछ ध्यान देना नहीं चाहते। ऐसी अवस्थामें इस्तीफ़ा देना ही ठीक है।'

'इस सम्बन्धमें और आगे बढ़िये।"

'परन्तु ऐसा करनेसे ऊपरी अफ़सर अपनी शिकायत समझ लेते हैं।'

'मेरे विचारमें एक बार ऐसा अवश्य होना चाहिये। मैं भी एक दूसरे मार्गसे आपकी सहायता करूंगा।'

'अच्छी बात है आज ही मैं लिखूंगा।

* * *

हापुर तहसीलके किसानोंकी शोचनीय अवस्था पर अख़बारोंमें जो कुछ प्रकाशित हुआ, उससे मेरठ कमिश्नरीके उच्चाधिकारियोंमें भी कुछ चेतना जाग्रत हुई और उन्होंने अनुभव किया कि किसानोंकी सहायता होनी चाहिये। गवर्नर साहबने मंज़ूरी दे दी और तकावी बटी; लगानकी माफ़ी दे दी गई।

'कहिये तहसीलदार साहब प्रयोग कैसा रहा ?'.

'प्रयोग तो ठीक रहा, परन्तु जनताका शोषणसे तो छुटकारा नहीं हो सकता, यही खेद है। शासन-सुधारमें बहुत अधिक परिवर्तनकी आवश्यकता है। यों कहना चाहिये कि सरकार अपने कर्त्तव्यका पालन करना ही नहीं जानती। मैं जानता हूं कि वह हम लोगोंपर ही अवलम्बित है; किन्तु वह हमारी सलाहका भी तो महत्व नहीं समझती।

'हमें चाहिये कि हम अपना कर्तव्य देखें ! तहसीलके बड़े बड़े आदमियोंकी सलाह और सहयोगसे बहुत कुछ ग्रामसेवाका कार्य किया जा सकता है। ग्राम-उद्योग, खादी, कागज कितने ही छोटे मोटे धंधोंमें ग्रामीणोंको लगा सकते हैं और जहांतक हो सके सरकारी सहायता भी उन्हें दिलानी चाहिये। आखिर एक सरकारी कर्मचारीकी हैसियतसे हमारा कुछ कर्तव्य तो है ही ?'

'है क्यों नहीं ! करें तो सब कुछ है, नहीं, तो कुछ भी नहीं।'

आपने सोचा इस्तीफ़ा देनेसे सेवामार्गकी कठि-

भाइयोंको साहसके साथ दूर करना अधिक श्रेयस्कर है ?'

'अवश्य ! मैं भी यही अनुभव करता हूं। खेद है कि हम अकेले हैं।'

'अकेले क्यों हैं ! आप चाहें तो सैकड़ों अच्छेसे अच्छे सहयोगी आपको प्राप्त हो सकते हैं।'

'मैं चाहता हूं कि हमें अपनी तहसीलमें एक अच्छी शिक्षण संस्था स्थापित करनी चाहिये। जिसमें बच्चों-को शुरूसे अन्ततक मुफ्तमें ही शिक्षा मिल सके। बच्चे कुछ घंटे काम करेंगे और पढ़ेंगे भी ! खेती बारीकी व्यावहारिक शिक्षासे उनकी रोटी कपड़ेकी आवश्यकता भी पूरी हो जाएगी और अन्य कारीगरियोंकी शिक्षासे उनके दूसरे खर्च पूरे हो जाएँगे।'

'वाह यह तो बड़ा अच्छा कार्यक्रम है। मैं 'प्रकाश' के सम्पादकजीसे आपकी मुलाकात करवाऊंगा, वे हमारे कार्यमें बड़े सहयोगी सिद्ध होंगे।

'केवल आपका ही सहयोग स्वर्गीय सहयोग है; सचमुच आप धन्य हैं।'

'यह फैसला तो जनता करेगी कि धन्यवाद किन्हें मिलना चाहिये। इस समय तो हमें सत्यकी दिशामें चलते रहना चाहिये।

# मुर्झाया फूल

रचयिता—श्री हरिकान्त झा वख्शी, साहित्याचार्य्य

Research scholar Govt. sanskrit College, Benares.

रही न मुझमें मादकता अब, मोहनकारी हास नहीं।
रही न छविकी चञ्चलता अब, मनोमुग्धकर वास नहीं॥
आते थे कितने अपने अब उनकी है कुछ आश नहीं।
दुखियोंके साथी जगमें कवि ? होते हैं इतिहास नहीं॥
मैंने घर-घर जा देखा है, है न प्यारकी प्यास कहीं।
रखना मत सुझ शुष्कसुमनका, गौरवमय इतिहास कहीं॥
भूल न जाना कवि ! मेरा वह, चिर अतीतका राज सखे !
मेरी करुण-कहानी सुन मत पछताना तूँ आज सखे !
संसार जगमें सदा न रहता, किसी नृपतिका ताज सखे !
मधुमय जीवनकी संस्मृतियाँ, केवल सजतीं साज सखे !
हृदयमें अङ्कित करना कवि ! रखना मेरी लाज सखे !
रुद्ध कण्ठसे कभी न होती, सुस्तुतिकी आवाज सखे !
मेरे अनन्त वैभवसे कवि ! कविताका शृङ्गार बना।
मेरे अनन्त वैभवसे कवि-भावों का अभिसार बना॥
मेरे अनन्त वैभवसे कवि ! मञ्जुल यह संसार बना।
मेरे अनन्त वैभवसे कवि ! वीणाका झङ्कार बना।
तरुण तरुणियोंके उरमें कवि ! मञ्जुल-मञ्जुल हार बना।
आँख खोल कवि ! देख जरा अब, रोता हूँ निःसार बना॥
कभी न दुःखकी छाया जिनने देखी जरा उन्हें कहना।
"वैभव मदमें मस्त बने जो क्या जाने वह दुःख सहना।"
पर न जरा कवि ! छोड़ उन्हें तूँ मनकी पीर छुड़ा लेना।
मेरी दुःखसे भरी कहानी, कवि ! तूँ उन्हें सुना देना॥

# साहित्य-समालोचन

## 'विकल' की 'वधशाला' †

'विकल' जीने एक अच्छी 'वध-शाला' बनाई है। 'विकल' आदमी 'वधशाला' के सिवा और क्या बना सकता है ?

वाचकोंको चौंकना नहीं चाहिये ; इसमें चकित होनेकी कोई बात नहीं है। यहां 'विकल' कोई विपद्-का सताया आदमी नहीं ; यह 'सुमन, मधुकर, निराला, मतवाला, वियोगी, बेढब' आदिकी तरह एक कविका उपनाम है। 'वध-शाला' के साइनबोर्डपर उनका असल नाम नहीं दिखाई दिया। 'विकल' की 'वधशाला' भी कोई भयानक बलि-वेदी नहीं है ; यह है उनकी एक मनोरम कविता।

इसे मैंने सिर्फ़ आपाततः स्थूल दृष्टिसे (ऊपर-ऊपर मोटी नज़रसे) एक बार देखा है ; ग़ौरसे पढ़ने और सावधान अनुसन्धान करनेका न तो सम्प्रति मुझे अवकाश था, नहीं सविस्तर समीक्षाके लिये पत्र (सात्त्विक जीवन) में स्थान ही। अतः वाचकों-को 'वधशाला' की इस संक्षिप्त बहिरङ्ग परीक्षासे ही, सन्तोष करना होगा।

'वध-शाला' नामकरणको 'मधु-शाला' से इशारा मिला मालूम पड़ता है। यह स्वाभाविक है ; पूर्व-पूर्व कवियोंकी छायाका अनुसरण, पश्चात्कालीन कवियोंको प्रायः करना पड़ता है ; इसमें कोई अनौचित्य वा हर्ज नहीं। बेजा तब होता है, जब दूसरोंके अपूर्व पद और वाक्यका अपहरण करके अपनी कविता सजाई जाती है। जो कुकवि लोग, किञ्चित् परिवर्त्तन करके दूसरों-के सम्पूर्ण काव्य-प्रबन्ध आदिको स्वरचित प्रसिद्ध करते हैं, वे तो दूरसे ही सौ-सौ नमस्कार के योग्य हैं।

"कविरनुहरति च्छायां कुकविरपूर्वं पदं च वाक्यं च ;
सर्वप्रबन्धहर्त्रे साहसकर्त्रे नमः पुंसे।"
"तेऽन्यैर्वान्तं समश्नन्ति, परोत्सर्गं च भुञ्जते ;
इतरार्थग्रहे येषां कवीनां स्याद् दुराग्रहः।"
"अन्यवर्णपरावृत्त्या, बन्धचिह्ननिगूहनैः,
अनाख्यातः सतां मध्ये, कविश्चौरो विभाव्यते।"

'विकल' जीने अपने पूर्वभव कवियोंकी छायाका अनुसरण करके भी एक स्वतन्त्र दिशामें प्रस्थान किया है ; यह कवि सम्प्रदायका उचित पन्था वा सन्मार्ग (सही रास्ता) है। यद्यपि 'विकल' जीको 'मधु-शाला' आदिसे प्रेरणा मिलनेकी बहुत सम्भावना का अनुमान होता है, तथापि 'वध-शाला' में उनकी उत्प्रेक्षा अपनी चीज़ है। 'विकल' जीने 'मधु-शाला' प्रभृतिसे मज़मून छीनकर उसे अपूर्व रूपमें परिणत और सुविस्तृत क्षेत्रमें प्रयुक्त किया है, अथ च अधिक प्राञ्जल तथा शानदार बना दिया है।

'मधु-शाला' आदिका क्षेत्र संकुचित, प्रविरल, गुप्त, साधारण जनताके साक्षात् सम्बन्धसे विरहित और सार्वजनिक प्रत्यक्ष अनुभूतिसे बहिर्भूत है। 'मधुशाला' की हाला और मधुबालाके करसरोजका प्याला सबको सुलभ नहीं है, और नहीं सामान्य जनताको उससे कोई दिलचस्पी है ; कुछ थोड़ेसे जार-लम्पट-नशाखोर ही उसके भक्त सेवक वा उपासक हैं, साधारण लोग तो

† प्रकाशक—श्री रामावतार शर्म्मा, माँमन्दिर, मण्डी धनौरा, मुरादाबाद। मूल्य—अजिल्द ।||) ; सजिल्द १)

उससे घृणा ही करते हैं ; यही कारण है कि 'मधुशाला' का क्षेत्र सङ्कीर्ण, प्रच्छन्न और क्षुद्र होता है।

इसके विपरीत, 'वधशाला' का क्षेत्र विशाल है। इससे सर्वसाधारण जनताका साक्षात् सम्बन्ध है ; सब लोग इसे प्रत्यक्ष देखते, भोगते और अपरोक्ष अनुभव करते हैं। यह मधुशालाकी तरह गुप्त व्यसनसंस्था नहीं ; बल्कि विश्वकी मुख्य समस्या, सर्वप्रत्यक्ष घटना और अतिक्रान्ति-क्रियामय मृत्युव्यवसायकी विराट् महाशाला है। मधुशालाका निर्माण और संस्थापन कहीं-कहीं होता है ; सर्वत्र नहीं ; वह भी प्रायः छिप कर। परन्तु 'वध-शाला'का खुला मैदान यह सारा संसार है। साधारण गृहकार्य और जीविकार्थक कृषि-कर्मादिसे विश्व-संघर्षतक, 'वध-शाला' की व्याप्ति वा विस्तार है। यह 'मधुशाला' की तरह सिर्फ अनार्य-सेवित नहीं ; प्रत्युत परम आर्य पुरुषों द्वारा भी पूजित, प्रशंसित और आराधित है। 'सुरासुरसंग्राम' मशहूर है। बड़े-बड़े ऋषि भी नरमेध, गोमेध, अश्वमेध, अज-मेध पशुमेध आदि प्राणिबलिशालामयी यज्ञशालाके रूपमें 'वधशाला' के प्रवर्त्तक हो गये हैं। ईश्वरके अवतार पुरुष भी—"विनाशाय च दुष्कृताम्" 'वध-शाला' ही खोलने आते हैं। घोर स्वार्थपरायण नरराक्षसों, ज़ालिम क़ौमों, बर्बर वर्गों, और दुष्ट राष्ट्रोंकी ओरसे बराबर चलाई जानेवाली वधशालाओंकी तो कोई लेखा वा हिसाब नहीं है।

विश्वकी इस सर्वतोमुखी और सर्वपथीना 'वध-शाला' में बलवत्तर नरपिशाचों, नृशंस आततायियों द्वारा, सर्वथा निरपराध, निर्दोष तथा निरीह प्राणियोंको बलि चढ़ाये जाते देख, भला कौन सहृदय मनुष्य 'विकल' न हो उठेगा ? 'वधशाला' के कविका 'विकल' होना स्वाभाविक उचित और अनिवार्य था।

'विकल' जीने अतीतकी बधशालाओंको इतिहास-के गम्भीर अनुसन्धानसे और वर्त्तमान वध-शालाओं-को प्रत्यक्ष प्रकृतिनिरीक्षण तथा विश्वरूपदर्शनसे अच्छी तरह देखा-समझा है। यही कारण है कि वह 'वध-शाला' के वाङ्मय-चित्रणमें बहुत सफल हुए हैं ; इसमें 'विकल' जीका निपुण कविकर्म, सहज भावसे अभिव्यक्त हुआ है।

यों तो विश्वकी 'वधशाला' सर्व-दृश्य वस्तु है ; इसीके गर्भमें भयानक, अद्भुत, वीर, रौद्र, करुण और बीभत्स रस मूर्त्त रूपसे खेलते हैं ; शृङ्गार, वात्सल्य तथा शान्त रस भी इसीकी भ्रुकुटिविलास पर नाचते हैं ; सुतरां 'वधशाला' के श्रव्य वाङ्मयमें कोई अधिक चमत्कार नहीं लाया जा सकता ; फिर भी 'विकल' जीकी 'वधशाला' में अपूर्वता, मौलिकता, और अपनी विशेषता है। इस छोटीसी काव्य पुस्तिकामें 'विकल' जीने विश्वमानव-समाजके सभी प्रमुख वर्गोंके हिंस्र, अहिंस्र, मृदु और क्रूर भावोंको अभिव्यक्त करनेका सफल प्रयास किया है। आततायियोंके अत्याचारसे बर्बर क़ौमों, राष्ट्रों और वर्गोंके स्वार्थिक संग्रामसे, मज़हबियोंकी धर्मान्धितासे, दुर्जनोंके मात्स्य न्यायसे, भारतीय-सतियोंके जौहरसे, सत्याग्रही नर-रत्नोंके आत्मबलिदानसे और अन्यान्य कई निमित्तोंसे भूतलपर खुली और सतत प्रवर्त्तमान 'वधशाला' का दिग्दर्शन, बड़ी खूबीसे ऐतिहासिक और प्रत्यक्ष-दृष्ट उदाहरणोंके साथ, 'विकल' जीने कराया है।

यह तो हुई सारतः 'वधशाला' की कथा-वस्तु वा प्रतिपाद्य विषय की बात। अब बाकी रहा इसे काव्यके गुण, दोष, अलङ्कार, रीति, शय्या, पाक आदिकी कसौटीपर कसना। किन्तु ऐसा करना विशेष फलप्रद नहीं है। मेरी निजी धारणा ऐसी है कि सत्काव्यकी सहज गुण-सम्पत्तिसे समृद्ध कविकर्म, सन्तसाहित्यके साथ ही विदा हो गया। फिर भी आज-काल जैसे काव्य रचे जा रहे हैं ; उनमें 'विकल' जीकी 'वधशाला'

अपने ढङ्गके बहुतोंसे घटिया नहीं ; प्रत्युत कइयोंसे तो बढ़िया है।

"क्या जीवन-भर लिये फिरेगा
दर-दर पर खाली प्याला ?
तेरी तृष्णा नहीं मिटेगी,
कितनी ही पीले हाला।
अरे शराबी ! बाँध कफ़न सिर
मेरे पीछे-पीछे चल ;
भूल जायगा 'मधुशाला' को,
अगर देखली 'वध-शाला।'

इस प्रकार 'वध-शाला' के कवयिताने, अपनी विशेषता स्वयं बतलाई है ; जो बिल्कुल सही है।

पुस्तक अवश्य प्रचारणीय और संग्राह्य है।

'विकल' जी उदीयमान और भविष्णु ज्ञात होते हैं। इनसे हिन्दीके आधुनिक कविवाङ्मयकी प्रगतिमें विशेष सहायताकी आशा की जाती है।

—"रमण"

# "सार्वदेशिकका श्रीश्रद्धानन्दांक"

पण्डित श्री धर्मदेवजी सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पतिके सुसम्पादकत्वमें प्रकाशमान, सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधिसभा देहलीके मासिक मुख-पत्र 'सार्वदेशिक' का यह विशिष्टाङ्क; पुण्यधन धर्मवीर श्रीस्वामी श्रद्धानन्दजी महाराजकी पुण्य-स्मृतिमें सादर प्रकाशित हुआ है। यह अङ्क मार्गशीर्ष १९९९ ; दिसम्बर १९४२ का है। इस बहुगुण-सम्पन्न, सुसम्पादित और सुन्दर मुद्रापित सत्तर ७० पृष्ठोंके बृहत्कलेवर विशिष्टाङ्कका मूल्य चार आना।) मात्र है। इसकी उपादेयता उपयोगिता स्पृहणीयता और संग्रहणीयताके विषयमें इतना ही जानना पर्याप्त होगा कि यह स्वनामधन्य पुण्यश्लोक विश्वप्रकाश-यशःशरीर दिगन्तव्याप्त अजर-कीर्त्तिमान्, विश्वार्यीकरण-महाकर्मयोगी आर्यपरिव्राजकाचार्य अमर शहीद ब्रह्मीभूत श्रीस्वामी श्रद्धानन्दजी महाराजके जीवनचरित, गुण-कर्म, आदेश-उपदेश और माहात्म्य-विषयक सारगर्भित विमर्शपूर्ण और प्रामाणिक सुलेखोंसे समलंकृत तथा समृद्ध है। इसमें स्वयं आचार्य श्रद्धानन्दके, जीवन-कालमें लिखित और उपदिष्ट कई सदुपदेशमय सुलेख उद्धृत हैं ; अन्य लेख भी देशके गण्यमान्य मनीषियों द्वारा लिखित, अतः अवश्य पठनीय हैं।

इस विशिष्टाङ्कमें लोकश्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्दकी जीवन-घटनाओंपर विविध विचारपद्धतियों और अनेक दृष्टियोंसे काफ़ी प्रकाश तो डाला ही गया है ; साथ ही एक ऐसी विशेषता की गई है, जिसकी बदौलत यह सबके लिये उपयुक्त स्पृहणीय, उपादेय तथा संग्रहणीय बन गया है। वह विशेषता इसकी 'कर्त्तव्य-प्रेरकता' कर्मप्रवर्त्तना अथवा सद्धर्म-चोदना है। कुछ उदाहरण लीजिये—

"इस पवित्र अवसरपर कृपा करके न भूल जाओ कि वैदिक धर्मका सम्बन्ध किसी सम्प्रदायके साथ नहीं है ; नहीं यह मत या मज़हब है। यह सनातन ( नित्य ) धर्म है ; जिसके बिना जगत्‌की सामाजिक स्थिति असम्भव है।

तुम्हें वह चाबी दी गई थी जो प्राचीन कालमें असंख्य आध्यात्मिक कोशोंको खोलती थी, और अब

भी तुम्हारा ही यह अधिकार हो सकता है कि पीड़ित जगत्को तुम शान्ति प्रदान कर सको।

किन्तु सबसे पहले तुम्हें अपनी अपवित्रताओंको दूर करना होगा। आज एक गम्भीर प्रतिज्ञा करो, या व्रत लो, कि तुम पञ्चमहायज्ञोंके अनुष्ठानमें न चूकोगे; कि तुम अस्वाभाविक जातिभेदकी जञ्जीरोंको तोड़ डालोगे; और वर्णाश्रम-व्यवस्थाको अपने जीवनोंमें क्रियात्मक रूप दोगे; कि तुम अपने देशसे अस्पृश्यता के अभिशापका समूलोन्मूलन कर दोगे (जड़से उखाड़ कर फैंक दोगे); और आर्यसमाजरूपी सार्वभौम-धर्ममन्दिरके द्वारोंको तुम, मत, सम्प्रदाय, जाति आदिके भेदके बिना मनुष्यमात्रके लिये खुला रक्खोगे।"

यह सूक्त उद्धरण, स्वर्गत श्रीस्वामी श्रद्धानन्दजी महाराजके उस अमर सन्देशका है, जिसे स्वयं स्वामीजीने निज करकमलोंसे लिखकर, 'सार्वदेशिक' सम्पादक पण्डित श्रीधर्मदेव विद्यावाचस्पतिके द्वारा मङ्गलौर (दक्षिण कर्णाटक जिला-आर्यसमाजके उत्सव के अवसरपर ता० ११-५-२५ ई०को) भेजा था; और जो इस विशेषाङ्कमें मूल अंग्रेजी पत्रके साथ छपा है।

इस अमर सन्देशके सम्बन्धमें, तैत्तिरीय-श्रुतिके शब्दोंमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि—

'एष आदेशः, एष उपदेशः, एषा वेदोपनिषत्, एतदनुशासनम्; एवमुपासितव्यम्, एवमुचैतदुपास्यम्।"

'सार्वदेशिक' के इस विशिष्टाङ्कमें नाना आरभटी और विविध प्रस्थानभेदसे विश्व मानवसमाजके योग-क्षेम, अभ्युदय-निःश्रेयस, और सर्व पुरुषार्थ-साधनके उपयुक्त आर्यधर्मका पुष्कल और प्राञ्जल सदुपदेश भरा है। कल्याणमार्गके पथिक सज्जनोंको इस सात्त्विक पाथेयका संग्रह अवश्य करना चाहिये।

यह हुई 'सार्वदेशिक' के श्री-श्रद्धानन्दाङ्ककी बात। इसके अतिरिक्त, मैंने इस पत्रके पिछले कई साधारण अङ्क भी देखे हैं। इसमें जनताके लिये, सम्पूर्ण मानव-समाजकी दृष्टिसे बिना जाति, सम्प्रदाय, मज़हब आदि का भेदभाव किये, वेदादि सच्छास्त्रोंके सत्यार्थका स्पष्टतर प्रकाश रहता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें न तो कोरे आदर्शवाद वा अव्यवहार्य ऊँचे सिद्धान्तकी व्यर्थ बात बनाई जाती; नहीं बाज़ारू मनोरञ्जनका सामान होता है। 'सार्वदेशिक' में बराबर ठोस कर्मयोगके उपदेश, जनताके लिये सच्ची कर्त्तव्य-प्रवर्त्तना, और सत्कृत्य-वर्त्मका उपन्यास रहता है। विश्वमानवसमाजके सौभाग्यसे ईश्वर इसकी सतत अभ्युन्नति करे; और यह जनता-जनार्दन, नर-नारायण, पञ्च-परमेश्वर, का अनुदिन प्रिय बनता जाय; यही मेरी शुभाशंसा है। श्रीरस्तु, शुभमस्तु। ॐ शान्तिः; ॐ तत्सत्!!

—"रमण"

## आवश्यक सूचना

सात्विक-जीवनका वार्षिक मूल्य ३) है, विद्यार्थियों, विद्यालयों और पुस्तकालयोंसे २); नमूनेकी कापी के लिये ।) आना आवश्यक है।

सात्विक-जीवनका वर्ष विजया दशमी (अक्टूबर) से प्रारम्भ होता है। वर्षके मध्यमें ग्राहक बनानेका नियम नहीं है, जो सज्जन वर्षके बीचमें ग्राहक बनना चाहेंगे उनकी सेवामें उस चालू वर्षके पिछले अंक भेजे जाएँगे।

ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें, अन्यथा पत्रोत्तरमें विलम्ब और उचित कार्यवाहीमें असुविधा होगी।

# सात्विकजीवन-ग्रन्थमाला

## ब्रह्मचर्य नाटक

प्रथम पुष्प—रङ्गमञ्च पर सफलता-पूर्वक अभिनीत यह नाटक अपने ढङ्गका निराला और बेजोड़ है। हमारे आन्तरिक असुर किस प्रकार पराजित हो सकते हैं, हम किस प्रकार अपनी दुर्वासनाओंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं, इसका विवरण यदि आप प्राप्त करना चाहते हों तो इस पुस्तकको अवश्य देखिये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य केवल ।।)

## आध्यात्मिक शिक्षावली

द्वितीय और तृतीय पुष्प—आध्यात्मिक विकासके लिये इनसे अच्छा ग्रन्थ हिन्दीमें नहीं है। हिन्दू-धर्म और अध्यात्मवादका ज्ञान थोड़ेमें प्राप्त करनेके लिये ये पुस्तकें सर्वोत्तम हैं। इन पुस्तकोंमें गागरमें सागर भर दिया है। आज ही मंगा कर पढ़िये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य प्रथम खण्ड ।।।), द्वितीय खण्ड ।।।)

## सचित्र हठयोग ( सजिल्द )

चतुर्थ पुष्प—( आसनोंके ३८ चित्रों सहित )—आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा एवं यौगिक क्रियाओं द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ले जानेवाली अनुपम और प्रामाणिक पुस्तक। इस एक ही पुस्तकसे जो लाभ उठाया जा सकता है वह अन्य कई पुस्तकें पढ़कर भी नहीं उठाया जा सकता। इसके लेखक स्वयं एक महान् योगी हैं। इस विषयकी ऐसी उपयोगी पुस्तक दूसरी नहीं है। मूल्य १), स्थायी ग्राहकोंसे ।।।)

## स्वामी शिवानन्दजी की जीवनी और उनके उपदेश ( अंग्रेजीमें )

पञ्चम पुष्प—प्रस्तुत पुस्तकमें श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराजकी जीवनी और उनके उपदेशोंका सार संकलित है। स्वामीजीकी जीवनी तथा उनके उपदेशोंका एक ही स्थानपर संग्रह करनेका अभिप्राय यही है कि लोग उनके जीवनकी घटनाओंको उनके उपदेशोंके प्रकाशमें देखें और अपने जीवनको भी तदनुकूल बनानेका प्रयत्न करें। यह पुस्तक विशेषकर उन लोगोंके लिये लिखी गयी है जो स्वामीजीके सभी ग्रन्थ नहीं खरीद सकते। पुस्तकमें प्रयुक्त भाषा सरल तथा सुबोध है। साधारण अंग्रेजी जाननेवाला व्यक्ति भी अच्छी तरह समझ सकता है। बीसों चित्रोंसे सुशोभित सजिल्द पुस्तकका मूल्य केवल १।।)

**स्थायी ग्राहकों तथा थोक खरीददारोंको पर्याप्त कमीशन दिया जायगा**

प्रकाशक—

# जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट कलकत्ता। "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

Regd. No. A 690

# हिन्दुस्तानकी आज़ादीके लिए

## पहले अपने मनको आज़ाद करो

दूसरोंको प्रकाश देनेके लिए—पहले अपने मनके बुझे हुए दीपकको जलाओ और इसके लिए आज ही—

## "मन और उसका निग्रह" (सजिल्द)

पुस्तक मंगाकर अवश्य पढ़िए। इस पुस्तकके लेखक योग-विद्या के प्रकाण्ड पण्डित, सन्त-जगत् के उज्वल नक्षत्र, श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती हैं। उन्होंने यह पुस्तक अनेकों वर्षोंकी साधना और तपस्याके उपरान्त वैज्ञानिक प्रणालीपर लिखी है। पुस्तकके विषयमें प्रमुख पत्रोंकी सम्मतियाँ पढ़िए।

वीर अर्जुन, देहली—प्रस्तुत पुस्तक स्वामी शिवानन्दजीके मूल ग्रन्थ "Mind its mysteries & Control" के प्रथम भागका सरल तथा रोचक हिन्दी रूपान्तर है। इसमें मनके सम्बन्धमें लगभग ६०० उपयोगी, व्यावहारिक विषयोंका समावेश है, जिन्हें स्वामीजीने अपने जीवनमें कार्यान्वित किया है। मानसिक विकारोंको दूर रखने तथा विचारोंका सुन्दर स्वास्थ्य-लाभ करनेके लिए यह पुस्तक विशेष महत्त्वपूर्ण है।

लोकमत, नागपुर—प्रस्तुत ग्रन्थ, मनोयोग साधन सम्बन्धी ज्ञातव्यताओंके प्रति पाठकोंका ध्यान आकर्षित करनेमें पूर्ण समर्थ है।·······प्रत्येक प्रकारके मनोनिग्रह के उपाय अथवा कर्त्तव्य अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषामें तथा आशातीत संक्षेपमें हृदयङ्गम करानेका यह अभूतपूर्व प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। अधिकाधिक आदरणीय इस ग्रन्थके रचयिता हैं श्री स्वामी शिवानन्दजी ; तथा अनुवाद किया है श्री द्वारिकानाथ झिंगन एम० ए० एल० एल० बी० एडवोकेटने। मुद्रण नेत्ररञ्जक। पृष्ठ संख्या १३६, मूल्य ।।।) प्रति।

जीवन सखा, प्रयाग—'मन और उसका निग्रह' प्रथम भाग, ले० स्वामी शिवानन्द सरस्वती, प्रकाशक जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि० कलकत्ता··········इस ग्रन्थमें मनके सम्बन्धमें ६०० उपयोगी सिद्धान्तोंका समावेश है। जिन्हें स्वामीजीने अपने जीवनमें कार्यान्वित किया है। जो नियम इस पुस्तक में दिये गये हैं, वे सब व्यावहारिक हैं, केवल आध्यात्मिक ही नहीं। प्रस्तुत पुस्तक का पठनकर पाठक अपने मनके राजा बन सकेंगे और वास्तविक मनोराज्य-स्थापना करेंगे। मानसिक विकारोंको दूर भगाने और विचारोंका सुन्दर स्वास्थ्य-लाभ करनेके लिये यह पुस्तक कल्प-वृक्ष है। पुस्तक की छपाई उत्तम कोटिकी है।

## जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लि०

८३, पुराना चीना बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता। शाखा—"प्रिंटिंग हाउस" हौज़कटरा, बनारस।

Printed & Published by Ramartha Gupta at General Printing Works Ltd. Benares Branch.



सत्वं सुखे सञ्जयति

# सात्त्विक जीवन



मूल्य चार आने

सम्पादक—रुलियाराम गुप्त

३, अङ्क ५

B.C. PONNAPPA

# विषय-सूची


| विषय | | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १—अपनी राह ( कविता ) | .... | श्रीरामनाथ पाठक "प्रणयी" | १ |
| २—सम्पादकीय | .... | .... | २ |
| ३—त्याग करो | .... | श्री लहरी | ८ |
| ४—स्व० रायसाहब चान्दमलजी जिन्दानी ( जीवनी ) | .... | श्री पं० दामोदर शर्मा चतुर्वेदी | ९ |
| ५—स्वादिष्ट भोजन ( कविता ) | .... | श्री पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति | १२ |
| ६—पथिक | .... | श्री महावीरप्रसाद विद्यार्थी | १३ |
| ७—विश्व-वृक्ष के मूल की खोज | .... | श्री पुरुषोत्तमदेव आयुर्वेदालङ्कार | १४ |
| ८—कर्मणा वर्णव्यवस्था का नैसर्गिक भाव | .... | श्री इन्दिरारमण शास्त्री | १६ |
| ९—सत्यव्रत ( नाटक ) | .... | श्री नारायणप्रसाद | २४ |
| १०—अवतार होगा या नहीं | ... | श्री कृष्णकुमार गुप्त | २६ |
| ११—प्रेम-साधना | .... | श्री कृष्णकुमार गुप्त | ३२ |
| १२—आयुर्वेद का स्वरूप | .... | श्री प्रो० प्रसादजी | ३५ |
| १३—मृत्यु-विज्ञान | .... | श्री गंगाप्रसाद गौड़ "नाहर" | ३७ |
| १४—मनुष्य की प्रकृति से पथ-भ्रष्टता | .... | श्री प्रो० प्रसादजी | ४० |
| १५—भिखारी ( कविता ) | .... | श्री हरिकान्त झा बख्शी | ४२ |
| १६—प्रेम | .... | श्री सषांङ्क | ४४ |
| १७—प्रेय-श्रेय ( कविता ) | .... | श्री गंगाप्रसाद "कौशल" | ४६ |
| १८—नाविक से ( कविता ) | .... | कुमारी शैलबाला रस्तोगी | ४६ |
| १९—निष्ठुर हेमन्त ( कविता ) | .... | श्री रघुनन्दन शास्त्री | ४७ |
| २०—वसन्त ( कविता ) | .... | श्री विकल | ४७ |
| २१—गीत ( कविता ) | .... | श्री महावीरप्रसाद विद्यार्थी | ४८ |
| २२—मुन्नू कहता ( कविता ) | | श्री प्रो० माहेश्वरी सिंह 'महेश' एम० ए० | ४८ |

बिहारप्रान्तीय शिक्षाविभाग द्वारा बिहार के स्कूलों, कालेजों, और होस्टलों के लिए स्वीकृत।

संरक्षक— श्री मनसुखराय मोर

सत्त्वं सुखे सञ्जयति

# सात्त्विक जीवन

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

वर्ष ३ } काशी—सौर माघ, १९९९ Benares—February 1943. { अङ्क ५

## अपनी राह

रचयिता—श्री रामनाथ पाठक 'प्रणयी'

अपने अपनी राह बना ले!

तम से उदासीन आँगन-घर,
नभ में तारों का आडम्बर,
अपने अपना तम हरने को उज्ज्वल जीवन-दीप जला ले!
अपने अपनी राह बना ले!

मानव मानव के प्रति गर्वित,
कौन करे संकेत तुझे नित?
अपने ही अपनी वीणा के बिखरे कोमल तार सजा ले!
अपने अपनी राह बना ले!

पार पहुँच जाने के पहले,
कुछ-कुछ दुख-सुख दोनों सहले,
अपने भावों की दुनियाँ में हृदय खोल कर रोले, गाले!
अपने अपनी राह बना ले!

# सम्पादकीय

## श्रद्धेय को श्रद्धाञ्जलि

श्रद्धानादुच्यते 'श्रद्धा' 'श्रत्' सत्यं तस्य धारणात्,
सन्धानाद्धेति ; सैवाऽऽवस्था तथा सद्भावना मता ।
'श्रत्' सत्यं धीयते यस्यां सा श्रद्धेति निरुच्यते,
तथ्येऽविपर्ययेणैवमेतदित्यात्मिका मतिः ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु बुद्धिर्याऽव्यभिचारिणी,
तदधिदेवताभावा-ख्या श्रद्धेति निगद्यते †
तया 'धेयो'ऽवलम्ब्यो वा विश्वास्यो यो भवेन्नृणां
धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्यक्सन्मार्गदर्शने ;
श्रद्धेयोऽसौ महानात्मा श्रद्धितत्वान्महाजनैः ।
इत्थं निरुक्तया सम्यक्‌—श्रद्धया देशवासिनां
श्रत्-धितः, सत्यसन्धत्वेनाश्वस्तः ; श्रत्-हितोऽथवा;*
श्रद्धेयो भगवान्दासः श्रद्-धानात्-सत्यधारणात् ।
तस्मै, तज्जीवनस्याऽस्मिन् पादोनशतवार्षिके
काले, श्रद्धाञ्जलिः पुण्ये सादरोऽयं समर्प्यते ।

गताङ्क में हमें लोकपूज्य महामना पण्डित श्री मदन-मोहन मालवीयजी महाराज को, उनके पवित्र जीवन का, ८३वें वर्षमें शुभ प्रवेश होनेपर, श्रद्धा-पुष्पाञ्जलि अर्पित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

इस अङ्क में भी एक वैसे ही सात्त्विक जीवनमय पुण्यश्लोक महापुरुष को श्रद्धाकुसुममाला अर्पित करने का पुण्योपलक्ष्य महोत्सवकाल उपस्थित हुआ है। वह

---

† "श्रद्धा, श्रद्धानात्" ( निरुक्ते )

अत्र, 'श्रत्' इति सत्य-नाम, पूर्वपदम्, तत् सत्यम् अस्यां धीयत इति श्रद्धा'। धर्मार्थकाममोक्षेषु अविपर्ययेण 'एवम् एतद्' इति या बुद्धिरुत्पद्यते, तदधिदेवताभावाख्या 'श्रद्धा' इत्युच्यते ( इति दुर्गाचार्यः )

* "श्रत्-हितः—सत्यं हितः ( सच्चा हित )

महापुरुष हैं देशविश्रुत, महाजन-श्रद्धेय डॉक्टर श्री भगवान्दास जी।

आपने इस साल मौनी अमावस्या ( माघ-कृष्ण-पञ्चदशी, गुरुवार, संवत् १९९९ वि०; ता० ४—२—१९४३ ई० ) को अपने सच्चारित्रमय पुण्यतम सात्त्विक जीवन के ७४ वें वर्ष पर्वको पूरा करके ७५ वें संवत्सर में पदार्पण किया है।

इस प्रकार, एक ही साल में एक मास आगे-पीछे भारत-वर्ष के दो दिव्य ईशविभूतिभूत सद्वृत्तादर्शरूप आर्याचारप्रतीक ऋषिकल्प महत्तम वयो-विद्यावृद्ध महापुरुषों के पवित्र जीवन की पादोनशताब्दी के प्रस्थान और शतायु के शेष पादाब्दी ( अन्त्य २५ वर्ष ) के शुभ उपस्थान को देख, हमें जो प्रमोद, सन्तोष, हर्ष, और सात्त्विक गर्व ( इनकी बदौलत भारत को प्राप्त लोकोत्तर गौरव की भावना से जायमान आत्मोत्कर्षभावमय मान) हो रहा है, इसे शब्दशक्ति ( अभिधादिवृत्ति ) द्वारा अभिव्यक्त करना सम्भव नहीं है।

ऐसे विशेष-गुण-कर्ममय महानुभावों के पुनीत जीवन का एक क्षण भी अमोघ महार्घ प्रार्थनीय और महोत्सवनीय है ; किमुत शताब्द-त्रिपादी ( ७५ साल ) का सुदीर्घ काल! अतः हम श्रद्धेय डॉ० भगवान्दासजी की जीवन-त्रिपाद-शताब्दी के इस अभिनन्दनीय शुभ अवसर पर, उनको साभिवादन बधाई के साथ हार्दिक प्रीतिमय श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं।

ऐसे ( वर्ष-पर्व, संवद्ग्रन्थि वर्षगांठ, सालगिरह, या जयन्तीके ) महोत्सवनीय शुभ अवसरों पर, अभिनन्दनीय पुरुषों के जीवनचरित की चर्चा और गुण-प्रशस्ति करने की प्रथा-सी चल गई है। परन्तु श्रद्धेय श्री भगवान्दासजी का गुणानुवाद करना, सच-मुच उनके सर्वविदित, विश्वविश्रुत लोकप्रसिद्ध स्वरूपतः साक्षात्प्रकाशमान महाजनाऽपरोक्ष गुणों का केवल 'अनुवाद' अथवा प्रत्यक्ष का पुनरुक्तिमात्र होगा। आप का परिचय देना, स्वतः प्रकाशमान भास्कर को दीप शिखा से दिखाने के प्रयत्न-सा है। आप, अपनी विशिष्ट कुलीनता, उच्चतम विद्या, स्पर्धनीय शरीर-सम्पत्ति, स्पृहणीय चारित्र पद्धति, अनुकरणीय कर्मयोग आदि सहज सद्गुणों के कारण, लोकोत्तर, प्रविरल पुरुष-सुलभ, सौभाग्यमय महत्त्व को प्राप्त कर चुके हैं। आपका पावन जीवन, भारतीय आर्यचरित का आदर्श बन गया है। पौरस्त्य तथा पाश्चात्य तत्त्वज्ञान का गम्भीर अध्ययन-अनुसन्धान करके मानव-समाज के चतुःपुरुषार्थ-साधन के लिये आपने हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी में जो एक दर्जन से अधिक निबन्ध तथा महानिबन्ध लिखे हैं, उनके द्वारा भूमण्डल के प्रायः पचास देशों में आपका यशःशरीर प्रकाशमान है। सेन्ट्रल हिन्दू कालेज और स्कूल, सेण्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल, रणवीर-पाठशाला, काशीविद्यापीठ, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस-म्युनिसिपल बोर्ड, कांग्रेस, सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली, काशीविद्यापीठ-पत्रिका, "आज" ज्ञानमण्डल आदि लोक-सेवक-सार्वजनिक संस्थाओं के संस्थापन, सञ्चालन और सन्मार्गप्रदर्शन में श्रद्धेय श्री भगवान्दासजी का, साक्षात् और परम्परया, प्रमुख कर्त्तव्य-योग सत्साहाय्य तथा उपयुक्त परामर्श, बराबर रहा है। आज ( इस ७५ वर्ष की वृद्धावस्था में ) भी, आप शान्ति-सदन के एक कोने की कुटिया में बैठ कर, सदैव विश्व-मानवसमाज के योग-क्षेम साधन की गम्भीर चिन्ता किया करते और लेखों, निबन्धों, तथा वक्तव्यों द्वारा देश-विदेश के सामने शान्ति-सुखाभ्युदयिक सत्कृत्य-वर्त्म का उपन्यास तथा प्रचार कर रहे हैं।

उनके ये सब कार्य-कलाप, इतने प्रसिद्ध हैं, कि इनके प्रमाणन के लिये शब्द प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है।

काशी तथा प्रयाग के विश्वविद्यालयों ने आपको 'डॉक्टर' की पदवी प्रदान कर गुणज्ञता को कृतार्थ किया है।

परन्तु गुणग्रहणशील जनता-जनार्दन, नर-नारायण, पञ्च-परमेश्वर वा महाजन ने आपको 'श्रद्धेय' की उपाधि देकर आपकी वास्तविक योग्यता और सच्ची नेकनीयती का संकेत किया है।

(१) 'श्रत्' यह 'सत्य' का नाम है, वह जिस भावना का आधार हो, उसे 'श्रद्धा' कहते हैं। लोगों की ऐसी 'श्रद्धा' सद्भावना, सत्यसन्धत्व की आस्था, आप्तत्व का आश्वास-विश्वास, जिस सत्पुरुष में हो, वह 'श्रद्धेय' पद के योग्य होता है; अर्थात् जिसके विषय में जनता का 'श्रत्-धान' (यह सच्चा है, इसकी नियत सच्ची है, ऐसी धारणा) हो, वह 'श्रद्धेय' पदवाच्य है—('श्रद्धा' कस्मात् श्रद्धा ? श्रद्-धानात्; कस्मिश्चित्सज्जने 'श्रत्' सत्यं, तस्य धारणात्; सत्यवादी खल्वयं महात्मा आप्ततमोऽश्रधेयवचन इति समाश्वासात्) 'श्रत्' शब्द का अर्थ 'सत्य' है; वह सत्य जिस में धृत (धारण किया हुआ) हो, उस भावना का नाम श्रद्धा है—('श्रत्' इति 'सत्य' नाम, तत् सत्यम् अस्यां धीयत इति 'श्रद्धा'। तया 'धेयः' पुरुषार्थसाधनोपदेशेषु सत्कृत्यवर्त्मनिर्देशकत्वेन आश्रयणीयः, प्रतिसरण्यः, विश्वसनीयः पुरुषः 'श्रद्धेयः') निरुक्त सद्भावनारूप श्रद्धा के द्वारा जो सत्पुरुष जनता का 'धेय' आधार्य आलम्ब्य, आस्थातव्य, आश्वसनीय, वा प्रतिसरण्य होता है, वह 'श्रद्धेय' कहलाना चाहिये। अर्थात् महाजन की धारणा में जो वाक्छली विप्रलिप्सु, भ्रान्त, प्रमादी, वितथवादी, सांशयिक, क्रिया-फलसम्बन्धज्ञानाऽनभिज्ञ, नीचस्वार्थशील नहीं है; प्रत्युत जो जनधारणा में आप्त (यथार्थवक्ता) शिष्ट, सत्यसन्ध, प्राणिस्वभावविज्ञानवान्, क्रिया-फल सम्बन्धवित्तम, सर्वभूतहितेरत, लोकहितवादी जंचा है; जिसकी नियत की सच्चाई, और बात (बोली) की प्रामाणिकता पर लोगों का 'श्रद्-धान' (सत्य-धारणा, श्रद्धा) है, वह अन्वर्थनामधेय 'श्रद्धेय' सत्पुरुष है।

जनता द्वारा उपहृत 'श्रद्धेय' पद श्रीभगवान्दासजी में अन्वर्थ है; उनकी नीयत (लोकहितैषणा) सच्ची (हार्दिक) है; उनकी देशनाओंमें सत्यता और प्रामाणिकता रहती है; भ्रान्तिका होना, मानवस्वभाव-सुलभ चित्तवृत्ति है; पर, छल, निग्रहस्थान, वञ्चना, विप्रलिप्सा और वितण्डाका भाव उनमें तनिक भी नहीं है। उनके विचारों की आलोचना की जा सकती, उसमें गलती वा भ्रान्ति भी दिखाई जा सकती है; साथ ही उनके पुरुषार्थसाधन-विषयक कृत्यवर्त्म में कण्टक और रोड़े भी दिखलाये जा सकते हैं; उनके श्रुत, मत, अनुसन्ध्यात, और निश्चित किए हुये सिद्धान्तोंमें त्रुटि होना सम्भव है; परन्तु उनकी लोक-संग्रहणी, सर्वार्थ संवादिनी, विवादप्रशमनी सत्समाज-व्यवस्थापिका, विरोधसमन्वयनी विश्वशान्ति-सुखैषणी नीयत सच्ची, और तद्विषया वाणी सद्भावमयी है; इसमें सन्देह नहीं। इस अर्थ में श्रीभगवान्दासजी, जनता के सच्चे 'श्रद्धेय' हैं।

(२) इस पद का दूसरा अर्थ यों है—

"धर्मार्थकाममोक्षेषु अविपर्ययेण 'एवम् एतत्' इति या बुद्धिरुत्पद्यते, तदधिदेवताभावाख्या श्रद्धा।" धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में (इनके स्वरूप, लक्षण, साधन, इतिकर्त्तव्यता, फलसम्प्राप्ति आदि के विवेक में) 'ऐसा ही यह तत्त्व है' इस प्रकार अविपर्ययभाव (भ्रम-विपर्यासादिशून्य, सुनिश्चितरूप) से जो बुद्धि उत्पन्न होती है, उसके अधिदैवत भाव को 'श्रद्धा' कहते हैं। अर्थात् किसी सत्पुरुष के विषय में सद्बुद्धि की अधिदेवता के अस्तित्व की ऐसी लोकधारणा का होना कि "वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में

अविपर्यस्त बुद्धि रखता है" 'श्रद्धा' पदार्थ है; और ऐसी श्रद्धा का विषय वा तादृश श्रद्धा के द्वारा 'धेय' धरणीय, उपदेशकत्वेन वरणीय सत्पुरुष 'श्रद्धेय' होता है।

हम नहीं कह सकते कि श्रीभगवान्दासजी को 'श्रद्धेय' कहनेवाले सभी लोग, उनको धर्मार्थकाममोक्ष-विषयक-अविपर्यस्त-बुद्धियुक्त समझ कर उनमें बौद्ध आधिदैवतभाव वा श्रद्धा रखते हैं, वा नहीं? परन्तु उनके निकट सम्बन्ध-सम्पर्क में चिरकाल तक रहकर और उनके सद्ग्रन्थों का अध्ययन-अनुसन्धान करके जिन्होंने अन्वीक्षा से विचार किया होगा, वे अवश्य ही यह मानेंगे कि श्रीभगवान्दासजी का चतुःपुरुषार्थ-विषयक बुद्धियोग कितना दृढ़ और कैसा अविपर्यस्त है। वह परम आप्त और महाशिष्ट आर्य-महर्षियों के पारमार्ष, अत्यन्त अविपर्यस्त, एकान्त सुनिश्चित सच्छास्त्रों के तात्त्विक अर्थ का ही विविध आरभटी, नाना विचारपद्धति, अनेक प्रस्थानभेदसे निरूपण, पुरस्करण, प्रमाणन, उपबृंहण, प्रणवीकरण और प्रति-संस्करण करते हैं; कोई नई बात नहीं निकालते। अतः उनके पुरुषार्थोपदेशबुद्धि की अविपर्यस्तता में सन्देह की ज़रा भी गुञ्जाइश नहीं है। अतः इस अर्थमें भी आपकी 'श्रद्धेयता' अक्षुण्ण है।

सुना है, "पुरुष और पहाड़ दूरसे ही बड़े दिखाई देते हैं" पास जानेपर उनकी ऊँचाई और बड़ाई कम मालूम पड़ती है। और यह भी कहावत है "दूरका ढोल सुहावन" होता है; समीप से सुनने पर उसकी पोल खुल जाती है। "अतिपरिचयादवज्ञा" की बात भी प्रसिद्ध है; और बहुधा लोकव्यवहार में भी ऐसा प्रत्यक्ष है कि बहुत अधिक सम्पर्क-संसर्गद्वारा घनिष्ट सम्बन्ध तथा अतिपरिचय हो जाने पर बड़े आदमियों में लोगों की अनादर-बुद्धि हो जाती है; नहीं तो कम-से-कम समुचित समादरभाव तो नहीं ही रह जाता। यह कहावत, देहातों तक फैली है कि "घरका योगी जोगड़ा; बाहर का योगी सिद्ध।"

परन्तु श्रद्धेय श्रीभगवान्दासजी के सम्बन्धमें उपर्युक्त बातें बिल्कुल उलटी हैं। वह, जितने ही निकट से देखिये, उतने ही अधिकाऽधिक ऊंचे और बड़े दीख पड़ते हैं। उनके सरल हृदय से निकलनेवाली सूनृत वाणी सर्वथा सुहावनी, सौम्य-सरसा, सत्य-प्रिय-हिता और सहृदय-विनोदनी होती है। श्रीभग-वान्दासजी से जितना ही परिचय बढ़ता जाता, उतना ही अधिक समादरभाव, उनके प्रति अनुदिन प्रचुर होता है। घर (कुटुम्ब-परिवार,वसति-नगर, स्वदेश) में भी आपकी प्रतिष्ठा और मर्यादा, समुचित सम्मानपूर्ण है। हमने वर्षों के अति निकट सम्पर्क से श्रद्धेय श्रीभगवान्दासजी को जैसा समझ पाया है; उसके अनुसार आप मेरी धारणा में आर्यभारत के आदर्श ऋषिधर्मा प्रतीत हुए हैं। अतः आप बहुस्तुत्य महापुरुष हैं। पर, 'न मनुष्यस्तुतिं कुर्यात्" नर-शंसा नहीं करनी चाहिये; इसलिये उनके विद्यमान गुणों का भी उल्लेख नहीं किया है।

ऐसे आदर्श सात्त्विकजीवनमय, लोक-श्रद्धेय श्रीभग-वान्दासजी के अस्तित्व की आवश्यकता, विश्वमानव-जाति-विशेषतः सर्वतोमुख पतित भारतवर्ष-के लिये, कितनी बड़ी है; यह किसी सुज्ञ सज्जन को बतलाना न होगा। अतः हम जगदीश्वर से प्रार्थना करते हैं कि आपको पूर्ण स्वस्थ-शतायु करे।

अन्त में हम पुनरपि अपने देश, राष्ट्र और समाज के महत्तम विद्या-वयोवृद्ध श्रद्धेय श्रीभगवान्दास जी को, उनके दीर्घकालीन जीवन की पादोनशताब्दिक जयन्तीपर सोल्लास शतशः श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

# भारत का दुर्भाग्य

स्थानीय साप्ताहिक विचार-पत्र "सिद्धान्त" के ता० १६ जनवरी, १६४३ वाले अङ्क (वर्ष ३—अङ्क ३६) में।

## "भले घरों में वेश्यालय"

इस शीर्षक से एक सम्पादकीय टिप्पणी प्रकाशित हुई है, जो इस प्रकार है—

"कलकत्ते से निकलनेवाली ईसाई पत्रिका 'डायोसेशन मेगाज़ीन' से ज्ञात होता है कि वहां गोरी फ़ौज के लिए वेश्यालय बनानेके लिए भले आदमियों के घर खाली कराये जा रहे हैं। मकानवालों के विरोध की कोई सुनवाई नहीं होती है। 'वृद्ध स्त्रियों के अस्पताल' तथा 'सेण्टमैरीज होम' (सन्त मैरी गृह) के पास की इमारत वेश्याओं की डाक्टरी परीक्षा करने के लिए रखी जा रही है।

इस पर पत्रिका पूछती है कि जब सेना विलायत में रहती है, तब क्या वहाँ भी ऐसी कार्रवाई होती है?

मद्रास का ईसाई साप्ताहिक 'गार्जियन' इस पर विगड़ कर लिखता है कि यह सब उन हिन्दू-मुसलमानों के सामने हो रहा है जिन्हें हम ईसाई बनाने का प्रयत्न करते हैं! बहुत लोग तो यही समझेंगे कि यही ईसाई सदाचार है। तमाशा तो यह है कि सैनिक अधिकारियों को इसका पता ही नहीं है। ईसाई संस्थाओंसे पत्र अनुरोध करता है कि इसका ऐसा प्रतिवाद करना चाहिये कि लोगों की आँखें खुल जायँ।

'माडर्नरेव्यू' ने अपने गताङ्क में इस ओर ध्यान आकर्षित करते हुए ठीक ही लिखा है कि इस 'निन्दित कृत्य' का, हम सबको, विरोध करना चाहिये।

यह कोई नयी बात नहीं है; पहले 'छावनी कानून' के अनुसार सरकार को गोरी फ़ौज के लिए वेश्याओं का प्रबन्ध करना पड़ता था। कहा जाता है कि इसके लिए सरकार को २००० से अधिक वेश्याएँ रखनी पड़ती थीं। कांग्रेस ने आरम्भ में मद्यपान तथा वेश्याओं के सम्बन्ध में सरकारी नीतिका बड़ा विरोध किया था। सन् १८६४ में कांग्रेस के दसवें अधिवेशन के सभापति श्री वेबने दोनों बुराइयों को 'पाश्चात्य सभ्यता की देन' बतलाया था और सरकार की कटु शब्दों में निन्दा की थी। अन्ततः यह घृणित 'छावनी कानून' रद्द हुआ; परन्तु गोरे सैनिकों की कामवासना तृप्ति की चिन्ता सरकार को बराबर बनी रही और अप्रत्यक्षरूप से इसका प्रबन्ध होता रहा।

अब युद्ध के दिनों में यह प्रत्यक्ष हो रहा है। इसका आचरण पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इसकी कोई पर्वाह नहीं है। शारीरिक स्वास्थ्य भी इससे चौपट होता है। सेनाके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सन् १६४० की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उससे पता लगता है कि एक हज़ार पीछे ५८/१ सिपाहियों में जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग पाये जाते हैं। भारतीय सैनिकों से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि उनका औसत १८/९ है। इस तरह एक भारतीय पीछे तीन गोरे सैनिकों का औसत पड़ता है। पिछली रिपोर्टोंसे पता लगता है कि सेना में इन रोगों की बराबर वृद्धि हो रही है। इनमें से 'सिफलिस' (गरमी) का प्रसार भारत में तो पाश्चात्यों के सम्पर्क से ही हुआ। कहा जाता है कि यह 'भेंट' उसे पहले पुर्तगालियों से मिली। उन दिनों यहाँ भी सभी यूरोपवालों को 'फिरङ्गी' कहा जाता था; इसीलिए यह रोग अब भी 'फिरङ्ग' के नाम से प्रसिद्ध है।

अपने यहाँ 'वीरता' और ब्रह्मचर्य आवश्यक

समझा जाता है ; पर पाश्चात्य मनोविज्ञान उसको स्वास्थ्य के लिए हानिकर मानता है। आचरणभ्रष्ट करने के लिए जो प्रलोभन उपस्थित किये जा रहे हैं ; उनसे भारतीय सैनिक ही कबतक बच सकेंगे ?"

इस पर और टीका-टिप्पणी करना अनावश्यक है; क्योंकि सांस्कृतिकरूप से 'पञ्च-मकार-परायण' सफेद कौम के काले वामाचरण, स्वरूपत: लोकप्रसिद्ध हैं सिर्फ महासभ्यम्मन्य अमेरिकन परमार्य-कन्या श्रीमती 'मिस' (स्यात् आजीव न कुमार-ब्रह्मचारिणी ?) 'मेयो' देवीसे कहना चाहिये कि, वह लोकोत्तर-सभ्यतासमृद्धिशाली अमेरिका के सुवर्णाक्षरों में, इन अपने समानशील-व्यसन, समरूप-रङ्ग, सफेद भाई-बन्दों के काले कारनामों की रिपोर्ट भी लिख डालें, क्योंकि 'मदर-इण्डिया' में हिन्दुस्तानी नाबदान के उद्घाटन से, उनका इस विषय का अभ्यास पूरा मँजा है।

# महात्मा का सार्वभौम महाव्रत

## "तपो नाऽनशनात्परम्"

ईशविभूतिभूत, सत्य-धर्मावतार, अहिंसा-प्रतिरूप, अजातशत्रु, सर्वभूतहितेरत, सन्मानवधर्मप्रवर्त्तकाचार्य महर्षिप्रवर महात्मा गान्धी, ब्रिटिश-राजदण्ड का शिकार हो, महीनों से किसी किले में बन्द हैं।

अब अकस्मात्, एकाएक, अचानक, उनके त्रैसप्ताहिक ( २१ दिन के ) अनशन महाव्रत का समाचार, विश्व में फैल गया है। ता० १० फरवरी १९४३ ई० को, दोपहर से कुछ पहले उन्होंने अनशन आरम्भ भी कर दिया है। इसके उद्घोष से सारा विश्व स्तब्ध, विक्षुब्ध, आश्चर्यचकित और अतिमात्र चिन्तित हो उठा है। महात्माजी की अतिवृद्धावस्था और शारीरिक दुर्बलता का ख़याल कर सभी सज्जनों का हृदय दहल पड़ा है। विश्वमानव-समाज—विशेषत: भारतवर्ष ऐसे पराधीन, पददलित, सर्वतोमुख-पतित और सर्व पथीन विपदाक्रान्त देश—के लिये महात्माजी का पवित्र जीवन कितना आवश्यक है ; यह सर्वविदित है। नीच स्वार्थभाव से उन्मत्त-प्रमत्त हुए अतितृष्ण बलवत्तर राष्ट्र, क़ौम और वर्ग, जब कि दुर्बल लोगों को वध-बन्ध-निरोध द्वारा, लूट-मार कर खाये जा रहे हैं, और सारे संसार में घोर नृशंस हिंसामय 'मात्स्य-न्याय' को फैलाये हुए हैं, तब महात्मा गान्धी ऐसे विश्वशान्तिसंस्थापक, समात्मभावप्रवर्त्तक, अहिंसा-सन्देशक अध्यात्मशक्तिसम्पन्न देवदूत की कितनी आवश्यकता है ; यह किसी भी सर्वप्राणि-हितैषी, सर्व-लोकशुभेच्छु और समस्त मानव सुखस्वातन्त्र्य के प्रेमी सज्जन को बतलाना नहीं होगा। इस खूंखार जगत में, जिस में आदमी को भी लूट-मार कर आदमी खा जाता है, भगवान् पार्श्वनाथ, भगवान् बुद्ध, महापुरुष सुकरात, महाप्रभु ईसा, परम कारुणिक टालसटाय आदि कतिपय ही सज्ज्ञान ( सयाने ) आर्य महर्षि हुए हैं, जिनमें एक संख्या महात्मा गान्धी की है। यदि ऐसे विश्वशान्तिवाहक अहिंसक देवदूत का, वर्त्तमान अनशन के कारण, कुछ भी अनभल हुआ, तो हतभाग्य भारत की डग-मग नैया तो मँझधार में डूब ही जायगी ; पर, सारे संसार की शान्ति-नौका किस भीषण गर्त में जा गिरेगी ; यह समझना कठिन नहीं है। इस हिंस्र जगत् में दूसरा ऐसा सयाना नाविक नहीं दिखाई पड़ता है, जो क्रूरकर्मा राष्ट्रों द्वारा उत्खात परस्पर भक्षक मात्स्यन्यायी प्रवृत्तिमय उत्तुङ्ग-विपत्समुद्र-तरङ्ग धारा से बाहर निकाल सकेगा। विश्वनियन्ता जगदन्तरात्मा परमात्मा, महात्मा गान्धी के इस महाव्रत में भी लोक-कल्याणकी खातिर सजीव सिद्धि प्रदान करे ; यही हमारी अभ्यर्थना है।

# त्याग करो

ऐ भोले मानव ! पहले तूं लेने ही लेनेके आनन्दको अनुभव करता रहा है, अब कुछ थोड़ा त्याग करके भी देख, त्यागका कितना उच्च आनन्द है। त्यागका अर्थ है अपनी प्रकृतिके स्वार्थमय अंशको प्रेमके प्रकाशसे पिघला दो, मैं, मैं छोड़कर तू को भी मिलाओ। मानवीय हृदयकी कोमल भावनाओंके विकासकी सबसे प्रथम सीढ़ी त्याग है।

त्यागका आनन्द जानना चाहते हो तो उस स्नेहमयी मांके पास जाओ जो सारी रात स्वयं गीले विस्तरे पर काट देती है, परन्तु अपने बच्चेको सूखे बिस्तरे पर सुलाती है। त्यागका आनन्द उस देशभक्तसे पूछो जो अपने देशकी खातिर हँसते-हँसते फांसीके फन्दे पर झूल जाता है।

सच्चे त्यागकी एक ही पहिचान है, उसमें आत्माका कमल खिल उठता है—अवर्णनीय आनन्दकी अनुभूति होती है। सच्चा त्यागी कभी खीझ प्रकट नहीं करता।

वेद कहता है—"शतहस्तं समाहर, सहस्रहस्तं संकिर"। सौ हाथोंसे इकट्ठा कर और हजार हाथोंसे दे। दान ही हाथका सच्चा भूषण है, कङ्कन नहीं।

दान, भोग और नाश—तीन ही धनकी गतियाँ होती हैं, जो आदमी न दान करता है, न उसका भोग करता है, उसकी तीसरी गति अर्थात् नाश निश्चित है। ऐश्वर्यका सच्चा उपयोग यही है कि दान दो और भोग करो।

—लहरी

# स्व० रायसाहब चांदमलजी जिन्दानी

लेo—श्री पं० दामोदरजी शर्मा चतुर्वेदी

इस संसारमें अनेक उच्च आत्माओंको संस्कारवश उत्तम कुलमें जन्म लेना पड़ता है; किन्तु वे अपने पूर्व जन्मके अधूरे कार्यको समाप्त करते हो अपने पुण्यमय जीवनसे मुक्त हो तत्काल दिव्यलोकको प्रस्थान कर जाते हैं। इस प्रकार जहां वे अपनी कीर्तिगाथा और आदर्श जीवनको पीछे वालोंके लिये छोड़ जाते हैं; वहीं वे इस उक्तिको भी चरितार्थ कर जाते हैं कि "जाकी यहां चाहना है, ताकी वहां चाहना।" आज हम जिन उच्चात्माका परिचय देने जा रहे हैं वे भी इसी कोटिके पुरुष थे। लौकिक व्यवहार में बाबू चांदमलजीके नामसे पहचाने जाते थे। उनका जन्म टौंक (राजपुताना) के एक प्रतिष्ठित ओसवाल कुल 'जिन्दानी' घराने में श्रावण शुक्ला ७ शुक्रवार संवत् १९६४ वि० को हुआ था।



स्व० रायसाहब चांदमलजी जिन्दानी

आपके स्वर्गीय पिता रायसाहब बाबू गंभीरमलजी टौंकके नवाब साहबके प्राइवेट सेक्रेटरी थे। राज्यमें आपका बड़ा सम्मान था। दरबारके आप अत्यन्त विश्वासपात्र एवं प्रत्येक राजनीतिक कार्यमें सच्चे सलाहकार थे। आपकी योग्यतासे दरबार बहुत प्रसन्न थे और आपके प्रति इतना स्नेहभाव रखते थे कि आपके देहान्तपर नवाब साहबने तत्काल ही आपके नवयुवा पुत्र बाबू चांदमलजीको, जो कि केवल १७ वर्ष के थे, और उसी वर्ष मेट्रिक परीक्षामें उत्तीर्ण हुए थे, उस पदपर नियुक्त कर दिया।

बाबूजीने भी अपने नवयुवकोचित उत्साह के साथ इस राजनैतिक कार्यभार को स्वीकार कर पूर्णरूप से अपना उत्तरदायित्व निभाया। उसी दिन से लेकर अन्त समयतक आपकी सेवाओं से राजा और प्रजा दोनों ही सन्तुष्ट रहे। यही कारण है कि आज उनके वियोग में सब लोग आहें भर रहे हैं।

बाबू चांदमलजी सच्चे कर्मयोगी नवयुवक थे; यही कारण है कि इतने उत्तरदायित्वका कार्य सिरपर रहते हुए भी उन्होंने अपनी शिक्षा स्थगित नहीं की, वैसे भी आप स्कूलमें पढ़ते समय विद्यार्थी जीवनमें प्रायः प्रत्येक श्रेणीमें प्रथम ही उत्तीर्ण होते रहे; किन्तु प्राइवेट सेक्रेटरी बन जानेके बाद भी आपने इण्टर

मिडियट एवं बी० ए० की परीक्षाएँ सेकण्ड डिविजन ( दूसरे दर्जे ) में प्राइवेट अभ्यास करके पास कर लीं। साथ ही उर्दू-फारसीका भी यथेष्ट ज्ञान सम्पादन कर लिया था। क्या ऐसा कोई अन्य उदाहरण है ?

इस प्रकार योग्यता सम्पादन करते हुए बाबू साहब ने अपना कार्य इस कुशलतासे संचालन किया कि नवाब साहबने प्रसन्न होकर सन् १९३५ ई०में आपको जागीर प्रदान की और 'अमीरुल् इंशा' एतयाहुल्मुल्क तथा एतबारेजंग, के खिताबोंसे आपको सम्मानित किया। इसके बाद सन् १९३७ ई० में भारत सरकारने भी "रायसाहब" की उपाधि प्रदान कर आपकी कार्य-कुशलताका सम्मान किया।

स्वर्गीय राय साहबका धार्मिक और सामाजिक जीवन भी आदर्श था। आप समय समयपर सैकड़ों रुपयोंका गुप्तदान करने तथा अनेक दूर दूरकी दुखी आत्माओंको सन्तुष्ट करके धैर्य बंधानेवाले सच्चे दीनबन्धु थे। कई अनाथ विधवाओं तथा असहाय विद्यार्थियोंके तो आप ही जीवनाधार थे। गत जून मासमें आपने अपनी पूज्य मातेश्वरीके देहावसानपर 'मोसर' ( नुक्ता ) रूपी कुप्रथाकी उपेक्षा करके नक्द १०००) एक हजार रुपये धार्मिक एवं सामाजिक कार्योंके लिये प्रदान करते हुए अपनी समाजसुधारकताका परिचय दिया था।

इधर पिछले पाँच-सात वर्षोंसे बढ़ती हुई आध्यात्मिक अभिरुचिने तो आपको सांसारिक वासनाओंसे मुक्त कर दिया था। श्रीभगवद्गीतापर आपकी विशेष श्रद्धा थी। इस अवधिमें आपने गीता प्रेस (गोरखपुर) तथा स्वामी शिवानन्दजी सरस्वतीका साहित्य तो पढ़ा ही; इसीके साथ-साथ स्वामी विवेकानन्दजी एवं स्वामी रामतीर्थजीके ज्ञानगंभीर एवं उत्साहवर्धक साहित्यका मनन और अनुशीलन करके गीतामें वर्णित 'स्थितप्रज्ञ' कर्मयोगीके जीवनको अपना आदर्श बना लिया था।

आपकी दिनचर्या भी योगियोंके समान थी और वह अन्तिम श्वास लेनेतक बनी रही। यद्यपि आप जैन धर्मावलम्बी थे; किन्तु फिर भी संसारके सब धर्मोंका आपने आदर-पूर्वक अध्ययन किया था। आपका प्रेम विश्वजनीन था; और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आप पूरे अनुयायी थे। आपने टौंक-राज्यके शिक्षा-विभागमें अपनी उच्च एवं उदार विचार-सरणीके अनुसार पक्षपात एवं आक्षेप आदिसे रहित धार्मिक-शिक्षा प्रचलित करनेकी योजना बनाई थी, परन्तु दुर्भाग्यवश उसकी पूर्तिके पहले ही आप चल बसे।

"प्रभुता पाय काहि मद नाहीं" की उक्ति को तो आपने अपने व्यवहार द्वारा मिथ्या सिद्ध कर दिया था। अर्थात् सब प्रकारका वैभव होते हुए भी आप सदैव नम्र, हँसमुख एवं निरभिमान रहे। आप सबसे सरलतापूर्वक मिलते थे और उस समय प्रत्येक मनुष्य अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव करता था। आपका सामाजिक प्रेम एवं अतिथि सेवाका भाव अनुकरणीय था, बाहरसे आए हुए बन्धुओंका स्वागत करनेमें सदैव अग्रगण्य रहते थे। मानव मात्रके प्रति प्रेम हार्दिक सहानुभूति एवं उदारता आपके मुख्य गुण थे। नम्रता की तो आप साक्षात मूर्ति ही थे। आपका धार्मिक जीवन विशेष उल्लेखनीय रहा। अपने ( जैन ) धर्मपर आपको अटल श्रद्धा थी। आप जैन धर्मके बारह व्रत और चौदह नियमोंका पालन करते हुए श्रीजिनेन्द्र भगवानके पूर्ण भक्त थे। नोकारसी और पञ्चमहाव्रतों का आप चौबीस वर्षोंसे पालन कर रहे थे। आपने अपनी दैनिक चर्यामें इन नियमोंके पालनके लिए आध्यात्मिक चार्ट और नोटबुक भी बना रक्खी थी। आप जैन शास्त्रोंके पारंगत एवं संस्कृतके भी विद्वान थे। आपका महामंत्र 'ॐ अर्हं नमः' था, और इसका

मानसिक जाप अन्तिम समयतक अखण्ड चलता रहा। फलतः इस मानसिक जापके प्रतापसे ही आपकी आत्मा इतनी निर्मल हो गई थी कि सात दिन पूर्व ( ता० २०-९-४२ को ) ही (आपने) अपने लघुभ्राता श्री फतेहमलजीको अन्तिम समयकी सूचना दे दी थी। साथ ही अपने विश्वासी नौकरको अपनी मृत्युका समय बतलाकर शुद्ध वस्त्र पहनाने एवं पूजनकी सामग्री पासमें लाकर रखनेकी गुप्तरूपसे आज्ञा दे दी थी; किन्तु अपने कृपालु स्वामीके वियोगकी कल्पनासे उस सेवकने यह भेद अपने स्नेहाश्रुकी धारा बहाकर प्रकट कर दिया! इस भेदके प्रकट हो जानेसे आपकी आस्थाको गहरा धक्का लगा और इसके प्रायश्चित्तरूप आपने शारीरिक कष्टको चुपचाप सहना स्वीकार कर लिया।

आपको कोई विशेष रोग भी नहीं था। साधारण-ज्वरकी डाक्टरी एवं यूनानी चिकित्सा भी मनोयोग पूर्वक की गई। किन्तु आपने तो स्पष्टरूपसे इसके पहले ही कह दिया था कि "अब इस आत्माको कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती।" इतने पर भी लौकिक व्यवहार एवं घरवालोंके आग्रहसे आप औषध सेवन करते रहे। इसी अवसरपर आपसे पूछा गया कि "आपने अबतक किसीको अपना गुरू क्यों नहीं बनाया?" तो आपने तत्काल उत्तर दिया कि "मैंने श्री १०८ श्री कुशल गुरुदेवको अराध्य बना लिया है और उनका मुझे साक्षात्कार ही नहीं हुआ, वरन् वे इस समय भी मेरे समीप हैं और मेरे शरीरका पसीना पोंछ चुके हैं। अब मैं सांसारिक ही नहीं सब प्रकारका मोह त्याग चुका हूं।

अन्तिम समयसे कुछ पहले आपने इस प्रकार प्रार्थनाका पाठ किया था :—

"मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमः प्रभुः।
मंगलं स्थूलभद्राद्याः जैन धर्मोस्तु मंगलम्॥
क्षमेहं सर्वान्वैजीवान्, ते च क्षाम्यन्तु मां सदा।
मैत्रीस्यात् सर्वभूतेषु, न मे द्वेषोऽस्ति केनचित्॥

इस प्रार्थनाके समय घरका वातावरण पूर्ण शांतिमय था। वहां एक दिव्य प्रकाश व्याप्त हो रहा था। सब लोग एक अलौकिक आनन्दका अनुभव कर रहे थे। आवाल वृद्ध एवं स्त्रियां भी उस समय प्रार्थनामें मग्न थीं। पासहीके कमरेमें श्रीगौड़ी पार्श्वनाथ भगवानका स्तवन हो रहा था। यद्यपि उस कमरेकी आवाज बाबूजीके कमरेतक नहीं पहुंच रही थी; किन्तु फिर भी आपके मुँहसे 'श्री पार्श्वनाथ भगवानकी जय' का उच्चार हो रहा था। जब कि अन्त समय बड़े बड़े महात्मा कहलानेवालोंको भी ईश्वरके स्मरणसे वंचित हो जाते देखा गया है, आप निरन्तर भगवानका नाम स्मरण करनेमें ही तल्लीन रहे। इस प्रकार अखण्ड नाम स्मरण करते हुए यह महान् आत्मा २७ सितम्बर १९४२ की रात्रिको ६-३५ बजे केवल ३५ वर्षकी आयुमें ही इस दुःखमय आसार संसारको छोड़कर परम पिता जगदीश्वरके चरणोंमें लीन हो गई। सारे परिवारके साथ ही राजा-प्रजा सब बिलखते रह गये! हाहन्त! परमात्मा उस आत्माको चिरशांति प्रदान करे।

आपकी लोक-प्रियता एवं राजनिष्ठाके प्रति सम्मान प्रकट करते हुए टौंक-राज्यकी 'स्टेट कौंसिल' ने शोक प्रस्ताव पास करते हुए लिखा है कि "आप खामोशीसे काम करनेवाले और 'तेरी-मेरी' से अलग रहनेवाले कार्यकर्त्ता थे।" इसी प्रकार राज्यके प्रधान कवि ( शायर ) ने भी बड़ी खूबीसे कहा है—

'हर शरसे अलग हर सैरमें शरीक।' इत्यादि

इसी प्रकार आपके इष्टमित्रोंके समवेदना सूचना-पत्रोंमें कल्पवृक्ष-सम्पादक आदरणीय डा० दुर्गाशङ्करजी नागरकी सान्त्वना विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने लिखा है—"रायसाहब पवित्र और उच्च आत्मा थे। वे तो देवलोकके निवासी हो गये। जिसकी यहां चाह

होती है, उसकी वहां भी चाह होती है। उनकी तो सद्‌गति हो गई। वे जीतेजी जीवन्मुक्त हो चुके थे।

ऐसी महानात्माके वियोगसे हमारे समाजको जो क्षति पहुंची है, उसकी पूर्ति निकट भविष्यमें हो सकना असम्भव ही प्रतीत होता है। हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि वह दिव्यात्माके वियोग संतप्त परिवारको शांति एवं शोक सहनेकी शक्ति प्रदान करे।

सृजति तावदशेषगुणाकरं, पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चेदहह कष्टमपंडितता विधेः॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः !!!

# स्वादिष्ट भोजन

रचयिता—प्र० स्वा० धर्मदेव विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा देहली

( १ )

काल कैसे बीतता है ध्यान में मैं क्या कहूं,
ध्यान में भगवान के हर आन मैं तत्पर रहूं।
शान्ति सुखकी दायिनी, मङ्गलमयीकी गोद है,
बैठ उसमें भक्त सुत, पाता सदा आमोद है॥

( २ )

कुछ नहीं मालूम होता, काल कितना जा रहा,
बीत घण्टे जांय तो भी, है मज़ा ही आ रहा।
बस यही तो शान्तिका आनन्दका सन्मार्ग है,
नित्य सुखकी प्राप्तिका, नहिं और कोई मार्ग है।

( ३ )

कौन कहता है समय यह, व्यर्थ इतना खो रहे।
क्या पड़ा इस ध्यानमें जो, मग्न इतना हो रहे।
सत्य कहता हू यही, मेरा परम विश्राम है,
है यही स्वादिष्ट भोजन, देत बल आराम है॥

( ४ )

मैं बिना इसके नहीं, आराम कुछ भी पा सकूं,
शान्ति सुख आनन्दके मैं, धामको नहिं पा सकूं।
और सारे काम पीछे, प्रथम यह मेरे लिये,
मैं बिना इसके न जीऊं, प्राण यह मेरे लिये॥

( ५ )

तृप्त होवोगे नहीं; आसक्त हो दिनरात तुम।
लूट लो लौकिक सुखोंको, मग्न हो दिनरात तुम,
भक्ति अमृत किन्तु शाश्वत, शान्ति दे सकता हमें,
यह परम आनन्द सुखनित, तृप्ति दे सकता हमें॥

( ६ )

लो चखो इसका मज़ा जो, शान्ति सुखको चाहते।
यह नशा सेवन करो जो, मस्त होना चाहते।
सब नशे हैं हानिकारक, बुद्धि बलके नाशकर,
यह नशा है शक्तिवर्धक, बुद्धिको करता प्रखर॥

( ७ )

भक्ति अमृत पान करके, भक्त होते बेफिकर,
आंधियां तूफान कितने भी चलें उनको न डर।
मस्त वे दिन रात रहते, मातके गुणगान में,
कर रहें शुभ काम में पर, मन न रहे भगवान में॥

( ८ )

शान्तिका आनन्दका, भण्डार उनके साथ जब।
सर्वशक्ति निधान वह, भगवान उनके साथ जब।
फिर उन्हें चिन्ता सतावे, किस तरह कोई यहां,
देखते सबमें उसे वे, जो बनाता सब जहां॥

# पथिक

लेखक—महावीर प्रसाद विद्यार्थी, टेढ़ा उन्नाव

(१)

तिरभ्र आकाशमें सूर्य्य अपने प्रखर रश्मि-जालसे अग्नि बरसा रहा था। पथिक जा रहा था, किसी चिन्तामें निमग्न; आँखोंमें दृढ़ताकी ज्योति थी, उसका मुखमण्डल एक दिव्य दीप्तिसे देदीप्यमान था।

अकस्मात् उसकी आँखें सजल हो आईं। दो आँसू टपक कर उच्छ्वासोंमें न जाने कहाँ विलीन हो गए। विषादकी छायासे उसका मुँह म्लान हो गया।

उसने न जाना, कब कैसे, किधरसे घटाएँ घिर आईं। बादल गरजने लगे, बिजली तड़पने लगी। पर वह उसी वेगसे जा रहा था।

एकाएक बिजली कड़की, वह चौंक पड़ा। सामने पेड़ था। सोचा, लाओ दम ले लें। देह पसीनेसे तर थी पांवोंमें फफोले पड़-पड़कर फूट गए थे, काँटे गड़-गड़कर टूट गए थे—आह! पर उसने 'आह' तक न की।

उससे न बैठा गया। एक ठंढी साँस खींची और फिर चल पड़ा।

न जाने क्यों, वह खिन्न था। इधर रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा था, उधर उसकी आँखोंसे आँसू। पर वह जा रहा था। उसकी गतिमें वही दृढ़ता थी, मुख-मण्डलपर उस विषादके घने आवरणमें अब भी वही आशा और उत्साहकी आभा थी, हृदयमें वही उल्लास था, जो उस समय था, जिस समय वह निकल पड़ा था और चल पड़ा था अपने निश्चित मार्गपर संसारके विलासको तिलाञ्जलि देकर।

(२)

प्रतीक्षा कर रहे थे हृदयमें चिर-पोषित आकांक्षा लिए हुए—वे श्वेत अभ्रंलिहाग्र गिरिवर। हिमरेवी रजतांचल लिए अनिमेष देख रही थी, न जाने कबसे। गर्त उतावले हो रहे थे उसके रूपकी एक झलक केवल एक झलक पानेके लिए।

पथपर खड़ी थी पेड़ोंकी पंक्तियां, उपहार देनेके लिए फूलोंका हार लिए हुए। बन्दनवारोंके अंग-अंगसे उन्माद छलक रहा था। कण्टकाकीर्ण लता कुंजोंने पलक-पाँवड़े बिछाए थे। वे आकुल हो रहे थे उसके पद-रज-स्पर्शके लिए।

नदियाँ उद्विग्न थीं, आनन्दातिरेकसे। जल उमड़ रहा था, उसको आता हुआ देखनेके लिये। वह उतारू था उसे हृदयमें भर लेनेके लिए।

(३)

मूसलधार वर्षा हो रही थी। आभाके अञ्चलमें अन्धकार अट्टहास कर रहा था। वह—अब भी जा रहा था!

अकस्मात् वह ठहर गया। खड़ा कुछ सोचता रहा। कठिन समस्या थी। परीक्षाका समय था। पर उसकी लगन सच्ची थी। वह हँस पड़ा अपनी निर्बलताओंपर और चल पड़ा।

(४)

विमल वायुकी लहरियोंने उसका मार्ग बुहारा। विहंगोंने अपने सुरीले गीतोंसे अभिनन्दन किया। वृक्षोंने उसपर फूल बरसाए। हिंसक पशु उसके सामने नतमस्तक हो गए।

(५)

चाँद और सूर्य आते हैं, उसकी आरती उतारनेके लिए। निशा-नायिका तारोंके दीप जलाती है, उसके स्वागतमें सरिता कल-कल करती हुई मधुर रागिनीसे रिझाती है। झर-झरके स्वरमें निर्झर उसकी स्तुति करता है।

# विश्व-वृक्षके मूल की खोज

## आयुर्वेदिक सिद्धान्तों की उत्कृष्टता

लेखक—कविराज श्री पुरुषोत्तमदेव आयुर्वेदालङ्कार अध्यक्ष आयुर्वेदिक औषधालय मुलतान छावनी

इस लेखके लेखक श्रीयुत कविराज पुरुषोत्तमदेव आयुर्वेदालङ्कार गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी हरिद्वारके सुयोग्य स्नातक एवं मुलतानके प्रतिष्ठित, ख्यातनामा, लोक-सेवाके सार्वजनिक कार्योंमें दिलचस्पी लेनेवाले तरुण चिकित्सक हैं। आपने २५ वर्षकी स्वल्पायुमें ही एलोपैथी और आयुर्वेदके तुलनात्मक, गवेषणापूर्ण विस्तृत अध्ययन द्वारा आयुर्वेदिक संसारमें महती ख्याति उपलब्ध की है। जहां भगवान्ने आपकी लेखनीमें अमित ओज प्रदान किया है, वहां आप सिद्धहस्त, कुशलवक्ता भी हैं। आप बहुत ही खुशमिजाज, हँसमुख और मिलनसार व्यक्ति हैं। आपने अपने इस लेखमें प्रबल युक्तियों और तर्कों के आधारपर आयुर्वेदिक सिद्धान्तोंकी उत्कृष्टता, उपादेयताका प्रतिपादन सुचारुरूपेण किया है।

—संपादक

### शरीरके मूल तत्त्व

भारतीय विद्वानोंने मूल तत्त्वोंका निर्णय 'दर्शन' के द्वारा किया था। 'दर्शनं दृष्टिः' इस लक्षणसे प्रतीत होता है कि दर्शन वह दृष्टि है जिससे वस्तु तत्त्वका या सत्यका निर्णय होता है। प्रत्यक्ष, अनुमान, और शब्द यह तीन प्रमाण इस दृष्टि के साधन हैं। इन तीनोंमें भी अनुमानको तत्त्वज्ञानका सर्वोत्कृष्ट कारण माना जाता है। सहस्रों घटनाओंको देखकर अन्वय, व्यतिरेक, और व्याप्तिके द्वारा सत्यका निर्णय करना ही अनुमान कहाता है। अर्थात् अनेक घटनाओंकी परीक्षा करनेसे जो बात सत्य प्रतीत होती है वह सिद्धान्त मान लिया जाता है। इसे हम चिर निरीक्षण (Long continued Olsernation) भी कह सकते हैं। प्राचीन भारतवर्षमें इसी चिर निरीक्षणकी पद्धतिके द्वारा ही मूल तत्त्वोंका निरूपण किया गया था।

इस प्रकार दर्शन या चिर निरीक्षणसे इन प्राचीन विद्वानोंने सम्पन्न विचार दृष्टिके द्वारा यह निश्चय किया था कि इस प्राकृतिक जगत्का मूल कारण त्रिगुणात्मक है। समस्त प्रकाश और प्रमादसूचक भावोंका मूल कारण सत्त्वगुण, गतिसूचक भावोंका मूल कारण रजोगुण और स्थितिसूचक भावोंका मूल कारण तमोगुण है। उन्होंने जगत्के सर्वभावोंको इन्हीं तीनों गुणोंका परिणाम कहा है। इसी प्रकार शरीर सम्बन्धी समस्त घटनाओंको भली प्रकार जांचकर अपनी विचार दृष्टिके आधारपर उन्होंने यह सिद्धान्त निर्णीत किया कि शरीरके अन्दर होनेवाले सर्वभाव तीन भौतिक मूलतत्त्वोंका ही परिणाम हैं।

शारीरिक अवयवोंमें होनेवाली गतिका कारण वात है, पचनका कारण पित्त है और वृद्धिका कारण कफ है। शरीरकी गति या दूसरे शब्दोंमें कहा जाय कि शक्ति अथवा बलमें वैषम्य सूचित करनेवाले लक्षण दृष्टिगोचर हों तो वातके प्रकोप; शरीरके अवयवोंमें कहीं पाचन शक्तिके वैषम्यसूचक लक्षण प्रतीत हों तो पित्तप्रकोप, तथा यदि शरीरकी धातुओं या उनके किसी अवयवमें वृद्धि सम्बन्धी वैषम्य उपलब्ध हो तो कफ प्रकोपका निश्चय करना चाहिए।

भिन्न भिन्न सर्व द्रव्योंका शरीरकी भिन्न-भिन्न धातुओंपर क्या प्रभाव होता है इसका भी चिरकाल तक अनुशीलन करके उन्होंने यह निश्चय किया कि

जो द्रव्य धातुओंमें उष्ण अर्थात् उत्तेजक या उद्दीपक गुण दिखाते हैं तथा गुरुता, स्निग्धता, स्थूलता, स्थिरता आदि क्षयसूचक लक्षणोंको उत्पन्न करते हैं, वे वात प्रकोप शामक होते हैं। जिन द्रव्योंको उन्होंने धातुओं के अवयवोंमें होनेवाले पचन, दहन, स्वेदन आदिका शान्त करनेवाला एवं शीतगुण पाया और उत्तेजकके विपरीत शामक गुणवाला पाया, उसे उन्होंने पित्तप्रकोप शामक स्वीकार किया। इसी प्रकार जिन द्रव्योंके देने या जिन विधियोंके उपयोगसे शरीरमें बढ़े हुए गौरव, स्नेह, उपचय, शैत्य, (अर्थात् दहन, पचन, आदिकी न्यूनता) आदि वृद्धिसूचक लक्षण शान्त होते हुए पाए गए, उनको उन्होंने कफ प्रकोप शामक कहा। मनुष्योंके शरीरों तथा मानसिक अवस्थाओंमें और अन्यान्य प्राणियोंके स्वभावोंमें जो जन्मसिद्ध सहज वैषम्य पाया जाता है उसका कारण भी उन्होंने वात पित्त और कफका सहज वैषम्य बताया। इन शरीरके मूल तत्त्वोंके सहज अथवा अस्वाभाविक सम्मिश्रणोंसे ही मनुष्योंके शरीरों और स्वभावोंमें नाना प्रकारकी विभिन्नता आ गई है।

### सर्व समस्याओंका हल

प्राचीन भारतीय विद्वानोंके सत्त्व, रजस् और तमस् इस त्रिगुणात्मक सिद्धान्त तथा वात, पित्त, कफ के विशेष सिद्धान्तसे शरीरशास्त्र-सम्बन्धी सहस्रों उलझने सुलझ जाती हैं। इस एक ही सिद्धान्तका अनुसरण करनेसे शरीरकी प्राकृतिक और वैकृतिक प्रक्रियाओंकी व्याख्या करने तथा भोज्य द्रव्यों और औषधियोंके द्वारा उन विकृतियोंको शान्त करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। जो सिद्धान्त इस प्रकार क्रियात्मक होनेसे रोगविज्ञानमें इतना सहायक हो उसे क्यों न सत्य सिद्धान्त माना जावे।

पाश्चात्य चिकित्सकोंने आजतक हमें कोई ऐसा मौलिक सिद्धान्त नहीं बताया जिससे कि हमारी शरीर शास्त्र सम्बन्धी सहस्रों उलझने सुलझ सकें, जितनी कि त्रिदोष-सिद्धान्त द्वारा सुलझ जाती हैं; इस लिए भी जबतक इससे अच्छा और कोई हल न निकल सके तबतक यदि हम शरीरशास्त्रके सम्बन्धमें उठने वाली समस्याओंको इसी सिद्धान्तसे सुलझाएँ तो इसमें कोई आपत्ति न होनी चाहिए।

### वेदोंमें शरीरके मूल तत्त्व

शरीरके मूल तत्त्वोंके सम्बन्धमें वेदका स्पष्ट मत न जानते हुए भी इतना कहा जा सकता है कि 'अग्नि' 'सोम' और 'वायु' इन तीन शब्दोंसे वेदमें शारीरिक मूल तत्त्वोंका निर्देश मात्र अवश्य है। अध्यात्मसम्बन्धी या शरीर सम्बन्धी मन्त्रोंमें आए हुए यह तीन शब्द शरीरस्थ अग्नि, सोम, और वायुका ही वर्णन करते प्रतीत होते हैं। ये तीन तत्त्व परस्पर मिलकर शरीरमें धातुवृद्धिके कार्य्यको संचालित करते हैं।

शारीरिक अग्नि प्राप्त हुए भोजन द्रव्योंको शरीरमें पचा लेती और उन्हें मलरूपमें परिवर्तित कर उनमेंसे प्रसादको ले लेती और मलको बाहिर कर देती है। इसलिए इसे 'होता' या हव्यवाहन' कहा है। अग्नितत्त्व के द्वारा ही शरीरके अवयव-अवयवमें पक्ति या पचनका कार्य संचालित हो रहा है। इस आग्नेय कार्यके साथ-साथ सोमतत्वका सौम्य कार्य या शरीरके संवर्धन और रक्षणका कार्य भी साथ साथ होता रहता है। वेदोंमें सोमको बलवर्धन, द्युम्नवर्धन, रयिवर्धन, आप्यायन करनेवाला, मधुमत्तम आदि कहा है। वेदोंमें स्थान-स्थानपर कहा है कि इन्द्र अर्थात् आत्मा शारीरिक सोमके द्वारा अपनी तृप्ति करता है। सोमको जल, अभ्र, आप आदि सब जलवाचक शब्दोंसे निर्दिष्ट किया गया है। इस प्रकार वेदमें अग्नि और सोम इन दो परस्पर विरुद्ध तत्त्वोंको शरीरके अवयवोंमें साथ-साथ मिलकर धातुवृद्धिके कार्यको सम्पादित करते हुए माना है। इन दोनोंके अतिरिक्त वेदमें प्राण, अपान,

समान, व्यान, उदानात्मा वायुको सर्वशरीरका नियामक और संचालक कहा गया है। इस प्रकार वेदोंमें अग्निको आग्नेय कर्म या पक्ति कर्म और सोमको सौम्य कर्म या वृद्धि कर्म और वायुको गति कर्म माना गया है। और इन तीनोंको सम्मिलित रूपमें शरीरका मूल तत्त्व स्वीकार किया गया है। अथर्ववेदमें लिखा है कि "या अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो पर्वतांश्च" इस मन्त्रमें तीन प्रकारके रोगोंका वर्णन है। एक अभ्रजा अर्थात् जलतत्वकी विकृति या वैषम्यसे होनेवाले, दूसरे वातजा जो वायुके वैषम्यसे उत्पन्न हों और तीसरे शुष्म अर्थात् अग्निके अधिक शोषक कर्मसे जो उत्पन्न हों। इस प्रकार इन्हीं तीनों तत्वोंकी विकृतिसे ही सब रोगोंकी उत्पत्ति स्वीकार की गई है।

पञ्चभूत सिद्धान्त

वैदिक कालके उपरान्त उपनिषत्-कालमें ऋषियोंने पञ्चमहाभूत सिद्धान्तका आविष्कार किया। इस सिद्धान्तका अभिप्राय यह है कि त्रिगुणात्मक प्रकृतिके विकासमें प्रथम आकाश नामक अति सूक्ष्म तत्त्व उत्पन्न होता है। नवीन वैज्ञानिक इसे ईथर या स्पेस कहते हैं। इस निष्क्रिय शान्त आकाशसे फिर गत्यात्मक तत्त्व उत्पन्न होता है। 'वा गतौ' धातुके अनुसार इस गत्यात्मक धातुको उन्होंने 'वायु' नाम दिया। गतिसे संघर्ष और संघर्षसे अग्नितत्व या तेजतत्व उत्पन्न होता है। फिर अग्निसे स्वभावतः द्रवतत्व उत्पन्न होता है। इस द्रवत्वको उन्होंने 'अप्तत्व' का नाम दिया है। द्रवत्वके पीछे संघातका गुण उत्पन्न होता है। इस संघातके गुणको ही उन्होंने पृथिवी' का नाम दिया है। (पृथिवी संघातकारिणी) इन्हीं पांच गुणों या अवकाश, गतितत्व, अग्नितत्व, द्रवत्व और संघातके सूक्ष्मतत्वोंसे उन्होंने सम्पूर्ण विश्वको बना बताया।

उपनिषत्-कालके पीछे चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेदके प्रवर्तक ऋषियोंने पञ्चभूत सिद्धान्तके आधारपर अपना 'त्रिदोष सिद्धान्त' स्थापित किया। शरीरनिष्ठ गत्यात्मक वायु तत्वको वात, आग्नेय कर्म अग्नितत्व को पित्त, द्रवगुणात्मक अप्तत्वको और संघातमक पृथ्वी तत्वको श्लेष्मा कहा। और यह सिद्धान्त स्थापित किया कि सर्वरोग इन्हीं तत्वोंकी न्यूनाधिकताके कारण उत्पन्न होते हैं। ये तीनों तत्व वेदोंके अग्नि, सोम और वायु तत्वोंके सदृश ही तीन तत्व प्रतीत होते हैं।

नवीन प्राचीनके सिद्धान्तोंमें विरोध या विभिन्नता ?

इन त्रिगुणात्मक प्रकृति पञ्चमहाभूत तथा त्रिदोष सम्बन्धी सिद्धान्तोंको देखकर तथा दूसरी ओर पश्चिमीय वैज्ञानिकोंके मूल तत्व सम्बन्धी सिद्धान्तोंका अध्ययन करके यह पता लगता है कि इनमें परस्पर बहुत विभिन्नता है; किन्तु इनमें परस्पर विरोध है, ऐसा प्रतीत नहीं होता। इस विभिन्नताका मुख्य कारण तो यह है कि दोनोंके जाननेकी प्रणाली, एक दूसरेसे भिन्न है। प्राचीन ऋषियोंकी प्रणाली जैसे कि पहले कहा जा चुका है, विचार दृष्टि द्वारा परिणाम निकालने की थी। वे सहस्रों घटनाओंको देखकर अनुमानसे परिणाम निकालते थे। इसे दर्शन या निरीक्षण की विधि कह सकते हैं। इसके सर्वथा विपरीत पाश्चात्य वैज्ञानिकोंकी सत्यको जाननेकी विधि परीक्षण की है। इस प्रणालीकी विभिन्नताके अतिरिक्त दोनों के सत्यको देखनेके दृष्टि विन्दु में भी विभिन्नता है। प्राचीन ऋषियोंने दृश्यमान लक्षणों और गुणोंसे मूलतत्वोंका निश्चय किया था अर्थात् उनकी दृष्टि 'भौतिक' थी। परन्तु पाश्चात्य विद्वानोंने पदार्थोंके वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा मूलतत्वोंका निश्चय किया है। अर्थात् उनकी दृष्टि 'रासायनिक' है। इन दोनों कारणोंसे दोनों सिद्धान्तोंके मूलतत्त्वनिरूपणमें अत्यन्त विभिन्नता आ गई है। परन्तु एक उद्देश्यतक पहुंचनेके अत्यन्त विभिन्न मार्ग भी हो सकते हैं।

इसलिए हमें तो यह दोनों ही मार्ग सत्य प्रतीत होते हैं। उदाहरणतः त्रिगुणात्मक प्रकृतिके तथा पञ्चभूत सिद्धान्तको माननेवालेको इस बातके माननेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि दृश्यमान पदार्थ ९२ मूलतत्वोंसे बने हुए हैं। उसे तो ओषजन और उद्‌जन का एक एक अणु भीं पाञ्चभौतिक प्रतीत होता है। क्योंकि इनके अणुओंमें भी उसे आकाश, गतिगुण अग्नितत्व या अप्तत्व द्रव गुण और संघातके गुण ये दोनों गुण प्रतीत होते हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंको भी जब इन मूल तत्वोंमें ये पांचों गुण प्रतीत होते हैं तो उन्हें भी इन Elements के पाञ्चभौतिक माननेमें आपत्ति न होनी चाहिए। इस प्रकार इन दोनों मतोंमें कोई विरोध है, यह हमारी समझमें नहीं आता।

इसी प्रकार यद्यपि प्राचीन ऋषियोंकी शरीरशास्त्र सम्बन्धी घटनाओंको वर्णन करनेकी शैली और नवीन पश्चिमीय पद्धतिसे शरीरशास्त्रके वर्णन करनेकी शैलीमें बड़ी भारी विभिन्नता है। परन्तु इनमें परस्पर विरोध है, यह नहीं कहा जा सकता। आयुर्वेदिक पद्धतिसे विचारनेवाले नवीन वैज्ञानिकोंको शरीर सम्बन्धी आविष्कृत सर्व सत्य अपनी वात, पित्त, कफ की व्याख्यामें स्वीकृत हैं। वे शरीर सम्बन्धी सर्व घटनाओंकी व्याख्या भौतिक दृष्टि ( वात, पित्त, कफ ) से करते हैं। उदाहरणतः पाश्चात्य विद्वानोंने परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि शरीरमें कुछ ऐसे सूक्ष्म रासायनिक रस उत्पन्न होते हैं जो शरीरकी क्रियाओंका नियमन करते हैं। कण्ठाग्रग्रन्थि का सूक्ष्म रस रक्तमें जाता रहता और शरीरकी वृद्धिका कारण बनता है। मस्तिष्कमें स्थित मस्तिष्कग्रन्थिके अग्रिम खण्डसे भी एक सूक्ष्मसा रस उत्पन्न होता है यह भी शारीरिक और मानसिक वृद्धिका कारण है। अण्डग्रन्थि और डिम्बग्रन्थि से भी सूक्ष्म रस उत्पन्न होते हैं और पुरुषसूचक तथा स्त्रीसूचक शारीरिक भावोंके नियामक होते हैं। इन वृद्धिकारक सूक्ष्म रसोंके अतिरिक्त कुछ ऐसे सूक्ष्म रस भी शरीरमें उत्पन्न होते हैं जो शरीरकी पक्ति या पचन क्रियाके नियामक होते हैं। जैसे वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि का सूक्ष्म रस रक्तचाप को बढ़ाता, शरीरमें खण्डके ज्वलनको बढ़ाता तथा शरीरमें पचनकी प्रक्रियाको भी बढ़ाता है। मस्तिष्कग्रन्थिके पश्चिमीय खण्डका सूक्ष्म रस भी शरीरमें ज्वलन या पचनको उत्तेजित करते हैं। नियामक रसों का यह सिद्धान्त पाश्चात्य चिकित्साका अधिक मौलिक सिद्धान्त है; किन्तु प्राचीन आयुर्वेदिक पद्धतिको स्वीकार करनेवालोंको इसके स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं; क्योंकि उसका यह सिद्धान्त कि वात, पित्त और कफ शरीरके सूक्ष्म नियामक हैं, पश्चिमीय सिद्धान्तसे अधिक मौलिक हैं। उसे तो उपर्युक्त पाश्चात्य विद्वानों द्वारा आविष्कृत नियामक रसोंमें भी कफका तत्त्व तथा पचनके नियामक अन्य नियामक तत्वोंमें भी पित्तका तत्व कार्य करता हुआ प्रतीत होता है।

इस प्रकार पश्चिमीय विद्वानोंने शरीरके सम्बन्धमें जो सत्य प्रकाशित किए हैं वे सबको स्वीकृत है; लेकिन भारतीय विद्वानोंके त्रिगुणात्मक प्रकृति पञ्च महाभूत, और त्रिदोष सिद्धान्त उनसे कहीं अधिक मौलिक हैं। उनके फार्मूलोंमें सब घटनाओंकी व्याख्या करने और बुद्धिके लिए सुगम बना देनेके ऐसे गुण हैं जिन्हें हम छोड़ नहीं सकते। इस दृष्टिसे उन्होंने इस रहस्यमय विश्ववृक्षकी पत्तियों, शाखाओं, और प्रशाखाओंकी जो सूक्ष्म अन्वेषणा की है वह प्रशंसनीय है। किन्तु वह भारतीय आयुर्वेदके ऋषि, जिन्होंने इस विश्ववृक्षके मूलकी खोज की थी और इसके सम्बन्धमें अनेक रहस्य प्रकाशित किए थे, उनके प्रति हम सदाही नतमस्तक रहेंगे।

# सात्विकजीवन-ग्रन्थमाला

## ब्रह्मचर्य नाटक

प्रथम पुष्प—रङ्गमञ्च पर सफलता-पूर्वक अभिनीत यह नाटक अपने ढङ्गका निराला और बेजोड़ है। हमारे आन्तरिक असुर किस प्रकार पराजित हो सकते हैं, हम किस प्रकार अपनी दुर्वासनाओंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं, इसका विवरण यदि आप प्राप्त करना चाहते हों तो इस पुस्तकको अवश्य देखिये। कागज, छपाई गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य केवल ॥)

## आध्यात्मिक शिक्षावली

द्वितीय और तृतीय पुष्प—आध्यात्मिक विकासके लिये इनसे अच्छा ग्रन्थ हिन्दीमें नहीं है। हिन्दू-धर्म और अध्यात्मवादका ज्ञान थोड़ेमें प्राप्त करनेके लिये ये पुस्तकें सर्वोत्तम हैं। इन पुस्तकोंमें गागरमें सागर भर दिया है। आज ही मंगा कर पढ़िये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य प्रथम खण्ड ।॥), द्वितीय खण्ड ।॥),

## सचित्र हठयोग ( सजिल्द )

चतुर्थ पुष्प—( आसनोंके ३८ चित्रों सहित )—आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा एवं यौगिक क्रियाओं द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ले जानेवाली अनुपम और प्रामाणिक पुस्तक। इस एक ही पुस्तकसे जो लाभ उठाया जा सकता है वह अन्य कई पुस्तकें पढ़कर भी नहीं उठाया जा सकता। इसके लेखक स्वयं एक महान् योगी हैं। इस विषयकी ऐसी उपयोगी पुस्तक दूसरी नहीं है। मूल्य केवल १।), स्थायी ग्राहकोंसे १)

## स्वामी शिवानन्दजी की जीवनी और उनके उपदेश ( अंग्रेजीमें )

पञ्चम पुष्प—प्रस्तुत पुस्तकमें श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराजकी जीवनी और उनके उपदेशोंका सार संगृहीत है। स्वामीजीकी जीवनी तथा उनके उपदेशोंका एक ही स्थानपर संग्रह करनेका अभिप्राय यही है कि लोग उनके जीवनकी घटनाओंको उनके उपदेशोंके प्रकाशमें देखें और अपने जीवनको भी तदनुकूल बनानेका प्रयत्न करें। यह पुस्तक विशेषकर उन लोगोंके लिये लिखी गयी है जो स्वामीजीके सभी ग्रन्थ नहीं खरीद सकते। पुस्तकमें प्रयुक्त भाषा सरल तथा सुबोध है। साधारण अंग्रेजी जाननेवाला व्यक्ति भी अच्छी तरह समझ सकता है। बीसों चित्रोंसे सुशोभित सजिल्द पुस्तकका मूल्य केवल १॥)

**स्थायी ग्राहकों तथा थोक खरीददारोंको पर्याप्त कमीशन दिया जायगा**

प्रकाशक—

# जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड

८३, पुराना चीना बाजार स्टीट कलकत्ता। "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# कर्मणा वर्णव्यवस्थाका नैसर्गिक भाव

लेखक—आचार्य इन्दिरारमण शास्त्री

यह शाश्वतिक, अदृश्य शक्ति द्वारा सञ्चालित, नियम-सा है कि जबतक मानवसमाजमें कर्मणा वर्ण-व्यवस्था, उचित मर्यादाके साथ चलती है, तबतक इसमें सब सुख-शान्ति, अपेक्षित ऋद्धि-सिद्ध, पर्याप्त समृद्धि, अनतिविषम स्थिति और परम निश्चिन्तता विराजती है। जब, मानवी प्रजा, प्रज्ञापराधसे, अति-लोभ, मोह, तृष्णा, एषणा, अहन्ता, ममताके वशीभूत हो, सामूहिक योगक्षेमके प्रबन्धकी उपेक्षा करके प्राति-स्विक रूपसे व्यक्तिगत स्वार्थप्रवृत्तिमय अनुचित परि-ग्रहभावसे उच्छृङ्खल, उन्मत्त, प्रमत्त हो जाती, और उसका प्रत्येक सदस्य, केवल अपने लिये अथवा मुष्टि-मेय स्वपरिवार मात्रके लिये अथ च आज कालके सदृश अपने नेशन वा राष्ट्र की खातिर विश्व के सर्वस्व का, पृथिवी के समस्त 'व्रीहि-यव, हिरण्य, पशु, स्त्री का, अपहरण करने लगता, प्रत्येक बलवत्तर व्यक्ति, वर्ग, कौम और राष्ट्र, दुर्बलोंका वध-बन्ध-निरोध करके निजी स्वराज्य तथा साम्राज्यका संस्थापन और विस्तार करनेकी कुत्सित वासनासे भीषण सार्वजनिक उपद्रव अस्वास्थ्य, लूट-मार, और क्रूरतम परम नृशंस मात्स्यन्यायको प्रवर्तित करता, और तद्द्वारा अनिष्टकर समाजविप्लव, मर्यादाभङ्ग, और अव्यवस्था मचा देता है; तब कुछ कालके बाद, वैसी अशान्त भीषण परिस्थितिसे, लोगोंका ऊब जाना और घबरा उठना स्वाभाविक ही है। ऐसी विषम परिस्थितिके उपस्थित होनेपर, उसकी निष्ठुर और कड़ी कठोर ठोकरोंसे नितान्त सताये गये, परस्पर की लूट-मार, विरोध-प्रतिरोध और वैर-द्वेषसे अतिमात्र उत्पीड़ित, उपद्रुत, अस्थिर, अशान्त और अहर्निश मिथोभयभीत रहने-वाले लोगोंमें पुनः शान्तिस्थापन और तदर्थ समाजके सुव्यवस्थापनकी आवश्यकताका अनुभव और इच्छाका प्रबल होना अनिवार्य है।

ऐसी आवश्यकता और उसकी पूर्तिकी बलवती इच्छा होनेपर, तत्कालीन लोगोंके कुछ चुने हुए 'अगुआ' सज्जन' यदि किसी नई समाज-व्यवस्थाके आविष्कारमें, नये विधानकी कल्पना वा उपज्ञामें, व्यर्थ समय, दिमाग, और श्रम को न खोकर, मानवसंस्कृति में निसर्गतः अनुस्यूत, स्वभावजगुण-कर्मानुसार प्रकल्पित: पूर्वप्रवर्तित, उस 'कर्मणा वर्णव्यवस्था' को ही पुनः यथोचित मर्यादामें बाँध कर अपना लेते हैं, जिसी के त्याग से, जिसकी मर्यादा के अपालन से ही वह समाजविप्लव और सुव्यवस्थाका उच्छेद हुआ होता है; तब तो सब कार्य अनायास ही सिद्ध हो जाते और व्यवस्थान्तर-विषयक विवाद, अनिष्ट विधानपरिकल्पन, अप्राकृतिकविध-कृत्रिमरूप-अभि-नव समाजव्यूह, नाना वर्गवाद, विविध योजनाप्रवर्त्तन, समाजभेद, वर्गयुद्ध आदि क्रमसे होनेवाले अनर्थपर-म्परामय सारे फसादोंकी जड़ ही कट जाती है। अन्यथा तबतक विप्लव पर विप्लव का सिल-सिला जारी रहता, क्रान्तिके बाद अविराम क्रान्तियां होती रहती हैं, जबतक निसर्गविरुद्ध, नई समाजयोजनाओं के फेर में पड़कर, नये विधानों के कल्पनाचक्र में चङ्क्रमण (पुनः पुनः वक्र भ्रमण) करते, चक्कर काटते, भटकते हुए, लोकनायक महाजन, पुनः 'कर्मणा वर्णः' के मानवप्रकृतिसिद्ध स्वभावज सद्धर्म को अपना नहीं लेते। यही कारण है कि जब जब नैसर्गिक और शाश्वत सांस्कृतिक कर्मणा वर्णव्यवस्था को छोड़कर

विप्लव और मात्स्यन्याय से विधूनित लोग, अपने युग के 'ब्रह्मा' और 'मनु' के शरणागत हुए, तब तब, उन्होंने पूर्व प्रचारित ( मध्य में विलुप्त ) शाश्वत-स्वाभाविक चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था में ही तत्कालोचित नियम-मर्यादा करके उसे ही उन लोगोंमें प्रवर्तित किया; किसी नये समाजविधान वा वर्गवाद आदिकी कल्पना, 'ब्रह्मा' वा 'मनु' भी नहीं कर सके। इससे सिद्ध होता है कि 'कर्मणा वर्णव्यवस्था' ही शाश्वत मानवसमाज-विधान है ; इसके अपालन से जो विप्लव वा मात्स्य न्याय विश्वमें फैल जाता है, वह पुनः इसी कर्मणा चातुर्वर्ण्य के संस्थापन से ही, दूर और शान्त किया जा सकता है। इससे भिन्न जो समाजविधान, जन-वाद, कृत्यवर्त्म, कार्यक्रम, शासनपद्धति, वा लोकव्यूह उत्प्रेक्षित और प्रचलित किये जाते हैं, वे सब स्वसत्ता-कालमें भी प्रायः अनिष्टकर रहते हुए, अन्ततः कुछ काल के बाद ही अपनी अयोग्यता-प्रसूत स्वाभाविक मौत से मर जाया करते हैं —

"या वेदबाह्याः स्मृतयो, याश्च काश्च कुदृष्टयः ;
सर्वास्ता निष्फला ज्ञेयाः, तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ।
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्,
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ।"

( कूर्मपु० पू० अ० २, मनु० १२, ९५-९६ )

"जो स्मृतियां ( धर्मशास्त्र वा विधान ), वेद से, वेदान्त से, अध्यात्मविद्या से, मानवस्वभाव शास्त्र से, चित्त-चैतसविज्ञान से, जगत्कार्यतत्त्वार्थज्ञान से, बाहर हों ; और जो इस वेद-शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट, आर्षविधिदृष्ट, अध्यात्मवित्तमशिष्टाचरित, अगत्येव— प्रकृत्यैव विश्वमहाजनपरम्परापरिगृहीत, नैसर्गिक उद्-गम-विकाशशील, कार्याकार्यव्यवस्थिति से, मानव-स्वभावज-प्रवृत्तिक्षुण्ण - कृत्यवर्त्मानुसारिणी शाश्वत वर्णव्यवस्था से चातुर्वर्ण्यक्रियाफलसम्बन्ध-विषय-सद्विज्ञानमयी अध्यात्मवित्तम-पारमार्ष-सुदृष्टि से, भिन्न जो 'कुदृष्टियां' कुस्मृतियां, कुव्यवस्थायें, कुत्सित समाज-योजनायें, क्रियाफलसम्बन्धाऽज्ञानियों, अन-ध्यात्मविदों, द्वारा बनाई जाती हैं, वे सब निष्फल हैं, क्योंकि वे 'तमोनिष्ठा' (अज्ञानसे कल्पित) होतीं अथवा जनताको कुवर्त्म के तमोमय गर्त में गिरा देती हैं। इसलिये आध्यात्मिक सुदृष्टिमय शाश्वत मानवधर्म-शास्त्र से, मनुष्यस्वभावज गुणकर्मानुसारतः स्वतः सदा-वृत्त सनातन चातुर्वर्ण्य-व्यवस्थाविधान से, अन्य जो कुछ शास्त्र, विधान, समाजव्यवस्थानियम, बीच-बीच में उत्पन्न और च्यवित होते हुए स्वाभाविक मौत से मरते जाते हैं, वे सब 'अर्वाक्कालिक' पश्चात्कालीन अनृषि-अनध्यात्मविदों द्वारा प्रवर्तित होनेके कारण, फलरहित और असत्य हैं, क्योंकि—"न ह्यनध्यात्म-वित्कश्चित् क्रियाफलमुपाश्नुते" अध्यात्म विद्याको,प्राणि-स्वभावशास्त्र को, शारीरक विज्ञान को, जगत् के कार्य तत्त्व और अर्थ को, मनुष्य के चित्त और चैतस भावविकारों को, त्रिगुणात्मक प्रकृतिभिन्न मानवमनो-वृत्ति और नैसर्गिक लोकप्रवृत्ति को, सच्चे स्वार्थ परार्थ तथा परमार्थ को, सम्यक् न जाननेवाला कोई भी अनध्यात्मवित् पुरुष 'क्रिया-फल' को नहीं पा सकता। किस क्रिया का सम्बन्ध किस फल से है ? उस क्रियासे उस फलकी प्राप्ति कैसी इतिकर्तव्यता द्वारा कर्मानुष्ठान करनेसे हो सकती है ? इत्यादि प्रश्नोंका सदुत्तर जिसके हृदय में आध्यात्मिक सुदृष्टि द्वारा सुस्पष्ट प्रकाशित न होगा, जो सन्मन्त्रद्रष्टा साक्षात्कृतधर्मा, श्रुतिप्रत्यक्षहेतु, क्रियाफलसम्बन्धविद्वान् नहीं है, वह अनध्यात्मवित् मनुष्य, न तो स्वयं किसी क्रियाका निश्चित फल पा सकता, नहीं दूसरे लोगोंके लिये, अवश्यंफलप्रद 'सत् कृत्य-वर्त्म' का उपन्यास ही कर सकता है—"स तु तत्र विशेषदुर्लभः, सदु-पन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः।" "चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः" आचार्य की 'चोदना' ( प्रवर्तक वाणी, देशना, आज्ञा )

ये लोग, कर्ममें प्रवृत्त होते हैं—"आचार्यश्चिदिदं ब्रूयात्" (निरु०) "आचार्यचोदितः करोमि" (मी० शाबरभा०) यह साधारण जनता का सामान्य भाव है। अतः आचार्य को सही चोदना करनी चाहिये, जिससे क्रियाफल की प्राप्ति में सन्देह वा विघ्न-बाधा न हो; ऐसी सच्ची चोदना से ही लक्षित अर्थ (अनुष्ठेय कर्त्तव्य) 'धर्म' कहलाता है, और "धर्मादर्थश्च कामश्च" 'चकारान्मोक्षश्च' सिद्ध होता है। पर, ऐसी सही धर्मचोदना वा कर्त्तव्यदेशना वही 'आचार्य' कर सकता है, जो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यविषयक अध्यात्म-योगाऽधिगम से 'अर्थों' (सत्कर्त्तव्यों) को चुन कर, तथा मनुष्य-बुद्धि को यथाप्रकृति पहिचान कर, तदनुगुण आचार-ग्रहण करा सकने की योग्यता रखता हो 'आचार्यः, कस्माद् आचार्यः? आचारं ग्राहयति, आचिनोत्यर्थान्, आचिनोति बुद्धिम्' ऐसी योग्यतावाले प्राचीनतम आर्यपूर्वज महर्षि (ब्रह्मा, मनु आदि) परमाचार्यों ने एक बेर ही सार्वकालिक सनातनी, सततसमगतिप्रवाहनित्या, मानवी मनोवृत्ति, प्रवृत्ति, और बुद्धि को अच्छी तरह पहिचान कर, खूब सोच, विचार, और जांच कर, तत्तत्प्रकृति-भिन्न स्वभावज गुणकर्मानुसार निसर्गतः चतुर्वर्गीभूत मानवसमाज में, तदनुगुण शाश्वतिक चातुर्वर्ण्य रूप 'अर्थ' (समाजधर्म) की चोदना, देशना प्रवर्त्तना और मर्यादा कर दी। यही अध्यात्मवित्तम श्रुतिप्रत्यक्षकृत्तम क्रियाफलसम्बन्धविद्वत्तम, जगत्कार्यतत्त्वार्थवित्तम आर्य महर्षि-वेद-शास्त्राचार्यों की चातुर्वर्ण्य-चोदना, विश्वमानवसमाज के लिये सहज स्वाभाविक और शाश्वतिक सुदृष्टि है, इससे भिन्न, लोकोच्छृङ्खलता के कारण, बीच में यदाकदाचित् उत्पन्न और विनष्ट होती रहनेवाली उत्पादव्ययनशील समाजव्यवस्थायें, अर्वाकालिक, क्षणिक, अस्वाभाविक, व्यर्थ और असत्यभूत 'कुदृष्टियां' हैं।

सुतरां जब कभी ऐसी कुदृष्टियां, असद्व्यवस्थायें, निष्फल वा अनिष्टफलक समाजयोजनायें, उठ खड़ी हों, तब सज्जनों को इनका प्रतीकार करना, और मानव-स्वभावसात्म्य चातुर्वर्ण्य की शुभदृष्टि का पुनरुद्घाटन करना चाहिये। अन्यथा भी तो, शाश्वत, स्वभाज गुणकर्मानुसार स्वयम्भू चातुर्वर्ण्य के आन्तरालिक विप्लवों के बीच अवकाश पाकर, कुकुरमुत्ते की तरह उत्पन्न होनेवाले अर्वाक्कालिक, समाजविधान, अपने दुष्परिणामों के कारण ही, स्वयमेव च्यवित वा उच्छिन्न हो जाते हैं; और उनके स्थान पर अनायासकी तरह, अप्रयत्नसिद्धरूप से सहज भाव से, स्वाभाविक पद्धति से, पुनः पुनः वही निसर्गज मानवस्वभावजगुणकर्मानुसारितया निवारणाशक्य, चातुर्वर्ण्यविधान ही, आधमकता और सर्वोत्कर्षेण प्रवर्त्तमान हो जाता है। अतः सहज गुण-क्रियाऽनुसारिणी स्वरूपतो विश्वव्याप्तिमती कर्मणा वर्णव्यवस्था ही मानव-समाज के लिये निसर्गसिद्ध, प्रकृतिसात्म्य, स्वभावानुगुण, सर्वयोगक्षेमविधायकतम, अभ्युदय-निःश्रेयससिद्धिकृत् शाश्वत लोकविधान है। यह विश्वमानवसमाज में स्वभावतः उद्गत, और क्रमविकशित हुआ, सर्वतः सर्वत्र सातत्य भाव से स्वतः प्रवृत्त तथा परिव्याप्त है। न केवल मनुष्यों में ही, अपितु इतर प्राणियों में तथा स्थावर पदार्थों में भी, निसर्गज गुण-कर्ममय चातुर्वर्ण्य विभाग, स्वयंसिद्ध माना जाता है। सुतरां, समय-समय पर, कभी-कभी बीच में, जनता के अननुष्ठान के कारण वर्णमर्यादा के बाह्य रूप में कुछ काल के लिये, क्षणिक विकार, विपर्यास, अन्यथाभाव, विप्लव, विलोप, उच्छेद, छिन्न-भिन्नत्व, अस्त-व्यस्तत्व, आच्छन्नत्व अथवा अव्यवस्थिततत्व भले ही आ जाय, और इसके स्थान पर अन्य समाजव्यवस्था-विधान का आदेश वा आगम भी हो जाय; पर, उस दशा में भी स्वभावज गुण-कर्माधारक तात्त्विक वर्णविभाग का स्वयम्भू

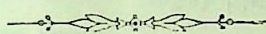
अस्तित्व, सर्वत्र रहता ही है; और तत्तत्कालयोग से जायमान, उत्पाद-च्यवनशाली, अर्वाक्कालिक विधान के उच्छिन्न हो जानेपर, प्रकृत्यैव समाज-स्थित कर्मणा चातुर्वर्ण्य पुनः प्रचण्ड हो उठता, और साधिकार मर्यादा में व्यवस्थित होता हैं। इस तरह विश्व में सतत प्रवर्त्तमान, मानवस्वभावप्रसूत, गुणप्रविभक्त-कर्ममय चातुर्वर्ण्य, विराट् समाजशरीर का अजर और अमर आत्मा है; यह सभी अर्वाक्कालिक सामाजिक भाव-विकारों के उत्पाद-च्यवनप्रवाह में भी स्वरूपतः विद्यमान और अटल रहता है; इस कूटस्थ संघटन के चट्टान पर टकरा कर अगणित विधानान्तर चूर होते रहते हैं। अतः यदि मनुष्यजाति, अस्वाभाविक कृत्रिम, और उत्पाद-च्यवनशील नाना अर्वाक्कालिक, कुदृष्टिदृष्ट, अनध्यात्मवित्सृष्ट, वर्गवाद आदिके विषम घनचक्कर में न पड़ कर, स्वभावज गुणकर्मसुलभ, सन्तत अनुवर्तमान, अकृत्रिमरूप, आर्षसुदृष्टिदृष्ट, अध्यात्मवित्तम-ब्रह्म-मनु-प्रभृति विशिष्टशिष्टसृष्ट-व्यवस्थापितसन्मर्याद, सहज-स्वधर्ममय चातुर्वर्ण्य को ही सदा के लिये अपना लेती, तो आन्तरालिक विविध-समाजवादादि निमित्तक क्रान्तिमय लोकविग्रह, राष्ट्रविप्लव, नेतृसंघर्ष, वर्गयुद्ध, गृहकलह, और अन्ततः विश्वसर्वस्व-विध्वंसक जगन्महासंग्राम, नहीं होता। जब कि इतने प्रलयङ्कर मार-संहार के बाद भी, पुनरपि इस युध्यमान विश्व को पराजित, उत्पीड़ित हो, और परस्पर मात्स्य-न्याय से ऊब कर, स्वसामयिक 'ब्रह्मा' वा 'मनु' की शरणागति द्वारा, पूर्वयुगीन तादृश प्रजाजन की भाँति, अगत्या भी, निसर्गसिद्ध शाश्वतिक चातुर्वर्ण्य की सर्वमङ्गला, बहुश्रेयसी, मर्यादा पर ही आ गिरना पड़ेगा, तब सदा विवेकिनी बुद्धि को स्थिर रख कर, इसी को अपनाये रहना, मानवसमाजके लिये कितना अच्छा, योगक्षेमकारक और सुस्थिर-सुख-शान्तिप्रद होता? पर बीच बीच में अनिष्टकरी, तमोनिष्ठा, वेद-सञ्ज्ञान-बाह्य स्मृतियों (समाजव्यवस्थाओं) और कुदृष्टियों (अनध्यात्मवित्कल्पित नाना समाजवादों), द्वारा प्रवर्तित उत्पाद-च्यवनशील, निष्फल और अनृत, अर्वाक्कालिक अनेक विधान भी उपस्थित होते ही रहते हैं; यह दूसरी बात है कि मानवस्वभावज गुणकर्मानुसारी स्वयंभू, अविनाशी, सतत विश्वव्याप्तिमान, चातुर्वर्ण्य के तेजःपुञ्ज के प्रचण्ड प्रकाश में वे तमोनिष्ठ विधान चिरकाल तक टिक नहीं सकते।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हुआ कि प्रकृत्यैव (नैसर्गिक भाव से ही) उद्गत विकसित व्यवस्थित सञ्चलित विच्छिन्न और उच्छिन्न होते रहनेवाले, कालक्रमयोगानुसार सतत उत्थान-उत्तम्भन-पतनशील, वर्णविभाग की दशा का चङ्क्रमण, चक्रनेमिक्रम से नीचे तथा ऊपर बराबर हुआ करता है। 'वर्ण' की दशा वा स्थिति, कभी सम और कभी विषम होती है। **समतावस्था में सब मनुष्यों का एक ही 'वर्ण' रहता है; विषम स्थिति में वह** तत्तन्मानवव्यक्तिस्वभाव प्रभव-गुण-प्रविभक्त कर्मानुसार चतुर्धा भिन्न हो जाता है; क्योंकि सत्त्वादिप्रधान प्रकृतिभेदसे चार ही वर्ण निसर्गसिद्ध होते हैं—"नास्ति तु पञ्चमः" पाँचवां 'वर्ण' नहीं हो सकता।

इतिहास-पुराणादि द्वारा और अध्यात्मशास्त्र (जीवप्रकृतिविज्ञान, प्राणिस्वभावशास्त्र, जगत्कार्य-तत्त्वार्थ विद्या) से, मानव-समाज में वर्ण और जाति के नैसर्गिक उत्थान तथा पतन का घटना-क्रम, अनेक विध विदित होता है; विश्वसृष्टिक्रम के विषय में जितने विचार प्रस्थानभेद मिलते हैं, वे सब प्रायः वर्णोत्पत्तिक्रम में भी लगाये गये हैं। तदनुसार विश्व-सर्ग के सदृश ही वर्णोत्पत्ति के घटनाक्रम को भी विभिन्न-मतवादियों ने विकाश, परिणाम, आरम्भ, सङ्घात, विवर्त्त आदि नना 'वादों' की पृथक्-पृथक् विचारपद्धतियों से, परस्पर विमत विविध उपपत्ति-

प्रक्रियाओं से अलग-अलग अनेक रूपमें मिलाया और सिद्ध किया है। इन सब 'वादों' के अनुसार वर्णोत्पत्ति के घटनाक्रमों का विभागशः निरूपण और वर्णन करनेमें जो विस्तार-प्रस्तार अपेक्षित है, उसके लिये यहां न तो स्थान और समय है, नहीं विशेष प्रयोजन; अतः इसे लघुकलेवर लेख में; गुण-कर्मानुसार निसर्गतः प्रवर्तित मानवीय चातुर्वर्ण्य समाज के उद्गम विकाश, विभाग, मर्यादा, व्यवस्था, उत्कर्ष—अपकर्ष, समुच्छ्रूय अधःपात, विलोप-पुनरुत्थान अथवा उच्छेद और भूयः प्रवर्तन आदि भावविकारचक्रपरम्परा सम्बन्धी शाश्वतिक सामान्य घटनाक्रम का ही ऐतिहासिक निर्देश और दिक्प्रदर्शन मात्र किया है।

( क्रमशः )



# सत्यव्रत

लेखक—श्रीनारायणप्रसाद श्रीअरविन्द आश्रम पांन्डीचेरी

## पहला अंक

### दूसरा दृश्य

स्थान—मायादेवी का दरबार।

( मायादेवी सिंहासनपर आसीन ; बाँयी तरफ वासना, दाहिनी तरफ अहंकार और आसपास काम, क्रोधादि )

माया—अहंकार ! मैं तुम्हें प्रधान मन्त्रीके पदपर नियुक्त करती हूं ; आजसे तुम राज्यके प्रधान मन्त्री हुए।

अहं०—(सामने आकर अभिवादन करता है) महारानी माया की जय।

माया—अहंकार ! रजोगुणसे उत्पन्न काम क्रोधादिको मैं तुम्हारे सुपुर्द करता हूं। इन्हें इनकी योग्यतानुसार राजकार्यमें भाग लेनेका अधिकार देकर सम्मानित करो।

अहं०—महारानीकी आज्ञा शिरोधार्य है।

माया—तुम जानते हो अहंकार ! मनुष्यको मेरे राज्यमें जकड़कर रखनेमें ये कैसे प्रवीण है ? मनुष्य इनके भुलावेमें पड़कर दुःखको ही सुख, मृत्यु को ही जीवन, विषय-विषको ही अमृत समझ कर उसीमें मग्न रहा करेंगे।

अहं०—जानता हूं मैं इनकी प्रतिभाको महारानी।

माया—सुनो, मेरी आज्ञासे 'प्राण' को तुम न्यायाधीश बनाना और उसके नेतृत्वमें मेरे ये पार्षदगण जब राजशपथ लें तब प्रत्येकसे मेरी यह राजाज्ञा पढ़वाना। वासना, ले इसे पढ़कर सुना।

( वासना राजाज्ञा लेकर पढ़ती है )

'हम मायादेवीका चरण छूकर शपथ करते हैं कि हम राजकार्य सदा बफ़ादारीकी भावनासे प्रेरित होकर करेंगे। सभी महारानीके प्रभुत्वके सामने नत-मस्तक होकर झुके रहें, घुटने टेककर पैरोंपर पड़े रहें; यही—केवल यही सदा सतर्क होकर ताकते रहना ही होगा हमारा प्रधान कर्त्तव्य। मगर जो सिर उठानेका साहस करेगा, विद्रोही बनकर अपनी सीमासे निकल भागना चाहेगा उसके पीछे हम हाथ धोकर पड़ जायंगे और उस विद्रोहीका सर कुचल कर ही चैन लेंगे।

अहं०—महारानी ! क्या किसी व्यक्तिको कोई स्वतंत्रता नहीं रहेगी ?

माया—रहेगी—लेकिन उतनी ही जितनी एक खूंटेमें लम्बी रस्सीसे बन्धी गायको मैदानमें चरनेके लिये रहती है। लो यह राजाज्ञा ( वासनाके हाथसे राजाज्ञा लेकर अहंकारको देती है) ( मायादेवी प्रस्थानके लिये खड़ी होती है) चल वासना।

( सब जयध्वनि करते हैं )

( वासना और मायाका प्रस्थान )

( मायाके पीछे जाते वासना फिर फिरकर मुसकुराते हुए अहंकारकी ओर ताकती है )

अहं०—वह चली गयी—

( थोड़ी देर उसी ओर टकटकी लगाकर ताकती है )

( कुछ देर बाद ) प्राण ! महारानीकी आज्ञानुसार आजसे तुम राज्यके सर्वमान्य न्यायाधीश हुए। मनुष्यके इन्द्रियगण और मन तुम्हारे अधिकारमें रहेंगे। देखो वे सदा भ्रममें पड़े रहें, इसी ओर—केवल इसी ओर दृष्टि रखकर उनका संचालन करना। वे किसी तरह अन्तर्मुखी न होने पावें—किसी प्रकार उन्हें

अध्यात्म रसका चसका न लगने पावे ; केवल इसी बातको लक्ष्यमें रखकर सबको नियंत्रित करना।

प्राण—कोई भी अन्तर्मुखी न होने पावे बस, यही करना है न ? बहुत अच्छा।

अहं०-तुम्हारी प्रतारणासे जब मनुष्यका मन वाह्य विषयोंकी ओर दौड़ेगा तब कामादि उन्हें बड़ी आसानीसे अभिभूत कर डालेंगे। उसके बाद क्या करना होगा उसकी व्यवस्था मैं करता हूं। अच्छा, तुम इस समय जाओ।

( प्राणका प्रस्थान )

अहं०—काम !

काम—( आगे आकर ) मंत्रिवर !

अहं०-मैंने मनमें निश्चय किया है कि तुम्हें सेनापति बनाऊंगा, क्या सेनापतिके इस गुरुतर दायित्व को तुम ले सकोगे ?

काम-क्या कामके पराक्रमको आप नहीं जानते मंत्रिवर ?

अहं०—जानता तो हूं, पर क्या ज्ञानके गर्वको तुम चूर्ण कर सकोगे ? मैं यही सोच रहा था।

काम—आप कुछ फिक्र न करें, 'नारीका रूप' मेरे पास वह अस्त्र है जिसके सामने ज्ञान पागल हो उठेगा, वैराग्य कटे वृक्षकी तरह दूर जा गिरेगा, और विवेक, विवेक तो ऐसे उड़ जायगा जैसे आंधीके सामने नन्हे-नन्हे तिनके।

अहं०- वाह-वाह मैं तुम्हारे मुंहसे ऐसा ही कुछ सुनना चाहता था ? सेनापते।

काम—मंत्रिवर ! त्रिभुवनमें ऐसा कौन है जो कामके बाणके सामने सर न झुका दे, ऐसा कौन है जिसे काम अपना गुलाम न बना ले, जिसे काम घायल न कर दे।

अहं०—नहीं, केवल घायल करके ही उसे छोड़ देनेसे काम नहीं चलेगा। उसके मनको विषय-कीच-में सदा साने रखना होगा, नारी ही सुखकी खान है, संसारमें ही सुख है, भोग ही जीवन का सार है, इन मन्त्रोंको पढ़कर हरदम उसके मनपर जलका छींटा फेंकते रहना होगा जिससे उसका मन सदा सर्वदा विलास-जलमें भींगा रहे। तुम्हें मालूम है, भींगी सलाई रगड़ पर रगड़ खानेपर भी नहीं जलती।

( काम इन बातोंको मंत्रमुग्ध होकर सुनता है )

अहं०—( जैसे कुछ याद कर ) हां, एक बात और तुम मानव हृदयके भीतर भोगैषणाका ऐसा सोता बहाना जो कभी सूखने न पावे, समझे ?

काम —मंत्रिवर ! इन बातोंको तो मैंने माताके गर्भमें ही समझ लिया था।

अहं०—लोभ ! तुम कर सकोगे ?

लोभ—क्या मंत्रिवर !

अहं०—( सिर हिलाते हुए ) हां, तुम कर सकोगे।

लोभ—आप मुझे क्या करनेके लिये कह रहे हैं ?

अहं०—अन्धा बनानेके लिये कह रहा हूं।

लोभ —किसे।

अहं०—मनुष्यको।

लोभ—कैसे ?

अहं०—स्वार्थ से।

लोभ—( सोल्लास ) हा हा ! लोभके सिवाय पृथ्वीमें इसे और कौन कर सकता है ?

अहं० —लोभ, तुम्हें ऐसा यत्न करना होगा कि स्वार्थ मनुष्यके हृदयमें छिपकर उनकी सारी गतियों को संचालन किया करे। वह भृंगकी तरह सदा उनके कानमें गुनगुनाता रहे, 'हे मनुष्य ! तुम्हारा धर्म परमार्थ नहीं, स्वार्थ है।' जाओ मैं लालसासे कहूंगा वह तुम्हें हर प्रकारसे सहायता करेगी।

लोभ—( नाचते हुए ) लालसाकी सहायतासे तो मैं मनुष्यके हृदयमें वह आग जलाऊंगा जो प्रलयकी वर्षासे भी न बुझ सके।

अहं०—(क्रोधसे) लोभ जब जगत्में स्वार्थका युद्ध छेड़ देगा तब तुम्हारा उनके हृदयमें प्रवेश करना बड़ा आसान हो जायगा। वहां प्रवेश कर तुम क्या करोगे ?

क्रोध—तूफान उठा दूंगा।

अहं० – एक काम और करना—तूफान उठानेके पहले हिंसाको बुला लेना और उसे उनके हृदयदुर्गमें इस तरह छिपा रखना जैसे बममें बारूद रहती है।

क्रोध—( उग्र स्वरमें ) और द्वेषको, उसे मैं नहीं छोड़ सकता मंत्रिवर !

अहं०—केवल द्वेष ही क्यों अपने सारे दलके लोगोंको एक-एक कर बुला लेना। ( मोहसे ) मोह ! तुम बस इतना करना। जब देखो कि काम क्रोधने अपना अड्डा जमा लिया है तब तुम मनुष्य के हृदय में प्रवेश कर महारानीकी जय-ध्वजा फहराना, और मायाकी ध्वजा सदा वहां दृढ़ताके साथ गड़ी रहे, इसके लिये अपनी सारी शक्ति लगा देना। जहां जाना, आसक्तिको संग ले जाना, उससे तुम्हारी खूब बनेगी।

मोह—( आसक्तिका नाम सुनते ही मोहका रोम-रोम खिल उठता है ) आसक्तिके संग मेरी कैसी बनेगी, उसके साथ मैं क्या कर सकता हूं, इसे मंत्रिवर देखें।

अहं०—हां मुझे पूर्ण आशा है, आसक्तिके संग तुम ऐसा प्रताप दिखाओगे कि जैसे जीवनके ऊपर मृत्यु गरजती है, वैसे ही त्यागके ऊपर भोग, प्रकाश के ऊपर अन्धकार और ज्ञानके ऊपर अज्ञान गरजेगा।

अच्छा। तुम लोग जाओ। संशय कहाँ है ? उसे मेरे पास भेज दो।

( सबका जयध्वनि करते हुए प्रस्थान )

अहं० —( टहलता है )।

ऊँहूं—यह सब करके भी मुझे संतोष नहीं हुआ। इसमें कोई शक नहीं, काम क्रोधादि बड़े प्रतिभाशाली हैं, उनमेंसे एक-एक अकेला ही सारे भूमण्डलको ग्रस सकता है ; लेकिन इन लोगोंमें क्या मायाके राज्यकी सच्ची नींव डालनेकी शक्ति है ? वैराग्यकी आंधीके सामने क्या इनकी दशा बिना लंगरके जहाज के समान नहीं हो जायगी ?

( संशयका प्रवेश )

कौन, संशय ! तुम आ गये ?

संशय—मंत्रिवरने मुझे बुलाया था ?

अहं०—हाँ ! सुनो, मैं तुम्हें खुफिया विभागके अध्यक्ष के पदपर नियुक्त करता हूं। तुम्हारी गति सभी जगह अबाध रहेगी–राज्यमें कहां क्या हो रहा है, किसके भीतर कहां छिद्र है, यह तमाम तुम्हें झांक झांक कर देखना पड़ेगा। जिसे देखना कि वह सजग हो रहा है और हमारे चंगुल से निकलनेके लिये हाथ पैर हिलाने लगा है उसके पीछे शंकाको लगा देना और कह देना कि वह बात-बातमें उसके मनमें सन्देह उठावे और कुतर्कके कुरास्तेमें घसीट लावे। जबतक मनुष्य 'हां-ना' में झूलता रहेगा तबतक उसका चित्त डाँवाडोल रहेगा तबतक कोई डर नहीं है, भक्ति, ज्ञान कोई कुछ नहीं कर सकते। जाओ ( कुछ क्षण बाद चौंककर ) ओहो, यह तो मैंने सोचा ही नहीं था—जिन्हें शंकाकी झंझा वायुसे डिगाया नहीं जा सकेगा उनके लिये क्या करना होगा ? ( चिन्तित होकर :टहलता है ) वह साधन-पथ-पर

चल पड़े तो ! चल पड़ेगा, क्या सचमुच चल पड़ेगा ! कभी नहीं जाने दूंगा । सेनापति ! सेनापति ! नहीं इसके लिये प्राणसे परामर्श करना पड़ेगा । ( संशयकी ओर ताक कर तुम गये नहीं—खड़े हो, कुछ कहना चाहते हो ?

संशय—( डरते हुए ) यदि विश्वास—

अहं०—विश्वास क्या-क्या कह रहे थे ?

संशय—यदि विश्वास मेरा पग नहीं जमने दे तो—

अहं०—मैं यहां सोच रहा था, अच्छा तुम जाओ ! मुझे सोचने दो ।

( संशयका प्रस्थान )

ना, नहीं किया जा सकता । कैसे किया जा सकता है? बिना वासनाके, असम्भव है ।

जाऊँ मैं महारानीके सम्मुख ये बातें स्पष्टरूप से रख दूं । यदि वह चाहती हैं कि पृथ्वीपर उनका राज्य निष्कंटक हो तो यह वासना द्वारा ही सम्भव है । मेरे ताने और वासना के बानेसे बुनकर एक ऐसा जाल बनाया जा सकता था जिसमें मनुष्य आ आकर फंसते, वे उसमें पड़े-पड़े रोते, चिल्लाते, सिर धुनते, पर निकल नहीं पाते । ( वासनाकी मुसकानको यादकर ) वासना मेरी ओर ऐसी तिरछी निगाहसे ताक क्यों रही थी ? क्या वह प्रेम था ? अहा ! कैसा अक्षय सौन्दर्य था । प्रेयसी तुम कितनी कुटिल हो, कितनी भीषण हो कितनी सुन्दर हो । ( कुछ देर चुप रहनेके बाद ) वासनाको महारानी यदि अपने पास रखना चाहती हैं तो रखें ; परन्तु यह तो निश्चित है कि वासनाके बलपर ही वसुन्धराको मायाके चरणोंपर लोटाया जा सकता है । मुझे हो क्या गया ! मैं क्या वासना, वासना कर पागल हो जाऊंगा । कैसा आकर्षण है उसकी तिरछी निगाहमें ? आंखोंमें मानो नरककुण्डकी आगकी ज्वाला जल रही है । नहीं, मैं उससे प्रेम करूंगा, उसके हाथों बिक जाऊंगा, उसके विषैले ओठोंका रसपान कर अमर होऊंगा ।

( इठलाते हुए वासनाका प्रवेश )

अहं०—( आग्रहसे ) तुम्हें कभी मेरी याद आती थी वासना ?

वासना—आती थी ।

अहं०—आती थी, कैसा सूखा जवाब है । अच्छा कहो तो, तुमने मुझपर बाण क्यों चलाया ?

वासना—इसलिये कि सामने खड़ा शिकार पाया ।

अहं०—तुम्हें दूसरोंको तड़पते देखनेमें बड़ा मज़ा आता है न ?

( वासना मुसकुराई, पर कुछ जवाब नहीं दिया )

अहं०—जब तुम महारानीके संग चली गयी तो मुझे बड़ी निराशा हुई थी ।

वास०—निराशा हुई थी क्यों ?

अहं०—तुम्ही बताओ, तुम्हारे बिना मनुष्यको भगवान्से दूर हटाये कौन रख सकता है ?

वास०—क्यों तुम ।

अहं०—अकेला मैं-जैसे खाली थैली अन्नके बिना सीधी खड़ी नहीं रह सकती वैसे तुम्हारे बिना मैं अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता ।

वास—अकेले तुम क्यों ? कामक्रोधादि ?

अहं०—वे तुम्हारे बिना वैसे ही हैं जैसे बिना मूलके वृक्ष ? तुम्हीं मायाके राज्यकी भित्ति हो, निम्न प्रकृतिरूपी वृक्षकी जड़ हो ; काम-क्रोधादि तो उसके डालपात हैं ; और मैं, मेरा कार्य तो केवल उस वृक्षको सींचकर जीवित रखना है ।

वास०—नहीं मैं जाती हूं, तुम मेरी प्रशंसा कर मुझे भुलाना चाहते हो ।

( जाना चाहती है )

अहं०—भुलाना चाहता हूं, और तुम्हें ? जिसमें दुनियाको भुला रखनेकी शक्ति निहित है ।

( फिर कर वासना वहीं खड़ी हो जाती है )

अहं०—जाना चाहती हो जाओ, मैं भी जाकर महारानीको अपना त्यागपत्र दे आता हूं।

( जाना चाहता है )

वास०—ठहरो! महारानीने स्वयम् मुझे तुम्हारे पास भेजा है और राज-कार्यमें तुम्हें सहायता करनेको कहा है।

अहं०—ऐं! जब महारानीने स्वयम् भेजा था तो तुम चली क्यों जा रही थी?

वास०—तुम्हें ठगनेके लिये।

अहं०—मुझे ठगनेके लिये, आओ अब हम दोनों मिल कर संसारको ठगें और उसे कान पकड़कर कठपुतलीकी तरह नचावें।

वास०—( उत्फुल्ल होकर ) क्या खूब! तुममें इतनी बुद्धि कहांसे आयी।

अहं०—( आग्रहसे हाथ पकड़ कर ) तुमसे।

( एक दूसरेका हाथ पकड़े प्रस्थान )

( प्राणके संग काम क्रोधादिका प्रवेश )

( प्राण न्यायाधीशके आसनपर बैठता है। कुछ देर इधर उधर ताकनेके बाद राजाज्ञा पढ़ता है और सब एक एक कर दोहराते हैं )

प्राण—( सबको सम्बोधित कर ) देखो, तुम लोग खूब सावधान रहना। विवेक, वैराग्य बड़े पराक्रमी हैं। ज़रासा मौक़ा पाते ही वे मनुष्यके जीवनमें आमूल परिवर्तन ले आ सकते हैं—

क्रोध—( बीचमें ही कर्कश स्वरसे ) पापात्मा विवेक का नाम सुनते ही मेरी आंखोंसे आगकी चिनगारियां निकलने लगती हैं।

लोभ—बेचारा छोटासा विवेक लोभरूपी समुद्रके ज्वारमें कबतक ठहर सकेगा।

काम—जहां मेरा प्रभाव छाया रहेगा वहां क्या वह प्रवेश कर सकता है। पराशरसे ज्ञानी, नारदसे भक्त, विश्वामित्रसे तपस्वी जब मेरे वाणोंके शिकार बननेसे नहीं बच सके, तो साधनाके पहाड़पर चींटीकी चालसे चलनेवाला बेचारा साधक, मेरी मोहिनी शक्तिके सामने कहिये कितनी देरतक ठहर सकेगा? दैवात यदि वह साधनाकी चोटीपर भी चढ़ जाय तो वहांसे भी मैं उसे खींचकर ऐसे गहरेमें ढकेल सकता हूं जहांसे वह मर मरकर भी नहीं निकल सके।

प्राण—देखो! जो मायादेवीकी छत्रछायामें अचेत पड़े सोते रहें उन्हें तुम हर्गिज न छोड़ना—

सब—नहीं नहीं—वरना उनके लिये तो ऐसी ऐसी सामग्रियां जुटावेंगे कि वे और भी अचेत पड़े पैर पसारे सोते रहें।

प्राण—और एक बात—भक्ति मायाका आवरण तोड़ने वाली है, इसलिये तुमलोग राजभक्तिकी शपथ लेकर कहो—जो कोई मायाके स्थानमें भक्तिको बैठानेके लिये साधन-पथपर चलना चाहेगा उस राजद्रोही को—

क्रोध—( पैर पटककर ) कुचल डालूंगा।

काम—( दांत पीस कर ) पीस डालूँगा।

लोभ—डुवा दूंगा।

मोह—अन्धा बना दूंगा।

[ सब अदबसे खड़े होकर जयध्वनि करते हैं ]

( मायाका प्रवेश )

माया—तुम लोगोंकी राजभक्ति देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुई हूं। काम! तुम्हें दिग्विजयीकी उपाधि देती हूं।

काम—महारानी मायाकी जय।

माया—क्रोध, तुम्हारे नामके साथ 'दुर्दान्त' जुड़ा रहेगा।

क्रोध—( अभिवादन करता है )

माया—मोह ! मैं तुम्हें 'अजय' की पदवी प्रदान करती हूं ।

मोह—जय ध्वनि करता है ।

लोभ—तुम्हें 'सर्वग्रासी' के नामसे पुकारते मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है । जाओ तुम लोग मिल कर सारे जगतको मायामय बना दो ।

सत्त्व ! देखूंगा तुझे ! देखूंगा किस तरह तू अपना प्रभाव फैलाता है । आओ वीरो—

( मायाकी पीछे-पीछे सबका जयध्वनि करते प्रस्थान )

( क्रमशः )

# अवतार होगा या नहीं

लेखक—श्री कृष्णकुमार गुप्त

जैसी परिस्थितिमें भगवानका अवतार हुआ था, उससे आज कहीं भयंकर परिस्थिति उपस्थित है। भगवानके नामसे ही लोगोंको चिढ़ है। संसारको ठगनेके लिये यह धूर्तोंके मस्तिष्ककी कोरी कल्पना समझा जाता है । वर्त्तमान युगमें धर्मकी गणना गंवारपनमें है । अधिक अधिक वैषयिक सुख ही जीवनका एकमात्र लक्ष्य है । सभ्य कहे जानेवाले संसारमें ऐसा महाभारत मचा हुआ है; जो भीषणतामें भारतके महाभारतको मात कर रहा है । उस समय विमानोंसे बमवर्षा तो न होती थी परन्तु पुष्पवर्षा अवश्य होती थी; परन्तु आजकल तो सर्वथा विपरीत ही हो रहा है। पुष्पोंके बदले बम बरस रहे हैं। सारा संसार ही रणक्षेत्र बन रहा है । निरपराध प्राणियोंकी जानें जा रही हैं। करोड़ोंके पास तन ढकनेके लिए पैसे नहीं हैं. कितनोंको पेटपर अन्न भी नसीब नहीं है, धूप-पानीसे बचनेके लिए कितनोंके भाग्यमें टूटी फूटी झोंपड़ी भी नहीं है. परन्तु इसके बदले संसारकी अतुल सम्पत्ति युद्धाग्निमें भस्म हो रही है । अब यह प्रश्न उठता है, कि पहलेसे भयंकर परिस्थिति उपस्थित है, पृथ्वीपर भीषणतासे पाप छा रहा है, तो भी अवतार क्यों नहीं होता ? भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें स्वयं कहा है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं ।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम,
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

( गीता ४, ७—८ )

अर्थात् हे भारत, जब कभी धर्मक्षीण होता है, अन्याय और अधर्म प्रबल होता है, तब सज्जनोंके रक्षार्थ और दुष्टोंका नाश करनेके लिए, तथा धर्म स्थापनार्थ मैं युग युगमें अवतार लेता हूं । तब इसके अनुसार ही अवतार क्यों नहीं होता ? आज कलके लोगोंका कहना है कि, यह सब पुराने ग्रन्थकारोंकी कोरी कल्पना मात्र है। परन्तु वास्तवमें बात ऐसी प्रतीत नहीं होती । तनिक सूक्ष्मतासे विचार करनेपर मालूम होता है कि पहली परिस्थितिमें और आजकी परिस्थितिमें महान् अन्तर है। उस समय कुछ दुष्ट थे तो कुछ साधू थे कुछ भक्त थे जो निरन्तर परमात्माका ध्यान धर दुष्टोंके क्रूराचरणोंसे दुखी होकर परब्रह्म परमात्माको अपनी आतुर वाणीसे पुकारते

रहते थे तो फिर भगवान अपने प्रिय भक्तोंका करुण क्रन्दन सुनकर क्यों न आते। सत्य ही है—

सुन भक्तोंकी करुण पुकार दौड़े आते हो भगवान।
कर उनके सब कष्ट दूर, परितोष सदा करते भगवान॥

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि अवतारके कारणोंमें भक्तका स्थान प्रमुख है। क्या अब भी कोई भगवानको अपने सच्चे दिलसे पुकारनेवाला है? द्रौपदी और गजराजका चरित इस बातको सिद्ध करता है, कि करुण स्वरसे पुकारनेसे भगवान अवश्य आते हैं। क्या आज भी कोई द्रौपदी और गजराजके सदृश भगवान-को पुकारनेवाला है? जो भगवान तब थे वही भग-वान आज भी हैं। तब भगवानको पुकारनेवाले बहुत थे और आज करुण स्वरसे :पुकारनेवालोंका अभाव है। आज कल तो भगवान्को करुण स्वरसे पुकारने-वाला धर्मपरायण कोई विरला ही होगा। कहनेके लिए तो आज भी धर्मकी दुहाई दी जा रही है, हिटलर, मुसोलिनी, चर्चिल, रुजवेल्ट आदि भी ईश्वरको धर्मको और न्यायको अपनी अपनी तरफ घसीट रहे हैं। नास्तिकोंके दृढ़ दुर्ग मास्कोमें भी आज उसकी याद आ रही है। कहा जा सकता है कि पाश्चात्य नेतागण उसकी याद कर रहे हैं तो फिर सुनवाई क्यों नहीं होती। क्या वे आर्त्त स्वरसे भगवान को पुकार रहे हैं? नहीं। यदि वे आर्त्त स्वरसे भगवानको पुकारते होते तो अवश्य सुनवाई होती। वे लोग तो भगवानके नामपर ढोंग करके अपनी कूटनीतिज्ञता द्वारा भोलीभाली जनताको अपने पक्षमें लानेकी कोशिश करते हैं। इस युद्धमें धर्म किधर है और अन्याय किस ओर है, इसका भी कोई निर्णय है? भारतका महाभारत न्याय और अन्यायका युद्ध था। धर्म और न्यायको ही बराबर अधर्म और अन्यायसे पराजित होना पड़ा था। पर तब भी धर्म न्याय और परमात्मामें लोगोंका विश्वास था, धन सम्पत्ति सब कुछ जाय पर परमात्मापर विश्वास था। "यतोधर्मस्ततो जयः" इसपर ध्यान रखकर वे अपने गन्तव्य पथपर अग्रसर रहते थे। उनका ध्यान भी ठीक ही था क्योंकि अन्ततः धर्मकी विजय हुई। वह महाभारत तो संसारको धर्मविषयक अद्वितीय शिक्षा दे गया, परन्तु आजके महाभारतने धर्मको तो मानो तिलांजलि दे दी है। नाजीवाद तो बुरा है पर जिसे लोकतंत्रवाद कहा जाता है, क्या वह अच्छा है। क्या हबशियोंको पशुओंसे बदतर समझ और भारतको पददलित कर ब्रिटेन और अमेरिका स्वतन्त्रताकी डींग ले सकते हैं। ऊपर आए हुए श्लोकोंकी बात भी गलत नहीं प्रतीत होती, बल्कि सही ही मालूम होती है। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे। साधुओंकी रक्षाके लिये अवतार होता है, सो साधुओंका तो पूर्ण-तया अभाव ही है; तो अब किसकी रक्षाके लिए अव-तार हो। दुष्टोंके नाशके लिए अवतार होता है, तो दुष्टोंका विनाश भी काफी संख्यामें हो रहा है, जब अपने आप ही दुष्टोंका नाश हो रहा है तो अव-तार क्यों होने जाय। अब रही धर्मस्थापनाकी बात; तो उसके घटित होनेमें भी सन्देह नहीं है। धर्म विनाशका एकमात्र कारण दुर्जन लोग ही हैं और उनका विनाश प्रतिदिन अधिकाधिक हो रहा है; जब की अधर्मके संचालकोंका नाश हो जायगा तो स्वयं ही धर्मकी दुहाई फिरने लगेगी। इस प्रकार सिद्ध होता है, कि जब ऊपर आये हुए श्लोकोंकी बातें स्वयं घटित हो जायेंगी तो अभी अवतार होनेकी कोई आशंका प्रतीत नहीं होती।

× क्या आप स्वस्थ होना चाहते हैं ?

× क्या आप स्वस्थ रहना चाहते हैं ?

× क्या आप अपने परिवार तथा अपने देशको स्वस्थ देखना चाहते हैं ?

× क्या आप किसी असाध्य रोगसे पीड़ित हैं ?

# आप जीवन सखा अवश्य पढ़ें

१—स्वास्थ्य-सम्बन्धी हिन्दीमें सर्वोत्तम पत्र है ।

२—इसमें रोगियोंके अच्छे होनेका वर्णन उन्हींके कलमसे लिखा होता है ।

३—इसमें आसन, प्राणायाम आहार, व्यायाम, रोगोंका कारण और चिकित्सा-सम्बन्धी अनेक गम्भीर लेख रहते हैं ।

४—पढ़कर आप अवश्य फ़ायदा उठायेंगे । आज ही एक प्रति नमूनाके लिए ।) का टिकट भेजकर मंगाइये ।

पता :— 'जीवन-सखा' ८७, हिम्मतगंज, इलाहाबाद ।

× × × × × × × ×

# प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह

एक सुन्दर बाग़के अन्दर स्थित है, रहनेका सुन्दर प्रबन्ध और रोगियोंकी व्यक्तिगत देख-रेख यहांकी विशेषतायें हैं । इस संस्थाकी लोकप्रियताका: यह कारण है, कि यहां अच्छा होनेवालोंकी संख्या ज्यादा है । नीचे लिखे रोगोंका इलाज यहां सफलता-पूर्वक होता है । साधारण दुर्बलता, स्नायु-दौर्बल्य, सभी तरहके चर्म-रोग, रक्ताभाव, पुराना जुकाम, खांसी, कब्ज, संग्रहणी, प्लुरसी, दमा, बवासीर, निद्राभाव, आमाशयका ज़ख्म, आंतोंकी खराबी, सभी तरहके ज्वर, घेघा, धमनियोंका कड़ा हो जाना, ( *Arteriosclerosis* ) रक्तचापका बढ़ना और कम होना ( *High and low blood pressure* ) गठिया, पेचिश, सब तरहके दर्द और सूजन, गुर्देकी बीमारी, यकृतकी बीमारियां, नपुंसकता, मधुमेह, मोटापा, दुबलापन, कर्णरोग, उन्माद, सभी तरहके स्त्री-रोग, इत्यादि, इत्यादि । पूर्ण विवरण नीचे लिखे पतेसे पत्र लिखकर मंगाइये । पत्रके साथ टिकट भेजना ज़रूरी है ।

मैनेजर— **प्राकृतिक चिकित्सा-गृह**

८७, हिम्मतगंज, इलाहाबाद ।

# प्रेमसाधना

लेखक—श्री कृष्णकुमार गुप्त

'साध्यकी सिद्धिके लिये जो चेष्टा या क्रिया की जाती है, वह साधना कहलाती है। सिद्धिकी प्राप्तिके निमित्त जो काम किया जाता है, वह साधना है। साधक भक्तजन जो रातदिन 'किसी' की उपासनामें रत रहते हैं, यह क्रियाविशेष साधना कहलाती है। जब मनुष्य किसी कामको करना चाहे तो उसके लिए उसे पूरा तैयार होना चाहिये। उसका उद्देश्य भी अच्छा होना चाहिये; उसकी प्राप्तिके उपाय सुदृढ़ तथा सत्य होने चाहिये। इस विषयमें 'साधक' को 'चातक' का अनुकरण करना चाहिये। ऐसा करनेसे ही उसे सफलताकी सम्भावना हो सकती है। 'चातक' की साधनाके विषयमें प्रातःस्मरणीय कवि सम्राट् तुलसीदासजी कहते हैं।

चातक 'तुलसी' के मते, स्वातिहु पिए न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़त भली, घटे घटे भी आनि॥

हे चातक! तुलसीदासके मतसे तो तू स्वाति नक्षत्रमें जाता हुआ जल भी न पीना; क्योंकि प्रेमकी प्यासका बढ़ना ही अच्छा है, घटनेसे तो प्रेमकी प्रतिष्ठा ही घट जायगी।

रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अङ्ग।
'तुलसी' चातक प्रेमको नित नूतन नवरङ्ग॥

अपने प्यारे मेघके-नाम रटते रटते चातककी जीभ लट गयी, और प्यासके मारे सब अङ्ग सूख गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि तोभी चातकके प्रेमका रङ्ग तो नित्य नया और सुन्दर ही होता जाता है।

प्रीति पपीहा पयदकी, प्रगट नई पहिचानि।
याचक जगत कनाउड़ो, कियो कनाड़ो दानि॥

पपीहा और मेघके प्रेमका परिचय प्रत्यक्ष ही नये ढङ्गका है; याचक तो संसार भरका ऋणी होता है, परन्तु इस प्रेमी पपीहेने दानी मेघको अपना ऋणी बना डाला।

'पवि पाहन दामिनि गरज, झरि झकोर खीर खीझि।
रोष न प्रीतम दोष लखि, तुलसी रागहि रीझि॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मेघ बिजली गिराकर और ओले बरसाकर, बिजली चमका कर, कड़क-कड़ककर वर्षाकी झड़ी लगाकर और आँधीके झकोरे देकर अपना भारी रोष प्रगट करता है; परन्तु चातक अपने प्रियतम जलधरका दोष देखकर क्रोध नहीं करता (उसे वारिधिका दोष प्रतीत नहीं होता) बल्कि इसमें भी वह अपने मेघका अनुराग देखकर रीझ जाता है।

मन राखिबो माँगिबो, पियसों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फवैं, जौं चातक मत लेहु॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि आत्मसम्मानकी मर्यादा की रक्षा करना, मांगना और फिर भी प्रियतमसे प्रेम का नित्य नवीन होना, ये तीनों बातें तभी शोभा देती हैं, जब कि चातकके मनका अनुसरण किया जाय। जिस प्रकार प्रेमी चातकका मन केवल मेघमें जुड़ जाता है, उसी प्रकार साधकका मन केवल भगवान्में जुड़ जाना चाहिये। सच्चे प्रेमीका मन केवल भगवान्में जुड़ जाता है। उसको सिवा अपने प्रियतमके न तो कुछ नज़र आता है और न कुछ अच्छा ही मालूम होता है। वह कभी अपने प्रियतमके प्रेममें हँसता, कभी रोता, कभी गाता और कभी नाचता है। उस प्रेमीकी हालतको वही समझ सकता है, जो स्वयं प्रेमी है। नदीके तीर बैठा हुआ मनुष्य उस मनुष्यकी दशा

को क्या समझ सकता है जो नदीमें डूबा जा रहा है।

इस प्रेमका एक कण भी भवसागरकी उत्ताल तरंगोंके भीषण भँवरमें पड़े प्राणियोंको मुक्त कर देता है, मोक्षकी इच्छाओंको उदय होनेसे पहले ही अस्त कर देता है, क्योंकि प्रेमीको सिवा अपने प्रियतम और उसकी इच्छाके कुछ नज़र नहीं आता।

उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुं दूसरी ओर॥

मेघराज गरज गरजकर कड़कता हुआ ओले बरसाता है और कठोर बिजली भी गिरा देता है; इतना होनेपर भी प्रेमी चातक मेघको छोड़कर क्या कभी दूसरी ओर ताकता है ?

तुलसी चातक ही फबै, मान राखिबो प्रेम।
वक्र बुन्द लखि स्वातिहू. निदरि निवाहत नेम॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रेमके मानकी रक्षा करना और प्रेमको भी निवाहना चातकको ही शोभा देता है। स्वाती नक्षत्रमें भी यदि मेघकी ओर निहारते हुए बुन्द उसके मुखमें न पड़कर टेढ़ी पड़ती है, तो वह उसका निरादर करके प्रेमके नियमको निबाहता है (चोंच टेढ़ी करनेमें दूसरी ओर निहारना हो जायगा, इससे उसके व्यभिचार होगा,इसलिये वह प्यासा ही रह जाता है, परन्तु मुख टेढ़ा नहीं करता। दूसरी बात यह है, कि वह टेढ़ी चोंच करके जलपान करता है तो उसका मान घटता है। वह माँगता नहीं है, प्रेमी है, देना हो तो सीधे दो ; नहीं तो न सही )।

प्रेम प्रत्येक प्राणीमात्रके हृदयमें मौजूद है, परन्तु यह सदा ही याद रखना चाहिये कि मोह और प्रेममें अन्तर है। जो संसारसे विरक्त कर भगवानकी ओर ले जावे वह प्रेम है, और मोह वह है जो परमात्मासे विरक्त कर संसारमें लिप्त कर दे। जब प्रेमका प्रवाह सांसारिक वस्तुओंके लिये दौड़ता है, तो वह मोह कहलाता है. लेकिन जब इसका प्रवाह भगवानकी ओर चलता है तब यह प्रेम कहलाता है। इस प्रेमका विकाश तब होता है, जब मनुष्य सांसारिक वस्तुओंसे पीड़ित हो जाता है और उसे सकल पदार्थ निरस प्रतीत होते हैं, जब सांसारिक वस्तुओंमें उसे सुखकी आशा नहीं रह जाती तब उसका ध्यान ऐसी वस्तुपर जाता है, जो पूर्ण, नित्य और सुखका भांडार हो। इसी समय मनुष्यके हृदयमें छिपा हुआ प्रेम भी बाहर आनेकी चेष्टा करता है, और परमात्माकी कृपा होते ही यह प्रेम पुष्पकी तरह विकसित हो जाता है। प्रेमविहीन मनुष्य मुर्देके समान है, क्योंकि बिना प्रेमके आकर्षण का होना असम्भव है, और बिना आकर्षणके क्रिया न होगी और क्रियाविहीन जीवन जड़के समान हो जायगा। इसीलिये यह सिद्ध हो गया कि प्रेम ही जीवन है। मोह और प्रेममें अन्तर इतना ही है कि, आकर्षण है क्रिया है, परन्तु प्रेमका रुख ठीक नहीं है। जब सूर्यकी किरण काले शीशेसे निकालिये तो किरण का वर्ण भी काला हो जायगा। इसी प्रकार लाल अथवा पीले शीशेसे भी किरणका वर्ण लाल अथवा पीला हो जायगा। इसी तरह जब वास्तविक प्रेमका प्रकाश सांसारिक इच्छाओंमें होता है तो प्रेम मोहकी शक्लमें बदल जाता है। उसमें प्रेम तो है लेकिन रुख बदल गया है। लेकिन जब यह प्रेम ईश्वरीय इच्छा द्वारा प्रकट होता है तो उसका नाम प्रेम होता है। यही वह प्रेम है जिसके लिए बड़े बड़े ऋषि, मुनि तरसा करते हैं। प्रेम है इसमें तो सन्देह होही नहीं सकता ; क्योंकि सामने है और सबमें किसी-न-किसी रूपमें प्रगट हो ही रहा है; लेकिन हमें जो करना है, प्रेमको उसी रूपमें बदलना है। संसार और उसकी इच्छाओंसे हटाकर प्रभुमें जोड़ना है। ( प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है। यह प्रेम ही भगवान है, और यह दृश्य जगत् उन्हीं अव्यक्त भगवानका व्यक्त रूप है। प्रेम सब

प्राणियोंमें सहज भावसे है। पशु-पक्षियोंमें ही क्यों, वृक्षादि योनियोंमें भी जो सहज प्रेम है, उसे भी अनुभव किया जा सकता है। गेहूंका एक दाना जमीनमें बोया जाता है। वर्षाके होते ही वह स्वयं गायब हो जाता है, पानी अंकुरित होकर हजारों दानोंके रूपमें प्रगट होता है। ऐसे ही अव्यक्त परमात्मा अपनी आत्यन्तिक रुचिसे प्रियत्वमें आते हैं। उस आनन्द सागरमें आनन्दके कल्लोल उठते हैं, उन्हींको प्रेम कहते हैं, ये अनेक कल्लोल अनेक देख पड़नेपर भी परमात्मसिन्धुरूप से एक ही अखण्ड और पूर्ण हैं। गहनेके बननेपर भी सोनेका सोनापन नष्ट नहीं होता बल्कि सोना, सोना रहकर ही गहने बनता है। वैसे ही परमात्मा, परमात्मा रहते हुए स्वयं ही नाम-रूपात्मक जगत् बनते हैं, पर इससे उनके परमात्मत्वमें कुछ न्यूनता नहीं आती। अस्तु।

मानव, प्रेमका ही साधन और क्रमिक विस्तार होनेसे शुभेच्छु भगवानको प्राप्त होता है। मानव-सम्बन्ध गत प्रेमके अभ्याससे इस दिव्य प्रेमानुभवके लिये मनुष्य उपयुक्त होता है। यह प्रेम क्या है? देवर्षि नारद इसे 'परम प्रेम' कहते हैं और उसका स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं कि 'अखिल आचार भगवानको अर्पण करना, और उनके विस्मरणसे परम दुःखी होना। देवर्षि नारद कहते हैं कि जो इस प्रेम मार्गपर चलता है और परम गन्तव्यको पा लेता है वह अपने प्रेमास्पदसे एक हो जाता है, वह सिद्ध, अमर और परितृप्त होता है, वह किसी चीजकी इच्छा नहीं करता, कोई शोक नहीं करता, किसीसे द्वेष नहीं करता, किसीसे राग नहीं करता, और अपने स्वार्थके लिए कोई प्रयास नहीं करता; वह उस प्रेममें ही मत्त, स्तब्ध और आत्माराम हो जाता है। अस्तु।

भगवत्प्रेमको अपने अन्दर अधिकाधिक जगानेके लिए कुछ साधन जरूरी होते हैं, जिनके बहुत कुछ कर लेनेके बाद ही भगदर्शन हो सकते हैं। सबसे पहला साधन यही है कि अपने इष्टदेवसे मिलनेकी अदम्य इच्छा हो। मानवप्रेमसे आरम्भमें भगवत्प्रेमके विषयमें किसी तरह कल्पना करनेमें कुछ मदद मिल जाती है। किसी मनुष्यसे यदि हमारा कोई प्रगाढ़तम, पवित्रतम, और तीव्रतम प्रेम रहा हो तो हम उसकी याद करें। अपना परीक्षण करें अपने अन्दर यह देखें कि किस प्रकार उस प्रेमके प्रकाशमें अन्य सब चीजोंका आकर्षण क्षीण हो जाता है। जब हम अपने प्रेमास्पदका मुख देखनेको तरसते हैं तब उसके सामने हमारी विद्या-बुद्धि, धन-सम्पत्ति, नाम-यश सभी कुछ फीका पड़ जाता है। प्रेमास्पदके दर्शनमात्रसे ही हमारे दिलका भाव बिलकुल बदल जाता है। उस प्रेमास्पदके प्रेमके प्रभावसे हमारी विद्या, बुद्धि, धन, सम्पत्ति या अन्य साहित्य कोई भी चीज नहीं रह जाती। इस प्रकारका अनन्य प्रेम प्राप्त होनेपर ही आत्मसाक्षात्कार होनेकी अवस्था आती है। प्रेमके इस साधन मार्गमें साधकके लिए जिन बातोंका होना जरूरी है उनमेंसे कुछ बातें ये हैं—शुद्ध आहार, शुद्ध विचार और भगवानका सतत स्मरण। हमें अपने मन वचन और कर्ममें सदा शुद्ध रहनेका प्रयत्न करते रहना होगा, तब हमें उस पावनका समाधि पानेका सौभाग्य प्राप्त होगा। अतः आध्यात्मिक उन्नतिका यह एक साधन है कि हमें सदा ही तामस और अशुद्ध आहारसे बचना चाहिये। अपने भ्रमते हुए चित्तको स्थिर करने, तथा उसमें पवित्र और उदार विचारोंको भरनेका सतत प्रयत्न करना होगा। इसी प्रकार हमें अशुभके सब मार्गोंसे हटना पड़ेगा और सांसारिक भोगोंकी सारी इच्छाओंका त्याग करना पड़ेगा।

# आयुर्वेदका स्वरूप

ले०—प्रोफेसर प्रसादजी प्राकृतिक स्वास्थ्यशास्त्रोपाध्याय कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय हरद्वार

जगन्नियन्ताने स्वसृष्टिकी रचना और व्यवस्था इस प्रकार की हुई है कि यदि वह उसकी अधिष्ठित प्रकृतिके निर्धारित नियमोंके अनुसार चली जाय, तो उसमें कभी विशृङ्खलता वा अस्तव्यस्तता नहीं आ सकती है। प्रकृतिकी यह नियमनिरतता चेतन, अचेतन, चर, अचर, समस्त संसारमें व्याप्त है। खगोलके नक्षत्रों, ग्रहों, उपग्रहोंमें सर्वत्र इसी नियमनिरतताका राज्य है। सूर्य, चन्द्र और तारे अपनी अपनी परिधियोंपर परिभ्रमण कर रहे हैं और गुरुत्वाकर्षणादिके नियमोंमें बंधे हुए हैं। हमारे भूगोलका यां समस्त सजीव और निर्जीव जगत् प्रकृतिके पराधीन हैं। मारे मूल तत्त्व प्रकृतिके निर्धारित नियमोंके अनुसार ही संसारके सब पदार्थोंके विविध रूपोंको अस्तित्वमें लाकर स्थिर रख रहे हैं। प्रकृतिके नियम विशेष ही पदार्थविद्या तथा रसायनविद्या के सिद्धान्त हैं। इसीके कुछ नियमविशेष यन्त्रविद्याके नियमके रूपमें रेल आदि विविध यन्त्रोंके संचालक हैं। प्रकृतिके कुछ अटल नियम ही सजीव जगतमें जीवनविद्याके नियमोंका रूप धारण करके स्थावर और जंगम प्राणिवर्गको जीवित रखते हैं।

जबतक प्राणिवर्गके शरीरोंकी यात्रा इन नियमोंके अनुसार होती रहती है, तबतक उनका जीवन निर्बाध गतिसे चलता रहता है। यह ही उनकी स्वस्थ अवस्था में विद्यमानता कहलाती है। इसीको दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार भी कहा जाता है कि अमुक प्राणी स्वस्थ (स्व+स्थ) अपनी=स्वाभाविक प्राकृतिक स्थितिमें है, वा वह स्वास्थ्यसम्पन्न है; किन्तु ज्योंही उन्होंने प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन किया कि, उनकी इस स्वस्थ अवस्था वा स्वास्थ्यका लोप हो जाता है। उनके शरीरयन्त्रके ठीक ठीक चलनेमें गड़बड़ आ धमकती है। इसीको अस्वस्थता, रुग्णता वा रोगी पड़ जानेकी दशा कहते हैं।

जब कोई प्राणी स्वस्थ रहता है, वा जिस अवधिमें उसकी शरीरयात्रा निर्बाध चलती रहती है, उसको उसकी आयु कहते हैं। प्राणीकी शरीरयात्रामें प्रबल तथा अनिवार्य बाधा आते ही उसकी आयुका अन्त हो जाता है। जिस विद्यामें आयुको सुरक्षित और स्थिर बनाये रखनेके नियमोंका वर्णन है वह आयुर्विद्या वा आयुर्वेद कहलाता है। संस्कृतमें विद्या और वेद शब्द पर्यायवाची वा समानार्थक हैं। विद्या और वेद दोनों शब्दोंकी व्युत्पत्ति विद् धातुसे ही होती है। आयुर्वेद समस्त वा समासयुक्त शब्द है। उसका विग्रह 'आयुषः वेदः' अर्थात् आयुका वेद है। चरकसंहिता, सूत्रस्थान अध्याय १ पद्य ४० में आयुर्वेदका लक्षण इस प्रकार वर्णित है—

हिताऽहितं सुखं दुःखं, आयुस्तस्य हिताहितम्
विद्यते यत्र, विद्वद्भिः, स आयुर्वेद उच्यते।

जिस विद्यामें वृक्षोंको स्वस्थ और हरे भरे रखनेके नियमों और उपायोंका वर्णन है, वह वृक्षायुर्वेद कहलाता है। और जिसमें पशुओंकी स्वास्थ्यरक्षाके नियमोंका व्याख्यान है, वह पशुआयुर्वेद है। अतः मनुष्य भी पशुश्रेणीके ही अन्तर्गत है; वा वह एक प्रकारका मनन-शील पशुमात्र है। इसलिए उसीकी आयुकी संरक्षाका विषय आयुर्वेदका प्रधान विषय बन गया, और क्योंकि मननशील होनेके कारण मनुष्य ही आयुकी विद्या वा आयुर्वेदका विचार करने, उसको

मौखिक वा ग्रन्थोंमें लिखकर ग्रन्थ रूपसे पढ़नेमें समर्थ है और स्वभावतः स्वार्थवश उसको अपनी ही आयुकी चिन्ता सबसे बढ़कर होनी चाहिये। इसीलिए आयुर्वेदके साथ पशु वा मनुष्य कोई विशेषण न लगाकर सामान्यतः 'आयुर्वेद' शब्द ही सर्वत्र प्रचलित हो गया है। स्वास्थ्यसंरक्षा-विद्याका आयुर्वेद शब्दसे व्यपदेश प्राचीन आर्यावर्तके ऋषियोंकी अन्वर्थ और व्यापक अर्थपूर्ण नामकरणके पाण्डित्यका परिचायक है। जहां इस विद्याके लिये अन्य भाषाओं और देशोंमें प्रचलित तिब्ब और Medicine शब्द संकुचित अर्थके वाचक हैं और केवल यह प्रकट करते हैं कि इस विद्यामें मनुष्य के स्वस्थ न रहने वा रोगी पड़ जानेपर औषधियोंके द्वारा उसकी चिकित्साका वर्णनमात्र ही है और प्राकृतिक नियमानुसार स्वास्थ्यरक्षासे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, वहां आयुर्वेद (आयुकी विद्या) में अनागत-प्रतिकाररूपेण प्राकृतिक नियम पालनपूर्वक पूर्वतः स्वस्थता वा स्वास्थ्यरक्षाके भावका सम्यक् समावेश विद्यमान है, अर्थात् आयुर्वेद प्राकृतिक नियमों पर चलकर स्वस्थ रहनेके उपदेशका द्योतक है, तो तिब्ब, Medicine और चिकित्सा शब्द प्राकृतिक नियमोंके उलंघनसे रोगी पड़कर चिकित्सा करानेमात्रके अर्थको प्रदर्शित करते हैं। आगे जाकर तो यह शब्द केवल औषधि-चिकित्सा और शस्त्रोपचारमें ही रूढ़ हो गए और प्राकृतिक नियम पालन-पुरःसर स्वास्थ्यसंरक्षा वा प्राकृतिक नियमोल्लंघनके कारण स्वास्थ्यह्रास वा स्वास्थ्यनाशको उन्हीं पूर्वोल्लंघित प्राकृतिक नियमोंके यथावत् पालन द्वारा अपसारण करनेकी ध्वनि उन शब्दोंसे न निकलने लगी और इसी कारण स्वास्थ्यसंरक्षाके लिये पाश्चात्य विद्वानोंको Hygeene नामक स्वास्थ्य संरक्षा-परक एक अभिनव पृथक शब्द का आविष्कार और प्रचार करना पड़ा।

परन्तु आयुर्वेदको हम किन्हीं प्राचीन अर्वाचीन ग्रन्थोंके समूहमें सीमित वा आबद्ध नहीं कर सकते। मनुष्यकी मननशील वा नवनवाविष्कारिणी बुद्धि प्राचीन वा अर्वाचीन कालमें जो जो तत्त्व वा उपचार उद्घाटित करती रही है, व आगे करती रहेगी वह सब ही आयुर्वेदके अन्तर्गत हैं। अतः आयुर्वेदके चिकित्सकके शस्त्रागारमें प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी शस्त्रों वा साधनोंके संग्रहकी आवश्यकता है। उसका इस विषयका ज्ञान तुलनात्मक और समसामयिक रहना चाहिये।

# मृत्यु-विज्ञान

लेखक—श्री गंगाप्रसाद गौड़ "नाहर"

प्राण-परमाणु

( गतांक से आगे )

इसके बाद अब हम थोड़ा-सा, प्राणतत्त्वपर विचार करेंगे। क्योंकि प्राणका मृत्यु से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है।

साधारणतः लोग मानते हैं कि प्राण-वायु ही प्राण है, किन्तु यह उनकी मिथ्या धारणा है। वस्तुतः प्राण, प्राणवायुसे भिन्न है। इसके कई व्यावहारिक उदाहरण भी दिये जा सकते हैं। जैसे, जीव जब गर्भाशयमें होता है, तब उसे प्राणवायुके मिलनेका साधन नहीं रहता; अर्थात् गर्भमें रहते हुये बाहरसे वह प्राणवायु नहीं ले सकता। तथापि सातवें महीनेसे ही वह हिलने-डोलने लगता है और उसके हृदयमें रक्ताभिसरणकी क्रिया होती रहती है। ऐसी हालतमें उसका जीवन, प्राण-वायुपर नहीं, अपितु प्राण-तत्त्वपर निर्भर करता है।

मृत शरीरमें प्राण-वायु आ जा सकता है, पर उससे मनुष्य जी उठे, यह सम्भव नहीं है। मूर्च्छित मनुष्य, जलमें डूबा हुआ मनुष्य, डाक्टर द्वारा 'क्लोरोफार्म' सुंघाया हुआ मनुष्य, और समाधिमें स्थित योगी, इन सबके शरीर मृतवत् हुये रहते हैं, अर्थात् श्वास-प्रश्वासकी क्रिया उनमें नहीं होती। परन्तु उन दशाओंमें भी उनके शरीरोंमें प्राण तत्त्वकी स्थिति रहती है, तभी तो श्वास-प्रश्वासकी क्रिया उनमें पुनः सम्भव होती है।

कर्नल टाउनशेंडने अपनी इच्छासे अपना प्राणमय शरीर, अपने अन्नमय शरीरसे बाहर निकाल लिया था। उस समय तीन सरजनोंने उनके शरीरकी परीक्षा करके यह निर्णय दे दिया था कि इनकी मृत्यु हो गई, क्योंकि उनकी नाड़ी, रक्ताभिसरण, और हृदयकी क्रियाएं सब बन्द थीं। शरीर ठंडा पड़ चुका था, नसें तन गयी थीं। परन्तु फिर भी कर्नल टाउनशेंड फिरसे अपने प्राण-मय शरीरके साथ उस शरीरमें आ गये और ऐसे उठ बैठे जैसे कोई सोकर उठा हो।

मास्को शहरकी एक बालिका १४ दिन मूर्च्छितावस्थामें थी। तीन बार उसका प्रेतसंस्कार भी किया गया। पर हर बार अन्तिम क्षणमें वह जाग कर उठ बैठती।

महाराज रणजीत सिंहके दरबारके योगीकी कथा प्रसिद्ध ही है। छः फीट नीचे जमीनमें उन्होंने अपने-आपको गाड़ लिया, ऊपरसे वह पृथ्वी जोती-बोयी गयी। उसके चारों ओर संगीनका पहरा बैठाया गया। सात दिन बाद योगीजी महाराजके सामने बाहर निकले। इस तरहकी योग-क्रिया करनेवाले लोग आज भी मौजूद हैं।

उक्त उदाहरणोंसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि प्राण एक स्वतन्त्र तत्व है।

इसके उपरान्त, जन्मको प्राप्त होनेवाला जीव जगदात्मा सूर्यसे सूर्य परमाणु, और मनके लिये चन्द्र-मण्डलसे चन्द्र परमाणु ग्रहण करता है, और नीचे उतरते समय वह अन्य ग्रहोंसे भी अपने प्रारब्ध-कर्म-भोगके लिये तत्तत् ग्रहोपग्रहोंके शुभाशुभ फलदायी परमाणु ग्रहण करके, माताकी कोखमें आकाश, तेज, अप्, वायु तथा पृथ्वी-इन पञ्चीकृत तत्त्वोंसे अपने प्राण-शरीरके सजातीय प्राण-परमाणुओंका संग्रह कर अपना अन्नमय शरीर निर्माण करता है, और इस

प्रकार पूर्व कर्मानुरूप भोग भोगनेके लिये अपने प्राण-मय, मनोमय, वासनामय, विज्ञानमय और आनन्दमय, कोषों सहित भोगायतन अन्नमय शरीर धारण करके माताकी कुक्षसे बाहर निकलता है। और तब ज्योतिषी लोग उसकी लग्नकुण्डली और राशिकुण्डली, तत्तद् ग्रहोंका बलाबल देखकर बनाते हैं, तथा उस जीवको सुख-दुःखादि भोगके स्थान और समय निर्दिष्ट करते हैं। इस तथ्यसे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवके अन्नमय प्राणमय और मनोमय कोष, सूर्यसे दैनन्दिन गतिके साथ प्रसूत होनेवाले प्राण-परमाणुओंसे बने हुये हैं, और प्राण-मय कोषके संघटक प्राण-परमाणु तथा श्वासोच्छ्वासके प्राणवायु एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं, कहना न होगा कि समस्त दृश्यादृश्य ज़गत सच्चिदानन्द स्वरूप होनेके कारण, प्राण-परमाणुओंमें भी सत्ता, चेतना, तथा ज्ञान अवाधित एवं संघटित हैं, और चूँकि सूर्यमण्डलसे निकले हुये प्राण तेजोरूप हैं, इस लिये सिद्धान्ततः प्राणमय शरीर भी तेजोरूप हुआ। इसका जीता-जागता प्रमाण यह है कि प्रत्येक मनुष्य स्वप्नावस्थामें अपने शरीरको प्रकाश रूप ही देखता है, चाहे रात कितनी ही अन्धेरी क्यों न हो और समीपमें किसी प्रकारका कृत्रिम प्रकाश भी न हो।

इस बातके जान लेनेके बाद कि प्राण-परमाणु तथा प्राण-वायु एक दूसरेसे भिन्न हैं, यह आवश्यक हुआ कि अब यह पता लगाया जाय कि यह प्राण-परमाणु है क्या वस्तु।

अणुकी स्वैर गतिके सम्बन्धमें भगवान कणादका यह वैशेषिक सूत्र है कि "अणूनां मनसश्च साद्यं कर्म अदृष्टकारितम्।" अर्थात् अणुके और मनके आद्य कर्म का कारण अदृष्ट ही है। अर्थात् यह गति स्वयंभू है। यही बात प्राण-परमाणुके विषयमें भी समझनी चाहिये। थियासोफिस्ट लोग भी इसी तथ्यको मानते हैं। उनका कहना है कि हमारे रक्तके अन्दर जो शुभ्र और ताम्र बिन्दु हैं उनमें ताम्र बिन्दुओंके अन्दरके अयस्कण ही प्राण-परमाणुके घटक हैं। उनके मतसे जीवन एक सूक्ष्म गति है, जिसे ही प्राण कहते हैं और जो एक स्वयंभू शक्ति है जिसकी प्राप्ति मनुष्योंको जगत के धाता सूर्यसे हुई है। यह शक्ति (प्राण) पृथ्वीपर काम आनेके लिये तेज, आकाश, वायुके साथ होकर, तथा जनलोक, महर्लोक और स्वर्लोकादिमेंसे आते हुये परिणत होकर विद्युदाकर्षण रूप परमाणुओंसे मनुष्यका प्राणमय शरीर निर्माण करती है। अतः ये विद्युत्कण (प्राण-परमाणु) और उनकी शक्ति, वायुकण और वायुशक्तिसे भिन्न ही हैं। प्राण-परमाणु और प्राण-शक्ति दोनों ही वायु-परमाणु और वायुशक्तिसे सूक्ष्म हैं। और प्राणमय शरीर, आकाश शरीर तथा अन्नमय शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म हैं।

डॉ॰ वानडेन बांकने लन्दन के 'फोरम' पत्रके जनवरी १९३५ के अङ्कमें 'हम मरते कब हैं?' इस विषयपर एक लेख लिखा है। उस लेखमें प्रसङ्गतः प्राणकी चर्चा करते हुये उन्होंने कहा है कि रक्तसे ही हृदयकी क्रिया होती है, इसलिये रक्त स्वयं ही एक महान शक्तिशाली पदार्थ है। यथार्थ विज्ञानवेत्ताओंका विचार यह है कि हृदयकी क्रियासे रक्ताभिसरणकी क्रिया होती है; यह सही होनेपर भी रक्त बिन्दुओंके अन्दर जो विद्युदाकर्षण शक्ति है, उसीके द्वारा जागरित शिराओंके पुंजोमेंसे होकर यह रक्ताभिसरण क्रिया होती है। यह बात, शरीरके चलनवलन व्यापार-को ही जीवन मानकर कही गयी है। परन्तु 'कैलिफोर्निया' के आर्थर ए॰ वेलका कहना है कि शरीरके चलन-वलन व्यापारका चलना या चलाना मनुष्यकी मनोभूमिपर अवलम्बित है—देहस्थित जीवात्माका शरीर जब जीर्ण होता है या असंयत आचरण अथवा किसी अपघातसे भग्न या बेकार हो जाता है, तब यह अपने मनको आज्ञा देकर स्थूल देहके साथ अपना

सम्बन्ध तोड़ डालता है। इससे भी इसी बातकी पुष्टि होती है कि रक्त बिन्दुओंके अयस्कणोंमें जो विद्युदाकर्षण शक्ति है वही प्राणशक्ति है।

योगदीपिकामें प्राणकी इस प्रकार व्याख्या की गयी है :—

प्राणो भवेत् परं ब्रह्म जगत्कारणमव्ययम्।
प्राणो भवेत् तथा मन्त्रज्ञानकोशगतोऽपि वा॥
क्षेत्रज्ञश्च तथा प्राणः पञ्चभूतेन्द्रियार्थका:
प्राणार्थाश्चेति सिद्धान्तः श्रुतिभिः समुदीरितः॥

तात्पर्य, ज्ञानकोष अर्थात् विज्ञानमय कोषमें जो प्राणशक्ति है, वही प्राण है। श्वासोच्छ्वास अन्नमय कोषके प्राण-अपान हैं। प्राण इनसे अधिक सूक्ष्म है।

अथर्व वेदके एकादश काण्डकी दूसरी ऋचा है—

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते॥

अर्थात् प्राण विद्युदात्मक है और परम्परया प्राण-मय कोष प्रकाशात्मक है, यही स्पष्ट होता है।

महात्मा गौतम बुद्धके सिद्धान्तानुसार प्राण-शक्ति सर्वत्र विद्यमान है, अभेद्य है और अविभाज्य है। अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि प्राण-शक्ति अमुक स्थानमें है और अमुकमें नहीं।

स्वामिभक्त वशिष्ठ प्राणकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि प्राण अखिल ब्रह्माण्डकी ओत-प्रोत शक्ति है, और प्राणियोंके शरीरोंमें यह विशेष रूपसे प्रगट होती है। एक शरीरसे दूसरे शरीरमें भी इसका आवागमन होता है। जब हम किसी रोग-पीड़ित जीवके शरीरसे किसी अन्य शरीरधारी जीवके द्वारा रोगका हटाया जाना देखते हैं, तब यह काम प्राण-शक्ति के द्वारा ही होता है।*

(क्रमशः)

* लेखककी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'मृत्यु और उसके बाद' से।

# मनुष्यकी प्रकृतिसे पथभ्रष्टता

ले०—प्रो० प्रसादजी स्वाभाविकस्वास्थ्यशास्त्रोपाध्याय कांगड़ी, गुरुकुल विश्वविद्यालय, हरद्वार

पशु जगतमें प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन बहुत ही कम देखनेमें आता है। पशुओंकी सहज पशुबुद्धि प्राकृतिक नियमके पालनमें उनका पथप्रदर्शन करती रहती है। यही कारण है कि प्राकृतिक परिस्थितिमें रहनेवाले पशु बहुत ही कम रोगी होते हैं वा रोग अपर नाम धारक वा रोग नामसे प्रसिद्ध अप्राकृतिक अवस्थामें उनकी अप्राकृतिक मृत्यु बहुत ही कम होती है।

प्राचीन कालमें प्राकृतिक अवस्थामें रहनेवाला वा प्रकृतिके स्वरमें स्वर मिलाकर अपना जीवनयापन करनेवाला मनुष्य भी रोग नाम धारिणी अप्राकृतिक दशामें बहुत कम जाता था वा यूं कहिए कि उसपर रोगका बहुत ही कम आक्रमण होता था। रोगसे उसका देहावसान वा अकाल मृत्यु अनहोनी बात समझी जाती थी। यदि प्रमादवश भूलसे कभी उससे प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन हो जाता था, और वह अप्राकृतिक दशाको प्राप्त होकर किसी रोगका लक्ष्य भी बन जाता था तो पुनः प्राकृतिक नियमोंका पूर्ण पालन करके वह शीघ्र ही प्रकृतिस्थ वा स्वस्थ हो जाता था। इस अप्राकृतिक रुग्ण दशाके अपसारणके लिए, उसको किन्हीं लम्बे चौड़े उपचारोंकी अपेक्षा न होती थी और नहीं उसको परस्पर विरुद्ध गुणवाली विविध औषधियोंके विस्तृत योगोंकी आवश्यकता पड़ती थी; किन्तु जिन जल आदि पंचमहाभूतोंसे उसके देहकी रचना हुई है, उन्हींके कई सरल उपचारों वा अपने आसपासके बन जंगलकी सुलभ अमिश्रित औषधों, जड़ी-बूटियोंसे उसकी अप्राकृतिक दशा वा रोगकी निवृत्ति हो जाती थी। किन्तु ज्यों-ज्यों इस मननशील पशु वा पशुशिरोमणि (अशरफुलमखलूकात) मनुष्य नामधारी जन्तुकी मननशीलता वा बुद्धिका विकास होता गया, त्यों-त्यों वह उसकी प्रत्येक प्राकृतिक आवश्यकताकी पूर्ति करनेवाली प्रकृति माताकी प्रेममयी गोदसे दूर रहता गया। प्राकृतिक परिस्थितिमें उसके शरीरका संघटन और उसका प्रत्येक अंग-प्रत्यंग इतना स्वस्थ और दृढ़ था कि आजकलके सभ्यम्मन्य मनुष्यसे उसकी कुछ तुलना हो नहीं सकती। तब उसकी ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां कहीं बढ़कर बलवान और सज्ञान थीं। वह मीलों दूरकी वस्तुओंको सुगमतासे देख सकता था। धीमेसे धीमे शब्दोंको अनायास सुन सकता था। उसके सूंघनेको सामर्थ्य ऐसी असीम थी कि वह सुदूरस्थ और ढके छिपे पदार्थोंको उनकी गंधमात्र सूंघकर अनायास ही ढूंढ़ निकालता था। उसकी रसना (जिह्वा) शक्तिमें भी ऐसी प्रबलता थी कि वह अम्ल और मिलावटी, ताजे और बासी हित और अहित आहारका विवेक अविलम्ब कर सकती थी। उसका स्पर्श ज्ञान भी इतना बढ़ा था कि वह किसी पशु वा मनुष्यको छूकर ही अपने परायेकी पहचान कर सकता था। बिना किसी यंत्रकी सहायताके शरीरको छूकर ही उसके तापक्रमसे वा नाड़ीकी गतिमात्रसे किसीके स्वस्थ वा रुग्ण होनेकी दशाका ज्ञान उसको सुलभ था। उसके पाचनकी प्रबलताकी तो कुछ न पूछिए। उस समय अग्निकी सहायतासे न पके हुए और न रंधे हुए और चूल्हे पर न चढ़े हुए कच्चे कन्द, मूल, फल भाजी और अन्न ही उसके सुस्वादु और बलवर्धक सुपच आहार थे। तब उसकी रसनारूपी प्रहरी नाना प्रकारके अप्राकृतिक तीखे, चटपटे पदार्थों

मिश्रित आहारोंको रिश्वत देकर कर्त्तव्यच्युत न किया गया था। प्रत्युत कोई भी अप्राकृतिक, हानिकारक, पाचनापकारक मादकादि द्रव्य उसके इस जिह्वारूपी प्रहरीको स्पर्शमात्रसे विक्षुब्ध कर देता था और वह उसके अन्दर प्रवेशमें प्रबल बाधा उपस्थित करके उसको कदापि उसके दिव्य देहमन्दिरमें न घुसने देता था। हां सात्म्य, सात्त्विक, सरल आहार उसके शुद्ध शरीर-का अन्न अनिकामें अनिरुद्ध प्रवेश पाकर त्वरितगतिसे निर्मल रक्त संचारमें परिणत होकर आत्मसात् हो जाते थे, उसके अंग बन जाते थे। इसका वास्तविक चित्र वर्तमान हिन्दीके आचार्य्य श्री पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदीने निम्नलिखित पद्योंमें कैसा सुन्दर खींचा है।

सादा खाना सब खाते थे।
पच जाता था सुख पाते थे।
सब चंगे थे; रोग नहीं था।
जूड़ी, प्लेग, बुखार नहीं था।
तब वैद्योंकी चाह नहीं थी।
रोग न थे, पर्वाह नहीं थी॥
जड़, फल, फूल, राहमें चुनकर।
भर लेते थे पेट मुसाफिर॥
खुली साफ़ बेरोग हवा में।
जो गुण है, वह नहीं दवामें॥
खुली हवा में रहते थे सब।
खाते पीते सोते थे सब॥

किन्तु कालचक्रकी कुटिल गतिसे मनुष्यकी वह प्राकृतिक दशा न बनी रही। जिस प्रकार गंगोत्रीकी विशुद्ध विमलधाराका प्रवृद्धप्रवाह विविध भूखण्डोंमें बहकर पूर्व सागरके तीरपर पहुंचते पहुंचते कलकत्तेमें हुगलीका रूप धारण करके मलयुक्त और प्रायः अपेय बन गया है, वैसे ही मनुष्यकी वह प्राकृतिक दशा विशाल कालके क्रमसे स्वसहज सारल्यको त्यागकर वक्रताको प्राप्त होती गई और विविध प्रकारके आडंबर ने उसको व्याप लिया। मननशील होनेके कारण वह नवनवाविष्कारिणी बुद्धिसे तो युक्त था ही, उसने नाना प्रकारके भोग भोगनेके साधनोंका आविष्कार कर लिया। उसकी इन्द्रियां प्राकृतिक वा स्वाभाविक विषयोंके भोगकी अभ्यासी न रहकर विविध व्यसनोंमें लिप्त रहने लगीं। नेत्र, बन, जंगल, पर्वत, नदी आदिकी प्राकृतिक शोभाको निरखते रहनेके स्थान में सूक्ष्मातिसूक्ष्म अक्षरों वा छापेके टाइपोंको पढ़नेमें निरत रहने लगे। जहां वे रात्रिका अन्धकार आते ही निद्राकी गोदमें विश्राम लेनेके अभ्यासी थे, वहां अब उनको रात-रातभर मिट्टीके तेल वा बिजलीके प्रखर प्रकाशमें सूक्ष्म टाइपके अक्षर पढ़ने पढ़े। इसका फल अदूरदर्शिता आदि अप्राकृतिक विकारोंका रोगोंका बाल्यावस्थासे ही प्रादुर्भाव अवश्यं भावी था। नासिका को नाना वनस्पतियों और विविध प्रकारके पुष्पोंकी सहज सुगन्धके आनन्दको छोड़कर जन सम्मर्दके श्वास प्रश्वाससे विकृत कर्षण द्विओषित बहुल वायुमें श्वास लेने और नगरोंकी नालियोंकी दुर्गन्धको सूंघते रहनेके लिए विवश होना पड़ा। कानोंकी स्वाभाविक श्रवणशक्तिमें ही प्रतिक्षण के कोलाहल और कलोंकी गड़गड़ाहटसे एकाग्रतामें बाधा पड़कर क्षीणता आ गई।

रसना की तो बात ही न पूछिए। उसको तो भांति-भांतिके उत्तेजक, मादक, कटु, तिक्तादि विविध मिश्रित आहारोंका इतना व्यसनी बना दिया गया कि अब उसमें स्वाभाविक स्वादकी अनुभूतिका पता तक शेष न रहा। प्राकृतिक विशुद्ध जल और मनुष्यके स्वाभाविक आहार फल शाक अन्नके स्थानमें उसको बहुविध पेय, (मद्य भंग, सोड़ावाटर आदि) लेह्य, (चटनी आदि) भक्ष्य (मांस आदि) और भोज्य (भिन्न भिन्न मिठाइयां भातादि) पदार्थोंके सेवनके दुर्व्यसन पड़ गए। फिर तो उसका अनिवार्य परिणाम

नानाविध असंख्य रोगोंकी उत्पत्ति होना ही था, क्योंकि प्रकृतिने मनुष्यके पाचन संस्थानको इन अप्राकृतिक पदार्थोंके पचानेके लिए न सृजा था। अत्याचार के सहनकी भी सीमा होती है। जब पाचन संस्थान पर उसके रचना-क्रमके सर्वथा विरुद्ध उसमें प्रतिदिन कई बार ठूंस ठूंसकर भरे हुए तथा विविध अप्राकृतिक पदार्थोंके पाचनका असह्य भार बरसोंतक पड़ता रहे तो उसकी प्राकृतिक शक्तिका ह्रास क्यों न हो और किसी दिन वह अपना काम करनेसे बिलकुल जबाब क्यों न दे देवे। तब ही तो आजकल ऐसे विरल मनुष्य मिलेंगे, जिनको प्राकृतिक पाचन क्रियाके उपभोगका स्वाभाविक सुख प्राप्त हो। निन्यानबे प्रतिशत मनुष्य तो अजीर्ण जन्य किसी-न-किसी रोगमें ग्रस्त पाए जाते हैं। तब ही तो "भोगे रोग भयम्" तथा रसमूलाः हि व्याधिनः" आदि उक्तियोंने प्रसार पा लिया है। आजकलकी अवस्थापर उर्दू के किसी विनोदी कविका यह पद्य पूरा उतरता है।

पानी पीना पड़ा है पाइपका, हर्फ पढ़ना पड़ा है टाइपका।
आँत उतरी है आँख आई है, शाह एडवर्डकी दुहाई है॥
पीरोंने दाँत मुझ पै लगाया है घातसे।
बाईं तरफ़ की दाढ़में है दर्द रातसे॥
पीपलसे फायदा है न कुछ तेजपात से
बारह मसाले एक तरफ़ दर्द इक तरफ़॥

और

ऐनक आँखों पै मुँहमें मसनूई दाँत,
की बात तो सदा आपके सामने ही है॥

# भिखारी

रचयिता—हरिकान्त झा बख्शी साहित्याचार्य

(१)

रोदनमें भी राग भरा था
जब भीख माङ्गने वह आया।
धरती की छाती डोल उठी,
हा !! चीख चीख कर चिल्लाया।

(२)

प्रकृति नटी की अद्भुत माया
यह जग है जिसमें भरमाया।
यहां जरा कुछ है न किसीका
पर, मनमाना मालिक पाया।

(३)

क्या दुखियाकी करुण कहानी
दुखमय जगकी दुखद निशानी ?
अम्बर तल निस्तब्ध बना सुन,
क्या सरस प्रकृतिकी दीवानी ?

(४)

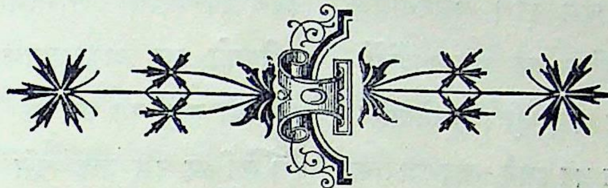
हाहाकार न कर सागरसा
कवि ! टकराकर धरणी तटसे।
पूर्णचन्द्रका उदय नहीं अब,
है अम्बर आवृत घन पटसे।

(५)

अब न सुधाका नाम यहां कवि !
हा !! विषमय वसुधाकी काया।
निःस्व बना असहाय बना कवि !
हा ! शून्य यह संसृत पाया।

## हर्ष-समाचार !

# हठयोगका द्वितीय संस्करण



'सात्त्विक जीवन' के प्रेमी पाठकों और आध्यात्मिक विषयों में दिलचस्पी लेनेवाले सहृदय महानुभावोंको यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि सात्त्विकजीवन-ग्रन्थमाला के चतुर्थ पुष्प, विश्वविश्रुत, उन्नतमना योगिराज श्री स्वामी शिवानन्दजी द्वारा विरचित हठयोग का द्वितीय संस्करण छपकर तैयार हो गया है। हठयोग के प्रथम संस्करण का इतनी जल्दी हाथोंहाथ बिक जाना ही उसकी उपयोगिता एवं उपादेयताका ज्वलन्त उदाहरण है। अध्यात्म-पथ पर चलनेवाले योग-जिज्ञासुओं के लिए हठयोग का अभ्यास प्रवेशद्वार है। इसमें शारीरिक शक्तियों के विकास, परिवृद्ध एवं नियमन के लिए आसनों का समुचित उपयोग बड़ी विस्तृत एवं सुबोध विधि द्वारा बतलाया गया है। देशके अनेक प्रतिष्ठित नेताओं और प्रमुख पत्रिकाओंने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

आजकल की मंहगी के जमाने में हठयोगके प्रकाशन का साहस हमने अपने श्रद्धालु, प्रेमी पाठकोंकी अत्यधिक आध्यात्मिक अभिरुचिको देखते हुए ही किया है। पदार्थोंके मूल्यमें अतिशय वृद्धि होते हुए भी इस सजिल्द १५० पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य केवल १।) प्रति रक्खा गया है।

प्राप्ति स्थान—

## सात्त्विक जीवन कार्यालय

### "प्रिण्टिङ्ग हाउस"

हौजकटरा, बनारस।

# प्रेम

लेखक—श्रीसषांङ्क

गंगाका शान्त शुद्ध निस्तब्ध तट। निशा अपने सौत उषाको आती देख वहाँसे चल दी। पूछनेवालेने उससे बहुत कुछ पूछना चाहा, लेकिन वह प्रष्टव्य बातोंका समुचित उत्तर न दे, वहाँसे चल दी। पूछनेवालेने अन्ततः यही अनुमान किया कि वह इतने लापरवाहीसे चली गई। अच्छा, चले जाने दो फिर पूछ लेंगे। वह एकाएक सजग हो कह पड़ा, मानो अभीतक वह किसी विषयरूपी गंगामें स्नान कर रहा हो। अरे, यह तो ऊषाका आगमन प्रतीत हो रहा है। हां, ठीक, एतावत् कारणात् चली गई। शुभ्र स्वच्छ तेजोमायकाश, प्राचीका क्षितिज रक्तिम हो चला था। पतनोन्मुख चन्द्रमाकी जलमें पड़ती हुई क्षीण किरणें, उसमेंसे गुजरती हुई एक नौका, उसपर बैठे हुए दो नवयुवक, उसे देख वह कह उठा। अहा हा! कितना अनुपम दृश्य है। उसके देखते-देखते भगवान् भास्कर अपने तेज पुंज किरणोंसे सारे संसारको प्रकाशवान् करने लगे। इतनेमें एक कर्णभेदक आवाज समस्त संसारको जगाती हुई शून्यमें गुंजती हुई शून्यमें जा विलीन हो गई। उसने भी गिने ८—वह अनमनसा, कुछ गुनगुनाता अपने घरकी दिशाकी ओर चल पड़ा। वह, था····मानव····+ + + ग्रीष्मकी उत्तप्त दोपहरीमें।

वह, प्याऊँ पर, पानी पीकर, (वृक्ष) समूहके नीचे विश्राम ले रहा था। सोच रहा था कुछ और ही, न जाने क्या सोच रहा था। उसके मुखसे सहसा निकल पड़ा····क्या····मनुष्यजन्म····इतने होके लिये होता है कि, पैसा कमाना अपने घरवालोंका पेट भरना और अच्छे वस्त्र खाना पीना, स्त्रीसम्भोग, सन्तति उत्पन्न करना, उनकी शादी करना तथा इस असार संसारके भव फन्दोंमें फँसे फँसे, स्त्र, पुत्र पौत्र-कलत्रोंको देखते-देखते, अन्तिम अवस्थामें पहुंचकर जिस शरीरको इस अवस्थातक, पाला पोसा उसकी हर तरीकेसे रक्षा की उसे ही छोड़कर चला जाना पड़ता है। लेकिन उस वक्त उसे पूछनेवाला भी कोई नहीं रहता है। यदि वास्तवमें हमसे सब (प्रेम) करते होते तो हमारे इस बहुमूल्य शरीरको हमारे छोड़नेके पश्चात् एक मिन्ट क्या, एक सिकिण्ड भी अपने पास नहीं रहने देते, और हमारे बहुमूल्य शरीरको, फूंक फूंककर किनारे लगा देते हैं। फिर रोज़ानेकी तरह याद भी नहीं करते। इसीसे कहना पड़ता है; यह दुनियां मतलबी है। इस महान् मानव जन्मका इतना ही काम नहीं है। इसके भी परे कुछ और है।

अच्छा है, तो वह क्या है, उसकी ऐसी जाननेकी प्रबल उत्कण्ठा हुई ही थी, कि उसे उत्तर भी तुरन्त मिल गया। हां, है, जहाँ जीव, जाकर फिर नहीं लौटता, क्या, यह बात सत्य है? हां; न जाने यह उत्तर किसने दिया। वह भी देनेवालेको न जान सका।

और उसने अपने जीवनके अन्दर यह तै कर लिया कि, मनुष्यको सदा सर्वदा (परोपकाराय सतां विभूतयः) वाले सिद्धान्तका अनुसरण करना चाहिये। इतना ही वह कह पाया था कि उसकी सहसा दृष्टि सामनेवाले वृक्षपर पड़ी।

उसने देखा, वृक्षपर बैठा हुआ नरपिशाच जो वर्तमान समयमें, तरुच्छायामें बैठा विश्राम ले रहा था; उसने भी उसपर कृपाकर उसे अपने नीचे विश्रामके लिये स्थान दिया था। परन्तु वह खुदबखुद देख रहा है कि उसके ऊपर कुठाराघात हो रहे हैं। लेकिन वह

अपनेसे स्वीकार भी नहीं कर रहा है। जितना भी कष्ट वह उसे दे रहा था सब वह सहन कर रहा था। ऐसे वैचित्र्य सीनको, देखकर सामने बैठे हुए व्यक्तिने उससे कहा + + +

वारे सहनात्मा····धन्य है तेरी। सहन करनेकी भी एक हद हुआ करती है। लेकिन तेरा सहन करना भी तो निस्सीम है।

वास्तवमें तुझे साधू कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। धन्य है तेरी सहनशीलताको। यदि मानव तुझसे सीख लेना चाहें तो ले सकता है। लेना अथवा न लेना मानव पर ही निर्भर है। 'जैसी उसकी मर्जी'।

क्यों प्रिय मित्र····हां कहो····जब वह तुम्हारा सर्व सत्यानाश करनेपर तुले हुए हैं। तब तुम कहो, कहो····उसके प्रति साधुता धारण न कर ( शठे शाठ्यं समाचरेत् ) वाली नीतिका अनुसरण करना चाहिये। ठीक है प्रिय मित्र ! लेकिन····कहो न, क्या कह रहे हो। जब मैंने उसे अपने अधीन टिकनेके लिये स्थान दिया तब वह मेरा अतिथि हुआ न ? एतावत् कारण मैं····उसे···· कैसे····जैसी तुम्हारी मर्जी। नहीं नहीं····सुनो सुनो। ( कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ) वाली नीतिको तुम्हें न भूलना चाहिये। हां, ठीक, लेकिन····कहो मित्र क्या कह रहे हो। तुम्हीं बतलाओ, मैं, बतलाऊं, हाँ, कहो क्या बतलाऊं, कि मैं उसे कैसे तकलीफ़ पहुंचाऊं।

धन्य है, रे मित्र तूने मेरे जवानतक पकड़ ली। धन्य है रे जड़ात्मा ! तेरे उदात्त विचारोंको, धन्य है तेरी सहनशीलताको धन्य है तेरे परोपकारको। + + उसके मुखारविन्दसे सहसा निकल पड़ा प्रेम !

प्रेम ! हा ! प्रेम !!!

कितनी कोमल कितनी मधुर वाणी है, प्रेममें पवित्रता है—प्रेम पावन है। मानव जाति क्या प्रेमका सच्चा अर्थ जान सकती है ? शायद नहीं, क्योंकि मानव-में स्वार्थकी मात्रा अधिक होती है। किन्तु प्रेम एक दैवी साधना है। प्रेम, एक कड़ुआ प्याला है जो कि पीनेसे मीठा, पर वास्तवमें कड़ुआ होता है। परन्तु उसे पीकर मानव अमर हो जाता है।

मानव शरीर तो ४ दिनका होता है; पर प्रेम अजर अमर होता है। प्रेम आत्मासे होता है, न कि शरीरसे।

वासना पूर्तिको प्रेम मूर्ख लोग ही कहते हैं। प्रेम भोग नहीं तपस्या है। संसार क्षणभंगुर है। मानवजीवन कितना मूल्यवान है, इसका पता कोई विरले ही पाते हैं।

यौवन एक नशा है, जिसमें मानव अपना विवेक अपना कर्त्तव्य भूल जाता है। यौवनकी बाढ़में उठने वाली तरंगोंमें मानव इन्द्रिय सुखोंको ही प्रेम समझ बैठता है। इसे ही सबसे बड़ी मूर्खता कहते हैं।

प्रेम, पूर्व जन्मका संस्कार होता है। प्रेम न तो लगानेसे लगता है न हटानेसे हटता है। यौवनकी बाढ़ हटनेपर रह जाती – बालुकाकी तरह भोगनेके लिये पापावली बच जाती है। प्रेमसे पाप नहीं, प्रेम वह वस्तु है जिसे मानवका नाम अजर अमर हो जाता है।

प्रेम सुदामाने महान् योगीराज श्रीकृष्णचन्द्रसे पाया था। प्रेम सद्भावनाओंका भाण्डार है। प्रेम मुक्तिका मार्ग है। प्रेममें महान् शक्ति है। प्रेमी इस आसार संसारमें विरले ही हुआ करते हैं।

प्रेम वही प्रेम है जो कि भरतने रामके प्रति दर्शाया था। और प्रेममें दूध पानी दीखता है, और पानी मछली दीख पड़ता है। सच्चे प्रेमी नरक, और स्वर्गमें में भी साथ रहते हैं। प्रत्येक प्राणीमें ईश्वर वास करता है।

सच्चा प्रेम करना ईश्वरसे प्रेम करना होता है। प्रेममें छल नहीं, प्रेममें कपट नहीं। प्रेमसे बढ़कर तपस्या नहीं। प्रेमसे ही ईश्वर मिलते हैं।

प्रेम ! प्रेम !! प्रेम !!!

क्या मानव प्रेमका सच्चा अर्थ जाननेकी कोशिश कर सकता है ? शायद करे।

# प्रेय-श्रेय

रचयिता—श्री गंगाप्रसाद "कौशल"

प्रेय श्रेय में बंधा हुआ मन,
अविवेकी क्या जान सकेगा, कौन कहाँ किसका है वन्धन ?
प्रेय श्रेय मिलकर हैं आते,
दोनों ही हैं एक दिखाते;
उनकी मायामें फंस जाता, अविवेकी अदूरदर्शी जन।
सदा प्रेय को वह शुभ कहता
भोगों में है डूबा रहता
पुत्र, कलत्र आदि में ही वह समझ रहा है स्वर्गिक जीवन।
त्यागी किन्तु हंसमतिवाला,
रखता सुन्दर ज्ञान निराला।
छोड़ प्रेयको सदा श्रेय पर करे निछावर वह तन मन धन।
प्रेय सदा बन्धन का कारण
करता है कब कष्ट निवारण ?
साधु श्रेय को अपना कर ही, करता जगका पार विकट वन।

# नाविक से

रचयिता – कुमारी शैलवाला, रस्तोगी 'शैल' ग र र

ओ नाविक नैया खेता चल,
उत्ताल लहर डगमग नैया,
है बूड़ रही जीवन नैया!
है आश अरे अब भी बाकी बस आगे आगे बढ़ता चल।
ओ नाविक नैया खेता चल।
क्या कहा न दिखता आरपार
छाया है मग में अन्धकार
नैराश्य-निशा बढ़ती आती आशा है तेरी रही मचल।
ओ नाविक नैया खेता चल।

है टूट गई पतवार अरे,
उर में छाया नैराश्य अरे,
पर अरे न तब भी छोड़ आश, बाधायें होंगी तुझे सरल।
ओ नाविक नैया खेता चल।
आशायें जातीं जाने दे,
बाधायें आतीं—आने दे।
तू ध्यान लगा अपने पथ पर, निश्चय ही होगा आज सफल।
ओ नाविक नैया खेता चल॥

# निष्ठुर हेमन्त

रचयिता—श्री रघुनन्दन शास्त्री

बह चली उमङ्गोंमें सरिता लहरों में मञ्जुल गान लिए
लय करुणालय में होने को कोमल अविकल सुरतान लिए ;
मगमे शिथिलित गतिकर निर्मम ! उपहत निश्छल अभिसार किया
उमड़ी रसनिधि को कर हिमजड़ हर सरल सुभग शृङ्गार लिया ।
अलि थे बलि बलि जिसपर लाखों निज प्राणों का उपहार लिए
पीने, चिर-सञ्चित मधु रस को उन्मत्त मधुर झङ्कार लिए ;
लूटा उस नलिनी का यौवन अलियों का हर कल गान लिया
कलियों को रे ! क्यों मसल दिया कर तुहिन पात विम्लान किया ।
हे हृदयहीन ! हेमन्त ! निठुर ! उनमें थे कुछ अरमान भरे
जो स्वयं न कुछ भी त्याग सका वह क्या जाने बलिदान अरे ;
ऋतुपति के आगम पर तेरा होगा फिर यह अभिमान नहीं
क्या न्याय-विमुख शासक का भी होता है जगमें मान कहीं ?

# वसंत

( रचयिता—विकल )

मेरे घर तो पतझड़ आया, आया होगा जगमें वसन्त ।
मानव का हा ! मानव के संग,
दानव जैसा व्यवहार आज ।
चल रही तपोबल के गलपै,
पशुबल द्वारा तलवार आज ॥
क्या देख रही है आँख फाड़,
क्यों पड़ी हुई भूपर निढाल ।

उस जननी के उर से पूछा,
सड़ रहे जेल में जिसके लाल ॥
निर्जीव हुआ सारा शरीर,
रुक रही विकल आँखोंमें जान ।
आंसू बह बह कर कहते हैं,
रहते किसके सब दिन समान ।
जब उनके घर पतझड़ होगा, तब मेरे घर होगा वसन्त ।

# गीत

( रचयिता—श्री महावीरप्रसाद विद्यार्थी ; टेढ़ा-उन्नाव )

जल-थल अम्बर तलपर अङ्कित प्रभो ! अमिट इतिहास तुम्हारा।
मञ्जु उषा के स्वर्णाञ्चिल में,
नव-वसन्त के अन्तस्तल में,
कोमल कुसुमों के अधरों पर छलक रहा है हास तुम्हारा।
चञ्चल सरि के कल-कल स्वर में,
निर्झर के मधुमय झर-झर में
सागर-तल की लहर-लहर में उमड़ रहा उल्लास तुम्हारा।
तुम मयङ्क की विमल विभा में,
तुम दिनेश की दिव्य प्रभा में,
थिरक-थिरक कण-कण में करता नर्तन नित्य प्रकाश तुम्हारा।
तुम अक्षय, हे सर्वशक्तिमय,
करते सदा सृजन, पालन, लय,
प्रतिक्षण जग के रंगमंच पर होता रहता रास तुम्हारा।

# मुन्नू कहता

रचयिता—प्रो० माहेश्वरी सिंह 'महेश' एम० ए०

( विश्वासगीत )

इस फुलवारी के कोने में
चुप चुप शेफालिका मनोहर
शरदागम के साथ गिरा
देती है निज फूलोंको हर-हर
मुन्नू कहता इन फूलों को
उसने मेरे लिए गिराया —

इस फुलवारी के कोने में,
जब-जब आ मधुमास उमड़ता
डाल-डाल से ठौर-ठौर पर
बरबस पका आम चू पड़ता
मुन्नू कहता—इन आमों को
उसने मेरे लिए बिछाया—

इस फुलवारी के कोनेमें
बुल-बुल गौरैया गाती हैं
वे कण-कण में दिगदिगन्त में
स्नेह-सुधा बरसा जाती हैं
मुन्नू कहता इन दोनों ने
मुझको ही यह गान सुनाया —

इस फुलवारी के कोने में
घरमें रहता है वह माली
घूम रहा जिसका मन-जीवन
पत्ती-पत्ती डाली-डाली
मुन्नू कहता—माली का घर
पर मैं ने ही यह बनवाया—

Printed & Published by Baliram Gupta at General Printing Works Ltd. Benares Branch



सत्वं सुखे सञ्जयति

# सात्त्विक जीवन



मूल्य चार आ

सम्पादक - रलियाराम गुप्त

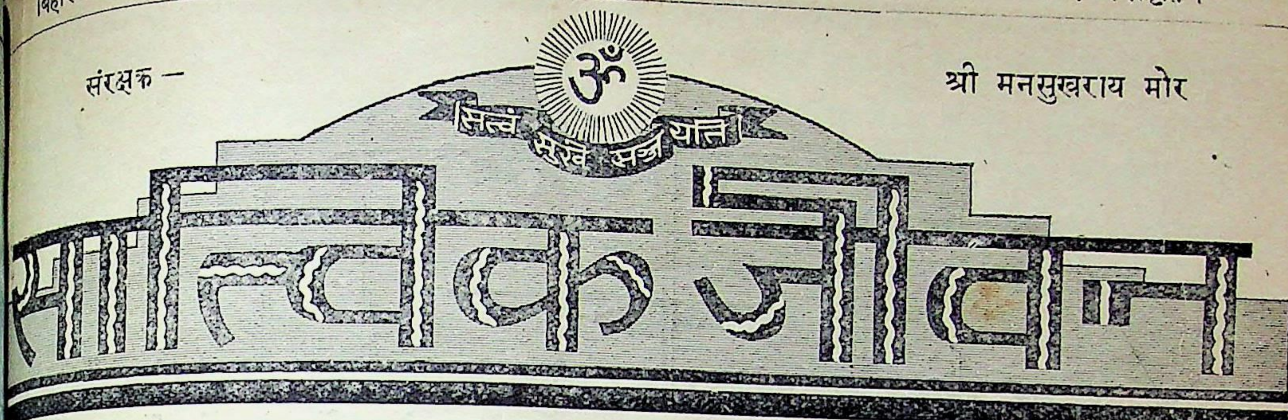
वर्ष ३, अङ्क ६

G. C. Ponnappa

# विषय-सूची


| विषय | | लेखक |
|---|---|---|
| १—सम्पादकीय | .... | .... |
| २—दीपक-परिचय ( कविता ) | .... | श्री महेन्द्रगिरि गोस्वामी |
| ३—महात्मा गान्धी के सद्विचार | .... | .... |
| ४—शास्त्रार्थ की दुर्दशा | .... | श्री इन्दिरारमण शास्त्री |
| ५—गांव की सफ़ाई | .... | श्री डा० जी० के० जैतली एम० बी० बी० एस० |
| ६—कर्मणा वर्णव्यवस्था का नैसर्गिक भाव | .... | श्री इन्दिरारमण शास्त्री |
| ७—नया संसार ( कविता ) | .... | श्री बाबूलाल दीक्षित "रसिक" |
| ८—मृत्यु-विज्ञान | .... | श्री गंगाप्रसाद गौड़ "नाहर" |
| ९—प्रेम की गुप्तशक्ति और प्रभाव | .... | श्री राल्फ वाल्डो ट्राईन |
| १०—नव ज्योति जगाने आई ( कविता ) | .... | श्री सुबोधचन्द्र शर्मा 'नूतन" |
| ११—जीवन का सुखमार्ग | .... | श्री पं० मोहन शर्मा |
| १२—आवाहन ( कविता ) | .... | श्री कुमारी शैलबाला "शैल" |
| १३—सत्यव्रत ( नाटक ) | .... | श्री नारायणप्रसादजी साधक |
| १४—मनुष्य या पशु | .... | श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा |

बिहार तथा पंजाब प्रान्तीय शिक्षाविभाग के द्वारा स्कूलों, कालेजों, और होस्टलों के लिए स्वीकृत।




सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

वर्ष ३ } काशी—सौर फाल्गुन, १९९९ Benares—March 1943. { अङ्क ६

# हर्ष समाचार

## पंजाब और बिहार के शिक्षा विभागों द्वारा सात्त्विक-जीवन की स्वीकृति

आज सात्त्विक-जीवन के प्रेमी पाठकों को हमें यह सूचित करते हुए परम हर्ष हो रहा है कि पंजाब और बिहार के शिक्षा-विभागों ने सात्त्विक-जीवन पत्रिका को अपने प्रान्तीय स्कूलों, कालेजों और होस्टलों के लिए स्वीकृत कर लिया है। पत्रिका के उपयोगी होने का यह ज्वलन्त प्रमाण है।

# सम्पादकीय

## महात्मा का महात्म्य

"मनसि-अन्यद्, वचसि-अन्यत्, कर्मणि-अन्यद् दुरात्मनाम्।
मनसि-एकं, वचसि-एकं कर्मणि-एकं महात्मनाम्।"
मह्यते=पूज्यत इति महान्;
महान् आत्मा=स्वभाव-आशयो यस्य, असौ महात्मा=महाशय इत्यर्थः।

इन व्युत्पत्तियों निर्वचनों और लक्षणोंके अनुसार महात्मा गान्धी सच्चे और पक्के 'महात्मा' हैं; इसमें सन्देह नहीं। यह बात सारी दुनियांमें सुप्रसिद्ध है; गांधीजीके विरोधी लोग भी उनके महत्त्व (महात्मा-पन) को हृदयसे स्वीकार करते हैं।

इसके पहले भी कई बार महात्माजीका लोकोत्तर महत्त्व विश्वमें विराड्रूपसे प्रकट हो चुका है; पर अबकी बार उसका तेज नितान्त अद्भुत और अत्यन्त प्रचण्ड रहा है।

वर्त्तमान अतिवृद्धावस्थामें, शरीर-शक्तिकी अनस्तिकल्पता-दशामें, तप-श्रम-सातत्य-जनित चिर-दुर्बलता और जरताकी स्थितिमें भी, जिस विलक्षण आत्मबलका प्रबल प्रताप महात्मा गान्धीने विश्वमें उद्योतित, प्रदीप्त किया और फैलाया है, वह सच-मुच अलौकिक अतिमानुष दिव्य-दैवत प्रविरल-महापुरुष-साध्य अनन्यसाधारण और परम आश्चर्यमय है।

इस महाप्रतापके तीव्रसंवेग प्रचण्ड प्रकाश-प्रवाहसे नाना-भ्रमान्धकारमयी, दिगन्त-व्यापिनी कुदृष्टि-पर्वतमाला, विधूनित (धुनी हुई) तूल (कपास-रूई) राशिकी तरह उड़ गई है। नीच-स्वार्थान्धङ्करणी कुत्सित क्रियात्मिका कृष्ण रात्रिकी पोल खुल जानेसे अतितरां घबराये हुए हिंस्र पेचकों (हिंसक उल्लुओं) के होश ऐसे उड़ गये कि उन्होंने अपनी विकर्मस्थता, पाखण्डिता, बैडालव्रतिकता, बकवृत्तिता, और हैतुकता-को छिपानेके लिये पेश की हुई सफ़ाईमें उन्मत्त प्रमत्त-प्रलापवत् अनाप-शनाप बकते हुए 'न बुध्यते इत्यपि बुद्धिसाध्यम्" इस नीति-सूक्तिको भी मात कर दिया; उन्हें अपनी प्रज्ञाके अपराध और दोषका ज्ञान भी नहीं रहा; उनके अपनी बेवक़ूफ़ी समझनेकी अक्ल भी बाकी नहीं रही; उन्हींके परापवाद-पैशु-न्याशयक रवन विरावण और वाक्छलमय प्रचारदोषसे स्वयं उनका भण्डाफोड़ हुआ।

इस प्रकार महात्मागान्धीके, "तपो नाऽनशनात्परं" रूप महाव्रतके आध्यात्मिक तेजःप्रभाव-प्रसारसे जो भ्रान्ति का परदा फ़ाश हुआ और सत्यका उजाला सारे विश्वमें फैला है, उससे सब मनीषियोंको भारतवर्षकी वास्तविक स्थिति तथा अत्रत्य ब्रिटिशराजनीतिका सच्चा रूप, प्रत्यक्षवत् अपरोक्ष दिखाई पड़ा होगा। यदि कुछ कुदृष्टियोंमें निखिल भुवनालोक अखण्ड व्याप्तिमत् गान्धेय महातेज न पड़ा हो, अथवा अन्यथा प्रतिभा-सित हुआ हो, तो भी उसका प्रताप और माहात्म्य कम नहीं होता; उलूकान्धङ्करण दिनेश-प्रकाशसे घूक-निकरकी दर्शनशक्ति कुण्ठित हो जाती है; इसमें आश्चर्य नहीं; और न उससे सूर्य-प्रभाकी तेजस्विता और विश्वचक्षुःप्रकाशकता तथा लोक-पूषणतामें कोई बाधा ही होती।

देश-विदेशके बड़े-बड़े सज्जनोंकी विनीत पुकार, विनम्र प्रार्थना, और लोकविश्रुत-प्रभावशाली पुरुषोंकी जबर्दस्त, ज़ोरदार सिफ़ारिशपर भी जिस किलेमें, महात्माजीसे मिलनेके लिये बड़े-से-बड़े किसी लोक-नायकको भी, प्रवेश नहीं मिला ; उसीका फाटक, गान्धेय प्रतापके अनिरुद्ध धक्केसे बेलाग खुल गया और सर आगा खाँका महल, तीन सप्ताह तक प्रायः सबके लिये, बिना शर्त्त, निःशुल्क उन्मुक्तद्वार हो गया था। श्रीराजगोपालाचार्य ऐसे सज्जनको भी महात्माजीसे मिलनेका हुक्म, जिस ब्रिटिश शासनने नहीं दिया, वही गान्धीजीके जाग्रत्प्रताप आत्मबलके सामने कैसे झुकी, यह सर्वविदित है। तीन सप्ताहतक सैकड़ों आदमी बेरोक-टोक उनके पास जाते-आते रहे ; फिर भी अतिच्छुक ( वैसा होना नापसंद करनेवाली ) राजशक्ति उन्हें बाधा देनेमें असमर्थ रही। जिन बातोंको शासक-वर्ग दबाना ( प्रकाशमें नहीं आने देना ) चाहता था, उन्हें प्रकाशित करनेपर वही स्वयमेव लाचार हो गया। इस सिल-सिलेमें अंग्रेज राज्याधिकारियोंकी मनोवृत्ति और उनके राजनीतिज्ञोंकी वादशैली, विचारपद्धति और तर्कशक्तिकी परीक्षा भी हो गई है ; जिससे उनकी जगद्वञ्चना, तथा कूटचातुरी दुनियांके सामने बिल्कुल नङ्गी हो पड़ी है। यह सब हैं, महात्माजी के आध्यात्मिक शक्ति की करामात ( करिश्मे, अद्भुत व्यापार वा चमत्कार )।

परन्तु इस प्रकारकी सामयिक गौण—अल्पफल-विभूतियां ही महात्माजीके परम अहिंसामय सत्याग्रह कर्मयोग की मुख्य सिद्धियां नहीं हैं। गान्धेय अहिंसावाद और सत्कृत्य वर्त्म का प्रधान ध्येय तथा अन्तिम परिणाम है—अखिल विश्वकी सुख-शान्ति, समस्त मानव-समाजकी समयोगक्षेमकरी सुव्यवस्था अथ च भूमण्डलसे मानव-मात्स्यन्याय, वैर-विद्वेषभाव, परस्परोत्पीड़न, नीच स्वार्थपरायणता, अनुचित-परिग्रहपरता, आसुर आवेशाभिनिवेश और शैतानिक शासनको हटाकर; सर्वत्र रामराज्य, दैवतसाम्राज्य, सद्राज्य, सुराज्य, स्वराज्य वा स्वाराज्यका सुसंस्थापन करना। इसी विश्व-सुख शान्तिमय सद्ध्येयकी सिद्धि और सुपरिणामकी प्राप्ति के लिये लोक-हितैषी महात्मागान्धीकी महती साधना और उग्र तपश्चर्या है।

महात्माजी केवल भारत अथवा समस्त विश्वकी मानव-जातिमात्रके ही योग-क्षेम-चिन्तक नहीं; अपि तु 'सर्वभूतहितेरत' प्राणिमात्र के हितैषी हैं, वह सब जीवधारियोंमें अधिक चेतन मनुष्य से यह आशा करते हैं कि यह संसारयात्रामें ऐसा चले, वैसा आचार-व्यवहार करे, जिसके चलते अनुचित रूपसे तृण न हिले, किसी प्राणीको चोट लगनेकी तो बात ही असं-भव हो। मानवप्रकृतिकी प्रगतिशीलता और हृदयपरि-वर्त्तनकी स्वरूपयोग्यतापर अटल विश्वास करके गान्धीजीने विश्वमें परस्पर-सहकारिता, एकता, समात्मभाव, अहिंसावृत्ति, सत्यनिष्ठा,—एक शब्दमें सच्ची 'मानवता'—फैलाने और तद्द्वारा स्थिर सुख-शान्ति कायम करनेका दृढ़ सङ्कल्प किया और 'कष्टं-कर्म' मय, उग्रतपोमय, कठिन-कठोर, कड़वा बीड़ा उठाया है।

इस कारण, अजातशत्रु गान्धी दूसरोंके पापोंका प्रायश्चित्त भी स्वयं करते और पराऽपराधके दण्ड-स्वरूप आत्मशातन भोगते हैं। यह उनकी विश्वके साथ समात्मता, एकसूत्रता, आत्मीयता वा अनन्यताके आध्यात्मिक भावका परिणाम है।

ऐसे महामहिम विश्व-सुखशान्तिके प्रवर्त्तक, अहिंसा-वतार, सत्यधुरन्धर ईश्वर दूतके प्रति ब्रिटिश-साम्राज्य शाह के जो भाव, कर्म और कर्त्तृत्व रहे हैं, उनके लिये आश्चर्य शोच वा परिदेवन करना बेकार है। इस स्वार्थान्ध संसारमें ऐसे अन्धेर बराबर होते आये हैं।

महात्मा सुकरात को विष पिलाकर मार डालनेवाले और साक्षात् ईश्वरपुत्र प्रभु ईसाको भी शूलीपर चढ़ानेवाले महाजन, इस दुनियांमें हुए हैं।

अस्तु, अन्याय्य अधर्म्य और परार्थ-परमार्थके विरोधी स्वार्थभावसे अन्धी हुई कुदृष्टियोंमें गान्धेय सद्वादकी लोकोपयोगिता और परम उपादेयता भले ही न प्रतीत हो ; भले ही नीच-स्वार्थमय अमानुष कुसंस्कारवाले लोग, आज गान्धीजीके सत्कार्योंका अवरोध-विरोध करें और उन्हें सतावें तथा साँसत वा यातना दें, पर, संसारकी भावी पीढ़ी वैसे लोगों-को क्या समझेगी और उनकी दुर्जनताके काले इति-हासको किस रोशनीमें देखेगी, इसका आभास उनके अपराधी हृदयको स्वतः मिलता होगा—'कृतापराधः स्वयमेव शङ्कते।" परन्तु महात्मा गान्धीका सुरदुर्लभ माहात्म्य आज भी प्रायः समस्त भूतलपर व्याप्त और विख्यात हो गया है ; आर्य भारतके तो वह परमाराध्य देव और ईश्वरावतारवत् सेव्य उपासनीय तथा अनु-सरणीय हैं। भारतवर्षके जङ्गली, देहाती-ग्रामीण, पहाड़ी और जङ्गम जातियोंसे लेकर उच्च शिक्षित नागरिक-पर्यन्त लोग, गान्धीजीको अपना सच्चा प्रति-सरण्य और परम श्रद्धेय लोकपुरोहित वा 'महानेता' मानते हैं। हम यह निःसङ्कोच, अशङ्क, और निर्भय हो, कह सकते हैं कि संसारमें आजतक ऐसा कोई दूसरा महापुरुष ( ऋषि, धर्माचार्य, लोकनेता, वा अव-तार पुरुष भी ) नहीं हुआ जो अपने जीवन-काल में ही, गान्धीजी के बराबर, विश्वव्यापी यशः ख्याति, नाम-कीर्त्ति, महत्त्व, माहात्म्य, मर्यादा-प्रतिष्ठा, प्रताप-प्रभाव, महाजन-परिग्रह, लोकमान्यता, गुरुत्व-पौरो-हित्य वा जननेतृत्व प्राप्त कर सका हो। इसीसे महात्मा जीके लोकोत्तर भाव-कर्म-कर्तृत्व, आध्यात्मिकता तपः श्रमणता, सच्चारित्र, सर्वभूतहितैषणा, परम निर्वैरत्व, अजातशत्रुत्व और महर्षित्व ( विश्वयोगक्षेम-सत्सा-धनोपज्ञातृत्व, सफल-मन्त्रद्रष्टृत्व ) आदि महात्मोचित सद्गुणकर्मों का प्रत्यक्षवत् अपरोक्ष अनुभव किया जा सकता है। तात्त्विक माहात्म्य की दृष्टि से तुलना करने पर हम गान्धीजीको भगवान् पार्श्वनाथ, भगवान् बुद्ध, महात्मा सुकरात, प्रभु ईसा, महापुरुष टालसटाय प्रभृति कतिपय पुण्यश्लोक ईश-विभूतियों में अन्यतम पाते हैं।

इस प्रकार अपने जीवन-काल में ही महात्मा गान्धी का यशःशरीर सारे विश्व में प्रकाशमान, सुप्र-तिष्ठित और अजर-अमर हो गया है। यदि इस जीवन्मुक्त परम कृत-कृत्य महात्मा का निधन भी हो जाता, तो भी उनके लिये शोच्यता का कोई हेतु नहीं होता ; क्योंकि परलोकमें भी सर्वश्रेष्ठ कीर्त्तिमान्, विजयशील—सर्वोत्कर्षेण वर्त्तमान हो कर वह विराजते। शोच्य तो वे लोग होते हैं, जिनका जीवन कल्मषमय, कलुषित होता है। उज्ज्वल—चरित गांधीके लिये शोक करने का कोई कारण नहीं था। फिर भी देश-विदेश के उत्तरदायी महाजन को उनके निधनकी संभावनासे जो उद्विग्नता, विकलता थी, वह विश्वकल्याणको खतरे में पड़े रहने के भय से ही उपनत हुई थी। इस सर्वतोमुख वैर-विरोधमय परस्पर हिंस्र संसार में, एकमात्र गांधीजी के सिवा कोई दूसरी शक्ति अथवा ईशविभूति इस समय नहीं है, और न निकट भविष्य में होनहार दिखाई पड़ती है, जो मानव-जाति को सर्वपथीन पतन से बचा लेने के लिये शान्तिमय, अहिंसापूर्ण, सन्मार्ग प्रशस्त करे। इसलिये महात्माजी के अमोघ जीवन की अत्यन्त आवश्यकता, सामान्यतः सम्पूर्ण विश्व—विशेषतः नितरां पददलित भारत—के उद्धार के लिये नितान्त अपेक्षित थी, और है। इसी-लिये देश-विदेश के सभी सयाने लोग महात्माजी के सञ्जीवन के लिये लालायित और उसे सङ्कटापन्न देख, बहुत विह्वल हो गये थे।

भारतवर्ष के साथ ही विश्वमानव-समाज और प्राणिमात्र के हितसाधक महात्मा गान्धी का वह जग-दुर्जीवक जीवन, सबके सौभाग्य से एक बार पुनः बच गया, यह हमारे पूर्वपुण्य का सुविपाक है। विगत १० फरवरी १९४३ को आरम्भ होकर ३ मार्च १९४३ तक चलता हुआ २१ दिनों का अनशन महाव्रत समाप्त कर उसकी सफल पारणा के बाद, महात्माजी अनुदिन स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं; यह दुनियां के दरिद्रनारायण-पददलित लोगों के मृतकप्राय कलेवरमें महाप्राण-सञ्चार-सा हो रहा है। यह देख, और जान-सुनकर किसे न परम हर्षोल्लास होगा। ईश्वर अपना जगदुद्धारका कार्यक्रम पूरा कराने के लिये गान्धीजी को पूर्ण स्वस्वस्थ शतायु करे; यही हमारी हार्दिक अभ्यर्थना और आत्माशीः है!

# दीपक-परिचय

लेखक—श्री महेन्द्रगिरि गोस्वामी

मैं जलता बुझ जाया करता हूं।

मैं प्यार भरे परवानों का,
जिनको जीवन का नेह नहीं।
जिस पास मेरे जो आते हैं,
जिनको तन की परवाह नहीं।

मैं ऐसे ही दीवानों के, बस प्राण गँवाया करता हूं।
मैं जलता बुझ जाया करता हूं।

मैं पथ दरशाता औरोंको,
पर मेरे घर अँधियारा है।
मैं सदा अँधेरे में रहता,
यह ढंग मेरा ही न्यारा है।

जो खीझ उठे हैं जीवन से, उनको झुलसाया करता हूं।
मैं जलता बुझ जाया करता हूं॥

मेरा जीवन है थोड़ा सा,
मैं प्रायः नष्ट हो जाता हूं।
मैं पलभर तो हँसता रहता,
फिर क्षण भर में रो जाता हूँ।

मैं जग को रोने-हँसने का, एक पाठ पढ़ाया करता हूं।
मैं जलता बुझ जाया करता हूं॥

युवती भी मुझ से नेह करें,
निज चल ओट किए अञ्चलतीं।
लख जीवन-ज्योति बुझी मेरी,
वह रह जातीं हाथों मलतीं।

बसइसी तरह से लुक छिपकर, मैं खेल खिलाया करता हूं।
मैं जलता बुझ जाया करता हूं॥

# महात्मा गान्धी के सद्विचार

## अहिंसा और उसकी शक्ति

"अहिंसा मानो पूर्ण निर्दोषता ही है। पूर्ण अहिंसा का अर्थ है प्राणिमात्र के प्रति दुर्भाव का पूर्ण अभाव!"

"अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्यजाति एक लक्ष्यकी ओर स्वभावतः, परन्तु अनजान में, जा रही है।" + + +

"अहिंसा एक महाव्रत है। तलवार की धारपर चलनेसे भी कठिन है। देहधारी के लिये उसका सोलह आना पालन असम्भव है। उसके पालन के लिये घोर तपश्चर्या की आवश्यकता है। तपश्चर्या का अर्थ यहां त्याग और ज्ञान करना चाहिये।" +

"अहिंसा सत्य का प्राण है। उसके बिना मनुष्य पशु है।" + +

"मेरे लिये सत्यसे परे कोई धर्म नहीं है, और अहिंसा से बढ़ कर कोई परम कर्त्तव्य नहीं है। 'सत्यान्नास्ति परो धर्मः' और 'अहिंसा परमो धर्मः' इन दो सूत्रों में धर्म शब्द के अर्थ भिन्न हैं। इनके मानी हैं 'सत्य से बढ़ कर कोई ध्येय नहीं, और अहिंसा से बढ़ कर कोई कर्त्तव्य नहीं है। इस कर्त्तव्य को करते-करते ही आदमी सत्यकी पूजा कर सकता है। सत्य की पूजा का दूसरा कोई साधन नहीं है। सत्य के लिये देशके नाश का भी साक्षी बनना पड़े तो बनना चाहिये; देश को छोड़ना पड़े तो छोड़ना चाहिये००० ।०००यदि मेरा कोई सिद्धान्त कहा जाय तो वह इतना ही है। पर इसमें 'गाँधीवाद' जैसी कोई चीज़ नहीं है ।००० मैंने जो कुछ लिखा है, वह मैंने जो कुछ किया है, उसका वर्णन है; और मैंने जो कुछ किया है, वही सत्य और अहिंसा की सबसे बड़ी टीका (व्याख्या है)।"

## अहिंसा प्रेमकी पराकाष्ठा है

"००० दूसरेके लिये प्राणार्पण करना प्रेमकी पराकाष्ठा है और उसका शास्त्रीय नाम—अहिंसा है; अर्थात् यों कह सकते हैं कि अहिंसा ही सेवा है। संसार में हम देखते हैं कि जीवन और मृत्यु का युद्ध होता रहता है, परन्तु दोनोंका परिणाम मृत्यु नहीं, जीवन है।" + +

"अहिंसा प्रचण्ड शस्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है। वह भीरुसे दूर भागती है। वह वीर पुरुष की शोभा है, उसका सर्वस्व है। यह शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं है; यह चेतन है। यह आत्मा विशेष गुण है।"

\+ + +

"सत्य के बाद असल में अहिंसा ही संसार में बड़ी-से-बड़ी शक्रिय शक्ति है। विफल तो वह कभी जाती नहीं। हिंसा सिर्फ ऊपरसे सफल मालूम पड़ती है।" + +

"अहिंसा की शक्ति अपरिमेय है; उसी तरह अहिंसक की शक्ति भी अतुलित है। अहिंसक स्वयं कुछ नहीं करता; उसका प्रेरक ईश्वर होता है।००० पूर्ण सत्याग्रही याने ईश्वर का पूर्ण अवतार ।०००००० इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है कि यह संसार इस तरहका अवतार निर्माण करने की प्रयोगशाला है। हमें यह श्रद्धा रखनी चाहिये कि हम सब मिलकर अगर अंशरूप से तैयारी करें तो कभी-न-कभी पूर्ण अवतार प्रकट अवश्य ही होगा।००००"

"अहिंसा – यह मानवजाति के पास एक ऐसी प्रबल-से-प्रबल शक्ति पड़ी हुई है कि जिसका कोई पार

नहीं। मनुष्य की बुद्धि ने संसार के जो प्रचण्ड से प्रचण्ड अस्त्र-शस्त्र बनाये हैं; उनसे भी प्रचण्ड यह अहिंसा की शक्ति है। संहार कोई मानव-धर्म नहीं है। मनुष्य अपने भाई को मार कर नहीं, बल्कि जरूरत हो तो उसके हाथसे मर जाने को तैयार रहकर ही स्वतन्त्रतासे जीवित रहता है। हत्या या अन्य प्रकारकी हिंसा, फिर चाहे वह किसी भी कारण की गई हो, मानव-जाति के विरुद्ध एक अक्षम्य अपराध है।"

\+ + +

"००० मनुष्य संहार पर अपना निर्वाह नहीं करते हैं। आत्मप्रेम की बदौलत औरों के प्रति आदर-भाव अवश्य ही उत्पन्न होता है। राष्ट्रों में एकता इसलिये होती है कि राष्ट्रों के अङ्गभूत लोग परस्पर आदरभाव रखते हैं। किसी दिन हमारा राष्ट्रीय न्याय हमें सारे विश्व तक व्याप्त करना पड़ेगा, जैसा कि हमने अपने कौटुम्बिक न्याय को राष्ट्रों के—एक विस्तृत कुटुम्ब के—निर्माण में व्याप्त किया है।

\+ + +

"संसार आज इसलिये खड़ा है कि यहां पर घृणा से प्रेमकी मात्रा अधिक है. असत्य से सत्य अधिक है। धोकेबाजी और जोर-जब्र तो बीमारियां हैं, सत्य और अहिंसा स्वास्थ्य हैं। यह बात कि संसार अभी तक नष्ट नहीं हो गया है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि संसार में रोग से अधिक स्वास्थ्य है।"

\+ + +

"मेरी आज भी वही ज्वलन्त श्रद्धा है कि संसार के समस्त देशों में भारत ही एक ऐसा देश है जो अहिंसा की कला सीख सकता है।"

\+ + +

"शस्त्रीकरण की दौड़ में शामिल होना हिन्दुस्तान के लिये आत्मघात करना है। भारत अगर अहिंसा को गँवा देता है, तो संसार की अन्तिम आशा पर पानी फिर जाता है।"

\+ + +

"००० मैं जानता हूं कि तार्किक चिन्तन की बड़ी-से-बड़ी मात्रा भी पृथ्वी पर अहिंसा का राज्य न स्थापित कर सकेगी। केवल एक ही चीज़ यह काम कर सकती है, और वह है राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने में अहिंसा के सामर्थ्य को बिना किसी सन्देह के प्रदर्शित कर सकने की भारत को योग्यता।"

\+ + ×

"अगर हिन्दुस्तान जगत् को अहिंसा का सन्देश न दे सका तो यह तबाही आज या कल आने ही वाली है, और कलके बदले आज इसके आने की संभावना अधिक है। जगत् युद्ध के शापसे बचना चाहता है, पर कैसे बचे, इसका उसे पता नहीं चलता। यह चाबी हिन्दुस्तान के हाथ में है।"

( गान्धी-वाणी से सङ्कलित )

## आवश्यक सूचना !

सात्त्विक-जीवन के सन्देश को भारतवर्षके कोने कोने में पहुंचानेके लिये और पत्र को अधिकाधिक उपयोगी एवं लोकप्रिय बनाने की दृष्टिसे हमने यह स्कीम बनाई है कि जो सज्जन सात्त्विक-जीवनके ५ नये ग्राहक एक वर्षके लिये बनावेंगे उनको सात्त्विक-जीवन एक वर्ष के लिये पारितोषिकके रूपमें भेजा जायेगा। अथवा यदि वे चाहेंगे तो सात्त्विक-जीवन-ग्रन्थमाला की ३) की पुस्तकें पुरस्कार-स्वरूप भेजी जावेंगी।

व्यवस्थापक।

# जीवनको उन्नत बनानेवाले हमारे कुछ प्रकाशन

## ( १ ) जीवन सौरभ—

प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि साधारण परिस्थितिमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको पढ़ें और अपनी सन्तानके हाथमें दें। मूल्य केवल ।-)।

## ( २ ) देशके नौनिहालोंसे—

नवयुवकों एवं छात्र तथा छात्राओंके लिये अनुपम उपहार। उन नवयुवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशकी आशा है जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। मूल्य केवल -)

## ( ३ ) सदाचार का महत्व—

पुस्तकके सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय। सदाचार ही जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी कुञ्जी है इसको कौन नहीं जानता। पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हुए हैं तथा अपनी और देशकी हानि कर रहे हैं वह सर्व विदित है। जो भारत संसारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसलिये उसका पतन हो गया है। इस समय देशके युवकोंको सन्मार्गपर ले जानेकी आवश्यकता है। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल -)

## ( ४ ) स्वास्थ्य-पत्र—

यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ रहना ही मृत्यु है तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक धनहीन स्वस्थ जीवन दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्ग-तुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुखपूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है। २०"×३०" साइजके इमिटेशन आर्ट पेपरपर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बंधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है, इसलिये कि यह एक स्थायी चीज हो जाता है। मूल्य केवल =)

## ( ५ ) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास

स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है वह व्यर्थ ही जीवन-यापन करता है। जो देशके प्रति कुछ त्याग नहीं करता वह पशु सदृश है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र-सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन तो अवश्य हुआ है, किन्तु संक्षेपमें, सबके योग्य सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल -)

## ( ६ ) कांग्रेस चार्ट—

इसमें बड़े सुबोध और सरल ढङ्गसे कांग्रेसके जन्मकालसे लेकर अब तकके अधिवेशनोंका विवरण, सभापति स्थान, समयकी सूचना और उस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमिटेशन आर्ट पेपरपर साइज २०"×३०" दो रङ्गोंकी मनोहर, छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। **जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०,** "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# शास्त्रार्थ की दुर्दशा

लेखक—आचार्य श्री इन्दिरारमण शास्त्री

दुनिया में दो प्रकार के विचारवाले लोग हैं ; एक तो वे जो ऐतिहासिक दृष्टिसे शास्त्रार्थ-विचार करते हैं और दूसरे वे जो सभी बातों को सदैव पुराने शास्त्रों से ही सिद्ध करना चाहते हैं।

प्रथम प्रकार के विचारवाले लोगों के मतानुसार पुराने शास्त्रोंकी सभी बातें सर्वदा के लिये उपयुक्त नहीं हैं। उनमें बहुत विषय कालिक, ( समय-विशेष के लिये ) हैं। **ऐसे लोग यह मानते हैं कि** मनुष्य के धर्म ( कर्त्तव्य, धारण-पोषण के साधन ) सदा एक-से नहीं होते, वे अवस्था के अनुसार बदलते रहते हैं—"धर्मो ह्यावस्थिकः स्मृतः" "अन्यो धर्मः समस्थस्य, विषमस्थस्य चाऽपरः।" देश, काल, निमित्त आदि के भेद से भी धर्म में भेद हो जाया करता है—"देश-काल-निमित्तानां भेदैर्धर्मो विभिद्यते।" एक ही समय, सबके हितार्थ, और सदा के लिये कोई आचार प्रवर्तित भी नहीं किया जा सकता—"येनैवान्यः प्रभवति, सोऽपरान्बाधते पुनः ; न हि सर्वहितः कश्चिदाचारः सम्प्रवर्त्तते ; आचाराणामनैकाग्र्यं सर्वेषामेव लक्षयेत्" अतः देश, काल, हेतु, परिस्थिति, पात्र आदि के अनुसार यथाप्रयोजन समय-समय पर मनुष्यों के धर्म में तथा उसके नियामक शास्त्र में भी यथेष्ट परिवर्तन हुआ करता है—"प्रतिमन्वन्तरं चैवं श्रुतिरन्या विधीयते ; कृते कृते स्मृतेर्विप्र, प्रणेता जायते मनुः।" इस प्रकार, प्रथम मतवालों का यह कहना है कि प्राचीनतम शास्त्रों से ही सर्वदा काम नहीं चल सकता, अतः युगधर्म के प्रवर्त्तक नये-नये शास्त्रों का प्रणयन आवश्यक है, और पुरा-काल से ऐसा ही होता भी आया है। यही कारण है कि विभिन्न प्रकार के आचार-व्यवहारों के प्रवर्त्तक नाना धर्मशास्त्र, युगधर्मानुसार बनते आये हैं, जो अनेक अंशों में परस्पर विरुद्धार्थक भी हैं। शास्त्रपरिवर्त्तनवादी ( प्रकृत प्रथम पक्ष ) के मत से वैसे शास्त्रीय विरोधों का परिहार ऐतिहासिक दृष्टि से सहज हो जाता है ; अर्थात् यह मान लिया जाता है कि पुराने शास्त्रों के जिन अर्थों का अनुष्ठान अब समाज द्वारा नहीं हो रहा है, और एक ही विषय के विधि, निषेध, त्याग, अनुष्ठान, प्रायश्चित्त आदि में विभिन्न धर्मशास्त्रों द्वारा जो न्यूनाधिक्य, तारतम्य, लघु-गुरुभाव, और विरुद्धार्थत्व प्रतीत होते हैं, वे सब कालिक विषय हैं ; नित्य ( शाश्वतिक ) शास्त्रार्थ नहीं। सुतरां उनके विरोध का परिहार, वा तद्विषयक शङ्का का समाधान, यों है कि पुराने शास्त्रों के जो अर्थ साम्प्रतिक जन-समाज में अनुष्ठित नहीं हो रहे हैं ( जनता द्वारा जिनका त्याग हो गया है ) वे, तथा स्मृति-भेद से विहित-निषिद्ध, तारताम्यादियुक्त, और परस्पर प्रतीयमान कर्म, तत्तकाल के लिये थे, न कि सर्वदा के लिये ; अतः उनमें ऐतिहासिक विचार-पद्धति से वस्तुतः कोई विरोध नहीं, प्रत्युत सब सङ्गति ठीक बैठ जाती है। जो पुराने शास्त्रार्थ ( शास्त्रविहित आचार-व्यवहार ) काल-क्रम से त्यक्त हो गये, वा अपनी स्वाभाविक मौत से मर चुके हैं, उनके लिये परिदेवना और उन्हें पुनर्जीवित करने की व्यर्थ चेष्टा करना बेकार है। युगाऽनुरूप नये धर्म और धर्मशास्त्र का प्रवर्तन होता ही रहता है ; अतः पुराने और नये, ( पूर्वोत्तर काल-क्रम से समय-समय पर आवश्यकता के अनुसार तत्तद् युगाचार्यों द्वारा बनाये गये ) सभी शास्त्रों वा धर्म-ग्रन्थों को सदा के

लिये एकरूप परम मान, वा स्वतःप्रमाण मान कर, उनकी एकवाक्यता सिद्ध करनेका अभिनिवेश उचित नहीं है।

किन्तु दूसरे प्रकार के विचारवाले लोग वे हैं, जो कि, सभी बातों के लिये प्राचीन शास्त्रों को ही परम प्रमाण मानते हैं, सब आधुनिक अर्थों को भी पुराने शास्त्रों से ही निकालने का प्रयत्न करते हैं। ऐसी मनोवृत्ति के लोगों में, एकवाक्यतामूलक मीमांसक-विचारपद्धतिवाले सज्जन तो मध्यकाल से ही इस देश में चले आ रहे हैं, जिन्होंने विभिन्न इतिहास-कालीन सभी शास्त्रों की एकवाक्यता सिद्ध करने के प्रयत्न में बड़े-बड़े प्रौढ़ ग्रन्थ लिख डाले हैं। उन लोगों का सिद्धान्त, चाहे गलत हो, पर उनकी विचारपद्धति तर्क-युक्त और बुद्धिमञ्जक है; इसलिये उनके शास्त्रार्थ से प्रतिभोन्मेष में सहायता और बहुत व्यावहारिक विषयों के निर्णायक न्याय (वाचोयुक्ति) की कुञ्जी भी मिलती है। अतः ऐसे लोगों की बात तो कुछ समझ में आती है।

परन्तु अर्वाकालिक शास्त्रप्रामाण्यवादियों में तो ऐसे सज्जन भी देखे जाते हैं जो शास्त्रों के अविषय-भूत सभी आधुनिक पदार्थों को भी पुरातन शास्त्रों से ही प्रमाणित कर देनेकी धुन में अर्थ और अनर्थ का भी विवेक नहीं करते। कई विद्वानों ने आधुनिक विज्ञानज आविष्कारों (रेल, तार, बिजली, जहाज, वायुयान, घड़ी, बन्दूक, तोप, मशीनगन, टैंक आदि) और सामाजिक क्रान्तिमय विचारों, व्यवस्थाओं तथा कार्य-पद्धतियों (लोकतन्त्र, प्रजातन्त्र, साम्यवाद, वर्गवाद, समाजवाद आदि) के प्रबल प्रमाण भी वेद-शास्त्रों में सिद्ध किये हैं। वेद के मूल मन्त्रों से भी इन विषयों का प्रतिपादन किया जाता है।

निष्पक्ष विचार करनेवाला यथार्थदर्शी कोई भी सज्जन कह सकता है कि उपर्युक्त प्रकार, शास्त्रार्थ निकालनेसे वस्तुतत्त्व और ऐतिहासिक तथ्य तो अवश्य ही नहीं प्रकाशित होता, प्रत्युत अनर्थ फैलता है। यह न तो आवश्यक है, नहीं सम्भव ही कि किसी एक ही प्राचीनतम शास्त्र में तीनों काल की सभी घटनाओं तथा व्यवस्थाओं का उल्लेख हो; ऐसा न होने से किसी शास्त्र की शास्त्रता, पूर्णता, महत्ता आदि में कुछ कमी भी नहीं आती; क्योंकि प्रत्येक विषय का शास्त्र, अपने समय की अवस्था-व्यवस्था के उपयुक्त स्वविषय का विधान करता हुआ स्वांश में चरितार्थ और प्रमाण होता है। वह यदि तीनों काल के सभी कार्यों का नियम-क्रम स्थिर न करे, जैसा करना असम्भव है, तो भी उसमें कोई न्यूनता वा अप्रामाणिकता नहीं होती। अतः किसी एक वा अनेक प्राचीन शास्त्र से, अनर्थ करके सभी उत्तरकालीन और अर्वाकालिक पदार्थों को सिद्ध करने का आग्रह सर्वथा अनुचित और ऐतिहासिक सत्यार्थ का विलोपक है।

सच्चे वेदार्थ के निर्णय के लिये 'इतिहास-पुराण' का अध्ययन-अनुसन्धान करना आवश्यक है; अन्यथा अनर्थोद्भावन द्वारा वेद प्रतारित होता (ठगा जाता) है :—

"इतिहास-पुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्;
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो, मामयं प्रतरिष्यति।"

अतः वेदार्थ-विचार वा शास्त्रार्थ-निर्णय करते समय, उस वेद-शास्त्र के समकालीन इतिहास-पुराण का अनुसन्धान करना नितान्त अपेक्षित है। जब तक यह न ज्ञात होगा कि जिस वेदसूक्त वा मन्त्र का अर्थ जिज्ञास्य है, उसका इतिहास-पुराण क्या है, तब तक उसके तात्त्विक अर्थ का प्रकाश कभी न होगा। शब्दार्थ-निर्वचन द्वारा वाक्यार्थ निर्णय के लिये पुराने वाङ्मयों का इतिहास जानना आवश्यक है। तत्कालीन अन्यान्य भाषाओं की शब्द प्रकृति से तुलना

करके शास्त्रीय शब्दों के असल अर्थ का पता लगाया जा सकता है। एवं तत्तत् शास्त्र के समय के लोकाचार, जन-प्रकृति, सामाजिक व्यवस्था आदि का इतिहास जाने बिना, तद्विषयक वास्तविक वेद शास्त्रार्थ का समझना असम्भव है; इसलिये वेद शास्त्रकालीन घटनाओं का इतिहास जानना भी आवश्यक है। इसी प्रकार, जिस काल में जिस वेद वा शास्त्र की रचना हुई; उसका 'पुराण' (उस समय का सर्ग-प्रतिसर्ग-वंश-मन्वन्तर-वंशानुचरितरूप पञ्चलक्षण पुरातत्त्व) जानना भी उस वेद-शास्त्र के सत्यार्थ निर्णय के लिये समपेक्षित है; क्योंकि सृष्टि-प्रभृति पञ्चलक्षण पदार्थ के सम्बन्ध की ही चर्चा और व्यवस्था वेद-शास्त्रों में होती है; सुतरां तदनुसार, विचार न करने पर सच्चे वेदार्थ का पता नहीं चलेगा। अत एव इतिहास और पुराण को वेद का 'उपबृंहण' कहा है। अतः जिस प्राचीनतम शास्त्र का उसके कर्त्ता के तात्पर्य के अनुसार, सच्चा अर्थ निकालना हो, उसके विषय का अनुसन्धान और निश्चय तत्कालीन इतिहास-पुराण से कर लेना उचित है; अन्यथा अनर्थ तथा अपार्थ द्वारा वेद वा शास्त्र की प्रतारणा हो सकती है।

जिस तरह प्राचीनतम वेद-शास्त्र के विषय को समझने के लिये, उस समय के इतिहास-पुराण का सहारा आवश्यक है, उसी तरह उनमें प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों के सच्चे अर्थ को निश्चयपूर्वक जानने के लिये तत्कालीन विश्व के विविध वाङ्मयों का अनुसन्धान करना नितान्त अपेक्षित है। क्योंकि काल-क्रम से एक ही भाषा के बहुत शब्द, अर्थान्तर में बदल जाते हैं। प्राचीनतम ग्रन्थों में जो शब्द जिस अर्थ में, जिस तात्पर्य से प्रयुक्त हुए हैं, उनके उसी अर्थ का ठीक पता यदि नहीं लगा लिया जाय तो अर्वाकाल के बदले हुए अर्थों की योजना करने से उनका अनर्थ वा प्रतारण ही होगा। वेद-ग्रन्थों में, कूर्म, वराह, पुरन्दर, असत्, सत्, प्राण, देवता, धर्म, इन्द्र, वृत्र, उर्वशी, पुरूरवा, वरुण, अप् समुद्र आदि ऐसे अगणित शब्द हैं जिनके अर्थ, अनन्तर के पुराणों में ही बदल गये; आज तक तो उन में अत्यन्त परिवर्तन, कहीं कहीं सर्वथा विपर्यास, हो गया है। यदि वेदवाक्यों का भाष्य करने में उपर्युक्त प्रकार के शब्दों के वे ही अर्थ लगाये जांय, जो पुराण-काल से विपरिवर्तित होते आकर अब सर्वथा अर्थान्तर में बदल गये हैं, तो इससे बढ़ कर वेद-वञ्चना, दूसरी क्या हो सकती है? अतः अर्थ करने में वेद की प्रतारणा न हो, इसलिये तत्कालीन इतिहास-पुराणों से उसके विषय का उपबृंहण (ऊहापोह) करनेके साथ ही, उस समय की अन्यान्य भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा वेद-ग्रन्थों में प्रयुक्त शब्दों के तत्कालीन अर्थों का अभ्रान्त निश्चय करना चाहिये।

सत्यवेदार्थ निर्णय के लिये न्यायसङ्गत विचार-पद्धति तो यही है, जिसका निर्देश ऊपर किया है। परन्तु जो ऐतिहासिक तथ्य और यथार्थवाद की उपेक्षा करके स्वकल्पित बातों की मौलिकता का आधार, प्राचीन शास्त्रों को ही बनाना चाहते हैं, उन्हें शास्त्र की दुर्दशा और शास्त्रार्थ के विप्लव की परवा नहीं होती।

अस्तु, वेद-मन्त्रों से वा प्राचीनतम शास्त्रवाक्यों से आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों और अर्वाकालिक क्रान्तिमय विचारों तथा व्यवस्थाओं को वेदादिशास्त्र-कालीन-पूर्वजमूलक पुरातन वस्तु सिद्ध करनेकी चेष्टा तक तो ग़नीमत थी; पर अब तो अपने मन की प्रत्येक बात को वेदादि-वाक्यों द्वारा प्राचीनतम प्रमाणित करने की लोक-प्रवृत्ति, साधारण-सी दिखाई देती है। किसी साक्षर आदमी के मन में जब कोई नया विचार उठता है, किसी विद्वान् को यदि कुछ नई बात कहनी होती है, कोई नेता यदि जनता के सामने

कुछ नवीन कार्यक्रम रखना चाहता है, और कोई साम्प्रदायिक आदमी जब अपने अर्वाक्कालिक पन्थ, मज़हब वा सिद्धान्त को 'सनातन' सिद्ध करना चाहता है, तब वे सभी लोग पुराने वेद-शास्त्र की शरण, आधार वा आश्रय लेते हैं। उनके ऐसा करनेका कारण यह है कि सब को अपनी बातों का प्रचार साधारण जनता में ही करना होता है। और प्रत्येक देश-महादेश का जन-समूह, पूर्वज-परम्परागत संस्कारवशात् किसी एक वा अनेक चिरन्तन पुस्तक को परम श्रद्धाभाव से अपना धर्मग्रन्थ मानता है। सुतरां उसमें किसी बात को आसानी, शीघ्रता और सफलता के साथ फैला देने के लिये उसी के श्रद्धित और सहज मान्य धर्म-शास्त्र को अपने प्रचारणीय विचारों का आधार (प्रमाण) बनाना आवश्यक होता है।

इस प्रकार की प्रचारक-प्रवृत्ति, भारतवर्ष में बौद्ध काल के बाद से बलवत्तर हो गई। कुमारिलभट्ट ने शास्त्र-प्रामाण्यवाद को प्रधानता दी और वेद की अपौरुषेयता तथा स्वतःप्रमाणता को अधिक दृढ़ किया। तब से वेद शास्त्रों के आधार को छोड़ कर स्वतन्त्र-विचारों के प्रचार का साहस किसी भी हिन्दू-धर्माचार्यमें नहीं रह सका। आचार्य शङ्कर ऐसे प्रतिभा-शाली विचारक को भी प्राचीन वेदशास्त्र-प्रामाण्य-वादिता में कट्टरपन दिखाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होंने परमार्थतः वेद, शास्त्र आदि को न मानते हुए भी "व्यवहारे भाट्टनयः" को स्वीकार करके शास्त्रार्थ के नाम पर प्रचलित तत्कालीन सभी रूढ़ियों का समर्थन किया और अपने स्वतन्त्र विचारों का प्रमाणन भी 'हठादाकृष्ट' श्रुति-स्मृति-वाक्यों द्वारा ही किया, जिससे उनके भाव के मर्मज्ञ विद्वानों ने उन्हें 'प्रच्छन्न बौद्ध' और 'बौद्धतर' की उपाधि दी। यदि आचार्य ने अपने स्वतन्त्र विचारों का प्रचार, वेद-शास्त्र का आश्रय न लेकर, स्वतन्त्ररूप से स्वरचित सर्वथा नवीन ग्रन्थों द्वारा ही किया होता, तो शास्त्र-प्रामाण्यवादी लोग उन पर अवैदिकत्व का आरोप भले ही करते, पर, उनके द्वारा बुद्धिस्वातन्त्र्य का प्रचार और स्वतन्त्र विचारशक्ति का उद्बोधन, अवश्य होता।

परन्तु वैसा नहीं हुआ। फलतः शङ्कराचार्य के अनन्तर होनेवाले रामानुज, मध्व, निम्बार्क,वल्लभ आदि सभी नवीन-धर्मप्रवर्त्तकों ने विचारपद्धति और प्रामाण्यवाद में पूर्वक्षुण्ण मार्ग का ही अनुसरण किया। परिणाम यह हुआ कि एक ही प्रस्थानत्रयी (ब्रह्मसूत्र, उपनिषत् भगवद्गीता) के आधार पर, समान वेद, पुराण, धर्मशास्त्र के संवाद से, परस्पर विरुद्ध अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, शिवाद्वैत आदि वाद (वा विवाद ?) खड़े हो गये, और जिन दिनों इन धर्माचार्यों के अनुयायी सम्प्रदाय, अपने अपने सिद्धान्त का वैदिकत्व सिद्ध करने के वाग्युद्ध में व्यस्त थे, उन्हीं दिनों में वैदेशिक विधर्मी मुसलमान, इस देश पर बार बार आक्रमण करके इसे लूट, पीट, बेइज़्ज़त और पराधीन कर रहे थे। एक ओर भारतीय आर्य सुकुमारी ललनायें आक्रमणकारी म्लेच्छों द्वारा अपहृत होकर गज़नी के बाज़ार में बेंच डाली जाती थीं और दूसरी ओर हमारे धर्मप्रवर्त्तक आचार्य तथा उनके अनुयायिवर्ग, परस्पर के मत का खण्डन और कठोर निन्दा करने तथा अपने-अपने सम्प्रदाय को एक दूसरे से श्रेष्ठ वैदिक प्रमाणित करने के तर्क-वितर्क-कुतर्कमय जल्प-वितण्डावाद और घोर गृह-कलह में प्रवृत्त थे। आठवीं शताब्दी के आरम्भ से बारहवीं शती तक हिन्दुस्थान पर भीषण मुस्लिम आक्रमण होते रहे और तेरहवीं शताब्दी तक यह देश पूर्णतः पराधीन हो गया। इसी बीच के सुदीर्घ काल में शङ्कराचार्य से लेकर रामानन्द पर्यन्त बड़े बड़े धर्माचार्य हो गये और उनके देश-व्यापी नाना सम्प्रदाय बन गये; पर, अपनी

आंखों के सामने होते हुए भयङ्कर हिन्दू-ह्रास और हिन्दुत्व के पतन को, मानो वे देख भी नहीं रहे थे। संस्कृत पढ़ लेनेवाले सभी लोग यह स्वयं देख सकते हैं कि म्लेच्छाक्रमणकालीन भारतीय धर्माचार्यों और महापण्डितों के बड़े-बड़े भाष्यों, ग्रन्थों, और निबन्धों में जहां वर्ण, जाति, सम्प्रदाय, मत, परलोक-धर्म, अलौकिकतत्त्व आदि घरेलू और अप्रस्तुत लोकान्तर-चिन्ता के विषयों पर अत्यन्त गम्भीर विचार किये गये हैं, वहां स्वदेश पर प्रवर्त्तमान प्रचण्ड म्लेच्छाक्रमण और तज्जन्य हिन्दुत्व-दुर्दशा की चर्चा तक नहीं की गई है। उस समय के धर्माचार्यों लोकपुरोहितों नेताओं और विद्वानों का मुख्य और आवश्यक कर्त्तव्य तो यह था कि वे अपनी वाणी और लेखनी से म्लेच्छाक्रान्त भारतीय आर्य-सन्तानों को ऐसी 'चोदना' (प्रेरणा, प्रवर्तना) देते, जिससे सच्चा आर्य, वैदिक वा हिन्दू-धर्म सिद्ध होता, और देश, राष्ट्र वा हैन्दव समाज का धारण-पोषण, योग-क्षेम, अभ्युदय निःश्रेयस होता, जो ही सद्धर्म का फल है —

"यतोऽभ्युदय-निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।"

किन्तु, धर्म का फल, अवश्यमेव तब मिलता है, जब वह समयानुकूल हो। 'समय' का अर्थ—सिद्धान्त, नय, और काल भी है। 'सौगत-समयः' 'वैदान्तिक समयः' 'सामयाचारिको धर्मः' इत्यादि प्रयोगों में 'समय' का अर्थ 'सिद्धान्त' वा 'नय' है, और 'समय-धर्मः' 'सामयिक-कर्त्तव्यं' इत्यादि स्थलों पर 'समय' का अर्थ—'काल, वक्त' होता है।

इन दोनों अर्थों में धर्म को 'समययुक्त होना चाहिये। जो धर्म 'समय' (काल) के उपयुक्त, तथा 'समय' (सिद्धान्त, निश्चय) वा 'नय' (नीति) से सम्पन्न और सञ्चालित न हो, उसका अनुष्ठान सफल नहीं होता, उससे अभ्युदय वा निःश्रेयस की सिद्धि नहीं होती है।

वस्तुतः तो 'समय' का मुख्य अर्थ 'काल' ही है। जो सिद्धान्त वा नय काल-धर्म से युक्त होता है उसे भी समयाश्रय होनेसे 'समय' कहते हैं। इस समय को जो पहचानता और तदनुकूल सिद्धान्त और नय की चोदना करता है, वही प्रकृत धर्माचार्य हो सकता है। धर्म का लक्षण (स्वरूप) ही 'चोदना' है—'चोदना-लक्षणोऽर्थो धर्मः' ऐसी चोदना वा धर्मप्रवर्त्तना, कालदर्शी, समयज्ञ, आचार्य ही कर सकता है। साधारण जनता तो तदनुसार कर्त्तव्य करती है। 'आचार्य-चोदितः करोमि' ऐसा महाजन (जन-समूह) का भाव होता है।

तब यदि आचार्य, पुरोहित, वा नेता ही समय-चोदक, युगधर्म का, सामयिक सिद्धान्त और नय का प्रवर्त्तक नहीं हो तो भोली जनता क्या और कैसे कर सकती है ?

हम देखते हैं कि मध्य और अर्वाकाल के हमारे धर्माचार्य, लोकपुरोहित, तथा समाज-नायक, स्वकालीन जन-वर्ग को कोई समय की चोदना नहीं दे सके। कुमारिलभट्ट तक के समय में जैन, बौद्ध आदि घरके आदमियों के साथ मतभेद सिद्धान्तविवाद और सामाजिक झगड़ा था। उस समय तक यदि भारतीय विद्वान् आपस में ही शास्त्रार्थ और शस्त्रार्थ करते थे और 'न गच्छेज्जैनमन्दिरं' 'बौद्धा हन्तव्याः' आदि की चोदना करते थे, तो यह बात हेय होने पर भी किसी तरह क्षम्य थी। क्योंकि घरका मामला होनेके कारण, उससे आर्यत्व वा हिन्दुत्व का आत्यन्तिक सर्वनाश नहीं हो सकता था। पर, कौमारिल काल के अनन्तर भी, जब कि बाह्य अनार्य म्लेच्छों के आक्रमण से भारतीय आर्यता भ्रष्ट हो रही थी, महान् हिन्दुत्व पददलित किया जा रहा था, लाखों आर्यपुत्र वा हिन्दू सन्तान, जातिच्युत और धर्म-भ्रष्ट करके अनार्य म्लेच्छ बनाये जा रहे थे, भारतीय-द्विजकुलों की मांसल,

स्वस्थ-शरीरसम्पत्तिवाली युवतियाँ, जबर्दस्ती सतीत्व-भ्रष्ट कर, म्लेच्छ-रमणियां बनाई जाती थीं, सुप्रसिद्ध हिन्दू देवमन्दिरों को तोड़ कर उनमें सञ्चित सुवर्ण-राशियां लूटी जा रही थीं और भारत-माता के वक्ष-स्थल पर म्लेच्छाऽधिकार हो रहा था, तब भी, जब हम यह देखते हैं कि शङ्कराचार्य-प्रभृति भारतीय आर्य-धर्माचार्य, घरेलू जातिवाद और शूद्र-दमन की ही चोदना में लगे हैं, तब हमारे खेद, दुःख, शोक, मोह और मनोविक्षोभ की सीमा नहीं रह जाती। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि शङ्कराचार्य से लेकर रामानन्द तक के ग्रन्थों में जहां, जैन, बौद्ध, चार्वाक, कापालिक, शैव, शाक्त, वैष्णव आदि घरेलू सम्प्रदायों-की परस्पर निन्दा, ऊँचे तथा अलौकिक तत्त्वों पर गम्भीर शास्त्रार्थ, स्वसेवक-सहायक-भूत शूद्रादि के दमन के लिये नृशंस आदेश, द्विजों के जाति-श्रेष्ठत्व का फ़तवा योग, कर्मकाण्ड, उपासना भक्ति, प्रपत्ति और ज्ञान-विज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें मिलती हैं, वहां उनकी आँखों के सामने घटित हुई उपर्युक्त आर्य-सर्वस्व-विध्वंसिनी दुर्घटनाओं की ज़रा भी चर्चा चिन्ता वा फ़िक्र नहीं की गई है। यही कारण है कि इन आचार्यों के ज्ञान-ग्रन्थों और जीवनचर्य्याओं में चाहे जितने ऊँचे दर्जे के भाव वा सिद्धान्त अभिव्यक्त हुए हों, पर उस चोदना का सर्वथा अभाव है, जिसकी परम आवश्यकता, तत्का-लीन आर्यभारत के योग-क्षेम के लिये थी। इसीलिये उनके विशाल वाङ्मय और उच्चतम आदेशोपदेश के होते हुए भी देश में जनचेतना नहीं आई और यह महाराष्ट्र अज्ञात काल के लिये वैदेशिक विधर्मियों का पददलित गुलाम बन गया।

( अपूर्ण )

# गांव की सफाई

ले० -डा० जी० के० जैतली, एम० बी० बी० एस० सेक्रेटरी चिकित्साविभाग बिहार सेन्ट्रल रिलीफ कमिटी, पटना

( यह निबन्ध, पहले 'सर्चलाइट' प्रेस, पटना से छप कर एक छोटी पुस्तिका के रूपमें प्रकाशित हुआ था। इसे लोकोपयोगी ( जनताका का उपकारक ) समझ कर हमने यहाँ अविकल उद्धृत किया है। —सं० )

## स्वच्छ ग्राम्य विवेचन

ग्रामोंकी स्वच्छताका प्रश्न इस समय सभीके चित्त को आकर्षित किये हुये है। सभी का ध्येय ग्रामों में स्वच्छता प्रचार करने का है। परन्तु जबतक ग्राम की स्वच्छता के प्रचार का सुचारु रूपसे कोई संगठन नहीं होता तबतक लोग अपने इस अभीष्टको सिद्ध नहीं कर सकते। इस ध्येय को हम तभी प्राप्त कर सकते हैं जब ग्रामवासी और अधिकारी दोनों परस्पर मिलकर चेष्टा करें। ग्रामों की अनियमित तथा अपरिमित मृत्यु संख्या का एकमात्र कारण यहाँकी अस्वच्छता है। यह मृत्यु विशेष कर उन रोगों से होती है जिनका रोकथाम हो सकता है; जैसे मलेरिया और जलद्वारा फैलनेवाले रोग। सफाई विज्ञानके प्रारम्भिक नियमोंसे हमारी अनभिज्ञता तथा हमारी प्रथायें रोगोत्पादनमें बड़ी सहायता देती हैं। धनी तथा विद्वानोंका ग्राम्य जीवन से उदासीनता और उनका ग्राम छोड़कर शहर अथवा कस्बें में जाकर बसना, ग्रामोंकी उन्नतिमें बहुत बड़ी बाधा डाल रही है जब ग्रामके विद्वान और धनीजन बाहर जाकर बस जाते हैं तो ग्रामकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है क्योंकि कोई दबाव न रहनेसे ग्रामकी सफाईकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। उपरोक्त परिस्थिति उत्पन्न हो जाने पर भी ग्रामवासी भाइयोंको चाहिये कि वे स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान दें और इस विषय में स्वावलम्बी बनने की चेष्टा करें।

ग्राम को स्वच्छ और स्वास्थ्यके लिये हितकर बनानेके लिये निम्नलिखित बातोंकी ओर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

१. गृह अथवा निवास स्थानका निर्माण।

२. स्वच्छ जल प्राप्त करने का प्रबन्ध।

३. ग्राममें कूड़ा करकटका प्रबन्ध।

४. मलमूत्रका प्रबन्ध।

## निवास स्थान

देहातोंके मकान अधिकांश बांसकी पट्टियोंसे बनाये जाते हैं जिनके ऊपर मिट्टीका लेप कर दिया जाता है। और ऊपर फूसकी छाया रहती है। इन गृहोंमें स्वच्छ वायु प्रवाहके हेतु खिड़की ( जंगला ) इत्यादिका कोई प्रबन्ध नहीं रहता। गृह प्रायः ऐसे स्थानपर रहते हैं जहां सील होती है। इन गृहोंके निर्माणके समय इस बातका भी ध्यान नहीं रखा जाता कि हम मिट्टी कहाँसे ले रहे हैं। अधिकांश लोग गृहके आसपास ही गढा बनाकर मिट्टी खोद लेते हैं और उसको दीवार इत्यादि बनानेके काममें लाते हैं। इसका फल यह होता है कि इन गड्ढोंमें वर्षाका जल भर जाता है जो मच्छरोंकी उत्पत्तिमें सहायक होता है। यही नहीं, कोई कोई ग्रामको स्त्रियां इस जलसे रसोईके जूठे बर्तन भी माँजती हैं। वे यह नहीं जानतीं कि इस जलसे साफ किये हुये बर्तन व्यवहारमें लाना स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त हानिकारक है। इस जलके बाहर निकलनेका कोई प्रबन्ध भी नहीं होता। देहातोंके मकान छोटे तो होते ही हैं अतएव उनकी कोठरियां भी छोटी होती हैं, फिर उन्हीं कोठरियोंमें सामान इत्यादि भर दिया

जाता है और उसीमें मनुष्य रातको सोते भी हैं। इससे उन्हें स्वच्छ वायु नहीं मिलती और उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है तथा वे रोगी भी हो जाते हैं। प्रायः पालतू पशु, जैसे–गाय, भैंस, बैल बकरी इत्यादि उसी स्थानमें बाँधे जाते हैं जहां खाद्य पदार्थ रक्खे जाते हैं या जो रसोई घर होता है। ऐसा कदापि नहीं करना चाहिये। मनुष्योंका पशुशालामें सोना अत्यन्त हानिकारक है। घर बनानेके समय निम्नलिखित वातोंका ध्यान रखना चाहिये।

१. गृह ऐसे स्थानपर बनाना चाहिये जहां सील अथवा नमी न हो और न वर्षाका जल इकठ्ठा होनेके लिये गढ़े हों।
२. गृह वहां न हों जहाँ ग्रामका घूर एकत्र होता है।
३. गृह के हेतु मिट्टी तालाबसे लाना चाहिये। उसके हेतु नये गढ़े न खोदना चाहिये; क्योंकि नये गढ़े मच्छड़ पैदा होनेके साधन हैं।
४. पशुशाला निवासस्थानसे दूर हो, पशुशालाका फर्श अगर हो सके तो पक्का बनवावे तथा मूत्र इत्यादि का निकास नाली द्वारा हो और उस नालीको ( Soakhage pit ) सोखनेवाले गढ़ेमें गिरावे। ( यह सोखनेवाले गढ़े पाँच या चार फुट चौड़े और इतने ही गहरे होते हैं और इनमें ईंट कङ्कड़ इत्यादि भरा रहता है इन्हींमें नाली गिरनी चाहिये। यह गढ़े पानी अयवा मूत्रको सोख लेते हैं। यह गढ़े वर्षाको छोड़ बाकी ८ मास काममें लाये जा सकते हैं। इन गढ़ोंको बनाते समय इस बातका ध्यान रहे कि ये पीनेवाले कुओंसे काफी दूरीपर रहें )।
५. घरकी कुर्सी कमसे कम एक फुट ऊँची होनी चाहिये।
६. घरका फर्श ( जमीन ) पक्का हो तो अच्छा है, यदि सीमेण्ट का हो तो और अच्छा है।
७. घर हवादार हो और ऐसा बनाना चाहिये कि उसमें सूर्यका प्रकाश भी जा सके।
८. यदि हो सके तो घर ऐसा बनवावे कि किसी भी और दूसरे घरोंसे न मिला रहे। दरवाजा तो अवश्य ही दूसरेसे उचित दूरी पर होना चाहिये।
९. प्रत्येक गृहमें २ कमरे, १ रसोईघर और १ आंगन होना आवश्यक है। यदि सम्भव हो तो एक बरामदा भी घरके चारों ओर बनवा देवे।
१०. प्रत्येक कोठरी में २ खिड़की आमने सामने होनी चाहिये जिससे हवा और रोशनी भलीभांति भीतर आ सके।
११. यदि पाखाना हो तो आँगनके एक कोनेमें हो और रसोई घरसे दूर हो। यदि कुआं भी हो तो पाखानासे दूर हो।

## जलका प्रबन्ध

ग्रामोंमें पीनेके लिये, जल तीन निम्नलिखित स्थानोंसे लिया जाता है, कुआँ, नदी अथवा तालाब।

प्रायः ग्रामके कुयें कच्चे होते हैं जिनका जल अस्वच्छ और पीनेके अयोग्य होता है। इसी प्रकार नदी या तालाबका जल भी प्रायः पीनेके अयोग्य होता है। इसका कारण यह है कि तालाब सुरक्षित नहीं रक्खे जाते। इन तालाबोंमें पशु नहलाये जाते हैं, कपड़े और वर्तन साफ किये जाते हैं! इसी कारणसे जल दूषित हो जाता है। कुओंके कच्चे होनेके कारण कभी कभी चिड़ियें उसमें घोसला बना लेती हैं और उनके बच्चे गिर गिरकर कुयेंके जल को दूषित कर देते हैं। कुयेंकी जगतपर स्नान करनेसे गन्दा जल कुयेंमें जाता है और कुयेंका जल दूषित हो जाता है और पीनेके अयोग्य हो जाता है। कुआं खुदवानेके समय निम्नलिखित वातोंका ध्यान रखना आवश्यक है।

१. कुयेंकी जगत करीब २॥ फुट ऊंची और उसकी

ढाल बाहरकी ओर हो जिससे ऊपर गिरा हुआ जल फिर अन्दर न जा सके।

२. कुयेंके चारों ओरकी पृथ्वी पक्की हो जिससे वहांका पानी मर कर अन्दर न जा सके।

३. कुयेंकी जगतके चारों ओर एक पक्की नाली हो जिससे होकर गिरा हुआ जल किसी हौज़में गिरे।

४. कुयेंके अन्दरकी दीवाल पक्की होनी चाहिये।

५. कुयेंके ऊपर यदि किसी वृक्षकी डाल हो तो उसे कटवा डालना चाहिये क्योंकि उस डालपर बैठकर पक्षी विष्टा करते हैं जो जलमें गिरता है तथा पत्तियां भी जलमें गिरकर जलको गन्दा बना देती हैं। वृक्ष यदि पीपलका है और उसे कटवाना नहीं चाहते तो कुयेंके ऊपर कुछ छा देना चाहिये जिससे विष्टा आदिके गिरनेकी सम्भावना न रह जाय।

६. कुयेंके आसपास वृक्ष नहीं लगाना चाहिये क्योंकि उसकी जड़से कुयेंकी दीवाल फट जाती है और वर्षाका जल कुयेंमें जाकर जलको अशुद्ध कर देता है।

७. कुयेंके पास कूड़ा करकट नहीं होना चाहिये। अगर हो तो फौरन हटा देना चाहिये।

८. कुयें पर धरन के द्वारा जल भरने की प्रथा अच्छी नहीं है इसलिये कुयेंपर एक लोहेका डोल और गण्डीका व्यवहार करना चाहिये।

९. कुयेंपर स्नान करने और कपड़ा तथा वर्तन साफ करनेकी मनाही होनी चाहिये क्योंकि इससे जल दूषित होकर बीमारी फैलने की सम्भावना रहती है।

१०. कुयेंके खुदवाते समय इसका ध्यान रहे कि कुंआ किसी कबरिस्तान, पाखाना अथवा और किसी गन्दे स्थानके पास न हो।

११. यदि कुयेंमें पम्प लगवा दिया जाय जिसका मुंह दूरतक लम्बा हो और कुयेंका मुंह बन्द करवा दिया जाय तो कुयेंमें किसी प्रकारकी अस्वच्छता नहीं जा सकती और न मच्छर ही अण्डे दे सकते हैं। परन्तु ऐसे कुयें डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ही बनवा सकती है जिनकी देखभाल एक मिस्त्री घूमघूम कर किया करे।

१२. किसी प्रकारकी अस्वच्छताकी सम्भावना होते ही लाल दवा ( पोटैशियम परमेगनेट ) डाल देना चाहिये।

उपरोक्त बातोंको ध्यानमें रखने और उनके अनुसार चलनेसे कुयेंके जलसे कोई बीमारी फैलनेकी सम्भावना नहीं रहती।

## तालाव

जबतक कुयेंका जल पीने और रसोई कार्यके लिये मिल सके तबतक तालावका जल नहीं लेना चाहिये, क्योंकि तालावके जल कुयेंकी जलकी अपेक्षा अधिक दूषित होनेकी सम्भावना रहती है। यदि तालावका जल अधिक अस्वच्छ हो तो उसे वर्तन मांजने अथवा स्नानके कार्यमें भी नहीं लाना चाहिये। जहांपर कुयें न हों वहां पीनेके हेतु पक्के तालावका जल व्यवहारमें लाना चाहिये।

तालावका जल सुरक्षित रखनेके हेतु निम्नलिखित बातोंपर ध्यान रखना चाहिये।

१. तालाव स्नान करने अथवा कुल्ला करनेके काममें नहीं लाना चाहिये।

२. तालावमें कपड़ा धोना या साबुन लगाना उसमें अशुद्धता फैलाना है।

३. पशु पक्षीको तालावमें नहीं नहलाना चाहिये।

४. तालावमें वर्तन नहीं साफ करना चाहिये।

५. तालाबके किनारे मलमूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये।

६. तालावके किनारे वृक्ष न हों तो अच्छा है अगर हों तो जलके ऊपर फैली हुई उसकी डालें काट देना चाहिये।

## नदी

नदीके जलको भी उसी प्रकार अधिक दूषित होनेकी सम्भावना रहती है जैसे कि तालाबके जलकी।

हमारे देशमें यह बड़ी भारी कुप्रथा है कि लोग नदी तटपर शौचसे निवृत्त होनेके लिये जाते हैं। इसका फल यह होता है कि हैजा, टाईफायड और पाण्डुरोग ( हुकवर्म ) के कीटाणु जलमें प्रवृष्ट हो जाते हैं, इसलिये नदीका जल अधिक दूषित हो जाता है और उसे बिना उबाले पीना भयोवह है।

जहांपर नदीके सिवाय कोई जलाशय न हो वहां पर निम्नलिखित उपायोंसे जलकी रक्षा की जा सकती है।

१. पीनेके हेतु जल लेनेके स्थान से ऊपरकी ओर स्नान करना, वस्त्र धोना या और किसी प्रकारकी अस्वच्छताका कार्य नहीं करना चाहिये।
२. पशुओंके स्नान और जल पिलानेका स्थान नीचे की ओर होना चाहिये।
३. मुर्दा जलानेका स्थान पीनेके लिये जल लेनेवाले स्थानसे नीचे की ओर होना चाहिये। ( मुर्देका जलमें प्रवाह करना अत्यन्त हानिकारक है। इससे बीमारी फैलनेका बड़ा डर रहता है।
४. नदीके तटपर मलमूत्र नहीं त्याग करना चाहिये। उपरोक्त बताये गये नियमों और उपायोंको व्यवहारमें लानेसे हम अपनेको जलसे फैलनेवाले रोगों से सदा बचाये रख सकते हैं।

## कूड़े का प्रबन्ध

१. घरमें नित्यप्रति झाड़ू ( बुहारी ) लगाकर कूड़ेको एकत्र कर दूर घूरपर फेंक देना चाहिये।
२. इन घूरोंको कमसे मम सप्ताहमें दो बार उठाकर फेंक देना चाहिये या जला देना चाहिये।
३. गोबर इत्यादि निवासस्थानसे पर्याप्त दूरीपर एकत्र करना चाहिये और यदि सम्भव हो तो उसपर भुरभुरी मिट्टी छिड़क देना चाहिये जिससे मक्खियां अण्डा न दे सकें।
४. घूरको उन कुओं और तालावोंके पास एकत्र नहीं करना चाहिये जिनका जल पीने अथवा रसोईमें व्यवहार किया जाता है।
५. जो कूड़ा खादके काममें नहीं आ सकता उसे जला देना चाहिये ; क्योंकि इनमें मक्खियां अण्डा दे देती हैं। सारांश यह है कि कूड़ाको निवासस्थानसे दूर रखना चाहिये जिससे गन्दगी न फैल सके।

## मलमूत्रका प्रबन्ध

ग्राम-निवासियोंको उचित है कि वे आवादीके निकट मल त्याग न करें। मल त्याग करनेके हेतु उन्हें कमसे कम २०० गज दूर ग्रामसे बाहर जाना चाहिये। मल त्याग करनेके पश्चात् उसे मिट्टी या धूलसे ढांक देना उचित है। सर्वोत्तम तो यह है कि वे अपने साथ कुछ खोदनेका हथियार खुर्पी आदि ले जायं और गढ़ा खोदकर उसमें मल त्याग करें तत्पश्चात् उसे मिट्टीसे ढांक दें।

जो जलाशय पीनेके काममें आता है उसके पास मल त्याग करना सर्वथा अनुचित है। यदि ग्राममें मेहतर ( भङ्गी ) हो तो एक पाखाना बनवा लेना चाहिये। पाखाना बनवाते समय निम्नलिखित बातोंका ध्यान रखना चाहिये।

१. पाखानेका फर्श ( पृथ्वी ) और खुड्डी पक्की हो।
२. मूत्र तथा जलके हेतु एक पक्की नाली हो और इसको एकत्र करनेके लिये एक पक्का हौज होना चाहिये।

३. कदमचेके अन्दर मलके लिये एक गमला या बाल्टी हो।

४. पाखाना २४ घंटेमें एक बार अवश्य साफ होना चाहिये।

५. मल त्यागनेके पश्चात् गमलेमें थोड़ी धूल छोड़ देना चाहिये।

६. पाखानेकी बाल्टी अगर सम्भव हो तो सप्ताहमें एक बार कोलतार ( अलकतरा ) से रङ्ग देना चाहिये।

७. पाखानेको सप्ताहमें दो बार जलसे धोना चाहिये अगर मिल सके तो जलमें थोड़ा फिनायल छोड़ दे।

यदि ग्राममें पाखानेका प्रवन्ध अच्छा नहीं होता है तो पाण्डु रोग हो जाता है और वह आदमी पीला पड़ जाता है।

यह रोग एक कीड़ेके द्वारा फैलता है जो मलमें पाया जाता है। यदि मनुष्य नंगे पैर मलको कुचल देता है तो इस रोगके कीड़े काटकर देहमें प्रविष्ट कर जाते हैं और अँतड़ीतक पहुंच जाते हैं।



# कर्मणा वर्णव्यवस्था का नैसर्गिक भाव

लेखक—आचार्य इन्दिरारमण शास्त्री

( गताङ्क से आगे )

## मानव-जाति की सामाजिक अवस्थायें

इस लेखके पूर्व प्रकाशित प्रथम अंशमें मानवसमाज और वर्णव्यवस्था के उत्थान-पतन की जो कतिपय पुनः पुनरावर्त्तनशील अवस्थायें सूचित हुई हैं, उनका खुलासा संक्षेप में निम्न-लिखित है।

( १ ) मानव-जाति की आदिम अवस्था में इसका कोई बुद्धिपूर्वक संघटित अथवा नियमानुसार सुव्यवस्थित समाज नहीं होता 'पशु-समज' की तरह इसके भी यूथ ( जत्थे ) झुण्ड रहते हैं। आदिम मानवजाति, प्रजापति 'ब्रह्मा' की 'मानसी' सृष्टि कही जाती है। पश्चात् उसीकी सन्तति-परम्परा से यह सारा संसार भर जाता है। आदिम अवस्था के—कृतयुगीन—लोग, 'अनिकेत' ( घर-बार से रहित) होते हैं; वे नद नदी समुद्र आदि के काछों में पर्वतों की अधित्यका उपत्यका और कन्दराओं में तथा जङ्गलों में वृक्षादि के तले निवास करते हैं। उनकी संख्या भी बहुत थोड़ी होती, और वे भूतल के कम भागों (थोड़ी जगहों) में ही कहीं-कहीं रहते हैं; सर्वत्र नहीं। आदिम मनुष्यों की जीविका के साधन भी प्रकृति के द्वारा ही स्वतः किये-धरे रहते हैं। तदर्थं उन्हें कुछ काम-धन्धा नहीं करना पड़ता—"कृतमेव, न कर्त्तव्यं।" भूतल पर उगे स्वयम्भू कन्द, मूल, फल, पुष्प, शाक, पत्र आदि से उनका यथेष्ट आहार-निर्वाह हो जाता है; वे लोग, प्रकृति के साम्राज्य से आह्निक आहार मात्र लेकर कृतकृत्य और सन्तुष्ट रहते हैं; कल, (दूसरे, अगले दिन) के लिये भी खाद्य सामग्री बटोर कर नहीं रखते—"शौवस्तिकत्वं विभवा न येषां व्रजन्ति।" वे "आज खायँ; कल के लिये झंखे" ऐसे लोग नहीं होते; अतएव उनमें आहार-निमित्तक कलह (पेट के लिये झगड़ा) नहीं होता; इसी कारण से वे लोभ, लिप्सा, लाभ-अलाभ, राग-द्वेष, मित्र-शत्रु आदि के फेर में नहीं पड़ते, और नहीं उनमें परस्पर मात्स्यन्याय मार-काट लूट-पाट आदि आसुर नृशंस-कर्म की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार जब आदिम मनुष्यों में श्वस्तनिक ( कल के लिये; अगले दिन की खातिर भी) आहार-सामग्री के परिग्रह और संग्रह की तृष्णा नहीं रही, तब उनमें मिथः संघर्ष वा वैर-विरोध का कोई कारण ही न था; और न उनकी सच्ची तथा उचित आवश्यकता की पूर्त्ति के साधनों में कमी पड़ती; प्रत्युत जीवनयोनि-मात्र आहार-सामग्री को, भूख दूर करने भरकी मात्रा में प्रतिदिन लेने, और अधिक परिग्रह तृष्णा का सर्वथा त्याग रखनेके कारण, अकृत्रिम-शस्य-सम्पत्सम्पन्न रत्नगर्भा वसुन्धरा भूतधात्री पर, उनके लिये पर्याप्त 'रसोल्लसा' सिद्धियां ( पृथिवीरसोद्भूत स्वयम्भू आहार-साधनसम्पत्तियां ) स्वतः विराजती थीं। जब कोई आवश्यकता से अधिक ( ज़रूरत से ज्यादा ) लूट-बटोर कर रखनेवाला ही न था, तब संघर्ष, छीना-झपटी लूट-मार और तन्निमित्तक दल-बन्दी, टोलीसंघटन, संग्राम-समितिनिर्माण, यूथस्थापन, वर्ग-भेद और तद्द्वारक वर्णविभाग आदिका अवसर ही कैसे आता? अथवा उसके लिये कारण ही क्या होता? इसी कारण से, आदियुगीन मानवों में आहारनिमित्तक संघर्ष और तत्परिणामस्वरूप वर्गभेदादि परम्परा-प्रसूतवृत्ति ( जीविकाकर्म ) विभागाधारक 'वर्ण-भेद'

का भी अभाव था। आदिम अवस्था के सभी लोग 'अवर्ण' अथवा एक ही वर्ण के थे—

"ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चाऽकृतलक्षणाः
कृते युगे समभवन् ; सत्कर्मनिरताः प्रजाः।
समाश्रयाः समाचाराः समज्ञानाश्च मानवाः
तदा हि समकर्माणोऽवर्णा धर्मानवाप्नुवन्।

इन (महाभारत-वनपर्व के) श्लोकों से स्पष्ट विदित होता है कि कृत (सत्य) युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण 'अकृतलक्षण' थे, अर्थात् इनका स्वरूप अस्तित्व वा चिह्न अलग-अलग नहीं बना था ; क्योंकि कृतयुगीन मानव, सत्ययुगीय लोग, समाश्रय आचार, ज्ञान आदि सभी विषयों में 'समकर्मा' समान-धर्मा, समशीलव्यसन, समयोगक्षेम थे ; और वे लोग अवर्ण रहकर ही 'धर्मों' (धारण-पोषण के साधनों को) प्राप्त करते थे—"अवर्णा धर्मानवाप्नुवन्" ('अवर्णाः' सन्तः एव 'धर्मान्' जीवन-धारकान् आहारादीन् 'अवाप्नुवन्' प्राप्तवन्तः, 'कृतमेव, न कर्त्तव्यम्' इत्युक्तत्वात्)। वृत्ति-धर्म वा जीविका कर्म (पेशा) के आधारपर ही वर्णविभाग होता है ; जब कृतयुग में लोगों को सब आहार-साधन आदि जीवनोपयिक पदार्थ, स्वयं प्रकृति द्वारा किया-कराया ही 'कृतमेव' मिलता था, तदर्थ कुछ करना नहीं था 'न कर्त्तव्यं' तब सुतरां किसी को पेशे की जरूरत नहीं थी ; और जब पेशों का ही उद्गम वा आविष्कार नहीं था, तब तन्मूलक वर्णविभाग का अवसर ही कैसे हो ? इसलिये कृतयुगीन लोग 'अवर्ण' ही रहे।

इतिहास-पुराणों में कहीं कहीं ऐसा भी लिखा है, कि कृतयुग में सब लोगों का एक ही 'वर्ण' था—

"न विशेषोऽस्ति वर्णानां ; सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्।"

(महाभारत)

मानव-जाति में मूलतः वर्णों का 'विशेष' (वर्ण-भेद) नहीं है ; न केवल मनुष्य, अपितु यह सम्पूर्ण जगत् ही पूर्वकाल में ब्रह्म-सृष्ट होनेके कारण, 'ब्राह्म' (ब्रह्मण इदम् अपत्यं वा) है। अतः आदिम अवस्था (कृतयुग) में मानव-समाज केवल 'ब्राह्म' (ब्रह्मापत्यमात्र) (वर्णविशेष-भेदरहित) एक ही 'ब्राह्म' ब्राह्मण-वर्ण का था। पीछे कालक्रम से कृतयुगीन स्वयं 'कृत' जीविका-साधनों का विलोप होनेसे, पेशों की आवश्यकता उपजने और उत्पत्ति हो जानेपर, विभिन्न प्रकार के जीविकाकर्मों को, स्वभावजगुणमयी प्रवृत्ति के अनुसार यथायोग्य अपना लेनेवाले लोगों में स्वभावतः चातुर्वण्य-विभाग हो गया—"कर्मभिर्वर्णतां गतम्।"

निम्न-निर्दिष्ट प्रमाणों से भी आदिम मानवजाति का एकवर्णत्व विदित होता है—

"एकवर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद्युधिष्ठिर ;
जीविकाकर्मभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम्।"

(क्रिया-कर्मविभेदेन ; वृत्तिकर्मविभेदेन ; गुण-कर्मानुसारेण ; एतेऽत्र पाठभेदा दृश्यन्ते)

"एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः,
एको नारायणो देवः ; एकोऽग्निर्वर्ण एव च।"
"यथा कृतयुगे पूर्वमेकवर्णमभूत्किल"
"अमरेन्द्र, मया बह्व्यः प्रजाः सृष्टास्तदा प्रभो,
एकवर्णाः समाभाषा एकरूपाश्च सर्वशः ;
तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा।"

(महाभारत, भागवत, मत्स्यपुराण, वाल्मीकीयरामायणेषु)

उपर्युक्त इतिहास-पुराण के वाक्यों से स्पष्ट है कि कृतयुग के आदिम मनुष्य 'अवर्ण' अथवा 'एकवर्ण' थे ; दोनों बातों का तात्पर्य एक ही है ; अवर्णता तथा एकवर्णता वा समवर्णता में वस्तुतः कोई अर्थभेद नहीं है। आदिम अवस्था के मनुष्यमात्र का एकवर्ण समान

वर्ण अवर्ण रहना स्वाभाविक था ; क्योंकि यह अस-कृत् बतलाया गया है कि 'वर्ण' के उद्गम, भेद, विभाग, और व्यवस्था आदि का मूल, मुख्य कारण, एकमात्र जीविकाकर्म ( वृत्तिधर्म वा पेशा ) ही है। तत्त्वतः तो वृत्ति, जीविकाकर्म वा पेशा ही का नाम 'वर्ण' है। जिस वृत्ति ( पेशा ) को जिस आदमी ने अपनाया ; जिस विशेष प्रकार के जीविकाकर्म का 'वरण' ( स्वभावजगुणप्रविभक्त-कर्मानुसार आश्रयण ) जिसने किया उसका वही 'वर्ण' हुआ और सदैव होता है। ऐसी स्थिति में जब कि कृतयुगीन आदिम मानव जाति को किसी पेशे की जरूरत नहीं थी, उसे प्रकृति द्वारा स्वतः कृत जीविका-वृत्ति अनायास प्राप्त थी, तब सुतरां वहां किसी पेशेके लिये गुञ्जाइश अवकाश अवसर वा कारण नहीं थे ; वस्तुतः उस समय पेशोंकी कल्पना भी नहीं थी, उत्पत्ति की बात तो दरकिनार ; इसलिये पेशा-रूप 'वृत्ति' वा 'वर्ण' की सम्भावना वहां सुतरां नहीं हो सकती थी। कृतयुगीन आदिम मनुष्यों का एक ही 'हंस' वर्ण था—

"आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस' इतिस्मृतः ;
कृत-कृत्याः प्रजा यस्मात्तस्मात्कृतयुगं विदुः।"
( भागवत )

इत्यादि पुराणवार्त्ता का तात्पर्य भी उपर्युक्त अर्थ में ही है। अर्थात् कृतयुग में मानवी प्रजा बिना काम-धन्धा किये ही आहार-साधनादि प्राप्त होने से कृतकृत्य ( पूर्णकाम, सफलमनोरथ ) थी ; अत एव उसे 'कृतयुग'—किये-कराये धरे वस्तुओं का युग—कहते हैं ; जिस में सब कुछ "कृतमेव, न कर्त्तव्यम्" प्रकृत्यैव किया-कराया तैयार रक्खा रहता है। आहार आदि के लिये लोगों को कोई पेशा करना नहीं पड़ता। यही कारण है कि उस समय न जीविकाकर्म होता, नहीं तदाधारक—वृत्तिविभागनिमित्तक—'वर्ण'। अतः मानव जाति की आदिम अवस्था ( कृतयुग ) में सर्वथा 'अवर्ण' ( वर्णविभाग का अभाव ) अथवा सबका समानरूप एक ही 'हंस' ( शुक्ल, सात्त्विक, ब्राह्मवृत्त, अकृत्रिम–अशौवस्तिक - वनस्पतिफलेऽप्रहित्वरूप उच्छ-शीलवृत्तिमय ) ब्राह्मण वर्ण रहता है—

"सद्गुणो ब्राह्मणो वर्णः" "ब्राह्मणानां सितो वर्णः"
( भागवत-भविष्यपुराण-महाभारतेषु )

आधुनिक इतिहासशोधक पुरातत्त्ववेत्ता लोग मानव जाति की उपर्युक्त आदिम अवस्था को 'वन्यावस्था' ( जङ्गलीपन की स्थिति बतलाते हैं। परन्तु उनका यह मत, प्राचीनतम आर्ष इतिहास-पुराण के मन्तव्य से भिन्न प्रतीत होता है। वेद-शास्त्र-पुराणादि से मानव-समाज की जो आदिम अवस्था विदित होती है, वह 'एकवर्ण' 'समवर्ण' समता वा साम्यावस्था है। आधुनिक इतिहासज्ञ भी मानवों के 'आदिम साम्यवाद' को स्वीकार करते हैं, पर उनकी विचारपद्धति, निरूपण प्रक्रिया, प्रमाणपरिपाटी, तर्कप्रणाली, युक्तिशैली और घटनाक्रम-कल्पना, पुराण इतिहास से विरुद्ध है। प्राचीन-परम्परानुगतिक इतिहास-पुराणों के अनुसार मानवसमाज की आदिम अवस्था 'जङ्गली' नहीं; अपि तु 'दैवी' थी। स्वयमेव 'दिवि भव' ( प्रकृत्यैव 'कृतमेव ; न कर्त्तव्यं ) स्वयम्भू दिव्य पदार्थों से आहार विहारादि में कृतकृत्य रहने के कारण, कृतयुगीन मनुष्यों को पुराण-ऋषियों ने 'पूर्वे देवाः' ( प्राथमिक-सर्वप्रथम पूर्वकालभव, आदिम 'देव' दैवी-शस्यसम्पज्जीविका-वृत्त्या विद्योतमान ) कहा है। पूर्व युग के आदिम मनुष्य दैवी शक्ति से स्वतः उत्पद्यमान, दैवी प्रकृति द्वारा स्वयं किये धरे, दिव्य ( दिव उद्गत, देव-प्रदत्त ) शस्य–वनस्पति-कन्द, मूल, फल, पुष्प, पत्र-प्रभृति सात्त्विक निरामिष आहारसाधनों से जीविकामात्र निर्वाह करते हुए, स्वभावतः सहज तपस्वी थे ; अत एव वे 'पूर्वे देवाः' कहलाये। आदिम मानवों के तप-प्रधान जीवन होनेके कारण ही 'तपः' की सर्वप्रथमता

और विश्व-कारणता सुनी जाती है। सुना है, सृष्टि की चिन्ता में ध्यानावस्थित 'ब्रह्मा' को 'तप, तप, तप' की ईश्वरीय आकाशवाणी सुनाई पड़ी ; जिसके अनुसार उन्होंने जगत्सृष्टि की क्षमता के लिये सबसे पहले तपस्या की—

"स तपोऽतप्यत ; स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत"
"प्रजापतिस्तपस्तप्त्वा००० बह्वीः प्रजा असृजत् ।"

इस प्रकार सर्वशक्ति-कारणभूत 'तपः' को मुख्य रूप से अपना कर, जीवन-निर्वाहमात्र के लिये 'आकाशवृत्ति' का आश्रय लेनेवाले आदिम मनुष्य दैवीअवस्था में थे ; न कि वन्यावस्था में। 'दिव' ( आकाश ) से अनायास प्राप्त, मानव-प्रयत्न-कृतिसाध्यता के बिना स्वतः प्रकृतिके द्वारा उपनत, दिव्य, ( दिविभव ) जीविका को 'आकाशवृत्ति' कहते हैं। आज भी प्रकृति के साम्राज्यरूप महाकाश से अनायास टपक पड़नेवाले कन्द, फल आदि से तथा तद्विध प्राप्त अन्न आदि से जो सन्त निर्वाह करते हैं, वे 'आकाशवृत्तिवाले' कहे जाते हैं। प्रयोजनमात्रपर्याप्त ( जीवनौपयिक आवश्यकता की पूर्ति भरके लिये ) दिव्य विशुद्ध आहार-विहार परिग्रहपूर्वक तपोमय देवजीवन बिताने के कारण, आदिम युग के प्रायः सब मनुष्य, 'पूर्वदेव' थे ; अतः उन्हें ( जङ्गली ) और बर्बर कहना युक्त नहीं। इसलिये यह बात ही सच्ची होनी चाहिये कि मनुष्यों की आदिम अवस्था, अशौवस्तिक-दिव्य-विभवशालिनी तपःश्रममयी सात्त्विकी और दैवी थी ; आसुरी वा जङ्गली नहीं।

इतिहास-पुराणों के अनुसार मानवसमाज-संस्था का आदिम काल 'कृतयुग' माना गया है। उस युगका मुख्यतम मानवधर्म 'तप' है—'तपः परं कृतयुगे' इस प्रकार का तपःप्रधान युग, जङ्गलियों वा बर्बरों का हो नहीं सकता ; अत एव तपःपरायण-मानवमय कृतयुग को, सद्युग, सत्ययुग, सत्त्व, ब्राह्म, ब्राह्मणयुग आदि अभ्यर्हित शब्दों से अभिहित किया है—

'सत्त्वं कृतं, रजस्त्रेता०००' 'ब्राह्मं कृतयुगं प्रोक्तं' 'कृतं तु ब्राह्मणयुगं' इन बातों से भी स्पष्ट है कि आदिम मानवयुग, तपोयुग, कृतयुग, सत्त्वयुग, ब्राह्म वा ब्राह्मणयुग था ; जङ्गली-युग नहीं।

इतिहास-पुराणों में मानवजाति की आदिम अवस्था का जो भूयसा वर्णन है, उससे भी इसी बात की पुष्टि होती है कि आदिम मानव, शुद्ध-सात्त्विक अनुद्यमोपलब्ध स्वयम्भू निरामिष आहार-विहार-साधनों से आवश्यकतापर्याप्त जीवननिर्वाह करते हुए तपःपरायण रहनेके कारण 'पूर्वदेव' रूप थे ; न कि वन्य, वानर, वनमानुष वा बर्बर जानवर। नीचे दिक्प्रदर्शित इतिहास-पुराण के वाक्यों से यह बात साफ़ मालूम होगी—

"कृते त्वमिथुनोत्पत्तिः, वृत्तिः साक्षादलोलुपा ;
प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सर्वानन्दाश्च भोगिनः।
अधमोत्तमत्वं नास्त्यासां, निर्विशेषाः प्रजास्तु ताः ;
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासु तस्मिन्कृते युगे।
"निर्विशेषाश्च ताः सर्वा रूपायुःशिल्पचेष्टितैः ;
अबुद्धिपूर्विका वृत्तिः प्रजानां भवति स्वयम्।
अप्रवृत्तिः कृतद्वारे कर्मणोः शुभ-पापयोः ;
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदाऽऽसन् न तस्कराः।
अनिच्छाद्वेषयुक्तास्ता वर्तयन्ति परस्परम् ;
तुल्यरूपायुषः सर्वा अधमोत्तमवर्जिताः।
लाभाऽलाभौ न वा स्यातां मित्राऽमित्रौ प्रियाऽप्रियौ ;
नाऽतिहिंसन्ति वाऽन्योयं, नाऽनुगृह्णन्ति वै तदा।
ध्याते तु मनसा तासां प्रजानां जायते सकृद् ;
शब्दादिर्विषयः शुद्धः प्रत्येकं पञ्चलक्षणः।
सरित्सरःसमुद्रांश्च सेवन्ते पर्वतानपि ;
तास्तदा ह्यल्पशीतोष्णा युगे तस्मिंश्चरन्ति वै।
पृथ्वीरसोद्भवं नाम आहारं ह्याहरन्ति वै ;

ताः प्रजाः कामचारिण्यो मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।
न तासां प्रतिघातोऽस्ति, न द्वन्द्वं नापि च क्रमः ;
पर्वतोदधिवासिन्यो ह्यनिकेतास्तु सर्वशः ;
विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तसुखिताः प्रजाः ।
सर्वकालसुखः कालो, नात्यर्थं घर्म-शीतता,
मनोऽभिलिपिताः कामास्तासां सर्वत्र सर्वदा ।
उपतिष्ठन्ति पृथ्व्यां वै ताभिध्र्याता 'रसोल्लसाः'
बल-वर्णकरी तासां सिद्धिः सा रोगनाशिनी ।
तासां विना तु सङ्कल्पं जायन्तेऽमिथुनाः प्रजाः०००
आयुःप्रमाणं जीवन्ति न च क्लेशाद्विपत्तयः ।
क्वचित्क्वचित्क्षितेर्भागे स्थितिरासां; न सर्वतः ।"
(मार्कण्डेय-ब्रह्माण्डपुराणादिषु)

इन श्लोकों का तात्पर्यरूप ही यह लेख है ; इस लिये अलग से इनका अर्थ लिखना आवश्यक नहीं है। इनको आपाततः पढ़ने से भी यह स्पष्ट विदित होता है कि आदिम मानव-समाज वन्य, (जङ्गली) वा बर्बर नहीं ; अपितु 'दैवत' था; अत एव आदिम मनुष्य 'पूर्वेदेवाः' कहलाये । पीछे जब कालक्रम से उनका पतन हुआ, तब वे ही 'पूर्वदेवाः' पश्चात् 'असुराः' बन गये। इस प्रकार मानव-समाज की दूसरी अवस्था का युग आया । इसका उल्लेख अगले अङ्क में होगा । [अपूर्ण]

# नया संसार

रचयिता—श्री बाबूलाल दीक्षित "रसिक"

चलो प्रिये निर्जन-प्रदेश में एक नया संसार बसायें ।
जहाँ न मानव बनकर दानव—
मानव को खाता हो रानी !
जहाँ न भाई से भाई का—
दुश्मन का नाता हो रानी ।
देकर मानवता की शिक्षा, सबसे करना प्यार सिखायें !
जहाँ न हो विद्रोह किसी से—
करते हों मतलब की यारी !
जहाँ न बात बात पर रानी—
बस जाती हो दुनिया न्यारी ।
"मैं" "तू" के सब भेद मिटा कर प्रेमसुधा रसधार बहायें !
जहाँ न इक रोटी के टुकड़े को—
हा ! मानव तरस रहा हो ।
जहाँ न प्रखर-रश्मि से रानी—
कृषकों का तन झुलस रहा हो ।
मेहनत, मजदूरी, रोटी का सबको सम अधिकार दिलायें ।
जहां न झंकृत होवें रानी—
बन्धन की ये निर्मम लड़ियां ।
जहाँ न मानव के हाथों में—
डाली जाती हों हथकड़ियां ।
होवें सब आजाद वहांपर जग से बन्धन भार हटायें ।
जहां न होवे शोषक-शासक —
जहां न होवें राज किसी का ।
जहां न होवे हाय ! हुकूमत—
जहां न होवे, ताज किसी का ।
अपना होवे राज वहां पर, अपनी ही सरकार बनायें ।

# मृत्यु-विज्ञान

लें०—श्री गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

[ गताङ्क से आगे ]

## प्राण-परमाणुओंके गुण तथा कार्य्य

प्राण-परमाणु नेत्रों द्वारा देखे नहीं जा सकते। मानव विद्युताकर्षण उसका दूसरा गुण है. प्रत्येक जीवकी उसकी निजी शक्ति तीसरा, तथा संसारमें जो जीवन-रस एवं अव्यक्त जीवन-रस है वह उसका चौथा गुण है।

नाड़ियों में जो द्विशक्तिशाली परमाणु ( ऐसे परमाणु जिनके एक छोरपर धनविद्युदणु और दूसरे छोर पर ऋणविद्युदणु रहते हैं। ) होते हैं, उनसे शरीर के सब अवयवों की आकुञ्चन-प्रसरण-क्रिया सतत हुआ करती है। इस क्रियाके कारण ही हस्त-पादादिक इन्द्रियोंके दृष्टकर्म होते रहते हैं; और इसी प्रकार पित्त-पिण्डसे पित्तका उत्पन्न होना, लंब-पिण्डसे रस-का निर्माण होना, शिखरीसे हृदय-क्रिया का सङ्कोच-विकास होना, अथवा उसका बन्द होकर प्राणान्त होना, ये सब अदृष्ट क्रियायें भी होती रहती हैं। ये सब दृष्ट और अदृष्ट क्रियायें वस्तुतः प्राणशक्ति ही हैं।

## प्राणमय शरीर

यह तो विदित ही है कि प्राणमय शरीर, इस स्थूल शरीरसे सर्वदा भिन्न होता है। वह उपरोक्त प्राण-परमाणुओंसे ही घटित होता है। इसके पृथक होनेपर ही जीव मरा हुआ होता है। यह प्राणमय शरीर कैसा होता है ? अब इसपर कुछ विचार किया जाता है।

प्राणोंका बना हुआ प्राणमय शरीर, स्थूल दृष्टि से दृश्य न होनेपर भी, अपनी सत्ता रखता है, यह बात शास्त्रों तथा वैज्ञानिक प्रयोगोंसे साबित हो चुकी है। इस स्थलपर, इस विषयको अधिक तूल न देकर, इस सम्बन्धकी मोटी-मोटी बातें ही नीचे दी जाती हैं।

मनुष्यकी शकलके किसी कांचके बर्तनमें पानी भरा जाय तो पानी उसमें सर्वत्र फैल जायगा और वह बर्तन भरा हुआ देख पड़ेगा। मनुष्यके स्थूल शरीरमें प्राणमय शरीर भी इसी प्रकारसे है। अन्तर इतना ही है कि पानी, उस कांचके बर्तनके बाहिर, बाहिर, बर्तनको भेद कर न जा सकेगा, पर प्राणमय शरीर, स्थूल शरीरके बाह्य आवरणमें अटका नहीं रहता। दिव्य दृष्टिवाले मनुष्य, प्राणमय शरीरको, स्थूल-शरीरके अन्दर-बाहर ओतप्रोत देख सकते हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यका स्थूल शरीर जब मुर्दा हो जाता है, तब उसका प्राणमय शरीर, स्थूल शरीरके रहते जितना प्रभावशाली था, उससे कहीं अधिक प्रभावशाली हो जाता है। पहली अवस्थामें वह बन्धनमें रहता है, और दूसरी में सर्वथा स्वतन्त्र एवं मुक्त। प्राणमय शरीर, स्थूलकी अपेक्षा अधिक वेगवान होता है, और स्थूल शरीरके परमाणुओंकी अपेक्षा प्राणमय शरीरके परमाणु अधिक सूक्ष्म एवं शुद्ध होते हैं। प्राणमय शरीर के इन्द्रियगोलक सूक्ष्म होते हैं और सूक्ष्मतर इन्द्रियार्थ सन्निकर्षमें समर्थ होते हैं। स्थूल द्रव्य जिस प्रकार स्थूल इन्द्रियोंको सत्य भासते हैं, उसी प्रकार सूक्ष्म द्रव्य सूक्ष्म इन्द्रियोंको सत्य प्रतीत होते हैं। प्राणमय शरीरके परमाणु संस्कार के द्वारा उत्तरोत्तर सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, तथा सूक्ष्मतम हो सकते हैं, और तब प्राण-शक्ति की गति और ज्ञानशक्ति भी उसी क्रमसे बढ़ती है।

प्राणमय शरीरके तौलके सम्बन्धमें सभी परलोक विद्या-विशारद तथा वैज्ञानिक अभी एकमत नहीं हुये हैं, हालां कि यह सभो मानते हैं कि प्राण जब एक द्रव्य है, तो उसका वज़न होना अवश्यम्मावी है। एंड्रू-जैक्सनका कहना है कि प्राणमय शरीरका तौल एक औंस वा ढाई तोला हो सकता है।

हैवेरहिलमामके डा० डकन मैकड्गलने मास नामक स्थानमें एक ऐसा प्रयोग किया कि क्षय रोगसे मरनेवाले एक मनुष्यका, मरनेसे प्रथम, उन्होंने वज़न कर लिया। रोगीकी चारपाई एक अति सूक्ष्म भार-दर्शक कांटेपर रखी गयी और वज़न किया गया, वज़नका कांटा ठीक लगा कर रखा गया। मृत्यु होनेके साथ ही काँटा पीछे सरका। यह देखा गया कि मृत्यु होनेके साथ ही, उस शरीरका ढाई औंस या पाँच तोला वज़न तुरत घट गया। डच वैज्ञानिकोंने भी प्रयोग करके इस परिणामको प्रत्यक्ष किया है।

अन्नमय शरीर और प्राण-प्रयाणकालीन प्राणमय शरीर,दोनों बिल्कुल एक आकार-प्रकारके ही होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्राणमय शरीर उस स्थूल शरीर का एक सूक्ष्म संस्करण है। प्राणों से यह सिद्ध किया जा सकता है कि स्थूल शरीरके छूटनेपर, मनुष्य, स्थूल शरीरके ही आकारवाले प्राणमय शरीरमें स्थित रहता है, और अन्नमय शरीरवालोंके सामने प्रकट होनेके लिये वियतत्त्व परमाणु संग्रह कर वह अपनी सत्ता प्रकट कर सकता है।

मृत शरीरको सम्हाल कर रखनेसे—चाहे वह सन्दूकमें रखा हो, क़ब्रमें दफ़न हो, अथवा चीन और मिश्र देशवालों की 'ममी' में सुरक्षित हो—उस शरीर की आशासे परलोक गत जीव लौटा करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। कर्ण-प्रयाग में स्वामी भास्करानन्द जब समाधि ले चुके, उसके बाद उनकी समाधिका बड़े ठाठसे जब पूजन-अर्चन हो रहा था, तो स्वामीजी कर्ण-प्रयागसे, प्राणमय शरीरसे कोल्हापुर लौट आये थे। इसको अपने आँखोंसे देखनेवाले मनुष्य आज भी जीवित हैं। *

( क्रमशः )

* लेखककी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'मृत्यु और उसके बाद' से।

— ले०।

## आवश्यक सूचना

सात्विक-जीवनका वार्षिक मूल्य ३) है, विद्यार्थियों, विद्यालयों और पुस्तकालयोंसे २) ; नमूनेकी कापी के लिये ।) आना आवश्यक है।

सात्विक-जीवनका वर्ष विजया दशमी ( अक्टूबर ) से प्रारम्भ होता है। वर्षके मध्यमें ग्राहक बनानेका नियम नहीं है, जो सज्जन वर्षके बीचमें ग्राहक बनना चाहेंगे उनकी सेवामें उस चालू वर्षके पिछले अंक भेजे जाएँगे।

ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें, अन्यथा पत्रोत्तरमें विलम्ब और उचित कार्यवाहीमें असुविधा होगी।

× क्या आप स्वस्थ होना चाहते हैं ?

× क्या आप स्वस्थ रहना चाहते हैं ?

× क्या आप अपने परिवार तथा अपने देशको स्वस्थ देखना चाहते हैं ?

× क्या आप किसी असाध्य रोगसे पीड़ित हैं ?

# आप जीवन सखा अवश्य पढ़ें

१—स्वास्थ्य-सम्बन्धी हिन्दीमें सर्वोत्तम पत्र है।

२—इसमें रोगियोंके अच्छे होनेका वर्णन उन्हींके कलमसे लिखा होता है।

३—इसमें आसन, प्राणायाम, आहार, व्यायाम, रोगोंका कारण और चिकित्सा-सम्बन्धी अनेक गम्भीर लेख रहते हैं।

४—पढ़कर आप अवश्य फ़ायदा उठायेंगे। आज ही एक प्रति नमूनाके लिए ।) का टिकट भेजकर मंगाइये।

पता :— **'जीवन-सखा'** ८७, हिम्मतगंज, इलाहाबाद।

× × × × × × × ×

# प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह

एक सुन्दर बाग़के अन्दर स्थित है, रहनेका सुन्दर प्रबन्ध और रोगियोंकी व्यक्तिगत देख-रेख यहांकी विशेषतायें हैं। इस संस्थाकी लोकप्रियताका यह कारण है, कि यहां अच्छा होनेवालोंकी संख्या ज्यादा है। नीचे लिखे रोगोंका इलाज यहां सफलता-पूर्वक होता है। साधारण दुर्बलता, स्नायु-दौर्बल्य, सभी तरहके चर्म-रोग, रक्ताभाव, पुराना जुकाम, खांसी, कब्ज, संग्रहणी, प्लुरसी, दमा, बवासीर, निद्राभाव, आमाशयका ज़ख्म, आंतोंकी खराबी, सभी तरहके ज्वर, घेघा, धमनियोंका कड़ा हो जाना, ( *Arteriosclerosis* ) रक्तचापका बढ़ना और कम होना ( *High and low blood pressure* ) गठिया, पेचिश, सब तरहके दर्द और सूजन, गुर्देकी बीमारी, यकृतकी बीमारियां, नपुंसकता, मधुमेह, मोटापा, दुबलापन, कर्णरोग, उन्माद, सभी तरहके स्त्री-रोग, इत्यादि, इत्यादि। पूर्ण विवरण नीचे लिखे पतेसे पत्र लिखकर मंगाइये। पत्रके साथ टिकट भेजना ज़रूरी है।

मैनेजर— **प्राकृतिक चिकित्सा-गृह**

८७, हिम्मतगंज, इलाहाबाद।

# प्रेमकी गुप्तशक्ति और प्रभाव

लें०—श्री राल्फवाल्डो ट्राईन

जिस समय हम अपनेको अनन्त भगवान्के साथ एक अनुभव करना प्रारम्भ करते हैं, हमारे अन्दर प्रेमकी पवित्र मन्दाकिनी बहने लगती है; जो हमारे हृदयकी समस्त ईर्ष्या, द्वेष, छल-छिद्र आदि दुर्भावनाओंको धो देती है और समस्त प्राणिमात्रमें परिणामतः हमें अच्छाई ही अच्छाई दिखाई देती है। जब हम सच्चे हृदयसे अनन्त आत्माके साथ अपनी एकता अनुभव करते हैं; तो अप्रत्यक्ष तौरपर हम एक दूसरेके साथ अपनी एकता स्वीकार कर लेते हैं। इस तथ्यको अपने हृदय-देशमें अच्छी तरह स्थापित करनेके उपरान्त हम संसारकी किसी भी वस्तुको तिल-मात्र भी हानि नहीं पहुंचा सकते। हम इस परिणामपर पहुंच जाते हैं कि हम सब इस विशाल शरीरके अङ्ग हैं, और यदि एक भी अङ्ग या भागको पीड़ा पहुंचाई जाएगी तो समस्त अङ्ग पीड़ित होंगे। जब आदमी सच्चे हृदयसे यह अनुभव करने लगता है कि सबके जीवन और शक्तिका स्रोत अनन्त भगवान् है, तब हृदयाकाशसे पक्षपात और घृणाके बादल हट जाते हैं; सर्वत्र भगवान्की ज्योतिका मधुर और मृदुल प्रकाश दिखाई देता है। धीमे-धीमे प्रेमकी वल्लरी बढ़ने लगती है और अपनी मनोहारिणी सुगन्धसे विश्व-उपवनको महकाती है। हम जहां कहीं भी जाते हैं, जिस किसी भी व्यक्तिके निकट संपर्कमें आते हैं; हमें उसमें भगवान् की अद्भुत छटा दिखाई देती है। हम समस्त संसारमें अच्छाई ही अच्छाई देखते हैं और इसका व्यक्ति के आध्यात्मिक जीवनपर सदा शुभ परिणाम होता है।

"जैसा करोगे, वैसा भरोगे" इस लोकोक्तिमें एक महान् गम्भीर वैज्ञानिक सत्य अन्तर्हित है। जिस क्षण हम विचार की सूक्ष्म शक्तिओंको भलीभांति जान लेते हैं, हम शीघ्र ही इस तथ्यसे परिचित हो सकते हैं कि जब हमारे हृदयमें दूसरोंके प्रति घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदिके भाव उदित होते हैं; तभी दूसरेके हृदयमें भी ये कुत्सित भावनाएँ उठने लगती हैं। भौतिक शरीर पर घृणा, क्रोध, आदि आवेशोंके प्रभाव बहुत ही भयंकर, एवं बुरे होते हैं। यही बात सब प्रकारके आवेशों द्वेष, टीका टिप्पणी, ईर्ष्या आदिके बारेमें भी लागू होती है। अन्तमें हम शीघ्र ही इस परिणामपर पहुंच सकते हैं कि दूसरेके प्रति अपने हृदयमें दुर्भावनाएँ रखनेसे पहले हमारी ही अधिक हानि होती है।

जब हम यह अनुभव करने लगते हैं कि समस्त गलतियों, पापों और अपराधोंका मूल कारण स्वार्थ है; और स्वार्थकी आधारशिला अज्ञान है; तभी हम प्राणिमात्रके प्रति सदय-भावसे देखना शुरू करते हैं। यह अज्ञानी मनुष्य ही है, जो दूसरोंको हानि पहुंचा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करनेमें संलग्न है। अज्ञानी मनुष्य ही अव्वल दर्जेका स्वार्थी है। सच्चे अर्थोंमें जो बुद्धिमान् पुरुष है, वह कभी स्वार्थी नहीं हो सकता। सदा परमार्थमें रहनेवाले व्यक्तिने ही जीवन के वास्तविक तत्त्वको पहिचाना है; वही यथार्थ द्रष्टा है; वही समस्त मनुष्योंको भगवान्की सन्तान समझनेवाला है, वही परोपकारमें स्वार्थके दिव्य दर्शन करता है।

यदि स्वार्थ ही समस्त गलतियों, पापों और अपराधोंका जन्मदाता है और अज्ञान ही स्वार्थका मूल कारण है; तो विवेकी पुरुषको मुक्ति-लाभके लिए इन शत्रुओंके विकराल पंजों से छुटकारा पाकर

भगवान्‌के दर्शन करना चाहिए। यदि हम हृदयके अन्तरतम प्रदेशमें प्रवेश करें, तो हमें भगवान्‌की अनुपम छवि दृष्टिगोचर होगी और भगवान् अवश्य ही हमारे दुःखोंका मर्दन करेंगे और मुक्ति-पथपर बढ़नेके लिये हमारा समुचित पथ-प्रदर्शन करेंगे। आवश्यकता है, हृदय-गुहामें प्रवेश की।

कभी-कभी मैं कई आदमियोंको यह कहते हुए सुनता हूं कि 'हमें तो अमुक पुरुषमें कोई अच्छाई ही नहीं दिखाई देती।'' इसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि तुम यथार्थ द्रष्टा नहीं हो। गहराईमें जाओ तुम्हें प्रत्येक मानवीय आत्मामें भगवान्‌के दर्शन होंगे। परन्तु इस तथ्यको अपने हृदय-पट पर अङ्कित करलो कि भगवान् ही भगवान्‌को पहिचान सकता है; इसलिए पहले तुम स्वयं भगवान् बननेका प्रयास करो। ईसा मसीह प्रत्येक वस्तुमें भगवान्‌को देखते थे क्योंकि पहले स्वयं उन्होंने अपने अन्दर भगवान्‌की झांकी ली थी। ईसामसीह, पापियोंतकके साथ खानेमें भी नहीं हिचकिचाते थे।

जबतक हमारा निजका व्यक्तित्व महान्, शानदार और उज्वल नहीं है, हम शीघ्र ही दूसरोंकी समालोचना और ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि दुर्भावनाओंसे प्रभावित हो जाएँगे। यदि हमारे हृदयोंमें प्रेम दीप जल रहे हैं; तो वसुधापर फैलता हुआ उन प्रेम-दीपोंका प्रकाश सृष्टिके कण-कणको जगमगाएगा; हम सृष्टिको सुन्दर बनानेमें महान् सहायक सिद्ध होंगे। यदि तुम्हारी यह अभिलाषा है कि संसार तुमसे स्नेह करे, तो पहले तुम संसारसे स्नेह करना सीखो।

जितने अंशमें हम दूसरोंसे प्रेम करेंगे, दूसरे भी हमसे प्रेम करेंगे। विचार शक्तियां हैं। प्रत्येक शक्तिका अपना अद्भुत प्रभाव होता है। इसलिए अपने विचारोंको हिमालयके धवल गिरि-शृङ्गोंके समान उज्वल बनाओ; विचारोंका तुम्हारे भाग्य-निर्माणमें प्रमुख भाग है। विचार ही तुम्हारे शब्दोंको बनाते हैं—भगवान्‌का यही विधान है।

मेरा एक मित्र सदा प्रेमके विचारोंमें सराबोर रहता है मानो वह सृष्टिके कण-कणसे यह कह रहा है कि "मैं तुम्हें प्रेम करता हूं।" ऐसे आशावादी और पवित्र, सुन्दर विचारोंका प्रभाव जीवनपर अवश्यम्भावी है। विचार ही जगत्‌का निर्माण करते हैं; विचारोंके आधारपर ही वसुधा अवलम्बित है।

पशु भी इन शक्तिओंके प्रभावको अनुभव करते हैं। कुछ पशु तो मनुष्योंकी अपेक्षा बहुत जल्दी प्रभावित किए जा सकते हैं; क्योंकि वे मनुष्यके विचारोंको उसकी मानसिक अवस्थाओंको और हृदयकी भावनाओंको तथा संकेतोंको अति शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं और तदनुकूल आचरणमें प्रवृत्त होते हैं। इसलिए हम जब कभी भी किसी पशुसे मिलें, हम अपने प्रेम-पूर्ण विचारोंको भेजकर उसका अतिशय कल्याण कर सकते हैं। हमारी केवल प्रेममय पुचकारोंसे ही पशु आनन्द-विह्वल हो उठेगा, और हमारे प्रति प्रेम-प्रदर्शक प्रतिक्रियाएँ करेगा।

उस संसारमें रहना और झूमना कितना आनन्ददायक होगा, जहाँ हम सदा देवताओंके ही दर्शन करते हैं। ऐसे प्रेममय पवित्र संसारमें तुम रह सकते हो। ऐसे दिव्य संसारमें मैं रह सकता हूं और प्रत्येक वस्तुमें भगवान्‌के साक्षात्कारकी सूक्ष्म अनुभूति हममें होगी, त्यों त्यों हमारा जीवन प्रशस्त बनेगा। इस परिवर्त्तनशील, भ्रमोत्पादक, गलतियां करनेवाले अहंसे परे ही वास्तविक, अपरिवर्त्तनशील, एकरस सत्ता मौजूद है जिसके दर्शन मात्रसे मन-मयूर नाचने लगता है।

यदि तुम मुझे यह बता दो कि कोई आदमी कितना प्रेम करता है; तो मैं तुम्हें यह बतला दूंगा कि उसने कितने अंशतक भगवान्‌के दर्शन किए हैं।

यदि तुम मुझे यहां बता दो कि कोई आदमी कितना प्रेम करता है; तो मैं तुम्हें यह बतला दूंगा कि वह कहांतक भगवानके साथ रहता है। यदि तुम मुझे यह बता दो कि कोई आदमी कितना प्रेम करता है, तो मैं तुम्हें यह बता दूंगा कि उसने कहांतक भगवान्के स्वर्गीय राज्यमें प्रवेश किया है।

यदि तात्त्विक-दृष्टिसे सृष्टिका सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि प्रेम ही सृष्टिका सार है। प्रेम ही वह सुनहरी कुंजी है, जो दिव्य-जीवन-के द्वारको खोलती है। प्रेममें वह अपार शक्ति है जो विश्वको चलाती है। यदि तुम घृणा और ईर्ष्याके भावोंमें लीन रहोगे तो परिणामतः परिवर्त्तनमें घृणा और ईर्ष्या ही तुम्हें मिलेगी। प्रत्येक विचार अपने साथ असीम शक्ति रखता है। स्वस्थ और सुन्दर विचारोंका प्रभाव शुभ तथा कुत्सित विचारोंका प्रभाव बुरा होता है। अंग्रेजीकी एक मशहूर कहावत है— "भगवान् प्रेम है।" अपने मन-मन्दिरमें प्रेमका दीपक जलानेके पश्चात् तुम्हारे मुख-मण्डलपर स्वर्गीय आभाके दर्शन होंगे; तुम्हारे स्वरमें मृदुलता और आकर्षण आएगा।

आइए पाठक-वृन्द! अपने मानस-मन्दिरमें प्रेमका दीपक जलाएँ; जिसके सुनहले प्रकाशसे हमारा जीवन जगमगा उठे।

---

# नव ज्योति जगाने आई

रचयिता—सुबोधचन्द्र शर्मा "नूतन"

यह नव ज्योति जगाने आई।

आलस निद्रा तज उठ जाओ;
उन्नति को निज ध्येय बनाओ;
कर्मक्षेत्र में फिर डट जाओ;
अब न रही वह निशि दुखदायी॥
यह नव ज्योति जगाने आई।

बहुत दिवस हैं सोते बीते;
बे-होशी का प्याला पीते;
बल-वैभव से हो गये रीते;
लुटी हमारी बंधु! कमाई॥
यह नव ज्योति जगाने आई।

पादप पर सब पक्षी जागे;
ग्राम - नगर - वनवासी जागे;
अब तो सोते व्यर्थ, अभागे;
सभी जगह शुभ जागृति छाई॥
यह नव ज्योति जगाने आई।

देश-जातिसम्मान बढ़ाओ;
भव्य-भावना आज जगाओ;
भारत-नैया पार लगाओ;
'नूतन' मिल सब भारत-भाई॥
यह नव ज्योति जगाने आई।

# जीवन का सुखमार्ग

ले०—विद्याभूषण पं० श्री मोहन शर्मा, विशारद, पूर्व सम्पादक "मोहिनी"

## विधाताकी सृष्टिमें मानवका स्थान

यह समग्र संसार जगन्नियन्ताके अलौकिक चातुर्यका नमूना है। अगणित वस्तुएँ इसमें स्रष्टाने सौन्दर्य और सुखके भोक्ता मनुष्यके लिये सजाकर रखी हैं। यह सुविशाल भूमण्डल और सुविस्तीर्ण समुद्र नाना भांतिके जीवोंका आवास-स्थल और नाना विभूतियोंकी विराट खानि है। जिन सबके अद्भुत व्यापक और वस्तु स्वरूपको शब्दचित्रके रूपमें खींचना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

इस सृष्टिके संख्यातीत प्राणियोंमें श्रेष्ठताका दर्जा मनुष्यको प्राप्त हुआ और उसके उपभोगके लिये सहधर्मिणीके रूपमें सौन्दर्यकी अन्तिम कृति स्त्रीका निर्माण किया गया। नर-नारीके इस अकृत्रिम स्वरूप में स्रष्टाके पवित्र स्वरूपकी झांकी हम करते हैं। मानवका जीवनोद्देश चिरन्तन सुख, शान्तिकी प्राप्ति अपना धर्मशास्त्रोंमें बतलाया है और यह दोनों इस परम पावन स्वरूपको जाननेका साधन किये विना प्राप्त नहीं होते।

अंग्रेजीमें कहावत है कि :—

'God has made man after his own image'

अर्थात् ईश्वरने मनुष्यको अपने ही स्वरूपका बनाया है। अथवा पराक्रमपूर्वक लौकिक सुख-शान्ति का भोग करते हुए अन्तमें जो उस महास्वरूपको प्राप्त कर सकते हैं, यथार्थमें उन्हींका जन्म जीवन धन्य है।

मनुष्य पर्याय इस पृथ्वीतलपर जीवको बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है। इस जीवनके सदुपयोग द्वारा वह सारे जगतको ही नहीं; अपने चरम लक्ष्य तकको जानने और प्राप्त करनेमें समर्थ है। स्त्री, पुरुष दोनोंके जीवन इस अलौकिताके निदर्शन स्वरूप हैं। स्त्री, पुरुष एक ही रथके दो पहिये हैं। गृहस्थ जीवनका जहांतक इनसे सम्बन्ध है, यह एक ही पक्षीके दो पंख जैसे प्रतीयमान होते हैं।

इस जीवनको धारण कर अबतक कितने ही बार. उस लीलामयने अपनी लीलाका विस्तार मानवके कल्याणार्थ साधन कर दिखाया है। जिसपरसे यह समझनेकी आवश्यकता शेष नहीं रह जाती कि मानव अपनी शक्तियोंके विकास द्वारा क्या-क्या नहीं कर सकता ? यदि आध्यात्मिक युगके इतिहासको परे रख कर हम वर्त्तमान वैज्ञानिक कालके विचित्र आविष्कारों पर सोचें तो यह जाननेमें देर न लगेगी कि पृथ्वीके अतिरिक्त समुद्र और वायु तक पर मनुष्यने अपनी बुद्धि कौशलसे विजय पायी है। आकाशमण्डल में वायुवेगसे उड़नेवाले वायुयान और समुद्रकी छातीपर तैरनेवाले भीषण यन्त्र दानवरूपी जहाजके अतिरिक्त तार, रेडियो आदिके कौतूहलपूर्ण आविष्कार, यह सब आधुनिक मनुष्य मस्तिष्ककी ही उपज हैं। थोड़े शब्दोंमें मनुष्य देव है, मनुष्य, मनुष्य है और राक्षस भी है। यह अपने जीवनकी अमल साधनासे चाहे तो अपने को चक्रवर्त्ती, नारायण, नराधिप बनाले और चाहे तो मूक बधिर और अपङ्ग प्राणियोंके जैसा निम्न जीवन व्यतीत करे। जीवनकी साधना अर्थात् कर्मकी निरन्तर उपासना मनुष्य शरीरमें व्याप्त पारमार्थिक गुणों, को ऊपर उठाती है। तब वह विकासके विखरे हुये स्वरूपको प्राप्त करता है। जीवन उन्हींका धन्य है जो इस तत्त्वके अनुयायी बने और जिन्होंने संसारको

जाननेके मार्गपर रेंगते हुये अपने आपको जान लिया।

विश्वके असंख्य मनुष्योंमें ऐसे कितने हैं जो इस दुर्लभ जीवनकी महानताका रहस्य समझनेमें समर्थ हुये हों ? प्रश्न थोड़ा विवादग्रस्त होते हुये भी अपना बहुत ही सुन्दर उत्तर रखता है। कहना नहीं होगा कि सृष्टिके करोड़ों मनुष्योंमें कुछ मनुष्य ही इस रहस्यको जानते हैं। और तो और किसी एक विषयमें सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना भी कठिनाईसे कुछ मनुष्योंके ही भाग्यमें जुटता है। असंख्य मनुष्य ऐसे पाये जाते हैं जिनका जीवन, कलह, द्वेष और नाना विषमताओंसे घिर रहा है। जीवन सुख-रूप न होकर दुखके भयंकर रूपमें परिणत हो गया है। संसारके विशाल चिकित्सालयों (शफ़ाखानों) में घूमकर देखिये कितने मनुष्य कठिन रोगोंसे जर्जरित अवस्थामें कराहते पड़े हैं। अकारण कितनी ही अपमृत्युएँ नित्य घटित हो रही हैं! कितने भूखकी ज्वालासे झुलसकर नित्य यमलोककी राह पकड़ रहे हैं। क्या मानव-जीवनके इस दिवालियापनका ही नाम श्रेष्ठता है ? यदि यही जीवनका लक्ष्यबिन्दु है तब ऐसे जीवनको धारण करनेकी कौन इच्छा करेगा ? परन्तु हम ध्यानसे देखें तो पता चलेगा कि जीवन दुःखरूप होते हुये भी सर्वांशमें सुखरूप है। मनुष्य अपनेको चाहे जैसा बना ले क्योंकि वह अपना स्वयं भाग्य-विधाता है। अपनी सम्पत्ति विपत्तिका वह खुद जन्मदाता ठहरता है। जिन संस्कारोंमें हम पालित पोषित होते हैं, आगे चलकर उनके अनुकूल वातावरण पैदा करनेकी सामर्थ्य ही नहीं रहती। फलतः जीवनकी श्रेष्ठताका हमें भानतक नहीं होता और यह दुर्लभ शरीर पानीकी भांति आता और हवाकी भांति यों ही उड़ जाता है।

"Like water we come, like wind we go"

नीचेके उदाहरणसे जीवनकी असावधानताके सम्बन्धमें मनुष्यके आविष्कारका भलीभांति ज्ञान होता है। वह सब कुछ जानते हुये जीवनकी संरक्षा और सदुपयोगमें क्यों तन्मय नहीं रहता, इसके मूलभूत कारणको लोग समझने लगे तो जीवनका सुखमार्ग हरएकके पक्षमें सुलभ हो जाए ?

'प्राचीनकालमें एरण नामक राजनगरीके समीप एक छोटे ग्राममें दीनू नामक लकड़हारा रहता था। नित्य जंगलसे लकड़ियां बटोरकर उन्हें एरणमें जाकर बेचना यही उस ग़रीबकी जीविका थी। एक दिन जब वह लकड़ीका गट्ठा सिरपर रखे एरणकी ओर बढ़ा जा रहा था—बार-बार सोचता कि आजके इस गट्ठेका दाम तीन आने तो भी लगेगा। और उस पैसेके अमुक-अमुक वस्तुएँ खरीद की जायेंगी कि एकाएक उसकी दृष्टि मार्गमें पड़े हुए एक चमकीले गोल पदार्थ पर गड़ गयी (!) दीनूने उसे लपककर उठा लिया। यथार्थमें वह रत्न ही था पर दीनू बेचारा उसे क्या जाने ? उसने सोचा इसे राजनगरीमें किसी बालकके खेलनेकी चीज बताकर बेंच देंगे और इससे भी तीन आने मिलनेपर छह आने मेरी जेबमें होंगे। थोड़ा आगे बढ़नेपर उसे सामने एक विशाल भवन और सरोवर दिखाई दिया। वह भौचक्का हो देखने लगा। लकड़ीका गट्ठा नीचे उतारकर वह बैठा था कि आखें झपकने लगीं। सामने वृक्षपर कौआ कांव-कांव कर रहा था। रत्नको हाथमें रखते हुये भी एक बार आवेशमें आकर दीनूने उसे कौएको दे मारा। और वह दुर्लभ रत्न सरोवरके अगाध जलमें जा गिरा!! दीनू आंख उघाड़ कर देखता है तो न वह महल है, न सरोवर ही। बल्कि लकड़ीका गट्ठा मात्र छिछले मार्ग पर एक ओर पड़ा है। और रत्न हाथसे सदैवके लिये चला गया।' कहनेका हेतु यह कि मनुष्य इस जीवन रत्नको पाकर इसका उचित मूल्य करना ही नहीं जानता। और निरन्तर षड्रिपुओंके मोहपाशमें बद्ध

रहकर अन्तमें एकदिन दीनूकी भांति दयनीय अवस्था को प्राप्त होता है। मानव जीवन और जीवितव्यके ध्येयको वह नहीं जान पाता; अतः सुखके बदले दुःख ही इस जीवनका लक्ष्य बन रहता है।

## जीवनका स्वास्थ्यसे सम्बन्ध

मनुष्य गृही जीवनमें प्रवेश पाकर यदि सन्तति और धनका स्वामी नहीं हुआ तो उसकी संसारयात्रा बड़ी दुरूह हो उठती है। हम सचराचर देखते हैं कि कितने ही मनुष्य सन्तति और धन दोनोंसे वञ्चित हैं। और कितनोंके भाग्यमें सन्तान जुटी तो धनका एकान्ताभाव बना है तथा कितनोंको अटूट कोष उपस्थित है पर सन्तानहीनताने उसे व्यर्थसा बना रखा है। आजके गार्हस्थ्य और सामाजिक जीवनमें यह विषमता मूर्त्त रूपसे दिखाई पड़ रही है। हजारों लाखों इसके जीते जागते उदाहरण हमारी आखोंके सामने हैं।

आरोग्यताका शरीर और मनसे बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रथमाश्रमके नियमोंका ठीक-ठीक निश्चित समयतक पालन न होनेसे अथवा आश्रम व्यवस्थामें गड़बड़ी हो जानेसे देशके आरोग्यधन का बुरी तरह संहार हुआ है। फलस्वरूप आयुकी निश्चितसी अवस्था आज दिन ५० वर्ष पर आ पहुंची है और परावलम्बनके कारण आयकी औसत भी प्रति मनुष्य पीछे =) मानी जा रही है। हमारे स्वास्थ्य और धनका किस तरह दिवाला पिटा है, देखा जाय तो यह जानते हुए भी लोग पुनः चैतन्यलाभ के लिये उद्योगी होना नहीं चाहते।

खोया हुआ धन प्रयत्न और साधनसे फिर भी उपार्जित हो सकता है; परन्तु, चरित्र और स्वास्थ्य इन दो की रक्षाका सदुपाय न होनेसे मानव जीवन कौड़ी कामका नहीं रह जाता। तब मनुष्य पृथ्वीपर भार-स्वरूप होकर पशु जैसा निन्द्य जीवन व्यतीत करनेको बाध्य होता है। अतः यह सिद्ध है कि स्वास्थ्य और आरोग्यता ही जीवन है। स्वास्थ्य-सम्पन्न व्यक्ति दीर्घायु भोगनेके साथ साथ अपने अन्य सांसारिक अभावोंकी बलपूर्वक पूर्ति कर लेता है। इसीलिये मानवजीवनका सबसे पहिला सुख "निरोगी काया" बताया गया है। यद्यपि "शरीरं व्याधिमन्दिरं" के अनुसार यह शरीर नाना रोगोंका आवास-स्थल है। किन्तु संयम-नियम आदिके पालन और औषधोपचार से हम इस रोगसमूह को नाम-शेष कर सकते हैं। यदि शरीर रक्षाके अनुभव सिद्ध नियमोंका अवलम्बन करते हुये मनुष्य संसार यात्रामें लिप्त रहें, तो भयङ्कर रोगोंकी उत्पत्तिका द्वार ही बन्द हो जाय। यह हमारे आहार-विहारकी अनियमितता हमें अवश्य ही कठिन रोगोंका शिकार बनाती है। इसीसे देशमें नित्य नये भयङ्कर रोग मानवकी खोपड़ीपर अपना ताण्डव नृत्य कर रहे हैं। रोगोंकी इस प्रत्ययातीत वृद्धिके साथ-साथ चिकित्साके साधनोंने भी ग़जबका जोर पकड़ा है। और अवस्था यहांतक आ पहुंची है कि रोगोंके लिये योग्य औषधियोंकी तजबीज़का विषय जटिलतम बन गया है। सैकड़ों हज़ारों बाज़ारू औषधियों में अव्वल तो नकल तथा असलका भेद करना कठिन हो गया फिर निवृत्तिके लिये किसे उपयोगी और अनुपयोगी माना जाए यह समझ ही नहीं पड़ता। इसी झमेलेमें कितने ही रोगी असमय कालके ग्रास हो रहे हैं। कितने रोगकी यन्त्रणा भोगते हुए भाग्यको कोसते हैं और कितनोंका औषधियोंपरसे ही विश्वास उठा जा रहा है।

देशकी ४० करोड़ जन-संख्यामें ५ करोड़ जन-संख्या शहरोंकी ठहरती है। बाकी ३५ करोड़ जनता देहाती क्षेत्रोंमें आबाद है। कहनेका प्रयोजन नहीं कि देहाती क्षेत्रोंकी जनताके रोगोंकी चिकित्साका आज

भी सर्वथा उचित प्रबन्ध नहीं है। देहातोंमें अक्सर अपढ़ और निर्धन अवस्थाके लोग अधिक तादादमें पाये जाते हैं अतः वे समझकी कमी और पैसेकी तंगी से अपने रोगके निवारणार्थ ठीक औषधि चुननेमें प्रायः व्यर्थ प्रयत्न रहते हैं। बहुमूल्य औषधि भी द्रव्याभावके कारण खरीद नहीं कर सकते। इसका जो दुष्परिणाम होता हैं वह शिक्षित जन-साधारणसे छिपा नहीं है।

## वर्त्तमानमें शरीर रक्षाकी कठिनाईयाँ

प्राचीन भारतमें शरीर चर्चाको बड़ा ही महत्त्व दिया जाता था। शरीर-धर्म के नियमोंको लोगोंने ठीक-ठीक समझा था। उनकी दिनचर्या और रात्रि-चर्या अपना कोई आदर्श रखती थी। आहार और विहारके तत्त्वोंको तबके मनुष्योंने ठीक-ठीक समझकर तदनुसार आचरण करनेके विधानको अपनाया था। संयमी और परिश्रमशील जीवनकी झांकियां तबके उन्नत समाजमें करनेको मिलती थीं।

दुर्भाग्यसे आज इसके सर्वथा विपरीत अवस्था पायी जाती है। आहार-विहारमें संयम-नियमका लोगोंको अब उतना विचार नहीं रह गया। अनिवार्य परिश्रमके पूर्वरूपमें भी बहुत कुछ फेरफार घटित हुआ है। जिससे पैसा पैदा करनेके साधन न्यूनातिन्यून हो गये हैं। निरन्तर भाग-दौड़ करनेपर भी शरीरके लिये सम्वर्द्धनशील खाद्यसामग्री और जीवनके विश्राम सुखके लिये अच्छे साधन नहीं जुट पाते। "कब क्या खाना और कैसा खाना" यह सोचनेके लिये अधिकांश मनुष्योंको विवेक भी नहीं रह गया। इसी प्रकार निद्रा, मैथुन आदिमें भी मनमाने ढंगसे वर्त्तन हो रहा है। तबके लोग सन्तानोत्पत्तिके लिये नियमानुसार गर्भाधानके कायल थे। किन्तु, अब प्रजनन शास्त्र गुप्त पुस्तकोंका विषय है। उस पर अमल करना दूर रहा, हजारों लाखोंमें बहुत कम मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो इसकी विधि-व्यवस्थाको ठीक-ठीक जानते समझते हैं। शरीर और मस्तिष्कके लिये जहां योग्य खूराक का चुनाव करनेमें असावधानी होने लगी, वहां शुद्ध जलवायु, व्यायामकी प्रयोजनीयता, शरीरके लिये आवश्यक विश्राम आदिकी क्रियाओंमें भी गड़बड़ी पैदा हो गयी है। इन तमाम उलटी व्यवस्थाओंने शारीरिक सुख स्वास्थ्यके नामपर उलटी गंगा बहा दी। ६० प्रतिशत मनुष्य धातुजन्य रोगोंके शिकार हो गये। युवावस्थाके पूर्व ही कितने मनुष्य कठिन रोगोंसे आक्रान्त होने लगे। स्त्री और पुरुष दोनों वर्गोंमें नाना दुर्द्धर्ष रोगोंका भयंकरतासे प्रादुर्भाव होने लगा। यदि यह अवस्था आज न होती तो हकीम डाक्टर और वैद्योंकी संख्या इस अनिश्चित रूपमें न बढ़ती। औषधियोंकी बहुतायत और उनका धन्धा भी इस रूपमें वृद्धिको प्राप्त नहीं होता।

## रोगोंके आक्रमणसे बचनेका उपाय

जब नित्य नये रोगोंका इस भयानकतासे दौर-दौरा हो रहा है तब उनसे हमारा क्योंकर बचाव हो, यह प्रत्येक गृहस्थके पक्षमें विचारणीय है। ऐसा नहीं कि लोग इस ओरसे एकदम उदासीन हो गये हों पर हजारों, लाखोंमें कुछ विवेकशील व्यक्तियोंका ही ध्यान सचाईके साथ इस ओर आकर्षित हुआ है। और उन्होंने इस समस्याका हल ढूंढ़ निकालनेमें अपनी शक्तियां लगा दी हैं। पर सर्व-साधारण तक उस विचार-धाराको पहुंचाना और चुनींदा औषधियोंका यथार्थ परिचय आसानीसे करा देना यह सर्वथा सहज साध्य नहीं है। लोगों पर अपने विश्वासका सिक्का जमानेके लिये वर्षोंकी तपश्चर्या, अनवरत परिश्रम, और बड़ी कुर्बानियोंका प्रयोजन हुआ करता है और तब ही किसीको जनता-जनार्दन की ऐसी सेवा-साधना का श्रेय प्राप्त होता है।

विज्ञापनके इस संक्रमणशील युगमें इश्तहारबाजो-के सहारे पनपनेवाली सैकड़ों, हजारों औषधियां संसारमें प्रचारित हो रही हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी औषधिके गुणोंका ढोल पीटकर लोगोंपर अपने विश्वास और सच्चाईकी धाक जमाना चाहता है। कितने ऐसे भी हैं जो दूसरोंकी असल चीजोंकी उप-योगिता और प्रशंसासे कुढ़कर नकली औषधियोंको असली नाम दे-देकर प्राचारित कर रहे हैं। इसका जनताकी सरल मनोवृत्तिपर बड़ा ही कुप्रभाव हुआ है। नकली औषधियोंके फेरमें पड़कर लोगोंका धन, धर्म और स्वास्थ्य तो गया ही पर असली औषधियों-से भी श्रद्धा जाती रही। असल और नकलके भेदको समझकर ठीक औषधि क्रय करनेमें बड़ी ही सावधा-नता आवश्यक है। लोगोंको चाहिये कि वे एकदम निराश और अविश्वासी न हो उठें, बल्कि रोगके शमनार्थ योग्य औषधिकी खोज करते रहें। आज जब हजारों औषधियोंका आविष्कार हो जानेपर अनेक तत्काल फलप्रद, रामबाण औषधें भी उनमें पायी जाती है। सूझबूझके साथ पहिचानकर औषधि खरीदनेसे मनुष्य कभी ठगा नहीं जा सकता। और जिस रोगके लिये अनेक औषधियां व्यर्थ हैं, एक अच्छी अनुभूत औषधि थोड़े दिन के प्रयोग से ही उसका समूल नाश कर देती है।

जीवनको सुखके प्रशस्त पथपर ले जानेके हेतु शरीर रक्षा सर्वप्रथम आवश्यक है, स्वास्थ्य सम्पत्ति कायम रहनेपर मनुष्य अपनी उन्नतियोंमें निर्भीकतासे आगे बढ़ सकता है। स्वास्थ्यकी हिफ़ाजतके लिये जहां व्यायामानुशीलन, प्राणायाम, सूर्य-नमस्कार, मुक्त वायु सेवन और आहार विहारमें मिताचार आदिको प्रधानताको माना गया है वहां रोगोंसे बचनेके लिये उपयुक्त औषधियोंका नियमित सेवन भी अनिवार्यतः आवश्यक है। प्रकृतिकी इस पुकारपर जो लोग ध्यान नहीं देते वे अपने सोनेके संसार और आत्मदेवके पवित्र मन्दिरको अपने हाथों उजाड़ने और ढहा देनेका दुष्प्रयत्न करते हैं।

## स्वास्थ्यसुख ही जीवन है

रोगोंकी निवृत्तिके लिये जहां योग्य औषधिसेवन-का महत्त्व है वहां साधारण मानसोपचारसे भी मनुष्य को कठिनाईके इस दलदलसे निकल भागनेमें सहायता मिलती है। सशक्त और सबल विचारोंकी प्रेरणाका शरीर और मनपर उत्तम प्रभाव पड़ता है। रोग इसलिये भी उग्र रूप धारण कर रहे हैं कि मनुष्यने उनके दुष्ट प्रभावको अपनी चिन्ताधारामें घुला मिला लिया है। चाहिये तो यह कि हम रोग शोकमें स्वास्थ्य और सुख साधनकी भावना करें। पर हृदयकी निर्ब-लता किसी भी श्रेष्ठ भावनाको सञ्चारित होने नहीं देती और निर्बलताकी भीति-भावना अधिक निर्बलता-का साम्राज्य स्थापित करती है। इस विषयमें यदि लोग मानसिक व्यायामके इस फिकरेको याद रखें और उसे व्यावहारिक रूप देनेके भी प्रयासी बन जाएँ तो रोगकी अवस्थाओंमें रोगका उतना तीव्र अनुभव कदापि न हो और उससे स्वस्थ तथा सबल होनेमें भी उन्हें सहायता मिलती रहे।

Know yourself, accept yourself, be yourself, improve yourself.

अतः सिद्ध हुआ कि स्वास्थ्य एक दृष्टिसे सुखका सुन्दर मार्ग प्राप्त करनेकी कुञ्जी है। आरोग्य और सबल व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक सम्पदाको अपनी चेरी बना सकता है, विपदाको तूलकी भांति पराक्रमी जीवनकी फूंकसे उड़ा सकता है। उसका अपना जीवन किसी की दया भिक्षाका मोहताज नहीं हो सकता। वह चाहे तो इस लोक और परलोकको निज शुभाशुभ कर्मोंके

सम्पादनसे बना ले और चाहे तो बिगाड़ दें। ईश्वरकी इन्द्रमयी सृष्टिके इस श्रेष्ठतम मानवशरीरकी सार्थकता तभी है जब इसके द्वारा लोक और परलोक दोनों का साधन ठीक-ठीक होता रहे। आजका संसार इन दोनोंके साधनमें कितना फिसड्डी होता जा रहा है, यह हम मनुष्य जगतके स्वास्थ्य धनकी गयी बीती अवस्थापरसे भली भांति जान सकते हैं। परलोकके वास्तविक ज्ञान सूर्यको चमकानेवाला हमारा यह देश और उसके निवासी फिर जीवनके सुखमार्गपर कबतक लौटते हैं, खोये हुये स्वास्थ्यसुख और ऐश्वर्यको कब तक पाते हैं, सारे विश्वकी इसीपर आँखें लगी हैं। अलमिति विस्तरेण।

---

# आवाहन

कवियित्री—कुमारी शैलबाला "शैल" रस्तोगी

प्रिय दर्शन दो इक बार।

जल थल नभ सब ढूँढ़ चुकी हूं कबसे रही पुकार।
प्रिय दर्शन दो इक बार
रजनी के निबिड़ान्धकार में
शशि की किरणों के प्रसार में
सघन तारकों की कतार में
बार बार मैं खोज चुकी हूं कबसे रही पुकार
प्रिय दर्शन दो इक बार॥

ऊषा के सुन्दर सुहास में
सरिताओं के मन्द प्रवाह में
अंशुमाली की अंशुमाल में
चपल समीर की मस्त चाल में
मगमें पलकों के पट डाले उत्सुक रही निहार।
प्रिय दर्शन दो इक बार

प्रिय पावस की हरीतिमा में
विहंगोंके अति सुमधुर स्वर में
ऋतुराज की मधुरिमा में
कोकिल के अमृतसम रव में
नहीं कहीं तुमको पाती हूं, सहती कष्ट अपार।
प्रिय दर्शन दो इक बार।

आओ तुमको आना होगा
करना होगा स्वीकार, प्रभो
मेरी छोटीसी कुटिया का
यह छोटासा उपहार प्रभो!
नाच उठे जिससे मेरा यह आशा का संसार।
प्रिय दर्शन दो इक बार।

# सत्यव्रत

लेखक—श्री नारायणप्रसादजी साधक श्री अरविन्दाश्रम पांडीचेरी

( गतांक से आगे )

## पहला अंक

तीसरा दृश्य

स्थान—अमरपुर।

( महामाया और सत्त्व बातें कर रहे हैं )

महा०—तुम कहते हो कि तुमने ऐसे-ऐसे महारथियोंको खड़ा किया है जिनके सामने शत्रुओंका महा-वीर्य भी विचलित हो उठेगा पर तुम नहीं जानते सत्त्व अज्ञानकी शक्ति कैसी प्रचण्ड है?

सत्त्व—मेरी धृष्टता क्षमा करें। इसके उत्तरमें मैं यही कहूंगा कि एक विवेककी ओर ही आप आखें उठाकर देखें—देखें उसमें कैसी शक्ति है, कैसा कौशल है—मैं यह दावेके साथ कह सकता हूं कि काम क्रोधादि कैसा भी व्यूह क्यों न रच डालें वह उसे चीरकर भीतर घुस कर ही चैन लेगा।

महा०—अकेला विवेक मायाकी इन पल्टनोंके सामने क्या कर सकेगा सत्त्व?

सत्त्व०—अकेला विवेक क्यों जननी! आप देखेंगी वैराग्य जब शंख बजाकर रणमें उतर पड़ेगा तो उसकी विजय-वाहिनीके वीरपद भारसे शत्रुदल, शत्रुदल वैसे ही कम्पित हो उठेगा जैसे सिंहके हुंकारसे वनपशु।

महा०—अहंकारको क्या तुमने जंगलोंकी सूखी लकड़ी समझ रखा है जो वैराग्यके छूते ही जल कर भस्म हो जायगा? जानते हो—नहीं जानते? शरीरके नष्ट होनेपर भी उसका नाश नहीं होता। अच्छा तुम जाओ।

( सत्त्व सिर नीचा किये चला जाता है )

कहां है मानव-कल्याणका सूर्य, ज्ञान।

( ज्ञानका प्रवेश )

ज्ञान—( नत-मस्तक होकर ) देवीने मुझे स्मरण किया था?

महा०—ज्ञान! तुम्हें मनुष्यको मायाके राज्यसे निकाल भगवान्‌के निकट ले जाना होगा।

ज्ञान—माता, मनुष्यको अज्ञानसे निकालना बड़ा कठिन है।

महा०—मैं जानती हूं यह दुःसाध्य है, पर वत्स! क्या असाध्य है?

ज्ञान—( विनम्र स्वर से ) यह इतना दुःसाध्य है कि इसे असाध्य कह देना अत्योक्ति नहीं होगी।

महा०—कहींसे कुछ लाना है वत्स! सब उसके पास है; केवल उसे उठाना है—उसकी सुप्त शक्तियों को जगाना है: ( इतना कहकर महामाया चुप हो जाती है और दूर टकटकी लगा कर कुछ देखती हैं; फिर अंगुली दिखा कर ) दूर-दूर नदीके किनारे देखते हो उस वृक्षको—देखते हो वह कैसे अपनी सबसे लम्बी शाखासे आकाश छूने का व्यर्थ प्रयास कर रहा है; पर बेचारा करे क्या—ऊपर उठे कैसे, पैर जमीनसे गड़ा हुआ है! यही दशा है मनुष्यके अन्तरात्माकी; वह ऊर्ध्वमें उड़नेके लिये छटपटा रहा है, पर उसे कामवासना उठने नहीं देती। इसी कार्य-के लिये हुआ है विवेक, वैराग्यादिका जन्म—जाओ वीर उन्हें अपना-अपना स्थान ग्रहण करनेको कहो। तुम मेरे मुंहकी ओर ताक क्या रहे हो?

ज्ञान--माता ! विवेकादिमें क्या सामर्थ्य है कि वे लोहेके पात्रको सोनेका बना दें ।

महा०—लोहेके पात्रको सोनेका तो बना नहीं सकते पर जो पात्र कटु और विषाक्त पदार्थोंसे भरा पड़ा है उसे खाली तो कर सकते हैं—जबतक वह खाली नहीं किया जायगा तबतक उसमें सुधा कैसे ढाली जा सकती है ?

ज्ञान—( इस उत्तरसे कुछ तुष्ट होकर. सहसा ) यह वे कर सकते हैं, यह उनसे करानेका भार मैं अपने ऊपर लेता हूं, पर पात्रको सोनेका बनाने का भार तो जननी तुम्हें ही स्वीकार करना पड़ेगा ।

महा०—पहले देखूं तुम इस क्षेत्रमें कहांतक अग्रसर होते हो ।

( प्रस्थान )

ज्ञान—( चिन्तित होकर ) मां ! तुम चली गयी । कुछ स्पष्ट नहीं कहा । यदि विवेक, वैराग्यादिके भरोसेपर साधकको छोड़ दिया जाय तो क्या सदियोंमें भी उसके संघर्षका अन्त होगा ? क्या साधनपथ उसे कभी अन्त होता दिखायी देगा ।

( वैराग्यका प्रवेश )

ज्ञान—वैराग्य ! यदि मैं तुमसे पूछूं कि तुम्हारा पृथ्वी पर आना क्यों हुआ है तो तुम क्या उत्तर दोगे ?

वैराग्य—इसके उत्तरमें मैं यही कहूंगा कि मेरा पृथ्वीमें मनुष्यको वह शिक्षा देनेके लिये आना हुआ है जिससे वह परमार्थके लिये, अपने इष्टके लिये सर्वस्व होम करनेके लिये तत्पर हो सके।

ज्ञान—यह तो मैंने माना पर जबतक अपना सर्वस्व होम करनेके लिये उसमें इच्छा ही पैदा नहीं होगी तबतक तुम क्या कर सकते हो ?

वैराग्य—यह तो मैंने कभी नहीं सोचा—देव ! कहिये उसके लिये क्या करना होगा ?

ज्ञान—अपेक्षा करनी होगी—जबतक उसके विकासका समय न आ जाय तबतकके लिये अपेक्षा करनी होगी ।

वै०—उसके विकासका समय कब आ सकता है ?

ज्ञान—किसके विकासका समय कब आ सकया है यह कहना कठिन है पर साधारणतया संसारके घात-प्रतिघातोंसे जब मनुष्यका मन चूर-चूर हो जायगा तब वह एक दिन चिल्ला उठेगा "क्या इस मायारूपी चक्कीके दो पाटेमें एक दानेकी तरह पीसे जानेके सिवा और कोई उपाय नहीं है"—यहींसे उसके जीवनका पासा पलटना आरम्भ होगा । अब उसे प्रतीक्षा करनी होगी उस दिनके लिये जबतक उसके अन्तःकरणकी पुकार .उस पावन प्रभुके चरणों तक न जा पहुंचे और वे यह न कह देवें कि 'तू मेरा है' इस बीजके भीतर उसका भविष्य निहित समझो ।

वैरा०—तो यहींसे हम अपने कार्यका आरम्भ समझें ?

ज्ञान—हां, यही होगा तुम्हारे कार्यका आरम्भ । यहींसे तुम्हें उस युद्धकी तैयारी करनी पड़ेगी जिसका अन्त होगा साधककी स्वरूपकी प्राप्तिमें। यहींसे आरम्भ होगा स्वर्गके साथ नरकका घोर संग्राम, मृत्युके संग अमृतत्वका घोर संघर्षण । जाओ, वैराग्य, इसके लिये विवेकादिको सम्यक् शिक्षा देकर तैयार करो ।

वैरा०--देव, मुझमें वह शक्ति कहां है ?

ज्ञान—मैं अन्तरालमें रहकर तुम्हें हर प्रकारसे सहायता करूंगा । जाओ अपने कार्यमें तत्पर होओ ।

( ज्ञानका प्रस्थान )

वैराग्य—धर्माकाश कैसा धूमावृत हो रहा है—कैसे काले-काले पिशाचोंसे घिर रहा है—

( सुबुद्धि और विवेकका प्रवेश )

वैराग्य—मनुष्यके हृदयमें सुबुद्धि ! इन्हीं काले-काले पिशाचोंके बीच तुम्हें वैसे ही रहना पड़ेगा जैसे बत्तीस दांतोंके बीच जिह्वा रहती है और जब-जब देखना कि वह अधोगतिकी ओर जा रहा है तब-तब 'यह ठीक नहीं है' यह ठीक नहीं है' अलार्मकी घण्टी बजाते रहना ; उसके बाद अवसर पाते ही मैं विवेकको प्रवृत्तिके साथ युद्ध आवाहन करनेके लिये भेजूंगा। क्यों विवेक, क्या सोच रहे हो ?

विवेक—मैं यही सोच रहा था कि जिनके हृदय-द्वार-को वासनादिने भीतरसे बन्द कर ऊपरसे कुंडी चढ़ा दी है और बाहर 'प्रवेश-निषेध' का साइनबोर्ड टांग दिया है, वहां मैं कैसे प्रवेश करूंगा ?

वैरा०—जैसे जहाजमें एक छोटेसे छिद्रसे पानी ।

विवेक—परन्तु जिसके हृदयमें घुसनेके लिये एक छिद्र भी न हो ?

वैरा०—उसके हृदयके बन्द दरवाजेको भी तुम सदा खटखटाते रहना और मौका पाते ही द्वार ठेल कर भीतर घुस पड़ना ।

विवेक—उसके बाद ।

वैरा०—उसके बाद तुम और सुबुद्धि दोनों मिलकर उसे त्यागके चरणोंमें भोगका, परमार्थके चरणोंमें स्वार्थका बलि चढ़ानेको सिखाना। तुमलोग ऐसा यत्न करना जिसमें वह अपनी आंखोंसे देख सके समझ सके कि विषयवासना उसे वैसे ही नीचेकी तहमें लिये जा रही है जैसे कुआं खोदनेवाला उत्तरोत्तर नीचेको ही उतरता चला जाता है ।

सुबुद्धि—देखकर भी यदि वह न देखे, मारपर मार खाकर भी न सीखे तो हम लोग क्या करेंगे ?

वैरा०—उकताना नहीं, घबड़ाना नहीं—प्रतीक्षा करना, जबतक उसके मनमें यह न बैठ जाय कि विषयानन्द भागवतानन्दके सामने वैसा ही फीका है जैसे सूर्यके प्रकाशके सामने चन्द्र-बिम्ब । अच्छा तुम लोग जाओ ।

( सुबुद्धि और विवेकका प्रस्थान )

वैरा०—( उद्विग्न होकर टहलता है )

कर सकेगा ? अकेला विवेक क्या कर सकेगा ? जिसका अन्तर अमावास्याकी रात्रिके सदृश तमसाच्छन्न हो रहा है वहां अकेला वह—क्या करूं, किससे वहां जानेको कहूं ( खड़ा होकर सोचता है ) हां एक भक्ति ही ऐसी है पर वहां—उस विकट स्थलमें, उसे कैसे जानेको कहूं ? यदि वह स्वयं ही—

भक्ति—हां, मैं स्वयं ही वहां जानेके लिये स्वीकार करती हूं ।

( पीतवसना, दिव्यस्वरूपा भक्तिका प्रवेश )

वैरा—जाओगी—जा सकोगी ? देवि ! जिसका हृदयाकाश दैत्य-सैन्यको भांति काले-काले बादलोंसे घिरा पड़ा है वहां तुम क्या करोगी कैसे प्रकट हो सकोगी ? क्या बिजलीको भांति—

भक्ति—नहीं; नहीं बिजलीकी भांति नहीं - वहां मैं इन्द्रधनुषकी भांति प्रकट होऊंगी ।

वैरा०—वाह वाह धन्य हो तुम ! तुम्हीं हो मानव-कल्याणकी कुंजी । करुणा करके इतना और करना कि भीतरी आगसे जलकर, नरकके भयसे भागकर जब जो कोई तुम्हारे पास आवे तुम्हारी गोदमें स्थान पा सके; तुम्हारे स्तनका दुग्ध पान कर सके । छल-कपटका रोब-रुआब

सहकर, शंकाकी झिड़क सुनकर, अविश्वासकी लातें खाकर भी देवी उसका त्याग नहीं करना। मैं जानता हूं, तुम्हें वहां प्राणान्ततक कष्ट सहना पड़ेगा ; फिर भी एकाधवार जब कभी उसके मुखसे कृष्ण नामका अमिय बून्द टपके, उसे ही पीकर तबतक जीना जबतक विश्वासका दीपक जल न उठे।

भक्ति—आप निश्चिन्त रहें; मैं सब कुछ सहकर भी उनके मनको अपने रंगमें रंगनेकी चेष्टा करूंगी। आप विश्वासकी बात कह रहे थे, वह देखिये वह आ रहा है।

वैरा०—आओ विश्वास ! मैं तुम्हारी ही बात सोच रहा था। भगवान् हैं वह उसे मिल सकते हैं, इन्हीं आंखोंसे वह उसे देख सकता है, मनुष्य-कोयह सुझाना ही तुम्हारा काम है—

( विश्वासका प्रवेश )

विश्वास—यह तो मैं करनेके लिये तैयार हूं, पर जो शंकाकी गठरी पीठपर लादे टटोल टटोलकर पग-पगपर ठोकर खाते ही चलना पसन्द करेगा उसके लिये मैं क्या करूंगा—उससे क्या कहूंगा ?

वैरा०—कहना सुनना कुछ नहीं—अविश्वास, अविचार के राज्यमें कहने सुननेसे कुछ नहीं होता ; ऐसा कुछ कर दिखाना जिससे उसके जीमें यह बात बैठ जाय कि विश्वास पहाड़को भी हिला सकता है, विश्वासमें ही मोक्ष है, विश्वासमें ही मुक्ति है। जाओ वीर, जगतमें आलोकके विस्तारमें, तिमिरके विनाशमें सहायक बनो।

( विश्वास जाता है )

वैरा०—विश्वास ! विश्वास !

( विश्वास लौट कर खड़ा हो जाता है )

तुमको एक बात मैं कहना भूल गया। देखो जो तुम्हें अपने मनमें जमकर बैठनेके लिये स्थान दे दे, उसकी सांधनाको शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी तरह दिन-प्रतिदिन बनाना, हर तरह उसके भविष्यको उज्ज्वल बनाना जाओ, इसे खूब अच्छी तरह याद रखना।

( विश्वास जाकर फिर वापस आता है )

विश्वास—सेनापति ! बाहर एक अजीब शकलकी युवती खड़ी है, वह आपसे मुलाकात करना चाहती है।

वैरा०—अजीब शक्लकी युवती ! कौन है वह ? बुलाओ तो उसे।

( विश्वास बाहर जाकर काली कलुटी रूपवाली विरक्तिके संग पुन: आता है )

वैरा०—कौन हो तुम ? क्या है तुम्हारा नाम।

विरक्ति—तामसिक विरक्ति।

वैरा०—ऐं ! विरक्ति यहां क्यों ? विरक्तिका यहां क्या काम।

ता० वि०—मैं आपके दलमें मिलकर आपकी सहायता करने आयी हूं।

विश्वास—अथवा भेदिया बनकर कोई भेद लेने आयी हो ? मैं देखते ही ताड़ गया था कि हो-न-हो यह कोई शत्रुदलका भेदिया है।

वैरा०—चली जाओ यहांसे, यहां तुम्हारी दाल न गलेगी।

ता० वि०—आपही कहिये मैं कहां जाऊँ ?

वैरा०—तमके पास, और कहां - जान रखो सत्त्वके राज्यमें तुम्हारी गुजर नहीं है।

ता० वि०—नहीं देते घुसने वे मुझे अपने दलमें। वे कहते हैं, मैं मनुष्यके चित्तको भोग-विलासमें लगाने नहीं देती—उनके मनको उचाट किये रहती हूं। आप मुझे अपने पास रख लें। दरिद्रताकी चोटसे संसारके बोझसे जब मनुष्य

घबड़ा उठेगा तब मैं उसे बहकाकर आपके पास—

वैराग्य—बस बस, और मैं सुनना नहीं चाहता ; कृपा कर जहांसे आयी हो वहीं चली जाओ।

ना० वि०—मेरी दशा चमगीदड़सी हो रही है; हाय मैं क्या करूं ?

वैरा०—मैं कहूं सो करोगी, यदि मेरा कहना मानो तो आजसे मेरे रूपको विकृत करना—मेरे नामका अपने मुखपर लेप चढ़ाना छोड़ दो।

ना० वि०—छोड़ दूं, कदापि नहीं। जो तुम नहीं चाहते वही करूंगी। इतना अपमान! यदि मैं अपने अनुयायियोंसे संसारको न भर दिया तो मेरा नाम नहीं—

( तमकते हुए प्रस्थान )

वैरा०—विश्वास! यह तो बड़ा अनर्थ मचायगी—लालसाके चेहरेपर वैराग्यका नकाबपोस पहना देगी। अच्छा तुम जाओ देखा जायगा।

( विश्वासका प्रस्थान )

( सिर झुकाकर सोचता है ) मेरा काय अभी भी शेष नहीं हुआ। जो साधक अपने भीतर उस शक्तिको उद्दीप्त नहीं कर सकेगा जो उसे साधनामें आये विघ्न-बाधाओंसे जूझनेके लिये बल दे, अग्नि-परीक्षाओंसे पार होनेके लिये क्षमता दे, बड़े-बड़े प्रलोभनोंपर विजय पानेके लिये साहस दे वह बहुत दिनोंतक इस पथपर टिक नहीं सकता! कौन है वह शक्ति—

( आलुलायित कुंतला, अग्निस्वरूपा इच्छाशक्तिने प्रवेश करते हुए कहा )

इच्छाशक्ति—उसका नाम है इच्छाशक्ति।

वैरा०—( हर्षसे ) आ गयी! आगयी तुम! देवि! जबतक साधकके भीतर तुम जल न उठोगी तबतक वह क्षुद्राशयतासे म्रियमाण होकर पड़ा रहेगा। तुम्हीं उसके हृदयमें प्रकट होकर उसमें जान फूंक सकती हो।

इ० श०—जो मेरा हाथ पकड़कर चलना सीख लेगा उसे तो मैं बुद्धके समान महत्त्वयासी दृढ़-निश्चयी, सत्यसंकल्पी बना दूंगी ; पर जो 'मैं दुर्बल हूं, मैं दीन हूं' कहकर रोया करेगा उसकी तो मैं परिछाईं भी न छूना चाहूंगी।

वैरा०—यह क्या वीरमार्ग-प्रदर्शिनी ? मुर्देमें जान भर देना ही तो तुम्हारा काम है।

( अब अपने कियेपर सन्तुष्ट होकर ) अहंकार अब आ तू! देखूं! तेरी बाहुओंमें कितनी शक्ति है ? तुममें कितना बल है—चलो देवी, ज्ञानदेवके पास चलें।

( इच्छाशक्ति और वैराग्यका प्रस्थान )

( वैराग्यके आते ही ज्ञान ऐसे बाहर आता है मानो निकट ही खड़ा सब देख और सुन रहा था। )

ज्ञान—( सिर हिलाकर ) वैराग्य! तुम अज्ञानको चुटकीसे मसल डालना चाहते हो! तुम अभी बच्चे हो! अज्ञानकी शक्तिको नहीं जानते। यह वह दिन ले आयगा जब इसके अत्याचारसे मेघ रक्त वर्षा करने लगेगा, समुद्र जल उठेगा, चन्द्रमा अंगारे वर्षाने लगेगा और पृथ्वी—पृथ्वी तो एक ज्वालामुखी पर्वत बन जायगी—जिसके भीतर भीतर तो भभकेगी दावानलकी ज्वालामुखी और ऊपर खिली रहेगी हरी-हरी दूब विलासका ठाठ-बाट। वह वैराग्य आ रहा है!

( वैराग्यका प्रवेश )

वैरा०—देव! आपकी कृपासे हमलोग मायाके संग युद्ध छेड़नेके लिये तैयार हैं, आप हमारी सेनाको कूच करनेके लिये आज्ञा दें, आशीर्वाद दें—

ज्ञान—तुम्हें इस युद्धमें अपनी सफलता दिखायी देती है वैराग्य ?

वैरा०—एकदम स्पष्ट। आप कुछ फिक्र न करें। सभी कहते हैं, अहंकार सिरकी चोटीसे पैरोंकी नाखून तक बदमाश है—आवे वह रणमें, आवे वह हमलोगोंके सामने! हममेंसे एक-एकमें इतनी शक्ति है कि उसकी सारी सेनाको फूंककर रूईकी तरह उड़ा देगा। आप हमें आज्ञा दें—

ज्ञान—(कुछ देर बाद) अच्छा जाओ तुम्हारी कामना पूर्ण हो।

वैरा०—(प्रसन्न होकर अभिवादन करता है) अब हमारी विजय निश्चित हैं। (उल्लसित होकर तेजीसे प्रस्थान)।

ज्ञान—(गंभीर होकर) क्या ही अच्छा होता यदि साधकको समर्पणका सीधा और प्रकाशपूर्ण मार्ग सिखाया जाता। नीचेसे उठती उसकी पुकार और ऊपरसे उतरती माताकी भागवत शक्ति। वैराग्य, यह प्रसाद शक्ति क्या है, तुम नहीं जानते—एकदम नहीं जानते, यदि जानते, होते तो अपने बलपर इतना नहीं कूदते। यह वह शक्ति है जो साधकके मन, प्राण और शरीरको परिमार्जित कर उसे परमानन्दकी ओर खोलती है—उसकी प्रकृतिको सत्यमें ढालती है और सदियोंमें होनेवाले कार्य्यको कुछ दिनोंमें कर दिखाती है। यह वह शक्ति है जो द्रोहियोंपर वज्रसी टूटती है और रक्षकोंको डायनमो सा बना देती है, जो कुछ साधकोंको आगे बढ़नेसे लाचार किये रहती है, कुटिल और विपरीत है उसे हथौड़ीकी चोटसे सीधा कर देती है और जो रास्ता साफ करनेवाले हैं उनकी शक्तिको सौ गुणित कर देती है; यह वह शक्ति है जिसके स्पर्शसे विपक्षीगण कांप उठते हैं, स्वपक्षीगण हँस पड़ते हैं, जो विपक्षियोंपर शूलसी और स्वपक्षियोंपर फूलसी पड़ती है। जिसके आधारमें इस शक्तिका उतरना आरम्भ हो गया उसने मानो सब कुछ पा लिया, भगवान् उसके हो गये, प्रकाशके स्वर्गका द्वार उसके लिये खुल गया, मनुष्यत्वसे उठकर देवत्वमें बैठनेकी उसकी तैयारी शुरू हो चुकी।

ज्ञान—आओ देवि! तुम अकेली क्यों? कहां हैं शान्ति, समता, क्षमा, अभीप्सा उनसे कहो सभी साधककी सहायता करनेके लिये, उसे परम ज्योति की ओर ले जानेके लिये जी जानसे चेष्टा करें, कुछ भी उठा न रखें। जब देखो कोई हमसे मिलनेके लिये एक पग आगे बढ़ाता है तो हममेंसे प्रत्येक उससे मिलनेके लिये दस पग आगे बढ़े। वह कौन, सरलता? कहां थी तुम अबतक सरलता?

(शुभ्रवसना, सौम्यवदना सरलताका प्रवेश)

स०—अपनी कुटिया में।

ज्ञान—क्यों? वहां पड़ी पड़ी क्या कर रही थी?

स०—छोटीसी सरलताकी पूछ ही कहां है—उसे पूछता ही कौन है।

ज्ञान—नहीं नहीं, ऐसा न कहो। साधनामें तुम्हारा एक विशेष स्थान है। जानती हो भगवान् छल, छिद्रसे कैसे भागते हैं! तुम मनुष्यको भक्त सजना नहीं, भक्त बनना सिखाओ। उन्हें केवल मुखसे ही 'मैं तेरा' नहीं मनसे भी 'मैं तेरा' बनना सिखाओ।

(वैराग्यका फिर प्रवेश)

(वैराग्यसे) तुम फिर क्यों आये?

वैराग्य—देव, आप दया कर धैर्यको मेरी सहायता करने कहें। वही सफलताका जनक, सिद्धियोंका सहोदर है। उसके बिना तो मेरी इस युद्ध-

में जीत हो ही नहीं सकती। उससे कहिये वह साधकको वह मंत्र सिखावे जिससे उसका साहस न छुटे, लगन न टूटे, लम्बी सफरकी थकावट से श्वास न फूले, दम न घुटे। मुझे पूर्ण विश्वास है, जिस साधकको वह अधिकृत किये रहेगा उसकी सफलता एक दिन अवश्य पग चूमेगी।

ज्ञान—हां, जो धैर्यकी बांह गहे रहेगा वह देखेगा कि उसमें दैवी सम्पदारूपी कमलका एक-एक दल, समयपर आपसे आप प्रस्फुटित हो उठा है। मैं उससे कहूंगा, वह अवश्य तुम्हारी मदद करेगा।

( वैराग्यका प्रस्थान )

( भक्तिसे ) शान्ति अभीतक आयी नहीं क्यों ?

भक्ति—वह आपके डरसे मूर्च्छित होकर पड़ी है।

ज्ञान—मेरे डरसे ? यह क्या ? वह तो मुझे प्राणोंसे भी प्यारी है ; याद तो नहीं आती मैंने उसे कभी कुछ कहा हो।

भक्ति—कभी कुछ तो नहीं कहा, पर यदि आज कुछ कह दें, इसीसे वह बड़ी घबड़ा रही है।

ज्ञान—क्या कह दें ?

भक्ति—यही कि जाकर घर-घरमें निवास करो। वह कहती है कि जो घर स्वच्छ है वहां यदि आप कहें तो वह दिनरात बैठी रह सकती है, स्वर्ग को भी वहां खींच ला सकती है ; पर जो घर सांप-बिच्छुओंसे भरा पड़ा है, जहां भूतोंका बसेरा, पिशाचोंका डेरा है, कहीं उसे आप वहां जानेको कह दें, तो वह जीते ही मर जायगी।

ज्ञान—( स्वरको उतारकर ) अच्छा मैं उसे वहां जानेको नहीं कहूंगा। पर तुम कोई ऐसी शर्त न रखना देवी। सबके लिये अपने हृदयका द्वार खोल दे। मरुभूमिकी तप्त छातीपर मंदाकिनीकी वह धारा बहा दो जिसमें सभी स्नान कर सकें, जिसके जलको सभी पान कर सकें और पवित्र हों। ( सिर झुकाकर सोचता है ) नहीं—इतनेसे भी काम नहीं चलेगा। जाऊं मैं उस देवीके पास जो सदया और सदा सहाय रहनेवाली है, साधकके बार-बार चूकनेपर भी उसका साथ देनेवाली है उसके सहस्रों दोषोंको सहनेवाली है, पद-पदपर उसे सम्हालनेवाली; बिना उसके—बिना उसकी कृपाके कोई पूर्णताको नहीं प्राप्त कर सकता।

( ज्ञानका प्रस्थान )

( ब्रह्मचर्यके पीछे-पीछे तपस्याका प्रवेश )

तपस्या—( झटसे ब्रह्मचर्यके आगे आकर ) कहां हैं ज्ञानदेव ? क्या उनके दरबारमें हम लोगोंकी गुजर नहीं है ? यह कैसा जुल्म है ! तुम लोगोंकी यह कैसी धारणा है कि मनुष्यको मैं सूखाकर ठठर बना देती हूं। तुम वृक्षको धूपमें तपते तो देखती हो पर उसके अन्दर जो जल है, उसमें जो तरावट है उसे तुम नहीं देखती—अच्छा न देखो-( तेजीसे प्रस्थान )

ब्रह्मचर्य—( भक्तिसे ) देवि ! मानव कल्याण के साधनोंमें मेरा कोई स्थान नहीं है ?

भक्ति—कौन कहता है नहीं है—बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। तुम्हारा बल, वीर्य, विद्युत ही तो होगा साधनाका स्तम्भ —

( अंगड़ाई लेते हुए अभीप्साका प्रवेश )

भक्ति—क्या तुम अभीतक सो रही थी अभीप्सा ?

अभी०—हां, उठनेको जी ही नहीं चाहता था।

भक्ति—क्यों ?

अभी०—मैं स्वप्नमें सूर्यदेवको देख रही थी—उठनेसे चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखायी देगा, इससे उठनेमें भय मालूम हो रहा था।

भक्ति—अन्धकारसे इतना भय; तब तो वह पृथ्वीमें निष्कण्टक राज्य पा जायगा ?

अभी०—ऐं। निष्कण्टक राज्य पा जायगा ? तो मुझे क्या करना चाहिये ?

भक्ति—तुम आप उठो और सारे संसारको उठाओ ऐसी ज्योति जलाओ कि प्रत्येक कोठरी जो अनन्तकालसे अंधियाली होकर पड़ी है, जगमगा उठे—सभी जाग उठें उद्दीप्त हो उठें।

( एक ओरसे महामायाके संग ज्ञानका प्रवेश और दूसरी ओरसे विवेक और वैराग्यादिका प्रवेश )

( महामाया सिंहासनपर बैठती है; सभी स्तुति करते हैं )

जयतात्सा जगन्माता जननी जन्मदायिनी।
अज्ञाननाशिनी देवी योगसिद्धिप्रदायिनी ॥
अनुग्रहपरादेवी सर्वदामृतवर्षिणी।
अनन्तमहिमापारा ईशैश्वर्यप्रदायिनी ॥
महाकाली महालक्ष्मी मुक्तिरूपा महेश्वरी।
महामाया महानन्दा निर्वाणपथदीपिका ॥
त्वं प्रसीदामृते देवि ' ज्योतिर्मयि ! परमेश्वरी !
नमामि त्वां विश्वरूपे ! देहि मे ज्ञानचन्द्रिकाम् ॥

महामाया—जयोऽस्तु ! तुम लोगोंकी इच्छा पूर्ण हो।

ज्ञान—जननी ! यह मैं मान लेता हूं कि साधक अपनी चेष्टाओंके बलपर यौगिक क्रियाओंके द्वारा परम ज्योतिकी किरणोंकी चमक पा जा सकता है, प्राणोंमें अनुभवका विलास कर ले सकता है, यहांतक कि चकित कर देनेवाली शारीरिक सिद्धियां भी प्राप्त कर ले सकता है, पर क्या उसमें विज्ञानके दिव्य आनन्द, दिव्य शान्ति, दिव्य प्रकाशकी बाढ़ आ सकती है, तुम्हारी सम्पदासे उसका आधार उत्प्लावित हो सकता है ?

महा०—परन्तु ज्योतिपुंज ! जो अपने बलपर ही सब कुछ कर डालना चाहता है, कुऐंसे जल खींच खींच कर फसल पैदा करना चाहता है, उसके पीछे क्या मैं अपनी सम्पदा लेकर दौड़ती फिरूंगी।

ज्ञान—लेकिन जो तुम्हारे चरणोंका आश्रय पानेके लिये हर्ष और उल्लाससे दौड़ पड़ेगा उसे तो तुम स्वीकार करोगी—उसे तो अपना वैभव दान करनेके लिये उत्सुक रहा करोगी ?

महा०—तथास्तु। श्रद्धाके घोड़े जोतकर जो शरणागतिके रथपर बैठ जायगा उस रथका रथवान मैं बनना स्वीकार करती हूं और प्रणकर कहती हूं, जो साधनाकी रंगभूमिमें रथको ले जानेपर उससे उतर कर भाग नहीं जायगा उसे पुरुषोत्तमपुरी पहुंचाकर ही रहूंगी।

( क्रमशः )

# मनुष्य या पशु

ले०—कवि-विनोद पं० श्री ठाकुरदत्तशर्मा, अमृतधारा लाहौर

प्रस्तुत लेख शृंखलारूपमें सात्त्विक-जीवनके पिछले कई अंकोंमें प्रकाशित होता रहा है, वर्त्तमान लेख उस शृंखला की एक कड़ी है, जिसमें विद्वान् लेखकने निद्रा-विज्ञान पर बहुत ही सुन्दर और विवेचनात्मक ढंगसे प्रकाश डाला है। —संपादक

सोते समय बिछौना ( बिस्तरा )

नींदसे मांसपेशियाँ ढीली हो जाती हैं और चमड़ेकी पसीना लानेवाली गिल्टियां अपना काम अधिक साव-धानतासे करती हैं। यही कारण है कि सोते समय पसीना अधिक आता है। सोनेका बिस्तरा नियत करते से पहले इस बातको सोच लेना चाहिये कि वह व्यक्ति जिनको अधिक पसीना आता है उन्हें बहुत शीघ्र-शीघ्र बिस्तरा बदलना चाहिये। दिनको धूपमें पड़ा रहे तो अच्छा है।

शीत कालमें खद्दरकी बनी हुई, जिसमें रूई भरी होती है ऐसी, तुलाई और ग्रीष्म कालमें खद्दर की चादर। चटाई वा दरीके ऊपरसे खद्दरकी चादर हम लोगोंकी आवश्यकताओंके अनुकूल है। जितना कोमल और गुदगुदा बिस्तरा रक्खा जावेगा उतनी ही प्रकृति-विरुद्ध होगी। सुखेच्छा आती जावेगी। नींदके विषय-में जितने सरल रहें उतना अच्छा है। क्योंकि आव-श्यकता होनेपर सर्वत्र निद्रा आ सकती है जैसा कि ड्यूक आफ विलिंगटन सदा चटाईपर सोते रहे।

एक राजा मन्त्री के साथ भ्रमणके लिये जा रहे थे कि मार्गमें एक किसानको मट्टीके ढेलोंपर सोया हुआ देखकर राजा चकित हो गये। मन्त्रीसे पूछा। मंत्री बुद्धिमान् था उसने कहा कि ६ मास पश्चात् इसका उत्तर दूंगा। आप इसको अपने साथ ले चलें। मंत्रीने उसको अपने साथ लाकर ऐसा सुख-प्रिय बनाया कि एक बिनौला भी यदि उसकी तूलाई बिछौनामें होता तो उसको नींद नहीं आती थी। अतः धनिकोंके लिये भी यही उचित है कि बिना बिस्तरेके यदि मंचकपर सोना पड़े तो तुरन्त निद्रा आ जावे। हम धनिकों के घरों में ऐसे बिस्तरे देखते हैं कि आठ २ तो छोटे २ इर्द-गिर्द तकिये होते हैं और पलंगपर इतना वस्त्रोंका ढेर होता है कि वायुका लेशमात्र भी प्रवेश नहीं हो सकता। मानो जिस ओर पड़ें वही ओर वायुमंडलसे दूर हो जाता है।

स्मरण रहे कि गीले बिस्तरेपर न सोना चाहिये। ग्रीष्म कालमें हम देखते हैं कि सोनेसे पहले इसको शीतल करनेके लिये इसपर जल छिड़क लिया जाता है। यह ठीक नहीं। रोगियोंके लिये तो ऐसा करनेकी बिलकुल आज्ञा नहीं है।

बिस्तरा स्वच्छ रक्खो, शुष्क रक्खो। प्रस्वेदको चूसन करनेवाला रक्खो। कभी-कभी धुलाओ, न कि एक ही कई वर्ष बिना धुलाये ओढ़ते रहो। भारतमें शरद ऋतु के बिस्तरे धुलानेकी प्रथा थोड़ी है। जो कि अनुचित है, अतः बन्द होनी चाहिये।

निद्रा इच्छापर ही निर्भर है

यह विचार कि निद्रा एक आकस्मिक कार्य है, और इसमें कुछ नियम आदि काम नहीं करते, अमू-लक है। यद्यपि जब मनुष्य बहुत जागे और निद्रा को अपने समयपर न लेवे तो वह आक्रमण करेगी। परन्तु उससे रोग उत्पन्न होते हैं। २४ घंटोंमें नियमित ६ घंटे गाढ़ी नींद एक आकस्मिक कार्य नहीं, अपितु नियम पर अवलम्बित है। इस तरहसे मन भी काम करने लगता है, इसमें कई प्रमाण हैं कि निद्रा बहुत कुछ मनकी शक्तिपर निर्भर है। नेपोलियन बोनापार्ट केवल तीन घंटे दिन-रात में सोया करता था और इस

पर भी नीरोग था। इसलिये कि जब वह बिस्तरपर जाता तो उसे गाढ़ी नींद आ जाती और तीन घंटेकी गाढ़ी नींद आठ घंटेके शयन तथा जागरण--अर्थात् स्वप्नावस्था-से उत्कृष्ट है। यद्यपि नयपोलियन बोनापार्ट को हम लोगोंसे परिश्रमिक सहस्रों आवश्यक कार्य थे परन्तु जब वह बिस्तर पर जाता था तो सोनेके लिये जाता था; और दृढ़ सङ्कल्प-शक्तिसे तुरन्त सब विचारोंको दूर फेंक कर सो जाता था।

नियम यह है कि कोई व्यक्ति एक दूसरेके नितान्त विरुद्ध दो कार्य्य एक समयमें नहीं कर सकता, जाना तो सोने के लिये और फिर ऐसे काम सोचना जो नींदको हटाते हैं, नींद कैसे आ सकती है। दृढ़ संकल्प कर लो कि तुम सोनेके लिये जाते हो। और कोई काम बिना सोनेके न होगा। बिस्तर पर लेटकर हृदयको दृढ़ करके सारी सांसारिक चिन्ताओंसे हटा लो और दृढ़ संकल्प सोनेका कर लो तो तुम तुरन्तःसो जाओगे। संकल्प निस्सन्देह दृढ़ हो, परन्तु दृढ़तामें शक्तिको व्यय न करो। कई व्यक्ति दृढ़ संकल्प करते समय ऐसे होते हैं कि मानो किसीसे लड़ रहे हैं। इसीसे तो रक्त-संचार बढ़ जाता है और नींदको विकृत करता है। कोई ऐसे विचारोंमें लग जाते हैं। दृढ़ संकल्प करनेसे निद्रा तुरन्त आ जाती है। क्यों आती है? वहां क्या लिखा था इत्यादि २। इसके साथ अब विचारशृङ्खला लंबी होती जाती है और सोनेवाला लंबी चिन्तामें पड़ जाता है। तुम्हारा काम इस समय तर्क-वितर्क करना नहीं है अपितु सोना है। मनको खाली तो सब नहीं कर सकते। अतः सोनेके समय समस्त विचारों तथा सांसारिक चिन्ताओंसे हटाकर ऐसी ओर लगा दो कि जो सोनेमें कोई रुकावट न डाले। अनिद्रासे जो लोग कष्ट उठाते हैं उनके ज्ञानतत्त्व और हृदय निर्बल होते हैं और यद्यपि वह जानते हैं कि अमुक प्रकारके विचारोंके दूर रहनेसे निद्रा आती है, तथापि वह इन विचारोंसे दूर नहीं रह सकते।

नयपोलियनका विचार है कि संसारमें असम्भव कुछ नहीं; अतः ऐसे निर्बल विचारोंके मनुष्य भी यदि यत्न करते जावें तो सफल होंगे; परन्तु उनमें दृढ़ता हो।

मानुषीय रचना कुछ ऐसी है कि जो स्वभाव डालो, शरीर स्वीकार कर लेता है। बार-बार एक ही काम लीजिये; फिर वह स्वभावसे ही होता जायगा। जो लोग निद्रा न आनेकी शिकायत किया करते हैं वह इन नियमोंपर चलकर अब सेजपर जाते ही गाढ़ी नींदका आनन्द लेते हैं और ऐसा करनेमें उन्हें कोई काम नहीं करना पड़ता, अपि तु स्वभावतः ही होता जाता है। सारी चिन्तायें और मानसिक क्रियायें इनके बिस्तरेपर जाते ही स्वतः दौड़ जाती हैं। क्योंकि उन्होंने बड़ी दृढ़तासे अपनी प्रकृतिको इसका अभ्यस्त बना लिया है।

सोनेके समय नींदको भगानेवाले विचारोंको छोड़कर कौनसे विचार हृदयमें लावे; यह एक कठिन-सा प्रश्न है और प्रत्येकने इसपर अपनी मति अनुसार सम्मति दी है।

कोई २ डाक्टर लिखते हैं कि सोनेवालेको गणितके छोटे २ जोड़ करने चाहियें। कतिपय डाक्टरों का कथन है कि कोई गुर वा कुछ शृङ्खलाबद्ध शब्द कहते रहना चाहिये। कोई कहते हैं कि चलते हुए पहिये के चक्र गिनने चाहिये। कई एक इस्लामी बुद्धिमानोंने कुरानकी आयतें दोहरानेके लिये लिखा है और आर्य वैद्य वेदमन्त्रोंके जापका उपदेश करते हैं। ये सब बातें एक नियमपर निर्भर हैं कि जप आदि ध्यानको आवेशमें नहीं लाते; अपितु ध्यानको सांसारिक चिन्ताओंसे मुक्त कर देते हैं और थोड़े ही समयमें मनुष्य अपने-आपको भूल जाता है।

एक बार एक साधुसे मेरा मेल हुआ और इस प्रश्न पर उसने बताया कि अपने श्वासपर ध्यान लगाना निद्राको तुरन्त ले आना है।

# हिन्दुस्तानकी आज़ादीके लिए

## पहले अपने मनको आज़ाद करो

## दूसरोंको प्रकाश देनेके लिए—पहले अपने मनके बुझे हुए दीपकको जलाओ

## और इसके लिए आज ही—

# "मन और उसका निग्रह" (सजिल्द)

पुस्तक मंगाकर अवश्य पढ़िए। इस पुस्तकके लेखक योग-विद्या के प्रकाण्ड पण्डित, सन्त-जगत् के उज्वल नक्षत्र, श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती हैं। उन्होंने यह पुस्तक अनेकों वर्षोंकी साधना और तपस्याके उपरान्त वैज्ञानिक प्रणालीपर लिखी है। पुस्तकके विषयमें प्रमुख पत्रोंकी सम्मतियाँ पढ़िए।

वीर अर्जुन, देहली—प्रस्तुत पुस्तक स्वामी शिवानन्दजीके मूल ग्रन्थ "Mind its mysteries & Control" के प्रथम भागका सरल तथा रोचक हिन्दी रूपान्तर है। इसमें मनके सम्बन्धमें लगभग ६०० उपयोगी, व्यावहारिक विषयोंका समावेश है, जिन्हें स्वामीजीने अपने जीवनमें कार्यान्वित किया है। मानसिक विकारोंको दूर रखने तथा विचारोंका सुन्दर स्वास्थ्य-लाभ करनेके लिए यह पुस्तक विशेष महत्त्वपूर्ण है।

लोकमत, नागपुर—प्रस्तुत ग्रन्थ, मनोयोग साधन सम्बन्धी ज्ञातव्यताओंके प्रति पाठकोंका ध्यान आकर्षित करनेमें पूर्ण समर्थ है।........प्रत्येक प्रकारके मनोनिग्रह के उपाय अथवा कर्तव्य अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषामें तथा आशातीत संक्षेपमें हृदयङ्गम करानेका यह अभूतपूर्व प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। अधिकाधिक आदरणीय इस ग्रन्थके रचयिता हैं श्री स्वामी शिवानन्दजी; तथा अनुवाद किया है श्री द्वारिकानाथ झिंगन एम० ए० एउ० एल० बी० एडवोकेटने। मुद्रण नेत्ररञ्जक। पृष्ठ संख्या १३६, मूल्य ।।।) प्रति।

जीवन सखा, प्रयाग—'मन और उसका निग्रह' प्रथम भाग, ले० स्वामी शिवानन्द सरस्वती, प्रकाशक जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि० कलकत्ता..........इस ग्रन्थमें मनके सम्बन्धमें ६०० उपयोगी सिद्धान्तोंका समावेश है। जिन्हें स्वामीजीने अपने जीवनमें कार्यान्वित किया है। जो नियम इस पुस्तक में दिये गये हैं, वे सब व्यावहारिक हैं, केवल आध्यात्मिक ही नहीं। प्रस्तुत पुस्तक का पठनकर पाठक अपने मनके राजा बन सकेंगे और वास्तविक मनोराज्य-स्थापना करेंगे। मानसिक विकारोंको दूर भगाने और विचारोंका सुन्दर स्वास्थ्य-लाभ करनेके लिये यह पुस्तक कल्प-वृक्ष है। पुस्तक की छपाई उत्तम कोटिकी है।

## जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लि०

९३, पुराना चीना बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता। शाखा—"प्रिंटिंग हाउस" हौज़कटरा, बनारस।

प्रकाशित हो गया !

सात्त्विक-जीवन-ग्रन्थमाला का सप्तम पुष्प

"ओ३म्"

॥) प्रति

# ''ओ३म्'' [ प्रणव रहस्य ]

प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता हैं, विश्व-विश्रुत योगिराज, उन्नतमना, यौगिक विद्याके प्रकाण्ड पण्डि आध्यात्मिक धनके धनी ; अनेक आध्यात्मिक पुस्तकोंके सिद्धहस्त लेखक, देश और विदेशके अनेक मनी विद्वानों द्वारा प्रशंसित आदरणीय श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती ; जिनके नामसे आध्यात्मिक विषयों थोड़ी बहुत भी दिलचस्पी लेनेवाला प्रत्येक सज्जन परिचित है और जिनकी रचनाओंको आध्यात्मिक जग महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

श्री स्वामीजी ने अनेकों वर्षों की साधना और तपश्चर्या के उपरान्त प्रस्तुत ग्रन्थ-रत्न का प्रण किया है । स्वामीजी के विषय में कुछ कहना सूर्यको दीपक दिखानेके तुल्य है ।

ॐ के निरन्तर श्रद्धापूर्वक ध्यान और जप से मनुष्य किस प्रकार इस संसार सागर को पार कर सक है, प्रस्तुत प्रश्न की व्याख्या बड़े सुन्दर, विवेचनात्मक ढंग से पुस्तक में की गई है ।

ॐ का जप मनोनिग्रह करनेमें किस प्रकार महान् सहायक है ; इस सत्य को जानने के लिये ॐ प्र रहस्य का अवश्य अध्ययन करें ।

ॐ ( प्रणव रहस्य ) के अध्ययन से जीवन के विषयमें आपका दृष्टि-कोण अवश्य ही परिवर्तित जाएगा, निराशावाद के स्थानपर सुनहले आशावादके आपको सर्वत्र दर्शन होंगे । सर्वत्र आपको ॐ की महि का विराटरूप दृष्टिगोचर होगा —

## क्या आप—

( १ ) अवर्णनीय दिव्य आनन्द और मस्ती के झूले में झूलना चाहते हैं ?
( २ ) विश्व में निरन्तर होनेवाला ॐ का मनमोहक संगीत सुनना चाहते हैं ?
( ३ ) ॐ के निरन्तर जप द्वारा अपने मानस-दुर्गपर विजय पाना चाहते हैं ?
( ४ ) जीवन के चरम ध्येय 'सत्यं, शिवं सुन्दरं' की ओर अग्रसर होना चाहते हैं ?

## —तो आज ही—

ॐ ( प्रणव रहस्य ) की एक प्रति मंगा कर पढ़ें ।

**और शान्ति के सागर में गोता लगाएँ—**

प्रकाशक— **जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लि॰**

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता । शाखा—"प्रिंटिंग हाऊस" हौज़कटरा, बनारस

Printed & Published by Rajiaram Gupta at General Printing Works Ltd. Benares Branch,



सत्वं सुखे सञ्जयति

# सात्विक जीवन



मूल्य चार आने

सम्पादक—हलियाराम गुप्त

वर्ष ३, अङ्क ७

B.C. PONNAPPA

# विषय-सूची


| विषय | | लेखक |
|---|---|---|
| १—पथ अपना पहचान न पाया ( गीत ) | .... | श्री रामनाथ पाठक "प्रणयी" |
| २—सम्पादकीय | .... | .... |
| ३—भगवान् राजमन्दिरमें नहीं है ( कहानी ) | .... | श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर |
| ४—गृहस्थाश्रमें प्रवेश करनेवाले मित्र के नाम पत्र | .... | श्री वेद |
| ५—गोविन्दगुप्त ( खण्ड काव्य ) | .... | श्री गंगाप्रसाद "कौशल" |
| ६—ओ३म् क्या है ? और ओ३म् जपकी उपयोगिता | .... | श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती |
| ७—निमन्त्रण ( कविता ) | .... | कुमारी शैलबाला रस्तोगी "शैल" |
| ८—सत्यव्रत ( नाटक ) | .... | श्री नारायणप्रसादजी साधक |
| ९—शास्त्रार्थकी दुर्दशा | .... | श्री इन्दिरा रमण शास्त्री |
| १०—मृत्यु-विज्ञान | .... | श्री गंगाप्रसाद गौड़ "नाहर" |
| ११—मेरा दुर्भाग्य ( कविता ) | .... | श्री वीरेन्द्र मालवीय |
| १२—स्वामी भवानीदयाल संन्यासी और उनका प्रवासी भवन | .... | श्रीमती निर्मला बी० बी० दयाल एफ० ए० |
| १३—युधिष्ठिरका पहला पाठ ( कहानी ) | .... | श्री सुदर्शन |
| १४—महात्मा गांधी के प्रवचन | .... | श्री इन्दिरारमण शास्त्री |

देहली बिहार तथा पंजाब प्रान्तीय शिक्षाविभागों के द्वारा स्कूलों, कालेजों, और होस्टलों के लिए स्वीकृत।

संरक्षक— श्री मनसुखराय मोर

# सात्विक जीवन

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

वर्ष ३ } काशी—सौर चैत्र, १९९९ Benares—April 1943. अङ्क ७

## गीत

रचयिता—श्री रामनाथ पाठक 'प्रणयी' साहित्याचार्य्य

पथ अपना पहचान न पाया।

फूलों का गौरव देखा था,
शूलों का रौरव देखा था,
किन्तु, छोड़ फूलों का गौरव, रौरव पर ही मन ललचाया।
पथ अपना पहचान न पाया।

सुख देखा था, दुख देखा था,
जन्म-मरण का मुख देखा था,
किन्तु, दूर सुख मुझसे साथी, दुखने ही मुझको अपनाया।
पथ अपना पहचान न पाया।

जग देखा, जीवन देखा था,
चिरप्रकाश, तम घन देखा था,
किन्तु, हाय! केवल तम में ही मैं अपने को लेकर आया।
पथ अपना पहचान न पाया।

# सम्पादकीय

## प्रत्येक वस्तुकी गहराईमें संगीत है

इंग्लैण्डके विख्यात साहित्यकार मनीषी कार्लाइल ने एक स्थान पर क्या ही सुन्दर लिखा है "Go deep, you will find music every-where" अर्थात् प्रत्येक वस्तुकी गहराईमें जाओ तुम्हें संगीत सुनाई देगा। सृष्टिके प्रत्येक पदार्थमें निरन्तर होने वाला यह संगीत ॐ का ही गम्भीर, मधुर और मृदुल संगीत है। फूलोंका मधुर हास ॐ का ही हास है। इन्द्रधनुष की रंग बिरंगी रेखाओंका चित्रकार ॐ ही है। बाल रविकी सुनहली आभामें ॐ का ही तेज भर रहा है। खिलखिलाती चाँदनीमें ॐ का ही प्रकाश है। शिशुके कोमल कपोलों पर खेलती हुई हँसी ॐ की ही हँसी है। समुद्रका गम्भीर नाद ॐ का ही नाद है। बहते हुए झरने ॐ कीही महिमा गा रहे हैं। सृष्टिका प्रत्येक पदार्थ ॐ के गम्भीर संगीतसे परिपूर्ण है। आवश्यकता है केवल ध्यान देकर सृष्टिका सूक्ष्म निरीक्षण करने और इस मधुर संगीतको सुनने की।

कार्लाइलके उपरिलिखित छोटेसे वाक्यमें हमें जीवनके महान् सत्यकी झांकी मिलती है। इस पृथ्वी पर जितने भी उच्च कोटिके सन्त, महात्मा, भगवान् बुद्ध, भक्त सूरदास, तुलसीदास, ऋषि-प्रवर स्वामी दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द आदि हुए हैं— उन सबके जीवनका एकमात्र ध्येय प्रकृतिके अणु २ में निरन्तर व्याप्त होने वाले दिव्य संगीत ( Divine music ) को सुनना ही रहा है। भगवान् बुद्धने इसी संगीतको सुननेके लिए ऐश्वर्य और वैभव विलास पर लात मार दी; राजप्रासादको तिलांजलि दी, फूलसे कोमल शिशु राहुल और सुन्दरी, प्राणप्रिया गोपाका परित्याग किया। इसी संगीतको सुननेके लिए दीवाने रामतीर्थने प्रोफ़ेसरी छोड़ी और हिमाचलके आँचलमें भगवती गंगाके किनारे दीवानगीकी हालतमें मस्ती और प्रेमके गीत गाए और आनन्दकी परमावस्थामें पहुंच कर बहुत आला दरजेकी उर्दू और फ़ारसीकी शायरीकी ! स्वामी रामतीर्थकी कवितामें आध्यात्मिकता, प्रेम और मस्तीका सुन्दर सम्मिलन हुआ है। स्वामी रामतीर्थकी कविताका ज़रा रसास्वादन कीजिये—

था जिसकी ख़ातिर नाच किया
जब उसकी सूरत आय गई।
कहीं आप गई, कहीं नाच गया,
और तान कहीं भर्राय गई।
जब छैल छबीले सुन्दर की,
छवि नयनन अन्दर छाय गई।
एक मुर्छा सी झट आय गई,
और जोत में जोत समाय गई।

प्रिय-पाठक-वृन्द ! कविताकी ज़रा आख़िरी पंक्ति पर गौर करिए—"जोतमें जोत समाय गई"—यह आनन्दकी वह परमावस्था है, जहां आत्माका प्रकाश परमात्माके प्रकाशमें मिल जाता है। इस अवस्थामें मैं और तू का भेद नहीं रहता; अहम्भावका सर्वथा नाश हो जाता है और मनुष्यकी हृदय-वीणाके तार झनझना उठते हैं। इसी भावको भक्त कबीर-

दासजी ने अपने एक दोहेमें बड़े सुन्दर रूपमें अभिव्यक्त किया है--

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं हम नाँही।
प्रेम-गली अति सांकरी, तामें दो न समाँई॥

इस दोहेके भाव-गाम्भीर्य को अपने हृदय-पटल पर अङ्कित करिए। प्रेमके दरबारमें पहुंच कर मैं और तू का भेद विलीन हो जाता है।

## प्रभु मिलन की उत्कण्ठा

परन्तु इस महान् दिव्य संगीतको सुननेके लिए सबसे प्रथम आवश्यकता है—प्रभु मिलनकी उत्कण्ठाकी जब तक हमारा हृदय भगवान्के दर्शनके लिए व्याकुल नहीं है, हमें भक्तिकी सच्ची और वास्तविक भूख नहीं है, तब तक हम इस संगीतको नहीं सुन सकते। प्रिय-पाठकवृन्द! आपने अनुभव किया होगा कि जब आपका पेट बिलकुल भरा होता है, आपको भूखकी ज्वाला नहीं सता रही होती, उस समय यदि आपके सामने अनेक प्रकारके स्वादिष्ट पदार्थ और नाना व्यंजन भी रख दिए जाँय तब भी आपका खानेको जी नहीं करता; परन्तु वास्तविक भूखकी दशामें सूखी रोटियां भी आपको अमृतके समान प्रतीत होती हैं। ठीक इसी प्रकार भजनकी वास्तविक भूख होने पर केवल एक बार ही अपने प्यारेका नाम लेने पर हृदय गद्गद् हो जाता है। श्री रामकृष्ण परमहँस तो यहाँ तक कहा करते थे कि मस्तीकी तरङ्गमें सच्चे भक्तके हृदयसे केवल एक बार निकला हुआ हरि शब्द उसको तार देता है। भारतमाताके प्रतिभाशाली पुत्र स्वर्गीय महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोरकी आध्यात्मिक रचनाओंमें प्रभु-मिलनकी उत्कण्ठा बड़े उग्र और प्रभावोत्पादक तथा हृदय-स्पर्शी रूपमें प्रकट हुई है। एक स्थान पर गीताञ्जलिमें महाकवि लिखते हैं—"ऐ मेरे सदा प्रकाशमान प्यारे प्रभो! मैं इस नील आकाशमें निरुद्देश्य घूमते हुए शरदऋतुके बादलके टुकड़ेके समान हूं। तेरे प्रेममय स्पर्शसे अभी मेरा वाष्प नहीं पिघला और मैं तेरे प्रकाशके साथ एकाकार नहीं हुआ और इस प्रकार मैं वर्षोंसे वियोगके दिन गिन रहा हूं"—इसी प्रकार आगे चल कर महाकवि लिखते हैं—

ऐ मेरे प्रभो! भक्ति-भाव भरे प्रणामके रूपमें जल भरे सावनके बादलके समान मेरा मस्तक तेरे चरणमें नत है।

ऐ मेरे प्रभो! भक्ति-भाव भरे प्रणामके रूपमें, मेरे इन टूटे फूटे गीतोंकी धारा तुझ अपार शान्तिके सागर की ओर बह रही है।

ऐ मेरे प्रभो! भक्ति-भाव भरे प्रणामके रूपमें, दिन रात अपने पर्वतीय नीड़ोंकी ओर उड़ कर जाते हुए घरके लिए बेचैन सारसोंके झुंडकी तरह मेरा समस्त जीवन तुझसे मिलनेके लिए आतुर है।

कविवर रवीन्द्रनाथके उपरिलिखित गद्य गीतोंमें भगवान्से मिलनेकी उत्कण्ठा कितने तीव्र रूपमें प्रकट होती है। जब तक ऐसी तीव्र उत्कण्ठा और बेचैनी आपके हृदयमें उत्पन्न नहीं होगी, तब तक आप उस दिव्य संगीतका वास्तविक आनन्द नहीं उठा सकते।

## आनन्द आएगा—

अक्सर लोगोंको यह शिकायत रहती है कि हम इतनी देर तक जप करते हैं; परन्तु वास्तविक आनन्द नहीं आता। प्रिय-पाठक-वृन्द! क्या आपने कभी इस पर विचार किया है कि ध्यान और भजन करते समय आपके अन्तरकी कली क्यों नहीं खिल उठती; आप मस्तीके झूलेमें क्यों नहीं झूलने लगते। इसका मूल-भूत कारण यही है कि भजन और ध्यानके समय आपके मन देवता और इन्द्रियां बाह्य विषयोंमें भटक रही हैं। जबतक आप अपनी इन्द्रियों और मनको बाह्य-विषयोंसे हटा नहीं लेंगे, तब तक आपको अन्तर-

के प्रकाशके दर्शन नहीं हो सकते वृन्द कविने क्या ही लाजवाब कहा है—

आँख कान मुख मून्द के, नाम निरंजन ले,
भीतर के पट तब खुले, बाहर के जब दे।

ज़रा अपने अन्तरकी ओर झांक कर तो देखिए अभूतपूर्व आनन्द आएगा। ध्यान और भजनके वास्तविक अनुपम आनन्दको वर्णन करना तो इस निर्जीव लेखनीकी ताक़तसे परे हैं; वह तो अनुभवकी वस्तु है। अनुभवसे जानेवाली वस्तुका आनन्द तो आप तभी उठा सकते हैं जब आप प्रभु-भक्तिमें तन्मय हो जायेंगे और एक उर्दू के मशहूर शायरकी तरह भक्तिके प्रवाहमें कह उठेंगे—

हर कतरे में एक बहता दरिया नज़र आता है
हर ज़र्रे में ताबिन्दा जलवा१ नज़र आता है।
कर आँख तू बन्द अपने और महवे तसव्वर२ है
फिर तुझको दिखा दूं मैं क्या २ नज़र आता है।

## बहादुर सिपाही और सच्चा संन्यासी

मातृ-भूमि भारतवर्षसे हज़ारों मील दूर जेकब्स, नेटालके एक मकानमें एक युवक और युवती अपने हिन्दीके एक पत्रके लिए स्वयं मैटर कम्पोज़ कर रहे हैं और अपने हाथोंसे उसे मशीनपर छाप भी रहे हैं युवती जो कि तरुण युवककी सहधर्मिणी मालूम होती है; बराबर प्राणपणसे उसे प्रत्येक कार्यमें सहायता पहुंचा रही है। प्रिय पाठक वृन्द! क्या आपने अनुमान किया कि यह तरुण युवक कौन है? यही तरुण युवक आगे चलकर प्रवासी भारतीयोंका हृदय-सम्राट् और उनकी खिलती आशाओंका एकमात्र केन्द्र हुआ और इसका नाम है श्री स्वामी भवानीदयाल संन्यासी। प्रवासी भारतीयोंके प्रति सहानुभूति रखने-वाला और उनमें दिलचस्पी लेनेवाला प्रत्येक भारतवासी श्री स्वामी भवानीदयाल संन्यासीके नामसे परिचित होगा। भारत माँके इस बहादुर सिपाहीने विदेशोंमें प्रवासी भारतीयोंके हितार्थ अनेकों तूफ़ानों और मुसीबतोंका सामना बड़ी दिलेरी और बहादुरीसे किया है। यों तो हमारे देशमें अनेकों गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी मिल जाएँगे पर सच्चे संन्यासी, जिनके जीवनका एकमात्र ध्येय पीड़ित मानवताके घावोंको भरना है; बहुत कम मिलेंगे। श्री स्वामी भवानीदयालजी गीताके शब्दोंमें सच्चे कर्मयोगी संन्यासी हैं। आपका समग्र जीवन एक सिपाहीका जीवन रहा है और प्रवासी भारतीयोंके राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक विकासमें आपका प्रमुख हाथ रहा है। स्वामीजीका व्यक्तित्व बहुत ही शानदार है। आपकी चांद की सी सौम्यता, बच्चोंकी सी सरलता और स्वभाव मृदुलता ऐसी चीजें हैं, जिनसे अनायास ही मस्तक स्वामीजीके प्रति झुक जाता है। आजकल आप अजमेरके आदर्श-नगर-में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वहां आपने एक प्रवासी-भवनकी स्थापना की है; जो आपके पुत्रोंकी व्यक्तिगत सम्पत्ति होते हुए भी प्रवासी-भारतीयोंके हितार्थ प्रयुक्त हो रहा है। आजकल यद्यपि आपका स्वास्थ्य बहुत जीर्ण-शीर्ण हो गया है; फिर भी आप प्रवासी भारतीयोंके हित-चिन्तनमें सदा संलग्न रहते हैं; सात्विक-जीवनके इसी अंकमें अन्यत्र प्रवासी-भवन के शीर्षक लेख जा रहा है, जिसमें प्रवासी-भवन के उद्देश्य और उसकी कार्य-प्रणालीपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। मंगलमय भगवान्से पाणिद्वय जोड़कर विनम्र प्रार्थना है, कि स्वामीजीको चिरायु करें; जिससे वे स्वदेशका अधिकाधिक हित-सम्पादन कर सके।

१ चमकती हुई ज्योति।
२ ध्यानावस्थित।

## सात्विक-जीवन—जनता का सेवक

सात्विक-जीवन के प्रेमी पाठकोंको यह सूचित करते हुए हमें परम हर्ष हो रहा है कि सात्विक-जीवन पत्रिकाको पंजाब, बिहार और देहलीके शिक्षा-विभागों ने अपने प्रान्तोंके कालेजों, होस्टलों, स्कूलों और लाईब्रेरियोंके लिये स्वीकृत कर लिया है; जिसके लिए हम इन प्रान्तोंके शिक्षा-विभागके अधिकारियों का हार्दिक धन्यवाद करते हैं। उपरिलिखित प्रान्तोंमें सात्विक-जीवनकी स्वीकृतिसे हमें वस्तुतः बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला है और हमारी यह हार्दिक अभिलाषा है कि सात्विक-जीवन जनताकी अधिकसे अधिक और अच्छेसे अच्छे रूपमें सेवा कर सके।

## सात्विक-जीवन का विषय-जीवन-निर्माण या चरित्र-निर्माण

सात्विक-जीवन का विषय बहुत व्यापक एवं गम्भीर है। जो भी वस्तु जीवनको अधिक प्रफुल्लित, आध्यात्मिक विचारोंसे परिपूर्ण तथा प्रेम, पवित्रता और प्रकाशकी किरणोंसे भरती है; वह हमारी पत्रिकाका विषय है। आप संसारके किसी भी छोटेसे छोटे और महान्से महान् कार्यको लीजिए; आपको सूक्ष्म निरीक्षण करनेके पश्चात् पता लगेगा कि आप उस कार्यमें तभी सच्चे अर्थोंमें सफल हो सकते हैं, जब कि आपका जीवन साधना और तपश्चर्याकी भट्ठीमें जलकर परम पावन हो चुका है। विश्वकी जिन महान् विभूतियोंने अपने शानदार व्यक्तित्व और उज्ज्वल चरित्रके द्वारा संसारका पथ-प्रदर्शन किया है; उन्होंने सर्वप्रथम अपने जीवनको साधना और तपस्या के औज़ारों द्वारा गढ़ा है। उदाहरणके लिए विश्ववन्द्य, सत्य और अहिंसाके सच्चे पुजारी; पीड़ित मानवता के सेवक, प्रातःस्मरणीय, भारतीय हृदयोंके सम्राट् महात्मा गांधीको ले लीजिए। भौतिक दृष्टिसे महात्मा गाँधी दो चार सूखी हड्डियोंका ढांचा मात्र हैं; परन्तु उनकी आत्मा आध्यात्मिकताके परम पवित्र आलोकसे जगमगा रही है; उनके आकाशके समान विशाल हिमालयके समान उन्नत और समुद्रके समान गम्भीर हृदयमें सारा संसार व्याप्त हो रहा है। दरिद्रनारायण की सेवा ही उनके जीवनका ध्येय और एकमात्र व्रत रहा है। इसी लिए महात्माजीके चरणोंमें हमारा मस्तक श्रद्धासे अवनत हो जाता है। इसका मूल कारण यही है कि महात्माजी जो कुछ कहते हैं, उसे सच्चे अर्थोंमें क्रियात्मिक रूप देते हैं और अपने जीवनमें ढालते हैं। महान् आदर्शों और उच्च शिक्षाओं से साधारणतः प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति परिचित रहता है; परन्तु संसार उन्हींकी पूजा करता है जो उन उन्नत आदर्शोंको क्रियात्मिकताका बाना पहिनाकर स्वयं उस पथके पथिक बनते हैं। जीवन-निर्माणको चरित्र-निर्माण भी कह सकते हैं। सात्विक-जीवनका ध्येय जीवन-निर्माण करनेवाले या चरित्र–निर्माण करने वाले भक्ति, धर्म और स्वास्थ्य-सम्बन्धी सत्साहित्य-की सृष्टि करना है; जो मानवीय आत्माको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे उन्नत करने तथा परिपुष्ट बनानेमें सहायक सिद्ध हो। भक्ति और धर्मके विषयमें सात्विक-जीवन उचित मात्रामें बुद्धि और श्रद्धा दोनोंको ही भक्ति और धर्म की दृढ़ आधारशिला मानता है, और उसका यह दावा है कि बुद्धि और श्रद्धा दोनोंके दृढ़ स्तम्भोंपर अवस्थित धर्म ही मानवीय आत्माको असीम शान्ति प्रदान कर सकता है; और कल्याणके पथपर ले जा सकता है।

## रसगुल्लेके साथ चटनी भी

एक बात और—जीवनमें प्रत्येक वस्तुका अपना २ स्थान और विशेष महत्त्व है। जीवनमें जहां गम्भीर समस्याओंका स्थान है, वहां शिष्ट हास-परिहास

और विनोदका भी अपना स्थान है। दोनों अपने-अपने स्थान पर शोभा देते हैं, और हमारी तुच्छ सम्मतिमें दोनों ही जीवनको सर्वाङ्गीण सुखमय बनानेके लिए नितान्त आवश्यक हैं। यदि जीवनमें सदा आदमी वेद वेदान्त पुनर्जन्म आदिकी गम्भीर समस्याओंके चिन्तनमें ही निरत रहे; तो उसका जीवन-तरु शुष्क हो जाएगा और जीवन उसके लिए भार प्रतीत होगा; ठीक इसके विपरीत यदि मनुष्य सदा हास-परिहास और विनोदमें ही लीन रहे; तो वह जीवनके वास्तविक तथ्य और गाम्भीर्यसे दूर हटता चला जाएगा—जीवन उसके लिए बिलकुल उथला एवं निरुद्देश्य हो जाएगा। सहभोजमें लड्डू, पेड़ा, बर्फी, रसगुल्ला आदि मिष्टान्नोंका जहां प्रमुख भाग है, वहां पापड़ और चटनीका भी महत्वपूर्ण स्थान है; इनकी उपेक्षा बिलकुल नहीं की जा सकती, इनकी उपेक्षाका अभिप्राय है इनके प्रति अन्याय। साम्यवादके इस युगमें इन्हें भी स्थान देना होगा परन्तु उचित मात्रा तक। इसी विचार को दृष्टिमें रखते हुए हमने सात्विक-जीवन में एक स्तम्भ हास-परिहासके रखनेका भी निश्चय किया है; परन्तु अश्लील और अशिष्ट हास-परिहासके हम सर्वथा घोर विरोधी हैं। शिष्ट, विनोदपूर्ण हास्यसम्बन्धी रचनाओंका हम सहर्ष स्वागत करेंगे।

## एक अन्य नवीन स्तम्भ

हमारे कई साहित्यिक मित्रोंने सात्विक-जीवन में चिट्ठी-पत्रीका एक नवीन स्तम्भ रखनेकी ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है। इसके विषयमें हमें अपने प्रेमी पाठकोंकी सेवामें ही यही विनम्र निवेदन करना है कि सात्विक-जीवन से सम्बन्धित विषयोंपर यदि प्रेमी पाठक हमारे विचार जानना चाहेंगे या किन्हीं विषयोंमें सन्देह निवारण करना चाहेंगे तो हमसे जहांतक बन पड़ेगा हम उनकी शंकाओंका उचित समाधान पत्रके रूपमें करनेका यथासाध्य प्रयास करेंगे और उनकी सेवाके लिए सदैव समुद्यत रहेंगे।

## हमारी नई योजना

अन्तमें मुझे अपने प्रेमी पाठकोंसे यही नम्र निवेदन करना है कि सात्विक-जीवन पत्रिका के अधिकाधिक प्रचार और विस्तारके लिये हमने यह एक नवीन योजना बनाई है कि जो बन्धु सात्विक-जीवन के नए पांच ग्राहक बनाएँगे, उनकी सेवामें हम एक वर्षतक उपहार-स्वरूप निःशुल्क सात्विक-जीवन भेजते रहेंगे अथवा उनकी इच्छापर उन्हें सात्विक-जीवन-ग्रन्थमालाका एक सेट सहर्ष भेंट करेंगे। हमें पूर्ण आशा है, आशा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि सात्विक-जीवन के प्रेमी पाठक सात्विक-जीवन के सन्देशको दूरसे दूर अधिक से अधिक जनतातक पहुंचानेका प्रयत्न कर हमें कृतार्थ करेंगे।

---

## आवश्यक सूचना

सात्विक-जीवनका वार्षिक मूल्य ३) है, विद्यार्थियों, विद्यालयों और पुस्तकालयोंसे २); नमूनेकी कापी के लिये ।) आना आवश्यक है।

सात्विक-जीवनका वर्ष विजया दशमी (अक्टूबर) से प्रारम्भ होता है। वर्षके मध्यमें ग्राहक बनानेका नियम नहीं है, जो सज्जन वर्षके बीचमें ग्राहक बनना चाहेंगे उनकी सेवामें उस चालू वर्षके पिछले अंक भेजे जाएँगे।

ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें, अन्यथा पत्रोत्तरमें विलम्ब और उचित कार्यवाहीमें असुविधा होगी।

# भगवान् राजमन्दिरमें नहीं है

लेखक—स्वर्गीय महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर

सेवकने अपने शक्तिशाली, वैभवसंपन्न सम्राट्को सम्बोधन करते हुए कहा—"महाराज ! सन्त नरोत्तम आपके राज-मन्दिर में प्रवेश करनेके अनुग्रहको सर्वथा अस्वीकार करते हैं—

"मस्तीकी तरङ्गमें झूमते हुए सन्त नरोत्तम खुले राज-पथपर वृक्षोंकी छायामें भगवद्-भजन कर रहे हैं। राज-मन्दिर भक्तजनोंसे बिलकुल खाली है।

"जिस प्रकार मधुमक्खियां शहदसे भरे सुवर्णके पात्रको छोड़कर श्वेत कमलके चारों ओर मंडराती हैं; उसी प्रकार सब भक्तजन भी सन्तको घेरकर खड़े हुए हैं।"

+ + +

सम्राट् अपने हृदयमें बहुत उद्विग्न हुए और उस स्थानपर गए जहां हरी-हरी कोमल घास पर सन्त नरोत्तम बैठे थे।

सम्राट् ने सन्तको सम्बोधन करते हुए कहा—"पिताजी ! ईश्वर के प्रेमके प्रचारके लिए आप मेरे सुवर्ण-जटित राज-मन्दिरको छोड़कर, इस धूलिसे भरे राज-पथ पर क्यों बैठे हैं।"

बड़ी मृदुल और गम्भीर वाणीमें सन्त नरोत्तमने कहा—"क्योंकि भगवान आपके राज-मन्दिर में नहीं हैं।"

सम्राट् बहुत क्रुद्ध हुए और कहने लगे—"क्या आपको विदित नहीं कि उस सुन्दर कलामय सुवर्ण मन्दिरके निर्माणमें करोड़ों रुपए व्यय हुए हैं और महान् यज्ञ तथा पूजा-पाठ के उपरान्त उस मन्दिर में भगवान् की प्रतिष्ठा की गई है।"

सन्त नरोत्तमने उत्तर दिया—"मैं इसे जानता हूं; और उसी वर्ष ही, जिस वर्ष इस राज-मन्दिरका निर्माण हुआ, हज़ारों मनुष्योंके घर अग्नि देवता की भेंट हो गए थे और वे निराश्रित निस्सहाय मनुष्य आपके द्वार पर आश्रय मांग रहे थे।

"भगवान् ने कहा—"जो अबोध मनुष्य अपने भाईयोंको आश्रय नहीं दे सकता, वह क्या मेरा घर बनाएगा !

"भगवान्ने राज-पथके किनारे वृक्षोंकी छायाके नीचे उन निराश्रितोंके साथ ही अपना स्थान लिया है।

"और इस सोनेके राज-मन्दिर में अभिमान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यह सर्वथा शून्य है।"

सम्राट् क्रोधसे सन्तपर बरस पड़े और कहने लगे "मेरा देश छोड़ दो।"

सन्तने बड़ी असीम शान्तिसे उत्तर दिया "हां, मुझे भी आप वहां देश निकाला दे दें, जहां आपने मेरे भगवान्को निर्वासित किया है।"

अनु०—"श्रीवेद"

# गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेवाले मित्रके नाम पत्र

प्रिय रमेश !

सप्रेम वन्दे ।

आज तुम्हारा पत्र मिला, यह पढ़कर हृदय आनन्द की चरम सीमा पर पहुंच गया कि तुम अब द्वितीय आश्रममें प्रवेश करने जा रहे हो । अपने विद्यार्थीजीवन के अन्तिम वर्षमें हम दोनों इकट्ठे बैठकर आगामी गृहस्थ-जीवन के सुन्दर खाके खींचा करते थे, भोले बच्चोंकी तरह कई बार उन खाकोंको मिटाते, फिर नए बनाते, नए खाकोंमें भी तरह-तरहके कल्पना-के रंग भरते और इसी उधेड़बुन में समय गुज़रते पता ही नहीं लगता था । उन दिनों, तुम कल्पनाके सुखद, संगीतमय साम्राज्यमें विचरते थे, आज वस्तुतः तुम्हारी कोमल और मीठी कल्पनाएँ साकार होने जा रही हैं । कुछ दिनों बाद तुम एक से दो जाओगे इसके लिए मुबारकवाद ।

प्यारे भैय्या ! गृहस्थाश्रम जितना अधिक मनोहर, संगीतमय प्रतीत होता है, उतना ही अधिक यह कर्त्तव्यों और जिम्मेवारियोंसे भी भरा हुआ है । गुलाबके फूलके साथ कांटे भी तो होते हैं न । जो मनुष्य इस द्वितीय आश्रमके वास्तविक उद्देश्य और तत्त्वको अपने हृदय-पटपर अंकित कर लेते हैं और तदनुकूल आचरण करनेका प्रयत्न करते हैं ; उनकी जीवन-यात्रा बड़े सुखसे बीतती है ; परन्तु इसके विपरीत जो गृहस्थाश्रम के पवित्र कर्त्तव्योंकी अवहेलना करते हुए भोग-विलास को ही गृहस्थ-जीवनका लक्ष्य मानते हैं ; उनका जीवन घोर अशान्ति और कलहमें बीतता है । गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होनेसे पूर्व प्रत्येक तरुण युवाको यह जान लेना चाहिए कि वह किस महान् उद्देश्यकी पूर्तिके लिए इस आश्रममें प्रवेश कर रहा है । गृहस्थाश्रमके कर्त्तव्योंका पूरी ईमानदारी और सचाईसे पालन करनेसे ही हमारे जीवनमें शान्ति और प्रेमकी सरिता बह सकती है ; हमारे प्राचीन शास्त्रों में तो गृहस्थाश्रमकी एक यज्ञसे तुलना की गई हैं ; यदि यज्ञकी पवित्र भावना के साथ इस आश्रममें प्रवेश किया जाय तो इस यज्ञकी फलरूपसे उत्पन्न संतति राष्ट्रकी सच्ची संपत्ति हो सकती है और राष्ट्र उस पर गर्व कर सकता है ।

एक अंग्रेज विद्वान् घरकी रमणीय उद्यानसे तुलना करते हुए कहता था कि चांदसे सादे, गायसे भोले, किलकारियां मारते हुए शिशु गृह-उद्यान के पुष्प हैं, प्रेम और पवित्रताकी ज्योतिसे जगमगाती हुई रमणियाँ लताएँ हैं, हृदयमें असीम शौर्य और उत्साहका भण्डार लिए हुए पुरुष वृक्ष हैं ; यदि इस पृथिवी पर कहीं स्वर्ग है तो इस गृह-उद्यान में हैं । क्या ही सुन्दर भाव है ; दिल चाहता है, लेखककी कलम चूम लूं । दो सैकड़ों दुआएँ उस महापुरुषको जिसने सबसे पहले पृथ्वी पर अपना एक नन्हासा घर बसाया था । घर ही हमारी समस्त आशाओंका एकमात्र केन्द्र है । हम चाहे कहीं भी हों, परन्तु हमारा हृदय घरकी ओर ही रहता है । पर जानते हो, घर किसे कहते हैं । यह ईंट चूना, पत्थर, मिट्टीसे बना हुआ झरोखों और दरवाज़ोंवाला घर घर नहीं है । असली घर तो तुम्हारा अब बनने जा रहा है ।

अपने हृदयपट पर इस तथ्यको भलीभांति अंकित कर लेना कि पति, पत्नी ; पुरुष वा स्त्री दोनों ही जीवन-रथके पहिए हैं, दोनोंके संपर्क और परस्पर स्नेहसे हा गृहस्थी चलती है । प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नीसे सीता, सावित्री और दमयन्ती बननेकी आशा रखता है ; दूसरी तरफ़ पुरुषोंका भी यह कर्त्तव्य है कि वे राम, सत्यवान् और नल बननेका यत्न करें । यदि तुम स्वयं उन्नत, दिव्य आदर्शोंकी ओर अग्रसर होनेका प्रयास करोगे, तो तुम्हारा जीवन-साथी स्वयं तुम्हारे जीवनसे प्रभावित होगा । अपने हृदय में प्रेमका दिव्य दीपक जलाते हुए इस द्वितीय आश्रममें प्रवेश करो, भगवान् तुम्हारा कल्याण करे, यही उनसे प्रार्थना है ।

— तुम्हारा ही
'वेद'

# गोविन्दगुप्त (खण्डकाव्य)

रचयिता—श्री गंगाप्रसाद "कौशल"

प्रस्तुत ऐतिहासिक खण्डकाव्य के रचयिता श्रीयुत् गंगाप्रसादजी "कौशल" बिहार के सुविख्यात, प्रतिभाशाली तरुण कवि और सिद्धहस्त पत्रकार हैं। सात्विक-जीवनपर आपकी विशेष स्नेह-दृष्टि है और उसमें आपकी हृदय-वीणा के तारों को झंकृत करनेवाली, अध्यात्मवाद के सुनहले प्रकाश से प्रकाशित, नैसर्गिक माधुर्यसे परिपूरित, कोमल-कान्त-पदावली-गुम्फित रचनाएँ अक्सर प्रकाशित होती रहती है। आपकी अध्यात्म-प्रधान कविताओं में संगीत की सी मोहकता, चांद की सी सादगी और आशाकी ज्योति स्पष्ट प्रतिभासित होती है। आपका नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से सुषमा नामसे प्रकाशित सुन्दर पद्य-पुष्प हिन्दी-साहित्य के उद्यान को अपनी सुरभि से महका रहा है। मंगलमय भगवान् आपकी लेखनी में अमित ओज, शक्ति और माधुर्य प्रदान करे जिससे आप हिन्दी-साहित्य के मन्दिर को अपने ग्रन्थ-रत्नों से जगमगा सकें। —सम्पादक।

इस काव्यके नायक गोविन्दगुप्त हैं। ये महाविजयी सम्राट् समुद्रगुप्तके पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीयके पुत्र थे; चन्द्रगुप्त द्वितीयके दो पुत्र थे कुमारगुप्त तथा गोविन्दगुप्त। इनके दादा समुद्रगुप्तने राज्यका बड़ा विस्तार किया। ऐतिहासिक लोग उन्हें भारतीय नैपोलियनकी पदवीसे विभूषित करते हैं। समुद्रगुप्तके बाद उनके पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय गद्दी पर बैठे। उन्होंने अपने राज्यका और भी अधिक विस्तार किया। सौराष्ट्र (काठियावावाड़) उन्होंने गुप्त साम्राज्यमें सम्मिलित किया था। इनके समयमें देशने बड़ी उन्नति की। भारतवर्षका व्यापार योरोपीय आदि देशोंसे होता था।

इनके बाद इनके पुत्र कुमारगुप्त गद्दीपर बैठे। कुमारगुप्तके अनुज गोविन्दगुप्त शक मंडल के प्रधान अधिकारी हुए। गोविन्दगुप्तके हर्षगुप्त नामक एक लड़का था, जिसकी माँ बाल्यावस्थामें ही मर चुकी थी। गोविन्दगुप्तका जीवन बड़ा त्यागमय था। वे अपने भाई कुमारगुप्तके लिए सदैव मरनेको उद्यत रहते थे। उनकी लगभग सारी जिन्दगी युद्ध-भूमिमें ही व्यतीत हुई थी। बात यह थी, कुमारगुप्तके शासन-कालमें हूणोंके आक्रमण शुरू हो गए थे और इधर गुप्त साम्राज्य भी अन्तिम सांसे ले रहा था। कुमारगुप्त इन्द्रलेखा नामक वेश्याकी लड़की नवयौवना अनंत पर आसक्त हो गया। उसने अपने राज्यमें उससे शादी करने तथा पट्टमहादेवी बनानेका भी एलान कर दिया था। इस वक्त गोविन्दगुप्त नहीं थे। वे राज्य-सीमा-पर दुश्मनोंसे लोहा ले रहे थे। फिर भी राज्यमें कुछ बुजुर्ग, महामात्य दामोदर शर्मा, रामगुप्त, कृष्णगुप्त, अग्निगुप्त आदि ऐसे थे जो इस विवाहके पूर्णतया विरुद्ध थे। ये लोग चन्द्रगुप्त द्वितीयसे भी सम्मानित किए जाते रहे थे। सम्राट कुमारगुप्त भी इनको आदरकी दृष्टिसे देखते थे; पर प्रेम-पाशमें फँसकर उन्होंने इन बुजुर्गों का ज़रा भी ख्याल नहीं किया। उधर सम्राट कुमारगुप्तकी विवाहिता पत्नी भी आत्महत्या करनेको तुली थी। वे वेश्या-बाला अनन्तका आर्यपदपर महादेवी बनकर बैठना नहीं देख सकती थी। परन्तु सम्राटके आगे, गोविन्दगुप्तकी अनुपस्थितिमें इन बुजुर्गोंकी चलना कठिन था। इन लोगोंने कुछ दिन पहले ही एक अश्वा-रोही गोविन्दगुप्तको बुलानेके लिए सीमापर भेज दिया था। दूसरे दिन शादी होनी थी, पर दोपहरतक वे न आए। ये लोग बड़े निराश हुए। परन्तु शामके वक्त गोविन्दगुप्त वीरवेशमें घोड़ेपर आ पहुंचे। महामात्य

दामोदर शर्माने उन्हें गलेसे लगा लिया और सब बातें बतलाईं। सब हालतसे अवगत होनेपर गोविन्दगुप्त महलोंमें गए, पर वहां सम्राटको न पाया। सीधे वेश्याबाला अनन्तके घरपर गए। वहां एक सुन्दर कमरेमें सम्राटको देखा। क्रोधमें बिना कुछ कहे सुने सम्राटका हाथ पकड़ उन्हें लेकर चल दिए। सम्राट भी चुपचाप रहे। इसपर नवयौवना अनन्तको गुस्सा आया। उसने क्रोधित होकर गोविन्दगुप्तका हाथ झटक दिया और अकड़-अकड़ कर बातें करने लगी यहींसे काव्यारम्भ होता है। यह तेरह सर्गोंमें विभक्त किया गया है। 'सात्विक जीवन' के पाठकों के मनोरंजनार्थ यह क्रमशः निकलता रहेगा।

—लेखक

## प्रथम सर्ग

( १ )

हाथ झटक कर नवबाला ने
कहा—"होश में तुम आओ;
परगृह में मनमानी करते
कौन अरे! तुम बतलाओ?

( २ )

मुझे जानते हो कि नहीं तुम
कुत्तों से फड़वाऊँगी;
इस अशिष्टता का तुमको मैं
दण्ड कड़ा दिलवाऊंगी।"

( ३ )

गरज पड़े गोविन्दगुप्त तब
"हट दुष्टा! आगे से टल;
आज देख पाया है मैंने
ऐ पिशाचिनी! तेरा छल।

( ४ )

तेरा गृह यह बना स्वर्ग है,
भोग-विलासी कामी को,
फाँस लिया तूने छलबल से
आज देश के स्वामी को।

( ५ )

अब मैं देखूंगा कल कैसे
होगी पट्टमहारानी;
उटा तुम्हारा सब लोगों का
दुनिया से दाना पानी।"

( ६ )

हाथ उठा गोविन्दगुप्त का
सैनिक आगे बढ़ आया;
बंदी करके सभी जनों को
उसने रथपर बिठलाया।"

( ७ )

अग्रज उनके शान्त खड़े थे
सिर को नीचा किए हुए;
नहीं बोलने का साहस था
मन की मन में लिए हुए।

( ८ )

अग्रज अनुज बढ़े फिर आगे
जा बैठे दोनों रथ पर;
द्रुत गतिसे चल दिए अश्व फिर
भगी वायु-गति शरमाकर।

## द्वितीय सर्ग

( १ )

पाटलिपुत्र नगर की शोभा
निर्मल और निराली है;
आज सभी जनता उमंग में
डोल रही मतवाली है।

( २ )
शीतल जल सुमनों से सिंचित
आज राजपथ दिखलाते ;
मंगल-वाद्य सब जगह बजते
सैनिक हैं आते जाते ।

( ३ )
मंजुमुखी बालाएं सुन्दर
पंचम स्वर में गाती हैं ;
कुछ मुग्धाएं राजपथों पर
फूल बेचती जाती हैं ।"

( ४ )
शीतल मंद सुगंध आज की
वायु बड़ी ही प्यारी है ;
फिर वसंत ऋतु-सी आई है
फूल रही फुलवारी है ।"

( ५ )
सोन नदी के तटपर सुन्दर
बना हुआ विस्तृत उद्यान ;
आज उसी में सभी जनों ने
समारोह का किया विधान ।

( ६ )
सभी वीर जब वहां आ चुके
महामात्य तब यों बोले—
आज अश्रु-सरिता में मेरी
कोई निज पातक धोले ।

( ७ )
राजन् ! मुझे क्षमा करना मैं
मूर्ख बड़ा ही भारी हूं ;
किन्तु तुम्हारे वीर पिता का
रहा सदा आभारी हूं ।

( ८ )
एक बूँद भी रक्त रहेगा
जब तक मेरी काया में ;
वृद्ध नहीं यह फंस सकता है
कभी किसी की माया में ।

( ९ )
उस वेश्या-बाला के पीछे
सबको ही हा ! दुखी किया ;
प्यारी बहू हमारी का भी
सारा सुख हा ! छीन लिया ।

( १० )
गुप्तवंश के लिए हमारा
तन मन धन है, जीवन है ;
सभी आपदाएं सह सकता
गुप्त वंश-हित यह जन है ।

( ११ )
गुप्त नृपों का नमक सदा से
मैंने अबतक खाया है ;
इसके लिए पूर्वजों ने भी
मेरे रक्त बहाया है ।

( १२ )
कैसे भला देख सकता था
अनाचार की ये बातें ;
जब कि देशपर विपद पड़ी है
हूण कर रहे हैं घातें ।

( १३ )
यद्यपि वृद्ध किन्तु कुछ मेरी
टूट गई तलवार नहीं ;
उस पर जो वचों को ताके
होगा क्या फिर वार नहीं ?

( १४ )
दुनिया में फंस मत भूलो अब
मेरे नयनों के प्यारे ;

गुप्त-वंश से मुझे मुहब्बत
अस्त न हों इसके तारे।

( १५ )

पिता तुल्य समझाता तुमको
भरी सभा में मैं भैया;
गुप्तवंश की आज भंवर से
शीघ्र निकालो तुम नैया।

( १६ )

ईश्वर कब तू दया करेगा?
कहकर महामात्य रोए;
सारे योद्धा मंत्रमुग्ध थे
तन का सब सुध-बुध खोए।

( १७ )

दुखी हुए तब नृपति बहुतविधि
बोले—"मैं पछताता हूं;
हूणों से लड़ने भिड़ने का
क्रम मैं नया बनाता हूं।

( १८ )

महामात्यजी! दुखी न हों अब
हम सब हूण भगाएँगे;
श्रीगोविन्दगुप्त कल ही बस
जालंधर को जाएंगे।"

( १९ )

बोल उठे गोविन्दगुप्त तब
कल सहर्ष मैं जाऊंगा,
किन्तु युद्ध की कुछ हालत मैं
आज यहां बतलाऊंगा।

( २० )

वाह्लीका, कपिशा दोनों पर
हूणों ने अधिकार किया;
नगरहार गाँधार आदि के
आगे का पथ रोक लिया।

( २१ )

शिक्षित सैन्य जुटाओ जल्दी
बर्बर जाति बढ़ी आती;
गिरि-संकट यदि पारकर लिया
तो समझो इज्ज़त जाती।

( २२ )

एक करोड़ सुवर्ण मास प्रति
जालंधर यदि जाएगा;
तो सचमुच ही इन हूणों का
नाम न फिर दिखलाएगा।

( २३ )

बाँके योद्धा सभी साथ में
मेरे इस दम जाएंगे;
चन्द्रगुप्त के यश को हम सब
दूना वहाँ बढ़ाएँगे।

( लेखक के शीघ्र प्रकाशित होनेवाले खण्डकाव्य 'गोविन्दगुप्त' से— )

# ओ३म् क्या है? और ओ३म् जप की उपयोगिता

ले०—श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

ॐ आकाश ब्रह्म सर्वव्यापी वह शब्द है जो ब्रह्मके कण्ठसे कल्लोल ध्वनिके रूपमें सबसे पहले निकला था। ॐ की यह ध्वनि ही सृष्टिकीजननी है। ॐ सृष्टिकालकी इस ध्वनिका साधन वा सामूहिक रूप है, यह सब ॐ ही है। ॐ रहस्य पूर्ण शक्तिपुञ्ज है। ॐ आश्चर्यमयी शक्तियोंका जादू भरा शब्द है। ॐ सबका अधिष्ठान और आश्रय स्थान है। जिस प्रकार किसी भी देशका राजा अथवा सभापति अपनी प्रजा अथवा देशवासियोंके विचारोंका प्रतिनिधि रूप है उसी प्रकार ॐ भी सभी नाम और ध्वनियोंका मुख्य अधिष्ठान होनेके कारण ब्रह्मके सभी नाम और ध्वनियोंका प्रतीक है। संसारके सभी शब्द इस ॐ ध्वनिके अन्तर्गत हैं। ॐ सभी ध्वनियों वा शब्दोंका चक्रवर्ती सम्राट् है, ॐ महासमुद्र है जिसमें नदियोंकी तरह शब्द, नाम और ध्वनियां अपने नाम और रूपका विसर्जन कर देती हैं।

ॐ समस्त सृष्टिका सामूहिक रूप है। ॐ गुरु शब्द है। ॐ हिरण्यगर्भकी वाणी है। ॐ वेदोंकी माता है! ॐ सभी ध्वनियोंकी जीवन मूरि है! ॐ विश्वकी महाध्वनि है! ॐ सृष्टिकी आदि ध्वनि है! ॐ ज्ञान-योगके जिज्ञासु विद्यार्थीका अमूल्य शब्द भण्डार है! ॐ वेदान्तियोंका (वेदान्तवेद्य) "वेदान्त प्रमाण" है! ॐ अभय और अमृतत्व रूप आत्मा वा "ब्रह्म" की प्राप्तिके लिये आत्मज्ञानकी नौकापर (उस पार) जानेका "प्रमाण पत्र" है।

ॐ आत्माकी अमृतात्मा है? ॐ शिखरस्थित शिखर शशिशेखर—(चन्द्रशेखर—) है। ॐ भयङ्कर रोगका सर्व पापहर ब्रह्मशर है। ॐ अमृतत्व प्रदान करनेवाली श्री सीताजीकी दिव्य खीर है। ॐ तीर्थराज प्रयाग और त्रिकूट (त्रिकुटि-स्थित) परम पवित्र "त्रिवेणी संगम" है। ध्यान ॐ का करें, चिर निमग्न हों ॐ में। गोता लगायें ॐ में। ॐ संसारके "दावानल" को बुझानेका—"सर्वात्मस्पनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्" रूप परम पवित्र स्थान है!

ॐ सृष्टिका पसारा है, और दृश्य जगत्के विविध 'नाम-रूप" दृश्य इस कोरे कागजपर अङ्कित होनेवाले विविध चित्र हैं। ॐ के रूपमें सृष्टिका यह वस्त्र वा पट रूप पसारा 'सत्' पर इस वस्त्र वा पट पर अङ्कित चित्र 'असत्' है। इस पट वा वस्त्रकी चित्राङ्कित अग्निशिखा आपकी उंगलियोंको जला नहीं सकती। चाकू वा तलवारका चित्र उंगलियोंको काट नहीं सकता, वस्त्र वा पटका चित्राङ्कित सिंह आपको फाड़ नहीं सकता। इसी प्रकार अध्यात्म जगत्में भी एकमात्र सत् ब्रह्म वा ॐ है। नाम और रूप पटके चित्रोंकी तरह 'असत्' है।

यह ॐ अथवा आत्मा ही सब नाम, ध्वनि, भाषा, शब्द, वाणी, पिण्ड और ब्रह्माण्ड, देह, मन, प्राण, स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर, पंचकोष आदि 'सर्व' का अधिष्ठान है। जिस प्रकार 'अन्तस्तल' ही सबका सार वा रहस्य रूप वह अन्तिम स्तर है जो सभी गुणोंका अधिष्ठान है, उसी प्रकार ॐ वह 'मूल तत्त्व' वा वस्तुत्व है जिसके अन्तर्गत समस्त नाम रूप विषम (संसार) समुद्र तरङ्गवत् दृष्टिगोचर होता है। ये सभी तरङ्ग दृश्य वा प्रतीति मात्र ही है। इसी प्रकार यह नाम रूप (दृश्य) भी प्रतीति मात्र मिथ्या हैं। यह नाम रूप (दृश्य) असत् है! यह नाम रूप (दृश्य) एक-

सा कभी नहीं रहनेवाला, अनित्य और परिवर्तनशील है; अतएव सदा अखण्डैकरस रहनेवाले अखण्डैकरस उस सत्यकी अपेक्षा अपेक्षित सत्यके रूपमें ही असत् कहा जाता है। 'गिरा अर्थ जल बीचि सम' समुद्र सत्, पर तरङ्ग वा बीचि असत् है। इसी प्रकार ब्रह्म वा ॐ सत्, और उसका यह पसारा (सृष्टि) असत् है। 'आत्मा' अथवा एकाक्षर ब्रह्म ॐ के रूपमें ॐ एकपदी वा एकाक्षरी मंत्र है।

'ब्रह्म नामका पूर्ण निरूपण करनेके लिये यावत् शब्दोंका साररूप "प्राणस्य प्राणः"—प्राणोंका भी प्राण - यह प्रणवरूप ॐ ही है। ॐ जीवमात्रको संसार सागरसे तारनेवाला तारक मंत्र है। ब्रह्म ही (त्राण करनेवाला) 'तारक' है। उपासना इस तारक मंत्र ॐ की ही करनी चाहिये।

ॐ ही वेद और वेदान्तका सार है। ॐ उपनिषद्-रूप सुतरुवरका सर्वश्रेष्ठ फल है। ॐ वेदान्त कुसुमाकरकी सुमधुर माधवी लता है। ॐ अखिल विश्वका ही मूल है। 'जो सींचे मूलको फूले फले अघाय।' ॐ ही अक्षर ब्रह्म है। ॐ सभी ध्वनियों, उच्चारणों और भाषाओंका उद्गम स्थान है। ॐ ब्रह्मका सर्वश्रेष्ठ मुख्य नाम है। ॐ अमृतात्मा ब्रह्मका सर्वरूप प्रतीक है। ॐ शक्ति पुंज है। ॐ पराशक्ति है। ॐ प्रणव है। ॐ वेदोंका एकाक्षर ब्रह्म है। ॐ उद्गीथ है। ब्रह्म अपने जिन तीन रूपोंमें प्रगट होता है, 'ॐ' अ, उ, म रूपसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीन रूपोंका प्रतीक पृथक्-पृथक् समरूपसे ही है।

ॐ ही शक्ति है। ॐ ही अधिष्ठान है। ॐ ही 'एक प्रत्यय सार' है। ॐ अमृतात्मा है। ॐ बाइबिलका Holy Ghost 'होली घोस्ट' (प्रत्यगात्मा) है। ॐ अन्तर्तम (आत्मा) का अन्तर्तम संगीत है। ॐ शान्तिका सुमधुर स्वर है। ॐ उपनिषदोंका 'नवनीत' है। ॐ 'वेदान्तवेद्य, नवनीतचोर' कृष्ण है। ॐ वेदोंका मुकुटमणि 'हीरा' है। ॐ वेदान्तकी हिमगिरि-शिखाका अत्यन्त उच्चतम —'श्रीगौरीशंकर' का हिमशिखर है।

'वचन अगोचर बुद्धिपर' श्रीरामका वह परम रम्य आराम' और 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' जहाँ जाकर फिर संसारमें लौटना नहीं पड़ता, ब्रह्मका वह परम धाम, जहां भूख, प्यास, दुःख, शोक, हर्ष, विषाद, हम, तुम, यह, वह, आज, कल, यहां, वहां, पूर्व, पश्चिम, इधर, उधर, ऊपर, नीचे आगे, पीछे, वर्षा, ध्वनि, ज्योति, नभ, प्रकाश, अन्धकार, द्रष्टा, दृश्य कुछ भी नहीं है, वह ॐ ही है।

ब्रह्मका वह शाश्वत स्थान, जहां 'परं शान्ति' के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, ब्रह्मका वह अपार सौन्दर्य अनिर्वचनीय गौरव, अवर्णनीय, अपरिमेय, अग्राह्य, अदृश्य और अचिन्त्यशान्तंशिव मद्वैतं सबका 'प्रपंचोपशमं' 'एकात्मप्रत्ययसारं' जिसे पाश्चात्य तत्त्वविद् मूलवस्तुके नामसे पुकारते हैं; जहांसे वाणी मनसहित लौट आती है, जहां संकल्प, कल्पना वा स्फुररूप मनोगत भावोंका ही अभाव हो जाता है, जहां बुद्धि भी थक जाती है, और इन्द्रियां निरिन्द्रिय हो जाती हैं, ॐ ही है।

यह ॐ ही है। (ओमित्येतत्)। ॐ ही श्रेष्ठ अवलम्बन है। 'एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनंपरम।' शुद्ध कामनावाला अपने मनको आत्मामें लगानेके लिये ॐ का आश्रय ग्रहण करे। ॐ ही आत्मा है। ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं। ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म। ॐ ही ब्रह्म है; यह सब ॐ ही है; ॐकार एवेदं सर्वमोंकार एवेदं सर्वम्" आदि श्रुतियां अन्य प्राप्ति अथवा ब्रह्मसाक्षात्कारके लिये ॐ की ही उपयोगिता और महिमा का गुणगान मुक्त कण्ठसे कर रही हैं। श्रुतियां यह स्पष्ट ही कह रही हैं कि ॐ ब्रह्म वा आत्मा यह सभी एक ही हैं। 'सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा'

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।" एकमात्र सत्य ॐ ब्रह्म अथवा आत्मा ही है। विद्वान् एक सत्यको ही विविध नामोंसे पुकारते हैं।

इस प्रकार श्रुतिवाक्योंसे भी यह सिद्ध है कि ॐ ही ब्रह्मका प्रकृत नाम और प्रतीक भी है। ॐ नामका जप संकीर्तन वा ध्यान मनको निर्मल करता है, अज्ञान या अविद्याके आवरणका नाश करता है और साधकके "ब्रह्मलीन" होनेमें सहायता करता है।

समस्त मंत्रोंके आदिमें ॐ ही है। सभी उपनिषदोंका 'अथ' वा आरम्भ ॐ से होता है। धर्मके सभी सिद्धान्त ॐ में निहित हैं। श्वासकी ध्वनि ॐ है, ॐ 'भूमा' का अमृत गान है। ॐ का चिन्तन मनको विकसित और उन्नत करता है। ईसाई और हिब्रू अपनी प्रार्थनाके अन्तमें 'अमेन' शब्दका प्रयोग करते हैं, जो ॐ का ही रूपान्तर है। मुसलमान भी नमाजके अन्तमें 'आमीन' कहा करते हैं यह भी ॐ का ही विकृत रूप है। मांडूक्य, मुंडक, छांदोग्य प्रश्न और कठोपनिषद, श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्रोंमें भी ॐ की ही महिमा गायी गयी है। अब तो अमेरिका और यूरोपवाले भी ॐ का ध्यान करते हैं। ॐ की महिमाको वे भी समझने लगे हैं। पाठको! ॐ ही आपका जीवन है, ओ३म् ही आपका प्राण है। ओ३म् ही श्वास है। ओ३म् ही वेदोंका जीवनसर्वस्व है। ओ३म् सभी मंत्रोंका मूलमंत्र है। ओ३म् इस विश्वका जीवनाधार है। ओ३म् ही सब कुछ है। ओ३म् सार्वभौमिक मंत्र है। ओ३म् सर्वसाधारणकी पैतृक सम्पत्ति है। संसारके सभी अर्थ ओ३म् में ही सन्निहित हैं। 'ओ३मूकाररूप' शिवकी शिवप्रिया (पार्वती) और चतुर्मुख ब्रह्माकी वेदमाता गायत्री वा सरस्वती भी ओ३म् की स्तुति वा महिमा सुचारुरूपसे नहीं कह सकती। ओ३म् की महिमा अवर्णनीय, अपार है। संसारके सभी सिद्धान्त, सम्प्रदाय, मत वा पंथके विभिन्न देवताओंका प्रतीक ओ३म् ही है। यह सर्वसाधारणका ही उपास्य देव है और सबको इसकी उपासना समरूपसे करनी चाहिये। किसीको किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं होनी चाहिये। यह सर्वमान्य है। जिस प्रकार रज्जु-सर्प न्याय वा रज्जु-सर्पकी भ्रान्तिमें, सर्पका आधार रज्जु है, उसी प्रकार, मन, प्राण, इन्द्रिय, और शरीर (भाव) का आधार ब्रह्म है और सभी 'वाचारम्भम् नामधेयं' रूप नाम वा वाणीका आधार ओ३म् ही है। भगवती श्रुति कहती हैं, जो कुछ है वह नामका ही पसारा है, नामका ही खेल है। 'नामैव सर्वम्।' जो कुछ है वह वाणीके धागेमें मणियों से ग्रथित है, मणियोंकी तरह गुँथा हुआ और नामकी डोरीमें ही पिरोया हुआ है। किसी भी वस्तु वा विषयका ज्ञान वा अनुभव शब्द वा वाणीसे ही होता है। वाणी वा शब्दके परे कुछ भी नहीं है। नाम और रूप दोनों ही अविच्छिन्न हैं। 'गिरा-अर्थ जल-बीचिसम' भाव और भाषा भी 'कहियत भिन्न न भिन्न' अभिन्न हैं। जितने भी कार्य हैं सब नाममय वा 'नाम' रूप ही हैं। जहांतक अनुभवका विषय है, वहांतक दृश्य जगतके रूपमें अखिल विश्व ही नामके आधारपर स्थित है। जहांतक मन, वाणी वा बुद्धिका विषय है अथवा 'गो गोचर जहं लग मन जायी'—वह सब नाम हीके अन्तर्गत हैं। किसीको भी हम 'नाम' के बिना नहीं पुकार सकते। भाव भी नामसे ही व्यक्त होते हैं। किसीको भी पुकारिये, नामका ही आश्रय लेना होगा। इसमें सन्देह नहीं कि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म,नेह नानाऽस्ति किञ्चन'—जो कुछ है सब ब्रह्म ही है; ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है; तथापि हम केवल ब्रह्म, ब्रह्म,ब्रह्म, की रट लगाकर ही इस संसारमें अपने भावोंको प्रकट नहीं कर सकते। प्यास लगनेपर 'गोविन्द, पानी दो' की जगहपर "ब्रह्म, ब्रह्म, ब्रह्म" का ही प्रयोग करनेसे प्यासकी निवृत्ति नहीं हो सकती। कोई भी नाम ओ३म्

से पृथक् नहीं किया जा सकता। नाम और नामीमें कोई भेद नहीं! अतएव 'सर्वं ओ३म् मयम्' जो कुछ है सब ओ३म् ही है। ओ३म् मुरली मनोहर गोपी-वल्लभ राधेश्यामकी सुमधुर मुरली ध्वनि है, ओ३म् गीतावक्ता श्रीकृष्णका गीतावाला ज्ञान है, ओ३म् गोपियोंको मुग्ध करनेवाली वंशीकी मीठी तान है, ओ३म् 'राधारानी' के नामसमेतं कृतसंकेतं वादयते मृदु वेणु" का ही सुमधुर संकेत है।

और ओ३म् ही 'हरे हरे बांसकी हरी हरी छड़ी लिये, हरि हरि पुकारतीं हरी हरी लतानमें हरिकी हरें बांसकी वांसुरी भी है।

ओ३म् जप और ओ३म् ध्वनिके आश्चर्य्यजनक परिणामोंका अपूर्व अनुभव आत्मसाक्षात्कार प्राप्त प्राचीन ऋषियों और महर्षियोंने किया था। उन्होंने चिरकालतक ओ३म् जप और इसकी ध्वनिका अनुसन्धान और अनुभूत प्रयोग करनेके बाद ही ओ३म् का ध्यान दीर्घकालपर्यन्त किया था और तब अपनी सिद्धावस्था प्राप्त कर लेने पर ही अखिल विश्वको ही ब्रह्मका परिचय 'तस्य वाचकःप्रणवः'—ओ३म् के रूपमें दिया था। यह जादूगरका अंडबंड जादू वा अंटमंट काम नहीं है। यह मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंका आप्तवाक्य है; उनके लिये ओ३म् ही संसार समुद्रके अत्यन्त गम्भीर, भयंकर 'दुस्तर' अथाह और सघन जलराशिकी तरणी थी और संसार सागरके पथप्रदर्शक प्रकाश वा दीप स्तम्भकी आलोक रेखा भी थी। उनके लिये ओ३म् ही ब्रह्मज्ञान, आत्मसाक्षात्कार अथवा निर्विकल्प समाधिके हिमगिरि शिखरपर चढ़नेकी निसेनी थी। हम सभी उनके आप्त वाक्य वा उपदेशोंपर पूर्ण रूपसे निर्भर कर सकते हैं।

इस ओ३म् की अत्यन्त आश्चर्य्यपूर्ण रहस्यमयी अचिन्त्य शक्ति है। प्रणवकी यह ओ३म् ध्वनि अपनी पराशक्तिकी अपार महिमासे ही माया या अविद्याके आवरण पंच कोशोंका अतिक्रमण कर वासना, इच्छा, कामना, तृष्णा मनकी संकल्प-विकल्प-रूपस्फुरणा और अहङ्कृतिका भी नाश करती और साधकको ब्रह्मसे मिला देती है। सत्त्वगुण सम्पन्न मनकी ब्रह्माकार वृत्तिको पुष्ट करती मूलाज्ञानको समूल नष्ट करती और ध्यानाभ्यासीको सच्चिदानन्दस्वरूपमें ही स्थित करती है। प्रणव ओ३म् आधिभौतिक वा सांसारिक जीवनके अथाह और अनन्य भवसमुद्रमें अचेत पड़े हुए मोहसक्त जीवोंके लिये एक प्रकाशमयी नौका है। पता नहीं, संसार समुद्रको इस नौकापर कितने पार कर गये। यदि चाहें तो आप भी सहज ही पार कर सकते हैं। अर्थ सहित भाव और श्रद्धापूर्वक निरन्तर ओ३म् का ध्यान करते हुए आत्माकी प्राप्ति कर लें। ओ३म् की ध्वनि मोक्षकी वह निसेनी है जो साधककी तुरीयावस्था वा 'शान्तंशिवमद्वैतं' के उच्चतम शिखर और 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के आत्यन्तिक सौन्दर्य पर ही ले जाती है। ओ३म् का यह ध्यान साधकके लिये आत्मानुसन्धानका दिव्य पथप्रदर्शक बना हुआ अध्यात्म वा अन्तर्जगतके अन्तर्तम रहस्योंका दिग्दर्शन कराता है। ओ३म् का ध्यान साधकको दिव्यचक्षु, जीवन्मुक्ति, अमृतत्व, अभय, नित्य, सुख, शान्ति और दिव्य शक्ति प्रदान कर उसकी कायापलट ही कर देता है। यह साधकको जीवन्मुक्त बना कर ही छोड़ता है।

अब तो विज्ञान भी यह सिद्ध कर चुका है कि रेडियो (ध्वनि) एक सेकेण्डमें पृथ्वीकी सात परिक्रमा करती है। क्या यह आश्चर्य नहीं है? क्या कभी आपने इस रहस्यपूर्ण ओ३म् ध्वनिकी आश्चर्यमयी शक्तिका अनुमान भी किया है? यदि विज्ञानका यह उपर्युक्त सिद्धान्त यथार्थमें ऐसा ही हो तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यह अखिल विश्व एकाक्षरब्रह्म ओ३म् की ध्वनिसे ही आच्छादित है। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवसे कह सकता हूं कि ओ३म् की ध्वनि

लंदनके Guy (गाई) और Barthlomeo बर्थोलोमियो अस्पतालमें अति भयंकर रोगोंसे पीड़ित रोगियोंको भी सान्त्वना सुख और शान्ति प्रदान की है और डबलिनके सुप्रसिद्ध (Rotunda) रोटंडा मातृसदनकी माताओंका भी परम उपकार किया है। भारतवर्षके देहरादून ; चिंगलपेट और मद्रास स्थित सुप्रसिद्ध चिकित्सालयोंके कुष्ठ रोगियोंको भी ओ३म् की ध्वनिसे विशेष लाभ हुआ है, सुख और शान्तिकी प्राप्ति हुई है। और समस्त संसारके ही आरोग्यार्थी स्वास्थ्य-कामियों कीं सूखी नाड़ियोंमें भी जीवनी शक्तिका संचार हुआ है। बंगाल और मद्रासकी सहस्राधिक बाल-विधवायें चिरसुखी हुई हैं। इसने दुःख और निराशा की ही गोदमें पड़े हुए कितने हतभाग्य पद-दलितोंका उद्धार किया है। समस्त संसारकी ही निःस्वार्थ सेवा करनेवाले देशभक्तोंको आत्मबलसे संयुक्त किया है। भारतके भावी भाग्यविधाता और अखिल विश्वके आशा-केन्द्र नवयुवक-वृन्द को नवीन उत्साहसे परिप्लावित और उत्कण्ठित हृदयोंको दिव्य जीवनके ही अमोघ बल, वीर्य और अपरिमेय पराक्रमसे परिपूर्ण किया है। मनुष्य-मात्र के मानस-पटल, चित्त और कारण शरीरमें कषाय रूपसे स्थित सूक्ष्मातिसूक्ष्म मलिन संस्कारोंको निर्बीज किया है। यह कोरी गप नहीं हैं। मिथ्या स्तुति वा अतिशयोक्ति भी नहीं है। यह सच्ची वस्तुस्थिति है। मेरे प्यारे सुहृद पाठको ! मैं जो कुछ लिख रहा हूं इसपर श्रद्धा लाओ और दृढ़ विश्वास रखो। कहो क्या आप इस प्रकार अनुभावित और अनुप्राणित होनेके लिये सर्वथा तैयार हो ? शिव आपके हृदयोंको ओ३म् ध्वनिके —'अविच्छिन्न तैल धारामिव दीर्घघण्टा निनादवत्'—दीर्घ घंटा निनादसे ही भर देगा।

आप जानते हैं कि किसी भी यज्ञमें किसी भी प्रकारकी कोई त्रुटि हो जाती है तो उसकी पूर्तिके लिये यज्ञके अन्तमें इस अनन्त-शक्ति-सम्पन्न ओ३म् मंत्रका उच्चारण ही किया जाता है। यज्ञ, योग, स्वाध्याय, अनुष्ठान, जप, ध्यान आदि जितने भी धर्म-कृत्य हैं सबका आरम्भ ओ३म् की सुदीर्घ ध्वनिसे ही होता है। याज्ञिक आदि सभी यज्ञकर्ता ॐ का ध्यान और ॐ का उच्चारण वा ॐ का जप विविध विघ्न-बाधाओंकी निवृत्ति और यज्ञकी पूर्ण सफलताके लिये किया करते हैं।

भगवान् कृष्णकी बांसुरी हमें क्या सिखाती है ? भगवान् कृष्णने हाथोंमें बांसुरी ही क्यों ली ? बांसुरीका मुख्य रहस्य क्या है ? कृष्णकी यह वंशी ॐ का ही प्रतीक है। वंशी कहती है, मेरी ही तरह अपनेको अहंकृतिसे शून्य (खाली) कर दो। कृष्ण आपकी देहमें वंशीका स्वर फूंकेंगे। आप कृष्णकी वंशी बन जायेंगे। आपकी यह देह वंशी बनकर 'ॐ' का सुमधुर राग अलापेगी। आपकी देह ही वंशीको तान सुना देगी। 'कृष्ण' की सुमधुर संकीर्तनध्वनिसे गूंज उठेगी। अतएव एकमात्र सहारा ॐ का ही लें, आश्रय ग्रहण करें प्रणव ॐ का ही, ॐ का ध्यान करें। कृष्णकी वंशी बनी हुई चिन्तन देहमें ही आप लीन हो जायेंगे। आत्मसंगीतकी 'ॐ' की मनोहारिणी सुमधुर ध्वनि श्रवण करनेका दृढ़ अभ्यास करें और शान्तिके परम रम्य आराममें ही चिर विश्राम करें। उपनिषदोंमें ब्रह्मकी उपमा 'हंस' (पक्षी) से दी गयी है। एक योगारूढ़ योगी, जो ओ३म् का ध्यान कर 'हंसारूढ़' हो जाता है, करोड़ों पापों अथवा कर्म संस्कारोंमें लिप्त नहीं होता। जो प्रातःकाल ओ३म् का जप करता है वह रात्रिकृत पापोंसे मुक्त होता है, जो रात्रिको ओ३म् जप करता है वह दिनके सभी पापोंसे छूट जाता है। जो प्रातः और सन्ध्याकाल प्रणव जपका अभ्यास करता है वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है, सद्यः मुक्ति प्राप्त करता है, सभी वेदोंके

स्वाध्याय और पाठका अक्षय पुण्य प्राप्त करता है और पञ्च महापापोंसे भी छूट जाता है। ब्रह्मके ओ३म् नाम अथवा प्रतीक रूप एकाक्षर ब्रह्म ओ३म् की महिमा ही ऐसी है। यदि आप भी इस ओ३म् नामकी महिमापर अटूट विश्वास और अविचलित श्रद्धा रख सकें तो संसार के जन्म, मरण वा आगमनके रूप सुदृढ़ बन्धन से भी सदाके लिये मुक्त हो जायेंगे और निरन्तर आत्म-स्वरूप में स्थित रहेंगे। किसी भी धर्मकृत्य अथवा अध्यात्म यज्ञके आदि, मध्य और अन्तमें ओ३म् मन्त्रका उच्चारण करनेवाला सफल मनोरथ हो पूर्ण "सिद्धि" प्राप्त करता है और श्री, विजय, विभूति और नीति उसकी चेरी बनकर रहती हैं।

# निमन्त्रण

रचयित्री—कुमारी शैलबाला रस्तोगी "शैल" गोरखपुर

हे भारत के भावी सपूत
उठ संभल २ तू आगे बढ़
दुखियों का बन आश्रय दाता
कातर नयनोंसे देख रही
तुझको तेरी भारत-माता
होकर सुभाष, गांधी, पटेल बन आजादीका अग्रदूत
हे भारत के भावी सपूत।
सत्याग्रह कवच सजा तन पर
उतरो रणमें बेखौफ़ सखे
बन वीर जवाहिरसा भर दो
नवयुवकोंमें नवजोश सखे
खादी का अति सम्मान बढ़ा दो कात कात कर अमित सूत
हे भारत के भावी सपूत।
इस छुआछूत को भगा भगा
दे क्रान्ति मचा जगती तल में
दे भ्रान्ति भगा दे क्लान्ति हटा
खिल उठे शान्ति आशा पलमें
मिल जाये 'शैल' भाई भाई
छूटे भय भीषण भेद भूत
हे भारत के भावी सपूत।

# सत्यव्रत

ले०—श्री नारायणप्रसादजी साधक श्री अरविन्दाश्रम पांडीचेरी

प्रस्तुत नाटक के लेखक श्री नारायणप्रसादजी साधक महामना योगिराज श्री अरविन्दके शिष्य हैं और पाण्डीचेरीके श्री अरविन्दाश्रम में अपनी साधना, तपस्या और योगाभ्यासमें लीन रहते हैं। आपका सत्यव्रत नाटक हिन्दीके आध्यात्मिक धर्मप्रवण साहित्यमें एक नवीन, मौलिक, सफल प्रयास है। सत्त्व, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि पात्रोंके परस्पर वार्त्तालाप (Dialogue) द्वारा बड़े मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद ढंगसे आपने मनुष्यके मनमें निरन्तर उठनेवाली नैतिकता और धर्म-सम्बन्धी शंकाओंका समाधान किया है। ग्रीसके मशहूर दार्शनिक सुकरातने भी अपने मन्तव्यों और सिद्धान्तोंको पात्रोंके परस्पर वार्त्तालापकी विधि (The method of Dialogue) द्वारा स्पष्ट किया है। नाटकमें कहीं-कहीं यदि सुन्दर गीतोंकी सृष्टि कर दी जाय तो स्टेजपर भी बड़ी सफलतापूर्वक खेला जा सकता है। लेखककी प्रतिभा उसके उज्वल भविष्यकी ओर स्पष्ट संकेत कर रही है।

—संपादक

## दूसरा अङ्क

### पहला दृश्य

स्थान — देवदत्तका घर

( पात्र )

विनय—सात्विक प्रकृतिका एक धनाढ्य युवक।

विनोद—विनयका समवयस्क मित्र ( राजसिक प्रकृतिका एक युवक )।

गोवर्धन—विनयका प्रतिवेशी और मित्र ( तामसिक प्रकृतिका एक युवक )।

देवदत्त—विनयके पितासे घनिष्ठ परिचित एक सात्विक विचारोंका पण्डित।

मृदुला—विनयकी पत्नी।

( खुली हवामें एक चबूतरेपर बैठकर देवदत्त कुछ दत्तचित्त होकर सोच रहा है )

देवदत्त सूर्य भगवान् अपनी दिनचर्या पूरी कर अस्ताचलको जा चुके हैं; पक्षीगण अपना दिनका काम पूरा कर अपने-अपने बसेरेमें लौट आये हैं; संसारके लोग भी 'यह मेरा, 'वह तेरा' का अपना-अपना हिसाब पूराकर घरको लौट रहे हैं; सन्ध्या भी जानेकी तैयारी कर रही है, अब वारी है अन्धकारकी—वह देखो वह सबको ग्रसनेके लिये कैसा राहूकी तरह गरजता चला आ रहा है। (एकाएक आकाशमें कुछ तारोंको देख कर ) ये हैं सप्त ऋषिगण, अन्धकार ! अभीतक तुझमें इतनी ताकत नहीं आयी कि तू इन्हें निगल सके- याद रख तू जितनी प्रगाढ़ताके साथ इन्हें ढकनेकी चेष्टा करेगा उतने ये तेरी छातीको चीरकर और दमकेंगे—यह है तपस्याका फल। इनके यशकी बत्ती आज भी वैसे ही जल रही है, इन्हींके गौरवसे गौरवान्वित होकर आज भी हम संसारमें किसीको अपने समान नहीं समझते।

( गोवर्धन का प्रवेश )

गो०—पण्डित जी ! पण्डितजी ! मैं आपसे एक बात पूछने आया हूं।

देवदत्त—( चौंक कर ) कौन गोवर्धन ? कहो कैसे आये ?

गो०—हिम्मतके हारे, दुःखके मारे—

देव—क्यों क्या हुआ है ?

गो०—जो हुआ है सो तो मेरा जी ही जानता है,

दूसरा सुननेवाला कौन है। गरीबोंकी कहानी सुननेकी किसे फुरसत है? ओह! मुझसा बदकिस्मत और कौन होगा?

देव—अजी तुम अपनेको बदकिस्मत समझते ही क्यों हो?

गो०—आप ही बताइये अपनेको बदकिस्मत न कहूं तो और क्या कहूं? नहीं होता यदि लड़का, इस बुढ़ापेमें, मेरे ससुरको तो आहा! उनका वह धानसे लदा हुआ खेत गोवर्धन ही तो पाता—(सिर ठोक कर) हायरे तकदीर! ओहो! मैंने कितने दिनोंसे आशा लगा रखी थी। भगवान्‌से न देखा गया—उनका धन मुझको मिले, यह उनसे नहीं सहा गया, दुखियोंको तड़पते देखनेमें ही इन्हें मज़ा आता है।

देव—अपने किये कर्मके लिये भगवानको दोषी ठहराना, तुम्हारा बड़ा अन्याय है गोवर्धन।

गो०—अन्याय कैसा? भगवान् ही तो हमलोगोंको सुख दुःख देनेवाले हैं; उसे दोष न दूं तो और किसे दूं?

देव—मैं तुमसे एक बात पूछता हूं। तुम जब किसी कामको करते हो, तब क्या तुम्हारे मनमें यह विचार उठता है कि उसे मैं नहीं कर रहा हूं भगवान् कर रहे हैं?

गो०- नहीं यह तो नहीं उठता - खाता मैं हूं तो भला यह जीमें कैसे उठे कि भगवान् खा रहे हैं।

देव—तब तुम स्वीकार करते हो न कि कर्मोंके करने वाले तुम हो, ईश्वर नहीं, तो फिर उसके भले बुरेका दायित्व भगवान्‌पर कैसे चला जाएगा? जैसा तुमने किया है वह भाग्य बनकर तुम्हारे सामने आया है और जैसा तुम करोगे वह भाग्य बनकर फिर तुम्हारे सामने आएगा—समझे?

गो०—हां।

देव—क्या?

गो०—पत्थर।

देव – आज तुम्हें हो क्या गया?

गो० —जिसे न घर चैन न बाहर—घुसते ही घरमें जिसे स्त्री बिच्छूकी तरह डंक मारनेको दौड़ती और निकलते ही बाहर जिसे पावनेवाले अजगरकी तरह मुंह बाकर खानेको दौड़ते हैं उससे यदि आप पूछें क्या हुआ है, तो वह क्या कहे। संसार मुझे सुइयां चुभो चुभो कर मार रहा है। अब तो सहा नहीं जाता पण्डितजी।

देव—तुम तमससे अभिभूत होकर ही 'हतोऽस्मी' कहकर चिल्ला रहे हो। दुःख आया है तो माथेपर हाथ रखकर रोना छोड़कर उससे निकलनेका उपाय ढूंढ़ निकालो।

गो०—उपाय मैंने ढूंढ़ निकाला है पण्डितजी और वही मैं आपसे पूछनेके लिये दौड़ा आया हूं। यदि आप हां करदें तो बस 'शुभस्य शीघ्र' उसे आज ही कर डालूं। जो रास्ता मैंने ढूंढ़ निकाला है उससे मेरा फूटा हुआ भाग्य अवश्य चमक उठेगा। आप बस 'हां' कर दें।

देव – किस बातके लिये मुझसे तुम हामी भराना चाहते हो?

गो० —साधु बननेके लिये।

देव —यह क्या? यह क्या कह रहे हो गोवर्धन?—साधु बनोगे पेटके लिये, रुपयेके लिये, दुनियाँकी ठोकरोंसे बचनेके लिये? हायरे भारत! अब तो तू अधोगतिकी शेष तहतक पहुंच गया—अब ठहर जा, और कहांतक नीचे गिरेगा? आर्य-ऋषिगण! देखते हो तुम अपनी सन्तानों की करतूत! देख सकते हो आकाशमें बैठे-

बैठे। अपने स्थानसे च्युत होकर गिर तो नहीं पड़ोगे ? गोवर्धन !

गो०—क्यों पण्डितजी इसमें आपको ऐसा कौनसा अनर्थ दिखायी देता है ?

देव—अनर्थ ? अनर्थ पूछते हो गोवर्धन ! इसमें क्या तुम्हें कोई अनर्थ दिखायी नहीं देता ? इसमें क्या तुम अपनी भलाई देखते हो ?

गो०—इसमें तो मुझे हर प्रकारसे अपनी भलाई ही भलाई दिखायी देती है।

देव०—वाह वाह, शाबास ! क्या सुन्दर रास्ता खोज निकाला है तुमने, बधाई है तुमको। और क्या कह रहे थे ? किस तरह इसमें तुम अपनी भलाई देखते हो इसमें, कहो जरा सुनें।

गो०—क्यों ? क्या आप नहीं देखते, किस तरह लोग साधु बनते ही साधुका बाना पहिनते ही देवतासे पूजित और सम्मानित होने लगते हैं ; और कोई स्वर्ग पायगा मरनेपर, साधु तो जीते ही यहीं स्वर्ग पा जाते हैं।

देव—यहीं स्वर्ग पा जाते हैं, यह तुमने कैसे ज़ाना ?

गो०—क्यों—क्या आप नहीं देखते भारतके नर-नारी साधुको देखते ही उनके पैरोंपर गिरनेके लिये दौड़ते हैं ; धनी-मानी कितने आग्रहके साथ चढ़ाते हैं सिरपर उनके चरण-रजको ! इतना ही नहीं, उनकी अबाध गतिकी ओर आँखें उठाकर देखिये, कितनी वेफिकरीके साथ पक्षियोंकी तरह करते हैं वे विचरण, जहां चाहते हैं कैसे चले जाते हैं वे, हवाकी तरह वेरोक-टोक। ढोनेके लिये न सिरपर बोझा है, न जलानेके लिये चित्तमें चिन्ता। आहा ! लोग पांव भी धोते हैं, खिलाते भी हैं और पैसे भी देते हैं।

देव—भगवान् सुनते हो तुम। सुन सकते हो ! कानों में उंगली तो नहीं डाल लोगे ! तुम इन बातों को कितनी फुर्तीके साथ कह गये। कहीं जरा रुके भी नहीं। इन बातोंको कहते तुम्हारा हृदय आनन्दके उच्छ्वास से कैसा नाच रहा था !

गो०—क्या मेरी बातें झूठ हैं ? आप इसे स्वीकार नहीं करते ?

देव—ठहरो गोवर्धन ! तुम्हारी बातोंका उत्तर देनेमें मुझे ज़रा समय लगेगा ; मैं इन बातोंका उत्तर देनेके लिये तैयार नहीं था।

गो०—अच्छा तो मैं जाता हूं;फिर आपसे भेंट करूंगा।

देव०—जाते हो तो जाओ, पर नीचे गिरनेके लिये अपने हाथोंसे कुआं खोदनेवाला नहीं बनना गोवर्धन।

गो०—कुआं कैसा ? मैं तो स्वर्गमें जानेके लिये सीढ़ियां बनाने जा रहा हूं और आप कहते हैं कुआं !

देव—तुम स्वर्गमें जानेके लिये सीढ़ियां बना रहे हो या नरकमें जानेके लिये रास्ता साफ कर रहे हो, यह तो भविष्य बताएगा;पर याद रखो तुम मनुष्यको ठग सकते हो, भगवान्को नहीं ठग सकते।

गो०—भगवान्को ठगना ? आप कैसी अटपटी बातें कर रहे हैं ; मैं तो भगवान्के लिये सब कुछ त्यागने जा रहा हूं और आप भगवान्को ठगने की बात कह रहे हैं !

देव—गोवर्धन ! जरा अपने हृदयके भीतर पैठ कर देखो तो तुम्हारे अन्दरकी वृत्तियां भगवान् के लिये तड़प रही हैं, या भोगकी वस्तुओंको जुटानेके लिये ; साधनाके कटीले पथपर चलने के लिये आतुर हो रही हैं या जीवन संग्रामसे भागनेके लिये---

गो०—ऐं ये बातें तो मेरे मनमें कभी नहीं उठीं। साधु बननेमें भी कोई दोष हो सकता है, यह मेरी धारणामें कभी नहीं आया।

देव—दोष ही नहीं, यह तो विश्वासघात करना है, और विश्वासघात करनेसे बढ़कर कोई दोष हो ही नहीं सकता।

गो०—(रूखे स्वरसे) किससे विश्वासघात करना है ?

देव—पहले, अपने आपसे, अपनी आत्मासे ; फिर उससे जिसका बाना पहन कर तुम दूसरोंके पास हाथ पसार कर खड़े होगे और फिर उससे जो तुम्हें उच्च, महान्, सत्यनिष्ठ समझ कर तुम्हारा चरण छूनेके लिये आवेंगे।

गो०—यह आप क्या कह रहे हैं ?

देव—सबके हृदयमें एक ज्योति जल रही है जो सचका सच और झूठका झूठ कह देती है, उससे पूछो हम क्या कह रहे हैं ?

गो०—तो फिर साधु किसे बनना चाहिये ?

देव—उसे जिसके भीतर पुकार उठी है, जिसकी अन्तरात्माने उसे सब कुछ त्यागनेके लिये विवश कर दिया है, जिसे भगवान्के बिना जीवन भारसा लगने लग गया है। (इसका उत्तर खोजनेके लिये गोवर्धन इधर-उधर आँखे फाड़-फाड़ कर देखता है)।

देव—खोजो गोवर्धन! अपने भीतर खोजो—क्या अपने भीतर तुम उस पुकारको पाते हो ? अगर नहीं पाते तो उधर पांव मत बढ़ाओ—यह वह आग है जो तुम्हें जला देगी, यह वह चीज है जो तुम्हें मौतको जीतनेवाला बनानेके बदले तुम्हें मृत्युके मुखमें ले जाकर खड़ा कर देगी।

गो०—आप तो क्रोधके वश अटपट बके जा रहे हैं।

देव०—तुम इसे क्रोधीकी सनक कहो या पागलका प्रलाप पर मैं जो उचित समझ रहा हूं वही कह रहा हूं।

गो०—अबतक मेरी आंखोंके सामने एक साफ, सीधा खुला हुआ रास्ता था, आपने मुझे दुविधामें फेंक दिया।

देव—यह दुविधा शुभलक्षण है—इससे तुम्हारा मंगल होगा। जाओ, घर जाकर मनको शान्त कर सोचो, मैंने जो कहा है उसपर विचार करो। जो सोच विचार कर काम करता है उसे पछताना नहीं पड़ता।

गो०—सोचते-सोचते मैं थक गया ; आपही बताइये मैं क्या करूं ?

देव—पहले तमसे रजमें उठो, फिर धीरे-धीरे सत्त्वमें उठनेकी चेष्टा करना। नये उद्यमसे छाती कस लो और कर्मके स्रोतमें अपनेको बहा दो। इस कर्ममय जगतमें खाली बैठे रहनेसे काम नहीं चलता।

गो०—खाली बैठे रहनेसे काम नहीं चलता, यह तो मैं भी जानता हूं, पर मुझसे कुछ हो ही नहीं सकता, मेरा किसी काममें मन ही नहीं लगता, मैं क्या करूं ? भगवान्ने मेरा ऐसा स्वभाव क्यों बनाया ?

देव—इसके लिये तुम्हें भगवान्को दण्ड देना ही चाहिये, पर गोवर्धन, संसारके दुःखद्वन्द्वोंसे बचनेका यह उपाय नहीं है। मैं साफ शब्दोंमें कहे देता हूं कि साधुका भेष बना लेनेपर भी तुम वही धोबीके कपड़े ढोनेवाले पशुके पशु ही बने—

गो०—बस बस रहने दीजिये आपका उपदेश—और जहर मत उगलिये, अब तो जो जीमें ठाना है

वह करके ही रहूंगा जो भाग्यमें होगा सो होगा।

( उत्तेजित होकर प्रस्थान )

देव०—( गंभीर होकर ) जीवनमें एक ही अच्छी सूझ मनुष्यको महान बना देती है और एक ही कलुषित कर्म उसके सर्वनाशका कारण बन जाता है। क्या कहा जाय—चित्तमें चंचलता है, बुद्धिमें अनिश्चय है, मनमें निराशा है, प्राणमें लालसा है, शरीरमें तमस् और अकर्मण्यता है और वह चला है साधु बनने—हा भगवान् !

( चिन्तित भावसे प्रस्थान )

( क्रमशः )

# सात्विकजीवन-ग्रन्थमाला

## ब्रह्मचर्य नाटक

प्रथम पुष्प—रङ्गमञ्च पर सफलता-पूर्वक अभिनीत यह नाटक अपने ढङ्गका निराला और बेजोड़ है। हमारे आन्तरिक असुर किस प्रकार पराजित हो सकते हैं. हम किस प्रकार अपनी दुर्वासनाओंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं, इसका विवरण यदि आप प्राप्त करना चाहते हों तो इस पुस्तकको अवश्य देखिये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य केवल ॥)

## आध्यात्मिक शिक्षावली

द्वितीय और तृतीय पुष्प—आध्यात्मिक विकासके लिये इनसे अच्छा ग्रन्थ हिन्दीमें नहीं है। हिन्दू-धर्म और अध्यात्मवादका ज्ञान थोड़ेमें प्राप्त करनेके लिये ये पुस्तकें सर्वोत्तम हैं। इन पुस्तकोंमें गागरमें सागर भर दिया है। आज ही मंगा कर पढ़िये। कागज छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य प्रथम खण्ड ।॥) द्वितीय खण्ड ।॥)

## सचित्र हठयोग ( सजिल्द )

चतुर्थ पुष्प—( आसनोंके ३८ चित्रों सहित )—आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा एवं यौगिक क्रियाओं द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ले जानेवाली अनुपम और प्रामाणिक पुस्तक। इस एक ही पुस्तकसे जो लाभ उठाया जा सकता है, वह अन्य कई पुस्तकें पढ़कर भी नहीं उठाया जा सकता। इसके लेखक स्वयं एक महान् योगी हैं। इस विषयकी ऐसी उपयोगी पुस्तक दूसरी नहीं है। मूल्य केवल १।), स्थायी ग्राहकोंसे १)

## स्वामी शिवानन्दजी की जीवनी और उनके उपदेश ( अंग्रेजीमें )

पञ्चम पुष्प—प्रस्तुत पुस्तकमें श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराजकी जीवनी और उनके उपदेशोंका सार संगृहीत है। स्वामीजीकी जीवनी तथा उनके उपदेशोंका एक ही स्थानपर संग्रह करनेका अभिप्राय यही है कि लोग उनके जीवनकी घटनाओंको उनके उपदेशोंके प्रकाशमें देखें और अपने जीवनको भी तदनुकूल बनानेका प्रयत्न करें। यह पुस्तक विशेषकर उन लोगोंके लिये लिखी गयी है जो स्वामीजीके सभी ग्रन्थ नहीं खरीद सकते। पुस्तकमें प्रयुक्त भाषा सरल तथा सुबोध है। साधारण अंग्रेजी जाननेवाला व्यक्ति भी अच्छी तरह समझ सकता है। बीसों चित्रोंसे सुशोभित सजिल्द पुस्तकका मूल्य केवल १॥)

**स्थायी ग्राहकों तथा थोक खरीददारोंको पर्याप्त कमीशन दिया जायगा**

प्रकाशक—

**जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड**

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट कलकत्ता। शाखा—"प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# शास्त्रार्थ की दुर्दशा

ले० - आचार्य श्री इन्दिरारमण शास्त्री

( गतांक से आगे )

यह पूछा जा सकता है, ऐसा क्यों हुआ ? शङ्करादि आचार्य तत्कालीन जनता को समयोपयुक्त आपदुद्धारक चोदना क्यों न दे सके ?

इस प्रश्नका उत्तर पहले सूचित किया है। उसका खुलासा यह है कि शङ्कर-प्रभृति आचार्योंने भी कुमारिल भट्ट-द्वारा प्रवर्तित कट्टर जातिवाद, जन्मसे अस्पृश्यता, शास्त्र-प्रामाण्यवाद, वेदके अपौरुषेयत्व तथा स्वत: परम-प्रामाण्यवाद, जैन-बौद्धादि-स्वजनविद्वेष, धर्मप्रचारमें बलप्रयोग, स्वमत-विरोधि-स्वदेशबन्धुओंकी हिंसा, शूद्र-संज्ञित समाज-सेवक भारत पुत्रोंको वेद-श्रवण-मात्र आदिके लिये भी प्राण-पीड़क नृशंस दण्ड देनेकी व्यवस्था, और निरीह-निरपराध-पशुहत्यामय यज्ञ-यागादिके धर्मत्व आदि बातोंको स्वीकार कर लिया था। ये सभी, शास्त्रीय सिद्धान्तरूपसे स्वीकृत बातें ऐसी थीं जिनके विरुद्ध कोई स्वतन्त्र चोदना, चाहनेपर भी, वे आचार्य दे नहीं सकते थे। जब शङ्करादि आचार्योंने अपने स्वतन्त्र विचारोंको पृथक् स्वतन्त्र नये शास्त्र के रूप में प्रकाशित करने का साहस नहीं किया, प्राचीन वेद-शास्त्रके भाष्यके व्याजसे ही उनका प्रचार करना आवश्यक-अपरिहार्य समझा और सामाजिक व्यवहार वा लोकाचारमें भाट्टनय ( कौमारिल-मत)को ही ठीक मान लिया, तब वे उन स्वीकृत रूढ़ियों के विरुद्ध, तत्काल आवश्यक कोई स्वतन्त्र चोदना (कर्म प्रवर्त्तना ) करने में अगत्या असमर्थ हो गये।

इससे अनेक अनिष्ट हुए, (१) प्राचीन शास्त्रार्थकी दुर्दशा, क्योंकि उन नवीन पन्थकारों ने भी अपने मत में जनश्रद्धा को आकृष्ट करनेके उद्देश्य से, वेदादि-वचनोंका अन्यथार्थ करके ही बहुधा अपने मनोनीत और प्रतिपित्सित विचारोंका प्रमाणन किया, जिससे वेद-शास्त्रके आर्षभाव का विप्लव हुआ ; (२) अनार्ष रूढ़ियाँ तोड़ी न जा सकीं, फलतः गृह-विग्रह और सङ्घभेद ( समाज-विघटन ) के हेतुभूत, जातिवाद, अस्पृश्यता, अन्त:सम्प्रदायविद्वेष आदि, दूर नहीं किये जा सके ; (३) अस्पृश्य वर्गके दमन, और जातीय-अहङ्कार-तिरस्कारका भाव अधिक प्रबल हुआ, जिसके विषम परिणामसे एक ओर तो अखिल भारतीय आर्य-संघटन वा हिन्दूसङ्घ बनना असम्भव हो गया और दूसरी ओर छुई-मुई जातीयताके कारण, मुसलमानों-द्वारा मुंहपर बधने का पानी डाल देने ऐसी ज़रा-ज़रा सी बातके लिये भी जातिच्युत किये गये द्विज-सन्तान और इधरसे दलित, उत्पीड़ित, तिरस्कृत हुए, दुत्कारे गये, शूद्र लोग मुसलमान बन जानेपर लाचार होते गये, जिससे हिन्दू-जनबल और सङ्घशक्तिका समधिक ह्रास होता रहा तथा आक्रमणकारी बाह्य-वर्गकी संख्या और शक्ति, अनुदिन प्रबल होती गई ; अन्ततः हिन्दुस्थान, म्लेच्छ शासित ग़ुलाम होकर रहा ; और अब तक पराधीन बना है।

यह बात कथमपि विश्वसनीय नहीं है कि देशमें उतनी बड़ी घटनायें घटीं, म्लेच्छोंके खण्डप्रलयङ्कर आक्रमण हुए, भारतीय राज्यचक्र परिवर्त्तित हो गया, पर हमारे तत्कालीन आचार्योंको उसका पता न लगा ! अवश्य ही वे सब बातें उनको मालूम हुईं, आक्रमणकारी विधर्मियोंके अत्याचारके शिकार और भुक्तभोगी भी उनमें बहुत थे। व्यक्तिगतरूप से ब्राह्मणों और साधु-सम्प्रदायों के कुछ लोगों ने मुसलमानों द्वारा जलाये

जाते हुए वेद-शास्त्र के महाग्रन्थों की रक्षा, बड़े साहस और कष्टसहन से की। जब मुसलमान लुटेरे 'क़त्ले आम' करने लगते थे, तब अनेक तपस्वी ब्राह्मण और साधु-संन्यासी, वेदादि पुस्तकोंको पेट-तले लपेट कर, लाशों के बीच मृतवत् (मरे हुए का स्वांग करके) पड़ जाते और क़ातिलों के निकल जानेपर, पुस्तकोंको सुरक्षित स्थानोंमें छिपा रखते थे। संस्कृत वाङ्मय और वेदादि-ग्रन्थों की रक्षा के लिये उनकी पुस्तकें लेकर बहुत ब्राह्मण और साधु, बीहड़ जंगलोंमें कुटीरें और हिंस्र-जन्तुमय पहाड़ियोंमें गुफायें बनाकर, घोर कष्ट-सहनपूर्वक तबतक दिन काटते रहे, जबतक आपत्काल बीत नहीं गया।

व्यक्तिगत-रूप से वा एक एक टोली में, हिन्दू-आर्य-महिलाओं—विशेषतः राजपूत-वीराङ्गणाओं—ने म्लेच्छाक्रमणों के समय जो जौहर, साहस और तेजस् दिखाया, अन्ततः धधकती चिताओं, प्रखर-धारा नदियों और कूप-तालाबों में निर्मोह कूद कूद कर, सतीत्व-रक्षाके लिये तृणवत् प्राण त्याग दिये, उससे भारतीय आर्यसंस्कृति की मर्यादा आज भी लोकोत्तर है।

देशभक्त हिन्दूसन्तानोंने एक एक करके और कुछ संगठित टोलियों द्वारा, प्रायः बराबर ही, आक्रमण-कारियों से जबर्दस्त लोहा लिया। राजपूत, मराठे, सिक्ख आदि वीर भारतपुत्रों ने आक्रमण से राज्य-करण—काल तक, प्रायः कभी नहीं मुसलमानों को पूरा चैन से रहने दिया।

साधु-साम्प्रदायिकों ने भी अपने अपने ढंग से आक्रमणकारी विधर्मियों के पराजय के लिये बहुत काम किये; प्रत्युत यों कहना चहिये कि शाङ्कर—सम्प्रदाय से लेकर कबीर पन्थ तक, सन्त-सम्प्रदायों का आविर्भाव, भारतमें म्लेच्छाक्रमण से उपस्थित विषम समस्याओं के कारण ही हुआ। जब देशमें वैदेशिक विधर्मियों के आक्रमण, उत्पात, कुशासन, बलात्कार, राज्यस्थापन और साधिकार अस्तित्व से अत्रत्य जान, माल और इज़्ज़त की असीम हानि हुई, देश गुलाम बन गया, जातिच्युत और दलित हिन्दू लोग, मुसलमान बन कर दुश्मन की सङ्घशक्ति को बढ़ाने लगे, हिन्दू धर्म, आर्य-वाङ्मय और आर्यसंस्कृति का ह्रास होने लगा, इस प्रकार भारतीय सर्वस्व नाश का पूरा सामान हो गया, तब यह असम्भव था कि इतने बड़े देश में, उसकी कुछ भी प्रतिक्रिया न हो। उसके विरुद्ध प्रबल प्रतिक्रिया-भाव का उठना ही स्वाभाविक था। फलतः नाना सन्त-सम्प्रदायों और पन्थों का उदय हुआ।

उनमें कुछ सम्प्रदायोंने केवल मठ, मन्दिर तीर्थ-स्थान, संस्कृत-ग्रन्थ गो-ब्राह्मण आदि की रक्षा करना ही अपना धर्म समझा। उनके लिये उन्होंने 'अखाड़े' (साधु-सैनिकसङ्घ) क़ायम किये; वे लोग देश के मुख्य मुख्य स्थानों पर बड़े बड़े मठ बना कर दल-बलके साथ रहते, और ज़मात बांध कर तीर्थ-स्थानों में भ्रमण किया करते, और उसी सिल-सिलेमें देश की स्थिति का अनुसन्धान तथा तदनुसार कर्तव्य का निर्धारण करते थे। [आज भी देश में साधुओं की ज़मातें घूमती हैं, बैकुण्ठपुर-पैकौली के पवहारी जी और गुज़रात के काठिया लोगों की ज़मातों का घूमना प्रसिद्ध है, पर, पहले ये ज़मातें जनता की स्थिति को जांच, तदनुसार उपदेश आदि के लिये घूमती थीं; अब, भोजन और पूजा लेनेके लिये घूमती हैं। ये ज़मातें रसद और पूजा की रकम वसूल करने के लिये जनता को और मठाधीशों को कभी कभी बहुत सताती हैं। महन्तोंको तो बांध तक देते हैं]। इस प्रकार, जहां आक्रमण-कारियों का उपद्रव होता था, वहां उसे रोकते और उसके लिये आवश्यकता होने पर उनसे लड़ भी जाते थे। वैसे अखाड़िये साधु लोग 'नागा' कहे जाते थे; उनके पास

शक्ति ( सांग ), गदा, परशु ( फ़रसा ), तलवार, चक्कर, बाण आदि शस्त्र होते थे। आज भी 'नागा' साधु-सङ्घ और उनके अखाड़े हैं और वे लोग अब भी सिक्खों के कृपाण-धारण की तरह, चक्कर आदि कुछ शस्त्रों को अपने धार्मिक 'बाना' के रूप में धारण किये रहते हैं; कुम्भ चढ़ावों के अवसरों पर, नासिक, प्रयाग, हरद्वार आदि में जो उनके जलूस निकलते हैं, उनमें ये चीजें देखी जाती हैं। पर, अब वे संस्कारशेषरूप रह गये हैं; उनका कोई सामाजिक वा दैशिक उपयोग नहीं है। हिन्दू धर्मस्थान आदिकी रक्षा के लिये आक्रमणकारियों का सशस्त्र मुकाबला करनेवाले अखाड़िये 'नागा-संघ' प्रमुखरूप से शङ्कर सम्प्रदायमें हुए; जिनके अनुयायी अब तक 'दशनामीसन्यासी' के रूप में शिष्ट ( बचे ) हैं।

हिन्दुस्तान में मुस्लिम-समस्या की प्रतिक्रिया में जो दूसरे प्रकार के सम्प्रदाय वा पन्थ निकले, उनमें वैष्णव सम्प्रदाय प्रमुख हुए। जब छिट-फुट ( असंघटित रूपमें ) लड़नेवाले राजाओं और जन-टोलियोंके संग्राम-पुरुषार्थ से और दशनामी सन्यासियों के सशस्त्र विरोध से भी, आक्रमक मुसलमान, यहां से उखाड़े खासे वा निकाले न जा सके और उस प्रकार से हिन्दुत्व का योग-क्षेम असम्भव होगया तब वैष्णव मत का उद्गम सहज ही होना था। **क्यों कि यहां** मुसलमानों के रह जाने से हिन्दूधर्मकी हानि, देवमन्दिर का विध्वंस, हिन्दूसन्तानों का विधर्मीकरण आदि अनिष्ट काम हो रहे थे, जिससे हिन्दी संस्कृति, आर्य-धर्म, आर्षवाङ्मय-प्रभृतिके विनाश द्वारा हिन्दूजाति का सर्वशः विलोप हो जाने का भय उपस्थित हुआ और तज्जन्य हिन्दू मुस्लिम संघर्ष बराबर चल रहा था; देश में नित्य अशांति और विभीषिका फैल गई थी; सुतरां वैसे अवसर पर यहां एक ऐसे दल का प्रकट होना अनिवार्य था जो हिन्दुत्व के योग-क्षेम के लिये विधायक कार्यक्रम चलावे।

वैष्णव-सम्प्रदायों ने संघर्ष विरोध और बहिष्कार के मार्ग का त्याग किया। उन्होंने सुधार, संग्रह, संघटन और एकता के रचनात्मक कार्य-क्रम प्रवर्तित किये। कुछ सन्तों ( तुलसीदास, समर्थ गुरु रामदास-प्रभृति ) ने युद्धोद्योग द्वारा भी विधर्मियों के नाशका प्रयत्न किया था। उनके मुख्य कार्य, निम्न-निर्दिष्ट प्रकार के थे—

( १ ) देश में घूम कर मौखिक उपदेश, पुराण-कथा-प्रवचन द्वारा हिन्दुओं में अपने धर्म-कर्म, संस्कृति, आर्यत्व, भाषा, वाङ्मय आदि के योग क्षेमार्थ कर्त्तव्यका प्रचार करना।

( २ ) मुसलमान बन चुके हुए हिन्दुसन्तानों को पुनः शुद्धि-संस्कार-द्वारा हिन्दुत्व में दाखिल करना, और बचे हुए हिन्दुओं को मुसलमान होने से रोकने के लिये प्रयत्न करना।

( ३ ) शूद्रों, अछूत माने हुए हिन्दुओं, और मुसलमानोंको भी चेला बनाकर अपने सम्प्रदाय-सङ्घमें लेना और द्विज शिष्यों के साथ एकरूप ( समान भाव से ) रखना।

( ४ ) विविध देशी भाषाओं में सरल सुबोध ग्रन्थ लिख कर हिन्दुओंमें आर्यत्वाभिमान, स्वधर्मरक्षा के भाव, देश, राष्ट्र समाज-प्रभृति के योग-क्षेमार्थ मर मिटने के साहस को जगाना, और राम रावणादि युद्ध वर्णन के बहाने, वानरी सेना के सदृश संघटित होकर, राक्षसद्वारा अपहृत सीता-माता की तरह, म्लेच्छा-क्रान्त भारतभूमाता के उद्धार के उद्देश्यसे, प्रसुप्त हैन्दव-सङ्घ-शक्ति को उद्बुद्ध करने के लिये उत्तेजन देना।

( ५ ) सर्वधर्म समन्वयके, सब मज़हबोंकी तात्त्विक एकताके, प्रचार से, उन सब जातियोंमें मेलका भाव भरना, जो अब किसी भी प्रकारसे भारतवर्ष में बस चुकी थीं।

( ६ ) शक, यवन, दरद, बह्लीक, इजिप्ट तक जाकर तत्रत्य विधर्मियों अनार्यों और कुजातियों को भी हिन्दू बनाना।

वैष्णव-साधुओं के उपर्युक्तविध प्रचार, आन्दोलन और कार्य-प्रयोग से इतना तो अवश्य हुआ कि हिन्दू क़ौम सर्वशः मुसलमान होनेसे बच गया। अन्यथा मुसलमानोंने जिन देशोंपर आक्रमण किया, उन सब को सम्पूर्णतः मुसलमान बना डाला था। यदि हिन्दुस्थान में साधु-सम्प्रदायों का उद्‌गम न हुआ होता, तो स्यात् यहां भी सबके सब मुसलमान बना डाले गये होते; यह समस्त हिन्दुस्थान, उसी समय पूरा पाकिस्तान बन गया होता और आज क़ायदे आजम जिन्ना को उसके लिये परेशान होना नहीं पड़ता।

परन्तु हिन्दू-सम्प्रदायों के सभी कार्यक्रम केवल आत्मरक्षणात्मक थे ; पराक्रमणात्मक नहीं। उन्होंने हिन्दू-क़ौम, हैन्दव धर्म, वेद-शास्त्र, तीर्थस्थान, गो-ब्राह्मण आदि की रक्षा मात्र के लिये उद्योग किया ; आक्रमण करते समय ही वैदेशिक विधर्मियों को इस देश में प्रवेश करने से रोक देने, प्रवेश कर चुकने पर भी मार भगाने और यहां उनके बस ( आवाद हो ) जाने के बाद, हिन्दुत्व में पूर्णतः मिला लेने का प्रयत्न, हिन्दूराजाओं, पुरोहितों, महाजनों ( जनता ) और मराठे, सिक्ख-प्रभृति विजेता वर्गों और साधु-सन्तों ने भी नहीं किया। ये सभी काम, व्यक्तियों, टोलियों, और राजाओं ने किये ; पर संघटित तथा व्यापक-रूप से नहीं। साथ ही आत्मरक्षा के सिवा, मुस्लिम-निर्वासन वा उनके हिन्दूकरण का दृढ़ सङ्कल्प और अटल उद्देश्य इनके सामने नहीं था। वस्तुतः उनके सामने कोई उच्च और सार्वदेशिक ध्येय नहीं था। अन्यथा खास वीरवर मराठों के देश में निज़ाम-राज्य, और उद्‌भट सिक्खोंके नाक-तले पञ्जाब में मुस्लिम प्रावल्य न होता।

आरम्भ में प्रत्येक आविर्भूत साधुसम्प्रदाय, जातिवाद और अस्पृश्यता का विरोध करता था ; प्रत्युत इसी के लिये उसका आविर्भाव होता था, पर अनन्तर परिग्रह तथा राजाश्रय में फँस कर संस्था वा मज़हब बन जानेपर अपने उद्देश्य से च्युत और कर्त्तव्य से विमुख हो जाता था ;

काल-क्रम से, जब वह अकर्मण्य होता, तब उसमें प्रगति-विरोधी दुर्जन घुस जाते और निरसनीय जातीयता आदि को ही उसमें डाल देते हैं। बौद्ध, जैन, शाङ्कर, वैष्णव-प्रभृति सभी सम्प्रदायों का इतिहास ऐसा ही है। ये जब जिस जातिवाद को उखाड़ने चले, उसमें यदि स्वयं ही फंस गये, तब उद्देश्यकी सिद्धि कैसे हो। फिर तो अपनी मनमानी बातों को भी प्राचीनतम वेद-शास्त्रों द्वारा सनातन धर्म और सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने की धुनमें शास्त्रार्थ की दुर्दशा करना आवश्यक हुआ।

उपर्युक्त बातें इस प्रश्न के उत्तर में कही गई हैं कि, विधर्मियों के आक्रमण के समय से अबतक उनका विरोध और संघर्ष किसी-न-किसी रूप में बराबर चल ही रहा है, तब भी म्लेच्छ, यहां क्यों बने हैं ?

उत्तर यही है कि सब उपाय किये गये; पर जातिवादका नाश बस (लग-भिड़) कर नहीं कर डाला गया। कोई अखिल भारतीय महत्तम और व्यापक उद्देश्य सामने नहीं रखा गया ; विराट् हिन्दुत्व के संघटन और अभ्युदय को परम ध्येय नहीं बनाया गया ; पारस्परिक अस्पृश्यता का प्रध्वंस कर हिन्दू समाज में रक्तिक एकता, महाप्राणता और समयोगक्षेमता का प्रबल सञ्चार नहीं किया जा सका ; और सभी अनर्थोंके मूलभूत, सभी फसादोंकी जड़, शास्त्रश्रद्धा-जड़ता का 'वेदवादावलेप' का, रूढ़िभक्ति-मूढ़ग्राह का त्याग नहीं किया जा सका। प्रत्युत उन्हीं के समर्थन में सच्छास्त्रार्थ की भी दुर्दशा की गई, जो अब तक ज़ारी है।

# मृत्यु-विज्ञान

ले०—श्री गंगाप्रसाद गौड़ "नाहर"

इस लेखके विद्वान् लेखक श्री गंगाप्रसादजी गौड़ "नाहर" उन लेखकोंमें हैं जो विज्ञापनकी दुनियांसे दूर रहकर सदा साहित्यिक साधनामें लीन रहते हैं। आप प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्र के विशेष मर्मज्ञ हैं; और इस विषयमें, अन्वेषणात्मक, गम्भीर अध्ययन है। सफल निबन्ध लिखनेके अतिरिक्त आप कहानी और कविता भी लाजवाब लिखते हैं। मनुष्यके सामने मृत्यु सदासे एक पहेली रही है, उसके हृदय में मृत्युके रहस्यको जाननेकी स्वाभाविक जिज्ञासा रही है। आपने सात्विक-जीवन में श्रृंखलारूप में प्रकाशित मृत्यु-विज्ञान शीर्षक लेख में मृत्यु के रहस्योंका बड़ी सफलतापूर्वक समुद्घाटन किया है!

— संपादक।

श्रीमद्भगवद्गीता के 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय'''इत्यादि का अर्थ यह समझना कि महाप्रयाण के बाद मनुष्य तुरन्त ही दूसरी योनिमें चला जाता है, भ्रमपूर्ण एवं मिथ्या है। बल्कि उसका आशय यह है कि जीवको इस जगतमें, इस जगतके लिये व्यवहारोपयोगी जैसा स्थूल शरीर प्राप्त है, वैसा ही, उसी प्रकारका वियत् शरीर भी है—जिसके सात कोश हैं। मनुष्य प्रयाण-कालमें, स्थूल शरीर और वियत् शरीरके सात कोशोंमें तीन कोश, सब मिलाकर चार शरीर यहां छोड़ जाता है। तथापि वियत् शरीरके चार उप शरीर तथा प्राणमय शरीरकी सहायतासे वह जीव अन्तरालके पितृलोकमें जा रहता है। कुछ कालोपरान्त वियत् शरीरके चार उपशरीर नष्ट हो जाते हैं, तब वह प्राणमयकोश (Astral body) में जाता है और अपने कर्मानुसार उच्चसे उच्चतर महर्लोकादि लोकों में रहकर अपनी उन्नति कर सकता है, वा निम्नसे निम्न भूलोककी योनियोंमें पतित होकर अधोगति को प्राप्त होता है।

प्राणमय शरीरमें रहता हुआ मनुष्य, कभी-कभी अपने ही मृत स्थूल शरीरमें, यदि वह किसी प्रकारसे नष्ट न ही गया हो, और कभी किसी ऐसे दूसरे शरीरमें, जिसका शरीरी उसे अभी-अभी छोड़ गया हो, प्रवेश करनेके लिये वाध्य होता है। नीचे कुछ सत्य घटनाओं का उल्लेख किया जाता है, जिनसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है।

१—हाला और मितगोल दो बालिकाएँ थीं। दोनोंमें परस्पर बड़ा स्नेह था। हाला एक किसानकी लड़की थी और बड़ी सुन्दरी थीं। मितगोल एक कालेजके प्रिन्सपलकी कन्या थी और विदुषी थी। एक मोटर दुर्घटनासे दोनों एक साथ गतप्राण हुईं। हालाके शरीरमें कोई चोट नहीं थी, पर मितगोलका शरीर ज़ख्मोंसे छिन्न-भिन्न हो गया था। आश्चर्यकी घटना यह हुई कि किसी अदृश्य शक्तिने मितगोल के प्राणमय शरीरको पकड़कर हाला के शरीरमें डाल दिया, हाला जी उठी। परन्तु हालाका यह केवल स्थूल शरीर था, उसमें प्राणात्मा तो मितगोलका था। दोनों कन्याओंके बाप उन्हें देखने आये। हालाके बापने हालाको जीता पाया, और स्वभावतः उसे हाला कहकर पुकारा। इस पर उसने कहा मैं हाला नहीं हूं, मितगोल हूं,। मितगोल के पितासे उसने कहा—'मैं मितगोल हूं,हाला नहीं। उसके सामने दर्पण रखा गया। अब तो शीशेमें अपना मुंह देखकर वह अकचकाई। तब मितगोलने अपने पितासे पूछा, 'यह क्या हुआ?' उन्होंने कुछ काल विचारमें डूब कर कहा—'यह पुनर्जन्म है।' मितगोलने पूछा—यह कैसा पुनर्जन्म? मैं हालाके शरीरमें कैसे चली गयी।' उन्होंने कहा—'यह तेरा नवशरीर

ग्रहण है। इसके बाद एक दिन कालेजके अध्यापकों और विद्यार्थियोंके सामने मितगोलने 'स्पिनोजाका तत्त्वज्ञान' विषयपर व्याख्यान देकर यह सिद्ध किया कि 'मैं ही मितगोल हूँ'। तब सबको विश्वास हुआ कि यह शरीरान्त हुआ है। अन्नमय शरीर तो हालाका ही था, पर उसको मितगोलके प्राणमय शरीरने अधिकृत कर लिया था।

२—सन् १६१४–१८ के योरोपीय महायुद्धमें डान और बाब नामके दो आदमी लड़ाई पर गये थे। ये दोनों एक दूसरेके बड़े प्रेमी मित्र थे। लड़ाईमें इनके मारे जानेकी खबर भी छप चुकी थी। बाबके शरीर पर कोई ज़ख्म नहीं था, पर डानका शरीर छिन्न-भिन्न हो गया था। किसी अदृश्य शक्ति ने डानका प्राणात्मा बाबके शरीरमें डाल दिया और डान-बाब जी उठा।। डान अपने माँ-बापसे मिलने गया, पर वे उसे कैसे पहचानते ? डानकी मांने कहा, 'मेरा डान सांवला था और तुम तो गोरे हो इत्यादि' पर जब डानने जीवनकी पिछली सब बातें बतायीं, और उसके माँ-बापने देखा कि उसका स्वभाव, बोलनेका ढंग और रहन-सहन तो अपने डान जैसा ही है, तब उन्हें निश्चय हुआ कि परकायमें उसका डान ही पुनर्जीवित हुआ है।

ऐसा भी है कि प्राणमय शरीरमें रहता हुआ मनुष्य संसारका अधिकाधिक अनुभव प्राप्त करनेके लिये, इस भूलोकमें पुनः आनेकी स्वयं इच्छा करता है, और किसी जीवित मनुष्यकी कायामें ही आवेशरूपसे प्रगट हो कर, अपनी साध पूरा करता है। इस प्रकार की, इच्छा करनेवाली गत आत्माएं भली भी होती हैं और बुरी भी। बुरी आत्माओं के जीवित मनुष्योंपर आवेश आनेका ही दूसरा नाम 'प्रेत लगना' 'भूत लगना' आदि हैं। किन्तु भली आत्माएं उपद्रवी नहीं होतीं, और न उनसे किसी प्रकारकी हानिकी सम्भावना ही की जाती है। भली आत्माओंके परकाया प्रवेशके कुछ दृष्टान्त निम्नलिखित हैं :—

१—एक मराठी भाषा पढ़ी-लिखी स्त्री थी, जिसके पति ग्रेजुएट थे। उस स्त्रीके सोलहवें वर्षमें ऐसी घटना हुई कि उसके शरीरमें एक अन्य स्त्रीके जीव का प्रवेश हुआ जो संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं में पारङ्गत थी। उस स्त्रीके शरीर में इसका प्रवेश संध्याके ६ बजेसे लेकर प्रातःकाल ६ बजेतक रहा करता था। इस आवेशावस्थामें वह अपने पतिसे अंग्रेजी और संस्कृतमें बातचीत करती और न्याय शास्त्रके गूढ़ तत्त्वों पर अपना मन्तव्य प्रगट करती थी। इस प्रकार उसमें जो उस दूसरी आत्माका प्रवेश हुआ करता था, वह कुछ विशेष अनुभवोंको प्राप्त करनेके लिये ही हुआ करता होगा।

२—पूनेमें स्वर्गीय गोंदवलेकर महाराजके शिष्य श्रीहरिभक्तिपरायण भाऊ साहेब केतकर रहते हैं। इनकी देहमें श्रीगोंदवलेकर महाराजकी आत्मा आकर रहती है, और बातचीत करती है।

३—सतारामें श्री मुलेजी महाराज बड़े अच्छे सत्पुरुष हैं। इनकी देहमें भी इसी प्रकारसे महान् सिद्ध आकर बातें करते हैं।

४—सावंतवाड़ीमें १२ वर्षकी अवस्थाके एक पुरुष सीताराम महाराजके नामसे प्रसिद्ध थे। उनके शरीरमें उनकी वयसके १६ वें वर्षतक सन्त आकर रहा करते थे उस समय उनके मुखसे श्री तुकाराम महाराजकी सी अभङ्ग वाणी ही निकला करती थी।*

(क्रमशः)

* लेखककी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'मृत्यु और उसके बाद' से।

—लेखक।

# मेरा दुर्भाग्य

रचयिता—श्री वीरेन्द्र मालवीय

युग-युग के पावन कर्मों का, फल संचित जब कर पाया।
पुण्य सलिलसा यह मानव तन, तभी हाथ मेरे आया।
सोचा था इस को पाकर के, नाना यज्ञ करूँगा मैं।
सकल सृष्टि का तामस सारा करके, यत्न हरूँगा मैं।
बन जाएगा मृत्युलोक यह, एक बार सुरपुर निश्चय।
किन्तु खेद यह हुआ न कुछ भी, हुआ शक्ति जीवन का क्षय।
बहना था, जिस विमल वायु में, उससे बचता रहा सदा।
रहना था जिस जगह मुझे, प्रतिकूल उसी के सदा रहा।
करना था जिन-जिन कामों को, हा! उनको ही ठुकराया।
हटना था जिस कुटिल चक्र से, खेद उसी को अपनाया।
मादक मन के अधीन होकर, इन्द्रिय सुख की ओर बढ़ा।
विषय-विलास, छद्म लम्पटता, लिप्साओं के शिखर चढ़ा।
बीत गईं यों जीवन-घड़ियाँ, प्रायश्चित्त ही हाथ लगा।
सोता रहा नीन्द में गहरी, नहीं जगा हा नहीं जगा।
आह! मदभरी उस निद्रा ने, 'मुझे लिटाया शूलों पर?
सोता हूँ, पछताता हूँ मैं, अपनी गहरी भूलों पर!

# जीवनको उन्नत बनानेवाले हमारे कुछ प्रकाशन

## ( १ ) जीवन सौरभ—

प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि साधारण परिस्थितिमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको पढ़ें और अपनी सन्तान के हाथमें दें। मूल्य केवल ।-)॥

## ( २ ) देशके नौनिहालोंसे—

नवयुवकों एवं छात्र तथा छात्राओंके लिये अनुपम उपहार। उन नवयुवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशकी आशा है, जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं; अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। मूल्य केवल -)

## ( ३ ) सदाचार का महत्त्व—

पुस्तक के सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय। सदाचार ही जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी कुञ्जी है; इसको कौन नहीं जानता। पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हुए हैं तथा अपनी और देशकी हानि कर रहे हैं वह सर्व विदित है। जो भारत संसारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसीलिये उसका पतन हो गया है। इस समय देशके युवकोंको सन्मार्गपर ले जानेकी आवश्यकता है। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल -)

## ( ४ ) स्वास्थ्य-पत्र—

यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ रहना ही मृत्यु है तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक धनहीन स्वस्थ जीवन दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्ग-तुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुखपूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है। २०"×३०" साइजके इमिटेशन आर्ट पेपरपर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बंधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है, इसलिये कि यह एक स्थायी चीज हो जाता है। मूल्य केवल =)

## ( ५ ) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास

स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है वह व्यर्थ ही जीवन-यापन करता है। जो देशके प्रति कुछ त्याग नहीं करता वह पशु सदृश है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र-सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन तो अवश्य हुआ है, किन्तु संक्षेपमें, सबके योग्य सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

## ( ६ ) कांग्रेस चार्ट—

इसमें बड़े सुबोध और सरल ढङ्गसे कांग्रेसके जन्मकालसे लेकर अबतकके अधिवेशनोंका विवरण, सभापति, स्थान, समयकी सूचना और किस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमिटेशन आर्ट पेपर पर साइज २०"×३०" दो रङ्गोंकी मनोहर छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। **जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०,** "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# स्वामी भवानीदयाल संन्यासी

## और उनका प्रवासी-भवन

लेखिका—श्रीमती निर्मला बी० वी० दयाल, एफ० ए०

सन् १९३९ की बात है। दक्षिण अफ्रिकाके प्रवासी भारतीयोंके भाग्याकाशपर अचानक अत्याचारमूलक पृथक्करण—नीतिकी घनघोर घटा घिर आई। उन की आंखों के सामने अंधेरा छा गया, कहीं कोई मार्ग नहीं सूझता था। उनके अस्तित्व पर संकट था; अतएव उनके सन्ताप की सीमा नहीं थी। आखिर उनको मातृभूमि की याद आई; उन्होंने स्वामी भवानीदयाल जीको अपना एक-मात्र प्रतिनिधि चुन कर भारत भेजा जो उस समय नेटाल इण्डियन कांग्रेस के प्रधान थे और अपनी सेवासे प्रवासियों के हृदय पर अधिकार जमा चुके थे। स्वामीजी बहुत बीमार थे; शैय्याका सेवनकर रहे थे किन्तु जब उन से कहा गया कि दो लाख प्रवासी भारतीयोंका सौभाग्य-सूर्य अस्त होने जा रहा है, यदि शीघ्र कोई उपाय न किया गया तो उनका विनाश अवश्यम्भावी है, तो उनका कोमल, भावुक विशाल हृदय इसकी कल्पनामात्र से बेचैन हो उठा, अपना जीवन उनको तुच्छ जंचा, वे बिस्तर बांध कर स्वदेश के लिए रवाना हो गये। यहां आकर उन्होंने ऐसा घोर आन्दोलन किया कि सारा देश चौंक उठा और चारों ओर से प्रवासी भारतीयों के प्रति सहानुभूतिका सागर उमड़ पड़ा।



लेखिका अपने पति श्री ब्रह्मदत्त भवानीदयालके साथ।

भारत मां के इस कर्मनिष्ठ लाड़ले सपूत ने अकेले ही जो कार्य किया वह अनेक व्यक्तियोंका कोई शिष्ट-

मंडल भी कर पाता या नहीं, इसमें सन्देह है। कलकत्ता के "ह्विप" (The Whip) ने लिखा था कि "इस अल्पकाल में स्वामीजीके शानदार व्यक्तित्व और अद्भुत लगनने जो काम कर दिखाया वह अनेक व्यक्तियोंका मंडल भी न कर पाता।" पर इसका आपके निर्बल शरीर और भग्न स्वास्थ पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। आप ऐसे बीमार हुए कि लाचार होकर आपको अजमेर के "विक्टोरिया अस्पताल" का आश्रय लेना पड़ा।

चल पड़ती है किन्तु फिर वह समस्या शीघ्र ही विस्मृतिके गर्भमें डूब जाती है; इसलिए यदि निरन्तर प्रचार करनेके लिये भारतमें कोई स्थायी केन्द्र हो तो प्रवासी भारतीयोंका बहुत कुछ हित हो सकता है। अस्पतालमें आपने एक पक्ष इसी कल्पनामें बिताया स्वास्थ्यमें सुधार होनेपर स्वामीजीने अस्पतालसे विदा ली। कुछ मित्रोंकी प्रेरणासे आपने अजमेर की एक नई बस्ती देखी जो "आदर्श नगर" के नामसे बसाई जा रही है। अरावली पर्वतमालाकी सुरम्य



प्रवासी-भवन, आदर्श नगर, अजमेर।

अस्पतालमें पड़े-पड़े उस रुग्णावस्थामें भी आपकी मानसिक क्रियाशीलतामें कोई अन्तर नहीं पड़ा और वहींपर सबसे पहले आपके हृदय-पटल पर प्रवासी-भवन का सुन्दर चित्र खींचा।

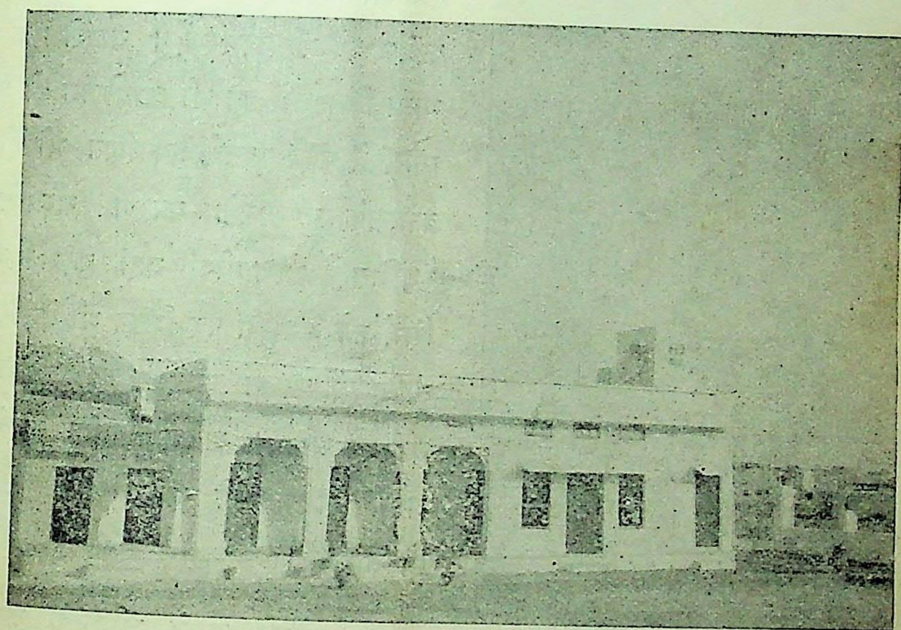
आपने अनुभव किया कि प्रवासी भारतीयोंकी वास्तविक स्थितिसे हमारे देशवासी बहुत अनभिज्ञ हैं। जब कभी विदेशों या उपनिवेशोंमें प्रवासी भारतीयोंपर कोई मुसीबत आ पड़ती है और उनका कोई प्रतिनिधि उनकी करुण कथा सुनाने भारत आ जाता है तो कुछ कालके लिये देशमें प्रवासियोंकी चर्चा

तलहटीमें यह नवीन बस्ती आधुनिक नगर-निर्माणकी एक बढ़ियां बानगी है। अजमेर शहरके समीप होते हुए भी उसके वातावरण से यह नगर पृथक् है। नगर और ग्राम-जीवन को यह सुन्दर सन्धि है। समुद्रसे दो हजार फीट ऊंचा होनेके कारण यह स्थान स्वास्थ्यके लिये बहुत उपयोगी है। चारों ओर पर्वत-की मालाएं और तलहटीमें सुन्दर वन और हरी भरी खेती वास्तवमें नेत्र-रञ्जक है। इसकी भौगोलिक स्थिति महत्वपूर्ण एवं प्राकृतिक सुषमा आकर्षक एवं हृदयस्पर्शी है।

एक सहयोग समितिने आदर्श-नगर निर्माणका संकल्प और कार्य का सूत्रपात किया है। सन् १९४३ में इसकी बुनियाद पड़ी। अजमेरसे नसीराबाद जानेवाली पक्की सड़कपर इस नगरका मेहराबदार प्रवेश-द्वार है जो यात्रियोंकी दृष्टि अनायास ही अपनी ओर खींच लेता है। लड़ाईके कारण इसकी प्रगतिमें भारी बाधा पड़ी है।

आदर्श नगरके मकान एक दूसरेसे बिलकुल अलग है। प्रत्येक प्लाटकी एक-तिहाई जमीनमें मकान है

नगरके बीचमें एक लम्बा चौड़ा पार्क है। एक तरफ लड़कों के खेल-कूदका मैदान है। बालकों और बालिकाओंके लिये पृथक्-पृथक् पाठशालाएं भी है, जिनमें प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। आर्य समाजका साप्ताहिक सत्संग और सनातनधर्म सभाकी ओर से साप्ताहिक कथा-कीर्तन बराबर होता रहता है। यहां पुलिस चौकी है; डाकखाना है और स्वर्गीय सेठ रामचन्द्र अग्रवालकी धर्मशाला भी है। सहयोग समितिने और भी अनेक योजनाएं बना रखी है;



और शेष दो-तिहाईमें फुलवारी हैं। यहां बिजलीकी बत्तियोंसे इसकी शोभा और भी अधिक बढ़ गई है। किन्तु पानीका नल अभी नहीं आया है। नगरमें अनेक पक्के कूप हैं, जिनका स्वच्छ, शीतल और स्वादिष्ट जल पीनेके अतिरिक्त मकान बनाने और फुलवारी सींचनेके काममें भी आता है। मकान ऐसे बनाये गये हैं, जिनमें प्रकाश और पवन अच्छी तरह पहुंचता है। सड़कें चौड़ी और पक्की हैं, उनके दोनों तरफ पेड़ रोपे गये हैं और थोड़ी-थोड़ी दूरीपर विद्युत के प्रकाश स्तम्भ लगे हैं, जिनकी रोशनीसे रातको भी उजियाला बना रहता है।

जिनके कार्यान्वित होनेपर आदर्श नगर अपने नामको पूर्णतया सार्थक करेगा।

स्वामीजी प्रवासी-भवन का स्वप्न देखकर अस्पतालसे निकले थे। इसलिए यह नगर उनको अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये सर्वथा उपयुक्त जान पड़ा। उस समय उनको इस कार्यकी ओर विशेष ध्यान देनेका अवकाश तो नहीं था। फिर भी उन्होंने अपने एक परिचित मित्र श्री मथुराप्रसादजी शिवहरेसे नाकेकी कोई अच्छी जमीन ढूंढ़नेकी प्रार्थना की। इसके बाद स्वामीजी तीन-चार मास तक देशाटन करते रहे और अनन्तर अपने कार्यमें पूर्ण सफल होकर दक्षिण अफ्रि-

का वापिस चले गये। उसी समयसे स्वामीजी अपने स्वास्थ्यसे सर्वथा हाथ धो बैठे, किन्तु प्रवासी भाईयों-का संकट दूर हुआ और वे सन्तोषकी साँस ले सके।

सन् १९४० में आदर्श नगरके एक चौराहेपर दुगुने दाम देनेपर स्वामीजीको एक भूमिखण्ड मिल



श्री स्वामी भवानीदयाल संन्यासी।

गया। इसके सामने छोटासा पार्क और उसमें पक्का कुआं भी है। सन् १९४१ के प्रारम्भमें प्रवासी-भवन-का बाहरी घर श्री शिवहरेजीकी देख रेखमें बना और सालके अन्तमें स्वामी भवानीदयालजी स्वयं दक्षिण अफ्रिकासे विदा लेकर यहां पधारे। बाहरी घरमें आसन जमाकर उन्होंने मुख्य मकानके निर्माणमें हाथ लगाया जो सन् १९४२ के मध्यमें बनकर तैयार हो गया। यद्यपि यह मकान स्वामी भवानीदयालजीके पुत्रों श्री रामदत्त और श्री ब्रह्मदत्त की व्यक्तिगत सम्पत्ति है तो भी स्वामीजी इसका उपयोग विशेषतः प्रवासी भाईयोंके हितार्थ कर रहे हैं।

प्रवासी-भवनके बड़े कमरेमें प्रवासी पुस्तकालय है जिसमें हिन्दी और अंग्रेजी पुस्तकोंका अच्छा संग्रह है और दिनपर दिन उसकी अभिवृद्धि होती जाती है। एक ओर प्रवासी कार्यालय है, जिसमें नेटाल इंडियन कांग्रेस का भी दफ्तर है। यहांसे एक प्रवासी पुस्तक माला निकालने का भी आयोजन हो चुका है और इस मालाकी पांच पुस्तकें प्रकाशित भी हो चुकी है किन्तु कागज़के दुष्कालके कारण सम्प्रति प्रकाशन कार्य स्थगित है। स्वामीजी यहां कुछ विद्यार्थियोंको प्रवा-सियोंकी समस्या पर शिक्षा भी देना चाहते हैं किन्तु महायुद्धके कारण आपकी कई योजनाएं कार्यान्वित नहीं हो सकीं। आशा है कि युद्धके बाद "प्रवासी-भवन" से प्रवासी भारतीयोंकी सेवा यथेष्ट रूपसे हो सकेगी।

स्वामीजी अपने जीवनके उन्तीस वर्ष प्रवासी भारतीयोंकी सेवामें बिताकर रुग्ण और वृद्ध शरीर लेकर देश लौटे और अपने जीवनके शेष दिन आदर्श-नगरके इसी "प्रवासी भवन" में व्यतीत करना चाहते हैं; उनका स्वास्थ दिन-प्रतिदिन बिगड़ता ही जाता है; वाणीमें वह बल नहीं रहा; लेखनीमें वह शक्ति नहीं रही। थोड़ा परिश्रम भी आपको शैय्यासेवनके लिये मजबूर कर देता है। इसपर भी स्वामीजी निरन्तर प्रवासी भारतीयोंके हित-चिन्तन में निरत रहते हैं।

# बाल-वाटिका

## युधिष्ठिरका पहला पाठ

लेखक—श्री सुदर्शन

बाल-वाटिका के स्तम्भ में हमने प्रतिमास बालोपयोगी सरस, सरल, शिक्षा-प्रद साहित्य ; कथा-कहानी, मनोरञ्जक, चुटकुलों और शिक्षाप्रद सुन्दर वार्त्तालाप ( Dialogue ) के रूपमें देनेका निश्चय किया है ; जिससे राष्ट्रकी खिलती हुई आशाओंके एकमात्र केन्द्र एवं राष्ट्रीय जीवनके स्तम्भरूप बच्चोंका जीवन उन्नत आदर्शोंसे प्रेरित हो तथा उनके चरित्रकी बुनियाद बहुत ही मजबूत और सुदृढ़ हो । प्रत्येक माता-पिताका यह कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चोंके हाथमें उपयोगी सरस, बाल-साहित्य देवें और विशेषतया महापुरुषोंके जीवन-चरित्र ; इसके अतिरिक्त मौखिक रूपसे भी बच्चोंको कथा-कहानी अवश्य सुनाया करें । बाल-साहित्य की उपयोगिता पर कभी विशद रूपमें हम अपने विचार प्रकट करेंगे । —संपादक

जब कौरव और पांडव पढ़ने योग्य हुए तो राजा धृतराष्ट्रने उनको गुरु द्रोणाचार्य के सुपुर्द कर दिया। द्रोणाचार्य उस समयके बड़े प्रसिद्ध विद्वान थे, लोग उनकी विद्वत्ता पर ईर्षा किया करते थे। वे केवल पढ़ने पढ़ाने ही में नहीं, बल्कि युद्धविद्यामें भी बहुत निपुण थे। गुरु द्रोणाचार्यने राजकुमारोंको सबसे पहला पाठ यह पढ़ाया—सच बोलो, गुस्सा न करो। दूसरे राजकुमारोंने यह पाठ बहुत जल्दी याद कर लिया और इसके बाद खेलने कूदनेमें लग गए ; किन्तु युधिष्ठिर जो उन सबमें बड़ा था, सारा दिन इस वाक्य को याद करता रहा और जब रात हुई तब भी इसी चिन्तामें रहा। दुर्योधनने उसे देखकर घृणासे मुँह फेर लिया और कहा—युधिष्ठिर बड़ा मूर्ख है। किन्तु युधिष्ठिरने इसकी कुछ भी परवाह न की और रात भर जाग कर अपना पाठ याद करता रहा—सच बोलो, गुस्सा न करो। सच बोलो, गुस्सा न करो।

दूसरे दिन जब पढ़ाईका समय आया तो द्रोणाचार्यजीने पूछा—कलका पाठ जिसको याद हो गया हो वह अपना हाथ खड़ा कर दे। यह सुनते ही सब राजकुमारोंने अपना-अपना हाथ खड़ा कर दिया किन्तु युधिष्ठिर सिर झुकाए बैठा रहा। उसने अपना हाथ खड़ा न किया। गुरु द्रोणाचार्यने कहा—आज किसी को पाठ नहीं दिया जाएगा। कल दिया जाएगा। युधिष्ठिरसे कहा—देखो कलतक तुम्हें यह पाठ जरूर याद हो जाना चाहिये। यह कहकर उन्होंने राजकुमारोंको छुट्टी दे दी और सब राजकुमार तो हँसी खुशी खेलने लग गए किन्तु युधिष्ठिर अपने कमरेमें इधरसे उधर और उधरसे इधर आता जाता था और बराबर इसी वाक्यको रटता जाता था—सच बोलो, गुस्सा न करो ; सच बोलो, गुस्सा न करो। रातको जब सो गए, तब भी युधिष्ठिर अपना पाठ याद करता रहा--सच बोलो, गुस्सा न करो।

तीसरे दिन जब फिर पाठशाला लगी तो गुरूजीने पूछा—क्यों युधिष्ठिर ! तुम्हें पाठ याद हुआ या नहीं ? युधिष्ठिरने सिर झुकाकर जवाब दिया—महाराज ! अभी तो याद नहीं हुआ। यह सुनकर दुर्योधन और उसके भाई मुँहपर रूमाल रखकर मुसकराने लगे, किन्तु गुरु द्रोणाचार्यको बहुत गुस्सा आया। उस दिन भी किसीको पाठ नहीं मिला और पाठशाला में छुट्टी हो गई। चौथे दिन, पांचवें दिन और छठे दिन भी यही हाल हुआ। गुरु द्रोणाचार्य हर रोज़ पूछते थे - क्यों युधिष्ठिर ! तुम्हें पाठ याद हुआ या

नहीं ? किन्तु युधिष्ठिर हर रोज़ सिर झुकाकर जवाब दे देता था—महाराज ! अभी नहीं हुआ। अन्तमें सातवें दिन गुरु द्रोणाचार्यको बहुत गुस्सा आया और उन्होंने तमाचे मार मारकर युधिष्ठिरका मुँह लाल कर दिया। युधिष्ठिर मार खाकर चुप हो रहा किन्तु दुर्योधन इसपर बहुत चकित हुआ ! अगर उसे इस तरह मार पड़ती तो वह गुरुजीके सामने खड़ा हो जाता और उनका अपमान करनेसे कभी बाज़ न आता। आठवें दिन भी युधिष्ठिरने यही जवाब दिया कि मुझे यह पाठ अभीतक याद नहीं हुआ। इसलिए गुरु द्रोणाचार्यने बाकी भाईयोंको आगे पाठ पढ़ाना शुरू कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि एक महीनेके बाद युधिष्ठिरके भाईयोंने तो लगभग आधी पुस्तक समाप्त कर ली किन्तु युधिष्ठिर अभीतक पहले ही पाठ पर अड़ा था—सच बोलो गुस्सा न करो।

एक दिन युधिष्ठिरके दादा महाराज भीष्म पाठशालामें आये। उन्होंने सब राजकुमारोंसे उनका पाठ सुना और राजकुमारों ने भी फर फर सुना दिया। इसपर भीष्म पितामह बड़े खुश हुए। किन्तु जब युधिष्ठिरकी बारी आई तो द्रोणाचार्यजीने कहा—यह बड़ा निकम्मा लड़का है। एक महीना हो गया है किन्तु यह अभीतक एक वाक्य भी याद नहीं कर सका। मैं हैरान हूं, कि कलको यह राजका काम किस तरह संभालेगा इसपर भीष्म पितामहने कहा क्यों युधिष्ठिर ! तुम अपना पाठ क्यों नहीं याद करते। बेटा ! विद्या बड़ी चीज़ है। इसके बिना आदमीको अक्ल नहीं आती और इसे प्राप्त करनेका यही समय है।

जब बड़े हो जाओगे तो फिर पढ़ने पढ़ानेका समय नहीं मिलेगा। उस समय हाथ मलकर पछताओगे किन्तु पछतानेसे फिर कुछ हाथ न आएगा। युधिष्ठिर उसी तरह सिर झुकाए खड़ा रहा। भीष्म पितामहने फिर कहा—इधर आओ और मेरे पास खड़े होकर बताओ कि जब तुम्हारे दूसरे भाईयोंने आधी पुस्तक समाप्त कर ली है तो क्या कारण है:कि तुमको अभीतक पहला पाठ याद नहीं हुआ ? युधिष्ठिरने जवाब दिया-बाबा ! पाठका एक हिस्सा "गुस्सा न करो" मुझे याद हो गया है। गुरूजीसे पूछ लीजिए उस दिन जब उन्होंने मेरे मुंहपर तमाचे मारे थे तो मैंने ज़रा भी गुस्सा नहीं किया था, किन्तु पाठका यह पहला हिस्सा "सच बोलो" मुझे अभीतक याद नहीं हुआ। कभी-कभी झूठ बोल बैठता हूं। जबतक दिलसे झूठका विचार भी दूर न हो जाय तबतक मैं कैसे कह दूं कि मुझे याद हो गया है ; और विशेष कर उस हालतमें जब कि मेरा पाठ ही यही है "सच बोलो, गुस्सा न करो" भाई दुर्योधन और भाई भीमको भी यह पाठ अभी तक याद नहीं हुआ, किन्तु उन्होंने झूठ-मूठ कह दिया है। मेरा दोष केवल यही है कि मैंने झूठ नहीं कहा और साफ़-साफ़ मान लिया है कि मुझे अभी तक अपनी ज़बान और तबीयत पर विजय प्राप्त नहीं हुई।

यह जवाब सुनते ही गुरु द्रोणाचार्य और भीष्म पितामहकी आँखें खुल गईं और उन्हें यह मालूम हो गया कि युधिष्ठिर मामूली लड़का नहीं है। इसके बाद गुरुजीने उसको कभी कठोर शब्द न कहा और सदा कहा करते थे कि यह लड़का बड़ा होनहार है। जो पढ़ता है, उसपर आचरण करता है। यह मेरा नाम चमकावेगा और जिन्होंने हिन्दुओंकी प्रसिद्ध पुस्तक महाभारत का कभी पाठ किया है वे जानते हैं कि युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्यकी आज्ञाओंको पूरा किया और सारी आयुमें न कभी झूठ बोला और न गुस्सा किया—

प्यारे बच्चो ! तुम भी जो कुछ पाठशालामें पढ़ा करो उसे आचरणमें लाया करो, तभी संसारमें तुम्हारा नाम फैलेगा।

# महात्मा गांधी के प्रवचन

सङ्कलयिता—आचार्य इन्दिरारमण शास्त्री

**सत्यकी खोजमें अहिंसाकी आव-श्यकता है। तदर्थ अपरिग्रह अवश्य चाहिये। किन्तु ब्रह्मचर्यके बिना सब अपूर्ण होते हैं। ब्रह्मचर्यमय सत्याग्रह से निर्भयता उत्पन्न होती है। इन्द्रियों के स्वाद को त्यागो और ईश्वर पर श्रद्धा रखो।**

बड़े से बड़ा दोष भी आत्मशुद्धि के वाद गिनती में नहीं लिया जाता। सोनेमें चाहे जैसी मिलावट हो फिर जब वह शुद्ध होकर भट्ठीमें से निकलता है तब उसकी पूर्व अवस्थाकी गिनती या जांच कोई नहीं करता है। उसका इतिहास तक भी कोई नहीं पूछता। किन्तु दूसरे आरम्भसे ही विशुद्ध सोनेके साथ ही यह पश्चात् विशुद्ध सोना भी व्यवहारमें लाया जाता है। अतः अन्तःकरणमें प्रवेश कर आत्मशुद्धि करो। यह आत्मान्वेषण करनेसे होती है।

\+ + +

जहां ध्येय की रक्षा न हो, वहां भविष्यमें कुछ करनेकी मीठी आशा बेकार है।

\+ + +

आत्मदर्शन या आत्म-विकास ही परम धर्म है, जो जीवमात्रकी सेवासे सिद्ध होता है।

× + +

मेरा जहाज़ स्वयं चलनेवाला है। मार्गका नकशा मेरे पास न होगा। हो क्यों ? वह भक्तिका विरोधी होगा। जो प्रभुका नचाया नाचता है, उसके लिये आरम्भ क्या ? जो वस्तु जिस समय आ पड़े उसमें तन्मय हुआ जाय तो बहुत है।

\+ + +

सबकी परीक्षा हो रही है। ईश्वर हमें पूर्णाहुतिके योग्य समझे ; यही हमारी कामना हो। जिसके हिस्से जो सेवा आवे, वह उसे कर गुज़रे, यही बल है !

सर्वथा और सर्वदा सत्य बोलनेका व्रत लो। एक बार निश्चय कर लेनेपर वह आसान हो जाता है। केवल सत्यसेवा से अन्य सभी धर्म स्वयं सिद्ध हो जाते हैं।

\+ + +

जो सेवा जिस समय हमारे हिस्से आवे उसमें तन्मय बनना और दूसरीका विचार तक न करना ब्रह्मचर्य है। फिर ब्रह्मचारीको अशान्ति क्यों ?

\+ + +

शरीरको खूब सुगठित बनाओ। खेलमें जो शिक्षा मिल जाय उतनी लो। किन्तु आत्मशुद्धिकी सच्ची शिक्षा तो रोगी भी पा सकता है। अक्षरज्ञान सिर्फ गहने हैं, स्वयं शोभा नहीं, गहने सबको नहीं मिलते, फ़िर भी वे सुन्दर हो सकते हैं। एवं शास्त्रज्ञान-शून्य भी बुद्धि द्वारा धर्मनिर्णय कर सकता है।

\+ + +

'वसुधैव कुटुम्बकम्' का अनुभव होनेपर वियोग-का दुःख नहीं अखरता।

\+ + +

चाहशून्य लोक सेवक सदा शान्ति पाता है। जीव-दया का अर्थ जीवमात्र की सेवा है। यह सेवा जीव-मात्र में ममतामय एकता से हो सकती है और तदर्थ स्वयं शून्य बने। शून्य बननेमें ही आत्म-दर्शन की कुञ्जी है।

निरभिमान होकर कर्त्तव्य-बुद्धि से काम करो। क्योंकि कर्जदार यदि पूरा कर्ज अदा कर दे तो तदर्थ उसे अहङ्कार क्यों करना चाहिये? हम कर्त्तव्यरूपी ऋणको अदा कर देनेके लिये ही संसारमें पैदा हुए हैं इसे अदा कर देने से ही बन्धनमुक्ति होती है।

\+ + +

नरनारी सभी शरीरोंमें एक ही आत्मा है, केवल बाह्य आकृतियां ही भिन्न हैं, अतः सबकी सेवा में ओत-प्रोत रहो। ईश्वरके पास नर-नारी छूत-अछूत आदि भेद नहीं है। ईश्वरपर विश्वास रखो, हम सब द्रौपदी की तरह ही निराधार हैं।

\+ × ×

उद्योग मनुष्यका प्रधान धर्म, अतः शारीरिक परि-श्रम करो। अन्यथा चोरी का अन्न खानेवाले बनोगे देशसेवा द्वारा विश्वसेवा और उसके द्वारा आत्मदर्शन-ईश्वरत्व प्राप्ति करो। यह कोई बात नहीं कि सभी महान् न हो सकें, पर सबके अच्छे गुणोंको लो और दोषोंको त्यागो फिर चाहे वे शास्त्र हों या महाजन।

× × ×

विचार विकारी चित्तमें ही आते हैं। क्योंकि विकारका अर्थ ही परिवर्त्तन है। फिर समाधिमें अच्छे विचारोंके लिये भी स्थान नहीं है। फिर भी निर्जीव दशा नहीं होती। ईश्वरको विचार करना नहीं होता क्योंकि वे निर्विकार हैं। विचारके इस अभाव का अर्थ जड़ता नहीं किन्तु विशुद्ध चैतन्य है। यह अनु-भवगम्य है।

\+ + +

Printed & Published by Ram Gupta at General Printing Works Ltd. Benares Branch,



सत्वं | सुखं सङ्ग | यति

# सात्विक जीवन

मूल्य चार आने

...रे, अङ्क ८ सम्पादक—रुलियाराम गुप्त, उप सम्पादक—वेदराज वेदालङ्कार 'लहरी'

B. C. PONNAPPA

# विषय-सूची


| विषय | लेखक |
|---|---|
| १—जीवन रे, प्रकाशमें मेरा ( गीत ) | श्री रामनाथ पाठक |
| २—सम्पादककी कलमसे | .... |
| ३—वाह ! कृष्ण तेरी गीता | तरङ्गित हृदय |
| ४—चुने फूल | श्री नारायण प्रसादजी |
| ५—एक खानाबदोशकी डायरीसे | तरङ्गित हृदय |
| ६—भक्ति दोहावली | श्री गङ्गाप्रसाद गौड़ "नाहर" |
| ७—महात्मा गांधीके पत्र | .... |
| ८—जिओ और जीने दो | श्री श्रीराम शर्मा |
| ९—विवेक और आन्तरिक प्रकाश | श्री राल्फवाल्डो ट्राईन |
| १०—मृत्यु-विज्ञान | श्री गङ्गाप्रसाद गौड़ "नाहर" |
| ११—जीवनके लक्ष्यकी ओर ( कहानी ) | श्री पं० वेदराज वेदालङ्कार |
| १२—तुम्हारी खोजमें ( गद्य गीत ) | श्री महावीरप्रसाद विद्यार्थी |
| १३—गोविन्द गुप्त ( खण्ड काव्य ) | श्री गङ्गाप्रसाद "कौशल" |
| १४—सत्यकी महिमा ( कहानी ) | श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर |
| १५—दद्दू दादा | श्री बेढब सागरी |
| १६—मस्तीकी तरङ्गमें ( प्रहसन ) | श्री लहरी |
| १७—मात वर दे, अमर वर दे ( कविता ) | श्री क्षेमचन्द्र "सुमन" |
| १८—साहित्य-समालोचन | .... |
| १९—परिश्रमका फल ( कहानी ) | श्री सुदर्शन |
| २०—अमृतके छींटे | .... |


## आवश्यक सूचना !

सात्त्विक-जीवन के सन्देश को भारतवर्षके कोने कोने में पहुंचानेके लिये और पत्र को अधिकाधिक उपयोगी एवं लोकप्रिय बनाने की दृष्टिसे हमने यह स्कीम बनाई है कि जो सज्जन सात्त्विक-जीवनके ५ नये ग्राहक एक वर्षके लिये बनावेंगे उनको सात्त्विक-जीवन एक वर्ष के लिये पारितोषिकके रूपमें भेजा जायेगा अथवा यदि वे चाहेंगे तो सात्त्विक-जीवन-ग्रन्थमाला की ३) की पुस्तकें पुरस्कार-स्वरूप भेजी जावेंगी।

व्यवस्थापक

...प्रान्त और बरार देहली विहार तथा पंजाब प्रान्तीय शिक्षाविभागों के द्वारा स्कूलों, कालेजों, लाइब्रेरियों और होस्टलों के लिए स्वीकृत।

संरक्षक— श्री मनसुखराय मोर

ॐ

सत्वं सुखे सञ्जयति

# सात्विक जीवन

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

वर्ष ३ } काशी—सौर वैशाख, १९९९ Benares—May 1943. अङ्क ८

## गीत

रचयिता—श्री रामनाथ पाठक 'प्रणयी' साहित्याचार्य

जीवन रे, प्रकाश में मेरा।
सच, प्रियतम ! मेरे मन-मृग को भ्रम ने कभी न घेरा।
जीवन रे, प्रकाश में मेरा।
युग के परिवर्त्तन में देखा,
जग के परिवर्त्तन में देखा,
देखा—विस्तृत अन्तरिक्ष में—केवल स्वर्ण सवेरा।
जीवन रे, प्रकाश में मेरा !
पद-पदकी प्रतिध्वनि से पथ-कण,
मुखरित हुए जा रहे तत्क्षण,
जिस तट पर मैं खड़ा, न होगा उस पर कभी अंधेरा।
जीवन रे प्रकाश में मेरा।
काट चुका इतने दिन सुख से,
अब तक 'आह' न निकली मुखसे,
हँसता ही रहता फूलों में मेरा मौन बसेरा।
जीवन रे, प्रकाश में मेरा।

# सम्पादककी कलम से

## बाग़ की सैर—

प्रिय-पाठक-वृन्द ! आप प्रायः अपने निकटवर्ती उद्यानोंमें भ्रमणार्थ जाते ही होंगे और रंग-बिरंगे फूलोंकी बाहर, मस्ती में झूमते हुए वृक्षों की शाखाओं का नाच, फव्वारे की फुहार, मन्द मलय समीर का स्पर्श भी आपने अनुभव किया होगा। पर क्या सृष्टि के इन सुन्दर पदार्थोंके सम्पर्कमें आकर आपको अवर्णनीय आनन्दकी अनुभूति हुई है ? क्या पन्द्रह बीस मिनट तक इस वातावरण में रहनेके उपरान्त आपके हृदयको शान्ति मिली है ? क्या भगवान्‌की इस अद्भुत् कारीगरीको देखकर आपने कल्पनाकी उड़ाने ली हैं ? अधिकांश पाठक इसका उत्तर नहीं में देंगे और कहेंगे कि वे तो रोज़ बागमें घूमने जाते हैं, परन्तु उन्हें कोई नवीनता या सरसता नहीं मालूम देती। क्या आपने कभी ईमानदारीसे इस प्रश्न पर विचार किया है ? कदापि नहीं। बागमें सैर करनेके लिए जानेपर भी आपके मस्तिष्कमें अनेकों सांसारिक विचार चक्कर काट रहे होते हैं, वहां भी आपको यही फ़िकर होती है कि एकसे दस कैसे बनाए जांय, वहां भी आप इसी चिन्तामें लीन रहते हैं कि आनेवाले कलका क्या होगा। आप खाली हाथ बागमें जाते हैं और खाली हाथ वहांसे लौट आते हैं।

## अच्छा अब ज़रा मेरे साथ आईए, मैं आपको बाग़की सैर कराऊँ—

वह देखिए, सामने फूलोंपर पड़े हुए ओसके बिन्दु कैसे भले मालूम देते हैं। क्या मोती इनकी बराबरी कर सकते हैं ? एक उर्दू के शायरका शेर है—

फूलों की झोलियों में है मोती भरे हुए
शबनम१ लुटा रही है खज़ाना बहार का।

फूल अपनी झोलीमें मुक्ता सदृश ओसके बिन्दु लेकर आपके स्वागतके लिए खड़े हुए हैं और आप योंही इनकी उपेक्षा किए हुए चले जाते हैं। याद रखिए कविकुलगुरु कालिदास, भवभूति, माघ और भारवि शेक्सपियर, शैले, मिल्टन, गेटे और वर्डस्वर्थ की मनोमुग्धकारी कविताओं की स्फुरणाका स्रोत ये नन्हे नन्हे फूल और शस्य श्यामल लताकुञ्ज ही है।

**पीले फूलोंके प्यालेमें शराब**—वह देखिए सामने पीले फूलोंकी बहार। पीले फूल आपको केवल फूल ही नज़र आएंगे। पर आपको क्या पता है, इन पीले फूलोंके प्यालोंमें शराब भरी हुई है। ज़रा पाँच मिनट ठहर कर इस शराबको पीजिए तो सही, साधारण शराब मुंहसे पी जाती है पर यह पीले फूलोंकी शराब आँखोंसे पी जाती है। इस प्रकार मस्तीकी तरङ्गमें इन पीले फूलोंको ग़ौरसे देखनेसे आपको एक नशा सा आएगा। परन्तु यह नशा साधारण शराब के नशे की तरह स्वास्थ्यके लिए हानिकर नहीं है। इस नशेसे तरोताज़गी आती है, यह नशा आँखोंमें चमक पैदा करता है और चेहरेमें ज्योति। ये पीले २ फूल, इनमें भरी शराब। यह नशा दिव्य नशा ( Divine Intoxication ) है।

## गुलाब हँस रहा है—

आगे चलिए, वह गुलाबका फूल मुसका रहा है आपको इशारेसे बुला रहा है, पर आप रुकते क्यों

१ ओस।

नहीं, यों ही चले जा रहे हैं। सुनिए--गुलाबका फूल आपसे कह रहा है, यह चन्द दिनकी जिन्दगी है, इसे हँसते-हँसते बिता दो। आप भी हँसो, दूसरों को भी हंसाओ, दुःखमें भी हँसो, सुख में भी हँसो; आन्धी अन्धड़ और तूफ़ान में भी हँसो और बसन्तकी बहार में भी हंसो। अब हवाके झोंकेसे गुलाबका फूल झूमने भी लगा है, आप भी इसी तरह बाग़में आकर मस्तीमें झूमा कीजिए, अपने दिमाग़ में से सांसारिक झंझटों, चिन्ताओं और परेशानियोंको निकाल दीजिए। हमने अपने जीवनका सबसे बड़ा पाठ गुलाबके फूलके चरणोंमें बैठकर सीखा है।

## सूरजमुखीका फूल आराधना कर रहा है--

ज़रा और आगे चलिए, बाग़के उस कोनेमें वह भगवान् सूर्यकी ओर मुख किए कौन खड़ा है। अरे, वह तो सूरजमुखीका फूल है। फूल जिससे प्रकाश पाता है, उसकी पूजा करनेमें तन्मय है। आप भी ज़रा बागके एक कोनेमें शान्त-चित्त होकर आपकी आत्माको प्रकाशित करनेवाले भगवान्के चरणोंमें अपने श्रद्धा और भक्तिके सुमन चढ़ा दीजिए। संध्योपासना और भगवद्भक्ति के लिए इससे अधिक सुन्दर शान्त, और दिव्य वातावरण क्या हो सकता है। याद रखिए, आत्माका भोजन है, भगवद्भक्ति। यदि आप थोड़ी देर के लिए भी सच्चे दिलसे अपने मन और इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर भगवान्के चरणोंमें लौ लगाते हैं तो आपको अनुपम आनन्द आएगा; अन्यथा आपकी आत्मा मुरझा जाएगी; आपको जीवन में कोई सरसता, नवीनता दृष्टिगोचर नहीं होगी। जिस तरह शरीरकी वृद्धिके लिए सात्विक पौष्टिक भोजन, और शुद्ध पवित्र जलवायुकी आवश्यकता है, ठीक उसी तरह आत्माके विकासके लिए भगवद्भक्तिकी आवश्यकता है। साधारणतः लोगोंका ऐसा विश्वास होता है कि वे संध्योपासना करके भगवान्पर एहसान लाद रहे हैं, परन्तु यह उनकी मिथ्या धारणा है; भला बतलाईए प्रकाशके स्रोतके समीप जानेपर आपका लाभ होगा या उस स्रोत का।

## अब ज़रा हरे २ वृक्षों और लताकुञ्जों की ओर चलिए——

इस हरियाली को ज़रा ग़ौर से देखिए! एक उर्दू का शायर कहा करता था—

भाँग पीने में न होंगे हमसे लहरी
सब्ज़ रंगों से घुटा करती है अक्सर गहरी

इस शेरका आशय स्पष्ट है, बात साधारणसी कही है पर भाव गम्भीर है। लोग व्यर्थमें भांग जैसे सेहतको तबाह करनेवाले, मादक द्रव्योंमें पानीकी तरह पैसा बहाते हैं; इन मादक द्रव्योंसे क्षणिक उत्तेजना आती है और पीछे पश्चात्तापका गहरा धक्का लगता है। आप ज़रा, इस शायरकी तरह इन सब्ज़-रंगोंसे मुहब्बत करके देखिए, अनिर्वचनीय आनन्द आएगा; आपके अन्तरकी कली खिल उठेगी। दार्जिलिङ्ग, शिमला, डलहौज़ी जैसे पर्वतीय प्रदेशोंमें जहां पृथ्वी का कण २ सरसब्ज मालूम देता है; इस मस्तीका हमने अनुभव किया है। मैसूरके निकटवर्ती प्रदेशोंमें जहां मीलों तक हरे २ धानके खेत चले जाते हैं, बीचमें जहां तहां नारियलके वृक्ष झूम रहे होते हैं, यह सब्ज़ रंगों का नज़ारा देखते बनता है।

## अब ठंडी २ ओस पर टहलिए—

इससे आपके मस्तिष्क में तरोताज़गी आएगी, हृदय में स्फूर्ति आएगी, आपको एकदम समस्त शरीर में विद्युत् की धारा प्रवाहित होती हुई मालूम देगी। इन भूतल पर पड़े हुए मोतीके बिन्दुओंको आँखमें भी डाल लीजिए, देखिए क्या तरावट आती है।

लीजिए अब बाग़की सैर समाप्त हुई। आप भी

इसी तरह कल्पनाकी उड़ाने लेते हुए, फूलोंके साथ हँसते हुए, मलय-समीर से अठखेलिया करते हुए मन को बिलकुल ढीला छोड़ते हुए ( Relaxation of mind ), हाथोंको घड़ीके पैण्डुलमकी तरह हिलाते हुए मस्तीमें घूमा करिए, अभूतपूर्व आनन्द आएगा।

## भगवान् की विचित्र लीला—

बनारससे प्रकाशित होनेवाले सहयोगी संसार के ६ अप्रैलके अंकमें एक विचित्र, सच्ची घटना प्रकाशित हुई है, जिसे हम नीचे ज्योंका त्यों उद्धृत करते हैं—

"अलाव में पक कर भी बिल्लीके बच्चोंके जिन्दा रहनेकी एक विचित्र घटना ताल ( जावरा ) में घटित हुई है जिसे ईश्वरीय लीला के सिवाय कुछ नहीं कहा जा सकता। २१ मार्चकी रातको एक कुम्हारने मिट्टीके बरतनोंका अलावा जलाया था, जिसमें एक मिट्टीके घड़े में बिल्लीके चार नवजात बच्चे रह गए थे। वह मटका किसीने भूलसे अलावमें रख दिया था और उसके आसपास तथा ऊपर नीचे मिट्टीके दूसरे छोटे बड़े बरतन जमा किए थे। घास और लकड़ी वगैरह से ढक कर उसमें आग लगा दी गई जो रात भर जलती रही। बादमें दूसरे दिन दोपहर में जब उस अलावमें के बरतन एक-एक करके बाहिर निकाले गए तो उसमें यह दिखाई दिया कि जिस मटके में वे चार बच्चे थे वह कच्चा रह गया और उसमें के बच्चे भी जीवित थे। उसके आजू-बाजू के दूसरे चार बरतन भी कच्चे रह गए थे और अलावके दूसरे सब छोटे बड़े बरतन सिक गए थे। बिल्लीके बच्चे अभी जीवित हैं और उनको आगसे कोई क्षति नहीं पहुंची। यह आँखों देखी सत्य घटना है।

ऊपर लिखी विचित्र घटनाको पढ़नेके उपरान्त प्रत्येक पाठकके मुखसे अनायास ही ये शब्द निकल पड़ेंगे—"वाह भगवान् तेरी लीला।" चाहे भले ही हमने यूनीवर्सिटियोंमें तर्कशास्त्रका मन्थन किया हो और विश्वकी प्रत्येक घटना में कार्य कारणका नियम लगाया हो, चाहे भले हां हमने साइन्सकी दर्जनों किताबोंका सार मस्तिष्करूपी पात्र में इकट्ठा किया हो; सृष्टि में घटनेवाली इन अद्भुत घटनाओंको देखकर हम आश्चर्य-मिश्रित आनन्द भरे स्वरमें चिल्ला उठते हैं "भगवान् की लीला है, जिसके भगवान रक्षक हैं, उसका कोई बाल तक बांका नहीं कर सकता।"

प्रत्येक आदमीकी ज़िन्दगी में भी ऐसी अनहोनी, विचित्र घटनाएं घटती है, जब वह श्रद्धा और भक्ति भावसे भगवान्के प्रति अपना मस्तक नवा देता है और उसका रोम २ भगवान्को धन्यवाद देता है।

## सात्विक-जीवन उन्नति के पथ पर—

सात्विक-जीवन के सहृदय पाठकों और प्रेमी महानुभावों को यह शुभ समाचार जान कर अत्यन्त आह्लाद होगा कि मध्यप्रान्त और बरारके शिक्षा-विभागके उच्च अधिकारियोंने भी अपने प्रान्तके हाई स्कूलों और नार्मल स्कूलोंकी लाईब्रेरियोंके लिए सात्विक-जीवन पत्रिकाको स्वीकृत कर लिया है, जिसके लिए हम इस प्रान्तके शिक्षाविभाग के उच्च अधिकारियोंका अन्तस्तलकी कोमल भावनाओंके साथ हार्दिक धन्यवाद करते हैं और हम अपने पाठकोंको पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि सात्विक-जीवनको अधिकाधिक सरस, सरल और रोचक बनानेके लिए हम पूर्णतः प्रयत्नशील हैं। सात्विक-जीवन की उन्नति के लिए हमसे जो कुछ बन पड़ेगा, उसे करने के लिए हम सदा कटिबद्ध रहेंगे। एक बात और—सात्विक-जीवन की उन्नति के लिए यदि प्रेमी पाठक अपने सत्परामर्श और सुझाव हमें लिखे तो हम प्रसन्नपूर्वक उनका स्वागत करेंगे।

# वाह ! कृष्ण तेरी गीता

प्यारे कृष्ण ! तुम्हें याद होगा, कुरुक्षेत्र की रणभूमि में जब अर्जुन हतोत्साह होकर, गाण्डीवको एक तरफ़ फेंक अपने पथ से विचलित हो रहे थे ; उस समय तुमने सच्चे कर्मयोग का पाठ अर्जुन को पढ़ाया था और रण में प्रवृत्त कराया था ।

कर्मयोगी कृष्ण ! तुम्हारे उस अमृतमय कर्मयोग के सन्देशसे ही पाण्डवों का उद्धार हुआ था और वे परतन्त्रता, परवशता तथा दैन्य के दलदल से बाहिर निकले थे । तुम्हारी उस वाणीमें अमित ओज था, जोश था और थी उमङ्ग तथा नवजीवन की तरङ्ग ।

भारतमाता के अमृत पुत्र कृष्ण ! आज पुण्यभूमि भारतवर्ष जहां वेद और उपनिषदों का, वेदान्त और योग का सुनहला प्रकाश सबसे फैला, जिस भारत माँ की मिट्टी से प्रताप, शिवा और गुरु गोविन्द सिंह जैसे रणधीर उत्पन्न हुए, जिस भारत भूमि को सूर, तुलसी और समर्थ गुरु रामदास ने अपनी भक्तिमयी काव्य-धाराओं से आप्लावित किया—आज वही भारतभूमि दुर्भाग्यवश परतन्त्रता की जन्जीरों से जकड़ी हुई है । उसके समुद्धार का कोई उपाय नहीं दीखता ।

मेरे प्यारे ! गीता के अमर गायक कृष्ण ! तुम्हारी गीता मौजूद है, गीता पर अनेकों टीकाएँ और भाष्य सुन्दर, सुललित काव्यमयी भाषा में हो चुके हैं । गीता के अनेकों धुरन्धर व्याख्याता और उपदेशक मौजूद हैं, वे गीता की कथा करते हैं, पर वह तरङ्ग और जोश उत्पन्न नहीं होता । उनकी व्याख्याएं और भाषण शुष्क मालूम देते हैं, उनमें प्राण नहीं चेतना नहीं ।

प्यारे कृष्ण ! एक बात कहूं इन्कार तो नहीं करोगे ? एक बार तुम स्वयं सदेह उपस्थित होकर गीता का कर्मयोग का सन्देश सुनाओ ; भारतवासियों के हृदय-पट पर संन्यास और कर्मयोग का सच्चा स्वरूप अङ्कित कर दो । मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारतभूमि जागेगी, अवश्य जागेगी ।

—तरङ्गित हृदय ।

# चुने फूल

प्रश्न—साधक के लिये सबसे पहली आवश्यकता क्या है ?

उ०—मनको सब प्रकार की हलचल और बेचैनी से मुक्त करना।

प्र०—जो भगवान् का स्पर्श प्राप्त करना चाहता है उसे क्या करना चाहिये ?

उ०—प्राणोंमें उठनेवाली कामना वासनाकी तरंगों को रोकना चाहिये।

प्र०—प्राणों का समर्पण कब सम्भव हो सकता है ?

उ०—उसमें शुद्धि और स्थिरता आने पर।

प्र०—जो शक्तियां प्राण को भगवान् की ओर खोलने नहीं देती उनके लिये क्या करना चाहिये ?

उ०—दृढ़ताके साथ उनसे जूझनेके लिये डट जाना चाहिये और भगवान्से उनपर विजय पानेके लिये बल मांगना चाहिये।

प्र०—सबसे कठिन क्या है ?

उ०—अहंकार से छुटकारा पाना।

प्र०—साधना में पग पग पर कौन कठिनाईयां उपस्थित होती हैं ?

उ०—वे संस्कार जो बड़े लाड़-प्यारसे पाले-पोसे गये हैं।

प्र०—साधना के कुछ गहराई में उतरने पर क्या होता है ?

उ०—उसमें जो सुप्त वासनायें रहती हैं वे उभड़ पड़ती है और बड़े जोर से आक्रमण करती हैं।

प्र०—उस समय उसे क्या करना चाहिये ?

उ०—न उन्हें दबाना चाहिये न उनसे मुकाबिला करनी चाहिये।

प्र०—तो क्या करना चाहिये ?

उ०—उन्हें भगवान् को सौंप देना चाहिये, जिससे वे उन्हें ले लें, परिचालित करें और रूपान्तरित कर दें।

प्र०—साधक को कौन आगे बढ़ने नहीं देती ?

उ०—निम्न प्रकृति ( Lower nature )

प्र०—वह क्या चाहती है ?

उ०—मनुष्य को सदा अपने वशमें रखना।

प्र०—वह क्या एकदम नहीं चाहती ?

उ०—साधक के भीतर तनिक भी देवत्व को आने देना।

प्र०—इसके आक्रमण से बचने का सहज उपाय क्या है ?

उ०—अपने को उससे तदाकार न होने देना।

प्र०—साधक को क्या करना चाहिये ?

उ०—सदा जागते रहना चाहिये।

प्र०—इसके क्या माने ?

उ०—उसके भीतर बाहर से क्या घुसना चाहती है उसका सतत निरीक्षण करते रहना, उसके बाद एक का त्याग और दूसरेका स्वागत।

प्र०—किसे त्यागना चाहिये ?

उ०—जो नीचे की ओर खींचनेवाली हों।

प्र०—और किसके लिये हृदय खोल देना चाहिये ?

उ०—जो ऊपर उठानेवाली हो—अमृतत्व की ओर ले जानेवाली हो।

प्र०—मनुष्य पर सबसे बड़ा प्रभाव किसका पड़ता है ?

उ०—सत्पुरुष के आदर्श चरित्र का।

प्र०—जो उन्हें प्यार करता है और जो उन्हें पीड़ा पहुंचाता है उसके लिये उनके हृदय में कैसे भाव रहते हैं ?

उ०—उनका हृदय सबके लिये एकसा खुला रहता है।

प्र०—जगत् किस वस्तु से ढका हुआ है ?

उ०—अज्ञान से।

प्र०—किस कारण वह प्रकाशित नहीं होता ?

उ०—तमोगुण के कारण।

प्र०—राक्षसों में सबसे प्रबल इच्छा किस बात की होती है ?

उ०—संहार की।

प्र०—राक्षसों और देवताओंके दृष्टिकोणमें क्या अन्तर है ?

उ०—राक्षस विनाश करना चाहते हैं और देवता बनानेके लिये उत्सुक रहते हैं।

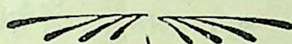
प्र०—आजकल मंहगा क्या है ?

उ०—सभी चीजें।

प्र०—और सबसे सस्ता क्या है ?

उ०—मनुष्य का ज़ीवन।

लेखक—श्री नारायणप्रसादजी साधक।



# एक खानाबदोश की डायरी से

## हँसना

न जाने मुझे हँसने से क्यों इतनी अधिक मुहब्बत है। बचपन में स्कूल में पढ़ते समय अगर मास्टरजी के बेंत से मेरा स्वागत हुआ, तो इसीलिए कि मैं बेवक्त क्यों हँसा, आगे कालेज में जाने पर भी मुझे इसीलिए कई बार डांट सुननी पड़ी कि मैं क्यों समय असमय में हँस देता हूं।

मैं इसीलिए सदा हँसता हूं, कि मैं जीवनको खेल समझता हूं। मुझे हमेशा गम्भीर मुद्रा बनाए रखने से सख्त नफ़रत है।

मैं संसार में केवल एक स्थान पर गम्भीरता धारण करता हूं और वह है, भगवान्का दरबार।

मेरे जीवन की यही फ़िलासफ़ी है कि जब भगवान् के दरबार में जाओ तो गम्भीरता, विश्वास और श्रद्धा के साथ जाओ, अन्यत्र खूब ठहाके मार कर हँसो।

प्राय: संसार की समस्याएं हमें इसलिए डरावनी और जटिल मालूम देती है ; क्योंकि हम उनके बारेमें अत्यधिक गम्भीर मुद्रा धारण कर लेते हैं।

—तरङ्गित हृदय।

# भक्ति-दोहावली*

रचयिता—श्री गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

यहां श्री नाहरजी के भक्तिरस से भरे, जीवनको उन्नत बनानेवाले कुछ दोहे दिए जाते हैं, आशा है, इससे पाठकोंमें अध्यात्म-भावना समुद्बुद्ध होगी। संपादक।

[ १ ]

'नाहर' बिनु हरि-दरस के, अहंकार नहिं जाय;
अहंकार जामें नहीं, हरि-दरसन ते पाय।

[ २ ]

'नाहर' हरि-दरसीन कर, लच्छन चारि अशांच;
बालकवत् उन्मादवत्, जड़वत् मनहुं पिसाच।

[ ३ ]

फल धरनों नर-देह कर, 'नाहर' केवल येह;
हरि-भजनों, हरि-सेवनों, लहनों हरि-पद-नेह।

[ ४ ]

'तू-तेरा'-मत ज्ञान अरु, 'मैं-मेरा' अज्ञान;
'नाहर' मन मैं-मय भये, मनुज कि लह कल्यान?

[ ५ ]

माया-प्रीति सकाम जग, दाया-प्रीति अकाम;
यासों नर लह सहज हरि, वासों मिलैं न राम।

* अप्रकाशित 'नाहर-भक्ति-सतसई' से।

# महात्मा गांधी के पत्र

प्रत्येक भाषाके साहित्यमें पत्रोंका अपना एक महत्त्वपूर्ण विशिष्ट स्थान है। अभी हिन्दी-साहित्य में पत्रलेखनकला को प्रोत्साहन नके बराबर मिला है। पत्रों द्वारा प्रकट किए जानेवाले विचार बहुत ही सरल, स्वाभाविक और रोचक तथा प्रभावोत्पादकरूप में हृदयदेश से आते हैं। महापुरुषोंके पत्र जहां साहित्यिक दृष्टिकोणसे साहित्यमें एक प्रमुख विशिष्ट स्थान रखते हैं वहाँ आध्यात्मिक दृष्टिविन्दुसे भी उनके पत्रोंका विशेष महत्व है। आशा है पाठकोंको विश्ववन्द्य महात्माजी के पत्र पसन्द आएँगे।

—संपादक

चि० म····

आत्माके अतिरिक्त सब क्षणभंगुर है, यह विचार सदैव मनमें रहना चाहिए। यही नहीं वरन् इसकी सिद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए। मैं ज्यों-ज्यों विचार करता हूं त्यों-त्यों मुझे सत्य और ब्रह्मचर्यकी महिमा अधिकाधिक विचित्र मालूम हो रही है। मैं समझता हूं कि सत्यमें ही ब्रह्मचर्य और और अन्यान्य नीति धर्मका समावेश होता है; परन्तु फिर भी ब्रह्मचर्य एक सत्यकी ही टक्करका महान् तत्व है; और मेरा दृढ़ विश्वास है कि दोनोंके पालन से प्रत्येक कठिनाई दूर होनी चाहिए। सच्ची कठिनाई तो अपने मनोविकार की ही है। यदि बाह्य विषयोंको सुखका आधार न समझें तो लोग क्या कहेंगे। इस प्रश्नके बदले "हमें क्या करना चाहिए" यही हम सोचने लगेंगे।

बापू····का आशीर्वाद।

\+ + +

जोहान्सवर्ग

चैत्र कृष्ण ५, संवत् १९६५

चि० मणिलाल,

तुम्हें जब दोष दिखाई दे, तब मुझसे बतलाना ठीक ही है। मेरी इच्छा है कि दोषकी अपेक्षा मनुष्यके गुणोंकी ओर पहले देखना चाहिए। हम सभी दोषपूर्ण हैं, इसलिए मनुष्यके गुणोंकी परख कर उन्हींका हमें सदैव मनन करते रहना चाहिए। ऐसी आदत डालनेसे पड़ जाती है, परन्तु जबतक ऐसी आदत न पड़ जाय तुमको जो जो दोष दिखाई दे, उनको प्रकट करनेमें किसी प्रकार त्रुटि न करो।

जो अपरिहार्य है—जिसके निवारणके लिए हमें उपाय नहीं सूझते—उसको सहन करना चाहिए। तुम यदि अपना कर्त्तव्य करते रहोगे, तो तुम्हारा मन संतुष्ट रहेगा। कई लोग सोचते हैं कि हम तो अपना कर्त्तव्य करते रहें; परन्तु सारा संसार जो दुःखमें डूबा है, इसका क्या होगा? परन्तु ऐसा विचार मनमें आना भी एक प्रकारका अभिमान ही है।

बापूका आशीर्वाद।

\+ + +

वैशाख वदी १४, संवत् १९९०

महात्माजीने पन्द्रह दिन उपवास करनेके बाद, सातवें दिन प्रार्थना कर चुकनेपर सबको सम्बोधन करके कहा ]।

तुमने गीताके श्लोक कंठाग्र करके सुनाये; परन्तु मैं इससे खुश नहीं हूंगा! तुम इतिहास पढ़ो चाहे न पढ़ो, गणित हल करो चाहे न करो, संस्कृत सीखो चाहे न सीखो, इसकी मुझे बिलकुल चिन्ता नहीं, परन्तु हां संयम-वृत्ति धारण करना तुम्हारे लिए

अत्यन्तावश्यक है। बस यही मुझे चाहिए। यदि समय आ जायगा तो मैं मनुष्यका ग़ुलाम बन जाऊंगा; परन्तु मनका ग़ुलाम कभी नहीं बनूंगा। मनका ग़ुलाम बननेके बराबर घोर पाप दूसरा कोई नहीं है; इसलिए तुम होशियार बनो, और मनको काबू में रखना सीखो। बस, इसी दशामें तुम मेरे पास रह सकते हो, अन्यथा मुझे किसीकी आवश्यकता नहीं। मैं तुमको सिखानेका भी अभिमान नहीं रखता। मेरे पास एक ऐसा शिष्य है जिसे सिखाना कठिनसे कठिन कार्य है। उसको शिक्षा देकर ही मैं तुम्हारा भारतमाता, अथवा अखिल मानव-जाति का कल्याण कर सकूंगा। वह शिष्य मैं स्वयं ही हूं; उसको मैं "मन" कहकर पुकारता हूं। इस रीतिसे जो अपने आपको स्वयं शिष्य बनावेंगे वही यहां रहने योग्य हैं।

जिनको यह कठिन मालूम होता हो उनका यहां न रहना ही अच्छा! वे यदि यहांसे चले जायंगे तो मैं यही कहूंगा कि अच्छा किया। स्वयं न समझते हुए [ केवल यंत्रकी भांति ] काम करना पाप है। मैं यह नहीं चाहता।

+ + +

लंदन ····१९१४

भाई रा····

शंकराचार्यने कहा है कि जैसे कोई मनुष्य समुद्र तटपर बैठकर किसी मनके से एक २ जलबिन्दु लेकर सारे समुद्रको उलीचने लगे, तो उसको जितने समय और जितने धैर्यकी आवश्यकता होगी, मनको वशमें करनेके लिए उससे भी अधिक समय और धैर्यकी आवश्यकता है। इस लिए तुमको निराश न होना चाहिए। क्या उस सम्पूर्ण निराशामें आशा नहीं छिपी हुई है? अपना पत्र भेजते रहो। मैं भी लिखूंगा। इससे अधिक और क्या लिखूं।

मो····का आशीर्वाद

# जिओ और जीने दो

लेखक—श्री श्रीराम शर्मा संपादक 'अखंडज्योति' मथुरा

प्रस्तुत लेखके लेखक श्री श्रीराम शर्मा अखण्ड ज्योतिके सफल सिद्धहस्त संपादक हैं। आप की दार्शनिक विचारधारा बहुत ही परिष्कृत एवं रूढ़ियोंके बन्धनसे सर्वथा मुक्त है। आप हिन्दू दर्शनकी, हिन्दूसमाजकी पुरातन अच्छाईयोंके प्रेमी और प्रशंसक होते हुए भी उसकी कुरीतियों और रूढ़ियोंके कट्टर विरोधी हैं। प्रस्तुत लेखमें आपने "ईशा वास्यमिद सर्वम्" अर्थात् सम्पूर्ण जगत् भगवान्से व्याप्त हैं, दूसरे शब्दोंमें सब भगवान्की संतान है, इस वैदिक मन्त्रांशकी आधारशिलापर मानवको प्रकृतिका सर्वश्रेष्ठ प्राणी बताते हुए "जिओ और जीने दो" सिद्धान्तका बड़े सुन्दररूप से प्रतिपादन किया है। —संपादक ]

मनुष्य इस विश्वका सर्वोच्च प्राणी है, निस्सन्देह ईश्वरने उसे इतना श्रेष्ठ उच्च और महान् इसलिये बनाया है कि वह एक आदर्श जीवन जी सके। इतनी आध्यात्मिक सुविधा, साधन, सामग्री देकर एक उत्तम शरीरके साथ प्राणी इस लोकमें भेजने में प्रभुका कुछ महान् उद्देश्य छिपा हुआ है, मानसिक और आध्यात्मिक चेतनाके असाधारण क्रियाशील तन्तुओंका निर्माण ऐसी अद्भुत कारीगरीके साथ हुआ है कि हम इन साधनोंके सदुपयोगसे पिताके समस्त अधिकारोंको प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकते हैं। जिस मानव-जीवनकी रचनापर परमात्माने इतना श्रम किया है, यदि वह पशुओंसे कुछ भी ऊँची योग्यता सिद्ध न कर सके तो यही कहा जायगा कि इतना श्रम निरर्थक गया।

इस देव-दुर्लभ शरीरको पाकर हमें अपना गौरव प्रदर्शित करना होगा। सिंह भी सड़े हुए मांसकी ओर मुंह उठाकर नहीं देखता, क्या हम तुच्छ विषयकी वेदीपर अपनी श्रेष्ठताको बलिदान कर देंगे। एक सम्राट् क्या कभी भिखमंगोंसे आचरण करता है, हमें यह शोभा नहीं देता कि ऐसे कामोंपर उतारू हों, जो मनुष्यताको कलंकित करते हैं; हंस प्यासा मर जाएगा पर दूधमेंसे पानी छांटनेका गुण कभी न छोड़ेगा। हमें न्याय और अन्यायका अन्तर करके न्यायको स्वीकार करना होगा, ताकि हमारी महत्ता सुरक्षित रहे। चातक वर्ष भर प्यासा मरता है, पर सूखे गलेको स्वातिके जलसे ही भिगोता है। हम गरीबीका जीवन बितावेंगे, कष्ट सहेंगे पर अन्यायसे उपार्जित धन ग्रहण न करेंगे। भ्रमर सुगन्धित पुष्पोंके आसपास रहता है, हम भी सज्जनों तथा सद्विचारोंके बीच अपना स्थान बनावेंगे। मानव-जीवनकी महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां हमें इस बातके लिये बाध्य करता हैं कि ऐसा जीवन जियें जो जीने योग्य हो, जिससे हमारे पद पर कलंक न आवे।

धिक्कार है, इस जिन्दगीपर जो मक्खियोंकी तरह पापों की विष्ठाके ऊपर भिनभिनानेमें, और कुत्तोंकी तरह विषय भोगोंकी झूँठ चाटनेमें व्यतीत होती है, उस बड़प्पनपर धिक्कार है जो खुद खजूर की तरह बढ़ता है, पर उसकी छायामें एक प्राणी भी आश्रय नहीं प्राप्त कर सकता, सर्पकी तरह धनके खजानेपर चौकीदारी करनेवाले लालची किस प्रकार सराहनीय कहे जा सकते हैं। जिनका जीवन तुच्छ स्वार्थोंके पूरा करनेकी उधेड़-बुनमें निकल गया, हाय ! वे कितने अभागे हैं। सुर दुर्लभ देहरूपी बहुमूल्य रत्न इन दुर्बुद्धियोंने काँचरूपी कंकड़के टुकड़ोंके बदले बेच दिया। किस मुखसे वे यह कहेंगे कि जीवनका हमने सद्व्यय किया। इन कुबुद्धियोंको तो अन्तमें पश्चात्ताप

ही पश्चात्ताप प्राप्त होगा। एक दिन उन्हें अपनी भूल प्रतीत होगी। पर उस समय हाथसे अवसर चला गया होगा। और सिर धुनकर पछतानेके अतिरिक्त और कुछ हाथ न रहेगा।

मनुष्यो! जिओ, और जीने योग्य जीवन जीओ। ऐसी ज़िन्दगी बनाओ जिसे आदर्श और अनुकरणीय कहा जा सके। विश्वमें अपने ऐसे पद-चिन्ह छोड़ जाओ जिन्हें देखकर अपनी आगामी संतति अपना मार्ग ढूंढ़ सके। आपका जीवन सत्य से, प्रेमसे, न्यायसे भरा हुआ होना चाहिये। दया, सहानुभूति, आत्मनिष्ठा, संयम दृढ़ता और उदारता आपके जीवनके अंग होने चाहियें। शारीरिक और मानसिक बलका संचय और उसका सदुपयोग यह प्रथम कर्त्तव्य है, जिसकी ओर हर घड़ी दत्तचित्त रहना चाहिये। बिना इसके 'जीवन' जीवन नहीं हो सकता।

न केवल उत्तम जीवन स्वयं जिओ, वरन दूसरों को भी उत्तम जीवन जीने दो। परमात्माका आत्माके प्रति प्रादेश है कि "जिओ और जीने दो' अपनी निर्बलता, वासना स्वार्थपरता एवं कुभावनाओंको हटा कर गौरवपूर्ण पद प्राप्त करो और सिर ऊंचा कर जीने योग्य ज़िन्दगी जीओ और उस सात्विक जीवन की शक्तिका प्रयोग दूसरे निर्बलोंको शक्ति प्रदान करनेमें करो। यह प्रक्रिया अत्यन्त ही नीच श्रेणीकी होगी कि तुम स्वयं तो ऊंचे उठो और दूसरोंको नीचा दिखाओ स्वयं स्वतन्त्रताकी इच्छा करो और दूसरोंको बन्धनों में जकड़ो, यह तो अपने बलका दुरुपयोग करना होगा। दूसरोंकी छातीपर खड़े होकर ऊपर बढ़ने-की भावना इतनी सत्यानाशी और नारकीय है कि इसके द्वारा विश्वका बहुत भारी अहित हुआ है, बल-वान व्यक्ति जब जालिमका रूप धारण करता है तो वह प्रभुकी सुरम्य वाटिकामें निर्दय कुल्हाड़ेका काम करता है ऐसा क्रूर जीवन पिशाच ही बना सकता है, मनुष्यके लिये वैसा सम्भव नहीं है।

जीने दो, दूसरोंको भी स्वतन्त्रता-पूर्वक जीने दो, जो भूले भटके हों उन्हें राहपर लाओ; पर खबर-दार किसीके मूलभूत अधिकारोंपर हस्तक्षेप मत करो। अमुक व्यक्ति अमुक परिवारमें उत्पन्न हुआ है इसलिये उसके मानवोचित अधिकार दबाये जांय, यह सोचना ही निर्दयता होगी, एक सच्चा मनुष्यताका उपासक यह नहीं कह सकता कि स्त्रियोंपर पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक बन्धन लगाने चाहिये, शूद्रोंके मानव-अधिकारोंका अपहरण होना चाहिये। ऐसी अनुदारता पाषाण हृदयों में ही सम्भव है, सत्यका प्रेमी, न्यायका उपासक, अपने अन्तःकरणकी ग्रन्थियोंको खोल डालता है, वह स्वयं उच्च जीवन जीता है, अतः दूसरोंके जीवनकी भी कद्र करता है, कुत्सित आदमी स्वयं सड़ी हुई नालियोंकी रूढ़ियोंमें बुजबुजाता हुआ गर्हित जीवन बिताता है, इसलिये वह दूसरोंकी भी टांग पकड़कर नारकीय पराधीनतामें सड़नेके लिये पीछे घसीटता है, वह दूसरों को तुच्छ समझता है 'क्योंकि स्वयं तुच्छतामें पड़ा हुआ है' वह दूसरोंसे घृणा करता है, क्योंकि स्वयं उसने अपनी आत्माको घृणित बना रखा है।

आप टुच्चे मत बनिये, आप बढ़ रहे हैं, उन्नतिके पथपर चल रहे हैं, इसलिये दूसरोंको भी बढ़ने दीजिये, आप अपनी आत्माको मुक्त बनानेमें प्रयत्न-शील हैं, इसलिये दूसरोंको भी स्वतन्त्रताका आनन्द लेने दीजिये, स्वयं बढ़िये और दूसरोंको बढ़नेके लिये प्रोत्साहित करिये। आप महान् बनिये दूसरोंमें महत्ता लानेका प्रयत्न करिये। पाठको! तुम ईश्वरके राजकुमार हो, इसलिये वैसा जीवन जिओ जो राज-कुमारोंके योग्य है, संसारके दूसरे प्राणी तुम्हारे भाई हैं, इसलिये उनके साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा एक भाई दूसरेके साथ करता है, जिओ, प्रसन्नतापूर्वक जिओ, पर दूसरोंको भी प्रसन्नतापूर्वक जीने दो।

# विवेक और आन्तरिक प्रकाश

लेखक - श्री राल्फ वाल्डो ट्राईन

[श्री राल्फ वाल्डो ट्राईन अमेरिकाके मशहूर लेखक हैं ; आपने श्रद्धा और बुद्धिके सुदृढ़ आधार स्तम्भोंपर स्थित ...त्विक एवं आध्यात्मिक साहित्यकी सृष्टि कर अंग्रेजी भाषाके गौरवमें श्रीवृद्धि की है। आपकी रचनाओंमें मनोविज्ञान और ...का अच्छा पुट रहता है ; इसलिए वे बड़ी श्रद्धा और चावके साथ पढ़ी जाती है। प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें अनेक ऐसे ...सर उपस्थित होते-हैं, जब वह कर्त्तव्य, और अकर्त्तव्य ; धर्म और अधर्म, अच्छे और बुरेका निर्णय नहीं कर पाता। ...की बुद्धि डांवाडोल हो जाती है। ऐसे अवसरपर यदि मनुष्य अपनी अन्तरात्माकी आवाज़के अनुसार चले तो उसका अति-...कल्याण हो सकता है ; प्रस्तुत लेखमें इसीकी व्याख्या बड़े सुन्दर, विशद एवं विवेचनात्मक रूपमें हृदयहारिणी भाषामें ...लेखकने की है। ]

—संपादक

ज्यों-ज्यों हम भगवान्के साथ अपनी एकता ...भव करनेका प्रयत्न करते चले जाते हैं; भगवान्का ...श हमारे मुकुलित मानस-पुष्पोंको खिलाता चला ...ता है। इस विवेकके उदय होनेके उपरान्त हम संसार ...की तहतक पहुंच सकते हैं और उन गुप्त रहस्योंका ...सर्वसाधारणके लिए छिपे रहते हैं, पता लगा सकते ... दिव्य आनन्दके उन अक्षय स्रोतों तक पहुंच सकते ... जहांतक सर्व-साधारणकी दृष्टि नहीं जाती। ...वान्का यह विशाल ब्रह्माण्ड सबके लिए समानरूप ...खुला हुआ है ; परन्तु इसका वास्तविक आनन्द ...ही उठा सकते हैं; जो इसकी तहतक जानेका प्रयत्न ...रते हैं। उज्वल, धवल, बहुमूल्य मोती समुद्रकी गह-...राईमें जानेपर ही उपलब्ध होते हैं।

परन्तु इस अन्तर्दृष्टि और विवेकको प्राप्त करनेके लिए हमें सदा हमारा पथ-प्रदर्शन करनेवाली; मुसीबतों और तूफानोंके समय हमें अपनी प्रेममयी गोदमें लेने वाली दिव्य सत्तामें पूर्ण विश्वास रखना चाहिए ; परन्तु यह विश्वास किसी अन्य माध्यमके द्वारा नहीं होना चाहिए। श्रद्धा और विश्वासकी अग्निको प्रदीप्त करनेके लिए हमें स्वयं उस प्रकाशके स्रोतके पास जाना चाहिए। हमें सीधे ही भगवान्के दरबारमें पहुंचना चाहिए। प्रिय-पाठक-वृन्द ! भगवान्के दरबारमें उच्च नीचका कोई भेद नहीं है ; वहाँ किसी बड़े आदमीकी सिफ़ारिश ले जानेकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है। आपका प्रवेश वहां बेरोकटोक हो सकता है।

इस प्रकार जब हम सीधे भगवान्के चरणोंमें जाते हैं, हमें संस्थाओं, पुस्तकों और व्यक्तियोंके दासत्वसे छुटकारा मिल जाता है ; हम इनके आश्रित नहीं रहते। संसारका सूक्ष्म निरीक्षण और विवेचन करनेके पश्चात् हमें पता चलेगा कि संस्थाएँ, पुस्तकें और व्यक्ति केवल-मात्र एजेण्ट हैं ; वास्तविक ज्ञानका स्रोत या उद्गम स्थान नहीं। इन्हें हमें केवल शिक्षकके रूपमें लेना चाहिए, स्वामीके रूपमें कदापि नहीं। हमारा स्वामी तो समस्त ब्रह्माण्डका परिचालन करने-वाला भगवान् ही है। महाकवि ब्राउनिङ्गने एक स्थान-पर क्या ही सुन्दर कहा है—

**"सत्य हमारे अन्दर ही जगमगा रहा है, बाह्य वस्तुएं सत्यका उद्-गम स्थान नहीं हैं। हम सबमें एक गुप्त केन्द्र है, जहां सत्य अपने पूर्ण रूपमें उपस्थित है।"**

संसारमें सबसे अधिक महान्, गम्भीर और आवश्यक उपदेश यदि है तो वह यही है कि— **"अपने प्रति ईमानदार रहो"** दूसरे शब्दों है अपनी आत्माके प्रति ईमानदार रहो क्योंकि तुम्हारी आत्माके द्वारा ही परमात्मा बोलते हैं। आत्माकी आवाज़ ही तुम्हारी सच्ची पथ-प्रदर्शिका है। यह वह प्रकाश है जो अपने सम्पर्कमें आनेवाले विश्वके प्रत्येक व्यक्तिको प्रकाशित करता है। इसीका नाम अन्तरात्मा ( Conscience ) है। दूसरे शब्दों में इसे ही स्फुरणा ( Intution ) कहते हैं। प्रिय-पाठक-वृन्द ! जब कभी आपके सामने किसी समस्याके विषयमें सन्देह उत्पन्न हो; और आप कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विवेचन करनेमें असमर्थ हों; उस समय आप शान्त चित्त होकर थोड़ी देरके लिए मौन-भाव धारण कर अपनी हृदय-गुहामें प्रवेश करें; आपको यह स्पष्ट ध्वनि सुनाई देगी **"प्यारे ! इस रास्ते नहीं उस रास्ते चलनेसे कल्याण होगा।"** यह बात और है कि आप अज्ञानतावश इस आवाज़को उपेक्षा कर दें और अपने कर्त्तव्य-मार्ग से विचलित हो जाएँ; पर एक बार आपको यह ध्वनि सुनाई अवश्य देगी—इसीका नाम **"अन्तरात्माकी आवाज़"** है। इसी अन्तरात्मा की आवाज़ की उपेक्षाके कारण ही हम अपना मार्ग निश्चित नहीं कर पाते और महासागरमें पड़े हुए जहाज़की तरह डांवा-डोल होते रहते हैं। मैं अपने एक मित्रको जानता हूं, जो सदा बड़े ध्यानसे अपनी अन्तरात्माकी आवाज-को सुनता है और सदा उसके अनुसार चलता है, यही कारण है कि वह हमेशा ठीक समयपर, ठीक तरीकेसे ठीक काम करता है। वह यह जानता है कि किस समय कौनसा काम करना चाहिए और कैसे करना चाहिए।

परन्तु इसपर कोई आदमी आपत्ति कर सकता है कि क्या सदा अपनी अन्तरात्माके अनुसार कार्य करना भयंकर न होगा ? कल्पना करो कि हमारी अन्तरात्मा किसी व्यक्तिको नुकसान पहुंचानेके लिए कहती है, तब उस हालतमें क्या होगा। परन्तु हमें डरनेकी ज़रा भी आवश्यकता नहीं; क्योंकि अन्तरात्माकी आवाज़ जो परमात्माकी आवाज़ है हमें कभी भी दूसरेको हानि पहुंचानेके लिए प्रेरित नहीं करेगी, और नाही सत्य, न्याय, ईमानदारीके उच्च आदर्शसे पतित होनेके लिए कहेगी; और यदि कभी दुर्भाग्य वश इस प्रकारकी भावना तुम्हारे हृदय-देशमें उत्पन्न भी हो; तब भी तुम अपने हृदय-पटलपर इस तथ्यको अङ्कित कर लेना कि यह अन्तरात्माकी आवाज़ कदापि नहीं हो सकती; यह तुम्हारे निकृष्ट स्तर ( lower self ) की आवाज़ है।

प्रिय-पाठक-वृन्द ! मेरे पूर्व वक्तव्यसे आप कहीं इस भ्रममें न पड़ जांय कि मैं आपको अन्ध-श्रद्धावाद का अनुकरण करनेके लिये कह रहा हूं या आपके लिये बुद्धिका द्वार बिलकुल बन्द करनेकी सलाह दे रहा हूं। मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं है। बुद्धिको मनुष्यसे पृथक् करनेका परामर्श देना, आत्मघातके तुल्य होगा। मेरा कहनेका तात्पर्य यही है कि बुद्धि श्रद्धाके सुनहले प्रकाशसे प्रकाशित हो; मैं बुद्धि और श्रद्धाके सुन्दर समन्वयपर बल देता हूं। वह मानवीय जीवन कितना पवित्र और उज्वल होगा जिसमें बुद्धि और श्रद्धा दोनों का उचित मात्रामें समावेश होगा। जब बुद्धि और श्रद्धाके द्वारा मनुष्य इस तत्वको जान लेता है कि मैं परमात्माका अंश हूं, मेरे पीछे परमात्माकी शक्ति ही काम कर रही है; उस समय वह विवेक और ज्ञानके राज्यमें प्रवेश करता है। इस अमूल्य मानव-जीवनमें मनुष्यको यदि कोई वास्तविक शिक्षा ग्रहण करनी है -तो वह यही है।

यदि हम अपनी हृदयकी खिड़कियोंको भगवान्के प्रकाशके प्रवेशके लिए खोल देंगे; तो प्रत्येक रहस्य जिसे हम जानना चाहते हैं; स्वयं हमारे सामने खुल जाएगा। इसी प्रकार वस्तुओंकी तहतक देखनेके उपरान्त ही हम द्रष्टा और ऋषि के परम पदको प्राप्त कर सकते हैं। इस पृथिवीपर कोई नए तारे नहीं हैं, कोई नए नियम या शक्तियां नहीं हैं, परन्तु जब हम उनकी तहतक पहुंचनेका प्रयत्न करेंगे, तो हमें इनमें नवीनता दृष्टिगोचर होगी। वे वस्तुएं जो पहले हमारे लिए बिलकुल साधारण थी; अब असाधारण रूप धारण करेंगी।

जो व्यक्ति भगवान्के दरबारमें प्रवेश करना चाहता है, उसे सबसे पूर्व बौद्धिक अभिमानसे सर्वथा शून्य होना चाहिए। उसे एक सरल शिशुकी तरह होना चाहिए। पक्षपात, अन्धविश्वास, पहलेसे बनाई हुई सम्मतियां विवेकके मार्गमें बाधक हैं; और इनका परिणाम कल्याण-मार्गके पथिकके लिये अशुभ है। इनके होते हुए सत्यके दर्शन असम्भव है।

धर्मके क्षेत्रमें, राजनीतिके संसारमें, सामाजिक व्यवहारमें अधिकांश ऐसे आदमी हैं, जो अपने बौद्धिक अभिमान, अन्धविश्वास और पहलेसे बनाई हुई सम्मतियोंके अन्दर इतने अधिक जकड़े हुए हैं कि वे इनसे मुक्त नहीं हो सकते, परिणामतः सत्यके दर्शन उन्हें नहीं हो पाते; और इस प्रकार उनका ज्ञानविकसित होनेके स्थानपर संकुचित होता चला आता है। संसारकी उन्नति करनेके स्थानपर वे उसमें बाधक सिद्ध होते हैं।

जब स्टीम इंजिनका अभी परीक्षण ही हो रहा था और यह पूरी तरह तैय्यार नहीं होने पाया था, उस समय वैज्ञानिक क्षेत्रमें विख्यात एक अंग्रेज विद्वान्ने यह सिद्ध करनेके लिए कि स्टीम-इंजिनका समुद्री यात्रामें प्रयोग कदापि नहीं हो सकता, एक विस्तृत ट्रैक्ट लिखा था और उसमें यह युक्ति दी थी कि कोई भी जहाज़ अपने साथ स्टीम इंजिनको चालू रखनेके लिए पर्याप्त कोयला नहीं ले जा सकता। और सबसे मज़े की बात यह है कि पहले-पहले स्टीम इंजिनसे चलनेवाला जो जहाज़ इंग्लैण्डसे अमेरिकाकी ओर गया, उसमें इसी वैज्ञानिकके लिखे हुए उस ट्रैक्टके प्रथम संस्करणकी हज़ारों प्रतियां थी। यह तो अभी उसका प्रथम ही संस्करण था, अब तो उसकेअनेकों संस्करण निकल चुके होंगे। यह घटना वस्तुतः मनुष्यको आश्चर्यमें डालनेवाली है, परन्तु सबसे अधिक आश्चर्य तो उस वैज्ञानिक पर होता है; जिसने अपनी पूर्व निर्धारित सम्मतिके कारण मस्तिष्कके कपाट बिलकुल बन्द कर दिए, उसमें स्वतन्त्र विचार-शक्ति की स्वच्छ वायु प्रविष्ट नहीं होने दी। इस प्रकार और भी अनेकों उदाहरण दिए जा सकते हैं।

प्रिय पाठक-वृन्द! आपको अपने हृदय और मस्तिष्कको अन्ध-विश्वास और कट्टरतासे सर्वथा विमुक्त रखना चाहिए, तभी आप सच्चे अर्थोंमें विश्व की उन्नतिमें सहायक सिद्ध हो सकते हैं। एक कविने इसी आशयको अपनी सुन्दर, मनोहारिणी कवितामें बड़े सुन्दर रूपसे अभिव्यक्त किया है।

**"अपनी आत्मामें अनेकों खिड़कियां बनाओ ताकि विश्वका समस्त प्रकाश इसे जगमगा सके। असंख्य स्रोतोंसे निकलनेवाले उज्वल, तीक्ष्ण प्रकाशको एक संकुचित शीषा ग्रहण नहीं कर सकता। अन्ध विश्वासके बन्धनोंको तोड़ डालो। स्वयं सत्यके समान विशाल और आकाशके समान उच्च प्रकाशको अपने हृदयमें प्रविष्ट**

होने दो। ध्यान देकर खिलते हुए फूलोंके, बहते हुए झरनोंके, लहलहाते हुए शस्य श्यामल खेतोंके, और टिम-टिमाते हुए तारोंके मधुर दिव्य संगीतको सुनो। प्रकृतिकी आवाज़-को ध्यान देकर सुनो। तुम्हारा हृदय स्वयं सत्य, शिव सुन्दरकी ओर उन्मुख होगा जिस तरह पौधा प्रकाश के लिए भगवान् सूर्यकी ओर मुख कर लेता है। तुम यह अनुभव करोगे कि हज़ारों अदृश्य शक्तियां तुम्हारी सहायताके लिए स्वयं हाथ बढ़ाए खड़ी हैं।

सत्यके विषयमें एक महान् प्राकृतिक नियम है, और वह यह है—जब कोई व्यक्ति अपने बौद्धिक अभिमान, पूर्व-निर्धारित सम्मतियों और पक्षपातके कारण सत्यके प्रवेश-द्वारको रोक लेता है, उस समय प्रकृतिके किसी स्रोतसे भी सत्य उसमें कदापि प्रवेश नहीं कर सकता; और इसके विपरीत जो अपने हृदयको सत्यके प्रवेशके लिए सदा उन्मुक्त रखता है; सत्य अनेक स्रोतोंसे उसमें प्रवेश करता है। ऐसा व्यक्ति सर्वथा स्वतन्त्र हो जाता है, क्योंकि यह सत्य ही है, जो हमें स्वतन्त्रता प्रदान करता है।

जहां सत्यसे इन्कार किया जाता है, वहां सत्यके साथ रहनेवाली ईश्वरीय देन और अनुग्रहसे भी व्यक्ति सर्वथा वञ्चित हो जाता है; और इसके साथ ही भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे व्यक्तिका ह्रास होना प्रारम्भ होता है।

# मृत्यु-विज्ञान

ले०—श्री गंगाप्रसाद गौड़ "नाहर"

कोई ज़माना था, जब भारतवर्षमें प्राण-विद्या और यौगिक-विद्या के प्रकाण्ड पण्डित और द्रष्टा हुआ करते थे। संस्कृत में इस विषय पर प्रकाश डालनेवाले साहित्यकी भरमार है; परन्तु हिन्दीमें अभी बहुत कमी है। प्रस्तुत लेखमें विद्वान लेखकने इसका स्वरूप, उसकी कार्य-प्रणाली तथा महिमापर प्रकाश डाला है और रोचक उदाहरणोंके द्वारा विषयके स्पष्टीकरणका यत्न किया है। —संपादक।

इसके अतिरिक्त परकायप्रवेश-विद्याके जाननेवाले योगीजन अपनी इच्छासे सहज ही में अपने स्थूल शरीरको छोड़कर किसी दूसरेके मृत शरीरमें प्रवेश कर जा सकते हैं। उदाहरणार्थ श्रीमदाद्य शङ्कराचार्यका दृष्टान्त प्रसिद्ध ही है, जिन्होंने सुधन्वाके शरीरमें प्रवेश किया था। उस समय उस नवीन सुधन्वाके अगाध ज्ञानको देखकर उसके दरबारी चकित-विस्मित हो गये थे जो स्वाभाविक था।

उपर्युक्त उद्धरणोंसे यह बात तो स्पष्ट ही हो जाती है कि अन्नमय शरीरके साथ प्राणमय शरीरको बांधनेवाले जीवनतन्तु का टूटकर अलग होना ही, मृत्यु को प्राप्त होना है, जिसको संसार भयकी दृष्टिसे देखता है। परन्तु अन्नमय शरीरमें रहते हुये ही जब हम इस जीवन-तन्तु और प्राणमय शरीरको अनुभव कर लेते हैं, तब उस जीवन-तन्तुके अन्नमय शरीरको छोड़ देनेपर भी साधकको मृत्युका भय नहीं होता।

हमारा जो स्वप्न शरीर है, उसीका दूसरा नाम प्राणमय शरीर है। स्वप्नमें अनेक बार आकाशमें उड़ने आदिका अनुभव होता है। इसका मतलब यही है कि प्राणमय शरीर उस समय, स्थूल शरीरके बाहर निकलकर अन्तरिक्षमें तैरता रहता है। और स्थूल-शरीर चारपाई पर निश्चेष्ट किन्तु प्राण-वायु-क्रिया-सहित पड़ा रहता है। साथ-ही-साथ चारपाईपर पड़े हुए स्थूल शरीर और प्राणमय शरीर, वा स्वप्न शरीरके आकारके बीच एक तन्तु जुड़ा हुआ होता है। इसे ही जीवन-तन्तु ( Silver cord or Astral cord ) कहते हैं। हमारे स्थूल शरीरमें जो प्राण-नाड़ी है, उसीके साथ यह तन्तु जुड़ा हुआ रहता है। इस जीवन तन्तुके घटक भी प्राण-परमाणु ही हुआ करते हैं। प्राणमय शरीर, इस प्रकार सहस्रों मील दूर जा सकता है। कहना न होगा कि मनुष्य जब इहलोकसे प्रयाण करता है, तब उसका यह जीवन-तन्तु टूट जाता है।

प्राणमय शरीरके उद्गमकी दो क्रियाएं हैं—एक विज्ञात उद्गमनकी और दूसरी अज्ञात उद्गमनकी। अज्ञात उद्गमन निद्राकाल में होता है। अज्ञात उद्-गमन, मानव-जाति की निद्रावस्थाका एक आवश्यक कर्म है। यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि जाग्रत अवस्थामें शरीर व्यापारके चलानेमें प्राण-शक्ति का जो व्यय होता है, उसकी पूर्ति निद्राश्रित उद्गमनसे होती है। स्थूल शरीरके बाहर सर्वत्र अनन्त, अमित प्राण-शक्ति जो भरी हुई है, निद्राकालमें हमारा प्राण-मय आत्मा, स्थूल शरीरके बाहर निकल कर उसी बाहरकी प्राण-शक्तिसे अपनी आवश्यकता भर प्राण-शक्ति बटोर कर, फिर अन्नमय शरीरमें आ जाता है। इस प्रकार निद्राकालमें प्राणमय आत्मा द्वारा सञ्चित प्राण-शक्तिसे ही शरीरके सब व्यापार होते हैं। अन्नरस से केवल उसके जीर्ण स्नायुओंमें उत्साह भर लाया जा

जा सकता है। क्योंकि यदि यह मानें कि अन्नरससे ही शरीरके सारे व्यापार होते हैं, तो निद्राकी फिर कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती, निद्राके बदले अन्न-रस ही देनेसे निद्राका काम हो जाना चाहिये था, पर ऐसा होता नहीं। अतएव यह माने बिना काम न चलेगा कि स्थूल शरीरके निद्राकालमें हमारा प्राण-मय शरीर, बाह्य प्राण-शक्तिका आकर्षण कर, संग्रह करनेके लिये, स्थूल शरीरके बाहर निकला करता है, और इस प्रकार से सञ्चित प्राण-शक्तिसे ही शरीरके सारे व्यायाम चलते रहते हैं।

यदि विचार कर देखा जाय तो मरता-जीता कोई नहीं। क्योंकि देह तो जड़ होनेसे प्रथम ही मरा हुआ है, और आत्मा सर्वदा अमर है। इस तर्क द्वारा मृत्यु, स्थूल शरीरका मात्र स्वभाव सिद्ध होता है, और अमरत्व, आत्माका।

इस विषयको एक अधिकारी विद्वान्ने एक दूसरे ढंगसे समझानेकी चेष्टा की है। उनका कथन है:—

"हम सभी मृत्युकी चर्चा करते हैं और कहते हैं 'अमुक व्यक्ति मर गया' किन्तु वास्तवमें इस मृत्युका अर्थ क्या समझते हैं? हमें आत्माका लक्षण, इस सम्बन्धमें पहले समझ लेना चाहिये।"*

(क्रमशः)

---

* लेखककी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'मृत्यु और उसके बाद' से। —लेखक।

# जीवनके लक्ष्यकी ओर

लेखक - श्री पं० वेदराज वेदालंकार

श्रीरामपुर, मैसूर स्टेट
५—८—४१

प्रिय अशोक !

मैं आज मातृभूमि मुलतानसे हज़ारों मील दूर, दक्षिण भारतके इस छोटेसे ग्राममें सकुशल पहुंच गया हूं। मैं यहांके एक मिडल स्कूलमें हेड मास्टरके पदपर नियुक्त हुआ हूं। मेरा दिल बहुत उदास है, रह-रहकर घरकी याद आती है। मैं यहां अपनेको बिलकुल अकेला पाता हूं, मेरे चारों तरफ अजनवी ही अजनवी नज़र आते हैं। अपनेको कोसता हूं, अपनी किस्मतको दोष देता हूं। इच्छा होती है कि घर वापिस लौट जाऊँ, पर अब कौनसा मुँह लेकर जाऊँ। जब घरसे चला था, तब तो ऐसा भाव प्रदर्शित करता था मानो मैंने माया, मोह, ममता पर पूर्ण विजय पा ली है; परन्तु अब रह रहकर भाई बहिनोंकी अपने प्यारे साथियोंकी याद सताती है। किसी वस्तुका वास्तविक मूल्य उससे अलग होनेके बाद ही मालूम होता है। रास्तेमें जब मैं देहलीसे बम्बईके लिए रवाना हुआ तो मेरा हृदय खुशीके मारे फूला न समाता था, और मैंने ट्रेनमें ही यहांकी कर्नाटक भाषा सीखना प्रारम्भ कर दिया था। मेरे एक अनन्य मित्र मुझे कर्नाटक भाषाकी गिनती सिखा रहे थे —वन्दू, यरडू, मूरु, नाल्कू (कर्नाटक भाषाके संख्यावाचक शब्द. जिनका अर्थ है, एक, दो, तीन, चार) इसके अतिरिक्त इस भाषाके छोटे-छोटे दैनिक व्यवहारमें आनेवाले वस्तुवाचक शब्द और वाक्य भी बतला रहे थे; मैं इन्हें अपनी डायरीमें नोट करता जाता और यात्रियोंकी आँख बचा चौथी पाँचवी क्लासके बच्चोंकी तरह ज़ोर २ से चिल्लाकर अपना पाठ याद कर रहा था, मानो एक ही दिनमें मैं कर्नाटक भाषाका धुरन्धर, पारङ्गत विद्वान हो जाऊँगा। पर यहाँ आते ही उत्साह एकदम बरफ़की तरह ठंडा पड़ गया है। व्यथित हृदयको बार-बार सान्त्वना देता हूं; अनेकों युक्तियों और तर्कोंसे धैर्य बन्धाना चाहता हूं; पर सब निष्फल। क्या करूं, कुछ समझ नहीं आता।

तुम्हारा
प्रभात।

\+ \+ \+

श्रीरामपुर
१०—८—४१

प्रिय अशोक !

मैंने तुम्हें पिछले पत्रमें लिखा था कि मैं यहां बहुत उदास हूं, मेरा चित्त हर समय अपने घरकी ओर जाता है तुम्हें यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि मैं अब यहां खूब खुश हूं, मस्त हूं। चारों ओरकी नैसर्गिक शोभाने मेरा मन हर लिया है; यहांके उन्नत गिरिशृङ्गोंमें, कावेरी नदीके कल-कल निनादमें; स्थान-स्थानपर लहराते हुए कदली कुंजोंमें एक अद्भुत आकर्षण है। इस शान्त वातावरणमें मैं कई बार बहुत ही मस्त हो जाता हूं। कल सायंकाल स्कूल की छुट्टी होनेके बाद मैं कावेरीके किनारे-किनारे कई मीलतक भ्रमण करता हुआ चला गया। उस समय भगवान सूर्य अस्ताचलकी ओर प्रयाण कर रहे थे; उनका मधुर प्रकाश सरिताके वक्षस्थलको रंगीन बना रहा था। आकाशमें रंग-बिरंगे बादलोंका मेला लगा हुआ था। चारों तरफ मीलों तक हरे-हरे धानके खेत लहरा रहे थे; और खेतोंके बीचमें कहीं-कहीं नारि-

यलके वृक्ष शोभायमान थे ; मानो खेतोंकी चौकीदारके रूपमें रखवाली कर रहे हों। प्राकृतिक दृश्योंकी अनुपम शोभासे मैं आनन्द-विभोर हो उठा। मैंने नदीके जल से हाथ, मुँह धोकर उस नीरव, निस्तब्ध मौन संध्यामें उच्च स्वरसे गायत्री मंत्रका जप किया। मेरा हृदय-पुष्प खिल उठा, मैं वस्तुतः अनुभव करने लगा कि मैं पूर्ण आत्मा हूं, मेरी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं। शान्तिका अपार सागर बह रहा है। यह आनन्द अनुभवकी वस्तु है। ध्यानके बाद मैं सोचने लगा कि यदि मनुष्य इन इच्छाओं और कामनाओंके पाशसे मुक्त हो जाय ; तो उसका आत्मा कितना निर्मल हो जाय। ज्यों-ज्यों मनुष्य अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओंको बढ़ाता चला जाता है, त्यों-त्यों उसका दुःख भी बढ़ता जाता है। सच्चे सुख और आनन्दकी प्राप्तिका एकमात्र वास्तविक उपाय यही है कि अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को कमसे कम करो।

मनुष्यने भगवान्‌की सृष्टिका सूक्ष्मतया निरीक्षण नहीं किया, इसीलिए उसे आनन्दके स्रोतोंका पता नहीं। इस शान्त प्रदेशमें मैं अपनी आत्माके फूलको खिला हुआ पाता हूं। ऐसा सुनते आते हैं - दीपक राग गानेसे दीपक जल उठते हैं ; पता नहीं यह ठीक है या नहीं परन्तु इस सुन्दर संगीतमय आध्यात्मिक प्रदेशमें निश्चय ही मनका बुझा हुआ दीपक जल उठता है। ऐसा सुनते आते हैं मल्हार राग गानेसे मेघ बरस पड़ते हैं ; पता नहीं यह ठीक है या नहीं, परन्तु इस दिव्य वातावरणमें भगवान्‌की अद्‌भुत लीलाओंको देखकर अनायास ही नेत्रोंसे स्नेह-सुधाकी वृष्टि होने लगती है। शहरोंका जीवन संग्राममय है, यहां आकर अनुभव होता है, जीवन संगीत है, कविता है। शहरोंके बीभत्सतापूर्ण वातावरणमें मानस-पुष्प मुरझा जाता है, इस पवित्र वातावरण में मानसपुष्प खिल उठता है। तुम्हें यहां आनेके लिए प्रेम-पूर्ण निमन्त्रण है।

तुम्हारा
प्रभात।

× × +

श्रीरामपुर
२०—८-४१

प्रिय अशोक !

तुमने मेरा यहां आनेका निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया है, इसके लिए हार्दिक धन्यवाद। तुमने अपने पत्रमें मेरी दिनचर्याके बारेमें पूछा है। लो सुनो, मैं यहाँ प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्तमें पांच बजे उठकर कावेरीके किनारे-किनारे लगभग दो मील भ्रमणके लिए जाता हूं, वहीं शौच, दन्तधावन, स्नान आदिसे निवृत्त होकर भगवदाराधन करता हूं ; फिर स्कूलमें पढ़ानेके लिए चला जाता हूं, स्कूल भी एक सुन्दर सुरम्य पहाड़ीपर बना हुआ है। स्कूलसे लौटनेके बाद मेरा सायंकाल और रात्रिका समय प्रकृतिके निरीक्षणमें बीतता है। मुझे अब फूल पौधोंसे, सरितासे, चाँद और तारों भरी रातसे विशेष स्नेह हो गया है। मैं अस्त होते हुए सूर्यको निर्निमेष नयनोंसे देखता रहता हूं ; यहाँ हरे-हरे धानके खेतोंके बीचमें संन्ध्यावन्दनके समय मैं भी इनकी तरह मस्तीके झूलेमें झूलने लगता हूं। प्रकृतिके साथ क्रीड़ा करनेमें मुझे विशेष आनन्द आता है। प्रकृति निरीक्षणके अतिरिक्त आजकल मेरा विशेष ध्यान स्वाध्यायकी ओर है। स्वाध्यायके लिए स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, जेम्स एलेन, राल्फ वाल्डो ट्राईन और इमर्सन मुझे बहुत पसन्द हैं। स्वामी रामतीर्थके पीछे तो मैं दीवानासा हूं। स्वामी रामकी एक पंक्ति पढ़नेके बाद आँखें बन्द कर लेता हूं और उसपर मनन करने लगता हूं। इस प्रकार मनन और विचारपूर्वक जो चीज़ पढ़ी जाती है, वह

हमारे चरित्रका अंग बनती चली जाती है। उसके अनुकूल ही हमारा चरित्र निर्माण होता है, और फिर धर्मके क्षेत्रमें जितना क्रियात्मिकताका महत्व है, उतना ज्ञानका नहीं।

अक्सर सायंकालको मैं यहां हरे-हरे खेतोंके बीच-में एक ऊँचे टीलेपर आ बैठता हूं। यहांसे कावेरीके एक सुन्दर प्रपातका नज़ारा देखते ही बनता है। उर्दूके एक मशहूर शायरकी एक छोटीसी लाइन गुनगुना रहा हूं।

**दरियाए इश्क बह रहा**
**समुन्दरकी लहरोंमें बेशुमार।**

तुम्हारा
प्रभात।

+ + +

श्रीरामपुर
२९—८—४१

प्रिय अशोक!

कलकी रात मेरी ज़िन्दगीमें सबसे अधिक प्रफुल्लता की रात थी। इतना आनन्द मैंने आजतक अपने जीवनमें अनुभव नहीं किया। तुम सुननेके लिए लालायित हो रहे होगे; लो सुनो; मैं रातको यहाँ पहाड़ी पर बने हुए मकानमें सोता हूं। लगभग रातके दो बजे थे। मैं पेशाबके लिए उठा। बाहिर उन्मुक्त, नील निर्मल गगनके नीचे पहुंचते ही मेरी हृदय-वीणा बज उठी। आकाश गंगा ( Milky way ) का इतना सुन्दर दृश्य मैंने आजतक नहीं देखा। दूधके समान श्वेत तारोंकी वह लम्बी रेखा—मैं एक टक उसे देखता रहा; शीतल जलसे मुख प्रक्षालन किया, हरी घासपर पद्मासन लगा कर बैठ गया, गायत्री मंत्रका उच्चारण किया और कल्पनाके साम्राज्यमें विचरने लगा। मैं उस मस्तीकी दशामें कल्पना करने लगा कि मैं केवल एक धोती धारण किए आकाशगंगा पर टहल रहा हूं, महाराजाधिराजोंको भी यह आनन्द प्राप्त न होगा। मैं बहुत देर तक बेसुध रहा, आँखोंमें भक्तिके आँसू उमड़ पड़े। मेरे भगवान्की सृष्टिमें इतना महान् ऐश्वर्य और आनन्द सन्निहित है। इस समय मेरी इन्द्रियां, मन और आत्मा बिलकुल मौन थे; मुझे मौनकी महत्ताका भी ज्ञान हुआ। मैं अपना अधिकांश समय अब मौनमें व्यतीत करता हूं। मौनकी परमावस्थापर पहुंचकर मैं अनुभव करने लगा हूं कि मानव-जीवन तभी सार्थक हो सकता है, जब इसे प्रभु-भक्ति और परोपकारमें लगा दिया जाय। केवल लेक्चर-बाज़ीसे, शाब्दिक सहानुभूतिसे, हम दूसरोंका वास्तविक उपकार नहीं कर सकते; यही सोचकर मैंने थोड़ा बहुत चिकित्सा शास्त्रका अध्ययन प्रारम्भ किया है। ताकि मैं भविष्यमें यहांके ग्रामवासियोंकी सेवा कर सकूं।

तुम्हारा
प्रभात।

× + +

श्रीरामपुर
१०—९—४१

प्रिय अशोक!

आज मैं सायंकाल घूमते घूमते कावेरीके किनारे बहुत दूर निकल गया। एक वृक्षके नीचे तेजस्वी, प्रशान्त-चित्त महर्षि बैठे थे, आँखें कुछ खुली हुई कुछ बन्द थी। चेहरेपर अपूर्व तेज था; व्यक्तित्वमें अद्भुत आकर्षण था। उनके पास ही उपनिषदें, वेद और गीता आदि धार्मिक ग्रन्थ पड़े थे तथा तुम्हें यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य होगा—परन्तु इससे आश्चर्यकी कोई बात नहीं कि इन पुस्तकोंके पास ही तलवार, बन्दूक, धनुषबाण आदि शस्त्र सुशोभित हो रहे थे। कुछ दूरपर चन्द तेजस्वी बालक अपना पाठ याद कर

रहे थे। यह दृश्य देखते ही मुझे प्राचीन तपोवनोंकी याद हो आई। अस्तु। उन महर्षिके व्यक्तित्वमें इतना आकर्षण था कि मेरा मस्तक श्रद्धासे उनके प्रति अवनत हो गया। महर्षि अपनी वाणीसे अमृत उड़ेलते हुए बोले—"कहो वत्स! कैसे आए!" मैंने अपना भ्रमण-वृत्तान्त सुनाया और उपदेशके लिए प्रार्थना की। महर्षि अपूर्व हास्यके साथ बोले! "वत्स! मातृभूमि परतन्त्रताके पाशसे जकड़ी हुई है। ग्रामोंमें अविद्या और अज्ञानका घोर अन्धकार छाया हुआ है। इस समय तुम्हारा सर्वप्रथम कर्त्तव्य यही है कि ग्रामोंमें जाकर ज्ञानकी ज्योति जगाओ, ग्रामवासियोंमें राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना पैदा करो। परन्तु यह देशसेवा एक महान् साधना है। इसके लिए तुम्हें सबसे पहले अपना जीवन निर्माण करना होगा। अपने चरित्रको उज्वल बनाना होगा।" बस यही मेरा संक्षेपमें उपदेश है पहले अपनेको जलाओ फिर दूसरोंको प्रकाश दो।

मैंने कुछ संकोच करते हुए कहा--"भगवन! हृदयमें एक शंका उठ रही है,—महर्षिने पहले ही मेरे मनकी बात जान ली और मेरा वाक्य पूरा होनेसे पहले ही कहा—कि ये शास्त्र कैसे पड़े हैं; शास्त्रोंका क्या प्रयोजन, यही शंका तुम्हारे हृदयमें उठ रही है न।"

मैंने अपना मस्तक हिलाते हुए कहा—हाँ, भगवन्!

महर्षिके आँखें चमक उठी और उन्होंने कहना शुरू किया—"वत्स! हिंसा और अहिंसाके वास्तविक स्वरूपको न जाननेके कारण, शस्त्रोंका सर्वथा परित्याग करनेके कारण ही हमारे देशका अधःपतन हुआ है। शास्त्रके साथ-साथ शस्त्रकी भी महत्ता है। वेदान्त ग्रन्थों, उपनिषदों, वेदों और गीताके साथ-साथ तलवार, बन्दूक, धनुषवाण आदि शस्त्रोंकी शिक्षा भी स्वदेशोद्धारके लिए अत्यन्त आवश्यक है। जिस समय हमारे देशमें सच्चे क्षात्र धर्मका उदय होगा; हम कभी पराधीन नहीं रह सकते। शस्त्रोंके छिन जानेसे ही हम पंगु हो गए हैं। ये बच्चे जो तुम्हें सामने दिखाई दिखाई देते हैं - इन्हें मैं जहां भक्त सूरदास, तुलसीदास, समर्थ गुरु रामदास स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्द की कथाएँ और जीवन-चरित्र सुनाता हूं; वहां इनको राणा प्रताप, शिवाजी महाराज और गुरु गोविन्द सिंह की वीररस भरी गाथाएं भी सुनाता हूं जिससे इनमें क्षात्र धर्मका संचार हो। शास्त्रोंकी शिक्षाके साथ शस्त्रकी शिक्षा भी देता हूं।

मुझपर महर्षिके वचनोंका अद्भुत प्रभाव पड़ा और मैंने कहा—"भगवन्! आजसे मैं भी आपके पथका अनुगामी होना चाहता हूं, मुझे भी सच्चे कर्मयोगकी दीक्षा दीजिए। मेरा भी यही दृढ़ संकल्प है कि मैं गृहस्थके बन्धनोंसे मुक्त होकर अपना जीवन प्रभुभक्ति और परोपकारमें लगा दूं।"

महर्षि बोले—"वत्स! क्षणिक भावुकताके आवेश में आकर संन्यास लेनेसे तुम्हारी हानिकी संभावना है; इसलिए पहले भलीभांति सोच विचार लो, सांसारिक इच्छाओंपर विजय प्राप्त कर लो, तब तुम्हारा संन्यास लेना सार्थक होगा; आजसे तीन दिन बाद अच्छी तरह सोच कर फिर मेरे समीप आना।"

इस वार्तालापके बाद मैं वहांसे वापिस अपने आवास स्थानकी ओर चल पड़ा। तीन दिन महर्षिने सोचनेके लिए दिए हैं, देखें फिर क्या होता है।

तुम्हारा
प्रभात।

+ + +

श्रीरामपुर
१५—६—४१

प्रिय अशोक !

तीन दिनके विचार और मननके उपरान्त मैंने संन्यास लेनेका दृढ़ निश्चय कर लिया है। परन्तु मेरा यह संन्यास इस कर्मक्षेत्रका परित्याग करनेके लिए नहीं है, अपितु और भी उत्साह और लगनके साथ अपने जीवनको कर्ममय बनानेके लिए है; मैंने अपने समस्त-जीवनको भारतमाताकी सेवामें अर्पित करनेका दृढ़ निश्चय किया है और महर्षिने भी इसकी सहर्ष अनुमति प्रदान कर दी है। कर्मक्षेत्रमें प्रवेश करनेसे पूर्व मैं अपने जीवनको साधना और तपस्याकी भट्टीमें जलाकर पवित्र बनाना चाहता हूं और यहीं महर्षिके तत्वावधानमें शस्त्र तथा शास्त्रकी क्रियात्मिक शिक्षा लेकर ग्रामवासियोंकी सेवा द्वारा भारतमाताके समुद्धार और स्वतन्त्र होनेकी आशा करता हूं। भगवान्‌से मेरे सदाशयोंकी सफलताके लिए प्रार्थना करना। अच्छा, विदा—स्वतन्त्रभारत के उज्वल प्रभातमें फिर मिलेंगे।

तुम्हारा
प्रभात।

# तुम्हारी खोजमें

रचयिता—श्री महावीर प्रसाद विद्यार्थी

भगवान्को पानेके लिए मनुष्य इस पृथिवीका कोना-कोना छान डालता है, पहाड़की कन्दराओं और वनोंमें विचरता है, तरह-तरह के जप, योग, समाधि और अनुष्ठान करता है,—इतने पुष्कल परिश्रम के उपरान्त भी जब उसे भगवान्के दर्शन नहीं होते तो वह हार कर बैठ जाता है, कि इतनेमें अन्दरसे आवाज़ आती है कि भगवान् तो तुम्हारे हृदय-देशमें विराजमान हैं, ज़रा अन्दर झांक कर देखो ; प्रस्तुत गद्यगीत में यही भाव बड़े सुन्दर, साहित्यिक रूपमें चित्रित किए गए हैं। —संपादक।

नदियों के उमड़ते हुए प्रवाहों को पार कर—
मरुस्थली की झंझा के झकोरों में,
तुम्हारी झलक—केवल एक झलक पाने के लिए,
मैं मारा मारा फिर रहा था, न जाने कब से !

उत्तुङ्ग, गगन-चुम्बी शृङ्गों पर,
नीरव निर्जन में—तुम्हें पुकारता हुआ—
--निस्तब्ध निशा का वह अट्टहास,
मेघों का वह ताण्डव, उनकी वह गर्जना,
रवि की प्रखर रश्मियों के वे प्रहार—
मैं हार गया नाथ ! तुम्हें खोजते-खोजते।
किंकर्त्तव्यविमूढ़—मन को मसोसता हुआ
बैठा था, निराशा के उस अन्धकार में।

अकस्मात्—बिजलीसी कौंध गई !
मेरी आंखें खुल गईं, मैं ने देखा—
तुम चुपके-से हँस रहे थे !—
मेरे ही हृदय के एक कोने में, मेरे प्रियतम !

# गोविन्दगुप्त ( खण्डकाव्य )

रचयिता – श्री गंगाप्रसाद 'कौशल'

( तृतीय तथा चतुर्थ सर्गमें गोविन्दगुप्त तथा स्कंदगुप्त का भाभी तथा माताासे क्रमसे विदा लेना, सीमापर हूणोंसे लड़ने जाना, महाविजयी अग्निगुप्त का हूणोंसे भयानक युद्ध और स्वर्ग-प्रयाण तथा गोविन्दगुप्त की विजय आदिका वर्णन है )।

( गतांक से आगे )

## तृतीय सर्ग

( १ )

'देवर ! तुम जाते हो लड़ने
बोलो अब कब आओगे ?
दुख-ग्रसिता अपनी भाभीका
कब आ दुःख बँटाओगे ?

( २ )

उस दिन अगर नही तुम आते
तो अनर्थ बस हो जाता ;
मेरा पंचतत्व का पुतला
मिट्टी बनकर सो जाता ।

( ३ )

महाराज की बात आजकल
देवर ! बड़ी निराली है ;
तुमने तो अपनी आँखों से
सब कुछ देखी भाली है ।

( ४ )

मैं भी तो आख़िर क्षत्राणी
इज्ज़त खो क्या जीना है !
आज पिया कल पिया मृत्युका
प्याला सबको पीना है ।

( ५ )

यदि वेश्या-बाला आ जाती
पट्ट महादेवी बन कर—"
"तो क्या तुम फिर सेवा करती
यह कहती हो भाभी वर ?"

( ६ )

'नहीं, नहीं, मैं उसे पूजती
अर्घ्य और चन्दन लेकर ;
'पा जाती फिर उससे भावी
तुम कोई अच्छा-सा वर ।"

( ७ )

'झोंक भाड़में उसको देती'
'किसको क्या, उस बाला को ?'
'नहीं नहीं सानन्द रहें वे
मैं उसके वर आला को ।"

( ८ )

'अच्छा देवि ! विदा दो मुझको
जालंधर मैं जाता हूं ;
हूणराज़ की सेना को मैं
जाकर शीघ्र भगाता हूं ।"

( ९ )

बेटा भी तो साथ तुम्हारे
देवर ! मेरा जाएगा ;
ज़रा ध्यान उसका भी रखना
चंचल है दुख पाएगा ।"

( १० )

'भाभी ! तुम क्यों दुःख पाती हो
कह दो इसे न ले जाऊं' ;

'नहीं, इसे अब रोक समरसे
क्या मैं कायर कहलाऊं !!!

( ११ )

इसी समयके लिए जना था
मैंने अपना यह बेटा;
देवर ! कभी किसीसे इसको
नहीं समझना तुम हेटा।

( १२ )

यह बालक है क्षत्राणीका
रण में हाथ दिखाएगा;
सब चोटें सीनेपर लेगा
पीछे घाव न आएगा।"

( १३ )

मुस्काकर गोविन्दगुप्त फिर
बोले—"धन्य महाभागे !
ऐसी अच्छी भाभी पाकर
भाग्य हमारे हैं जागे।

( १४ )

हाथ जोड़कर स्कंदगुप्त फिर
लेने लगा विदाई है;
युग युग जीवो वीर कर्मकर—
दी आवाज़ सुनाई है।

( १५ )

चूम लिया मा ने बेटे को
झुक देवरने चरण छुए;
फिर प्रणाम करके वे दोनों
चलने को तैयार हुए।

( १६ )

माने भाभीने आशिष दे
उन्हे वहां से विदा किया;
आकर बाहर उन वीरों ने
फिर सेना का मार्ग लिया।

## चतुर्थ सर्ग

( १ )

हूणों की सेना आती है
या टिड्डी दल आता है;
सभी दिशाएं कंप जाती हैं
भूमण्डल थर्राता है।

( २ )

किन्तु आर्य वीरों के आगे
काल स्वयं भय खाता है;
'मार-मार' जब ये कहते हैं
जल थल सब कँप जाता है।

( ३ )

इनकी असि क्या कालसर्पिणी
हूणोंको डस जाती है;
कंठालिङ्गन करने में वह
अद्भुत कला दिखाती है।

( ४ )

आज शतद्रू के तटपर तो
कल ही कुछ आगे बढ़ कर;
छापा चारों ओर मारते
दुष्ट अनार्य हूण बर्बर।

( ५ )

आर्य वीर सब आगे बढ़ बढ़
क्या तलवार चलाते थे;
दुश्मन उन्हें देखकर उंगली
दाँतों-तले दबाते थे।

( ६ )

उधर वक्षु-तट-हाल सुनो कुछ
ईश्वर की अद्भुत माया;
जगतीतल पर उस ईश्वर का
भेद कहो किसने पाया ?

( ७ )

अर्ध सहस्र सैनिकों को ले
अग्निगुप्त आगे आए;
आर्य नरों ने फिर हूणों को
अपने कौतुक दिखलाए।

( ८ )

भारी मार. मचा दी रण में
भगदड़ हूण-कुमारों में;
नहा रहे थे वीर लोग अब
असि गंगा की धारों में।

( ९ )

सरिता बही रक्त की अब तो
ढालें कच्छप बन जाती;
लाशोंकी नावें वे बनकर
अरे! तैरती हैं आती।

( १० )

गृद्ध बैठकर आँख निकालें
लाशों के वक्षस्थल पर;
गीदड़ नोंच मांस खाते हैं
जंघाओं का घुर घुर कर।

( ११ )

रण की चण्डी आज मस्त हो
खप्पर भर इतराती है;
घूँट घटाघट पिए खून के
फूली नहीं समाती है।

( १२ )

भूत पिशाच सैकड़ों ही तो
नृत्य भयंकर करते हैं;
सुन्दर छोटी चुड़ैलियों के
लिए झगड़ते मरते हैं।

( १३ )

कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी तोड़ें
मज्जा भी खा जाते हैं;
आतों के वे हार बनाकर
पहन पहन इतराते हैं।

( १४ )

लो देखो! पिशाचिनी आई
और लाश पर बैठ गयी।
फिर मुरदेका पेट. फाड़कर
खाती कर तरकीब नयी।

( १५ )

खोपड़ियोंकी गेंद बनाकर
कन्दुक - क्रीड़ा करते हैं;
और खून की सरिता में वे
सब स्वच्छन्द विहरते हैं।

( १६ )

इतने ही में अग्निगुप्त ने
कहा—"अरे मेरे वीरो!
आर्य-वंश का खून बह रहा
रग रग में है रणधीरो!

( १७ )

अपने दादाने तो देखो
सभी विश्व दहलाया था;
और विधर्मी लोगों का तो,
नाम समूल मिटाया था।

( १८ )

वही रक्त तुम में बहता है
बढ़ो बढ़ो वर वीर बढ़ो;
दुश्मन के सीने पर हंस कर
चढ़ो चढ़ो वर वीर चढ़ो।

( १९ )

रणचण्डी भूखी है इसकी
सारी प्यास बुझा दो तुम ;
हूण वंश का अनाचार यह
जग से आज मिटा दो तुम।

( २० )

लगे अगर भाला तिल तिलपर
फिर भी आह नहीं करना ;
समराङ्गण से हाय, भागना
तो है जीते जी मरना !!

( २१ )

सिंह समान आज लड़ करके
अगर वीर-गति पाओगे ;
सुर-बालाओं से सम्मानित
स्वर्ग चले तुम जाओगे।

( २२ )

यद्यपि हम थोड़ी संख्या में
पर शेरों को है क्या डर ?
ये भेड़ें हैं इनको खाओ
खाओ जा वीरो सत्वर।"

( २३ )

बढ़ी जोश में आगे सेना
चमकी नंगी तलवारें ;
काल - सर्पिणी - सी लहराती
भारी विकट मार मारें।

( २४ )

भगदड़ मची शीघ्र हूणों में
किन्तु नयी सेना आई ;
उस सेना से आर्य-सैन्य ने
जल्दी ही शिकस्त खाई।

( २५ )

आर्य-सैन्य भी लड़ी खूब पर
गई अन्त में सब मारी ;
अग्निगुप्त के घाव हृदय में
लगे बड़े ही थे भारी।

( २६ )

मरने को मर गए, किन्तु कब
राष्ट्र-पताका को छोड़ा ?
मरने को मर गए, किन्तु कब
समराङ्गण से मुंह मोड़ा ?

( २७ )

ऐसे वीर नहीं मरते हैं
उनका रहता नाम अमर ;
देव-तुल्य दुनियां में पुजते
धन्य धन्य हैं ऐसे नर।

( २८ )

किन्तु भाग्य की बात इसी क्षण
श्री गोविन्दगुप्त आए ;
और साथ में अपने शिक्षित
एक विशाल सैन्य लाए।

( २९ )

हल्ला बोल दिया आर्यों ने
हूण वीर सब घबराए ;
अब गोविन्दगुप्त के आगे
कौन खड़ा रहने पाए ?

( ३० )

बुरी तरह से उन्हें खदेड़ा
हद के बाहर कर आए ;
अग्निगुप्त के प्रेत कर्म सब
फिर विधियों से करवाए।

# सत्य की महिमा

## ले०—स्वर्गीय महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर

बंगला के साहित्यिक क्षेत्रमें सूर्य के समान चमकनेवाले, साहित्य-सम्राट्, नोबल पुरस्कार विजेता स्वर्गीय महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के नामसे प्रत्येक भारतवासी परिचित ही हैं। यहां महाकवि की एक छोटीसी सरल, भाव-पूर्ण कहानी अंग्रेजी से अनुवाद करके दी जाती है।

—संपादक।

सुन्दर, रमणीय, भव्य तपोवन। भगवान् सूर्य अस्ताचलकी ओर प्रयाण कर रहे हैं और उनकी किरणें सरिताके जलको सुनहला बना रही है।

ऋषि-कुमार अभी-अभी पशु चराकर वनसे लौटे हैं और अग्नि देवता के चारों ओर बैठे हुए अपने गुरु महर्षि गौतम के उपदेशामृत का पान कर रहे हैं कि इतनेमें एक किशोर अपने फूलसे कोमल हाथोंमें फल, पुष्प लिए हुए महर्षि के समीप आता है और श्रद्धासे मस्तक झुकाकर संगीतमय स्वर में कहता है—"भगवन्! मैं आपके चरणोंमें ब्रह्म-विद्याकी प्राप्तिके लिये आया हूं; मैं सत्य के मार्गका पथिक बनना चाहता हूं मेरा नाम सत्यकाम है।"

महर्षि ने कहा—"वत्स! तुमपर भगवान्के आशीर्वादोंकी वर्षा हो; क्या तुम बतला सकते हो कि तुम्हारी जाति क्या है, क्योंकि ब्राह्मण ही ब्रह्म-विद्या का अधिकारी है।"

उस किशोरने जवाब दिया 'श्रीमन्! मैं नहीं जानता, मेरी क्या जाति है, मैं अपनी माताके समीप जाऊँगा और इसका पता लगाऊँगा।"

( २ )

वह किशोर तपोवनसे विदा हुआ और नदीको पार करके ग्राममें आया, जहां दीपके सात्विक-प्रकाश से आलोकित एक टूटी-फूटी झोंपड़ीके द्वारपर उसकी माता उत्सुक नेत्रोंसे उसके आगमनकी प्रतीक्षा कर रही थी।

माताने अपने बच्चेको छातीसे लगाया, उसका चुम्बन लिया और तपोवनका वृत्तान्त तथा महर्षिका आदेश सुनानेको कहा।

बच्चेने सरलतासे पूछा—"माँ! मेरे पिताजी का क्या नाम था; क्योंकि महर्षिका कहना है कि केवल ब्राह्मण ही ब्रह्म-विद्या का अधिकारी है।"

माताने आँखें नीची कर लीं और धीमे स्वरमें कहा—"अपनी तरुणावस्थामें मैं निर्धन थी और मेरे अनेक स्वामी थे। मेरे प्यारे! तूँ अपनी माता जाबाल की गोदमें आया, जिसके कोई पति नहीं था।"

( ३ )

उदय होते हुए भगवान् सूर्यकी किरणें तपोवन के वृक्षोंकी चोटियोंको जगमगा रही थी।

प्रातःस्नान के बाद विद्यार्थीगण अपने घुंघराले लहराते हुए गीले बालोंके साथ, महर्षिके सामने वृक्षके नीचे बैठे थे।

वहाँ वह किशोर आया।

वह महर्षिके चरणोंमें सिर झुका कर शान्त खड़ा हो गया।

महर्षिने पूछा—"वत्स! अब बताओ। तुम्हारी क्या जाति है?

किशोरने उत्तर दिया—"भगवन्! मैं नहीं जानता मेरी क्या जाति है, मैंने अपनी मातासे पूछा था पर उसने यही जवाब दिया कि "जवानीमें मेरे कई स्वामी थे, और तूँ अपनी माता जाबालकी गोद में आया, जिसके कोई पति नहीं था।"

शहदकी मक्खियों के छत्तेमें भनभनाहटकी तरह विद्यार्थियोंमें कानाफूसी होने लगी और वे इस जाति-शून्य किशोरकी धृष्टता पर हँसने लगे।

महर्षि गौतम अपने आसनसे उठ खड़े हुए, उन्होंने अपनी भुजाएं फैलाईं और उस किशोर को छातीसे लगाते हुए कहा—'वत्स! तुम सब ब्राह्मणोंमें सर्वश्रेष्ठ हो। तुमने उत्तराधिकारमें सत्यका महान् ऐश्वर्य पाया है।

अनु०—'श्रीवेद'

# दद्दू-दादा

लेखक—श्री बेढब 'सागरी'

श्री बेढब 'सागरी' हिन्दी साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं ; आपकी लिखी हुई कई सुन्दर ऐतिहासिक पुस्तकें—संसार की राज्यक्रान्तियां, संसार के राष्ट्रनिर्माता, ५७ के बाद भारत आदि हिन्दी साहित्य की शोभा बढ़ा रही हैं। आपकी हास्यरस-मिश्रित रचनाएं बड़ी मनोरञ्जक होती हैं। ज्यों–ज्यों आजकल हमारे जीवन, चरित्र, रहन-सहन आदि में कृत्रिमता आती चली जाती है, त्यों २ हमारा स्वास्थ्य भी दिन-प्रतिदिन चौपट होता जाता है। हमारे बुजुर्गों के सामने सदा "सादा जीवन और उच्च विचार" का ध्येय था इसीसे वे इतने कान्तिवान् और बलिष्ट थे। प्रस्तुत हास्यरस मिश्रित लेख में दद्दू दादा, के चित्रण द्वारा इसीको स्पष्ट करनेका सफल प्रयास किया गया है। —संपादक।

दद्दू दादा रानीपुरा गांवके रहनेवाले थे! दो साल ही गुज़रे होंगे, वे इस संसारसे चल बसे, जब तक दद्दू–दादा जीवित रहे, गांवकी चौर-बौर, और चहल-पहल खूब रही! अपनी उमरके सौ बरस पार कर जानेके बाद भी दद्दू लाठी टेक कर २ मीलका चक्कर बड़े सुबह काट आते थे—गांवके आदमी जब उन्हें घेर कर बैठते और उनसे हँसी-हँसीमें कहने लगते कि "दद्दू तुम्हारे मरनेके दिन तो आ गए ; अब बैठके आरामसे खाओ, पिओ और मौज करो, परमात्माने सभी कुछ दिया है।' तब दद्दू चिलमका कश खींचते हुए कहने लगते, 'बेटा! हमारे आजे १६० बरस के होकर मरे, और बाप १६० के होकर मरे, मैं मरूंगा दौ सौ का होकर, मरनेके दिन तो बेटा तुम्हारे हैं! आँखें घुसी हुई, कमर झुकी हुई, और गाल पिचके हुए, सीना नदारद ; दो मील चलनेपर गधेसे हांफने लगते हो। छोकरो! ऐसी नाकाम जिंदगी से तो मर जाना बेहतर है, पिरथी पर भार क्यों लादे हुए हो। एक ही औरत में तो हड्डी-पसली एक हो जाती हैं, और बनते हैं रनजीत सींग के बेटा?"

यह बात सच है कि दद्दू अपने बुढ़ापे तक भैंसका ताजा दो सेर दूध रोज पीते रहे! कभी-कभी तो ४ सेर से ऊपर डकार जाते थे! भोजन बड़ा ही सादा करते, लेकिन मठे के बड़े शौकीन थे! आध सेर मठा का पीना सुबह का एक नियमसा था। ८० बरस की उमर में तो दद्दू ने हुक्का का पीना शुरू किया था। कहते हैं कि दद्दू को अपनी उमर भरमें सिर्फ तीन बार बुखार आया। जुखाम तो उन्हें जिन्दगी में कभी हुआ ही नहीं। ठंड के दिनों में एक चादर ओढ़कर बाहर आंगन में सोते थे, और भीषण गर्मीमें भरी रजाई ओढ़कर घरके भीतर सोते थे। ६० बरस की उमर में दद्दू ने तीसरी शादी की और ६२ बरसकी उमर तक दो बच्चे और पैदा किए। इस तरह दद्दू के ११ लड़के और ३ लड़कियां थी, कुल टोटल नातियों सहित ४० के करीब था। दद्दू जब मरे थे तब उनकी उमर १४० के लगभग थी।

दद्दू जब कभी मौज में आते तो कहने लगते कि "ससुरे जमदूत धोके से ले जांय तो ले जांय, नहीं तो वैसे जमदूत के बाप भी आ जायं तो नहीं पकड़ सकते। हम भी कच्चे माई–बाप के नहीं हैं। अच्छे अच्छे देवता तो हमारी बाहों में बंधे हैं" दद्दू पढ़े-लिखे कुछ नहीं थे, पर बहस करनेमें अव्वल नम्बर के उस्ताद थे, मजाल किसी की बहस में कोई बाजी मार ले जावे। एक दिन बाहर से एक नेताजी गांव में लेक्चर देने आए। दद्दू भी लेकचर सुनने जा पहुंचे। नेताजी का

नाम था ब्रह्मचारी 'ब्रह्मानन्द सरस्वती।' लेकचर में पंडित जी कहने लगे, कि 'सात्विक जीवन से रहनेसे ही उमर बढ़ती है; बल बढ़ता है। प्रातःकाल का घूमना सबसे अच्छा है; आक्सीजन नामकी हवा मिलती है। टमाटर और पालक की भाजी खाने से स्नायु बल बढ़ता है। तेलकी मालिश से शरीर की चर्बी मिलती है' इत्यादि-इत्यादि। दद्दू के सुनते-सुनते कान ऊब गए। फिर क्या था, दद्दू को गुस्सा आया और लट्ठ लेकर उठ खड़े हुए; और पंडितजीसे कहने लगे—'महाराज खैरियत चाहो, तो गांव से अभी बाहर हो जाओ। ससुरे वज़न होगा २० सेर, हड्डी-पसली सब गायब, और नामका बरमचारी बरमानन्द। टमाटर और पालक की भाजी से उमर बढ़ती है। ससुरा लेकचर देने आया। दो बोल बोलते ही हांफने लगता है; गधा कहींका।" दद्दू की फटकार से ब्रह्मचारी नौ-दो-ग्यारह हो गए। एक दिन एक सुराजी नेता कहींसे उस गांव में आ गए। फिर क्या था, दद्दू ने उनको भी आड़े हाथों लिया। दद्दू कहने लगे कि महाराज आप गांव में आए सो अच्छे आए! पर उन जुलफन से और नारंगी के रस पीय-पीय के तो सुराज तो का, सुराज का बाल तक भी न मिलेगा। ४ सेर दूध और २ सेर मठा पीने की ताकत जब तक नहीं आयगी, सुराज नहीं मिल सकता। महाराज! दस मन का बाल उठाकर दो फुट फेंक देता हूं महाराज; और उमर है ९० की!" दद्दू की बातें सुनकर नेताजी संतरोंकी पोटली, और थैला उठाकर रफूचक्कर हुए।

दद्दू का बोल-बाला बड़ी दूर-दूर तक था। मजाल थी किसी की कोई किसी स्त्री से छेड़छाड़ करे। सौ कोस के घेरे में दद्दू की दुहाई फिरती थी। गांव में जब किसी लड़की की शादी होती थी; दद्दू की तरफ से एक गाय कन्यादान में ज़रूर दी जाती थी। दद्दू का हुक्म आसपास के २४ गांवों में चलता था। चौबीस गांवों की पंचायतें दद्दू की चौपाल में बैठती थीं; और न्याय होता था, दूध का दूध और पानी का पानी। दद्दू के अखाड़े के पट्ठे आज भी मौजूद हैं। पर वह बात कहां है, जो दद्दू में थी। अब तो पीपल के चबूतरे पर दद्दू का नाम ही सिर्फ रह गया है। लेकिन गांववाले कहते हैं, कि दद्दू की आत्मा अब भी रात के १२ बजे गांव में चक्कर लगाती; और जो ज़रा भी अन्याय करता है भूत बनकर लग जाते हैं। आजकल 'दद्दू—'दद्दू-देव" के नाम से पुकारे जाते हैं? यह है सात्विक-जीवन का रहस्य।

---

## आवश्यक सूचना

सात्विक-जीवनका वार्षिक मूल्य ३) है, विद्यार्थियों, विद्यालयों और पुस्तकालयोंसे २); नमूनेकी कापी के लिये।) आना आवश्यक है।

ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें, अन्यथा पत्रोत्तरमें विलम्ब और उचित कार्यवाहीमें असुविधा होगी।

# जीवनको उन्नत बनानेवाले हमारे कुछ प्रकाशन

## ( १ ) जीवन सौरभ—

प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि साधारण परिस्थितिमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको पढ़ें और अपनी सन्तान के हाथमें दें। मूल्य केवल ।-)।

## ( २ ) देशके नौनिहालोंसे—

नवयुवकों एवं छात्र तथा छात्राओंके लिये अनुपम उपहार। उन नवयुवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशकी आशा है, जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं; अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। मूल्य केवल -)

## ( ३ ) सदाचार का महत्त्व—

पुस्तक के सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय। सदाचार ही जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी कुञ्जी है; इसको कौन नहीं जानता। पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हुए हैं तथा अपनी और देशकी हानि कर रहे हैं वह सर्व विदित है। जो भारत संसारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसीलिये उसका पतन हो गया है। इस समय देशके युवकोंको सन्मार्गपर ले जानेकी आवश्यकता है। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल -)

## ( ४ ) स्वास्थ्य-पत्र—

यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ रहना ही मृत्यु है तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक धनहीन स्वस्थ जीवन दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्ग-तुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुखपूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है। २०"×३०" साइजके इमिटेशन आर्ट पेपरपर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बंधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है, इसलिये कि यह एक स्थायी चीज हो जाता है। मूल्य केवल =)

## ( ५ ) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास

स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है वह व्यर्थ ही जीवन-यापन करता है। जो देशके प्रति कुछ त्याग नहीं करता वह पशु सदृश है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र-सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन तो अवश्य हुआ है, किन्तु संक्षेपमें, सबके योग्य सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

## ( ६ ) कांग्रेस चार्ट—

इसमें बड़े सुबोध और सरल ढङ्गसे कांग्रेसके जन्मकालसे लेकर अबतकके अधिवेशनोंका विवरण, सभापति, स्थान, समयकी सूचना और किस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमिटेशन आर्ट पेपर पर साइज २०"×३०" दो रङ्गोंकी मनोहर छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। **जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०,** "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# मस्ती की तरङ्ग में

"मस्ती की तरङ्ग में" शीर्षक स्तम्भ में हमने शिष्ट विनोद एवं हास-परिहास आदि देने का निश्चय किया है, जिससे पाठकों का मनोरञ्जन हो सके! ज़िन्दगी में ज़िन्दादिली, खुशमिज़ाज़ी और मनोरञ्जन का हम प्रमुख स्थान मानते हैं। पहले २ मस्ती की तरङ्ग में श्री लहरी आपको घास खिलाएँगे। नाराज़ न होइए इस शेर को सदा अपने सामने रखिए—

ज़िन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है, मुर्दा दिल क्या खाक जिया करते हैं।

आशा है, अन्य पाठक भी समय २ पर अपनी हास्यरस की रचनाएँ भेजा करेंगे। —संपादक।

## लीजिए साहिब, घबराइए नहीं, गेहूं न मिले तो घास खाइए—

इस शीर्षक को देखकर पाठक शायद आश्चर्य करेंगे, कई तो फुलझड़ी की माफ़िक खिलने लगेंगे और कुछ सीधे बाबा विश्वनाथ की नगरी में मेरी खबर लेने चले आंए, तो इसमें भी कोई ताज्जुबकी बात नहीं। आप दिलमें सोचते होंगे कि यह भी अच्छा लालबुझक्कड़ है, जो आज इस २० वीं सदीके ज़माने में जब कि दुनियां प्रोटीन और विटामिन से मालामाल भरे दूध, दही, मक्खन, मलाई पर हाथ साफ़ करती है, यह घास खाने की सलाह दे रहा है; जरूर इसकी अक्लमें दीमक लग गई है। यह आगरेके पागलखानेकी शोभा बढ़ाने लायक है, तभी तो ऐसी ऊल जलूल बेसिर पैर की बातें कह रहा है।

## परन्तु यह मेरा मत नहीं—

यह मेरा मत नहीं. यह मत है उन लोगों का जिन लोगोंने आपके स्वास्थ्यके लिए प्रोटीन, विटामिन और कार्बोहाइड्रेट्स ( भोजन पदार्थों में पाए जानेवाले पोषक तत्त्व ) की थ्योरियों का ( Theories ) आविष्कार किया है और जिन की बातोंको आप वेद-वाक्य की तरह प्रमाणित मानते हैं। अभी हालही में कलकत्ता विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के अध्यक्ष डा० बी० सी० गुहाने अपनी लेबोरेटरी में घाससे चाय तैयार की है और जिन लालबुझक्कड़ों को यह चाय पिलाई गई, वे भी असली चाय से इसका कोई फ़र्क नहीं बता सके और डाक्टर साहिबको धन्यवाद देते हुए खुशी २ पी गए। इसके अलावा डाक्टर महोदय प्रेस प्रतिनिधियों से मुलाकात के समय फ़रमाते हैं कि देशमें खाद्य की कमी के कारण जो संकट पैदा हो गया है, उसे दूर करनेका एक यह भी उपाय है कि घास और हरी पत्तियाँ मानव खाद्यके रूप में प्रयुक्त की जांय। वाह साहिब वाह! क्या कहने हैं—इसे कहते हैं—

## 'हर्र लगे न फिटकरी रंग चोखा आय'

कुछ खर्च भी न हो और मज़े में काम भी बन जाय।

## इस आविष्कार पर नोबल पुरस्कार—

अपने रामकी रायमें इस आविष्कार पर डाक्टर साहिबको नोबल पुरस्कार मिलना चाहिये। हिन्दुस्तान की लेबोरेटियों में और तो कुछ नहीं, घास से चाय तो तैय्यार लोग कर ही लेते हैं। आज जब गेहूं-भूमि भारतवर्ष में गेहूं के दर्शन भी पूर्वजन्म के पुण्यों के परिणाम स्वरूप होते हैं और गेहूं भी भगवान् की तरह निराकार हो रहे हैं, इस आविष्कार पर नोबल

पुरस्कार भी तुच्छ है। इस लड़ाई के ज़माने में जब कि लोग मुट्ठी भर गेहूं की प्राप्ति के लिए नाना प्रकार की साधना और तपस्या करते हैं, तब जाकर कहीं घुन लगे जौ मिले गेहूं देवता के दर्शन होते हैं—इस आविष्कार से निश्चय ही मानव जाति का महान् उपकार होगा।

## एक शङ्का—

इस पर अपने राम के दिल में एक शङ्का बड़े ज़ोरों से उठ रही है कि क्या इन घास की पत्तियों से तैय्यार की हुई चाय के पीनेसे जिस्म में उतनी ही ताकत आएगी जितनी दूध, दही, मक्खन और मिश्री के सेवन से। यदि यह ठीक है तो इसका सबसे प्रथम परीक्षण इस आविष्कार के जन्मदाता श्री १०८ डाक्टर साहिब पर होना चाहिए। उन्हें केवल स्व-आविष्कृत चाय का ही सेवन कराया जाय, देखिए क्या गुल खिलता है। अपने रामको तो पूरा यकीन है कि तीन चार दिन घास की पत्तियोंसे बनी हुई चाय का सेवन करने से डाक्टर साहिबका काया-कल्प हो जाएगा और दिन में तारे दीखने लगेंगे। ये आविष्कार तो खाली दिमाग की कसरत है। लेबोरेटियोंमें बैठे २ कुछ तो करना ही चाहिए; नहीं तो खाली मक्खियाँ मारने से एक हजार रुपया महीना थोड़े ही मिल जाता है।

## अपने राम का इलाज—

अभी ऊपर डाक्टर साहिबका खाद्य-सामग्री की समस्या को हल करने का उपाय अर्थात् घास की पत्तियों से तैय्यार चायका सेवन बताया है; अब ज़रा अपने राम का इलाज भी सुन लीजिए। उर्दू के मशहूर शायर स्वर्गीय महाकवि अकबर का एक शेर है—

**क्या हुआ जो नोट कागज़ के चले**
**ग़म न खा रोटी तो गेहूंकी रही।**

यह शेर उस ज़माने में बना था, जब हिन्दुस्तान में गेहूं की इतनी धूम थी जितनी आजकल मुस्लिम लीग के, स्वयम्भू तानाशाह मियाँ जिन्ना की या हिन्दू सभा के आजीवन रजिस्टर्ड सभापति सावरकर महोदय की, या कुछ महीने पहिले हिन्दुस्तान के लिए तथाकथित आज़ादी की गठरी बान्ध कर आए हुए मि० क्रिप्सकी। यदि आज महाकवि जीवित होते तो वे अपने इस शेर में ज़रूर कुछ रद्दोबदल कर देते और अपने राम की सर्वश्रेष्ठ सम्मति में (आप बुरा न मानें, अपने राम अपनी सम्मति को सबसे श्रेष्ठ मानने का दम भरते हैं और यदि तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो लोग कहने को तो यह कह जाते हैं "मेरी तुच्छ सम्मति में" पर दिल में उनके भी यही भावना होती है कि उनकी सम्मति सर्वश्रेष्ठ है. लोग भी क्या करें आजकल की सभ्यता का यह तकाज़ा है, खैर, अपनेराम बिलकुल साफ़ २ कहनेवाले आदमी हैं, दूध को दूध कहेंगे और पानी को पानी) ये महाकवि अपने शेर को इस प्रकार कर देते—

**क्या हुआ जो गेहूं अब मिलता नहीं**
**ग़म न खा, गंगा में पानी बेशुमार है।**

पाठक-वृन्द! घबराने की कोई बात नहीं, आप क्यों व्यर्थ में गेहूं के लिए परेशान होते हैं; गेहूं न सही गंगाजल तो है और फिर भारतवर्ष में नदियों की क्या कमी है—गंगा, यमुना, सरस्वती, सरयू, कावेरी, बेतवा आदि नदियों का पानी आखिर किस मर्ज़ की दवा है; यदि इस मुसीबत के समय भी इनके पानी से फ़ायदा न उठाया गया तो क्या प्रलय के समय इनका उपयोग किया जाएगा। अपने राम की सर्वश्रेष्ठ सम्मति में गेहूं के स्थान पर जल देवता का ही उपयोग करना

चाहिए। परन्तु इसपर कोई भलेमानुस यह सवाल उठा सकता है कि जब सारे हिन्दुस्तानी पानी पर ही जीवन निर्वाह करेंगे तो दूसरे देशवाले खिल्ली उड़ाएंगे कि देखो भाई ! इन हिन्दुस्तानियों को खाने को भी नहीं मिलता। पर अपने राम बाबा विश्वनाथ के प्रसाद से दूरदर्शी हैं, इस समस्या का हल भी उनकी खोपड़ी ने निकाल लिया है, और वह यह है—

## सारे हिन्द में उपवास-चिकित्सा—

इस प्रकार का एक एलान निकाल दिया जाएगा, जिससे दूसरे देश वालोंपर परदा न खुले, क्योंकि आज इनकी सभ्यताकी यही शिक्षा है, कि चीज़ पर परदा डाल दो जिससे अन्दर का भेद न खुले। हाँ तो सारे संसार में यह एलान कर दिया जाएगा कि हिन्दुस्तानियों का स्वास्थ्य बिगड़ जाने से सब ने युद्ध की समाप्ति तक उपवास करनेका निश्चय किया है और इस बीच सब हिन्दुस्तानी केवल जलाहार पर, फलाहार पर हर्गिज नहीं, रहेंगे और सब संसारवासियों को सफल उपवास के लिए भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए। अच्छा, पाठक-वृन्द ! अब आप ही बतलाइए। इससे अच्छा और क्या नुसखा हो सकता है। आम के आम गुठलियों के दाम। स्वास्थ्य का स्वास्थ्य सुधर जाएगा और खाद्य सामग्री का संकट स्वयमेव टल जाएगा।

अब अपने राम यह जानना चाहते हैं कि एक हज़ार रुपया महीना पानेवाले डाक्टर साहिबका नुसखा अधिक अच्छा है या मेरा। इसका निर्णय मैं आपकी खोपड़ी पर छोड़ता हूं। अच्छा, जै रामजी की। विदा फ़िर मिलेंगे।

—श्री लहरी।

## मात वरदे, अमर वर दे !

रचयिता—श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'

आज अग जग को जगाने
पाप - तामस को हटाने
ध्येय पावन प्राप्त करने हेतु जीवन-मन्त्र वर दे !
मात वरदे ! अमर वर दे !

विकल मानस आज मेरा
कर रहा गुण-गान तेरा
पीर-परवशता मिटा लें, देवि, जग में प्राण भर दे !
मात वरदे ! अमर वर दे !

सुप्त मेरी पीर रोती
अश्रु-मुक्ता से संजोती
प्राण खोती अनमनी-सी, शीश पर वर-हस्त धर दे !
मात वरदे ! अमर वर दे !

# साहित्य-समालोचन

मल्लिका—लेखक—श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', प्रकाशक सरस्वती-मन्दिर ; प्राप्ति-स्थान, हिन्दी-भवन अनारकली, लाहौर ; मूल्य १।) प्रति ।

हमारे राष्ट्रके तरुण कवियों की काव्यधारा साधारणतः निराशावाद, वियोग, मिलन और चुम्बनके क्षेत्र तक ही परिमित है । एक तरफ़ आग लगी है, दूसरी तरफ़ मलार गाया जा रहा है । जब कि भारत-माता की छाती पर परतन्त्रता, दरिद्रता और दैन्य का ताण्डव नृत्य हो रहा है ; उस समय सत्यं शिवं सुन्दरम् के उपासक, काव्य-कला-मर्मज्ञ, राष्ट्रमें नवीन चेतना भरनेवाले कवियों का वियोग और निराशावाद का बेसुरा राग बहुत ही असमीचीन प्रतीत होता है । प्रस्तुत पुस्तक वियोग और निराशावादका एक छोटा-सा इनसाईक्लोपीडिया है । ऐसा प्रतीत होता है कि तरुण कवि को वियोग और निराशावादके सिवाय भगवान्‌की सुन्दर सृष्टि में कुछ नज़र ही नहीं आया ।

दूसरी बात मल्लिका में जो हमें खटकती है, वह यह है कि कवि की वैयक्तिक मार्मिक अनुभूतियाँ हमारे हृदयों को स्पर्श नही कर पाती ; इसलिए मल्लिका का क्षेत्र बहुत ही संकुचित हो जाता है ।

भूमिका में बड़े दावेके साथ कहा गया है कि "मल्लिका का वियोग किसी नायिका के प्रति नायक के शारीरिक मिलन की उत्कण्ठा नहीं है, न वह दुःखके पश्चात् सुख-प्राप्ति की मानसिक कामनाका द्योतक है" भूमिकाकी इन पंक्तियोंको पढ़नेके बाद स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि फिर इस वियोगका क्या स्वरूप है ? आद्योपान्त मल्लिकाका अध्ययन करनेके उपरान्त हम तो इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि इस वियोगका स्वरूप कोई आदर्श नहीं है । यह भगवान् कृष्णके दर्शनोंके लिए छटपटाते हुए, आध्यात्मिक प्रेम-रस में सराबोर, भक्ति-विह्वल भक्त सूरदासका वियोग या कृष्ण-परिमिलन-उत्कण्ठा नहीं है । यह प्रेम-दीवानी मीराका वियोग नहीं है । मल्लिकाका वियोग बहुत ही निचले दर्जेका है । ज़रा पद्योंकी झाँकी लीजिए —

आओ कर लें मन की बातें
आज यहां मैं आहें भरता
या नित ही यह सोचा करता
कैसे कटती होंगी सजनी, वे भादोंकी काली रातें ।

इस तरुणावस्था में जब कि जोश, उमङ्ग और उत्साह का दरिया ठाठें मारता है, कवि आहें भर रहा है । कवि भादोंकी काली रातों की चिन्ता में है ।

और लीजिए—

नित प्राणों में होली जलती
आशा सपनों को पा पलती

अभी इस जवानीमें ही, प्राणोंकी अन्त्येष्टि क्रिया हो रही है । इस प्रकारके निराशावाद से न तो कविका ही मंगल सम्भव है और न इस पुस्तिकाके पाठकोंका इस प्रकार अन्य भी बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं ; पर पत्रिकाके व्यर्थमें कलेवर बढ़ जानेके ख्यालसे नहीं दिए जाते ।

इतना सब लिखते हुए भी हम यह अवश्य कहेंगे कि कविमें प्रतिभाका प्रकाश जगमगा रहा है । भाषापर उनका पूरा अधिकार है । वे अपनी रचनाका कोमल कान्त पदावलीसे शृङ्गार करनेकी कला जानते हैं और यदि चाहें तो उसमें स्फूर्तिदायक भावोंका सौन्दर्य भी

भर सकते हैं ; आवश्यकता है केवल दिशा परिवर्त्तन की। कुछ गीत सुमनजी के बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। मल्लिका का "मात वर दे, अमर वर दे" शीर्षक गीत इसी अंकमें अन्यत्र दिया जा रहा है। श्रीसुमनजी का "दिनकर उदित हुआ प्राची से" गीत बहुत ही सुन्दर, सरस और लाजवाब बन पड़ा है। भगवान् सूर्य उदय हो रहे हैं—

दिनकर उदित हुआ प्राची से
दूर हुआ तम, ऊषा आई
नव-जीवन-युत लाली छाई
पक्षी छोड़ चलें नीड़ों को, क्रीड़ा करने वन-राजिसे—
दिनकर उदित हुआ प्राची से

( २ )

है प्रकाश अग जग में छाया
हटी कालिमा, जीवन आया
मधुर-यामिनी का अवगुण्ठन, खुला भूल मिस अपने जीसे—
दिनकर उदित हुआ प्राची से

( ३ )

फिर से निज आभा को भरने
जग-जीवन ज्योतिर्मय करने
तम ने निज अस्तित्व मिटा कर, स्नान किया मधु-धारा ही से—
दिनकर उदित हुआ प्राचीसे

यदि यह प्रतिभाशाली तरुण कवि अपनी काव्य-धाराका परिवर्त्तन कर दे, तो इसका भविष्य बहुत ही उज्वल और आभामय दृष्टिगोचर होता है।

**माता का सन्देश**—लेखक श्री हरिश्चन्द्र विद्यालङ्कार; प्रकाशक,कुमार पब्लिशिंग कम्पनी; ११ हरफूल बस्ती देहली। सचित्र, सजिल्द पुस्तक का मूल्य १।।।) प्रति, जो पुस्तकका कलेवर देखते हुए बहुत अधिक मालूम होता है।

दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे मनुष्य का अध्ययन करनेके उपरान्त पता लगता है कि व्यक्तिका लैङ्गिक जीवन ( Sexual life ) शैशव कालमें ही आरम्भ हो जाता है। लैङ्गिक-जीवन का ब्रह्मचर्य और वीर्यरक्षा से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि बच्चों के लैङ्गिक जीवन के ठीक दिशामें विकास की ओर ध्यान न रक्खा जाय और इस सम्बन्ध में उनके हृदयों में उठनेवाली शङ्काओंका उचित समाधान न किया जाय तो लड़के बहुत सी बुरी आदतों हस्तमैथुन, अप्राकृतिक रीतिसे वीर्यपात आदिके शिकार हो जाते हैं ; इसलिए प्रत्येक माता पिताका कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चोंको ब्रह्मचर्य और वीर्यरक्षा आदिके महत्त्व से परिचित कराएँ और उनके कोमल मनों पर ब्रह्मचर्य की महिमा अङ्कित करनेमें सहायक हों। प्रस्तुत पुस्तक में काव्य-मयी, सरस, सुन्दर सरल भाषा में परस्पर वातचीत-की रीति ( The method of Dialogue ) के द्वारा ब्रह्मचर्य और वीर्यरक्षा सम्बन्धी प्रश्नोंको हल करनेका विद्वान लेखकने सफल प्रयास किया है। Dialogues के देनेसे पुस्तक अत्यन्त ही रोचक हो गई है। पुस्तक के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि विद्वान् लेखक-को बाल मनोविज्ञान का विशिष्ट, गम्भीर अध्ययन है और बाल-साहित्यके निर्माण द्वारा वे हिन्दीसाहित्य की ठोस सेवा कर सकते हैं।

पुस्तक दो खण्डों में विभक्त की गई है। प्रथम खण्ड में (१) स्नेहका आदि स्रोत (२) मनुष्यका बड़प्पन (३) जीव-स्वभाव (४) पौधे और छोटे जीव (५) पक्षी, कीट-पतंग, पशु (६) युगल जीवन एवं पवित्र भावना (७ किशोरावस्था का उद्भव ये सात अध्याय हैं। २ य खण्ड में (१) ओजका विकास और उपयोग (२) कुमार-जीवन और स्वास्थ्य (३) कुमार जीवनकी विचारधारा ये तीन अध्याय है।

पुस्तक की छपाई सुन्दर है। यदि हाथसे बने हुए चित्रों के स्थान पर दूसरे नयनाभिराम, ब्लाक के चित्र

दिये जाते तो पुस्तक के सौन्दर्य में निस्सन्देह अतिशय वृद्धि होती। एक बात और—पुस्तक का मूल्य ॥।) इतना अधिक है, जिससे साधारण हैसियतका आदमी इससे लाभ नहीं उठा सकता। पुस्तकके मूल्य-में अवश्य ही कुछ कमी की जानी चाहिए।

**अर्चन**—लेखक श्री हरगोविन्दगुप्त, प्रकाशक प्रेम-मन्दिर चिरगांव (झाँसी) पृष्ठ संख्या १२, मूल्य ।≈) प्रति।

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दू-मुस्लिम-एकता की वेदीपर बलिदान होनेवाले, स्वदेशको सर्वस्व समझनेवाले, प्रसिद्ध हिन्दी दैनिक प्रताप के जन्मदाता श्रद्धेय श्री गणेश शङ्करजी विद्यार्थीको श्रद्धाञ्जलि रूप में श्री हरगोविन्दजी गुप्त ने ये बारह कविता के फूल चढ़ाए हैं। श्री गुप्तजीने आत्म-निवेदन में इन कविताओं को तुकबन्दी कहा है; परन्तु इन कविताओंकी अनुभूति इतनी व्यापक, गम्भीर और हृदयस्पर्शी है कि ये कविताएँ हिन्दी-साहित्य की अक्षय निधि हैं। कविताओं का करुण रस पूर्ण संगीत श्री गुप्तजी के अन्तस्तलसे निकला है, इसीलिए वह हमारे हृदयको स्पर्श करता है। ये कविताएँ राष्ट्रीयताके पवित्र प्रकाश से जगमगा रही हैं। भिन्न-भिन्न कविताओंके पढ़नेसे हृदयमें भिन्न-भिन्न भाव उदित होते हैं। ज़रा मुलाहिज़ा फरमाईए—

हँसते हँसते प्राण विसर्जन
किए विश्व को ज्ञान-दान कर
उसके अमर पदों की रज ही अपने सिर की ताज है।
बरसी उसकी आज है।

इन पंक्तियों को पढ़ते ही हृदय श्रद्धासे विद्यार्थी जी के सम्मुख अवनत हो जाता है, इच्छा होती है उस महापुरुष की चरण-रज मस्तक पर चढ़ा कर जीवन कृतार्थ कर लें।

और भी—

मेरे 'दधीचि' तेरी बलिसे आदर्श मिला जगको महान
मेरे प्रणपाल 'प्रताप' 'शिवा' तू ने 'प्रताप' को दिया मान
मेरे मसीह किस तरह बता, गाऊँ तेरा मर्सिया आज
मानव-संस्कृति, साहित्य, राष्ट्र सब में तेरी दीप्ति द्युतिमान

ये पंक्तियां हमारे सामने यह भावना उद्बुद्ध करती है कि श्रद्धेय विद्यार्थीजी महाप्राण पुरुष थे। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनका कार्यक्षेत्र विशाल था आदि २।

आगे भी—

पैरों में अपनी गति भर दो।
चले तुम्हारे चरण-चिन्ह पर ऐसी जन-मनकी मति कर दो।
तन को स्रोत शक्ति का कर दो।
अपनी सहज उक्ति का वर दो
हाँ समष्टि के शुभ-चिन्तनकी
व्यष्टि-व्यष्टि में उठा लहर दो

ये पंक्तियां हृदय में अपूर्व उत्साह और शौर्य भरती है, और कर्म-पथपर आगे बढ़नेके लिए प्रेरणा देती हैं।

तेरे पुण्य-क्षेत्र पर आकर मेरा मानस-पद्म खिला
एक नया उत्साह मिला है, एक नया उल्लास मिला।
ओ मानवता के सजल जलद तूने इस अवनीतल पर
छवि शस्य श्यामला ला दी अपने रस निर्झर झर कर

इच्छा तो होती है, उद्धरण देता चला जाऊं। श्री हरगोविन्द गुप्त की ये अमर कृतियाँ है। अभी हमें गुप्तजी से बहुत आशाएँ हैं; यदि उनका यह परिश्रम जारी रहा तो वे अल्पकाल में ही प्रमुख राष्ट्रकवियों की श्रेणी में सुशोभित होंगे। गुप्तजी की इन बारह रचनाओंमें अनिर्वचनीय माधुर्य है। भाव और भाषा दोनों लाजवाब है। पुस्तिका का संगीत-मय पठन करनेके उपरान्त ऐसा प्रतीत होता है कि

गुप्तजी के हृदय-सर की भाव-लहरियां स्वयं छन्दोबद्ध होती चली आई हैं। ये कविताएँ गुप्तजी के भावुक, विशाल राष्ट्रीय हृदय का प्रतिबिम्ब है। भगवान् गुप्तजी को उनके काव्यक्षेत्र में सफलता प्रदान करें। पुस्तिका का मूल्य कुछ अधिक अवश्य है।

## हवन-यज्ञके द्वारा क्षयरोगकी चिकित्सा—

लेखक डा० कुन्दनलाल वर्मा एम० डी०, प्रकाशक दीनानाथ अग्रवाल, बी० एस० सी० प्राप्ति स्थान—डाक्टर कुन्दनलाल वर्मा, तपेदिक विशेषज्ञ पोस्ट भूड़, बरेली, यू० पी० मूल्य प्रचारार्थ –)॥ मात्र।

प्रस्तुत पुस्तक एक छोटासा ट्रैक्ट है। प्राचीनकाल में पुण्यभूमि भारतवर्ष में अनेक प्रकारके यज्ञ आए दिन हुआ करते थे और प्रत्येक गृहस्थ होम करना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझता था, जिससे बहुत अंशों में समीप का वायुमण्डल रोगोत्पादक कीटाणुओं से शून्य हो जाता था। धीमे-धीमे लोग इस यज्ञ-प्रणाली को भूलते गए जिससे वायुमण्डल दूषित रहने लगा और राष्ट्र का स्वास्थ्य गिरने लगा। जहां हमारे भारतीय राष्ट्र के स्वास्थ्य क्षीण होनेके अन्य भी अनेकों कारण यथा पौष्टिक सात्विक भोजन का अभाव, अविवेक-पूर्ण फैशन परस्ती, कृत्रिम रहन-सहन, बाल-विवाह आदि हैं, वहाँ यज्ञोंकी प्रथा उठनेसे भी हमारे देशके स्वास्थ्यको बहुत धक्का पहुंचा है।

प्रस्तुत पुस्तिका में क्षयरोग के कारण, क्षयरोगी के लिए ध्यान देने योग्य हिदायतें, क्षयरोग की चिकित्सा आदि पर संक्षेप से प्रकाश डाला गया है, तथा वैदिक मन्त्रों के उद्धरण द्वारा यज्ञ चिकित्सा को क्षयरोग-की अचूक औषधि बताया गया है। यज्ञ-चिकित्सा, हवन सामग्री आदिके बारेमें भी कुछ आवश्यक ज्ञातव्य बातें हैं। पुस्तिका सर्वसाधारण के लिए उपयोगी है।

## आरोग्य प्रकाश—

प्रकाशक एवं लेखक श्री वा गूलर गुण विकास—पंडित चन्द्रशेखरधर शर्मा मिश्र, प्राप्ति स्थान हाल ७।४४ लोलार्क, भदैनी बनारस। मूल्य ।।)

प्रस्तुत पुस्तकमें संक्षेपमें आरोग्य के अतीव उपकारक उपाय और विस्तारसे गूलरके गुण तथा हैज़ा, यक्ष्मा, खांसी, मन्दाग्नि, जलोदर आदि रोगों में गूलर के उपयोग की सविस्तर व्याख्या उदाहरणों तथा रोगियों पर अनुभूत परीक्षणों द्वारा की गई है। पुस्तक की पृष्ठ संख्या ११६ है जिसमें लगभग ३५ पृष्ठ अभिनन्दन पत्र और महाजनों की सम्मति में व्यर्थमें खर्च किए गए हैं। सम्मतियों का भी महत्व है, परन्तु उसकी भी कोई मर्यादा होनी चाहिए। इस मंहगी के जमानेमे कागज़का इस तरह दरियादिली से व्यर्थ की सम्मतियोंमें खर्च करना हमें तो अखरता है। गूलर प्रेमी सज्जनोंको पुस्तकसे अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

## आवश्यक सूचना !

सात्त्विक-जीवन के सन्देश को भारतवर्षके कोने कोने में पहुंचानेके लिये और पत्र को अधिकाधिक उपयोगी एवं लोकप्रिय बनाने की दृष्टिसे हमने यह स्कीम बनाई है कि जो सज्जन सात्त्विक-जीवनके ५ नये ग्राहक एक वर्षके लिये बनावेंगे उनको सात्त्विक-जीवन एक वर्ष के लिये पारितोषिकके रूपमें भेजा जायेगा। अथवा यदि वे चाहेंगे तो सात्त्विक-जीवन-ग्रन्थमाला की ३) की पुस्तकें पुरस्कार-स्वरूप भेजी जावेंगी।

व्यवस्थापक।

# बाल-वाटिका

## परिश्रम का फल

बाबू ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम किसने न सुना होगा ? ये महापुरुष बंगाली थे। बड़े विद्वान, दयालु और परोपकारी थे। एक दिन बाज़ार में जा रहे थे तो उनकी दृष्टि एक भिखमंगे लड़के पर पड़ी जो आते जाते लोगों से एक-एक पैसा मांग रहा था। विद्यासागर ने उसके पास जाकर कहा—अच्छे लड़के ! तुम यह क्या करते हो ? क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती ? परमात्माने तुम्हें हाथ-पैर दिए हैं उनसे काम लो और परिश्रम करके अपना पेट आप पालो। भीख मांगनेकी आदत जिसे पड़ गई उसका जीवन नष्ट हो गया।

लड़केने उत्तर दिया—बाबू साहब ! क्या करूँ ! लाचारी है ; मैं न तो पढ़ा लिखा हूं कि नौकरी करूं ! न मेरे पास रुपया पैसा है कि कोई काम ही आरम्भ कर दूं। आंखें ऊपर नहीं उठती, पैर आगे नहीं बढ़ते। किन्तु पेट बुरी बला है। बाधित होकर लाज छोड़ मांगना ही पड़ता है। न माँगू तो भूखा मरना पड़े।

विद्यासागरने पूछा—अच्छा बताओ तुम्हारा निर्वाह कितने पैसों में हो जाता है।

चार पैसे एक दिन के लिए पर्याप्त हैं।

और तुमने इस समय तक क्या मांगा है ?

कुछ भी नहीं।

अगर तुम्हें चार पैसे दे दूं तो क्या करोगे ?

लड़के की आँखें प्रसन्नतां से चमकने लगीं और और उसने जल्दीसे कहा—यदि आप चार पैसे देदें तो मैं इसी समय वापिस चला जाऊंगा और फिर सारा दिन किसी से कुछ न मांगूगा।

और यदि दुअन्नी दे दूं तो ?

कल भी कुछ न मागूंगा।

और यदि रुपया दे दूं तो ?

अब तो लड़केको निश्चय हो गया कि यह मनुष्य मुझसे हँसी कर रहा है। उसने दुखी दिल हो कुछ रुखाई से उत्तर दिया—बाबू साहब ! यदि आपका मेरी सहायता करनेका विचार नहीं है तो व्यर्थ मुझसे हँसी क्यों करते हैं ? मैं गरीब आदमी हूं, आपको मुझे इस तरह तङ्ग करना शोभा नहीं देता। विद्यासागर ने उसके कन्धेपर हलकीसी थपकी दी और कहा—मैं हँसी नहीं करता हूं। सचमुच पूछता हूं कि मैं यदि तुम्हें एक रुपया दे दूं तो तुम क्या करोगे ?

लड़के ने उत्तर दिया—मैं एक आनेसे तो अपना पेट भरूंगा और शेष पैसों से ख़िलौने खरीद कर उन्हें बाज़ार में बेचूंगा और इस तरह मांगना छोड़ दूंगा।

प्रतिज्ञा करते हो कि फिर किसीके सामने हाथ न पसारोगे ?

हाँ बाबू साहब ! प्रतिज्ञा करता हूं।

विद्यासागर ने जेब में हाथ डालकर एक रुपया निकाला और लड़के के हाथपर रखकर कहा—इस रुपए से कार्य आरम्भ करो और फिर चार पैसे और देकर कहा—इनसे आजका खर्च चलाओ।

लड़केने धन्यवाद भरी आँखोंसे अपने उपकारीको देखा और कहा—परमात्मा आपका भला करे।

( २ )

इस घटनाके १५ साल बाद फिर विद्यासागर एक दिन उसी बाज़ारसे जा रहे थे, कि एक प्रतिष्ठित दुकानदार हाथ बांध कर सामने खड़ा हो गया। विद्यासागरने पूछा—कहिए श्रीमान् क्या आज्ञा है? दुकानदारने बहुत नम्रतासे उत्तर दिया—वह सामने आपके दासकी दुकान है। ज़रा वहांतक चलने की कृपा कीजिए। मुझे आपकी सेवामें कुछ निवेदन करना है।

विद्यासागर चुपचाप उस दुकानदारके साथ हो लिए और जब दूकानपर जाकर आरामसे बैठ गये तो दुकानदारने कहा—महाराज! आपको याद होगा, आजसे पन्द्रह साल पहले आपने एक निर्धन भिखमंगे लड़केको एक रुपया दिया था और उसे उपदेश दिया था कि अपने पांवपर खड़े होनेका यत्न करो।

विद्यासागर की आँखें आनन्द से चमकने लगीं। धीरेसे बोले—हां वह घटना मुझे अच्छी तरहसे याद है। आपका उस लड़के से क्या सम्बन्ध है।

दुकानदार—मैं ही वह लड़का है।

विद्यासागर यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहने लगे—आपने अच्छी उन्नति की है।

दुकानदार—यह सब आपके उस एक रुपए की कृपा है या उस उपदेशका परिणाम है। नहीं तो मैं आजतक वहां निकृष्ट अधम जीवन व्यतीत कर धक्के खाता फिरता। अब बड़े आनन्दसे दिन बिताता हूं और दिन रात आपके लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूं।

विद्यासागर—यह मेरे रुपये की कृपा नहीं; आपके परिश्रम और प्रयत्नका परिणाम है या परमेश्वरकी दया है। किन्तु सच पूछो तो परमात्मा भी उसीकी सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करता है। और जो निकम्मे और आलसी हैं उन्हें परमात्मा भी छोड़ देता है।

दुकानदार—महाराज! इस समय मेरे पास लगभग एक लाख रुपया है। मैं इसमें से दस हज़ार रुपया आपकी भेंट करना चाहता हूं। आशा है आप इस तुच्छ भेंटको स्वीकार कर लेंगे।

विद्यासागर—भाई! मैं कमाता हूं, खाता हूं। न मुझे इस रुपयेकी आवश्यकता है, न इस पर मेरा अधिकार है। मैं इसे किसी तरह भी स्वीकार न करूंगा।

दुकानदार—तो मैं यह धन आपको थोड़े देता हूं। मैं तो यह धन आपको इस उद्देश्यसे भेंट करता हूं कि आप इसे किसी शुभ काम में लगावें ताकि संसारका भला हो।

विद्यासागर—अच्छा भाई! तुम यह रुपया अपने पास रखो। मैं जिस समय कोई निर्धन योग्य पात्र देखूंगा उसे तुम्हारे पास भेज दूंगा।

दुकानदार—बहुत अच्छा महाराज! यह रुपया आपका हो चुका, जब चाहें मंगा लें।

( ३ )

कुछ दिन बादकी बात है, विद्यासागर एक तंग और अंधेरी गली में जा रहे थे कि एक मकानसे रोनेका शब्द सुनाई दिया। विद्यासागर वहीं ठहर गए और जिस मकानसे रोनेका शब्द सुनाई दिया था उस मकानके दरवाज़ेपर पहुंच उन्होंने आवाज़ दी। एक स्त्रीने दरवाजा खोला। विद्यासागरने उससे पूछा—माँ, तुम क्यों रो रही हो?

उस स्त्रीने पहले तो उत्तर देनेसे इन्कार किया किन्तु जब देखा कि ये भद्र पुरुष हैं और संभव है कि इनसे कुछ सहायता मिल जाय तो वह बोली—मैं विधवा हूं, मेरे दो छोटे २ बच्चे हैं। मेरे पास जो कुछ गहना कपड़ा था, बेच कर खा चुका हूं। अब मेरे पास कुछ नहीं रहा। सोच रही हूं कि कल क्या करूंगी और बच्चे क्या खाएंगे?

विद्यासागरने उसे ढाढस बन्धाया और कहा – मां, कुछ चिन्ता न करो। कल सवेरे तुम्हारे पास कुछ रुपया पहुंच जायेगा।

इसके बाद उन्होंने एक गरीब आदमीको देखा जो फूट २ कर रो रहा था। मालूम हुआ कि उसकी एक लड़की है और अब उसकी आयु विवाहके योग्य हो गई हैं। किन्तु वह दहेज नहीं दे सकता इस लिए कोई योग्य वर नहीं मिलता। कोई हज़ार रुपया मांगता है तो कोई दो हज़ार। वह गरीब चकित था कि क्या करे और किस प्रकार इस चिन्तासे छुटकारा पावे। उसके एक छोटासा मकान था, उसे वह बेचनेको तैयार था। किन्तु जो रुपया उससे मिलता था, उससे भी काम न बनता था। और फिर यदि वह मकान बेच दे तो वह परिवार सहित कहां रहे। विद्यासागरने उससे कहा—भाई तुम चिन्ता न करो। हो सका तो तुम्हारी बेटीके विवाह का प्रबन्ध मैं कर दूंगा। अपना मकान मत बेचो।

दूसरे दिन विद्यासागर फिर उस दुकानदारके पास पहुंचे और रातकी दोनों घटनाएं उसे सुनाकर बोले — मेरे विचारमें तुम्हारे रुपये पर उस विधवा स्त्री और गरीब मनुष्यका अधिकार है। तुम जो कुछ मुझे देते थे, वह उन्हें दे दो। दोनों जबतक जिएँगे तुम्हें आशीर्वाद देते रहेंगे।

दुकानदारने दस हज़ारकी थैली निकाल कर उनके सामने रख दी और कहा—यह रुपया आपका हो चुका, आप जैसे चाहें खर्च करें। मुझे कुछ कहना नहीं है।

विद्यासागरने एक हज़ार रुपया उस विधवा स्त्रीको भेज दिया और एक हज़ार उस गरीब मनुष्यको। और शेष रुपया उस दूकानदारको वापिस दे दिया और कहा—इसे अपने पास धरोहर रक्खो। मुझे जब फिर कोई गरीब पात्र दिखाई देगा, मगवा लूंगा।

थोड़ी देर बाद वह स्त्री और पुरुष दोनों दुकान पर आकर दुकानदार को और विद्यासागरको हजारों आशीर्वाद देने लगे और ये आशीर्वाद मुंहसे नहीं हृदय से निकल रहे थे। जब वे वापिस चले गए तो विद्यासागरने दुकानदारसे कहा—तुम्हारे चित्तमें इस समय कैसी प्रसन्नता हो रही है। निश्चय रखो किसी आपत्तिग्रस्त के चेहरेपर हंसी और आँखोंमें चमक पैदा करना संसारमें सबसे बड़ा उपकार है; रातको ये रो रहे थे। इनके दिलमें अन्धेरा था। इनके सामने आपत्ति और कष्ट अपने भयंकर जबड़े खोले खड़े थे और उन्हें संसारकी किसी चीजमें भी सुन्दरता न दिखाई देती थी। किन्तु इस समय इनके चेहरे फूलकी तरह खिले हुए हैं और यह तुम्हारे रुपएकी कृपा है।

दुकानदारने नम्रतासे गरदन झुकाकर उत्तर दिया, नहीं महाराज! यह आपके उस एक रुपए और उपदेश की कृपा है जिसने मुझे अधम निकृष्ट अवस्थासे उठा कर इस अवस्था तक पहुंचाया कि मैं आज गरीबोंकी सहायता करने योग्य हूं।

## सच्चे प्रेम का लक्षण

सच्चे प्रेमका लक्षण है, हित होने पर जिसमें वृद्धि नहीं होती और अहित होनेपर जिसमें न्यूनता नहीं आती।

—एक मुस्लिम सन्त

# अमृत के छींटे

भगवान् का सच्चा प्रेमी प्रेम और भक्तिके आवेशमें सब कुछ भुला देता है। केवल प्रेम का पागलपन (madness of love) ही शेष रहता है। उसे कृष्णके सिवाय इस संसारमें कुछ नज़र ही नहीं आता। उसे प्रत्येक व्यक्ति के चेहरेमें कृष्णके दर्शन होते हैं। उसकी अपनी आत्मा कृष्ण के रंगमें रंग जाती है, उसका अपना चेहरा कृष्णके चेहरेकी तरह दृष्टिगोचर होता है। यह वेदान्त की परमावस्था है।

—स्वामी विवेकानन्द।

\+ + +

सर वह सर ही नहीं, जिसमें नहीं सौदा तेरा।
दिल वह दिल ही नहीं, जिस दिलमें तेरी याद नहीं
महव१ ऐसा था तेरी याद में मरने वाला
रूह२ कब जिस्म३ से निकली, उसे कुछ याद नही

एक उर्दू शायर

निश्चय रक्खो, किसी आपत्तिग्रस्त के चेहरे पर हँसी और आँखों में चमक पैदा करना, संसार में सबसे बड़ा उपकार है।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर।

\+ × +

यदि तुम क्षणमात्र के लिए सन्तुष्ट होना चाहते हो तो अपने शत्रु से बदला लो, परन्तु यदि तुम हमेशा के लिए सन्तुष्ट होना चाहते हो तो उसे हृदयसे क्षमा कर कर दो।

सुकरात।

\+ × +

किसने सदा सुख का सुनहला संसार देखा है और किसने हमेशा कष्ट ही कष्ट झेले हैं। मनुष्य की दशा तो चक्र के तुल्य है, कभी सुख और कभी दुःख।

महाकवि कालिदास।

× + +

जब कभी मुझे ज़िन्दगी की मुसीबतों और तूफ़ानों का सामना करना पड़ता है, मुझे निराशा की घरघोर घटा आवृत कर लेती है, उस समय मेरे हृदय में एकाएक बिजली की तरह यह विचार चमक उठता है कि फिर आखिर भगवान् किस लिए है, और यह विचार मेरे हृदय को असीम सान्त्वना प्रदान करता है। यदि तात्विक दृष्टिसे देखा जाय तो लोगों को भगवान् पर भी पूर्ण विश्वास नहीं है, इसलिए वे अपनी मुसीबत का भी भगवान्को हिस्सेदार बनाते हुए डरते हैं। उनके मनमें यह भावना काम कर रही होती है कि हम अपने बाहुबल पर तो थोड़ी बहुत मुसीबत का सामना कर लेंगे ; पर भगवान् हमें उससे बचा सकेंगे या नहीं, इसमें शक है और यही शक ही समस्त दुःखका कारण है।

एक दार्शनिक।

१ मग्न, २ आत्मा, ३ शरीर।

# उजड़े हिन्दुस्तानको पुनः हरा-भरा बनानेके लिए

भारत, आज, वीर-अर्जुन, स्वतन्त्र भारत, नवशक्ति लोकमान्य, आदि प्रमुख पत्रों द्वारा मुक्त-कण्ठ से प्रशंसित, योगिराज **"श्री स्वामी शिवानन्दजी"** विरचित ; हठयोग के आसन-व्यायामोंका बड़ी मनोरञ्जक, सरल, वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा प्रतिपादन करनेवाले, मन, शरीर, और आत्माको

— स्वस्थ, सुन्दर बनानेवाले ग्रन्थ रत्न —

# सचित्र-हठयोग

…सनों के ३८ चित्रों सहित, सजिल्द मूल्य १।) की एक प्रति मंगाकर अवश्य पढ़ें हमारे यहांसे निकलनेवाली **"सात्विक-जीवन-ग्रन्थमाला"** के ।।) चन्दा दे स्थायी ग्राहक बनकर उच्च कोटि के आध्यात्मिक तथा व्यायाम-सम्बन्धी, जीवनको प्रेम, पवित्रता और प्रकाशकी किरणोंसे भरनेवाले, ग्रन्थोंका अध्ययन कर मानव-जीवन को सार्थक कीजिए

…) ब्रह्मचर्यनाटक ।।) (३) आध्यात्मिक शिक्षावली १ ला भाग ।।।)

…) मन और उसका निग्रह ।।।) (४) ,, ,, २ रा भाग ।।।)

ॐ प्रणव रहस्य ।।=)

…ली, बिहार, तथा पंजाबके शिक्षा-विभागों द्वारा, स्कूलों, कालेजों, होस्टलों और पुस्तकालयोंके स्वीकृत

## सात्विक-जीवन ( प्रमुख मासिक पत्र )

…में ब्रह्मचर्य, सदाचार, स्वास्थ्य, आरोग्यता, नैतिक-विकास, आध्यात्मिक विकास आदिपर विचार-पूर्ण लेख, कविताएँ गद्यगीत और कहानियां प्रकाशित होती हैं । वार्षिक मूल्य ३)

विद्यार्थियों, विद्यालयों तथा पुस्तकालयोंसे २)

**'सात्विक-जीवन' के ग्राहकोंको सात्विक-जीवन-ग्रन्थमालाकी पुस्तक पौने मूल्य में दी जावेगी ।**

हमारी शीघ्रही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक

## वैराग्य के पथपर

**लेखक—स्वामी शिवानन्द सरस्वती**

प्रकाशक—

## जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड

…, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट कलकत्ता । शाखा—"प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस ।

**प्रकाशित हो गया !** "ओ३म्" ॥=) प्रति।

सात्त्विक-जीवन-ग्रन्थमाला का सप्तम पुष्प

# "ओ३म्" [ प्रणव रहस्य ]

प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता हैं, विश्व-विश्रुत योगिराज, उन्नतमना, यौगिक विद्याके प्रकाण्ड पण्डित, आध्यात्मिक धनके धनी ; अनेक आध्यात्मिक पुस्तकोंके सिद्धहस्त लेखक, देश और विदेशके अनेकों मनीषी विद्वानों द्वारा प्रशंसित आदरणीय श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती ; जिनके नामसे आध्यात्मिक विषयों में थोड़ी बहुत भी दिलचस्पी लेनेवाला प्रत्येक सज्जन परिचित है और जिनकी रचनाओंको आध्यात्मिक जगत्में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

श्री स्वामीजी ने अनेकों वर्षों की साधना और तपश्चर्या के उपरान्त प्रस्तुत ग्रन्थ-रत्न का प्रणयन किया है। स्वामीजी के विषय में कुछ कहना सूर्यको दीपक दिखानेके तुल्य है।

ॐ के निरन्तर श्रद्धापूर्वक ध्यान और जप से मनुष्य किस प्रकार इस संसार सागर को पार कर सकता है, प्रस्तुत प्रश्न की व्याख्या बड़े सुन्दर, विवेचनात्मक ढंग से पुस्तक में की गई है।

ॐ का जप मनोनिग्रह करनेमें किस प्रकार महान् सहायक है ; इस सत्य को जानने के लिये ॐ प्रणव रहस्य का अवश्य अध्ययन करें।

ॐ ( प्रणव रहस्य ) के अध्ययन से जीवन के विषयमें आपका दृष्टि-कोण अवश्य ही परिवर्तित हो जाएगा, निराशावाद के स्थानपर सुनहले आशावादके आपको सर्वत्र दर्शन होंगे। सर्वत्र आपको ॐ की महिमा का विराटरूप दृष्टिगोचर होगा —

## क्या आप—

( १ ) अवर्णनीय दिव्य आनन्द और मस्ती के झूले में झूलना चाहते हैं ?

( २ ) विश्व में निरन्तर होनेवाला ॐ का मनमोहक संगीत सुनना चाहते हैं ?

( ३ ) ॐ के निरन्तर जप द्वारा अपने मानस-दुर्गपर विजय पाना चाहते हैं ?

( ४ ) जीवन के चरम ध्येय 'सत्यं, शिवं सुन्दरं' की ओर अग्रसर होना चाहते हैं ?

## —तो आज ही—

ॐ ( प्रणव रहस्य ) की एक प्रति मंगा कर पढ़ें।

**और शान्ति के सागर में गोता लगाएँ—**

प्रकाशक—**जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लि०**

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। शाखा—"प्रिंटिंग हाउस" हौज़कटरा, बनारस।

Printed & Published by Baljiram ... at General Printing Works Ltd. Benares Branch,



सत्वं सुखे सञ्जयति



# सात्विक जीवन

मध्यप्रान्त और बरार, देहली, बिहार, सिन्ध तथा पञ्जाब प्रान्तीय शिक्षा-विभागों के द्वारा स्कूलों, कालेजों, लाईब्रेरियों और होस्टलों के लिए स्वीकृत।





वर्ष ३, अङ्क ६ सम्पादक—रलियाराम गुप्त, उप सम्पादक—वेदराज वेदालङ्कार 'लहरी' मूल्य चार आने

B.C. PONNAPPA

# विषय-सूची


| विषय | लेखक |
|---|---|
| १—जीवन-फूल ( कविता ) | श्री श्रीकुमार विद्यालङ्कार |
| २—सम्पादक की कलम से | |
| ३—गीताञ्जलि का एक गीत | श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर |
| ४—महापुरुषों के जीवन की घटनायें | |
| ५—मैं अहरह उसको ध्याता हूं ( कविता ) | श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' |
| ६—मैं जीवन-पुष्प पिरोऊं ( गीत ) | श्री महावीर प्रसाद विद्यार्थी |
| ७—नारी हृदय ( गद्य गीत ) | श्री पं० रामदयाल तिवारी बी. ए. एल. एल. बी. |
| ८—चिन्ता चिता से कैसे बचें | श्री डा० विट्ठलदास मोदी |
| ९—सत्यव्रत ( नाटक ) | श्री नारायण प्रसादजी साधक |
| १०—मनुष्य की प्रकृति से पथ-भ्रष्टता और आयुर्वेद का विकास | श्री प्रो० प्रसाद जी |
| ११—गोविन्द गुप्त ( खण्ड काव्य ) | श्री गङ्गाप्रसाद 'कौशल' |
| १२—स्नेह-यज्ञ ( कहानी ) | श्री पं० वेदराज वेदालङ्कार |
| १३—बच्चों का निर्माण | श्री आचार्य चतुरसेन शास्त्री |
| १४—मृत्यु-विज्ञान | श्री गङ्गाप्रसाद गौड़ "नाहर" |
| १५—मस्ती की तरङ्ग में ( प्रहसन ) | श्री लहरी |
| १६—बचपन की कुछ बातें ( कविता ) | श्री सुखदेवी वर्मा सरला |
| १७—शिवाजी का सात्विक-जीवन ( कहानी ) | श्री बेढब सागरी |
| १८—साहित्य-समालोचन | |


## आवश्यक सूचना !

सात्विक-जीवन के सन्देश को भारतवर्षके कोने कोने में पहुंचानेके लिये और पत्र को अधिकाधिक उपयोगी एवं लोकप्रिय बनाने की दृष्टिसे हमने यह स्कीम बनाई है कि जो सज्जन सात्विक-जीवनके ५ नये ग्राहक एक वर्षके लिये बनावेंगे उनको सात्विक-जीवन एक वर्ष के लिये पारितोषिकके रूपमें भेजा जायेगा अथवा यदि वे चाहेंगे तो सात्विक-जीवन-ग्रन्थमाला की ३) की पुस्तकें पुरस्कार-स्वरूप भेजी जावेंगी।

व्यवस्थापक

[मध्यप्र]ान्त और बरार देहली बिहार तथा पंजाब प्रान्तीय शिक्षाविभागों के द्वारा स्कूलों, कालेजों, लाईब्रेरियों और होस्टलों के लिए स्वीकृत।

संरक्षक— श्री मनसुखराय मोर




सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

वर्ष ३ } काशी—सौर ज्येष्ठ, २००० Benares— June 1943. { अङ्क ९

# जीवन-फूल

रचयिता—श्री श्रीकुमार शर्मा 'विद्यालङ्कार'

(१)

[इस] जीवन में प्रतिदिन ही मैं नूतन फूल लगाता हूं,
[तन]-मन से सेवा करता हूं कीटक व्याधि भगाता हूं,
[सु]रभित सुमनों के सुरभित दल, तोड़ नहीं कोई पाता—
[दे]ख-देख कर रह जाता है—मुग्ध हृदय सा ललचाता।

(२)

कितने फूल चुके खिल मेरे सरल हृदय के उपवन में!
पर कोई क्या मुरझा पाया? अमर प्रसाद भरा मन में!
और एक दिन वह आयेगा फूल बसेंगे कण-कण में!
अपनी स्निग्ध ज्योति में तन्मय, गाऊंगा मुक्त गगन में!

---

# हर्ष समाचार

## सिन्ध के शिक्षा-विभाग द्वारा सात्त्विक-जीवन की स्वीकृति

सात्त्विक-जीवन के प्रेमी पाठकों को हमें यह सूचित करते हुए परम हर्ष हो रहा है कि सिन्ध के [शि]क्षा-विभाग ने अपने प्रान्त के स्कूलों के लिए सात्त्विक-जीवन पत्रिका को स्वीकृत कर लिया है। इसके लिए [हम] शिक्षा-विभाग के उच्च अधिकारियों का हार्दिक धन्यवाद करते हैं। पत्रिका के उपयोगी होने का यह [प्रत्य]क्ष प्रमाण है।

# सम्पादक की कलम से

## क्या आप कृष्ण की खोज में हैं—

प्रिय पाठक वृन्द ! आपने भगवान् कृष्णकी प्राप्ति के लिए अनेकों धुरन्धर, तर्कशील व्याख्याताओंके भक्ति-रसपूर्ण, बुद्धिके चमत्कारसे भरे हुए व्याख्यान सुने होंगे। अनेक विद्वानोंके ग्रन्थ रत्नोंका भी अध्ययन किया होगा – पर शायद आपको कृष्णके दर्शन न हुए हों। आपमें से कइयोंने भगवान् कृष्णके दर्शनोंके लिए जप, योग, समाधिका भी अनुष्ठान किया होगा। इस मायामय विश्वसे विरक्त होकर केवल कौपीनमात्र धारण कर और करमें कमण्डलु ले वनों, पर्वतोंकी खाक भी छानी होगी, धूनी भी रमाई होगी और धर्म ग्रन्थोंकी सुमधुर ध्वनिसे वनों, उपवनोंको गुञ्जाया भी होगा। आपमेंसे कई सिद्ध सन्त महात्मा पुरुषोंकी शरणमें भी गये होंगे। इतने परिश्रम और प्रयत्नके उपरान्त भी सम्भव है कि आपको अपने प्यारे कृष्णके दर्शन न हुए हों। कृष्णकी मधुर झांकीसे आपके प्यासे नेत्र कृतकृत्य न हुए हों; परन्तु आपको कृष्णके दर्शनोंके लिए इतने दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है। कृष्णको पानेके लिए इतने परिश्रम की जरूरत नहीं है। आपका कृष्ण तो आपके सदनमें स्वयमेव उपस्थित है।

## भगवान् कृष्ण शिशु के रूप में—

वह सामने देखिये, फूलोंका सा मधुर हास बिखेरते हुए, अपने भोले मुखमण्डल पर सरलता, निष्कपटता और देवत्वकी छाप लिए, अपनी विशाल आंखोंमें उत्सुकताका भाव लिए, अपनी तोतली बोलीसे माधुर्य वृष्टि करते हुए, अपने नन्हे-नन्हे हाथोंको मिट्टी से भरे हुए; परमहंस सन्यासीकी तरह वासनाओंके पाशसे मुक्त, पहाड़ी नदीकी तरह स्वच्छन्द, सङ्गीतकी तरह मस्त आपका सलोना शिशु आपकी ओर देखकर हंस रहा है. आपकी तरफ बढ़ता चला आ रहा है। यही आपके कृष्ण भगवान् हैं। इनकी आराधना कीजिए। क्या कोई संसारका सबसे बड़ेसे बड़ा विरागी और सन्यासी इस बातका दम भर सकता है कि वह सरलतामें, निष्कपटतामें इस शिशुसे बढ़ कर हैं ? विश्वका बड़ेसे बड़ा त्यागी और तपस्वी मनुष्य भी क्या इस बातका दावा कर सकता है कि उसने शिशुकी तरह कामिनी और कञ्चनके बन्धनसे सर्वथा छुटकारा पा लिया है। यह आपका शिशु साक्षात् भगवान्का छोटा जेबी संस्करण है। यह आपकी आत्माका प्रकाश है। शिशु वह मधुर फूल है जो अपनी महकसे गृहरूपी उद्यानको सुगन्धित किये रहता है। एक अंग्रेजीका विख्यात प्रतिभाशाली कवि भगवान्से प्रार्थना करते हुए कहा करता था कि "भगवान् ! मेरी एक ही कामना है, और वह यह है कि तू मुझे फिरसे बच्चा बना दे।" यदि आपको अपने शिशुमें कृष्णके दर्शन नहीं होते, तो आपको कहीं भी संसारमें कृष्णके दर्शन न होंगे। अपने शिशुमें कृष्ण-भावना स्थापित कीजिये, उससे तन्मय होकर लौ लगाइये आपका हृदय नाच उठेगा। कृष्ण कहीं सातवें आसमान पर नहीं है। जब आपको अपने घरमें ही कृष्णके दर्शन हो गये, तब दूर जानेकी क्या ज़रूरत है। वन, पर्वतोंकी खाक छाननेकी क्या आवश्यकता है। आप जिन सद्गुणोंको धारण करनेके लिए

हृदयमें जिस प्रेम और भक्तिकी तरङ्गको उत्पन्न करने के लिए बाहर दुनियांमें घूमते-फिरते हैं, उसकी पूर्ति तो आपके घर पर ही हो जाती है।

यदि आप सच्चे हृदयसे इस शिशुरूपी कृष्णकी भक्ति करेंगे तो जहां आप अपना कल्याण सम्पादन करेंगे, वहां इससे राष्ट्रका भी महान् हित साधन होगा।

## दृढ़ निश्चय कीजिये—

जब आपके ये भगवान् कृष्ण बड़े होंगे, तो इनके शारीरिक, मानसिक प्रत्येक प्रकारके विकासके लिए आप कोई कसर न उठा रक्खेंगे।

(१) असली शिक्षा माताकी प्रेममयी छत्रछायामें बच्चेकी घर पर ही होती है। एक प्रसिद्ध कहावत भी है—एक सुयोग्य माता सौ स्कूल मास्टरोंसे बढ़ कर है। बच्चेको नगरकी पाठशालामें बैठा कर आप अपने उत्तरदायित्वकी इतिश्री न समझ लेंगे।

(२) बच्चेका मन अत्यन्त कोमल होता है, जिस प्रकारके भाव बाल्यावस्थामें उसके हृदय-पट पर अङ्कित हो जाते हैं, वे जीवन-पर्यन्त अमिट रहते हैं। आप अपने बच्चोंको अपने मनके अनुकूल जो कुछ बनाना चाहें बना सकते हैं। आप अपने बच्चोंको राणा प्रताप और शिवा, स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ, महात्मा गांधी और जवाहरलालके जीवन-चरित्र अवश्य सुनायेंगे।

(३) कई बार बच्चे बड़े अद्भुत प्रश्न किया करते हैं, जैसे भगवान् कहां हैं, आदमी मर कर कहां जाता है, मनुष्य कैसे पैदा होता है ? आदि। इन प्रश्नोंको आप यों ही टाल न देंगे, बल्कि इनका सन्तोषप्रद उत्तर बच्चोंको अवश्य देंगे और बच्चोंकी कल्पना शक्तिको बढ़ानेमें उनके सहायक होंगे।

(४) बच्चे स्वभावसे ही चञ्चल, विनोदी और हास्यप्रिय होते हैं। आप सदा यमराजकी तरह उनकी खोपड़ी पर डांट डपट करनेके लिए सवार न रहेंगे। बच्चोंका स्वभाव ही उछल-कूद मचानेका है। अक्सर हमारे यहां बड़े बुजुर्ग हमेशा ऐसा गम्भीर मुंह बनाये रहते हैं, जैसे सायंकालकी ट्रेनसे ही सीधे परलोकके लिए प्रस्थान करनेवाले हों। बच्चोंको दिल खोल कर हंसने दीजिये, उन्हें मनहूस न बनाइये।

(५) सायंकाल दूकानसे लौटनेके बाद या आफिस से आनेके बाद थोड़ा समय अपने बच्चोंके लिए भी रिजर्व रखिए, उनसे घुल-घुल कर बातें कीजिये, अपने बच्चेसे पूछिए कि उसे किस चीजकी आवश्यकता है, उसका स्वास्थ्य कैसा है, उसकी पढ़ाई कैसी चल रही है आदि-आदि।

(६) बच्चोंके सामने कभी भूल कर भी ऐसा आचरण न कीजिये, जिससे उनपर बुरा प्रभाव पड़े। जो उपदेश आप बच्चेको देते हैं स्वयं उसका पहले पालन कीजिये। आप बच्चेको तो प्रातःकाल उठनेका उपदेश देते हैं और स्वयं कुम्भकर्णकी तरह सवेरे सात बजे तक खर्राटे ले रहे हैं; इस अवस्थामें आपके उपदेशका प्रभाव पड़ना मुश्किल है।

(७) बच्चोंका सदा अध्ययन करते रहें कि उनकी विशेष रुचि किस दिशाकी ओर है। जिस ओर बच्चे का झुकाव हो उसे उसी विशेष दिशाकी शिक्षा दीजिये। कल्पना कीजिये, आप कपड़ेके व्यौपारी हैं, और आपके बच्चेका झुकाव साहित्यकी ओर है, तो मेहरबानी करके उसके हाथमें कपड़ा नापनेवाला गज़ देनेकी गलती हर्गिज़ न करें। यदि आप रुपयेके लालचमें पड़ कर कलमकी जगह उसके हाथमें गज देंगे तो निश्चय ही जानिये कि वह १ गज़ कपड़ा नापनेके बजाय १। गज़ कपड़ा नापकर ग्राहकको देगा।

(८) आप अपने बच्चोंको राष्ट्रकी धरोहर समझें और उनके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक विकास का पूरा ख्याल रक्खें तथा उनका उचित पथ-प्रदर्शन करें इसीमें आपका और राष्ट्रका कल्याण निहित है।

# गीताञ्जलि का एक गीत

ऐ मेरे प्यारे बच्चे ! जब मैं तेरे लिए रंगीन खिलौने लाता हूं, तब मैं समझ पाता हूं कि विधाता क्यों बादलों को विविध रंगों में रंगता है, जल का विस्तार क्यों तरह-तरह के रंगों में हुआ है, इन नीले, पीले, गुलाबी फूलोंमें क्यों नये-नये रंगों की बहार नजर आती है—ऐ मेरे प्यारे ! जब मैं तेरे नन्हें हाथों में रंगीन खिलौने देता हूं।

जब मैं तुझे हर्षोत्फुल्ल करने के लिए, तुझे नचाने के लिए मधुर गीत गाता हूं तब मुझे इस रहस्य का पता लगता है कि मलय समीर से आन्दोलित पत्तों में सङ्गीत क्यों है ? लहरें क्यों मधुर गीत गाती हुई उछल-कूद मचा रही हैं—जब मैं तुझे नचाने के लिए गीत गाता हूं।

जब मैं तेरे नन्हें नन्हें चीजों को लेने के लिये उत्सुक हाथों में मीठी मीठी चीजें लाकर देता हूं, तब मैं जान पाता हूं कि फूलों के प्याले में मधु क्यों भरा हुआ है और फलों में क्यों मधुर रस छलछला रहा है। ऐ मेरे प्यारे बच्चे ! जब मैं तेरे लोभी हाथों में मिठाइयां देता हूं।

जब मैं तुझे हंसाने के लिए, प्रेम के आवेश में तेरा चुम्बन लेता हूं, तब मुझे इस तथ्य का पता लगता है कि आकाश में फैलते हुए प्रातःकालिक उषा के प्रकाश में कौन सा दिव्य आनन्द सन्निहित है और शरीर के साथ स्पर्श करती हुई ग्रीष्म ऋतु की शीतल बयार में कितना आनन्द है—जब मैं तुझे हंसाने के लिये तेरा चुम्बन लेता हूं।

अनु०—तरङ्गित हृदय।



# महापुरुषों के जीवन की घटनाएं

( १ )

स्वामी विवेकानन्दको कई बार बच्चोंसे तथा इतर लोगोंसे हंसी मज़ाक करते और खुलकर हंसते देखकर एक पादरीने उनसे किसी समय कहा था—"स्वामी जी आप तो बड़े तत्त्वज्ञानी और गम्भीर वेदान्ती हैं; आप इस तरह साधारण लोगोंके समान हंसी मज़ाक की बातचीत क्यों किया करते हैं ?" स्वामी जी तुरत बोल उठे—"क्यों भाई, हम हमेशा चिन्तित और ग़मगीन क्यों रहें ? मनहूसी तो मानसिक पतनका ज़हरी लक्षण है। हम तो सब आनन्द मय पिताके पुत्र हैं। हर जगह, हर हालतमें आनन्द है, शादी है; फिर क्यों न खुश रहें, क्यों न हंसे ?" पादरी महोदय इस गम्भीर उत्तरको सुनकर चुप रह गये।

( २ )

'राउण्ड टेबल कानफ्रेन्स' से लौटते समय इटली की बात है; किसी क्रिश्चियन योरोपियन स्वाभिमानी ने बड़ी शानसे पूछा—"गांधी जी हिन्दुओंमें अपने मृतकोंको कौवोंसे नुचवानेकी जो प्रथा है, वह बिलकुल असभ्य और निन्दनीय है; आपकी क्या राय है ?" प्रश्नकर्त्ता अज्ञानी था। उसे जानना चाहिये था कि यह प्रथा केवल पारसी लोगोंमें प्रचलित है। उनकी संख्या हिन्दुस्तानमें सबसे कम है और वे हिन्दू नहीं हैं। प्रथाके सम्बन्धमें अपनी राय देनेके पहले कोई भी बुद्धिमानसे बुद्धिमान उत्तर देनेवाला पहले यही कहता कि मृतकोंको कौवोंसे नुचवाना हिन्दू प्रथा नहीं, पारसियोंकी है। परन्तु इस उत्तरमें साम्प्रदायिक भेद-बुद्धिका यत्किञ्चित् आभास भी आ जाता। प्रत्युत्पन्नमति गांधी जी इस नाजुक प्रसङ्गको बड़ी सफाईसे पार कर गये। फ़ौरन और सीधा यही उत्तर दिया कि महाशय, मनुष्य अपने मृतकोंको चाहे खुली हवामें कौवोंसे नुचवावें, चाहे कब्रमें कीड़ोंसे; बात एक ही है। आप इसकी चिन्ता न करें, चिन्ता तो इस बात की कीजिये कि आत्माकी रक्षा किस प्रकार हो सकती है! शानदार प्रश्नकर्त्ता निरुत्तर हो गया; गांधी जी की ओर वह अपनी बुद्धिके सीमान्त पर लाचार खड़ा खड़ा ताक रहा था। गांधी जी चलते बने।

( ३ )

स्वामी रामतीर्थसे एक बार उनकी धर्मपत्नीने पूछा—"महाराज, आप जब परिभ्रमण करते हैं, तब आपको मेरी याद कभी आती है ?" स्वामी जीने उत्तर दिया 'नहीं'। पत्नीने पूछा, क्यों ? आपको मेरी याद क्यों नहीं आती ? इस प्रश्नके उत्तरमें उस प्रणयशील संन्यासीने हंस कर कहा—प्रियतमे ! मैं तुम्हें कभी भूलता ही नहीं; फिर तुम्हारी यादकी सम्भावना कैसी ? मनुष्य याद तो उसी बातको करता है, जिसे वह कभी भूल जाता है। स्वामी जी विश्व-प्रेमी थे। वे "आत्मानम् सर्वभूतेषु सर्वभूतानि चात्मनि" देखनेके अभ्यासी थे। लेकिन फिर भी उनके हृदयमें उस देवीके लिए स्थान सुरक्षित था, जिसके साथ वे परिणय-बन्धनमें बंध चुके थे।

सर्व साधारणको व्यावहारिक वेदान्तकी शिक्षा देते हुए स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे—"प्यारे ! परमात्माकी तलाशमें तुम कहीं दूर मत जाना; परमेश्वरके दर्शन तुम्हें घर ही में होंगे। देखो, वह तुम्हारी धर्मपत्नीके दो बड़े-बड़े करुणापूर्ण नेत्रोंके ज़रिये झांक रहा है। देखो, परमात्माके स्वरूपको पहचानो। वह तुम्हारे सरल दुधमुहें बच्चेके रूपमें किलोलें करता हुआ अंगूठा चूस रहा है।' सच है,

यदि मनुष्यको अपने स्त्री बच्चोंमें परमात्माके दर्शन न हुए तो उसका अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

( ४ )

स्वामी विवेकानन्द जिन दिनों परिव्राजक थे, उन्हें खबर मिली कि उनकी माता बीमार हैं। मातासे मिलनेके लिए वे बेचैन हो गये। किसीने उनसे कहा, स्वामी जी, आत तो संसार विरक्त संन्यासी हैं, आपको ऐसा अधीर न होना चाहिए। इसपर स्वामी जीने उत्तर दिया—"भाई मेरे! जिस संन्यासमें स्नेहमयी माताके लिए प्रेमकी गुञ्जायश नहीं है, उस संन्यास को मैं गन्दी नालीमें फेंक देनेके लिए तैयार हूं।"

( ५ )

विदेशोंमें वेदान्तकी ध्वजा फहरानेवाले भारत माताके अमृत पुत्र श्री स्वामी रामतीर्थ जहाजसे जब अमेरिका पहुंचे, उस समय इनके पास न तो एक पैसा ही था, न कोई सामान ही। फिर भी ये निश्चिन्त खड़े थे, मानो सारा संसार इन्हींका हो। चारों तरफ चहल-पहल थी। सभी अपने सामान लेकर उतरनेमें व्यस्त थे। एक गेरुआ वस्त्रधारी गौर-वर्ण भारतीय को इस व्यस्ततासे इतना निश्चिन्त देख एक अमेरिकन आकर्षित हुआ। उसने पास आकर पूछा—

"आपका सामान कहां है?"

"रामके पास सिर्फ उतना ही सामान रहता है जितना वह साथ ले चल सके।"

"क्या आपके पास पैसा है?"

"नहीं, राम पैसा नहीं रखता।"

"तब क्या आप यहां उतर रहे हैं?"

"हां।"

"आपका सहायक तो कोई अवश्य होगा?"

"हां, एक है।"

"कौन?"

रामने प्रश्न-कर्त्ताके कन्धेपर हाथ रख कर कहा—"तुम"।

इस स्पर्श तथा "तुम" ने उसपर बिजलीका काम किया। सचमुच अमेरिकामें वह उनका परम भक्त बन गया। यह थी रामकी चुम्बकीय शक्ति।

# मैं अहरह उसको ध्याता हूं !

रचयिता—श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'

अपना मन्दिर आप बना कर
भांति भांति से उसे सजा कर
धूप, दीप, नैवेद्य आदि औ, चन्दन उसके हित लाता हूं !
मैं अहरह उसको ध्याता हूं !

अक्षत, रोली थाल सजी है
फूलों की वर - माल सजी है
उसके स्वागत हित ही तो नित, प्रेम-अश्रु से अकुलाता हूं !
मैं अहरह उसको ध्याता हूं !

क्षण भर यदि झांकी पा जाता
स्नेह - सदन में पकड़ बिठाता
प्रेमालिङ्गन करने ही में, क्यों ऐसे में अकुलाता हूं !
मैं अहरह उसको ध्याता हूं !

# गीत

( रचयिता : श्री महावीरप्रसाद विद्यार्थी; टेढ़ा-उन्नाव )

मैं जीवन - पुष्प पिरोऊं ।
तेरी पूजा की माला में मैं जीवन - पुष्प पिरोऊं ।

जल -थल हों मुक्त, असीम गगन !
तन - मन हों मुक्त, मुक्त जीवन ।
है लगा हुआ यह मस्तक पर टीका कलङ्क का धोऊं ।

मलयज के चञ्चल अञ्चल में,
कल कुञ्जों के अन्तस्तल में,
तेरी विकसित छवि देख - देख उसमें अपनापन खोऊं ।

इस वीणा से झङ्कार उठे,
जिससे सोया संसार उठे,
फिर अन्त - समय में मां, तेरे इस मृदुल अङ्क में सोऊं ।
तेरी पूजा की माला में मैं जीवन - पुष्प पिरोऊं ।

# नारी हृदय !

लोग नासमझ होते हैं जो हीरे और मणिकी तलाशमें भूगर्भको खोदते फिरते हैं। जितना प्रयास वे इन भड़कीले पत्थरोंकी खोजमें किया करते हैं, यदि उसका चतुर्थांश भी वे नारी-हृदयके सम्पुटित हृदय कोषको खिलानेमें खर्च कर दें तो इन देवियोंके हृदय-गर्भसे ऐसे अलौकिक देदीप्यमान और मनोहर रत्न इतनी अधिक संख्यामें एकके बाद एक निकल पड़ें कि हमारा यह हीन समाज दैवी सम्पत्तिसे मालामाल हो जाय और उसके तिमिरावृत हृदयका एक-एक कोना सद्भावनाओंसे भासमान हो जाय। समुद्र मन्थनके द्वारा देवताओंने सिर्फ चौदह रत्न निकाले थे; परन्तु शुद्ध सतोगुणी शिक्षा और संस्कारके मानदण्डसे भारतीय ललनाओंके प्रशान्त हृदय-सागर से चौदह सौ नहीं चौदह हजार ऐसे अनमोल भाव-रत्नोंका आविर्भाव हो, जिन्हें देखकर एक बार देवताओंको भी दांतों तले उंगली दबानी पड़े। कौन कह सकता है कि हमारी माताओं, बहिनों तथा स्त्रियोंके अशिक्षित और निःशब्द हृदयोंमें कितनी मूक वेदनायें भरी हैं? कौन कह सकता है कि सुसंस्कृत वाक्-शक्तिके अभावमें कैसे-कैसे सुन्दर सद्भावना-सुमन उनके हृदय-रूपी उद्यानोंमें सम्पुटित ही रह जाते हैं, खिलने नहीं पाते। अभागा भारत उनके स्वर्गीय सौरभसे वञ्चित ही हो रहा है। उसे देखनेवाला कौन है!

किनने बेताब हैं जौहर मेरे आईने में,
किस तरह जलवे तड़पते हैं मेरे सीने में,
इस गुलशन में मगर देखने वाले ही नहीं,
दाग़ सीने में जो रखते हैं वो लाले ही नहीं।

नारी हृदयके गुलशनमें जो फूल खिलते हैं, उनका देखने वाला कोई नहीं! अफ़सोस !!

—श्री पं० रामदयाल तिवारी बी० ए० एल० एल० बी०।

# चिन्ता चिता से कैसे बचें ?

लेखक डा० विट्ठलदास मोदी एन० डी०, सञ्चालक आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर !

प्रस्तुत लेखके लेखक श्री डा० विट्ठलदास जी भारतवर्षके विख्यात प्राकृतिक चिकित्सकोंमेंसे हैं। आपका चिकित्सा सम्बन्धी अध्ययन बहुत ही विशद् एवं गम्भीर है। आपके लेख अक्सर हिन्दुस्तानकी मशहूर पत्र-पत्रिकाओंमें निकलते रहते हैं। देहलीसे निकलनेवाले प्रमुख मासिक पत्र 'जीवन साहित्य'में जान डालनेका श्रेय आपको ही है। आप बहुत ही खुशमिज़ाज़, मिलनसार और विनोद-प्रिय व्यक्ति हैं। मनोविज्ञानके सिद्धान्तोंको दृष्टिमें रखते हुए प्रस्तुत लेखमें आपने, व्यर्थकी चिन्ताओं, झंझटों और परेशानियोंसे बचनेके उपाय बड़ी सुन्दर, सरल रीतिसे बतलाये हैं।

——सम्पादक।

चिन्ताका संसार-व्यापी महायुद्ध अनादि कालसे चला आ रहा है, पर आधुनिक सभ्यताके साथ यह उग्रतर होता जा रहा है। संसारमें फैले हुए अधिकतर रोग और शोकका कारण चिन्ता ही है। इसमें फंस-कर कितने ही प्राणियोंने अपने प्राण गंवाये और शायद कितने ही गंवाते भी रहेंगे।

चिन्ताका रोग बहुत व्यापक अवश्य है पर मानस-शास्त्रियोंने इस रोगको दूर करनेके उपाय भी ढूंढ़ निकाले हैं। वे कहते हैं कि इस रोगके भगानेके लिए रोगीके सहयोगकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। पहले रोगीका भय दूर करना चाहिए; क्योंकि भय की ही नींवपर हर प्रकारकी चिन्ता पनपती और बढ़ती है।

खोज करनेपर ज्ञात होगा कि प्रत्येक प्रकारकी चिन्ताका स्रष्टा मनुष्य स्वयं ही होता है। बाहरी वातावरण तो हमारी चिन्ताकी जड़में केवल खाद-पानीका काम करता है।

कुछ लोग कहते हैं कि चिन्ताका रोग पैतृक होता है। पर उनका यह कथन बहुत सही नहीं जान पड़ता; क्योंकि चिन्ता अनिष्टकी आशङ्काके कारण उत्पन्न होती है और इस अनिष्टकी आशङ्का करनेका अपराधी तो मनुष्य स्वयं होता है।

जब चिन्ता किसीके हृदयमें जड़ जमा लेती है तो उसमें एक भावना और उत्पन्न हो जाती है। वह अपनेको औरोंके मुकाबिलेमें छोटा समझने लगता है। वह अपनी कठिनाइयोंको सोच-सोचकर बड़ा-बड़ा बना लेता है और उन्हें मान्यता देता रहता है। केवल सोचनेसे तो कठिनाई दूर नहीं होती और कठिनाई दूर न होनेपर वह सोचने लगता है कि उसकी बेइज्ज़ती हो रही है और फिर अपने जीवनको ही वह हेय समझने लगता है।

इस नासमझीसे कोई लाभ तो होता नहीं, पर स्वास्थ्य अवश्य बिगड़ जाता है। चिन्ता करनेसे गुरदेकी ग्रन्थिसे अधिक रस निकलने लगता है। यह रस बहुत तेज होता है और खूनमें मिलकर उसे दूषित कर देता है। फल यह होता है कि शरीरकी कान्ति फीकी पड़ जाती है, चर्म पीला पड़ जाता है, मुंहसे दुर्गन्ध आने लगती है, सिरमें हमेशा दर्द रहता है और थकान बनी रहती है। भूख भी मारी जाती है और उसका उपचार करते न करते मन्दाग्नि रोग आ घेरता है। खाना नहीं पचता, रोगी नित्य कम-ज़ोर होता जाता है; फिर तो उसमें वह शक्ति नहीं रह

जाती कि रोगोंसे लड़ सके। अतः उसे अनेक प्रकारके रोग घेरे रहते हैं।

अधिक चिन्ता करते रहनेसे स्नायु-जालके विकार भी उत्पन्न हो जाते हैं। यहां तक कि चिन्ता करते रहनेवाले अनेक महाशय पागल भी होते देखे गये हैं। कमसे कम इसका असर शारीरिक सौन्दर्य और स्वास्थ्यपर तो पड़ता ही है। कोई भी इस रोगके रोगीकी सूरत देखकर उसे पहचान सकता है। चेहरे-पर झुर्रियां पड़ जाती हैं, बाल कुसमयमें ही पक जाते हैं, भौंहोंके नीचे सिकुड़न-सी पड़ जाती हैं और मुंह लटका-सा रहता है।

चिन्ताका असर चरित्र और स्वभाव पर भी पड़ता है। चिन्ता जब जड़ जमा लेती है तो उत्साह मर जाता है, स्फूर्ति चली जाती है, इच्छा-शक्ति निर्बल हो जाती है और शान्ति-पूर्वक तर्क करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। चिन्ताको हम मूर्छा और ज्वरके सम्मिश्रणकी अवस्था कह सकते हैं।

चिन्ताका रोगी चिन्ता बिखेरता-सा फिरता है। अतः इसका कुपरिणाम दूसरोंको भी भोगना पड़ता है, उसकी दूसरोंको चिन्ता करनी पड़ती है। वह अपने ख़ुशमिज़ाज़ मित्रों एवं सम्बन्धियों तकमें अपने गमगीन व्यवहारके कारण झुंझलाहट पैदा कर देता है और अन्तमें उन्हें उससे नाता तक तोड़ लेनेके लिए मजबूर कर देता है। चिन्ताके रोगीके मित्रों एवं सम्बन्धियोंको यही मन्त्रणा दी जा सकती है कि वे अपने मित्रका असर अपनेपर न आने दें।

चिन्ता करनेसे हानिके सिवाय कोई लाभ तो होता नहीं। चिन्ता करनेसे ही कठिनाइयां दूर हो जायं तो अवश्य कीजिये। पर होता यह है कि चिन्ता करनेसे गुत्थियां सुलझनेके बजाय उलझती ही जाती हैं। जहां विचार वृत्तिका अन्त होता है वहींसे चिन्ता आरम्भ होती है। चिन्ता संहारक वृत्ति है, विचार सृजनात्मक। फिर विचारसे ही क्यों न काम लिया जाय।

अब चिन्ताको दूर भगानेके लिए कुछ उपाय बताये जाते हैं। पहली बात जानने की यह है कि कैसा भी सङ्कट आता क्यों न दिखाई दे, घबड़ाइये नहीं, उसका विश्लेषण कीजिये। उसे चारों तरफसे देखिये और उसके तथ्यको समझ कर उन बातोंको प्रकाशमें लाइये जो आपको डरा रही हैं। प्रकाशमें लानेका यह अर्थ नहीं है कि आप सबसे अपना दुःख कहते फिरिये। फिर तो आपके पास विचार करनेका समय ही न रह जायगा। सबसे कहते रहनेसे समस्या तो हल होगी नहीं, आपकी बातें सुन-सुनकर लोग ऊब अवश्य जायेंगे। फिर आप एक नयी चिन्ता मोल ले बैठेंगे कि लोग आपकी बातोंसे ऊबते क्यों हैं? पर यह भी ठीक नहीं कि आप अपनी बातें किसीसे कहें ही नहीं और उन्हें खुद सोच-सोचकर अपना जी घोंटते रहें। किसी विश्वासपात्र मित्रको अपने दिलकी बातें कहकर जी हलका अवश्य कर लीजिये।

आपके मित्रसे जो सान्त्वना और मन्त्रणा आपको मिलेगी वह आपके लिए बड़े लाभकी होगी। पर यदि आपका कोई विश्वासपात्र मित्र नहीं है तो निराश होनेकी कोई आवश्यकता नहीं। कोरे कागज और पेन्सिलको अपना मित्र बनाइये। यह आपकी चिन्ता भगानेमें आपकी बड़ी मदद करेगा। कागज-पर अपनी कठिनाइयां लिख डालिये। सोनेके समयके अलावा और कोई भी समय इस कार्यके लिए नियत कीजिये; हाथमें पेन्सिल और सामने कागज लेकर शान्तिपूर्वक बैठ जाइये। अब अपने चिन्ताओंके ढेर पर विचार कीजिये। फिर देखिये आपकी चिन्ताके कारण कितने हैं। होता यह है कि हम एकपर दूसरी समस्याको लादते जाते हैं और फिर

उनका समूह अपनी मानस-दृष्टियोंके सामने रखकर घबराते रहते हैं। सबको अलग-अलग कर डालिये और उनकी एक सूची बना लीजिये। जब ऐसी सूची तैयार हो जाय तो प्रत्येक समस्यापर तथ्य-निरूपणकी दृष्टिसे विचार कीजिये और प्रत्येक समस्याका एक हल निकालनेकी कोशिश कीजिये। भावुकताको दूर रखकर चतुरतापूर्वक बुद्धिसे काम लेते हुए अपने विचारोंको एकत्र कीजिये और जो हल निकले उसे भी लिख लीजिये।

मान लीजिये कि मनोहरने अपनी चिन्ताओंको एक-एक कर सोचा और उसके जीवनको भारमय बनानेवाली चिन्तायें ये निकलीं :—

(१) बनियेका कर्जा कैसे चुकेगा ?

(२) सोहन पढ़ता ही नहीं, पास कैसे होगा ?

(३) पैसा तो है ही नहीं, छोटे लड़केका मुण्डन-संस्कार कैसे होगा ?

(४) पिछले सप्ताह कैसी गलती हुई, जो आइना गिरकर टूट गया ?

मनोहर सोचकर शायद ये उपाय ढूढ़ निकालेगा :—

(१) वह मितव्ययी बनेगा और पिछला कर्जा धीरे-धीरे चुका देगा। जिस बनियेने अब तक उधार दिया आगे भी अवश्य देगा।

(२) कुछ समय निकाल कर वह सोहनको अवश्य पढ़ावेगा।

(३) मुण्डन-संस्कार देरसे भी हो सकता है। वह सिगरेट, पानके खर्चको थोड़ा कम करके कुछ पैसा बचावेगा। ताकि मुण्डन-संस्कार साल छः महीने बाद हो सके।

(४) पिछली गलतीको याद करनेसे क्या फायदा, वह उसे अवश्य भुला देगा।

मनोहरके ये विचार बहुत बुद्धिमतापूर्ण न भी हों तो किसी निश्चयपर न पहुंचनेसे कुछ निश्चय कर डालना तो अच्छा ही है।

सोचना और सोच कर कुछ कर डालना चिन्ता राक्षसीके पैर उखाड़नेका पहला रास्ता है। तो आपने अपनी प्रत्येक चिन्ताको भगानेके लिए कुछ उपाय लिख डाले हैं। फिर आपने जो लिख डाला है उसपर अमल कीजिये। जब निशाना साध लिया है तो तीर छोड़ ही दीजिये। जो शक्ति आप चिन्ता करनेमें व्यय करते थे उसे कार्यमें संलग्न कीजिये फिर आपकी असफलतायें सफलतामें परिणत होने लगेंगी।

चेतावनीके तौरपर यह बता देना आवश्यक है कि सोते समय तो कोई चिन्ता कीजिये ही मत! जब आप चारपाईपर लेटते हैं तो सोने या कमसे कम आरामके लिए तो लेटते ही हैं। उस समय चिन्ताको भगानेके लिए मुट्ठी बांधकर और दांत भींच कर यह कहना ठीक न होगा कि अब मैं चिन्ताको पास न फटकने दूंगा। ऐसा करनेसे तो आपके शरीरकी नसें तन जायंगी, स्नायु-जालपर झटका-सा लगेगा। अतः आप आत्म-शक्तिसे अधिक प्रबल आधार दिवा स्वप्नसे काम लीजिये। सोचिये आपके दिन फिर गये हैं, कोई मधुर-सा स्वप्न देखिये। स्वप्न देखनेके लिए रातसे बढ़कर और कौन सा अच्छा समय होगा ? मैं एक विद्यार्थीको जानता हूं जो लड़के पढ़ा कर, अखबार बेचकर, अध्ययन कर रहा है। थका-मांदा जब वह सोने जाता है तो सोचता है, कि पढ़-लिखकर वह यात्रापर निकलेगा। सुन्दर-सुन्दर दृश्य देखेगा, ऐतिहासिक स्थानोंके दर्शन करेगा और नये-नये व्यक्तियोंसे परिचय प्राप्त करेगा। ऐसी ही कुछ बातें आप भी सोच सकते हैं और जरूर सोचिये।

दूसरी बात जाननेकी यह है कि मनोहरसे शीशा टूट जानेके कारण उत्पन्न हुई-सी चिन्ताके लिए आप

कुछ नहीं कर सकते। इसलिए उन्हें भूल जाना ही ठीक है। पुरानी गलतियोंके लिए यही एक रास्ता है। गलतियां तो सभीसे होती हैं, आपसे भी हुई तो कौन सी नयी बात हुई। पुरानी गलतियोंको याद करके अपनेको कोसते रहना बुरा है। की हुई गलतियोंको भूल जाना और अपराधीको क्षमा करनेके सिद्धान्तको अमलमें लाइये।

लोग अपनी चिन्तासे तो परेशान रहते हैं, पर ऐसे लोगोंकी भी कमी नहीं है जिन्हें दुनियाकी चिन्ता घेरे रहती है। उन्हें दीखता है कि समाज पतनकी ओर जा रहा है, अनाचार फैल रहा है और धर्म नष्ट होने ही वाला है।

कुछ सोचते हैं, हे भगवान ! इस यूरोपीय युद्धका भारतपर क्या प्रभाव पड़ेगा। ऐसी अनेक तरहकी चिन्तायें वे गढ़ते रहते हैं। ये वे लोग होते हैं जो अपनी हस्तीको नहीं पहचानते। वे अपने साथ व्यर्थका बड़प्पन जोड़ लेते हैं। उन्हें अपना व्यक्तित्व पहचानना चाहिए।

अन्तमें यही कहना हैं कि वर्तमानपर दृष्टि रखिये और भविष्यके बारेमें आशापूर्ण भावना। कठिनाइयोंका डटकर मुकाबिला कीजिये। चित्तको दृढ़ बनाये रहिये फिर चिन्ता आपके पास तक न फटकेगी।



# सत्यव्रत

ले०—श्री नारायणप्रसादजी साधक श्री अरविन्दाश्रम, पांडीचेरी।

प्रस्तुत नाटकमें विद्वान् लेखकने विनय और मृदुलाके वार्तालाप द्वारा यह दर्शानेका प्रयत्न किया है कि पति ही पत्नीका प्राण है, उसके आंखोंकी ज्योति है, उसके जीवनका सुमधुर सङ्गीत है और उसकी आशाओंका एकमात्र केन्द्र है। पत्नीके लिए पति ही भगवान् है, उसे सन्तुष्ट करना, उसकी सेवा करना ही उसकी भगवद्-भक्ति है। साधारण गृहस्थोंकी तरह विनयके हृदयमें भी वैराग्यकी भावना उदित होती है, और वह भगवान्‌की प्राप्तिके लिए गृहस्थके बन्धनों को तोड़ना चाहता है, परन्तु अपनी पत्नीके अमृतमय उपदेशसे वह यह भावना त्याग देता है। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। आवश्यकता है, अपने मनको प्रशस्त, निर्मल और योगी बनाने की।

— सम्पादक।

( गताङ्कसे आगे )

## दूसरा अङ्क

### दूसरा दृश्य

स्थान—विनयके महलका भीतरी हिस्सा।

( विनय और मृदुला )

विनय—आज कल तुम्हारे मुखकी हंसी कहां चली गयी है मृदुला !

मृदुला—मैंने उसे विदेश भेज दिया है।

विनय—क्यों ?

मृदुला—क्योंकि उसकी तुम्हारे पास कोई कदर नहीं रही।

विनय—कदर नहीं रही कैसे जाना ? तुमने भूल समझा है।

मृदुला—भूल समझा है !--तो बताओ मेरी भूल।

विनय—पहले हंसो।

मृदुला—पहले कहो।

विनय—क्या ?

मृदुला—मेरी हंसीका क्या दाम दोगे ?

विनय—मुंह मांगा दाम दूंगा।

मृदुला—सच कहते हो—पीछे तो नहीं हटोगे ? यदि मैं अपनी हंसीकी कीमतमें तुमको खरीदना चाहूं तो बिक जाओगे मेरी हंसीपर ?—हो जाओगे मेरे सम्पूर्ण रूपसे—

विनय—( स्वरको उतार कर ) सम्पूर्ण रूपसे—

मृदुला—क्यों, कहते-कहते रुक क्यों गये ? तुम यदि सम्पूर्ण रूपसे मेरे नहीं हो तो किसका तुम-पर अधिकार है—तुम और किसके होना चाहते हो ?

विनय—मैं जिसका होना चाहता हूं वह अभी बतानेका समय नहीं आया मृदुला।

मृदुला—नहीं, मुझे बताओ—नहीं बताओगे ? क्या मैं तुम्हारी कोई नहीं हूं ?

विनय—अच्छा, आज नहीं और कभी बताऊंगा।

मृदुला—मैं देखती हूं तुम बड़े यत्नके साथ अपने मनके भावको छिपाये रखते हो !—क्यों मुझे कष्ट होगा इसलिए नहीं कहते ? तुम मेरे कष्टकी बात सोचते हो ? पर प्राणेश ! तुम्हें सुखी करनेके लिए यदि मैं अपने ऊपर विपत्तियों का पहाड़ भी उठा लूं, तो तुम्हारे प्रसन्न

मुखको देखकर मुझे जो आनन्द होगा उसका क्या तुम अनुमान लगा सकते हो ? ( पास आकर अति आग्रहके साथ ) बोलो तुम अपने ही घरमें विदेशीकी तरह क्यों रहते हो--सदा क्या सोचा करते हो ? नहीं बोलोगे ? मुझे क्या तुम्हारे मनकी बात जाननेका कोई अधिकार नहीं है ?

विनय—( धीमे स्वरसे ) है।

मृदुला—बड़ी विवशतासे है कहा।—नाथ ! गाछपर ही लता शोभती है। तूफान आकर जब गाछको कंपा डालता है, उस समय वह उसके हृदयसे चिपक कर सारे झकोरोंको अपने ऊपर ले लेती है और पेड़ जब गिरता है तो उसके साथ ही वह भी गिर पड़ती है। क्या मेरी बातें तुम्हें अच्छी नहीं लगती। ( विनयका हाथ अपने हाथमें लेकर ) बोलो तुम्हारे मुखपर सदा उदासीके बादल क्यों छाये रहते हैं। ऐसी कौन-सी चिन्ता है जो तुम्हें चैन नहीं लेने देती ?

विनय—( मुस्करा कर ) तुम्हें कैसे सुखी करूं इसकी चिन्ता।

मृदुला—तुम मुझे भुलाना चाहते हो।

विनय - मैं तो तुम्हें भुलानेकी चेष्टा ही कर रहा हूं, पर तुम तो पहले ही बाजी मार ले गयी। तुमने तो मुझसे भुलवा ही दिया है।

मृदुला—क्या ?

विनय—मेरा लक्ष्य।

मृदुला—तुम्हारा लक्ष्य क्या है ?

विनय—कहां, यह सोचनेकी मुझे फुरसत ही कहां देती हो ?

मृदुला—इस अपराधके लिए तो मुझे अवश्य दण्ड मिलना चाहिए।

विनय—( हंस कर ) हां, अवश्य दण्ड दूंगा। ( ठहर कर ) अच्छा जाओ, मैंने तुम्हें नादान समझ कर माफ़ किया। तुम रिहा कर दी गयी; आजसे तुम स्वतन्त्र—

मृदुला—( जल्दीसे बीचमें ही ) नहीं; मैं स्वतन्त्र होना नहीं चाहती—मुझे यह गुलामी ही पसन्द है।

विनय - तुम्हें गुलामी ही पसन्द है ? ( विनय विमुग्ध होकर मृदुलाके हंसते हुए मुखकी ओर ताकता है ) मृदुला ! तुम मानवी हो या कोई देवी ? यहां इस सख्त दुनियांमें क्यों आयी हो ? किसलिए आयी हो ?

मृदुला—तुम्हारे लिए।

विनय—( एकाएक आकाशकी ओर ताक कर ) कौन ! यह कौन है जो मेरा पांव पकड़ कर मुझे नीचे खींचना चाहता है ?—नहीं मैं ऊपर उठूंगा;

मृदुला—तुम किससे बातें कर रहे हो।

विनय—( अपने मनके भावको छिपा कर ) पहले यह बताओ कि तुम मुझे इतना प्यार क्यों करती हो ?

मृदुला—तुम्हें प्यार क्यों करती हूं ?—स्त्री अपने पतिको प्यार करती है इसका वह जवाब क्या दे ?—जो उसके प्राणोंका प्राण है, जीवनका आनन्द है, शरीरकी शक्ति और आंखोंकी ज्योति है, इस लोकका सर्वस्व और परलोकका स्वर्ग है—उसे वह प्यार क्यों करती है इसका वह जवाब क्या दे ? नारीके नन्हेंसे हृदयमें समुद्र कैसे समाया रहता है और उसमें प्रेम-जल कैसे लबालब भरा रहता है उसे पुरुष क्या जानें।

विनय—जानते नहीं, लेकिन डुबकियां खूब खाते हैं। माधुरी मेरा एक कहा मानोगी ?

मृदुला—आर्यपुत्र ! कब मैंने तुम्हारा कहा नहीं माना ?

विनय—मृदुला ! मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं जिस भूमिपर अपनेको उठा ले जाना चाहता हूं वहां तुम भी मेरे साथ रहो, मेरे इस प्रयासमें तुम भी मेरा साथ दो—जिस प्रकार तुम मुझे प्यार करती हो उसी तरह क्या भगवान्‌को प्यार नहीं कर सकती ?

मृदुला—भगवान्‌को ही तो मैं प्यार करती हूं—उसे ही तो मैं पूजती हूं ।

विनय—भगवान्‌को ही पूजती हो ?—कहां मैं तो नहीं देख पाता ?

मृदुला—कोई भगवान्‌को मूर्तियोंमें पूजते हैं; कोई मानव-शरीरमें बैठे भगवान्‌को पूजते हैं; जिसकी जैसी अभिरुचि ।

विनय—तुम्हारी अभिरुचि क्या है ?

मृदुला—नहीं जानते तुम मेरी अभिरुचि ?

विनय—नहीं जानता ।

मृदुला—तो दिखा दूं मैं अपने भगवान्‌को, लेकिन तुम्हें भी मुझे अपने भगवान्‌को दिखाना होगा ।

विनय—मुझमें वह शक्ति नहीं है ।

मृदुला—तो मेरी शक्तिको देखो । ( विनयकी ठुड्डी पकड़ कर हिलाते हुए ) यही हैं मेरे जीते-जागते भगवान् ! जिन्हें मैं हर समय पूजती हूं ।

विनय—सुनो सुभाषिणी ! भगवान् ही सब कुछ हैं मनुष्य कुछ नहीं ।

मृदुला—मेरे लिए तुम्हीं सब कुछ हो और कोई कुछ नहीं । तुम्हें छोड़ कर और किसीको मैं नहीं जानती, नहीं मानती, नहीं पूजती ।

विनय—भगवान् ! तुमने कैसा मधुमय बन्धन रचा है ।

मृदुला—अब मैं जान गयी कि दिन रात तुम क्या सोचा करते हो ?

विनय—क्या जान गयी ।

मृदुला—यही कि कैसे इस बन्धनको तोड़ कर फेंक दूं; निश्चय तुम यही दिन रात सोचा करते हो ।

विनय—केवल मेरे सोचनेसे ही क्या हो सकता है ?—यह वह बन्धन नहीं है मृदुला जो एक झटका मारते ही टूट जाय । यह वह बन्धन है जिसके सामने कायदे-कानूनका बन्धन, तन्त्र-मन्त्रका बन्धन, संसारके सारे बन्धन वैसे ही साबित होते हैं जैसे लोहेकी सीकड़के सामने सूतका एक धागा ।

मृदुला—तुम कहते हो कि यह बन्धन तोड़ा नहीं जा सकता । फिर भी न जाने क्यों मेरा जी तुम्हारी इस बातको मानना नहीं चाहता ।

विनय—वह क्या कहता है ?

मृदुला—यह मैं पीछे बताऊंगी ।

विनय—नहीं, अभी बताओ ।

मृदुला—नहीं, फिर कभी । अभी उसके बतानेका समय नहीं आया ।

विनय जोरसे हंस पड़ता है ।

मृदुला क्यों, तुम हंसे क्यों ?

विनय—तुम्हारी बुद्धिमानी पर—मेरी ही रस्सीसे कैसे मुझे बाँधा ।

मृदुला—( गर्दन ऊंची कर ) तो हार मानते हो ?

विनय—हां ।

मृदुला—तब बताओ तुम किसके होना चाहते हो ?

विनय—उसका जो रह-रह कर मेरी हृत्तन्त्रीके तारोंमें झङ्कार उठता है 'आओ मेरे. अमृत-पथपर आओ' ।

मृदुला—रहती नहीं क्या मैं लालायित सदा, अपने हृदयका अमृत पिलानेको तुम्हें हरदम ?

विनय—इसी उलझनमें तो मैं पड़ा हूं । इन दो में से कौन-सा प्रकृत अमृत है यही तो मैं निर्णय नहीं कर पाता । जब तुम्हारी तरफ आंखें

उठाता हूं तो देखता हूं तुम्हीं सुखकी आगर हो, तुम्हारे हरएक अङ्गसे अमृत चू रहा है; पर उस अमृतको पीते-पीते जब मैं थक जाता हूं और तृप्ति नहीं मिलती तो मैं हत्-बुद्धि होकर चिल्ला उठता हूं—कहां, कहां है वह अमृत—यही संग्राम मेरे भीतर दिन रात समान भावसे चला करता है।

( मृदुलाके हृदयका बांध टूट पड़ता है और वह रो पड़ती है )

विनय—तुम रो रही हो ? नहीं, मुझसे तुम्हारा रोना देखा नहीं जाता। ( लाड़ भरे स्वरमें ) रोओ मत। देखो, अपने दो बूंद आंसुओंके बलको देखो—उनसे एक प्रचण्ड रूपसे धधकती हुई भट्ठी बुझ गयी। वासनाकी ललकारके सामने वैराग्यने घुटने टेक दिये।

मृदुला—( विह्वल स्वरसे ) स्वामिन्! मुझे ऐसा मालूम होता है कि मेरे सोनेके संसारको कोई उजाड़ने आया है—मेरे कलेजेको चीर कर मेरे गुप्त धनको कोई लेने आया है। घरमें कोई चोर घुस पड़ा है और मुझसे तुमको छीन कर ले जाना चाहता है, क्या सचमुच तुम एक दिन मेरे हृदयके पिंजड़ेको तोड़ कर निकल भागोगे ?

विनय—नहीं मृदुला, जब तक प्राणमें लालसा घुनकी तरह घुसी हुई है, आसक्तिकी जञ्जीरसे पैर जकड़े पड़े हैं तब तक मैं कहीं नहीं जा सकता—शरीरको योगी बनानेके पहले मैं मनको योगी बनाना चाहता हूं, पर मृदुला मेरी तुमसे एक प्रार्थना है।

मृदुला—प्रार्थना! और मुझसे ?

विनय—हां, तुमसे। कान लगा कर सुनो।

मृदुला—( हंसते हुए ) कान लगा कर ( वैसा ही करती है ) अच्छा फरमाइये।

विनय—कैद तो तुमने मुझे कर ही रखा है, अब भगवान्‌के नामपर मेरी सजा सख्तपर सख्त मत करती जाओ। कमसे कम इतनी रियायत अवश्य करना कि मैं तुम्हारे हृदयके निर्जन कारागारमें बन्द न कर दिया जाऊं।

मृदुला—( मचल कर ) यह प्रार्थना नाजायज़ है—मैं इसे स्वीकार करनेसे साफ़ इनकार करती हूं।

विनय—जरा रहम—

( किसीके गानेकी आवाज सुन कर )

इतनी रातको सड़कपर गा कौन रहा है ? रामासे कहो तो उसे बुला लावे।

( मृदुलाका प्रस्थान )

( एक बालक-संन्यासीका गाते हुए प्रवेश )

रे चेत कर जिसमें सफर बेकार न जाय,
कल-कलमें आकर काल ही असवार न हो जाय।
शैशव उषायें बीत ली, ढल लीं जवानियां,
यों जिन्दगी की सांझ भी निस्सार न हो जाय॥
मञ्जिल है बहुत दूर पर दुष्टों से मग भरा,
दुविधा में यों ही उम्र कहीं पार न हो जाय।
माया ने जाल फेंक कर, बेहाल जग किया,
तू पड़ के उसके फन्द में गिरफ़तार न हो जाय।
ज्वाला जला वैराग्य की, मोहको अब फूँक दे,
गफ़लत में इस बार कहीं हार न हो जाय।

विनय—कैसा हृदयको हिला देनेवाला सङ्गीत है। तुमको ऐसा गाना किसने सिखाया।

बा० स०—एक साधुने।

विनय—इतनी छोटी उम्रमें तुमने सन्यास कैसे लिया।

बा० स०—मैंने नहीं लिया—एक साधुने भुलावा देकर अपना शिष्य बना लिया और गीत गाकर भीख मांगना सिखाया।

विनय—पर तुम्हारा दिल क्या चाहता है ?

बा० स०—मेरा दिल चाहता है कि मैं खूब पढ़ूं और खूब बड़ा पण्डित बनूं।

( गोवर्धनका प्रवेश )

विनय—आओ गोवर्धन ! कहो इतनी रात कैसे आये ?

गोब०—तुमसे विदा मांगने।

विनय—तुम कहां जा रहे हो ?

गोब०—इस दुःखसे भरी दुनियाको लात मारकर साधु बनने जा रहा हूं।

विनय—घरबार छोड़ कर साधु बनने जा रहे हो ? ऐं ! हठात् इतना परिवर्तन।

गोब०—जब मैंने देख लिया कि दुनिया मेरी होगी नहीं तो उसके पीछे सिर फोड़नेसे क्या लाभ ? विधाताकी सृष्टिमें मनुष्य एक अभिशाप है—सामने इन पौधोंको देखो, कैसे हरे-भरे रहते हैं। उन पशु-पक्षियोंको देखो, कितनी स्वतन्त्रतासे बिताते हैं वे अपने दिन; एक मनुष्य ही ऐसा है जिसके भीतर चिन्ता काठमें दीमककी तरह लगी रहती है; मेरी दृष्टिमें तो एक साधु ही ऐसा है जो सब प्रकारसे स्वतन्त्र, सारी चिन्ताओंसे निर्मुक्त रहता है, मैं वही बनने जा रहा हूं। तुम्हारी इसमें क्या राय है यही तुमसे पूछने आया हूं।

विनय—इस बारेमें मैं क्या कहूं गोवर्धन ! मेरी रायमें इस बातको तुम पण्डित देवदत्तजीसे पूछो; वे ही इस विषयमें कुछ कहनेके अधिकारी हैं। जो स्वयं इस दुनियामें रेशमकी तरह फंसा पड़ा है वह ऐसी बातोंमें क्या राय दे सकता है।

गोब०—मैं उनके पास गया था, वे तो मेरी बातोंको सुनते ही जल उठे। न जाने वे साधु बननेके इतने क्यों विरोधी हैं। इस बालकको देखो, इसके इसी उम्रमें सन्यास लेनेका समय आ गया और मेरे लिये वे कहते हैं अभी समय नहीं आया।

विनय—इस बालकको तो किसीने बहका कर सन्यासी बना दिया है; इसकी पढ़नेकी बड़ी इच्छा है। मैं इसे ऋषिकुल भेजनेका प्रबन्ध कर रहा हूं।

गोब०—इसे ऋषिकुल भेज रहे हो ? विनय ! जिससे जान न पहचान उन सबके लिए तो तुम प्रबन्ध किया करते हो, पर मेरे लिए कुछ क्यों नहीं करते।

विनय—( अवाक् होकर ) यह क्या ? तुम रुपयेके लिए साधू बनने जा रहे थे, नहीं, तुम्हें रुपयेके लिये साधु नहीं बनना पड़ेगा, चलो तुम्हारे इस अभावको तो मैं ही पूरा कर दूंगा।

बा० स०—( पास आकर ) मैं आपसे एक बात पूछूं ?

विनय—क्या ?

बा० स०—आपको क्या भगवान्‌ने मेरी सहायता करने के लिये कहा था ?

विनय—तुम यह क्यों पूछते हो ?

बा० स० मेरी पढ़नेकी बड़ी इच्छा थी, मैं नित्य उठ भगवान्‌से यह प्रार्थना किया करता 'हे प्रभु ! तू सबका पिता है, मेरा पिता बनकर मेरी इच्छा पूर्ण कर' ईश्वर आपका भला करे।

विनय—प्रभो ! इसी प्रकार मुझसे अपना कार्य करा कर मेरा जीवन सार्थक कर।

( क्रमशः )



# मनुष्य की प्रकृति से पथ-भ्रष्टता और आयुर्वेद का विकास

( ले०—प्रो० प्रसादजी, प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्रोपाध्याय, काँगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय, हरद्वार )

श्री प्रो० प्रसादजी गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ीमें प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्रके उपाध्याय हैं। हिन्दी, अंग्रेजीके अतिरिक्त संस्कृत साहित्यका भी आपने विशद् अध्ययन किया है। आपके जीवनमें सरलता, सादगी और सयम कूट-कूट कर भरा हुआ है। प्रस्तुत लेखमें विद्वान् लेखकने प्राकृतिक चिकित्साकी महत्ता दर्शाते हुए युक्तियों द्वारा यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि वर्त्तमान आयुर्वेदके प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक संहितामें रस, भस्म, पाक तथा अवलेह आदि द्वारा चिकित्साका समावेश पीछेसे हुआ; पहले केवल उचित आहार, विहार तथा उपवास आदि प्राकृतिक उपायों द्वारा ही चिकित्सा की जाती थी। लेखमें प्रकाशित विचारोंके लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। इसके पक्ष या विपक्षमें यदि कोई महानुभाव अपने विचार सात्विक-जीवनमें अभिव्यक्त करना चाहेंगे तो उनके विचारोंको सहर्ष स्थान दिया जाएगा। —सम्पादक।

सात्त्विक जीवनके तृतीय वर्षीय सौर माघ सम्वत् १९९९ वै० के पञ्चम अङ्कमें "मनुष्यकी प्रकृतिसे पथ-भ्रष्टता" शीर्षक लेखमें यह प्रतिपादित किया गया था कि जब मनुष्य काल-क्रमसे अपने प्राकृतिक रहन-सहन, आहार-विहारसे कुछ परे हटने लगा तो उसके फल-स्वरूप उसको अप्राकृतिक दशा वा विकृत अवस्था वा आज कलके प्रचलित शब्दोंमें रुग्णावस्था स्वल्प मात्रामें सताने लगी वा यूं कहिये कि उसके देहमें क्षुद्र रोगोंका प्रादुर्भाव होने लगा। उनके निवारणका उपाय आर्य-वर्तीय ऋषियोंने यही निकाला था कि वे परित्यक्त प्राकृतिक आहार-विहारकी व्यवस्था को उपवास (भोजन, विराम-लङ्घन) से पुनरपि सु-व्यवस्थित करके, जिन जल आदि तत्त्वोंसे मिल कर मनुष्यका देह बना है, उन्हींके विविध उपचारों द्वारा वा अपने आसपासके बन, जङ्गलकी सरल, सुप्राप्त औषधियों और वनस्पतियोंके सेवनसे उन सद्यः सम्भूत रोगोंका शमन कर दिया करते थे। यही आर्ष-चिकित्सा पद्धतिके नामसे विख्यात थी।

प्राचीन ऋषियोंकी उक्त चिकित्सा-प्रणालीका एक ही आर्ष प्राचीनतम ग्रन्थ चरक-संहिता सम्प्रति समुपलब्ध है; परन्तु इस प्राचीन चरक-संहिताकी आभ्यन्तरीय और बाह्य साक्षीसे यह सिद्ध होता है कि यह उस आर्ष-चिकित्सा प्रणालीका सर्व-प्रथम वा आद्य ग्रन्थ नहीं है। "श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रञ्च कृतवान् स्वयम्भूः" यह वचन कमसे कम इस बातका तो अवश्य साक्षी है कि बहुत बड़े आयुर्वेदीय साहित्य से यह चरक संहिता निकाली गयी थी वा उसकी रचना पूर्ववर्त्ती बहुसंख्यक आचार्योंके ग्रन्थोंके आधार पर हुई थी। कई विद्वानोंका यह भी मत है कि सम्प्रति प्रचलित चरक ग्रन्थ प्राचीनतर चरक संहिता का द्वितीय संस्करण है। यह भी कहा जाता है कि इसके ग्रन्थकार चरक, काश्मीरके तुरुष्क राजा कनिष्क के यहां खिष्ट्रीय द्वितीय शताब्दीमें राजवैद्य थे। यदि यह ठीक माना जाय तो यह चरक संहिता वीर विक्रमादित्यके पीछेकी बनी हुई ठहरती है। चरकके संस्करणको दृढ़वलने खिष्टीय चतुर्थ शताब्दीमें पुनः संस्कृत किया। चरक संहिताके हिन्दी टीकाकार पं० जयदेवजीके अनुमानानुसार दृढ़वलने यह नव-

संस्करण ख्रिष्टीय नवमी शताब्दीमें किया था। इससे यही परिणाम निकलता है कि वर्तमान चरक संहिता ग्रन्थ एक वा डेढ़ सहस्र वर्षसे पुराना नहीं है। चरक का प्रादुर्भाव कई विद्वान् ऐतिहासिकोंके मतानुसार ईसासे पूर्व द्वितीय शताब्दीमें हुआ था यवन (Greek) देशका आदिम चिकित्सक उपक्रतु (बुक्रात = Hippokrates) ईसासे पांच सौ वर्ष पूर्व चैम्बर कृत आक्स-फोर्ड इंगलिश डिक्शनरीके मतानुसार वर्तमान था। अतः उपक्रतु, जो पाश्चात्य देशोंमें Father of Medicine की उपाधिसे विभूषित हैं, चरकसे तीन सौ वर्ष पूर्व विद्यमान था। उपक्रतुकी चिकित्सा-प्रणाली भी वनकी वनस्पतियों और औषधियोंकी विधायक है। उसमें भी धातुओं वा आज कल प्रचलित पारद मिश्रित रस नामसे प्रसिद्ध योगों का बिलकुल अभाव है। चरक-संहितामें भी कहीं धातुओं वा रसोंका विधान नहीं है। इससे यह पूर्णतः सिद्ध होता है कि अनेन्द्रिय धातुओं तथा उपधातुओं का प्रयोग भारत वा प्राचीन यवन देशकी चिकित्सा-पद्धतिमें बिलकुल न था। भारतीय आयुर्वेदमें इस रस-चिकित्साका प्रवेश बौद्ध नागार्जुनके समयसे हुआ माना जाता है। इससे पूर्व आर्ष चिकित्सा प्रणालीमें धातुओंका उपयोग प्रचलित न था। चरक यद्यपि विकसित आर्ष चिकित्सा-प्रणालीका नवीं शताब्दीमें दृढ़बल द्वारा पुनः संस्कृत और संगृहीत पिछला ग्रन्थ है और न जाने उसका वर्तमान रूप किन किन परिवर्त्तनोंमेंसे होकर बना है, तो भी उसमें विहित चिकित्सामें सरल काष्ठौषधियोंका प्रयोग दृष्टि-गोचर ही होता है। यद्यपि उसके विहित योगोंमें कहीं-कहीं जटिलता देखी जाती है और उग्र औषधियोंका विधान भी पाया जाता है, किन्तु उग्र औषधियों और विषैली वनस्पतियोंका व्यवहार प्राचीन आद्य आर्ष चिकित्साके विपरीत है। आद्य आर्ष चिकित्सा-प्रणाली सरल काष्ठौषधियों, जाङ्गल्य जड़ी-बूटियों और उपवास वस्ति-कर्म आदि प्राकृतिक प्रयोगोंकी सरल-चिकित्सा-प्रणालीमात्र थी। बड़े-बड़े लम्बे योगों व मिश्रित औषधियोंका प्रवेश इसमें पीछे से होता गया, जो उससे उत्तरोत्तर पिछले ग्रन्थोंमें चरम सीमाको पहुंच गया।

वनौषधि-प्रयोग-परक आर्यवर्तीय आर्ष चिकित्सा प्रणाली ही आर्यवर्त्तसे चलकर प्राचीन मिश्र (Egypt) और यवन देश (यूनान = Greece) में पहुंची। मिश्र और यूनानका प्राचीन आर्यवर्त्तसे पुराना परिचय और सनातन सम्बन्ध इतिहास प्रसिद्ध है। यवनानियोंके इतिहाससे पता चलता है कि शाक्य मुनि भगवान् गौतम बुद्धका समकालीन यवन देश (यूनान) में उपक्रतु (बुकरात = Hippocrates) नामक प्रसिद्ध मनीषी भिषगाचार्य हुआ है। उसकी चलाई हुई यवनानी चिकित्सा पद्धति प्रसिद्ध है और पाश्चात्य प्रदेशोंमें चिकित्सा शास्त्रकी आदि जननी मानी जाती है। यवनानी भिषगाचार्य उपक्रतुकी चिकित्सा-प्रणालीमें आर्द्र, शुष्क, शीत, उष्ण इन चार तत्त्वोंसे रोगोंकी उत्पत्ति और उनके चिकित्सात्मक उपचारोंके समीकरणका वर्णन है। इसमें औषधोपचारसे अधिक पथ्याहारको महत्त्व दिया गया है। इस पद्धतिमें त्रिदोषकी विधि आर्यवर्त्तीय आयुर्वेदसे मिलती जुलती है और काष्ठौषधियोंका ही प्रयोग यह निश्चित करता है कि वीर विक्रमादित्यसे पूर्व हमारे यहां जो उपचार-पद्धति प्रचलित थी वह भी काष्ठौषधमयी थी। यवनानसे ही मुसलमानोंने चिकित्सा विज्ञान ग्रहण किया और यही कारण है कि मुसलमानी तिब्बमें अभी तक काष्ठौषधियोंका ही प्रचार है। उनके यहां अब तक यह सिद्धान्त सर्वमान्य है कि स्वभाव (मिज़ाज) की सहायता करनी चाहिए। बौद्ध नागार्जुनके समयसे आज तक रस-चिकित्साका

अन्य अनुयायी बनकर हमारे वैद्योंने वनौषधि चिकित्सा का जितना ह्रास किया, उतना ही उनके यूनानी-पद्धति के शिष्योंने हमारी प्राचीन औषधोपचारकी समुचित रक्षा की और हमारी उस पद्धतिको अपना कर अक्षुण्ण बनाये रखा। इससे यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि चरकके वर्त्तमान संस्करणमें जो विषैली उग्र औषधियों के योग दृष्टिगोचर होते हैं, वे प्राचीन आर्ष चिकित्सा प्रणालीका अङ्ग नहीं हैं और उससे अपेक्षा-कृत अर्वाचीनतर हैं। आज कल हमारे प्राचीन साहित्यके जो संस्करण जिस रूपमें समुपलब्ध हैं, वे नवीन पिछले संस्करण ही हैं। उनके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता कि उनको मूल ग्रन्थ प्रणेताओंने इसी रूपमें रचा था। हमारे यहां पूर्वसे यह परिपाटी प्रचलित थी कि समय-समयपर प्राचीन ग्रन्थोंका नव संस्करण करके संस्कर्त्ताओंके द्वारा उनको सम-सामयिक (Upto-date) बना दिया जाता था। चरक संहिता के संस्कर्त्ता श्री दृढ़बलने संस्कर्त्ताका कर्त्तव्य निम्न-लिखित पद्यमें बतलाया है :—

विस्तारयति लेशोक्तं, संक्षिपत्यतिविस्तरम्।
संस्कर्त्ता कुरुते तन्त्रं, पुराण च पुनर्नवम्॥

अर्थ :—संस्कर्त्ता स्वल्प कथनका विस्तार करता है और विस्तारका संक्षेप कर देता है। इस प्रकार संस्कर्त्ता पुराने ग्रन्थको नया बना देता है।

इससे यह सिद्ध है कि चरकका वर्त्तमान रूप चरक मुनिका प्रणीत याथातथ्य अविकल रूप नहीं है और काल क्रमसे समय-समयपर बहुतसे परिवर्त्तनोंमें से यात्रा करके उसने यह वर्तमान रूप धारण किया है। अतः प्राकृतिक चिकित्साके अनुयायिओंको यही सुरक्षित मार्ग अवलम्बनीय है कि प्राचीनताके नामसे समादृत और समुपलब्ध वर्त्तमान ग्रन्थोंमेंसे प्राकृतिक चिकित्सा प्रणालीके उपचारों वा विधानोंको पीछे चली हुई उग्र औषधातिरेकमयी प्रणालियोंसे पृथक् करके प्राकृतिक चिकित्साका प्रचार करें। और

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते, मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥"

इस कविकुल गुरु कालिदासकी उक्तिको अपना पथ-प्रदर्शक बनायें अर्थात् जो पुरानी बातें हैं, वे सभी अच्छी नहीं हैं और जो नवीन बातें हैं वे सब भी निर्दोष नहीं हैं, इसीलिए सज्जन पुरुष प्राचीन और नवीन समुपलब्ध वस्तुओं वा विधियोंकी परीक्षा करके उनमेंसे युक्तियुक्त तत्त्वोंका ग्रहण करते हैं, किन्तु मूढ़ जन दूसरोंके विश्वासपर अवलम्बित रह कर अपनी बुद्धियोंको उनके पीछे चलाते हैं।

वस्तुतः भारतवर्षमें ही काष्ठौषधिकी आर्ष चिकित्सा प्रणालीके ह्रासके पश्चात् विषैली उग्र औषधियों और धातु भस्मियों (कुश्तों) की अप्राकृतिक चिकित्साका भी जन्म हुआ था—इस ओर ह्रासोन्मुखका पहला पग उस समय उठाया गया जब जनतामें यह विश्वास बद्ध-मूल हो गया कि भिन्न-भिन्न रोगोंके लिए भिन्न-भिन्न औषधियां आवश्यक हैं; जब रोग चिकित्साके एकाधिकारी विशिष्ट जन ही माने जाने लगे। काष्ठौषधियोंके प्रयोगका ज्ञान उनकी ही बपौती बन गयी, और जनसाधारण स्वयं अपने वैद्य न रहे। विशेषज्ञ नामधारी वैद्योंका स्वार्थ इसीमें निहित था कि इस विश्वासको पुष्ट किया जाय कि प्रत्येक रोगकी पृथक्-पृथक् विवेचना की जाय और उसका कोई ठीक-ठीक नाम निर्धारण करके उसके लिए कोई नियत औषधि बतलाई जाय। किन्तु जब तक केवल आहाररूपी औषधिका प्रचार रहा, इससे कोई क्रियात्मिक हानि न होती थी। इससे आगे ह्रासकी ओर दूसरा पग यह उठाया गया कि निर्जीव (अनेन्द्रिय = Inorganic) धातुएं और विषैली वनस्पतियां औषधोंके रूपमें व्यवहृत होने लगीं। ऐतिहासिक साक्षी इस घटनाकी पोषक है कि इस अप्राकृतिक चिकित्सा

प्रणालीका जन्म इसी देशमें हुआ था—और यहांसे ही वह शेष सारे संसारमें फैली थी। यवनानी पद्धतिके अनुयायी मुसलमान हकीमोंसे विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दीमें योरोपके विद्वानोंने चिकित्सा शास्त्रकी शिक्षा पायी और भरसक अपनी ज्ञान वृद्धि की। उनमें जर्मन देशीय पारासेलसस नामक प्रतिभाशाली वैद्य तो स्वाभाविक ( प्राकृतिक ) चिकित्सक ही समझा जाता था। किन्तु उसीके समयसे अमृत, रसायन और पारसके खोजियोंने प्राकृतिक उपचारको त्याग कर रस प्रयोगके दूसरे रूपका ग्रहण किया। धातुज और अन्य खनिज औषधियोंकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। यहां तक कि अब ऐलोपैथी नामसे विख्यात चिकित्सा प्रणालीमें इनकी संख्या बहुत ही बढ़ गयी है। धातुज लवण और स्वयं धातुएं उग्र विष हैं। इन विषोंका चिकित्सामें धड़ल्लेसे प्रयोग होने लगा है। विषोंने धीरे-धीरे अमृतोंको मार भगाया है। आज कलके अनेक वैद्य कविराज नामधारी आयुर्वेद शास्त्री भी रसोंके ऐसे भक्त बन गये हैं कि वनौषधियोंका नाम लेना पाप जानते हैं। हित, मित और समुचित पथ्याहार और उपवास आदि प्राकृतोपचारसे रोग शमनका लोप सा आयुर्वेद प्रणाली में हो गया है। जो वैद्य काष्ठौषधियोंका प्रयोग भी करते हैं वे लम्बे-लम्बे सुविस्तृत योगोंके विधानमें ही अपने वैद्यक विज्ञानकी पराकाष्ठा समझते हैं। सर्वत्र नुस्खेबाजीका राज्य है। आज कल तो उसका इतना विस्तार बढ़ गया है कि जो वैद्य वा हकीम रोगीके लिए सबसे लम्बा बहुमूल्य योग ( नुस्खा ) लिख कर देता है, वही योग्यतम वैद्यराज, कविराज व हकीम-हाज़िक समझा जाता है। रोगियोंकी भी श्रद्धाकी यह दशा है कि उनको औषधिके नामसे जो कुछ भी दिया जाय, उसीमें उनकी श्रद्धा होती है। संयम, हित मित, आहार और पथ्य सेवनसे वे कोसों दूर भागते हैं और चिकित्सा शास्त्रकी इस सारगर्भित सम पद समन्वित प्रचीन उक्तिको चिकित्सकों और रोगियाने सर्वथा भुला दिया है कि :—

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणम्।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषध निषेवणम्॥

अर्थात् पथ्यकी विद्यमानतामें औषध सेवनसे क्या लाभ है—औषध सेवन निरर्थक है और पथ्यके न होनेपर भी औषध सेवन निरर्थक ही है। दोनों कोटियोंमें औषध निष्फल है।

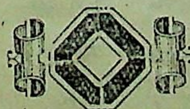
औषधियोंमें रोगियोंकी इस विश्वास-मूढ़ता वा विश्वासातिरेकको देख कर ही किसी उपहास प्रिय विनोदी कविने इस पद्यकी रचना की थी—

यस्य कस्य तरोर्मूलं, येन केनापि मिश्रितम्।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं, यद्वा तद्वा भविष्यति॥

अर्थात् किसी न किसी वनस्पतिकी जड़को किसी न किसी औषधिके साथ मिला कर किसी न किसी रोगीको दे देना चाहिये। उसका कुछ न कुछ प्रभाव हो ही जायगा।

औषध चिकित्साकी इस अन्ध भक्तिने आज कल प्रत्येक नगर और ग्राममें वैद्य नामधारी वर्णाभुवोंकी प्रचुर सृष्टि कर डाली है। उनका यह व्यवहार है कि वे कुछ नुस्खे रट लेते हैं वा कुछ बटी वा अवलेह आदिक बना कर अपनी दूकानको सजा लेते हैं। और रोगियोंके प्राणोंसे खिलवाड़ करके अपनी जेबें भरते रहते हैं।

— — —



# गोविन्द गुप्त (खण्ड काव्य)

(रचयिता—श्री गङ्गाप्रसाद 'कौशल')

[ पञ्चम सर्गमें—गोविन्द गुप्त, स्कन्द गुप्त, महामात्य आदिके युद्धमें चले जाने तथा कुमार गुप्त द्वारा मुक्त होनेपर नवयौवना अनन्तका अपने बगीचेमें अपनी मां इन्द्रलेखासे बातें करना।

षष्ठ सर्गमें—स्कन्द गुप्तकी भावी पत्नी तथा कुमार गुप्तकी पालिता कन्या अरुणाका राज-पुत्रकी जीतकी खुशी मनाना, बाँदीका अशुभ सूचना लाना, पट्टमहादेवीका देवर तथा पुत्रकी याद करके रोना, छुरी मार कर मरनेका प्रयत्न करना, बांदी, अरुणा और उसकी सखियोंका उन्हें रोकना आदि होगा—]

## पञ्चम सर्ग :—

(१)

क्या सुन्दर बसन्त है आली !
फूल आज मुस्काते हैं;
बड़े छबीले, बड़े सजीले
कैसा हृदय चुराते हैं !!

(२)

वृक्ष कर रहे हैं आलिङ्गन
सुन्दर सरस लताओं का;
शम्बरारि शर छोड़ रहा है
मृदु कम्पन कलिकाओं का।

(३)

इस कोकिल की कुहू कुहूं से
मैं हूं आज छली जाती;
इस दूर्वा-दल से भी देखो
क्या सुगन्धि सुखमय आती !

(४)

मधुप आज गुञ्जार रहे हैं
कुमुदिनियों का मन हर कर;
दिग्मण्डल को सुरभित करती
कुसुम-कामिनी शुचि सुन्दर।

(५)

और रात्रि में चन्द्रदेव भी
सुषमा ले आ जाते हैं;
चतुर चकोरी के मन में वे
नयी छाया उपजाते हैं।

(६)

मलय पवन करता अठखेली
बालाओं, मुग्धाओं से
पट से मुख को ढके खड़ी जो
उन कोमल कलिकाओं से।

( ७ )

अनुपम शोभा छाई सब कहीं
जल में, थल में, मधुवन में;
आज उठ रहा जाने क्या है
अम्मा ! मेरे इस मन में।

( ८ )

नौजवान होते यदि राजा
तो मां कुछ अच्छा होता;
तरुणाई में तो तरुणी का तो
एक तरुण ही दुःख खोता।

( ९ )

फिर भी बहुत प्यार करते हैं
कारा से है मुक्त किया;
कितना धन वे नित्य भेजते
अम्मा ! अच्छा फांस लिया !

( १० )

किन्तु मुझे गोविन्द गुप्त का
अम्मा डर सबसे भारी;
सब लोगों में एक वही नर
सच्चा है सत्ताधारी।

( ११ )

हंस कर कहा इन्द्रलेखा ने—
सब कुछ देखा जाएगा;
महाराज के शुभ विवाह में
कैसे वह आ पाएगा ?

( १२ )

उसका भय मुझको भी सचमुच
लगता है अनन्त प्यारी;
उसकी सूरत देख देख मैं
सपने में डरती भारी।

( १३ )

कापालिक ने, चन्द्रसेन ने
किन्तु खूब षडयन्त्र रचा;
राजा भी फंस गया जाल में
छल कौशल से नहीं बचा।

( १४ )

मारण - मन्त्र पढ़ा है उसने
सम्राज्ञी मर जाएगी;
छुरी भोंक या अन्य किसी विधि
अपनी जान गंवाएगी।

( १५ )

सारा कांटा दूर हो रहा
मौज बड़ी ही आयेगी;
यह तेरी ही मां राजा को
पुतली - नाच नचायेगी।

( १६ )

महामात्य भी नहीं यहां है
वह भी लड़ने धूर्त गया;
बुद्धदेव की अनुकम्पा से
अवसर आया भला नया।

( १७ )

पट्ट महादेवी तू जल्दी
अब अनन्त बन जायेगी;
थोड़े दिन में तू ही अपना
सब पर हुक्म चलायेगी।

( क्रमशः )

# स्नेह-यज्ञ

( लेखक—श्री पं० वेदराज वेदालङ्कार भूतपूर्व वैदिक मिशनरी मैसूर स्टेट )

( १ )

आजसे तीस साल पहलेकी बात है। मैं उन दिनों लाहौरके एक हाईस्कूलमें सौ रुपये मासिकपर टीचर था। पूर्व जन्मके पुण्योंके प्रतापसे, या भगवान् की कृपासे अथवा मेरे पिता जी की दौड़-धूप और विवेकके फल-स्वरूप—जो कुछ भी कहिए, हिन्दू समाजमें जो शादीकी लाटरी डलती है, वह मेरी खुशकिस्मतीसे बहुत अच्छी निकली। मेरी पत्नी निर्मला गुलाबके फूल-सी सुन्दर, चांद-सी सादी, गाय-सी भोली, उषा-सी पवित्र और सङ्गीत-सी मधुर थी। वैसे तो भगवान्ने समस्त नारी जातिको फूल-सा कोमल, अन्तरिक्ष-सा विशाल, मिठाससे लबालब भरा हृदय प्रदान किया है और यदि इस नारी हृदयका मन्थन किया जाय तो उसमेंसे दया, स्नेह, सहिष्णुता आदि गुणोंके उज्ज्वल, धवल मोती निकलेंगे; परन्तु मुझे ऐसा मालूम होता था कि निर्मलाके हृदय-निर्माणमें भगवान्ने अपनी सारी कारीगरी और शक्ति लगा दी है। साधारणत: लोगोंकी यह शिकायत रहती है कि गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके बाद ज़िम्मेवारियां और तकलीफ़ें सुरसाके पेटकी तरह बढ़ती जाती है और वह पहलेकी-सी प्रफुल्लता, मस्ती और आज़ादी नौ दो ग्यारह हो जाती है; परन्तु निर्मलाके आनेके बाद मेरे जीवनका जो द्वितीय अध्याय प्रारम्भ हुआ वह बहुत ही सरस, सुन्दर और मधुर था।

हम दोनोंकी एक छोटी-सी दुनिया थी। उस दुनियांकी निर्मला चांद थी और मैं सूरज। इस प्रेम की दुनियांमें हम दोनों एक दूसरेको सेवा तथा आत्म त्याग द्वारा सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न किया करते थे। सच्चा प्रेम शासन नहीं करना चाहता, अपितु शासित होना चाहता है। सच्चा प्रेमी स्वामी बननेके स्थानपर सेवक बनना पसन्द करता है। निर्मला सायंकाल स्कूलसे लौटते समय द्वारपर खड़ी निर्निमेष नयनोंसे मेरी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा किया करती थी। उस समय उसकी आंखोंमें विशेष चमक और कपोलोंपर मन्द हास अठखेलियां करता। यदि किसी दिन स्कूलकी फ़ाइलोंमें उलझे रहनेके कारण मुझे ज़रा-सी भी देर हो जाती तो निर्मला प्रेम-भरे शब्दोंमें मुझे उपालम्भ देती। मैं भी उसकी मीठी झिड़की सुननेके लिए सदा लालायित रहता था। कभी-कभी बनावटी गुस्सा दिखाते हुए कहती "मास्टर साहिब! आज देरसे आनेका दण्ड यही है कि रोटी नहीं मिलेगी।" आज भी जब कभी अपने अतीतके मधुमय स्वप्न लोक में प्रवेश करता हूं और गुज़री बातोंको याद करता हूं तो हृदय भर आता है। मेरी निर्मलाके साथ सामाजिक और राजनीतिक विषयोंपर अक्सर मनोरञ्जक, दिलचस्प बहस भी हुआ करती थी और उन बहसोंमें मैं फिलासफ़ीके साथ एम० ए० पास होते हुए भी प्रयत्न यही करता कि मैं हार आऊं। प्रेमकी जीतमें उतना आनन्द नहीं जितना हारमें। एक बार हिटलर और जर्मनीको लेकर हम दोनोंकी गरमागरम ज़ोरदार बहस छिड़ गयी; मैं हिटलरकी निन्दा कर रहा था और निर्मला उसकी प्रशंसाके पुल बांध रही थी। बहसके बीचमें मैंने व्यङ्ग्य छोड़ते हुए कहा कि हिटलरने तो शादी भी नहीं की; तुम नारी होकर क्यों उसका पक्ष ले रही हो। निर्मला बड़ी ओजस्विनी

भाषामें कहने लगी—"शादी न करनेसे क्या होता है, हिटलर जर्मनीकी देवियोंको बड़ी श्रद्धा और आदरकी दृष्टिसे देखता है, आज जर्मनीमें नारी जातिकी उन्नति तथा विकासके लिए जो महान् प्रयत्न हो रहा है, उसकी तरफ़ तो ज़रा नज़र डालिये। शादी न करनेसे शादी करके उसके कर्त्तव्योंको न निभाना कहीं अधिक घातक है। ऋषि प्रवर देव दयानन्दने भी तो पाणि-ग्रहण नहीं किया था, क्या इसीसे वे नारी-जातिकी अश्रद्धाके पात्र हो गये। हिन्दू नारीको रसातलसे निकालनेके लिए स्वामी दयानन्द सरस्वतीने जो कुछ कर दिखाया, क्या आज तक किसी समाज सुधारकने उतना महान् कार्य किया है।" निर्मलाकी इस युक्तिके आगे मेरी एक न चल सकी। मैं निर्मला जैसी पत्नी पाकर बड़ा गौरव अनुभव करता था।

विदुषी होनेके अतिरिक्त निर्मला विनोदप्रिय और शरारती भी बड़ी थी। एक बारका ज़िक्र है कि मैं स्कूलके लड़कोंके परीक्षाके परचे देखनेके लिए घरपर ले आया; उस साल ऐसा मालूम होता था कि लड़कों के दिमागने परीक्षाके समय उनसे बिलकुल असहयोग कर दिया है, अधिकांश लड़के फेल निकले। रातको जब मैं सैर करने गया तो पीछेसे निर्मलाने सबको पास कर दिया और परचे हूबहू वैसेके वैसे बन्द करके रख दिये। बादमें जब मुझे उसकी यह शरारत मालूम हुई तो मैंने हंसते हुए इसका जवाब तलब किया। निर्मला हंसकर कहने लगी—"मास्टर साहिब! आप ही तो स्कूलमें बच्चोंको परोपकारका पाठ पढ़ाया करते हैं, यदि आज मैंने आपके हाथसे बच्चोंको पास करवाने का परोपकारका काम कर दिया तो कौन-सी ग़लती की। बच्चे आपको दुआएं देते होंगे।" उसके इस तर्कके सामने मैं क्या जवाब देता। एक दिन मैंने अपने एक दिली दोस्तको जो डाक्टर थे अपने घरपर दावत दी; तरह-तरहके व्यञ्जन तैयार किये गये। दोस्त साहिबने सबसे पहले पानी मांगा, निर्मलाने बड़ी शराफ़तके साथ पानी दिया। पानी पीते ही मेरे दोस्त थू-थू करने लगे और कहने लगे कि इसमें तो कुनैन मालूम देती है, निर्मलाने मुसकराते हुए कहा—"आज कल मलेरियाके दिन हैं, इसीलिए थोड़ी-सी कुनैन डाल दी थी और फिर डाक्टर लोग तो दुनिया भरको कुनैन पिलाते हैं, अगर आज थोड़ी-सी हमने पिला दी तो क्या हर्ज हुआ। मेरे दोस्त और मैं ठहाका मार कर हंसने लगे। ऐसी कितनी कहानियां हैं, कहां तक गिनाऊं। पिछली बातें याद करके दिल दुःखी होता है। मैं निर्मला जैसी पत्नी पाकर हर्षके मारे फूला न समाता, पर शायद विधाताको यह मञ्जूर न था।

( २ )

आदमीकी ज़िन्दगी भी क्या है, धूप छांहका खेल है। मनुष्यके भाग्यको उस अन्तर्यामी भगवानके सिवाय कोई नहीं जान सकता। अल्प-बुद्धि मानव सुखकी अवस्थामें, बहारके दिनोंमें यह कल्पना करता है कि उसकी यह अवस्था सदा बनी रहेगी, उसकी मानस-चक्षुओंके आगे हमेशा वे बहारके दिन झूला करते हैं, वह कल्पनाओंके जाल बुननेमें तन्मय रहता है कि इतनेमें पीछेसे धक्का लगता है, उसके सुख स्वप्न विलीन हो जाते हैं और अन्तरसे आवाज आती है कि ऐ बेखबर मुसाफ़िर! किस धुनमें मस्त हो, किस स्वप्नोंकी रङ्गीन दुनियामें विचर रहे हो। मेरी किस्मतने भी पलटा खाया। दुर्भाग्यसे मेरी स्कूलके हेड मास्टर साहबसे खटपट हो गयी और मैंने सोडा-वाटरी जोशमें आकर नौकरीसे इस्तीफ़ा दे दिया। हेड मास्टर साहबके सामने तो अपना जौहर दिखा आया, अब यह समस्या चीनकी दीवारकी तरह आकर खड़ी हो गयी कि आगे क्या किया जाय। मेरी तबीयत बचपन ही से ज़िन्दादिल रही है और

ज़िन्दादिली तथा खुशमिज़ाज़ी मैंने विरासतमें पायी है। मुझे अपनी नौकरी छूट जानेसे उस समय ज़रा भी अफ़सोस नहीं हुआ। मैंने लाहौरके तमाम आफ़िस छान डाले, आख़िर जाता भी कहां—मसल मशहूर है "मियांकी दौड़ मसजिद तक।" उन दिनों सब आफ़िस थर्ड क्लासके रेलके डिब्बोंकी तरह भरे हुए थे। अगर कहीं जगह खाली थी तो मिलिटरीमें। कभी दिलमें आता कि कोई दुकान ही कर लूं, पर सारा दिन दुकानपर द्रविड़ प्राणायाम करके बैठनेकी हिम्मत न पड़ती थी और फिर हिन्दुस्तानमें तो लोग अपनी दूकानोंपर सारा दिन इस तरह जम कर बैठते हैं जैसे पिकेटिङ्ग कर रहे हों। जीवनमें कोई रस नहीं, कोई नवीनता नहीं और कोई मनोरञ्जन नहीं। हिन्दुस्तानी दूकानदारोंकी ज़िन्दगीका तीन चौथाई हिस्सा दुकानमें ही बीतता है। भला बतलाइये! ये लोग ज़िन्दगीमें क्या करेंगे। इसलिए दुकान करनेका इरादा तो मैंने इसके सङ्कल्पके साथ ही छोड़ दिया और निर्मलाको बिना बतलाये ही मैंने मिलिटरीमें अर्ज़ी भेज दी। उन दिनों लड़ाईका जमाना था; गवर्नमेण्टको रंगरूटोंकी इतनी ही ज़रूरत थी जितनी आज कल मियां जिन्ना मुसलमानोंके लिए पाकिस्तान की जरूरत महसूस करते हैं या हमारी सरकार बहादुर हिन्दुस्तानियोंमें स्वतन्त्रता और स्वदेश भक्तिकी भावना न फैलने देनेके लिए उन्हें काला अंग्रेज़ बनाने की आवश्यकता अनुभव करती है; अथवा लिबरल लोग परतन्त्रतासे जकड़ी हुई भारत माताके उद्धारके लिए कौंसिलोंमें जाकर केवल मात्र वाक्-युद्ध करनेकी ज़रूरत समझते हैं। मैं पढ़ा-लिखा तन्दुरुस्त पञ्जाबी जवान ठहरा, घरपर पिताजीकी जमींदारीमें बन्दूक चलाना भी अच्छी तरह सीख चुका था और जीवन का द्वितीय अध्याय प्रारम्भ होनेसे पूर्व, मैं अक्सर कन्धेपर बन्दूक डाले वन, उपवनोंकी सैरके मज़े लिया करता था। मेरी इस मस्त और आजाद तबीयतसे मेरे घरवाले मुझपर कई बार झुंझला उठते थे, पर मैं किसीकी परवाह नहीं करता था। खैर, मुझे मुलाकातके लिए लाहौरमें ही मिलिटरी आफिसमें बुलाया गया; गोरे साहबने दूरसे देखते ही कहा—"टुम बहुट खुशमिजाज, शेर दिल आदमी मालूम होटा है, बन्दूक चलाना जानटा है न, टुमको हम सूबेदार बना कर लड़ाई पर भेजेगा. पहले टुमको अम्बाला ट्रेनिङ्गके लिए जाना होगा। साहबने एक चिट्ठी लिख कर दे दी और एक हफ्तेके भीतर ही २५०) रु० मासिक पर पहले ट्रेनिङ्गके लिए अम्बाला जानेका हुक्म हुआ। मैं कल्पनाओंके रंगीन जाल बुनता हुआ घर पहुंचा। पता नहीं निर्मलाको कहांसे इसका पता लग गया था, मेरे घर पहुंचते ही खड़ी होकर कहने लगी—"सैल्यूट! सूबेदार साहब, अब कहांका मोरचा है. मैं भी लड़ाईके मोरचेपर चलूंगी, क्योंकि विवाहके समय फेरे लगाते वक्त तुमने यह प्रण किया था कि सुख दुःखमें हम दोनों एक दूसरेके साथ रहेंगे और फिर हम तुम दोनोंको मिला कर ही तो एक इकाई बनती है। तुम मेरे बिना अधूरे और मैं तुम्हारे बिना अधूरी। तुम्हें अकेला मैं हरगिज नहीं जाने दूंगी और हमारे धर्मशास्त्रोंकी भी यही मर्यादा है। जब यमराज सत्यवानका प्राण लेनेके लिए आया तो सावित्रीने अन्त तक उसका पीछा नहीं छोड़ा। भगवान् रामचन्द्र के साथ सीताने भी घोर वनवासका कष्ट सहा था। दमयन्ती भी राजा नलके साथ जिन्दगीके तूफानों और मुसीबतोंका बड़ी दिलेरीसे सामना करती रही"—कहनेको तो निर्मला ये बातें कह गयी, इसके बाद ही उसकी आंखोंमें सावनकी झड़ी लग गयी और उपालम्भ देती हुई कहने लगी कि क्या मैं पराई थी, जो तुमने मुझे भी नहीं बताया। खैर, अब जो हो गया सो अच्छा ही हुआ, अब यह बतलाओ जानेकी

कब तैयारी है, तुम्हारे लिए सब इन्तजाम ठीक कर दूं। मैं निर्मलाका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर इसी परिणामपर पहुंचा था कि वह कभी मेरी त्रुटियों पर नाक भौं न सिकोड़ती थी, वह सदा अपनेको बड़ी होशियारीसे वर्त्तमान परिस्थितिके अनुकूल ढाल लेती, मेरी खुशीको वह अपनी खुशी समझती। निर्मलाके सहवासमें मुझे कभी मालूम भी नहीं हुआ कि जीवन संग्राम है; या गृहस्थाश्रमकी जिम्मेवारी किसे कहते हैं। यही कारण है कि मैं निर्मलाको श्रद्धा, भक्ति और प्रेमकी दृष्टिसे देखता था और आज भी उसकी यादमें आंसू बहाया करता हूं। खैर, मेरी अम्बाला जानेकी तैयारी होने लगी और निर्मला चतुर गृहिणीकी तरह प्रबन्ध करनेमें तल्लीन थी। आख़िर, अम्बाला जानेका दिन भी आ पहुंचा। उस दिन निर्मलाने बड़े प्रेमसे मुझे स्टेशनपर विदा दी।

( ३ )

अम्बाला पहुंचे अभी मुश्किलसे ट्रेनिङ्गका एक महीना भी नहीं हुआ था कि समुद्र पार जानेका परवाना आ पहुंचा। मैंने निर्मलाको इसकी सूचना तार द्वारा दी कि मैं ८ मईको विदेशके लिए प्रस्थान करूंगा; तुम यदि चाहो तो अपने भाईको साथ लेकर मुझे करांचीके बन्दरगाहपर मिलना। मैं मिलिटरीमें एक ऊंचे पदपर आफिसर नियुक्त होकर जा रहा था, इसलिए मुझे सहज हीमें निर्मलासे अन्तिम मुलाकातकी आज्ञा मिल गयी थी।

करांची स्टेशनपर ही निर्मलाके दर्शन हुए। निर्मला मुझे देखकर मुसका रही थी; पर न जाने क्यों मेरी आंखोंमें आंसू आ गये और मैं बच्चोंकी तरह फूट-फूट कर रोने लगा, पर निर्मला उसी तरह अविचल धैर्यके साथ खड़ी हुई मुझे ढाढ़स बंधा रही थी और कह रही थी—"हृदयको दृढ़ बनाओ, जो किस्मतमें लिखा है, वह तो होकर ही रहेगा।" अभी—हमारा जहाज जानेमें कुछ दिनोंकी देर थी, इसलिए मैं जितने दिन कराची रहा अपने विशेषाधिकारके प्रयोगसे निर्मलासे बराबर मिलता रहा। निर्मलाने एक क्षण भी मुझे उदास नहीं होने दिया और मैं निर्मलाके इस मनः संयमपर आश्चर्य चकित था। आख़िर; वह दिन भी आ पहुंचा जब मुझे निर्मलासे एक लम्बे अरसेके लिए विदा होना था और फिर पता नहीं इसके बाद दर्शनके सौभाग्य प्राप्त होने थे या नहीं। ठीक ८ मईको प्रातःकाल नौ बजे हमारा जहाज बेलजियमके लिए छूटने वाला था, निर्मला बन्दरगाह तक आयी। मनुष्य-जीवनमें यदि कोई सबसे अधिक करुणाजनक और हृदय विदारक दृश्य होता है, तो वह यही विदाईका दृश्य है। जब दो हृदय एक दूसरेसे बिछुड़ते हैं। जहाज छूटनेमें अभी आध घण्टेकी देर थी, मैं निर्मलाके साथ बन्दरगाहके समीपस्थ उद्यानमें बात करनेमें मशगूल था और भगवान्‌से यही मना रहा था कि यह आध घण्टा बहुत धीमे-धीमे बीते, पर इसे सिवाय मेरे पागलपनके और क्या कहा जा सकता है। खैर, जहाजका भोंपू बजा और मैं निर्मलासे विदा लेकर जहाजपर चढ़ने लगा। अन्तिम समय निर्मलाके आंसू झर-झर बहने लगे और कहने लगी मुसीबतके समय मुझे अवश्य याद कर लेना, यदि भगवान्‌ने चाहा तो तुम्हारी दासी तुम्हें अवश्य मिलेगी। हमारा जहाज चल पड़ा, जब तक जहाज दृष्टिसे ओझल न हुआ, निर्मला रूमाल हिलाती रही और प्रत्युत्तरमें मैं भी अपना रूमाल हिलाता रहा।

( ४ )

जहाजमें अक्सर पञ्जाबी सिख भरे थे। उभरा हुआ सीना, गुलाबी चेहरा, चौड़ा माथा, पञ्जाबकी मस्ती—वे सुन्दर नौजवान। कोई भी राष्ट्र ऐसे तरुणों को पाकर गर्व कर सकता है। जहाजमें सब अपनी-

अपनी धुनमें मस्त और बिलकुल बेखबर थे। कोई मस्तीमें यह पञ्जाबी गीत गुनगुना रहा था—

सोहणां देशां विच देश पञ्जाब नी सहियो
जेतां फुल्लां विच फुल है गुलाब नी सहियो
रावी, जेहलम ते अटक चनाव नी सहियो

कहीं तरुण सिपाही ताश खेल रहे थे। जहाजके एक कोनेमें सरदाई छन रही थी। कई मनचले जहाजपर ही पकौड़े तल रहे थे। यह मस्ती और चुलबुलेपन का नज़ारा देखते ही बनता था। मैं क्योंकि पढ़ा-लिखा था और सूबेदारके पदपर नियुक्त होकर जा रहा था, इसलिए सब मेरा बड़ा अदब किया करते थे। जहाज़ पर मेरा अधिकांश समय समुद्रकी लहरोंका नाच देखनेमें लगता था, रात्रिको जब चन्द्रदेव अपनी प्रकाश-सुधा बरसाते थे और समुद्र उछल-उछल कर बच्चोंकी तरह चांद तक पहुंचनेका साहस करता था, उस समय मैं सृष्टिकी इस अद्भुत लीलाको एकटक होकर देखता रहता। विशाल विस्तृत नील जलधिमें हमारा जहाज बच्चोंका खिलौना सा मालूम होता था और कई बार विशालकाय लहरोंके प्रहारसे डगमगाने सा लगता था, उस समय ऐसा मालूम होता था कि जिन्दगीका नाटक अब खतम हुआ, पर थोड़ी देर बाद लहरें उठना बन्द हो जाती और जहाज फिर उसी चालसे चलने लगता। खैर, पन्द्रह-बीस दिनोंके बाद रास्तेकी बन्दरगाहोंपर ठहरता हुआ हमारा जहाज बेलजियमके तटपर जा लगा।

( ५ )

बेलजियम पहुंचनेपर पहले पांच छः महीने हमें बिल्कुल नये ढङ्गसे ट्रेनिङ्ग दी गयी। इस बीच निर्मला के भी दो चार पत्र आये और उनसे मेरे सन्तप्त हृदय को परम शान्ति मिलती थी। निर्मलाके पत्रोंको मैं बार-बार पढ़ता, पर मेरा दिल न भरता था, ऐसा मालूम होता था जैसे निर्मला ही पत्रोंमें अपनी विशाल आंखोंसे मुझे झांक रही है। इस बीच एकाएक निर्मलाके पत्र आना बन्द हो गये, मेरे पत्रोंका भी कोई जवाब नहीं आता था. इससे मेरा हृदय सन्तापकी भट्ठीमें निरन्तर जला करता और कभी-कभी मैं निर्मलापर बहुत विक्षुब्ध हो उठता। कुछ दिन तो मेरा दिल बहुत उदास रहा, निर्मलाके सम्बन्धमें तरह तरहकी अनिष्ट शङ्कायें मेरे हृदयमें उठने लगी, पर कोई चारा न था। भगवान्‌ने मानवीय मनकी इस प्रकार रचना की है कि वह दुःखको शीघ्र ही विविध उपायों द्वारा भुलानेकी चेष्टा करता है, और भुलानेमें सफल भी हो जाता है। यदि दुःख हमेशा याद रहे तो जीना दूभर हो जाय। मैंने भी अपने दुःखको भुलानेके लिए अपने साथियोंसे मेलजोल बढ़ाना शुरू किया। अब अपना अधिक समय प्रकृति निरीक्षण या एकान्तमें बितानेके स्थानपर मैं अपने साथियोंके बीचमें बिताता; इससे मेरे हृदयको थोड़ी-बहुत सान्त्वना अवश्य मिली। इसी बीच अभी हाल ही में मिलिटरीके रसद विभाग में हेड क्लर्क बन कर पञ्जाबसे आये हुए सरदार केशर सिंहसे मेरी प्रगाढ़ मैत्री हो गयी। सरदार केशर सिंहका कद जरा छोटा, कण्ठ कोमल और मुखमण्डल आभामय था। सरदार केशर सिंह भी अन्य सिखों की तरह लम्बी-लम्बी दाढ़ी-मूछें रखते थे। मेरी सरदार साहबसे खूब पटती थी, बड़ा हास-परिहास होता था। मेरी मुहब्बत दिनोंदिन केशर सिंहसे बढ़ती गयी और केशर भी मुझपर जान देता था। केशर सिंहके साथ मैं प्रायः समुद्र तटपर खिली चांदनी में जाया करता, हम दोनों इकट्ठे बगीचेमें टहलते और अपने दिलकी बातें खोल कर किया करते थे। एक दिन मैंने हंसी-हंसीमें केशर सिंहसे कहा—"क्यों केशर! अगर कभी मेरी जानपर बन आय, तो क्या मेरी हिफाजत करोगे? केशरने कहा- पहले अपने

दिलसे पूछो, यह आगे चल कर समय बतायेगा, मैं अभीसे क्या बताऊं, जितनी तुम अपने आपसे मुहब्बत नहीं करते उससे कहीं अधिक मैं तुमसे मुहब्बत करता हूं।

( ६ )

पांच छः महीने तो खास बेलजियममें रहकर ट्रेनिङ्गके नामपर गुलछर्रे उड़ाते रहे। अब लड़ाई तेज हो चली और हमे भी मोरचा लेनेके लिए बेलजियमसे थोड़ी दूर लामपर भेज दिया गया। जहां हमने पड़ाव डाला, वहांसे लगभग ५ मीलकी दूरीपर जर्मन सेना अपना पड़ाव डाले खन्दकोंमें पड़ी थी, अभी टैङ्कोंका प्रयोग नहीं हुआ था, पिछले महायुद्धमें खन्दकोंमें बैठ कर लुके-छिपे लड़ाईका नाटक होता था। एक दिन अंधेरी रातको सेनाके अंग्रेज कमाण्डरने मुझे बुला कर कहा—"मि० प्रभाटकुमार! हम टुमको बहादुर समझ कर एक काम सौंपटा है, बोलो करेगा क्या; यदि टुम इस कामको कर दिखाया, विक्टोरिया क्रास देंगा, आज राटको दुश्मनके मोरचेके पास भेद लाने जाना होगा, बोलो इस कामके लिए तैयार है, जानका जोखिम जरूर है।" मैंने अपनी सहर्ष स्वीकृति दे दी और अगली रातको अकेला घोड़ेपर सवार हो शत्रुके पड़ावकी ओर जानेकी तैयारीमें लग गया। मेरे मनमें यह विचार आया कि अब जिन्दगीका तो कोई भरोसा नहीं, आखिरी वक्त केशर सिंहसे मुलाकात कर ली जाय। बेलजियम पास ही था, मैंने एक आदमी भेज कर केशर सिंहको बुलवा भेजा। सायंकाल होते-होते केशर सिंह आ पहुंचा और केशरने आते ही यह बात कही कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। मैं बहुत मना करता रहा, पर केशर नहीं माना। मैंने फौजके कमाण्डरसे केशरको भी साथ ले चलनेकी अनुमति जैसे-तैसे ले ली।

( ७ )

घनघोर अंधेरी रात, हाथको हाथ नहीं सूझता था। केशर और मैं दो घोड़ोंपर सवार हो शस्त्रोंसे लैस होकर जा रहे थे। आगे-आगे मैं चल रहा था और मेरे पीछे केशर हीर रांझांकी कहानी धीमे धीमे सुनाते हुए चल रहा था, मुझे बड़े जोरोंकी नींद सता रही थी, मैं बेसुध था। इतनेमें सनसे एक गोली आयी, मुझे निशाना बना कर ही गोली चलायी गयी थी, बन्दूककी आवाज सुनते ही मैं हड़बड़ा उठा, पर केशर सिंहने फुर्तीसे आगे बढ़ कर, मेरे बचावका और कोई उपाय न देख अपना सीना आगे कर दिया। गोली मर्मस्थलपर लगी और मेरा प्यारा केशर जमीन पर गिर पड़ा। मैं घोड़ेसे नीचे उतरा; केशरकी सांस उस समय बड़े जोरोंसे चल रही थी। मैं बिलख-बिलख कर रोने लगा—केशर सिंहने अपनी बनावटी दाढ़ी और मूंछ उखाड़ कर एक तरफ फेंकते हुए कहा—प्यारे प्रभात! मुझे पहचानते हो। मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। मैं सहसा चिल्ला उठा—अरे, यह तो मेरी निर्मला है। मेरी अवस्था इस समय अत्यन्त करुणाजनक थी, मैं निर्मलाके चरणोंपर अपना मस्तक डाले बैठा था और कह रहा था, भगवान्! मुझे तुम निर्मलाकी चरण रज बना दो मेरा जीवन कृतार्थ हो जाय। निर्मलाने ओजस्विनी वाणी में कहा—"प्राणनाथ! यह क्या बातें करते हो, आज मेरा स्नेह-यज्ञ पूर्ण हो रहा है। मैं अब शायद न बच सकूंगी, परन्तु मुझे सन्तोष है कि मैं अपने प्रियतमके प्रति अपना पवित्र कर्तव्य निभानेमें सफल हुई। यह समय शोक करनेका नहीं है। मेरी कहानी सुननेके लिए तुम उत्सुक होगे—मेरी कहानी संक्षेपमें इस प्रकार है—तुम्हारे विदेश जानेके बाद मेरा लाहौर में दिल नहीं लगा। मैं मैट्रिक पास हूं, अंग्रेजी अच्छी तरह बोल लिख लेती हूं, सौभाग्यसे मुझे केशर सिंह

नामके किसी २० वर्षके लड़केका मैट्रिकका सर्टिफिकेट मिल गया था, वह सर्टिफिकेट भेज कर मैंने मिलिटरी के रसद डिपार्टमेण्टमें अर्जी भेजी। अर्जी स्वीकृत होनेपर मैं हेड क्लर्क नियुक्त होकर एक ऊंचे अफसर की सिफारिशसे यहां पहुंची। ये दाढ़ी मूंछे बनावटी ही हैं। अब मेरी जीवन-लीला समाप्त होनेमें थोड़ी देर है। पुनर्जन्ममें हम दोनों फिर मिलेंगे। इतना कह कर निर्मला चुप हो गयी। मैंने जेबसे पिस्तौल निकाला और अपनेको शूट करना ही चाहता था कि निर्मलाने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा—"प्राणनाथ! इससे मेरी आत्मा सन्तप्त रहेगी, यदि मुझे सन्तुष्ट करना चाहते हो तो ऐसा भूल कर भी कभी न करना।" मैंने विह्वल स्वरमें कहा—मैं अब जीकर क्या करूंगा; मेरे लिए दुनिया श्मशान तुल्य है। निर्मलाने फिर अपनी विशाल आंखोंसे मुझपर दृष्टिपात करते हुए कहा—"प्राणनाथ! आत्महत्यासे बढ़ कर कोई पाप नहीं, अपनी प्यारी निर्मलाके नामपर कभी आत्महननका अपराध न करना।" यह कहते ही उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। मैं निर्मलाके शवको अपने साथ लेकर वापिस आया। सारी सेना में यह बात बिजलीकी तरह फैल गयी कि केशर सिंह मेरी पत्नी निर्मला थी। निर्मलाके शवका जलूस बड़ी धूमधामसे फौजी बैण्ड बाजेके साथ निकाला गया। सबकी आंखोंमें आंसू लहरा रहे थे। निर्मलाके दाह संस्कारके बाद सब उसकी राखके लिए छीना-झपटी करने लगे। मैंने भी थोड़ी राख एक चांदीकी डिबिया में इकट्ठी कर ली और नौ सौ रुपयेकी नौकरीपर लात मार कर स्वदेश लौटा।

( ८ )

स्वदेश लौटनेपर पहले-पहल मेरा दिल बहुत उदास रहा। निर्मलाके बिना सारी दुनिया सूनी मालूम देती थी। एकाएक हृदयमें वेदान्त ग्रन्थों, उपनिषदों, गीता, रामायण तथा महाभारतके अध्ययनकी तरङ्ग उठी। हृदयको कुछ शान्ति मिली। आगे चल कर उत्कट वैराग्य होनेपर मैंने सन्यास ले लिया।

आज मैं सन्यासी हूं। पर्वतों, वन-उपवनोंमें, सरिताओंके किनारे मस्तीकी तरङ्गमें घूमता हूं। कभी बाहर शहरोंमें भी जाता हूं। तत्वज्ञानकी परमावस्था पर पहुंच कर मुझे प्रत्येक नारीके चेहरेमें निर्मलाके दर्शन होने लगे हैं और नारी जातिके प्रति मेरी श्रद्धा बहुत बढ़ गयी है। मैं जहां कहीं किसी नारीको देखता हूं, श्रद्धासे अपना मस्तक नवा देता हूं। बेलजियमसे मैं जो निर्मलाकी राख चांदीकी डिबियामें भर कर लाया था, वह अब भी मेरे पास मौजूद है। मैं जब कभी किसीको यह स्नेह-यज्ञकी कहानी सुनाता हूं, तो उस व्यक्तिके आग्रहपर अन्तमें इस पवित्र राखका टीका लगा देता हूं।

———



# जीवनको उन्नत बनानेवाले हमारे कुछ प्रकाशन

## ( १ ) जीवन सौरभ—

प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि साधारण परिस्थितिमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको पढ़ें और अपनी सन्तानों के हाथमें दें। मूल्य केवल ।–)॥

## ( २ ) देशके नौनिहालोंसे—

नवयुवकों एवं छात्र तथा छात्राओंके लिये अनुपम उपहार। उन नवयुवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशकी आशा है, जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं; अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। मूल्य केवल –)

## ( ३ ) सदाचार का महत्त्व—

पुस्तक के सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय। सदाचार ही जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी कुञ्जी है; इसको कौन नहीं जानता। पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हुए हैं तथा अपनी और देशकी हानि कर रहे हैं वह सर्व विदित है। जो भारत संसारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसीलिये उसका पतन हो गया है। इस समय देशके युवकोंको सन्मार्गपर ले जानेकी आवश्यकता है। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल –)

## ( ४ ) स्वास्थ्य-पत्र—

यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ रहना ही मृत्यु है तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक धनहीन स्वस्थ जीवन दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्ग-तुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुखपूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है। २०"×३०" साइजके इमिटेशन आर्ट पेपरपर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बंधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है, इसलिये कि यह एक स्थायी चीज हो जाता है। मूल्य केवल =)

## ( ५ ) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास

स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है वह व्यर्थ ही जीवन-यापन करता है। जो देशके प्रति कुछ त्याग नहीं करता वह पशु सदृश है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र-सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन तो अवश्य हुआ है, किन्तु संक्षेपमें, सबके योग्य सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

## ( ६ ) कांग्रेस चार्ट—

इसमें बड़े सुबोध और सरल ढङ्गसे कांग्रेसके जन्मकालसे लेकर अबतकके अधिवेशनोंका विवरण, सभापति, स्थान, समयकी सूचना और किस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमिटेशन आर्ट पेपर पर साइज २०"×३०" दो रङ्गोंकी मनोहर छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। **जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०,** "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# बच्चों का निर्माण

लेखक—श्री आचार्य चतुरसेन शास्त्री

सुन्दर, स्वस्थ, मेधासम्पन्न बच्चे घरके दीपक हैं। जिस घरमें बच्चे नहीं, वह श्मशान तुल्य है। शानदार, ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओं और कल-कारखानोंसे कोई राष्ट्र वस्तुतः भाग्य-वान् और सम्पत्तिवान् नहीं कहा जा सकता। भाग्यवान् राष्ट्र वही है जहांके बच्चे स्वस्थ, सच्चरित्र और प्रतिभासम्पन्न हैं। आज हमारा भारतीय राष्ट्र अविद्या, अज्ञान, सामाजिक कुरीतियों और पराधीनताके वश बीमार, कमजोर बच्चोंका एक अजब चिड़ियाघर बना हुआ है। यदि हम अपने राष्ट्रको वस्तुतः उन्नत करना चाहते हैं तो हमारा यह परम पवित्र कर्त्तव्य है कि बच्चोंके प्रति हम अपने कर्त्तव्योंको समझें और उनका ईमानदारीसे पालन करें। बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षा, शारी-रिक स्वास्थ्यके प्रति दृष्टि रखना प्रत्येक माता पिताका कर्त्तव्य है। प्रस्तुत लेखमें हिन्दी साहित्य गगनके उज्ज्वल नक्षत्र श्री आचार्य चतुरसेन जी शास्त्रीने इन्हीं बातोंका विशद् रूपमें विवेचन किया है।

—सम्पादक।

क्या आपको यह देखकर शर्म नहीं आती कि आपके बच्चे गली कूचोंमें कुत्तों और मुर्गियोंके समान मारे-मारे फिरते हैं। शहर, गांव और कस्बे जहां भी देखिये एक ही हाल है। मैलेकुचैले भद रंग, काले-कलूटे। टेढ़े-तिरछे और सीधे, मूर्ख कुबुद्धि बालक आपको बेशुमार मिलेंगे। मैं पूछता हूं—क्या इनका कोई पिता है, जिसने अपनी आत्मा इन्हें दी है? या इनकी कोई माता है जिसने इन्हें अपने कलेजेका खून पिलाया है? तब क्या कारण है कि ये बदनसीब बच्चे अपने जीवनके सुनहरे प्रभातमें इस तरह मारे मारे फिर रहे हैं?

क्या आपने कभी इस बातपर भी विचार किया है कि बच्चे क्यों पैदा किये जाते हैं और किस भांति उनका पालन होता है? बच्चोंकी हैसियत क्या है और वे कितने कामकी चीज हैं?

मैं प्रमाणित तौरपर कह सकता हूं कि आपने कभी इन बातोंपर विचार ही नहीं किया। अपनी पत्नीसे इन्द्रियवासनामें अन्धे होकर समय कुसमय व्यभिचार किया है और ये भाग्यहीन बच्चे कुदरतके नियमानुसार आपही हो गये हैं। आप न तो इनके पिता हैं और न ये आपके पुत्र हैं। सैकड़ों पशु, पक्षी, कीट, पतंग पैदा होते हैं उसी भांति ये भी हुए हैं, जैसे वे मैला मट्टी खाते और भटकते रहकर मर जाते हैं, वैसे ही यह भी मर जायेंगे।

परन्तु क्या आपने इस बातका इतिहास पढ़ा है कि भारतकी माताओंने कैसे बच्चे पैदा किये थे? ये बच्चे जमीन फाड़ कर नहीं निकले थे, जिन्होंने पृथ्वी की महान जातियोंको विजय किया था। जिनके धौंसेकी धमकसे धरती हिलती थी, जिनके हुंकारसे साम्राज्योंके सिंहासन हिल जाते थे, जिनकी दहाड़से वन, पर्वत कम्पायमान हो जाते थे—वे असली केहरी के बच्चे भी एक दिन भारतकी माताओंने पैदा किये थे। उस समय भी भारतमें यही सूरज, चांद और नक्षत्र थे, यही दिन था, यही जल वायु था, परन्तु अन्तर इतना था कि वे माता और पिता केवल अपनी इन्द्रियोंके गुलाम न थे। वे विवेकी, विचारशील,

सद्‌गृहस्थ थे। वे बच्चोंको पैदा करना, उनका पालन करना और उन्हें उच्च कोटिका मनुष्य बनाना जानते थे।

मैं आपसे धर्मपूर्वक पूछता हूं कि क्या कभी आप गर्भाधानकी नियतसे गर्भाधानकी ठीक रीतिके अनुसार ऋतुकालमें अपनी पत्नीके पास गये हैं। क्या कभी आपने अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त की है? मैं कहूंगा—नहीं, आपने कभी ऐसा नहीं किया।

बच्चे देशकी सच्ची सम्पत्ति हैं। बच्चे ही आपके खानदान, नस्ल और देशका नाम रोशन करनेवाले हैं। आपको जो कुछ बनना था बन गये। पर बच्चोंको जो कुछ बनाना चाहते हैं बना सकते हैं। यह आश्चर्य नहीं कि अबके बच्चे राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, व्यास, कपिल, कणाद जैसे महापुरुष हो जायें। आज भी देशकी मातायें गांधी, रवीन्द्र, वसु, जवाहर और मालवीय जैसे बच्चे पैदा कर सकती हैं। आवश्यकता केवल इस बातकी है कि आप इस महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारीको समझें और उसकी तरफसे लापरवाही न करें।

दुःखकी बात तो यह है कि देशके समझदार व्यक्ति भी स्वास्थ्य सम्बन्धी बातोंको ठीक-ठीक नहीं समझते और लाभ नहीं उठा सकते, इसका फल यह होता है कि जन्मके बाद एक सालके भीतर ही आधे बच्चे मर जाते हैं। भारत सरकारके स्वास्थ्य विभागके कमिश्नर श्री कर्नल रसेल फरमाते हैं कि भारतमें फी हजार १८१ बच्चे मर जाते हैं। यह तो शहरोंकी रिपोर्ट है, ग्रामोंका तो पता ही नहीं है। कोमल बच्चोंकी मृत्यु उत्पन्न होनेके कुछ काल ही बाद कितनी करुण और भयानक है? पर यह तब तक होता रहेगा जब तक माताएं बच्चोंकी रक्षा और पालनकी वैज्ञानिक रीतियां ठीक-ठीक नहीं सीखेंगी। शोककी बात तो यह है कि मातायें माता बननेके समयके पूर्व ही मातायें बना दी जाती हैं। उनका न शरीर, न मन, न मस्तिष्क ही मातृ पदके योग्य विकास पाता है। ऐसी दशामें उनसे यह कैसे आशा की जा सकती है कि वे अपने बच्चोंकी ठीक-ठीक रक्षा कर सकेंगी?

अविद्याका अन्धकार माता पिता और बच्चोंके अमर अभिशापकी भांति समझना चाहिए सभी दुर्दशाओंका मूल यही है। भारतवर्षकी जलवायु इतनी उत्तम है कि यहां मेधावी, सुन्दर और दीर्घजीवी पुरुष पैदा होने चाहियें। पर आज यहां रोगी, अभागे काले गुलाम उत्पन्न हो रहे हैं। वे भी भूखे और रोगी रह कर अकाल ही में मर जाते हैं। भाग्यवान भारतका भाग्य इसीलिए फूटा हुआ है।

एक कन्याने अंधेरेमें बिल्लीकी चमकती हुई आंखों को देखकर कहा था—मां, बिल्लीके सिरमें दो तारे हैं। एक बच्चेने पौधोंपर ओसके कण देखकर अपने पिता से कहा था—बेचारे रात भर रोते रहे हैं। कैसे आंसू ढलक रहे हैं! बच्चोंमें यह उपमाकी शक्ति क्या कवित्व की शक्ति नहीं है? क्या कालीदास और शेक्सपियर इससे सुन्दर कोई उपमा दे सकते हैं? पर आप क्या समझते हैं कि ये बच्चे भी कालीदास या अभय भारतीयके पदको प्राप्त कर सकते हैं? निश्चय ही वह बालिका कहीं कच्ची उम्रमें व्याही जाकर वैवाहिक अत्याचारके फलस्वरूप रोग शोकमें ग्रसित होकर किसी अंधेरे और सील भरे स्थानपर चुपचाप बैठी जूठे बर्तन मल रही होगी और वह बदनसीब बच्चा किसी क्लर्कीकी कुर्सीपर बैठ कर पेटके गढ़ेको भरनेके लिए साहबकी गालियां सुन रहा होगा।

जो लोग अपनेको बहुत समझदार समझते हैं वे अपने बच्चोंको स्कूलके सिपुर्द करके बेफिक्र हो जाते हैं। जब कोई उनसे पूछता है—लड़का क्या करता है, तो गर्वसे कहते हैं कि स्कूलमें पढ़ने जाता है। वे यह नहीं जानते कि स्कूलकी जहरीली पढ़ाई किस भांति

युवकोंका सत्यानाश करती है। किस तरह युवक लोग इन स्कूल कालेजोंमें पढ़ कर देश और धर्मके विरुद्ध हो गये हैं।

क्या आपने कभी गौरसे कालेजके विद्यार्थीको देखा है? वह बनीं हुई मांग, दुबला-पतला चेहरा, गड्ढेमें धंसी हुई आंखें, चश्मा चढ़ी हुई दृष्टि, कालरमें छिपी हुई मुर्गी जैसी गर्दन और कमीजके कफमें लिपटी हुई जनानी कलाई भला देशको क्या आजादी दिला सकती है?

तिफलीं गयी अलामतें पीरी अयां हुईं।
हम मुन्तजिर ही रह गये अहदे सबाबको॥

ये लोग अपने बुजुर्गोंको मूर्ख समझते हैं, खड़े होकर पेशाब करना और होटलमें अण्डे उड़ाना सभ्यता समझते हैं। घरकी स्त्रियोंको गंवार और अपनी जाति-धर्मको घृणित समझते हैं। यह अंग्रेजी रीतिके कायल लोग हैं इनमें मर्दानगी नहीं, देश भक्ति नहीं और कौमियत नहीं।

वह भी जमाना था जब घरोंमें लोहेके जवान होते थे जिनकी कलाइयां वज्रकी होती थीं। उनकी चौड़ी-चौड़ी छाती, लम्बी भुजा, गठी हुई गर्दन और सिंहकी चाल शत्रुके दिलोंमें हलचल पैदा कर देती थी। देश को ऐसे नवयुवकोंकी ही तो जरूरत है। अफसोस भद्दी शिक्षा-पद्धति और हमारी भद्दी पोषण वृत्तिने देशकी इस सम्पत्तिको नष्ट कर दिया है। क्या अब यह उचित नहीं है कि हम इसका प्रतिकार करें?

कन्याओंकी शिक्षाके सम्बन्धमें अब भी देश पिछड़ा हुआ है। आज लोग उन्हें पराई चीज समझते हैं। यह कैसी शर्मकी बात है। हमने स्त्री-जातिपर बहुत जुल्म किये हैं। अब हमें उसका प्रायश्चित करना चाहिये। कन्याओंके स्वास्थ्य और मस्तिष्कका विकास लड़कोंकी भांति होना चाहिये। सन्तान लड़का हो चाहे लड़की राष्ट्रके लिए समान महत्त्व रखते हैं। उन्हें ऐसा बनाइये कि वे अपने देशको प्यार करें, मनुष्य जातिके प्रति अपना फर्ज अदा करें, संयम और जीवनके रहस्योंके जानकार हो।

बाल विवाह एक अपराध है और जो कोई भी यह अपराध करता है वह कड़ीसे कड़ी सजा पानेके काबिल है। अपने बच्चोंको जहर देना उतना बड़ा अपराध नहीं है जितना कि बचपनमें विवाह कर देना है। विवाहके लिए कन्याकी आयु कमसे कम सोलह वर्ष और लड़केकी पचीस वर्षकी होनी चाहिए। दोनों की तन्दुरुस्ती, शक्ति, स्वभाव, शिक्षा सभी बातोंकी समानता मिला कर देखना चाहिए और दोनोंकी इच्छा और अभिरुचि देखकर विवाह करना चाहिए। विवाह का अर्थ और परिणाम होना चाहिए सुख, न कि दुःख, नाश और पतन।

वे ही माता पिता धन्य हैं, जिनकी सन्तान नीरोग, प्रसन्न, देश भक्त, सदाचारी और सुखी गृहस्थ हैं।



# मृत्यु-विज्ञान

लेखक—श्री गङ्गाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

प्रस्तुत लेखमें विद्वान् लेखकने दार्शनिक युक्तियों द्वारा बड़े दिलचस्प ढङ्गसे यह प्रतिपादित करनेका प्रयत्न किया है कि आत्मा अमर है। मृत्यु-भय सर्वथा कल्पित है। अहंके साथ मरनेका प्रयोग हो ही नहीं सकता। अपने आध्यात्मिक विचारोंको उज्ज्वल और ओजस्वी बनानेसे तथा सदा सुन्दर विचारोंके सुरभित उद्यानमें भ्रमण करनेसे हम कभी मृत्यु-भयका अनुभव ही नहीं कर सकते।

—सम्पादक।

[ गताङ्कसे आगे ]

आत्मा वह पदार्थ है जिसका संकेत हम लोग 'अहं' पदसे करते हैं। अब देखना चाहिए कि क्या 'अहं' पद और 'मर गया' क्रियामें वास्तविक और विधेयके रूपमें सम्बद्ध होनेकी किञ्चिन्मात्र भी सम्भावना है? कभी नहीं। डाक्टर अथवा सम्बन्धी, रोगीकी नाड़ी देखकर कहते हैं कि वह मर गया, अथवा रोगी स्वयं शङ्का करता है या डरता है कि मैं मर जाऊंगा, किन्तु मरनेका वास्तविक, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुभव कभी होता ही नहीं; यह बिलकुल असम्भव है। 'अहं' और 'मरना' दोनों शब्द साथ-साथ प्रयुक्त नहीं हो सकते। इस अवस्थामें भी जब मनुष्य कहता है कि 'मैं मर रहा हूं' वह अपूर्ण वर्त्तमान कालका प्रयोग करता हुआ मालूम पड़ता है, उसका मतलब भविष्यत कालसे होता है और वह भविष्यत् कालके बारेमें ही संकेत या जिक्र करता है। भूत अथवा वर्त्तमान कालके विषयमें नहीं।

इस सम्बन्धमें हम निद्राका उल्लेख करेंगे, जिसे स्वल्प मृत्यु कह सकते हैं। वास्तवमें मृत्युको बहुधा लम्बी निद्रा कहा गया है। उदाहरणार्थ, कविवर कालिदास ( रघुवंश सर्ग १२ ) भगवान् रामचन्द्र द्वारा, निद्राप्रिय कुम्भकर्णके वधका वर्णन करते हुए कहते हैं;—

अकाले बोधितो भ्राता प्रियस्वप्नो वृथा भवान्।
रामेषुभिरितींवास्तौ दीर्घनिद्रां प्रवेशितः॥

अर्थात्, ऐसा प्रतीत होता है मानो श्रीरामके बाणोंने यह कहते हुए कि हे निद्राप्रिय, तुम्हारे भाईने तुमको, असमयमें ही विना प्रयोजनके जगा दिया, कुम्भकर्णको लम्बी निद्रा लेनेके लिए भेज दिया।

निद्राके बारेमें मजेकी बात यह है कि आप कह सकते हैं 'मैं सो रहा था', 'मैं सोने जा रहा हूं' या 'मुझे बड़ी नींद लग रही है' इत्यादि, किन्तु आप यह कदापि नहीं कह सकते कि 'मैं सो रहा हूं'। यदि आप ऐसा कहते हैं तो यही इस बातका सबसे बड़ा प्रमाण है कि आप सो नहीं रहे हैं। इस प्रकार निद्रा शब्द भी मैं ( अहं ) के साथ प्रयुक्त नहीं हो सकता; यह स्वभावसे ही असम्भव है। ऐसी दशा में "मैं" के साथ 'मरने' शब्दका प्रयोग तो और भी असम्भव है। इससे स्वाभाविक परिणाम तो यही निकलता है कि आत्माके सम्बन्धमें मृत्युका कथन नहीं हो सकता।

कभी-कभी ऐसा होता है कि मनके अद्भुत व्यापारसे आप स्वप्न देखते हैं कि आप मर गये हैं और लोग आपके लिए रो रहे हैं, इत्यादि, किन्तु इस सम्बन्धमें आश्चर्यजनक बात यह है कि उस कल्पित मरणावस्थामें भी आप, लोगोंको रोते हुए देखते हैं और सुनते हैं, इत्यादि। इससे स्पष्ट प्रगट होता है कि

काल्पनिक मृत्युके अनन्तर भी जीवन बना रहता है। इन सिद्धान्तोंसे यही सिद्ध होता है कि अमरत्व, आत्माका स्वाभाविक गुण है।

## मृत्यु-भय

हिन्दी 'नव जीवन' में एक बार महात्मा गांधीने लिखा था—'आत्माके धर्मोंकी अज्ञानता, और हम स्वयं मरना नहीं चाहते, ये ही दो कारण हैं, जो हमें मृत्युसे भयभीत करते हैं। × × × जहां सबको जल्दी या देरमें जाना है, वहां जानेकी क्रियाको मृत्यु के बदले कोई दूसरा नाम देनेकी इच्छा होती है। और इसी बातको प्रसिद्ध तत्ववेत्ता महात्मा सुकरातने भी कभी कहा था कि वास्तवमें मौत कोई डरनेकी चीज नहीं है। मृत्यु-यन्त्रणा केवल उनके ख्यालमें है। क्योंकि यह संसार जीवात्माके लिए एक जेलखाना है, और मृत्यु उसके लिए मुक्तिका 'वारण्ट', फिर ऐसी दशामें मृत्युसे डरनेका क्या कारण ?

मृत्युका अर्थ जो कुछ हम समझते हैं वह अर्थ वास्तवमें है नहीं। अन्नमय कोषका छूटना अर्थात् लौकिक मृत्युका होना, अन्नमय कोषसे, प्राणमय कोष का निकलना है, उद्गमन है, मृत्यु कदापि नहीं। इस सिद्धान्तानुसार मृत्यु कोई भयानक वस्तु नहीं है, अपितु अवस्थान्तरमात्र है। इस अवस्थान्तरका सम्यक् ज्ञान न होनेसे, प्रत्येक प्राणी, पूर्व जन्म-स्मृतिके कारण मृत्युको भीषण एवं भयावह मानता है। छोटा बच्चा नहीं जानता कि मृत्यु क्या है, पर उससे वह डरता जरूर है, क्योंकि पूर्व जन्ममें शरीर वियोगके समय जो दुःख (मृत्युकारणस्वरूप शरीर-व्याधि-दुःख, नकि अवस्थान्तरजन्य दुःख) हुआ था,—उसकी स्मृति किसी रूपमें उसमें छिपी हुई है। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' अथवा 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्' की खूब मीमांसा करनेपर भी मरणके समयका भयप्रद न होनेकी बात, जी किसी तरह मानता ही नहीं। इसलिए लेखककी समझमें तो इस प्रकारकी धारणा ही मृत्यु भयसे भी अधिक दुखदायी प्रतीत होती है। 'जैसा विश्वास वैसा फल' लोकोक्तिके अनुसार, मृत्युके समय सचमुच भयप्रद स्थिति उपस्थित हो जाती है, और मनुष्य अपनी ही दुर्भावनाओंका शिकार हो रहता है। कितने ही प्राणी सिंह या सांपको देखते ही बेहोश होकर गिर पड़ते हैं या मर ही जाते हैं। ठीक यही बात मृत्यु रूपी सिंह या सांपके सम्बन्धमें भी समझनी चाहिये।

भावी विपदाको निरन्तर सोचते रहना, दुःखको मोल लेना है. अथवा उस भावी विपदाको शीघ्रातिशीघ्र निकट बुलाना है। हजरत ईसाका अपने अनुयाइयों के प्रति उपदेश था—'दुःखजनक विचारोंको अपने पास कदापि न आने दो, क्योंकि उनका परिणाम एक दीर्घ कालके लिए अशुभ तथा हानिकारक होता है।' यह एक आध्यात्मिक सिद्धान्त है कि जैसे विचार होते हैं उसीके उपयुक्त वायुमण्डल भी बन जाता है। एक स्त्रीके बारेमें कहा जाता है कि वह सदैव मृत्युके भयसे चिन्तित रहा करती थी। उसके मनमें एक व्याधि विशेषका भय उत्पन्न हो गया और वह डरने लगी कि कहीं वह व्याधि उसे हो न जाय जो उसकी मृत्युका कारण बने। कुछ समय बाद सचमुचमें उसे वही व्याधि हो गयी, जिसकी वह दिवा निशि चिन्तना किया करती रहती थी। और फिर तो लाखों एकसे एक बढ़िया इलाज होनेपर भी वह बच न पायी। अस्तु, जैसा विचार आकाश तत्वमें भेजा जायगा, उसके कम्पन वायुमण्डलमें वैसा ही रूप धारण करके हमारे पास आयेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।*

(क्रमशः)

* लेखककी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'मृत्यु और उसके बाद' से। —लेखक।

# मस्ती की तरङ्ग में

## एक हज़ार साल पुराना नुस्खा—

अपने रामको अनेक प्राचीन आयुर्वैदिक ग्रन्थोंकी छानबीन करनेके उपरान्त गलेके दर्दका एक नुस्खा मालूम हुआ है, उसे सात्विक-जीवनके पाठकोंके लाभ के लिए नीचे प्रकाशित किया जाता है। इस नुस्खेका पता लगानेके लिए अपने रामको उतनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, जितनी प्रसिद्ध विश्व-यात्री कोलम्बसको अमेरिकाका पता लगानेमें करना पड़ा था। यह नुस्खा भारतीय मिष्ठान्न-चिकित्सा-शास्त्र नामक संस्कृतके ग्रन्थमेंसे जो तक्षशिलाकी खुदाईमेंसे निकला था, अपने रामको मिला है। प्रस्तुत ग्रन्थके लेखक कोई स्वनाम धन्य प्रातः स्मरणीय हिज़ होली-नेस श्री रसगुल्लानन्दजी महाराज हैं। अन्य प्राचीन भारतीय लेखकोंकी तरह श्री १०८ रसगुल्लानन्द जीने अपना कोई परिचय ग्रन्थके प्रारम्भमें नहीं दिया है। और यह ग्रन्थ लेखकने किन्हीं श्री इमरती देवी जीको भेंट किया है। अपने रामका ऐसा मत है कि श्री इमरती देवीजी इनकी धर्मपत्नी रही होंगी। श्री रसगुल्लानन्द जीके विस्तृत परिचयके लिए छानबीन और प्रयत्न जारी है और आशा है कि निकट भविष्य में लेखकके परिचयके विषयमें हम किसी निश्चित परिणामपर पहुंच सकेंगे।

## सुनिये साहब, नुस्खा इस प्रकार है —

जब गलेमें बहुत जोरका दर्द हो तो सबसे पहले गलेरूपी सड़कपर बून्दीकी कङ्कड़ियां डलवाई जावें। (यदि बून्दीकी कङ्कड़ियां न मिलें तो उस अवस्थामें रसगुल्लेके कङ्कड़ोंका भी प्रयोग किया जा सकता है)? फिर उसपर गुलाब जामुनका रोलर फेर दिया जाय। जब सड़ककी मरम्मत हो जाय उसपर मलाई का पलस्तर बांध दिया जाय। मलाईका पलस्तर बांधने के बाद दूधका छिड़काव करें। दूधके स्थानपर बादाम के शर्बतका प्रयोग भी कर सकते हैं। इस प्रकार हफ्तेमें दो बार इस नुस्खेका प्रयोग करनेसे गले का दर्द ऐसे हवा हो जायेगा जैसे बिल्लीको देख कर चूहा, या जैसे थर्ड क्लासका यात्री अचानक फर्स्ट क्लासके डिब्बेमें पहुंचनेपर वहांसे दुम दबाकर भागता है, या जैसे हवामें रखनेसे कपूर हवा हो जाता है।

## कविवर श्री गुलाब जामुन प्रिय जी की टीका—

इस नुस्खेपर कविवर श्री गुलाब जामुन प्रियजी ने बड़ी विशद टीका की हैं। पहले पाठकोंको टीका-कारका परिचय देना उचित होगा। श्री गुलाब जामुन प्रियजी किसी भारतीय राजाके दरबारमें विख्यात, धुरन्धर कवियोंमें अग्रगण्य थे। इसके अतिरिक्त चिकित्सा शास्त्रमें भी प्रवीण होनेके कारण आप राजाके निजी राजवैद्य थे। इसी नुस्खेकी टीकापर इन्हें आचार्य-मिष्ठान्न-चिकित्सा-शास्त्र (Doctor of sweet pathy) की उपाधि राज्यकी तरफसे दी गयी थी। जिस तरह आज कल प्रत्येक रोगके अलग अलग विशेषज्ञ पाये जाते हैं। उसी तरह ये कण्ठ रोग

के विशेषज्ञ थे और गलेके रोगकी चिकित्साके लिए दूर देशसे इन्हें अनेक राजे-महाराजे बुलवाते थे। ऐसा सुननेमें आता है कि यद्यपि गुलाब जामुन प्रियजी अन्य लोगोंके गलेकी चिकित्सा करते थे, परन्तु उन्हें स्वयं कभी भी इस गलेकी बीमारीसे छुटकारा नहीं मिला। जिस तरह आज कलके डाक्टर लोग दूसरोंकी बीमारी दूर करनेका दावा करते हुए भी स्वयं अनेक बीमारियोंके शिकार रहते हैं। हम इस समय आज कलके डाक्टरोंके विवादमें नहीं पड़ते, कभी आगे चल कर उनकी खबर लेंगे। श्री गुलाब जामुन प्रिय जी टीकामें लिखते हैं—"इस नुस्खेमें जो गुलाब जामुन नामकी औषधि है, उसकी उपमा टारपीडोसे दी जा सकती है। गुलाब जामुनका आकार भी ठीक टारपीडोकी तरह होता है। जिस तरह टारपीडोमें बारूद भरा होता है, ठीक उसी तरह गुलाब जामुनमें दूधका मावा होता है। टारपीडो जहाजोंको ध्वंस करता है, उसी तरह गुलाब जामुनसे क्षुधारूपी शत्रुओंका नाश किया जाता है। रसगुल्लेकी उपमा कविवर बन्दूककी गोलियोंसे देते हैं। पेटमें रसगुल्ले की गोलियां दागनेके उपरान्त भूखकी क्या मज़ाल कि वह अपना सर उठा सके। इस नुस्खेमें मलाईका ठीक वही स्थान और उपयोग है, जो मकान बनवाते समय सीमेण्ट या पलस्तरका होता है। दूध अपनी उपमा आप है।

आगे चल कर टीकामें श्री गुलाब जामुन प्रिय जी लिखते हैं कि यह नुस्खा स्वस्थ, तन्दुरुस्त, तगड़े आदमियोंके लिए ही है। इस नुस्खेमें बतायी औषध का सेवन करनेसे पूर्व कमसे कम एक सौ दण्ड और बैठक अवश्य लगा लेनी चाहिए, तभी इसका वास्तविक लाभ हो सकता है। इस मिष्ठान्न-चिकित्साके साथ साथ दण्ड बैठक चिकित्साका करना भी निहायत ज़रूरी है। दूध, मलाई आदि औषधें उस अवस्थामें अपना पूरा रङ्ग दिखायेंगी, जब इसके सेवनके साथ साथ व्यायाम भी किया जाय।

## अपने रामकी दिव्य दृष्टि से—

प्राचीन कालमें जब कि पुण्य भूमि भारतवर्षमें दूध और दहीकी नदियां बहती थीं, धन धान्यकी कमी न थी, घी और चीनीके अम्बार लगे थे, उस समय इस नुस्खेका प्रयोग बड़ा सरल और सस्ता था। परन्तु आज कलके जमानेमें जब कि अंग्रेज बहादुरकी कृपासे शुद्ध दूध और घीकी प्राप्ति केवल एक आदर्श-मात्र रह गयी है, चीनीका खजाना खतम हो चुका है। इस नुस्खेका प्रयोग बड़ा महंगा पड़ेगा। यह नुस्खा उस समयकी ईजाद है, जब कि भारत माताके लाड़ले सुपूत घी, दूधमें लोटा करते थे, यात्रियोंको पानीके स्थानपर दूध पिलाया जाता था। इस नुस्खे का प्रयोग केवल सामर्थ्यवान ही कर सकते हैं, या वे जिनकी ससुरालमें खूब आवभगत होती है।

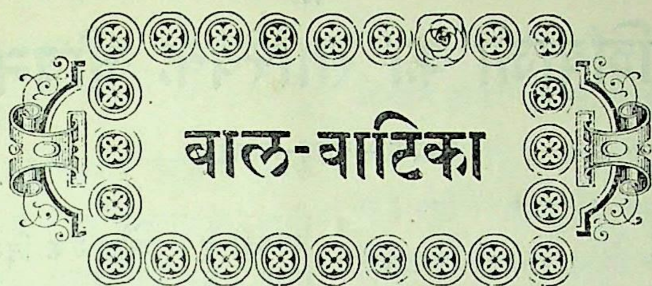
अपने राम कभी-कभी मिष्ठान्न-चिकित्साके प्रयोग और इस नुस्खेसे पूरे सोलह आने सहमत हैं। प्राचीन टीकाकार श्री गुलाब जामुन प्रिय जीने मिष्टान्न-चिकित्साके साथ जो दण्ड बैठक चिकित्साका विधान लिखा है, उससे निश्चय ही दोनों चिकित्सायें एक दूसरेकी पूरक और सहायक हो गयी हैं। अपने राम श्री गुलाब जामुन प्रिय जीकी अगाध विद्वत्ता और अनुसन्धानकी हार्दिक प्रशंसा करते हुए भी यह अवश्य कहेंगे कि उन्होंने दण्ड-बैठक-चिकित्सापर उतना बल नहीं दिया जितना मिष्ठान्न चिकित्सापर। उन्होंने अवश्य ही दण्ड-बैठक-चिकित्साके प्रति कुछ अन्याय किया है, चाहे भले ही यह अन्याय उनकी अज्ञानता-वश या अनिच्छासे हुआ हो। जिस तरह गुलाब जामुन प्रिय जीने नुस्खेमें बताये गये मिष्ठान्नोंका काव्यमयी सुललित भाषामें वर्णन किया है, ठीक उसी

तरह उन्हें दण्ड बैठक आदि व्यायामका वर्णन करना चाहिए था ताकि आगे आनेवाली सन्ततिका उस ओर झुकाव हो।

अपने रामका न तो सात समुन्दर पारसे आयी हुई डब्बोंमें बन्द अंग्रेजी दवाओंमें विश्वास है, न होमियोपैथिककी छोटी-छोटी गोलियोंका ही भरोसा है। उपवास चिकित्सा यानी भूख हड़तालपर तो सात जन्ममें भी विश्वास नहीं हो सकता; अगर विश्वास है तो केवल दण्ड-बैठक चिकित्सापर।

पेटके तमाम रोग अपने राम दण्ड बैठक चिकित्सा से दूर करनेका दावा करते हैं। आज कल आम लोगों-को कब्जकी शिकायत रहती है। कोई भलेमानुस कब्जके लिए अंग्रेजी दवाओंके मिक्सचर पी रहा है, कोई रातको सोते समय हरड़का चूर्ण फांक रहा है, कोई उपवास चिकित्सा यानी भूख हड़ताल करनेपर तुला हुआ है. पर किसीसे यह नहीं होता कि पचास-साठ दण्ड बैठक ही प्रातःकाल लगा लिया करे। अपने राम संसारका सूक्ष्म अध्ययन कर इस परिणामपर पहुंचे हैं कि संसारकी पचासी फी सैकड़ा बीमारियां दण्ड बैठक चिकित्सासे दूर की जा सकती हैं। और तो और बीमार हिन्दुस्तानको अगर अपना खोया हुआ स्वतन्त्रता रूपी स्वास्थ्य प्राप्त करना हो, तो उसे इसी दण्ड बैठक चिकित्साका ही आश्रय लेना चाहिए। लोग शायद अपने रामकी बातोंकी खिल्ली उड़ायेंगे, पर यह याद रखिये कि इसी दण्ड बैठक चिकित्सा की बदौलत ही भारतवर्षमें भीम, अर्जुनसे प्रतापी, महाराणा प्रताप और शिवासे दिलेर सपूत हो गुजरे हैं।

—श्री लहरी।




## बचपन की कुछ बातें

( १ )

याद मुझे आती हैं अपने
बचपन की कुछ बातें ;
आज़ादी से सब के आगे
करती थी मैं घातें ।

( २ )

मिट्टी का घर अरे बना कर
उसमें खेला करती ;
मिट्टी कभी बालिकाओं की
आंखों में थी भरती ;

( ३ )

छोटी बकरी पकड़ अरे मैं
अपने घर पर लाती ;
सब से कहती भैंस हमारी
हमको दूध पिलाती ;

( ४ )

यदि कोई बकरी कहता था
रूठ तुरत मैं जाती ;
फिर मेरी जीजी हंस-हंस कर
मुझको तुरत मनाती ।

( ५ )

छोटी चिड़ियां पकड़ अरे मैं
पिंजड़े में बिठलाती ;
उनको चावल खिला २ कर
खुश हो गाना गाती ।

( ६ )

पङ्ख रँगा करती थी फिर मैं
उनके नीले पीले ;
रँगने पर मुझको लगते थे
सच वे बड़े फबीले ।

( ७ )

कोटि-कोटि मैं इन्द्र धनुष भी
उन पङ्खों पर वारूं ;
उन पङ्खों के आगे सोना
भी मैं तुच्छ विचारूं ।

( ८ )

मां फ़िर मुझसे गुस्सा होकर
कहती तू हत्यारी ;
इन छोटी चिड़ियों को तूने
कष्ट दिया है भारी ।

( ९ )

मां फिर उठकर उस पिंजड़े से
चिड़ियां सभी उड़ातीं ;
सचमुच मेरे नन्हें उर पर
थीं वे वज्र गिरातीं ।

( १० )

चिड़ियोंसे फिर मैं कहती थी
मुझको वहां बुलाना ;
जिस बनमें तुम नित्य विहरतीं
मुझको भी दिखलाना ।

( ११ )

सदा तुम्हारे साथ रहूंगी
मैं भी चिड़िया बनकर ;
डाली डाली पर उड़ २ कर
फल खाऊंगी मन भर ।

— श्री सुखदेवी वर्मा 'सरला'

# शिवाजी का सात्त्विक जीवन

लेखक—बेढब-सागरी

( १ )

शिवा जीका बचपन बड़ी ही मस्त तबीयतका था। युवावस्थाका अधिकांश समय बड़ी ही शैतानीमें बीत रहा था। उनकी माता जीजाबाई उनके नित्यके उपद्रवोंको रोकनेमें प्रायः असमर्थ थीं। उनका बहुत-सा समय युवा स्त्रियोंकी छेड़छाड़में ही व्यतीत होता था। लोग इनके उपद्रवोंसे बहुत तङ्ग आ चुके थे। ऐसी कोई दवा न थी कि जिससे शिवा जीका उपद्रव बन्द किया जा सके। इनकी एक ऐसी टोली थी, जिससे प्रायः सभी डरते थे।

एक दिन शिवा जीने सोचा कि आज आनन्द-कुटीमें स्वामी रामदाससे पूछूंगा कि इस तरहकी शैतानीकी उमङ्ग हृदयमें क्यों उठा करती है? स्वामी रामदास अपने समयके महायोगी थे—दिव्य-पुरुषकी भांति भारतमें आज भी उनका पूजन होता है। शिवा जीके पहुंचनेके पहले ही वे उनकी हृदय-गत भावनाओं को समझ गये। ज्यों ही शिवा जी उनके पास उन्हें प्रणाम करके बैठे ही थे, वैसे ही स्वामी जी बड़े ही प्रेमसे कहने लगे—

"बेटा शिवा! तू एक बड़ा ही विकट प्रश्न लेकर आया है?"

शिवा जीने स्वामी जीके आगे मस्तक नवा दिया, और मुसकराते हुए मौन हो गये।

स्वामी जीने फिर कहा—"बेटा शिवा! जो उमङ्ग तेरे हृदयमें उठती है, वह तुझे पतनकी ओर ले जा रही है, वही उमङ्ग तुझे उत्थानकी ओर भी ले जा सकती है। और एक दिन तू चक्रवर्ती राजा भी बन सकता है?

इतने पर भी शिवा जी कुछ न बोले! स्वामी जी आगे कहने लगे—"बेटा शिवा! जिनको देखकर तेरी काम-शक्ति जाग्रत हो उठती है; उन्हीं सुन्दरियोंको देख कर अगर तू मां कह कर प्रणाम किया कर तो अवश्य ही तू एक दिन चक्रवर्ती राजा बन जायगा। शिवा जीने स्वामी जीसे प्रतिज्ञा की—'आजसे मैं आपके वचनोंमें बंध गया।"

( २ )

उस दिनसे आज तक १० वर्ष व्यतीत हो चुके। शिवा जीकी आयु ३० के लगभग पहुंच रही थी। वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल थे, जब कभी उनको कोई स्त्री दिखाई देती उसे वे मन ही मन प्रणाम करते। कई एक को तो झुक कर प्रणाम करते और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते। कई एक स्त्रियां तो उन्हें "राजा बेटा" कह कर पुकारने लगीं। शिवा जी अब कृष्ण की तरह उन आततायियों और अत्याचारियों की खबर लेने लगे, जो हिन्दू स्त्रियों को दिन दहाड़े उड़ा ले जाकर उनका सतीत्व हरण करते थे। इसी समयसे शिवा जी मुसलमानोंके कट्टर दुश्मन हो गये।

पूरे दस वर्षके बाद स्वामी जीने शिवा जीकी परीक्षा ली। एक दिन सिर दर्दका बहाना कर सो रहे। शिवा जी स्वामी जीकी दशा सुन कर दौड़े आये। स्वामी जीने कराहते हुए कहा—"बेटा शिवा!

सिरमें बहुत दर्द है, और यह तभी मिट सकता है जब इसके लिए कोई शेरनीका दूध ला दे ?

( ३ )

शिवा जी धुनके पूरे पक्के थे। अपनी धुनके पीछे वे सब कुछ कर डालते थे। उसी समय वे स्वामी जीका आशीर्वाद ले जङ्गलकी तरफ चल पड़े। सात दिन भूखे-प्यासे वे बराबर सिंहगढ़ और पूनाके भयानक जङ्गलोंमें भटकते रहे। एक दिन बड़े प्रातःकाल वे एकाएक एक शेरनीकी गुफाके समीप पहुंच गये। उस वक्त शेरनी निकलती हुई धूपमें अपने दो बच्चोंको खिला रही थी। शेरनी एकाएक आदमीकी गन्ध पाकर गुर्रा उठी। उसकी गुर्राहटसे सारा जङ्गल गूंज उठा! पर शिवा जी जरा भी विचलित न हुए। ज्यों ही शेरनी और शिवाकी चार आँखें हुईं—शिवा जी मुसकराते हुए बोले—"माता! तू दो बच्चोंको खिला रही है, एक तीसरा बच्चा मैं आ रहा हूं। माता! गुरुके दर्दके लिए तेरे दूधकी आवश्यकता है। पुत्रके रोग माताके दूधसे ही मिटते हैं ?"

"मां" शब्दके प्रभावने शेरनीको झुका दिया। वह बड़े प्रेमसे बैठ अपना सिर झुकाती हुई इस बातकी सूचना देने लगी कि "सच्चे पुत्रके लिए माता क्या नहीं कर सकती।"

शिवा जी धीरे-धीरे उसके पास पहुंच गये और उसे बड़े प्रेमसे थपथपाने लगे। दोनों बच्चे शिवा जी की गोदमें खेलने लगे। थोड़ी देर बच्चोंको खिला कर शिवाने दोनों बच्चोंको कन्धेपर रख लिया और घरकी ओर चल पड़े। बच्चोंके प्रेममें शेरनी भी पीछे-पीछे चल पड़ी। तीन दिनका कठिन रास्ता तय करके शिवाजी आनन्द कुटीमें आकर स्वामी जीके चरणोंमें गिर पड़े। स्वामी जीने जब देखा कि शिवा शेरनी तक ले आया है, तो वे आनन्दसे खिल उठे और कहने लगे—"शिवा सिर दर्द तो एक बहाना था, यह तो तेरी एक परीक्षामात्र थी। अब तू समझ चुका होगा कि "मां" शब्दमें कितना तेज, शौर्य और प्रभाव है ?" जा! अब तू राजा बननेके योग्य हो चुका!

महाराज शिवा जी सरीखा सात्त्विक जीवन, संसारके किसी भी राजा, महाराजामें नहीं पाया जाता। इसी जीवनको लेकर वे एक छत्रपति महाराज और दिव्य पुरुष सिद्ध हुए थे। वे एक फटे कम्बल पर ही सो रहते थे। उनकी दिनचर्य्यामें व्यायाम सबसे मुख्य बात थी। अपने समयके एक-एक मिनट का वे बड़ा ध्यान रखते थे। हमारे युवकोंके लिए उनके जीवनकी यह घटना हृदयपर अङ्कित करने योग्य है। आध्यात्मिक और आदर्श-जीवन बनानेसे ही युवक समाज इस भीषण सङ्घर्ष समयमें अपने धर्म-जीवन और संस्कृतिकी रक्षा कर सकता है।

---

## आवश्यक सूचना

सात्विक-जीवनका वार्षिक मूल्य ३) है, विद्यार्थियों, विद्यालयों और पुस्तकालयोंसे २); नमूनेकी कापी के लिये ।) आना आवश्यक है।

ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें, अन्यथा पत्रोत्तरमें विलम्ब और उचित कार्यवाहीमें असुविधा होगी।

# साहित्य-समालोचन

**आहार ही औषध है**—मूल लेखक डाक्टर लक्ष्मीनारायण रतरा H. M. B., अनुवादक—प्रोफेसर भवानीप्रसाद प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्रोपाध्याय गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी, हरद्वार; प्राप्ति स्थान—(१) डा० लक्ष्मीनारायण रतरा H.M.B.; मालिक प्योर बायो डिस्पेन्सरी, डेरा-गाजी खां; (२) दि गुरुकुल बुकडिपो कांगड़ी, पोस्ट गुरुकुल कांगड़ी, जिला सहारनपुर; मूल्य १।) प्रति।

प्रस्तुत पुस्तकमें विद्वान् लेखकने युक्तियों द्वारा वैज्ञानिक प्रणालीपर यह दर्शानेका प्रयत्न किया है कि मनुष्यके अधिकांश रोगोंका कारण अनुचित आहार विहार ही है। ज्यों-ज्यों मनुष्यके रहन-सहन, आचार विचार, भोजन इत्यादिमें कृत्रिमता आती जाती हैं; त्यों-त्यों उसका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य भी क्षीण होता जा रहा है। योग्य लेखकने आहार विज्ञानकी मीमांसा बड़े सुन्दर ढङ्गसे की है। सेव, सन्तरा, आम, खरबूजा आदि फलोंके गुण, उपयोग आदिका विशद वर्णन है। विटामिनकी सविस्तर सुन्दर व्याख्या है। सूर्य स्नान, वाष्प स्नान, साधारण स्नान आदिके द्वारा भी अनेक रोगोंके दूर करनेके उपाय बताये गये हैं। लेखकका यह दावा है कि यदि मनुष्य केवल अपने आहार विहारमें उचित परिवर्त्तन कर दे और प्राकृतिक नियमोंका आश्रय लें तो वह सहज ही में राजयक्ष्मा, अर्धाङ्ग, कैंसर, अन्त्रभ्रंश आदि भयङ्कर रोगोंसे भी छुटकारा पा सकता है।

पुस्तककी छपाई अत्यन्त सुन्दर और सुपाठ्य है।

**तरुण (मासिक)**—प्रकाशक और सम्पादक श्री कृष्णनन्दन प्रसाद, तरुण कार्यालय, इलाहाबाद; वार्षिक मूल्य ३) रु०।

तरुणके फरवरी और मार्चके अङ्क हमारे सामने हैं। भारतीय राष्ट्रके तरुणोंमें जोश, जीवन और जवानीकी तरङ्ग भरनेके लिए तथा उन्हें सुन्दर, स्वस्थ, मानसिक भोजन प्रदान करनेके लिए तरुणका जन्म हुआ है। लेखोंका चुनाव अच्छा है। सम्पादन योग्यता पूर्वक होता है। श्री चन्द्रप्रकाश वर्माकी

राही! पैरोंको चलने दे!
है शूल बहुत, परवाह न कर,
खा शपथ—फूल की चाह न कर;
पथ बीहड़ है, पर आह न कर,
नद में धंस जा, गिरि से टकरा,
दिल के अरमान निकलने दे!

शीर्षक कविता हमें बहुत पसन्द आयी। झलकियां भी बड़ा सफल और सुन्दर प्रयास है। हृदयहारिणी भाषामें बड़े दिलचस्प ढङ्गसे विश्वकी राजनीतिक और सामाजिक समस्याओंको सुलझाया गया है। यदि पत्रमें महा पुरुषोंके जीवन चरित्र ओज-पूर्ण भाषा में दिये जायं, शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ लेख रहें और थोड़ा हास-परिहासका भी मसाला जुटाया जाय तो तरुणकी आभा निखर उठे। हम पत्रकी हार्दिक सफलता चाहते हैं।



## 'मन और उसका निग्रह' पर भारतवर्षके विख्यात पत्र दैनिक आज की

# सम्मति

दैनिक 'आज' अपने २५ मई सन् १९४३ के अङ्क में लिखता है—

छान्दोग्य उपनिषद्में आता है—'मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।' अर्थात् मनुष्यके बन्धन अथवा मोक्षका कारण मन ही है। वस्तुतः बात ऐसी ही है। मनका ही तो सारा खेल है। मानवके उत्थान और पतनका सारा दारमदार मनपर ही है। पर यह मन है क्या, इसका स्वरूप क्या है, इसके गुण-दोष क्या हैं, राग-द्वेष, काम-क्रोध, सुख-दुःख आदिकी वासनायें क्या हैं, मनके सङ्कल्प विकल्प क्या हैं, उसका रहस्य क्या है और उसपर काबू कैसे किया जा सकता है—यह सब हम कुछ नहीं जानते। किन्तु यदि हम मनके हाथमें अपनी, अपने शरीरकी, अपनी इन्द्रियोंकी लगाम न छोड़ देना चाहते हों तो हमारा कर्तव्य है कि मनको समझें और उसे अपने वशमें करें। मनोनिग्रह ही तो योग है। जीवनमें सफलता पानेके लिए, दुःख तथा सङ्कटमें निर्लिप्त रहनेके लिए इस बातकी परम आवश्यकता है कि हम मनको अपने कब्जेमें करें। और आध्यात्मिक क्षेत्रमें तो मनको काबूमें किये बिना कोई काम ही नहीं हो सकता। चञ्चल मन लेकर न तो साधना ही की जा सकती है, न जप तप अथवा भक्ति ही।

हृषीकेशके स्वामी शिवानन्द जीने प्रस्तुत पुस्तक लिखकर जिज्ञासु-जगत्का सच्चा कल्याण किया है। इसमें अनुभवी लेखकने बड़े ही विस्तारसे मनके रहस्य समझाये हैं। मनोनिग्रहके आपने बड़े सुन्दर उपाय बताये हैं—चित्तशुद्धि, इन्द्रिय-संयम, मौन, स्वाध्याय, सात्विक भोजन, धारणा, ध्यान, मनोलय, मनोनाश आदि। विभिन्न शास्त्रोंके मत देकर आपने सिद्ध किया है कि हमारा 'अहं' ही तो मन है, उसकी और कोई हस्ती ही नहीं। 'मन है क्या' इसपर विचार करिये और आप देखेंगे कि मनकी कलाबाजी दूर हो गयी है। पलभरमें दुनियाके एक कोनेसे दूसरे कोनेमें पहुंचनेवाला मन निरन्तर अभ्यास और वैराग्यसे ही वशमें किया जा सकता है। "जब मन शून्य होता है तो कुविचार प्रवेश करने की चेष्टा करते हैं। मनको पूर्णरूपसे लगाये रखेंगे तो बुरे विचार मनमें नहीं आयेंगे।....मनको प्रतिक्षण देखते रहें, उसको कुछ न कुछ काम देते रहें—जैसे सीना, बगीचा लगाना, बर्तन मांजना, झाड़ू लगाना, पानी भरना, पढ़ना, ध्यान करना, जप करना, प्रार्थना करना, बड़ोंकी या रोगियोंकी सेवा आदि। फालतू गपशपसे बचें।" इन्द्रियोंपर विजय-प्राप्ति, मनको वशमें रखनेमें बड़ी सहायक सिद्ध होती है। उसके लिए स्वामीजीने यह उपाय बताया है—"मिठाईके बाजारमें खूब पैसा लेकर जाओ। १५ मिनट इधर-उधर टहलते रहो। भांति-भांतिकी मिठाइयोंको ललचायी हुई निगाहसे देखो। कोई चीज मत खरीदो। उस दिन घरपर यदि उत्तम भोजन भी मिले तो उसे मत ग्रहण करो। सादा भोजन करो। ऐसा करनेसे जिह्वाको वशमें कर लोगे। अन्ततः मनको भी वशमें कर लोगे।"

**पुस्तक सुन्दर और प्रत्येक साधकके कामकी है।**

प्रकाशक - **जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लि०**

८३, पुराना चीना बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता। शाखा—"प्रिंटिंग हाउस" हौज़कटरा, बनारस।

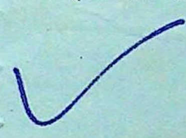
Printed & Published by Raliaram Gupta at General Printing Works Ltd. Benares Branch,



सत्वं सुखे सञ्जयति

# सात्विक जीवन

मध्यप्रान्त और बरार, देहली, बिहार, सिन्ध तथा पञ्जाब प्रान्तीय शिक्षा-विभागों के द्वारा स्कूलों, कालेजों, लाईब्रेरियों और होस्टलों के लिए स्वीकृत।





सम्पादक—शालिग्राम गुप्त, उप सम्पादक—वेदराज वेदालङ्कार 'लहरी' मूल्य चार आने

वर्ष ३, अङ्क १०

B.C. PONNAPPA

# विषय-सूची


| विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १—जीवन-ज्योति ( कविता ) | .... श्री हरगोविन्द गुप्त | १ |
| २—सम्पादककी कलम से | .... .... .... | २ |
| ३—अमृत-वाणी | .... .... .... | ४ |
| ४—वेदान्त के हिमालय पर | .... श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती | ५ |
| ५—उद्बोधन ( कविता ) | .... श्री सूर्यकुमार वेदालङ्कार | ८ |
| ६—इस चुनौतीको स्वीकार करो | .... श्री राम शर्मा | ९ |
| ७—अधीर जीवन ( कविता ) | .... श्री रामनाथ "प्रणयी" | ११ |
| ८—क्या खायें कैसे रहें | .... श्री पुरुषोत्तमदेव आयुर्वेदालङ्कार | १२ |
| ९—सत्यव्रत ( नाटक ) | .... श्री नारायणप्रसादजी साधक | १५ |
| १०—प्रगति ( कविता ) | .... श्री श्रीकुमार शर्मा विद्यालङ्कार | १९ |
| ११—आगामी कालकी शाला | .... श्री आचार्य हरभाई त्रिवेदी | २० |
| १२—फैशन ( प्रहसन ) | .... श्री शौकत थानवी | २३ |
| १३—मिलन ( गद्यगीत ) | .... श्री महावीरप्रसाद विद्यार्थी | २५ |
| १४—महापुरुषों की जीवन के घटनाएं | .... .... .... | २६ |
| १५—मेरी डायरी के चन्द पन्ने | .... श्री पं० वेदराज वेदालङ्कार | २९ |
| १६—मनुष्य का लक्ष्य | .... श्री तरङ्गित हृदय | ३२ |
| १७—दो भावपूर्ण कहानियां | .... श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर | ३३ |
| १८—निद्रा-विज्ञान | .... श्री कविविनोद ठाकुरदत्त शर्मा | ३५ |
| १९—मस्ती की तरङ्गमें ( प्रहसन ) | .... श्री लहरी | ३७ |
| २०—नेकीका बदला | .... श्री सुदर्शन | ४१ |
| २१—साहित्य-समालोचन | .... .... .... | ४३ |




## आवश्यक सूचना

सात्विक-जीवनका वार्षिक मूल्य ३) है, विद्यार्थियों, विद्यालयों और पुस्तकालयोंसे २) ; नमूनेकी कापी के लिये ।) आना आवश्यक है।

प्रान्त और बरार, देहली, बिहार, सिन्ध तथा [illegible] शिक्षाविभागोंके द्वारा स्कूलों, कालेजों, लाईब्रेरियों और होस्टलोंके लिए स्वीकृत।



संरक्षक — श्री मनसुखराय मोर




सत्वं सुखे सञ्जयति

# सात्त्विक जीवन

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

वर्ष ३ } काशी—सौर आषाढ़, २००० Benares— July 1943. { अङ्क १०

## जीवन-ज्योति

रचयिता—श्री हरगोविन्द गुप्त, चिरगाँव

जीवन-ज्योति जगाओगे कब?
ईर्ष्या, दम्भ, द्रोहमें ही क्या पाया हुआ गँवाओगे सब।

पूज्य पूर्वजों की शुभ शिक्षा,
स्वाभिमान सम्मान तितिक्षा;
जन्म-जात स्वातन्त्र्य-स्वत्व को—
खोकर हाय न मांगो भिक्षा।

पत्थर पटक आप पैरों पर, रो रोकर पछताओगे सब।
जीवन-ज्योति जगाओगे कब?

ज्ञान बुद्धि-बल, पौरुष क्षमता,
पुण्यादर्श विश्वकी समता;
उठो, उसे ले आज मिटानी—
हमको तुमको विश्व-विषमता।

सोये रहे यदि नींदमें तो, फिर क्या कर दिखलाओगे कब
जीवन-ज्योति जगाओगे कब।

# सम्पादक की कलम से

## स्वामी रामतीर्थ का एक शेर—

प्रसिद्ध वेदान्त व्याख्याता, आनन्द और प्रेमके मूर्तिमान् अवतार स्वामी रामतीर्थका एक बहुत ही मशहूर शेर है।

भागती फिरती थी दुनियां जब तलब करते थे हम
अब जो नफ़रत हो गई, वह बेक़रार आने को है।

अर्थात् संसारलोलुप मनुष्यसे स्वयं संसार ही नफ़रत करता है और जो उससे विरक्त हो जाता है, संसार उसके चरण चूमनेके लिये सदैव उपस्थित रहता है। जो मनुष्य रात-दिन सांसारिक पदार्थोंके संग्रहके लिये दौड़ धूप किया करते हैं; अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य नाना प्रकारकी आमोद प्रमोदकी सामग्रियोंका संचय कर एक क्षणभंगुर, अस्थायी म्यूज़ियम ( Museum ) बनाना ही समझते हैं; संसार ऐसे लोगोंसे कोसों दूर भागता है परन्तु इसके विपरीत जो महापुरुष सच्चे अर्थोंमें विरक्त हो जाते हैं; दुनियांके भौतिक सुख साधनोंके मायाजालमें अपनी पवित्र, महान और शानदार आत्माको आबद्ध नहीं होने देते, दुनियां उनके पीछे भागी २ फिरती हैं; ऐसे महापुरुषोंके चरणरज को मस्तक पर चढ़ानेके लिए वह सदा लालायित रहती है।

## त्यागकी महिमा और गम्भीर आशय,

ऊपर जो स्वामी रामतीर्थका शेर दिया गया है, वह त्यागकी महिमाको, उसकी आश्चर्यमें डालनेवाली फ़िलासफ़ीको हमारे सामने रखता है। प्रिय पाठक-वृन्द ! यदि आप संसारके समस्त धर्मों हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म; पारसी धर्म, ईसाईयत आदिका सूक्ष्म और दार्शनिक दृष्टिसे गम्भीर अध्ययन करें तो इन सब धर्मोंका संक्षिप्त सार, मक्खन एक शब्दमें त्याग है। हमारे वैदिक ग्रन्थोंमें त्यागकी महिमा मुक्तकण्ठसे गाई गई है। यजुर्वेदका संपूर्ण चालीसवां अध्याय त्यागकी महिमापर कैसा सुन्दर प्रकाश डालता है। त्यागका वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके सर्वतो-मुखी विकासके लिए क्या महत्त्व है ? वास्तविक और सच्चा त्याग किसे कहते हैं ? त्यागका अभिप्राय कर्मों के त्यागसे नहीं अपितु फलकी कामनाके त्यागसे है। ऐकान्तिक त्याग समाजके लिए सर्वथा हानिकर और अकर्मण्यताको प्रश्रय देनेवाला है। सच्चे और पार-मार्थिक त्यागीके लिए कर्मयोगी होना नितान्त आवश्यक है। इन सब बातोंका गम्भीर विवेचन यजुर्वेदके चालीसवें अध्यायमें किया गया है। उस चालीसवें सूक्तमें त्यागकी फ़िलासफ़ीका बड़े सुन्दर और सुविस्तृत रूपमें दर्शन कराया गया है।

उसका प्रथम मन्त्र है—

**"ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिद् जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्—"**

वेद भगवान् कहते हैं ऐ मनुष्य ! सम्पूर्ण सृष्टिका कण २ भगवान्से ओतप्रोत है; संसारके प्रत्येक पदार्थमें वह भगवान् छिपा बैठा है; इसलिए तूं त्याग पूर्वक भोग कर; लोभ के लुभावने जाल से अपनेको मुक्त कर, अरे ! यह क्षणभंगुर ऐश्वर्य किसका है !!

जो पाश्चात्य विद्वान् हिन्दू धर्मपर यह दोषारोपण करते हैं कि उनका त्यागका पाठ मनुष्यको संसारसे विरक्ति सिखाता है, उसे सर्वथा अकर्मण्य, आलसी और निकम्मा बनाता है; वे सर्वथा ग़लती करते हैं। वैदिक मन्त्र स्पष्टरूपसे यह घोषणा कर रहे हैं कि **"त्याग पूर्वक भोग करो"** निश्चित मर्यादा और विशेष सीमाके अन्दर रहकर, सांसारिक ऐश्वर्यका उपभोग करते हुए मनुष्यको अपने हृदयमें त्यागकी भावना भी पल्लवित करनी चाहिए।

## त्यागकी आधारशिला—वैराग्य

हृदय के भावकी जिस प्रेरणासे मनुष्य सुखके भौतिक साधनोंसे मुंह फेर लेता है, उसे वैराग्य कहते हैं। जब मनुष्य ज्ञानके विकासकी विशिष्ट अवस्थापर पहुंचता है तब उसे पता लगता है कि भौतिक आमोद-प्रमोदकी सामग्रियोंसे वास्तविक और स्थायी सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। भौतिक साधनोंसे प्राप्त होनेवाली आत्म-तुष्टि क्षणिक है; इनसे एकरस, अखण्ड आनन्द और शान्तिकी धारा प्रवाहित कदापि नहीं हो सकती। भौतिक साधनोंसे प्राप्त होनेवाला आनन्द उन साधनोंके दूर होनेपर विलीन हो जाता है, तब उसके हृदयमें वैराग्यका उदय होता है। सच्चा और स्थायी वैराग्य विचारमूलक तथा अनुभवके आधारपर होता है। अनुभव और विचारके अभावमें जो वैराग्य होता है वह बिलकुल क्षणिक होता है, उसे श्मशान वैराग्यके नामसे पुकारते हैं। त्याग (कर्मफल का त्याग, कर्मोंका त्याग नहीं) के लिए हृदयमें वैराग्यकी भावना (सांसारिक पदार्थोंमें सर्वथा अनासक्तिकी भावना) का उदित होना नितान्त आवश्यक है। वैराग्य मानसिक दृष्टिकोण है और त्याग उससे प्रेरित हुआ बाह्य व्यवहार है।

## विचार-शून्य वैराग्य—

विचार-शून्य वैराग्यकी प्रधानतासे आज हिन्दू जातिको जो दुष्परिणाम भोगने पड़ रहे हैं, वे हमारे सामने प्रत्यक्ष है। बिना आत्मानुभव और ज्ञानके अपनेको वैरागी घोषित करनेवाले भारतवर्षके अधिकांश साधु हमारे देशपर कलंकका टीका हैं। विचार-शून्य मिथ्या वैराग्यसे क्रियाशीलताका बिलकुल लोप हो जाता है, मनुष्यमें तमोगुणकी वृद्धि होती है। यही वजह है कि आज हिन्दुस्तानके अधिकांश साधु, जिन्हें अपने ज्ञानकी धवल ज्योति द्वारा हमारा पथ-प्रदर्शन करना चाहिए था, अपने निर्मल चरित्र द्वारा अपने लिए हमारे हृदयोंमें श्रद्धाके भावांकुर समुत्पन्न करने चाहिए थे, आज हिन्दू जातिकी अन्ध श्रद्धाका नाजायज़ फ़ायदा उठाकर मोहनिद्रामें लीन हैं। इसी कारण कई लोगोंकी ऐसी धारणा है कि हिन्दू धर्मके त्याग और वैराग्य भावने लोगोको अकर्मण्य, आलसी और निकम्मा बनाकर, जीवन-संग्रामसे मुंह मोड़ना सिखलाया है. इसलिए वर्त्तमान समयमें उन्हें त्याग और वैराग्यकी भावनाको बढ़ानेके स्थानपर संग्रहशील स्वभावकी आवश्यकता है।

## सच्चा त्यागी कर्मशील होता है—

प्रिय पाठक वृन्द! मैं पूर्व ही आपकी सेवामें निवेदन कर चुका हूं कि सच्चा त्यागी कर्मशील होता है। निजी स्वार्थसे सच्चा त्यागी किसी वस्तुका संग्रह नहीं करता अपितु परमार्थकी सद्भावनासे प्रेरित होकर लोकोपकारके लिए अपने जीवनको इस कर्मभूमिमें तपाता रहता है। हिन्दू धर्मके इतिहासमें आपको ऐसे अनेकों कर्मशील त्यागिओंके उदाहरण मिल सकते हैं, जिन्होंने परमार्थके लिए अपना सर्वस्व त्याग करनेके उपरान्त भी लोक-सेवाकी पवित्र भावना से निरन्तर कर्ममें अपना जीवन यापन किया है

और आवश्यकता पड़नेपर अपने जीवनका उत्सर्ग भी कर दिया है। वर्त्तमान कालमें हमारे सामने भगवान्की सर्वश्रेष्ठ विभूति महात्मा गांधीका ज्वलन्त उदाहरण है। इस अर्धनग्न फ़कीरका त्याग इतना बढ़ा चढ़ा है कि संसारमें उसका कोई सानी नहीं। परन्तु इस अनुपम त्याग भावनाके साथ २ महात्माजीकी कर्मशीलता असाधारण कोटिकी है। उनके जीवनका एक-एक क्षण स्वदेश चिन्तनमें व्यतीत होता है और इसीके साथ २ संग्रहशीलता भी इस हद दरजे की है कि वे दरिद्रनारायणकी सेवाके लिए दूसरोंसे पांचेका एक २ पैसा भी मांगनेसे नहीं हिचकिचाते।

## हमारी आजकी आवश्यकता—

स्वामी विवेकानन्दने एक बार अमेरिकन लोगोंके सामने कहा था—"मेरे अमेरिकन मित्रो! कदाचित् तुम यह कहो कि स्वामीजी! आप सात समुद्र पारकर वेदान्तका उपदेश हमें देने क्यों आए हैं, क्या भारतवर्ष को इस सुनहले ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है? इस प्रश्नका उत्तर में यही दे सकता हूं कि वेदान्त धर्मका सच्चा अधिकारी और पात्र वही हो सकता है जो सामर्थ्यवान हो, ऐश्वर्यसम्पन्न हो, लक्ष्मी जिसके चरण चूमती हो। तुम्हारा अमेरिकन जन-समाज अटूट सांसारिक वैभवका स्वामी है, तुम्हारी संग्रहशीलता बढ़ी चढ़ी है। इसलिए त्यागमूलक वेदान्तकी आवश्यकता भी तुम्हें ही है और तुम्ही इस वेदान्त धर्मके अधिकारी हो। मेरा हिन्दुस्तान भाग्यके फेरसे और अपनी अकर्मण्यता, पौरुषहीनता के हेतुसे आज दाने-दाने को मोहताज हो रहा है। उसे रोटियों के लाले हैं। ऐसे देशको मैं त्यागधर्मकी क्या शिक्षा दूं, अपने देशवासियोंसे तो मैं यही कहूंगा कि प्यारे, कमाओ, खाओ और धन संग्रह करो।"

प्रिय-पाठक-वृन्द! हमारी आजकी सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि हम स्वदेश हितकी भावनासे प्रेरित होकर सांसारिक पदार्थोंका संग्रह करें और उसे स्वदेशके परमार्थ यज्ञमें लगावें।




गर यारकी मर्ज़ी हुई सिर जोड़ के बैठे
घर बार छुड़ाया तो वहीं छोड़ के बैठे
सारा जिधर उसने वहीं मुंह मोड़के बैठे
गुदड़ी जो सिलाई तो उसे ओढ़ के बैठे
और शाल ओढ़ाया तो उसी शालमें खुश हैं
पूरे हैं वही मर्द जो हर हालमें खुश हैं।

—स्वामी रामतीर्थ

\+ + +

अपनी आत्मामें अनेकों खिड़कियां बनाओ ताकि विश्वका समस्त प्रकाश इसे जगमगा सके। असंख्य स्रोतोंसे निकलनेवाले उज्वल, तीक्ष्ण प्रकाशको एक संकुचित शीशा ग्रहण नहीं कर सकता। अन्धविश्वास के बन्धनोंको तोड़ डालो। स्वयं सत्यके समान विशाल और आकाशके समान उच्च प्रकाशको अपने हृदयमें प्रविष्ट होने दो। ध्यान देकर खिलते हुए फूलोंके, बहते हुए झरनोंके, लहलहाते हुए शस्य श्यामल खेतोंके और टिमटिमाते हुए तारोंके मधुर दिव्य संगीतको सुनो। प्रकृतिकी आवाज़को ध्यान देकर सुनो। तुम्हारा हृदय स्वयं सत्यं, शिवं सुन्दर की ओर उन्मुख होगा जिस तरह पौधा प्रकाशके लिए भगवान् सूर्यकी ओर मुख कर लेता है। तुम यह अनुभव करोगे कि हज़ारों अदृश्य शक्तियां तुम्हारी सहायताके लिए स्वयं हाथ बढ़ाए खड़ी हैं।

— श्री राल्फ वाल्डो ट्राईन

# वेदान्त के हिमालय पर

ले०—श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती, आनन्दकुटीर हृषीकेश

श्री स्वामीजीके परिचय रूपमें कुछ कहना सूर्यको दीपक दिखानेके तुल्य है। आध्यात्मिक विषयोंमें थोड़ी बहुत भी दिलचस्पी रखनेवाली प्रत्येक व्यक्ति स्वामीजीके नामसे परिचित है। प्रस्तुत लेखमें श्रीस्वामीजीने वेदान्तका सचा और वास्तविक रूप हमारे सामने रक्खा है। अधिकांश व्यक्तियोंकी यह धारणा कि वेदान्त अकर्मण्यता और आलस्य तथा क्रियाहीनताका पाठ पढ़ाता है, सर्वथा भ्रान्त और निर्मूल है। सच्चा वेदान्त कर्मत्यागका नहीं अपितु कर्मफलका त्याग सिखाता है। सच्चा वेदान्ती कोरे सिद्धान्त निर्माण तथा लैक्चरबाजीसे दूर क्रियाशील जीवन व्यतीत करता है। विश्ववन्द्य गांधीजीके उदाहरण द्वारा स्वामीजीने वेदान्तके वास्तविक अभिप्रायको हमारे सामने रक्खा है। आशा है, वेदान्तके शुभ्र, निर्मल प्रकाशसे पाठकोंकी प्रवृत्तियां परिमार्जित, जीवन क्रियाशील और भावनाएं उदात्त होंगी। —संपादक।

ब्रह्म अनन्त है। ब्रह्म ही केवल वास्तविक सत्ता हैं। ब्रह्म स्वतन्त्र और स्वयम्भू है। सीमित और सान्त वस्तु कभी भी स्वयंसत्तात्मक, वास्तविक और स्वाश्रित नहीं हो सकती; उसे अपनी सत्ताके लिए किसी अन्य सत्ता ब्रह्मपर आश्रित रहना पड़ता है। लोग साधारणतः यह प्रश्न उठाते हैं कि यदि ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, तो फिर सान्त कैसे और क्यों प्रकट होता है। तुम्हारी कल्पना-शक्तिकी उड़ान यहां तक नहीं पहुंच सकती कि किस प्रकार प्रतीतियां ब्रह्मसे समुद्भूत होती और उसमें लय हो जाती हैं। तुम 'अहं' के ज्ञानका अवगाहन करनेके पश्चात् ही इस सत्यतक पहुंच सकते हो। समय, स्थान और कार्य-कारणके नियमपर आश्रित रहनेवाली सान्त बुद्धि; समय-स्थान और कार्य-कारणके नियमोंसे सर्वथा मुक्त रहनेवाली सत्ता तक नहीं पहुंच सकती।

संसार की किसी भी सान्त वस्तुमें आनन्द नहीं है। जहाँ कोई किसीको देखता, सुनता या समझता है वह सान्त है। सान्तका विनाश निश्चित है। सान्त वस्तु समय, स्थान तथा कार्य-कारणके नियमोंसे बन्धी हुई है। वह मायाकी उत्पत्ति है, अवास्तविक है, केवल प्रतीति-मात्र हैं; उसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है; उसे अपनी सत्ताके लिये अनन्तपर आश्रित रहना पड़ता है; वह कभी अनन्तसे पृथक् नहीं रह सकती।

कुछ अज्ञानी पुरुषोंका यह दावा है कि वेदान्त केवल अनैतिकता, घृणा और निराशावादका ही प्रचार करता है। यह हृदयको संतप्त करनेवाली गलती है, मिथ्या भ्रम है। वेदान्त न तो अनैतिकताके पथपर ले जाता है और नांही नैतिकताके प्रति उदासीन-वृत्ति धारण करना सिखाता है। अनैतिक प्राणीके लिए ब्रह्म-साक्षात्कार असम्भव है। मुक्ति पदकी आकाङ्क्षा करनेवाला मनुष्य ही, जिसमें नैतिकताका विकास अपनी पराकाष्ठातक पहुंच चुका है, वेदान्तका विद्यार्थी हो सकता है? तुम यह कैसे आशा कर सकते हो कि एक मुमुक्षु पुरुष जिसमें विवेक, प्रसाद, सहिष्णुता, श्रद्धा, विश्वास, एकाग्रता और मुक्तिकी दृढ़ अभिलाषा उदित हो चुकी है, किस प्रकार अनैतिक जीवन व्यतीत कर सकता है? यह बिलकुल गलत है। वेदान्त तुम्हारे मोह, स्वार्थ-संसक्त स्नेह तथा शरीरके प्रति मिथ्या अनुरागका समूलोन्मूलन करना चाहता हैं। वेदान्त तुममें उदार, निःस्वार्थ, पवित्र, दिव्य प्रेमकी मन्दाकिनी बहाना चाहता है। वेदान्त

निराशावादके स्थानपर आशावादकी सुनहली उषाके दर्शन कराना सिखाता है। वेदान्त सिखाता है कि "इस प्रतीत होनेवाले मिथ्या, क्षणिक आनन्दके पाशसे मुक्त हो जाओ ; तुम्हें दिव्य, शाश्वत आनन्दकी अनुभूति होगी ; इस तुच्छ "अहं" को जड़से उखाड़ कर फेंक दो. तुम अनन्तके साथ एक हो जाओगे ; तुम अमर हो जाओगे ; इस मिथ्या संसारको छोड़ दो ; तुम भगवान्के राज्यमें या महती शान्तिके प्रदेशमें प्रवेश करोगे" क्या यह निराशावाद है ? निश्चयसे नहीं। यह तो चमत्कृतिपूर्ण आशावाद है।

वेदान्त शरीर, पत्नी, शिशु और वैभव-विलासके प्रति तुम्हारे मोहको नष्ट करना चाहता है। वेदान्त तुम्हें समस्त सांसारिक इच्छाओं और सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्तिके लिए निरन्तर बनी रहनेवाली अभिलाषाओंसे छुटकारा दिलाना चाहता है। वेदान्त शक्ति, यश और नामके प्रति तुम्हारे मोहको विनष्ट करना चाहता है। वेदान्त तुम्हारे समस्त सांसारिक बन्धनोंको तोड़ना चाहता है। वेदान्त विवेककी कृपाण द्वारा सांसारिक आसक्तियोंको छिन्न-भिन्न करना चाहता है।

इच्छाओंसे ऊपर उठो। अपनी मानसिक, भिखारियों जैसी दैन्य वृत्तिका परित्याग करो। अपनी आत्माकी सत्ता और अलौकिकताको हृदयसे अनुभव करो। आत्मामें इच्छाओं और वासनाओंका नितान्त अभाव है। यह सदा शुद्ध, पवित्र, निर्मल है। यह परिपूर्ण है। इस प्रकाशमान आत्माके साथ अपनी एकता अनुभव करो। तुम्हारी समस्त इच्छाएं स्वयमेव नष्ट हो जायंगी। तुम्हारी समस्त इच्छाएं स्वयमेव पूर्ण हो जाएंगी। इच्छाओंकी पूर्तिका यह गुप्त रहस्य है। प्रकृति तुम्हारी आज्ञाकारिणी दासी बन जायगी ; सृष्टिके समस्त तत्वों पर तुम्हारा आधिपत्य हो जाएगा। आठों सिद्धियां और ऋद्धियां तुम्हारे चरणोंपर लोटेंगी। यही वेदान्तकी उच्च, शानदार और महान् शिक्षा है।

वेदान्त या आत्माका ज्ञान केवल संन्यासियों या हिमालयकी कन्दराओं और वनोंमें विचरनेवाले योगिओंकी ही एकमात्र सम्पत्ति नहीं है। उपनिषदों के अध्ययनसे तुम्हें पता लगेगा कि बहुतसे क्षत्रिय अधीश्वर अपने दैनिक-कृत्यों में व्यस्त रहते हुए भी ब्रह्म-ज्ञानी थे। वे ब्राह्मण पुरोहितके भी शिक्षक थे। पांचाल देशके राजा प्रवहण जावालिने गौतम और उसके पुत्र श्वेतकेतुको पंचाग्नि विद्याकी शिक्षा दी थी। श्री सुखदेवजीको ब्रह्मसाक्षात्कारके लिए राजा जनकका आश्रय ग्रहण करना पड़ा था।

तुम्हें क्रियात्मिक वेदान्ती होना चाहिए। केवल सिद्धान्त निर्माण और लेक्चरबाजी बौद्धिक व्यायाम है। इससे वास्तविक लाभ होनेकी तिल-मात्र भी आशा नहीं। यदि तुम वेदान्तको क्रियात्मिकताका बाना नहीं पहिनाते तो केवल सिद्धान्तोंकी तोतारटन्त का कोई मूल्य नहीं। तुम्हें अपने दैनिक व्यवहारोंमें वेदान्तका क्रियात्मिक अभ्यास करना चाहिये। वेदान्त एकताका पाठ सिखाता है। तुम्हें अपने प्रेमका प्रकाश सृष्टिके कण-कण तक फैलाना चाहिए। वेदान्तका सत्य और वास्तविक स्वरूप तुम्हारे अणु-अणुमें व्याप्त हो जाना चाहिये। यदि तुम रंगमंचपर आकर जनताको मन्त्रमुग्ध करनेवाला भाषण देते हो और उच्च स्वरसे घोषणा करते हो कि 'मैं सृष्टिके प्रत्येक पदार्थमें व्याप्त हो रहा हूं। मेरेसे अतिरिक्त कोई भिन्न सत्ता नहीं' परन्तु अगले ही क्षण भाषण-समाप्ति पर यदि तुम स्वार्थ और पृथक्ताका भाव दर्शाते हो तो तुम्हारा जनतापर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। लोग तुम्हें शुष्क वेदान्तीके नामसे पुकारेंगे। देखो, राजा जनक किस प्रकारका जीवन व्यतीत करते थे। वे अपने राज्यका सुचारुरूपेण शासन-संचालन करते हुए भी क्रिया-

त्मिक वेदान्तीका जीवन व्यतीत करते थे। राजा जनकसे अधिक कार्यव्यस्त आदमीकी कल्पना तुम नहीं कर सकते। राजा जनक करोड़ों मनुष्यों पर शासन करते हुए भी गम्भीर विचारक, उच्च दार्शनिक और क्रियात्मिक वेदान्ती थे। उन्हें अपने शरीर, सम्पत्ति और परिवारके प्रति आसक्ति नहीं थी। वे समदर्शी और शान्त थे। विलासिता और वैभवके मध्यमें रहते हुए भी वे कार्य-व्यग्र थे। वे बाह्य घटनाओंसे प्रभावित नहीं होते थे। उनमें सदा शान्तिकी दिव्य धारा बहती थी। यही कारण है कि वे आज भी हमारे हृदयोंमें विराजमान हैं।

यदि एक योगी या संन्यासी कन्दराओं और वनोंमें विचरता हुआ तो अपनी मानसिक शान्तिको कायम रख सकता है; परन्तु नगरके विक्षुब्ध वातावरणमें उसका मानसिक प्रसाद विलीन हो जाता है; तो वह यथार्थ योगी नहीं है; वह क्रियात्मिक वेदान्ती नहीं है। उसमें आन्तरिक आत्मिक-शक्तिका अभी अभाव है। वह अभी मायाके साम्राज्यमें विचर रहा है। एक सच्चा योगी प्रत्येक अवस्थामें अपनी चित्त-वृत्तिको शान्त रख सकता है। यही गीताकी मुख्य शिक्षा है।

इस वसुधापर महात्मा गांधीसे बढ़कर कोई सच्चा क्रियात्मिक वेदान्ती नहीं हैं। जीवनके प्रत्येक क्षणमें वे वेदान्तको क्रियात्मिकताका बाना पहिना रहे हैं। वे विश्वकी भलाईके लिए ही प्राण-धारण कर रहें हैं। उनके आकाशके समान विशाल, हिमालयके समान उन्नत और समुद्रके समान गम्भीर हृदयमें समस्त विश्व व्याप्त है। आत्म-बलिदान, सेवा, सत्य, अहिंसा, एकता और पवित्रता ही उनका धर्म है। परन्तु विश्व-की यह महान् विभूति कभी नहीं विज्ञापन करती कि "मैं ब्रह्म हूँ—अहं ब्रह्मास्मि।"

पूर्व दिशामें उगता हुआ सूर्य, खिलते हुए फूल, गाते हुए पंछी, बहती हुई नदियां, फल धारण करते हुए वृक्ष—ये सब विश्वको क्रियात्मिक वेदान्तकी शिक्षा दे रहे हैं। ये प्राणिमात्रकी निस्वार्थ सेवाके लिये सर्वदा समुद्यत हैं। सूर्य भगवान् दीनकी कुटिया पर भी और सम्पत्तिशाली सम्राट्के प्रासादपर भी अपनी अमृतमयी किरणोंको एक जैसा बिखेरते हैं; फूल बिना किसी लाभकी आशाके अपनी सुगन्धको सर्वत्र फैलाते हैं। शीतल, निर्मल, जीवन को ताज़गी देने-वाला भगवती भागीरथीका जल सबके उपयोगके लिए है। फलधारी वृक्ष अपने बागबानका भी उसी प्रकार मीठे, स्वादिष्ट फलोंसे स्वागत करते हैं जिस प्रकार कि अपनेको कुल्हाड़ेसे काटनेवालेका।

तुम्हारे लिए न जन्म है और न मृत्यु। तुम अमर अविनाशी आत्मा हो। माया तुम्हें धोखा देती है और तुम इस मरणधर्मा शरीरके साथ अपनी एकता अनु-भव करने लगते हो। मायाके बन्धनसे छुटकारा पाओ, अनन्त शान्तिके प्रदेशमें ऊँचे उड़ो और अमरत्व प्राप्त करो।

अपने अन्दर भगवान्को न देखकर बाहिर ढूँढ़ना हाथमें आए हुए उज्वल मोतियोंको छोड़कर शंखोंकी तलाशमें जानेके सदृश है। यदि तुम भगवान्को अपने हृदयमें नहीं पा सकते, तो तुम उसे कहीं नहीं पा सकते। हृदयकी गुप्त-गुहा में भगवान् विराजमान है। भगवान् सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। अपने हृदय-कमल को पवित्रतम बनाओ। इस सत्यको अनुभव करो और दिव्य आनन्दका उपभोग करो।

यदि तुम आत्मातक पहुंचना चाहते हो तो अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशों-के पाँच परदोंको फाड़ डालो।

# उद्बोधन

रचयिता—श्री पं० सूर्यकुमारजी वेदालङ्कार, आचार्य गुरुकुल आर्योला, बरेली

जीवन-ज्योति उदय होती है।
अरुण बाल रवि की किरणों में,
गहन निशा निज तम खोती है।

( १ )

उषा सजीली पथपर आकर
करती स्नेहमयी अगवानी,
नाच रही दायें बायें हैं
सपनोंकी परियां दीवानी।

( २ )

मधु ऋतु की मदभरी कोकिला
मृदुस्वर में मंगल गाती है,
अलि अलिनी रंगीन तितिलियां
पुष्पराग रज बिखराती हैं।

( ३ )

नाच रहे लय ताल सहित
मद छिरक छिरक ये शिखी मयूरी,
सरितट पर सारसकी जोड़ी
मिलते मग्न चकोर चकोरी।

( ४ )

उठो पथिक आंखें मल जागो
जागृतिकी ले लो अंगड़ाई
मलय पवन जीवन स्वर लाई
शुभ प्रकाश पथ दिया दिखाई।

( ५ )

प्रिया सफलताकी नूपुर ध्वनि
देती है पगचाप सुनाई,
उठो खड़े हो हाथ बढ़ा कर
सखियों सहित बुलाने आई।

( ६ )

उठो देर मत करो सजग हो
तुमको बहुत दूर जाना है,
औ, पीछे आनेवालों को
यह प्रकाश पथ दिखलाना है।

( ७ )

"अन्तिम विदा, बीतने वाले
सुख दुख के क्षण विदा चिरविदा,
तुमसे ही निर्मित जीवन यह
मानूंगा आभार मैं सदा—

( ८ )

साथ रहेंगे याद दिलानेवाले
वे क्षण-क्षण के अनुभव
उनसे ही खोजूंगा आगे बढ़नेके
मंजुल पथ नव नव।"

( ९ )

यह कह ले लो विदा पथिक अब
बढ़ना होगा आगे आगे,
आगे बढ़ो, नयनके सम्मुख
नये नये नित सपने जागें।

( १० )

अमृत ज्योति किरणोंको बरसा
तुमको सृष्टि नई करनी है,
अमृत पुत्र तुम मां धरती की
दुःख ज्वाला पीड़ा हरनी है।

# इस चुनौती को स्वीकार करो !

लेखक - श्री श्रीराम शर्मा आचार्य, सम्पादक 'अखण्ड ज्योति', मथुरा

जीवन एक संग्राम है। जो आदमी सीना तान कर आफतोंका मुकाबिला कर सकता है, आफतोंकी घनघोर घटायें बिजलीकी तरह मुसकरा सकता है, जो टूट जाना पसन्द करता है, परन्तु झुकना नहीं, इस जीवन संग्राममें उसी वीरके माथे विजयका सेहरा बधता है। अन्याय, अत्याचार और विषादकी काली घटाओंको देखकर हमें हतोत्साह नहीं होना चाहिए, अपितु सूरज की तरह खिलखिलाना चाहिए, जिससे ये घटायें छिन्न-भिन्न हो जायें। प्रत्येक अशुभ कही जाने वाली घटनाका वैज्ञानिक विश्लेषण कर उससे आत्मबल और साहसकी शिक्षा ग्रहण कीजिये, यही इस लेखका सार है।

—सम्पादक।

चलो, उठो, खड़े होकर कमर कस लो, जिरह बख्तर पहनो और अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित हो जाओ, रणक्षेत्रसे एक आह्वान हुआ है. सदियोंसे सोया हुआ मरघट आज प्रज्वलित होनेके लिए विलख रहा है, जवानी, वीरता, पौरुष और और शौर्यको चुनौती देती हुई युद्धकी देवी पुकार रही है कि आओ, मेरे लालो ! अपना जौहर दिखाओ, जिससे मैं अपनी कोखको सफल मान सकूं।

जीवन निस्सन्देह एक संग्राम है, वीर पुरुषोंको यह एक चुनौती है कि उठें और अपना गौरव सिद्ध करें। प्राचीन कालमें एक रिवाज़ था कि कोई महत्त्वपूर्ण कार्य आगे आता था तो उसे पूरा करनेवालेको तलाश करनेके लिए राज दरबारमें पानका बीड़ा रखा जाता था कि जो इस कामको पूरा करनेकी हिम्मत रखे, वह इस पानको उठा कर खा ले। मानव-जीवन ऐसा ही पानका बीड़ा है जिसे ईश्वर अपने सरदारोंके सामने रखता है कि जिनकी इच्छा हो इसे स्वीकार कर लें। जो आत्मायें मानव-जीवनके महान् उद्देश्यों को पूरा करनेके लिए तैयार होती हैं उन्हें यह दे दिया जाता है। स्कूलोंमें पुरस्कार रखे जाते हैं कि जो परीक्षामें प्रथम उत्तीर्ण हो वह इस इनामको पावे। व्यायामशालाओंमें पुरस्कार रखे जाते हैं कि जो इतना कूद जावे उसे यह पुरस्कार मिलेगा। फौजके सिपाहियोंका बल बढ़ानेके लिए सेना नायक नकली लड़ाइयां लड़वाते हैं। सिपाहियोंको नित्यकी परेड और निशानेबाजी कवायद कराना सेना नायक इसलिए जरूरी समझता है कि इससे हमारी सेनाकी क्रियाशीलता और कुशलता बढ़ेगी। अखाड़ोंमें भारी-भारी मुद्‌गर, डम्बल, रस्से और पत्थर इसलिए रखे जाते हैं कि जो इन्हें उठावें वे अपने शरीरको पुष्ट करते हुए निरोगता, सुदृढ़ता प्राप्त करें।

परमात्माने हमें जीवन एक चुनौतीकी तरह, पान के बीड़ेकी तरह प्रदान किया है कि उसके बताये हुए लक्षोंको बेधें। यह लक्ष है 'अन्याय'। दुनियांमें बहुत से अन्याय दिखायी पड़ते हैं, बहुत सी बुराइयां दृष्टिगोचर होती हैं, पाप और पशुताकी भरमार प्रतीत होती है, यह सब हमारे लिए लक्षवेध उपस्थित हैं। इन्हें वेधनेके लिए, इन्हें परास्त करनेके लिए हमें जीवन मिला हुआ है। परमात्माने कभी तृप्त न होने वाली भूख और प्यास हमारे साथ लगा दी है, ताकि

हम कर्त्तव्य धर्मको न भूल जावें। नित्य श्रम करें, पेट पालनके लिए जो समस्यायें उत्पन्न होती हैं, उन्हें सुलझानेके बहाने अपनी शारीरिक और मानसिक योग्यताओंको घिस-घिस कर तेज करें; दुनियांमें पाप, पशुता और अन्यायकी सृष्टि इसलिए की गयी है कि हम लोग इनसे जूझें लड़ें, हटावें और कर्मवीर कहलाते हुए विजयका मुकुट अपने मस्तकपर धारण करें। माता पिता अपने छोटे बालकोंको दौड़ाना सिखाते हैं। एक लक्ष नियुक्त करते हैं और उंगलीके इशारेसे उस स्थानको दिखाते हुए कहते हैं कि जाओ उस स्थानको छूकर हमारे पास वापिस आओ। बालक दौड़ते हैं। जो इधर-उधर देखता है और उस दौड़में अनमना होकर भाग लेता है, वह पीछे रह जाता है और पितासे अपमानित होता है, किन्तु जिस बच्चेने जी तोड़ कर कोशिश की थी, वह लक्षको छूकर जल्दी वापस आ जाता है, पिता उसकी पीठ ठोकता है और प्रोत्साहन देता है।

दुनियांमें फैली हुई बुराइयां एक चुनौती हैं। जो हमें ताल ठोक कर लड़नेके लिए ललकारती है। कायर और निकम्मे व्यक्ति इन बुराइयोंको देख कर डरते, घबराते और कांपते हैं। वे कभी ईश्वरको दोष देते हैं कि उसने यह बुराइयां क्यों बनायीं, कभी दुनियांको दोष देते हैं कि यह ऐसी घृणित है, कभी कुछ सोचते हैं, कभी कुछ कहते हैं। यह बहानेबाजी और कोसना, झुंझलाना हमारी नपुंसकताका चिन्ह है। ईश्वरका इसमें कुछ भी दोष नहीं है, वह जीवोंको तुच्छतासे महत्ताकी ओर ले जाना चाहता है। उसके पुत्रको सच्चा युवराज बनाकर उसे उत्तराधिकार प्रदान करनेकी यह सब तैयारियां हैं। ईश्वर कर्मनिष्ठ है, वह घोर कर्ममें लगा हुआ है, उसकी सृष्टिका एक-एक कण अहर्निशि बिजलीकी तेजीसे घूम रहा है, सम्पूर्ण ग्रह, नक्षत्र, जड़, चैतन्य अपने कार्यमें बिना एक पलकी भूल किये काममें लगे हुए हैं। चैतन्य तत्त्वका सर्वोपरि धर्म है 'कर्त्तव्य'। वह पुत्रोंको भी कर्मनिष्ठ बनाकर अपना सच्चा उत्तराधिकारी बनाना चाहता है, पिताके कामको पुत्र जितना अपनाता जाता है उतना ही वह उसका प्रीतिभाजन और साझीदार बनता जाता है। कर्मयोगी, क्रियाशील, कर्त्तव्य परायण, कार्य कुशल बनकर अपने पिताका पद प्राप्त करना ही जीवन-संग्रामका उद्देश्य है। और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए विरोधी, अरुचिकर, भारी, कष्टकारक एवं अप्रिय परिस्थितियां पैदा की गयी हैं।

आप यह मत समझिये कि शीत ऋतु आपको ठण्ढ में मारनेके लिए, गर्मी झुलसानेके लिए, वर्षा कपड़े भिगोनेके लिए, भूख बेचैन रखनेके लिए, कष्ट दुःखी बनानेके लिए, पाप क्षुब्ध करनेके लिए, अन्याय जी जलानेके लिए किये गये हैं। वास्तवमें इन सबकी सृष्टि इसलिए की गयी है कि इन सबसे टकराते हुए अपने लिए आप मार्ग तलाश करें। बिना घिसे चाकू तेज नहीं हो सकता। विकासको जीवन तथा पतनको मृत्यु कहते हैं। यदि यह सब कठिनाइयां संसारसे उठा ली जावें, तो जीवन नामकी कोई वस्तु ही शेष न रहेगी। सारा विश्व प्रलयकी निद्रामें सो जायगा। इसलिए संसारमें फैले हुए अन्यायोंको देखकर न तो डरिये, न घबराइये, न किसी पर दोषारोपण कीजिये। वरन् ऐसा मानिये कि विश्वकी व्यायामशालामें पापके मुद्गर हमारे उठानेके लिए रखे गये हैं। ताकि हम अपनेको कर्मयोगी बनाते हुए परमात्माके सच्चे उत्तराधिकारी बन सकें।

मनुष्य जीवन आपको चुनौतीके पानकी तरह दिया गया है। उस चुनौतीको भूलिये मत। जीवन एक संग्राम है, समय रणक्षेत्र है, घड़ीकी टिक-टिक करती हुई सेकेण्डकी सूई हमें ललकारती है और चिढ़ाती है। मानो वह सेकेण्ड कहती है कि मूर्ख मैं

चल रही हूं पर तू सो रहा है। साहसके साथ मानव जीवनका बीड़ा उठाओ। आप अपनी प्रतिज्ञाको क्या इसी तरह अज्ञानकी मस्तीमें पूरा करेंगे। हाय! हम उस ललकार तथा चुनौतीको सुनते हैं और फिर मोह-मदिराकी खुमारीमें झूम जाते हैं।

इस मोह और अज्ञानताको धिक्कारता हुआ जीवन का रणक्षेत्र हमें ललकारता हुआ, चुनौती देता है कि हे महान् पिताके अमर पुत्र! उठ, गाण्डीवको उठा और अन्याय, अनाचारसे जूझ कर अपना कर्त्तव्य पूरा कर। अन्तर्लोकोंसे आज हमारे लिए एक ही आवाज आ रही है—उठो, चलो खड़े होकर कमर कस लो, जिरह बख्तर पहनो और अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर रणक्षेत्रको चल पड़ो। मनके भीतर धंसी हुई और शरीरके बाहर खड़ी हुई अन्यायकी सेनासे कट-कट कर युद्ध करो। यह धर्म युद्ध तुम्हारे लिए सर्वथा करणीय है, इसमें तुम्हारी जीत ही जीत है।

हतो वा प्राप्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

# अधीर जीवन

रचयिता—श्री रामनाथ 'प्रणयी'

जीवन बन्धन में अधीर रे,
सुख से दूर, निकट दुःख-दव से,
दबा हुआ मिथ्या वैभव से,
कौन जानता? चिन्ताओं से—
अस्थि—शेष जर्जर शरीर रे,
जीवन बन्धन में अधीर रे,
क्षण भर हंस-हंस कर, रो-रो कर,
दोनों से उदास हो हो कर,
जिधर चला, चल पड़े उधर से—
हाय! लाख निर्व्याज तीर रे,
जीवन बन्धन में अधीर रे,
श्वास-श्वास में निहित प्रलय गति,
नाशोन्मुख जग से विरक्त मति,
छोड़ता मानव न पुरानी—
अन्धों की लकुटी, लकीर रे,
जीवन बन्धन में अधीर रे।

# क्या खायें कैसे रहें ?

लेखक—कविराज श्री पुरुषोत्तमदेव आयुर्वेदालङ्कार, आयुर्वैदिक औषधालय, मुलतान छावनी

पेटरूपी फैक्टरीमें उतना ही मसाला डालिये जिसका ठोस माल तैयार हो सके और शरीरकी सुडौलता, स्वास्थ्य तथा कान्तिमें उत्तरोत्तर वृद्धि हो। इतना अधिक भी न खाइये कि लोग आपको कद्दूमलकी उपाधिसे विभूषित करने लगें और इतना कम भी नहीं कि आप लकीरचन्द ही बने रहें। जो कुछ भी खाइये वह सादा, सरल, प्राकृतिक और पौष्टिक हो। यही इस लेखका तत्त्व है। योरोपके दो विख्यात व्यायाम-वीरोंके उद्धरण द्वारा विद्वान् लेखकने बड़े रोचक ढङ्गसे विषयका प्रतिपादन किया है।

—सम्पादक।

कुछ वर्ष हुए जर्मनीके एक नगरमें ओलम्पिक खेल हुए थे। वहां बड़े-बड़े खिलाड़ी जमा हुए थे और बड़े-बड़े करतब दिखाये गये थे। उनका वर्णन कर मैं आपका समय नष्ट नहीं करना चाहता। जिन दिनों यह खेल हुए उन दिनों वहां प्रति दिन १॥ टन गोमांस खपता था, ४ हण्डरवेट यौर्क, १२ हण्डरवेट वील, ५॥ हण्डरवेट भेड़ोंके मेमने, ५॥ हण्डरवेट सूअर का मांस, ४॥ हण्डरवेट विभिन्न प्रकारके शोरवे और लगभग १ टन मुर्गियां खिलाड़ियोंकी उदरदरी भरनेमें खपती थी। मछलियां प्रतिदिन १ टन समाप्त होती थीं और हजारों टन मछलियां उन लोगोंने खा डालीं। उनके भोज्य पदार्थोंकी सूची मैंने आपके सामने इस-लिए नहीं रखी कि आप इसे पढ़ें और दांतोंके नीचे उंगली दबाकर खून निकाल लें। प्रत्युत मेरा उद्देश्य यह है कि आप इस बातपर विचार करें कि जो लोग स्वास्थ्य साधनामें सिद्ध बन गये हैं या जो बेचारे अभी सीढ़ीके पहले ही डण्डेपर पैर रख रहे हैं वे क्या खायें और कैसे रहें ? वे भी क्या इसी मार्ग पर चलें ?

बड़े आदमियोंका कहना है कि नियम, निष्ठा और संयमके बिना जीवनके किसी भी क्षेत्रमें प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती। राजनीति, अध्यात्म और व्यवसाय आदिकी भांति इस नीति सूत्रका पालन करना व्यायाम साधना करनेवालोंके लिए भी आवश्यक है। ग्रीकके व्यायाम वीरोंकी ओर उंगली उठाकर पलने कहा है—Every man that striveth for the mastery is temperate in all things. इस बातपर विश्वास किये बिना काम नहीं चल सकता कि केवल शारीरिक शक्तिसे ही विजय लक्ष्मी नहीं मिलतीं। शारीरिक शक्तिके साथ मानसिक शक्तिका भी विकास यथेच्छा-चार द्वारा नहीं हो सकता। इसलिए हमें आहार-विहारमें मिताचार और संयम रखना होगा। इस सिद्धान्तपर पहुंचनेका परिणाम हमें उपर्युक्त ओल-म्पिक योद्धाओंका अनुकरण करनेकी आज्ञा नहीं देता। मानी हुई बात है कि जिन व्यायाम वीरोंने एक दिनमें इतना गोश्त पेटके हवाले किया है। उन्होंने उसे हज़म करनेके लिए शराब भी पी होगी और शराब पीनेके बाद जो कुछ होता है वह उच्छृङ्खलता और चरित्र हीनता भी उनमें आयी होगी। न शराब पी होगी और उच्छृङ्खलता न आयी होगी तो भोजनके अनुसार वृत्ति तो तामसिक बनी होगी और तामसी वृत्तिवाले मनुष्यसे संयम एवं सदाचारकी आशा रखना

कोरी मृगमरीचिका ही है। हमें मानना पड़ता है कि वे लोग शारीरिक शक्तिके धनी और कुशल खिलाड़ी हैं, परन्तु उनका मानसिक शक्तिका खज़ाना खाली है अर्थात् उनकी उन्नति एकाङ्गी है, पंगु है। हमें तो उन लोगोंका अनुकरण करना चाहिए जो इन दोनों शक्तियोंके समान अधिकारी हैं—जिनका जीवन पूर्णांशमें उन्नत हैं।

ऐसे व्यक्तियोंको हम कहां ढूँढें? भारतमें कई ऐसे महानुभाव मिल सकते हैं, परन्तु उनसे हमारा काम नहीं चलेगा। ओलम्पिक योद्धाओंकी तुलनामें जब हम उन्हें रखेंगे तो पूर्व और पश्चिमकी विचार-धाराका अन्तर बाधक बनेगा। इसलिए किसी पाश्चात्य व्यायाम-वीरके जीवन पर ही दृष्टि डालनी चाहिए।

जैक डैम्पसी एक प्रसिद्ध घूसेबाज़ है। घूसेबाज़का नाम सुनते ही आपने कल्पना की होगी एक कर्कश और रूढ़ प्रकृतिके मनुष्यकी, परन्तु जैक उससे सर्वथा विपरीत है। उनके एक मित्र उनका मानसिक संयम देखकर विस्मित हो गये थे। मित्र महोदयका कहना था कि घूंसेबाज़ीमें भी इतनी कोमलता, सुकुमारता, भावप्रवणता और संयम हो सकता है—यह बात मेरी धारणासे बाहर थी। एक सिगरेटके व्यापारी जैकके पास अपनी एक सिगरेटके लिए प्रशंसापत्र (Certificate) लेने और बदलेमें एक लम्बी रकम देने गये। जैकने साफ इनकार कर दिया और कहा मैं कभी सिगरेट नहीं पीता, फिर उन हज़ारों नौजवानोंको जो मेरा विश्वास करते हैं सिगरेट पीनेकी सलाह कैसे दूं? आप सुनकर शायद आश्चर्य करें कि २:००० डाक्टरोंने उपहारमें थोड़ी सी सिगरेट लेकर ही उस पर प्रशंसा-पत्र लिख दिये थे। कुछ ऐसे आदमियोंको जो नशा नहीं करते, थोड़े पैसे देकर प्रशंसा-पत्र प्राप्त किये गये थे, परन्तु जैकके नैतिक बलने सारे प्रलोभनोंको लात मार दी।

जैककी अवस्था इस समय ४० वर्षकी है, परन्तु उनके चेहरेपर तारुण्यका ऐसा तेज है जैसा अनेकों युवकोंके मुखमण्डलपर नहीं होता। उनसे जब यह पूछा गया कि स्वास्थ्यपूर्ण जीवन कैसे यापन किया जा सकता है तो उन्होंने निम्न नियमोंके पालनकी आवश्यकता बतलायी।

(१) सफाई—अन्दर और बाहर सदा साफ रखना चाहिए।

(२) निद्रा—प्रत्येक व्यक्ति को ८-६ घण्टे सोना चाहिए।

(३) आहार—सवेरे और शामको दिनमें दो बार भोजन करना ही काफी है। सवेरे टोस्ट, और फल जरूर खाने चाहिए। शामको दूध काफी होना चाहिए।

(४) व्यायाम—जरूर करें परन्तु थकावट लानेवाला नहीं, घूमना सबसे अच्छा व्यायाम है।

(५) संयत और धीर भावसे अपना कार्य करना, अत्यधिक मानसिक परिश्रम या चिन्ता ठीक नहीं।

(६) स्वस्थ मनुष्य प्रसन्न रहता है। इसके बदले काम में जी न लगे, बात करनेकी इच्छा न हो, भोजनमें रुचि न रहे—तब समझ लेना चाहिए कि स्वास्थ्य ठीक नहीं। इस दशा में यदि भोजन, व्यायाम और निद्राके नियम ठीक रहे तो विश्राम ही सबसे बड़ी औषधि है।

(७) जल काफी पिया जाये, परन्तु ज़रूरतसे ज्यादा पीकर शरीर भारी करनेकी आवश्यकता नहीं।

(८) सवेरे सोकर उठनेके बाद स्नान किया जाये। मामूली गरम पानीसे देह पोंछ कर ठण्ढे जलसे स्नान समाप्त करना चाहिए और

फिर सूखे तौलियेसे देह अच्छी तरह पोंछ लेना चाहिए।

(६) वर्षमें एक बार अच्छे चिकित्सकसे परीक्षा करवा लेनी चाहिए।

मांस खाना पहलवानोंकी सनातन प्रथा है, परन्तु जैक मांसके स्थान पर फल, सब्ज़ी और दूध ही ग्रहण करते हैं। मांस खानेवाले पहलवानोंकी अपेक्षा उनका स्वास्थ्य अधिक सुन्दर है। बदन भी बलिष्ठ और सुडौल है। गतिमें भी तेजी है। अन्य पहलवान जवानी ढलनेपर दूसरे कामकी तलाश करते हैं, परन्तु जैकको इसकी जरूरत नहीं मालूम होती।

जेम्स कार्बेट एक और मशहूर घूसेबाज है। उसने अपने मुकाबिलेके सालवेन पहलवानको हराकर पर्याप्त ख्याति प्राप्ति की है। आपका कहना है कि मेरे स्वास्थ्यकी मूल नीति है परिमित आहार। भोजनके सम्बन्धमें जो कुछ जानता हूं वह मेरे पचास वर्षके अनुभवका फल है।

मैंने सबसे पहले यह जाना है कि अधिक खाना पहले दर्जेकी बेवकूफी है। उन दिनों मुझे अपने पेशे वाले जिन दृढ़ और बलिष्ठकाय व्यक्तियोंके संसर्ग में आना पड़ा ये सब अधिक खाते थे। मुझे पता चला हैं कि कार्बङ्कल (Carbuncle) आदि खून-खराबीकी वजहसे ही होते हैं। खून अधिक खानेसे खराब होता है। इसलिए पहलवान भी इन रोगोंसे नहीं बचते।

विद्यार्थी जीवनमें मैं मांस खाता था। मेरी धारणा थी कि मांस खानेसे बल मिलता है। अब यह धारणा बदल गयी है। फल, सब्जी और दूध ही मेरे आहार की मुख्य चीजें हैं। खाता भी मैं दिनमें दो बार हूं। मिठाई मैं नहीं खाता।

योरोपके दो मशहूर व्यायाम वीरोंकी भोज्य तालिका और स्वास्थ्य पालनके नियम मैंने आपके सामने रख दिये—ओलम्पिक योद्धाओंकी तुलनामें इन्हें रखना—इनसे लाभ उठाना आपका काम है।

---

# सत्यव्रत

ले०—श्री नारायणप्रसादजी साधक श्री अरविन्दाश्रम, पांडीचेरी।

चपला और विनोदके परस्पर वार्तालाप द्वारा विद्वान् लेखकने नारी चरित्रकी महत्ता उज्ज्वलता प्रदर्शित करनेका सफल प्रयास किया है। विनोद धन दौलतको अपने जीवनका सर्वस्व समझता है और जीवनका एकमात्र ध्येय जिस किसी तरहसे द्रव्य सञ्चय करना ही समझता है, परन्तु उसकी पत्नी चपलाकी दृष्टिमें धन दौलत ठीकरेके तुल्य हैं। अपने हृदयको निर्मल और उन्नत बनानेसे, भावनाओंको प्रशस्त बनानेसे सन्तोषके अमृत पानसे आदमी लखपति न होते हुए भी बादशाहोंका सा मिज़ाज़ रख सकता है। यही इस नाटकका गम्भीर आशय है।

—सम्पादक।

( गताङ्कसे आगे )

## दूसरा अङ्क, तीसरा दृश्य

स्थान—विनोदका घर।

( विनोद और चपला )

पात्र :—

विनय—एक धनाढ्य युवक।
विनोद—विनयका बाल मित्र।
गोवर्धन – विनयका मित्र और प्रतिवेशी।
देवदत्त—एक सात्विक प्रकृतिका पण्डित।
मृदुला—विनयकी पत्नी (सात्विक प्रकृतिकी स्त्री)
चपला—विनोदकी पत्नी।

विनोद—तुमने सुना है चपला?

चपला—क्या?

विनोद—विनयकी जमींदारीमें एक अबरककी खान निकली है। एक साहब उसके लिए डेढ़ लाख रुपया देनेके लिए तैयार हैं। सब बात पक्की हो चुकी है। कल रजिस्ट्री होनेकी बात है।

चपला—विनय बड़े भाग्यवान् हैं—जैसा रूप है वैसा ही गुण और वैसा ही पैसा।

विनोद—हां, धनवान्के घर ही भगवान् भी छप्पड़ फाड़ कर धन देते हैं। भूखे पेटको अन्न देना, रूखी रोटीको चुपड़ना वे नहीं जानते। धन ऐसे ही तो जमा होता है, नहीं तो सौ रुपयेकी नौकरी कर कौन लखपती बन सका है?

चपला—सौ रुपयेकी नौकरी कर लखपती तो कोई नहीं बन सकता, लेकिन लखपती सा मिजाज तो रख सकता है न?

विनोद—तुम जलेपर नमक क्यों छिड़कती हो। मैं तो तुम्हारे तलवेमें तेल लगाते-लगाते थक गया। तुम्हारी मुझसे नहीं पटती, तो तुम कहीं चली क्यों नहीं जाती?

चपला—( तमक कर सामने आकर ) बार-बार चली जाओ, चली जाओ कहते हो। जब मुझे

रखनेकी तुम्हारी छातीमें ताकत ही नहीं थी तो शादी क्यों की थी—मैं क्या तुम्हारा पैर पकड़ने गयी थी।

विनोद—तुम नहीं, तुम्हारे बाप तो आ आकर पैरों पर गिरते थे। ( चपला तिलमिला कर रोने लगती है )

( सहम कर ) मुझसे भूल हुई। माफ करो, अब तुम्हारे बापका नाम कभी न लूंगा। क्या करूं, गुस्सा आ जाता है—ऐसी बातें मैं नहीं कहता हूं मुझसे क्रोध कहला लेता है।

चपला—( रोते-रोते ) किसीका गला काट डालना और कहना मैंने नहीं काटा, मेरे हाथने काटा है।

विनोद—अब कभी कुछ नहीं कहूंगा—लो, मैं तुम्हारे पैरोंको छूकर कसम खाता हूं।

( चपला विनोदका हाथ पकड़ लेती है और कुछ शान्त होती है )

हां, तो सुनो! मैं तुमसे कहने जा रहा था कि जिस जमीनमें यह अबरककी खान निकली है उसकी हकदार केवल एक विधवा लड़की है। विनय कहता तो है कि जिसकी यह जमीन है उसका ही इस रुपये पर हक होना चाहिए, पर वह एक विधवाके हाथ इतना रुपया सौंपना पसन्द नहीं करता। मैं चाहता हूं उस विधवाकी तरफसे लड़ूं और उसे उसका धन दिलवा दूं। तुम्हारी क्या राय है?

चपला—मैं कुछ नहीं जानती। ( जाना चाहती है )

विनोद—सुनो-सुनो, मैं तुमसे एक सलाह लेना चाहता हूं। तुम्हारे खातिर ही तो मैं धनके लिये इतनी हाय-हाय किया करता हूं।

चपला—( टेढ़ी नजरसे ताक कर ) हूं—मेरे लिये।

विनोद—नहीं तो और किसके लिए, तुम्हें सुखी करने के लिए, तुम्हें खुश करनेके लिए मैं क्या नहीं कर सकता। तुम यदि न हो तो फिर मुझे रुपयेसे वास्ता ही क्या रहे?

चपला—( व्यङ्ग भरे स्वरसे ) हाय रे! मेरे पत्नी-भक्त स्वामी—

बिनोद—तुम तो सदा टेढ़ी ही रहती हो—तुम्हारे लिए यदि मैं जान भी दे दूं, तो भी तुम सीधी नहीं होओगी।

चपला—( जाना चाहती है ) रहने दो बहुत सुना।

विनोद—सुन तो लिया कुछ कहती भी तो जाओ।

चपला—( फिर कर ) कुछ कहूं और फिर तुम कहीं सांपकी तरह फन फैला कर दौड़ो तो—तुम तो जो कहे जाओ उसे कोई सुनता जाय, उत्तर नहीं दे। उत्तर दिया नहीं कि लाठी पड़ी नहीं।

विनोद—हा भगवान्! मैं क्या करूं?

चपला—रोओ।

विनोद—तुम्हारे लिए?

चपला—( उग्र स्वरसे ) मेरे लिये क्यों? उस विधवा के लिये जिसके लिए तुम्हारा जी उथल-पुथल हो रहा है।

विनोद—उसके लिए मेरा जी उथल-पुथल हो रहा है यह तुमसे किसने कहा?

चपला—तुमने।

विनोद—मैंने कब कहा?

चपला—सब बातें मुखसे नहीं कही जाती। तुम्हारे भाव, तुम्हारी आंखें, तुम्हारे अङ्ग-अङ्ग कह रहे हैं—बताओ मैं ठीक कहती हूं या नहीं?

विनोद—बिलकुल झूठ।

चपला—मैं भी नारी हूं और पुरुषोंकी जाति कैसी है इसे खूब पहचानती हूं।

विनोद—इस विद्याको भी क्या कालेजमें तुम्हारे प्रोफेसरने तुम्हें सिखाया था।

चपला—नहीं, तुमने सिखाया है, तुम्हारे चरित्र ने, तुम्हारे व्यवहारने सिखाया है—पुरुषोंकी जाति ही ऐसी है जो पहले तो समुद्रमें आये ज्वारकी तरह प्रेम करनेके लिये उमड़ती हुई आती है और फिर जी भर जानेपर उसी तरह उससे भाटा आ जाता है।

विनोद—नहीं-नहीं, तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम समुद्रके लहरोंके जैसा आने-जाने वाला नहीं बल्कि स्वयं समुद्रकी तरह अगाध है।

चपला—और उस विधवाके प्रति ?

विनोद—कौन कहता है मैं उस विधवासे प्रेम करता हूं ?

चपला—मैं कहती हूं—मैं तुम्हारे मनसूबे भांप गयी और जान गयी कि ऐसा कोई कर्म नहीं है जो तुम रुपयेके लिए नहीं कर सकते। आजसे तुम अपने रास्ते चलो और मैं अपने। मैं तुम्हारे सारे मनसूबेका भण्डा फोड़ दूंगी। मैं अभी जाती हूं विनय बाबूके पास। (प्रस्थान)

विनोद—कैसी मुंहजोर औरतके पाले पड़ा हूं—बड़े बड़ेको नाच नचा दूं पर यह मेरे घरमें; मेरी छातीपर बैठ कर मुझे नचाती है वह गोवर्धन आ रहा है। (गोवर्धनका प्रवेश)

आओ गोवर्धन ! कहो क्या खबर लाये ?

गोव०—खबर तो अच्छी नहीं है।

विनोद—जीवनलालने क्या कहा ?

गोव०—जो कहा सो तो मेरा जी जानता है।

विनोद—तुम्हारा जी तो जानता है पर मैं भी तो जानूं।

गोव०—वह ऐसा वैसा मुनीम नहीं है—वह चाहे तो विनयको तीन दिनमें डुबो दे, उसके हाथमें इतना अख्तियार है, लेकिन है भी वह वैसा ही ईमानदार।

विनोद—वह कैसा है यह मैं नहीं पूछता—उसने कहा क्या ?

गोव०—उसने ऐसी फटकार दी कि मेरी बोली ही बन्द हो गयी।

विनोद—तुमसे कुछ आशा करना ही पत्थरसे सिर मारना है।

गोव०—चलो-चलो, तुमसे ही आशा कर कब कौन जुड़ाया है ? विनयको देखो—मुंह खोलनेके पहले ही वह मुराद पूरी कर देता है फिर भी न जाने क्यों मैं तुम्हारे पीछे ही दुम हिलाया करता हूं। वह विनय आ रहा है।

विनोद—(सकपका कर) ऐं ! विनय ! हे भगवान् इस समय तू ही बचा। (इधर उधर झांक कर चपलाको देखता है) नहीं, वह नहीं है। अच्छा हुआ विनय इधर चला आया।

(विनयका स्वागत करनेके लिए आगे बढ़ता है)

(विनयका प्रवेश)

विनय ! तुमसे मिल कर सभी कितने प्रसन्न होते हैं। तुममें ऐसी कौन सी मोहिनी शक्ति है जो सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेती है।

(तेजीसे चपलाका प्रवेश)

चपला—इसका उत्तर मुझसे पूछो—इनका 'सच्चा हृदय और मधुर वचन।'

(विनोदके होश उड़ जाते हैं, वह चपलाकी ओर कड़ी दृष्टिसे ताकने लगता है)

चपला—डरो मत ! मैं कुछ नहीं कहूंगी। तुम मुझे ऐसे ताक रहे हो जैसे खा ही जाओगे।

विनोद—आज तुम्हें हो क्या गया है ?

चपला—भूत चढ़ा है। जानते हो सहन करनेकी भी एक सीमा होती है। अधिक रगड़नेसे पत्थरसे भी आग निकल पड़ती है। मैंने

तो मनुष्यकी कोखमें जन्म लिया है, लेकिन मैं तुम्हारी ब्याही जोरू हूं, पैरोंकी जूती हूं, जिस पांवसे तुम ठोकर मारोगे उसे मुझे चूमना ही पड़ेगा; हिन्दू कुलमें जन्म जो लिया है। इच्छा होती है एक बार भुजङ्गिनी रूप धारण कर इस हिन्दू जातिको इस नारी धर्मको बतानेवालेको डंस लूं।

विनोद—मैं कहता हूं चली जाओ यहांसे, नहीं तो--

चपला--नहीं तो क्या ? कह डालो मेरे दयालु स्वामी ! नहीं तो मारोगे। मैं तो मरनेके लिए तैयार होकर ही आयी हूं—जिन्दगी इतनी कड़वी हो गयी है कि उससे मृत्यु ही मधुर मालूम पड़ती है; पर याद रखो तुम भी मुझे मार कर चैनकी वंशी नहीं बजा सकते। (आस्तीनसे छुरी निकाल कर) यह देखो इससे अपनी ज्वाला शान्त करूंगी—इस हृदयमें तुम्हें लगा कर जो पाप किया उसका इसी हृदयमें प्रायश्चित करूंगी। तुम्हारी काली करतूत बखान कर यहीं मरूंगी। विनय बाबू !

विनय -देवि ! क्रोधको शान्त करो। तुम्हारे भीतर क्रोधकी आग जो भभक रही है वह निकल जाय इसलिए मैं सब चुपचाप सुन रहा था। तुमने कभी किसीको पानीमें लाठी मारते देखा है ? लाठीकी चोटसे क्या होता है—पानी बीचोबीचसे फट जाता है, लेकिन कितनी देरके लिए, क्षण भर बाद कहीं मारका चिह्न भी दिखायी नहीं देता—वैसे ही है स्त्री-पुरुषका झगड़ा।

चपला--नहीं विनय बाबू ! यह झगड़ा वैसा नहीं है। मेरा दिल आज एकदम टूट गया है, आप जानते हैं मिट्टीके बर्तनके समान जो दिल एक बार टूट जाता हैं वह फिर नहीं जुड़ता।

विनय—चपला ! मैं तुमसे एक चीजकी भिक्षा मांगता हूं, क्या तुम दोगी ?

चपला -मुझसे और भिक्षा ! जिसका पति पराया हो गया हो, जिसका सुख लुट गया हो, जो मरनेकी अनीपर आ पहुंची हो, उसके पास देने योग्य क्या है विनय बाबू !

विनय—जो मैं चाहता हूं वह तुम्हारे पास यथेष्ट है।

चपला—अगर है, तो कहिए मैं अवश्य दूंगी।

विनय—बस क्षमा ! मेरे मित्रने जो अपराध किया है उसके लिए मैं तुमसे क्षमाकी भीख मांगता हूं।

चपला—आप मनुष्य हैं या देवता ! अच्छा आपको मेरी भी एक बात माननी पड़ेगी।

विनय—कहो देवी ! क्या चाहती हो ? विनोद मेरा बाल-मित्र है; तुम दोनोंके जीवनमें सुख-शान्ति लानेके लिए मैं क्या नहीं, सब कुछ कर सकता हूं।

चपला—विनय बाबू ! उस अबरक वाली जमीनका रुपया आपने किसे दिया ?

विनय—उसका कोई हकदार ही खड़ा नहीं होता। एक विधवा है, उसे मैंने दस हजार रुपये भेज दिये हैं। बाकी रुपयोंको मैं किसी परमार्थके काममें लगाना चाहता हूं।

चपला—उस विधवाको इतना रुपया न देकर आपने बड़ी बुद्धिमानी की ('विनोदसे') सुन लिया ! क्यों आकाशसे गिर तो नहीं पड़े ?

विनय यह क्या ? यही क्या तुम लोगोंके कलहका कारण था। विनोद ! तुम्हें यदि रुपयेकी आवश्यकता थी तो मुझसे क्यों नहीं कहा ? (कुछ सोच कर) मेरे एक मित्रकी मोटरकी

फैक्टरी है; वहां एक मैनेजरकी आवश्यकता है। मैं तुम्हें वहां रखा दूंगा। तुम्हें वहां ५००) रुपया महीना मिलेगा। क्यों चपला! अब तुम प्रसन्न हुई।

चपला—आप सा दुर्दिनका साथी और व्यथितका बन्धु इस हीन दुनियामें भी है?

विनय—अच्छा विनोद! अब मैं जाता हूं।

(उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना प्रस्थान)

चपला—तुम्हारे मुंहसे कृतज्ञतासूचक एक शब्द भी निकला! ओह! क्या कहूं तुमसे?

(क्षुब्ध होकर प्रस्थान)

गोब०—क्यों विनोद! क्या सोच रहे हो? क्या एक बूंद पानीमें ही गल गये?

विनोद—नहीं, मैं वह पत्थर नहीं हूं जो पसीज उठूं। तुम देखते जाओ। ५००) की नौकरी भी लूंगा और उस रकम पर भी हाथ फेरूंगा। आओ चलें। (दोनोंका प्रस्थान)

(क्रमशः)

# प्रगति ?

रचयिता—श्री श्रीकुमार शर्मा 'विद्यालङ्कार'

क्या भाग भाग कर चलने ही से
पहुंच जायंगे
हम अपने उद्देश स्थान पर?

और दबादब क्या किताब
पढ़ने ही से हम
लेंगे उर में सत्य ज्ञान भर?

तड़क भड़क के कपड़ों ही से
कब तक कितना
बन सकते हम रूपवान नर?

कितने दिन तक धोखा देकर
हम पायेंगे
अपनेपन का गर्व मान कर?

क्या गला फाड़ने ही से स्वर निकलेगा?
क्या आंख फाड़ने से निर्झर निकलेगा?
मैं यही सोचता बैठा रहता दिन भर—
क्या किसी तरह पत्थर ईश्वर निकलेगा?

# आगामी काल की शाला

मूल लेखक—आचार्य हरभाई त्रिवेदी, भावनगर

अनुवादक—श्री सुबोधचन्द्र शर्मा 'नूतन'

प्रस्तुत लेखके लेखक हैं—प्रसिद्ध शिक्षण-शास्त्री श्री आचार्य हरभाई त्रिवेदी और अनुवाद किया है, शिक्षा सुधाके भूतपूर्व यशस्वी सम्पादक श्री सुबोधचन्द्र शर्मा "नूतन" ने। हमारी वर्तमान दूषित शिक्षा पद्धतिका एक ही उद्देश्य है पढ़ो और पैसा पैदा करो। वह जीवनके परमोद्देश्य सत्यं, शिवं, सुन्दरम् से इतनी ही दूर है जितना दक्षिणी ध्रुव उत्तरी ध्रुवसे। पराधीनताकी बेड़ियोंसे जकड़े हुए अभागे हिन्दुस्तानके शिक्षित नवयुवकोंको केवल पेटके गढ़ेको भरनेके लिए सर्वथा अरुचिकर कार्य करने पड़ते हैं। विद्वान् लेखकने आदर्श शिक्षण-शालाका अद्भुत खाका खींचा हैं, पर ये सुनहले आदर्श तो उसी दिन पूरे होंगे, जब पुण्य भूमि भारतवर्षमें स्वतन्त्रताका सुनहला प्रभातोदय होगा।

—सम्पादक।

हमारी शिक्षा-प्रणाली आमूल परिवर्तन चाहती है। आज हम अपनी भूतकालकी शाला और निकट भविष्यमें प्रकट होनेवाली शालाओंके मध्यवर्ती संक्रान्ति-कालमें हैं। गत शताब्दीकी शालाओंकी अपेक्षा वर्तमान शालाओंका स्वरूप भिन्न होते हुए भी उसमें होनेवाले क्रमिक परिवर्तनोंके इतिहासको सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर ही उसका वास्तविक विचार आ सकेगा।

भूतकालके शिक्षाचार्योंने 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के जिस जीवन-व्यापी आदर्शका शिक्षा-निर्माणमें समावेश किया था उस आदर्शकी पुनर्रचना करना आज हमें आवश्यक प्रतीत होगा। ऐसा ज्ञात होता है मानों हम पुरानी दुनियांके पर्देको हटा कर उसमेंसे खोये हुए सत्यकी शोध कर रहे हों और इस प्रकार अपने प्राचीन आदर्शोंकी ओर फिर लौट रहे हों।

शिक्षाका वर्तमान जड़वादी—भौतिक—उद्देश्य 'पहले पढ़ो और फिर पैसा पैदा करो' केवल इस वाक्यमें आ जाता है। आज कल पैसा और उसके लिए होनेवाली दौड़-धूपका ही नाम प्रगति है। यह उद्देश्य मानव जीवनके लिए अस्वाभाविक ही नहीं, वरन् उसे अधोगतिके पथपर ले जानेवाला है। भावी सन्ततिको केवल प्रलोभनका पाठ पढ़ानेवाली रचना सर्वसंहारी है।

आगामी कालमें नवीनताका जन्म होगा और वर्तमान समाज-रचना भूतकालका केवल अवशेष होगी। 'सत्यं, शिवं सुन्दरम्' जीवन-लक्ष्य होगा। आजके वैज्ञानिक कहे जानेवाले जगत्में मनुष्य विज्ञान-भारसे पिस रहे हैं। जगत्की अतुल धनराशिका सम-विभाजन करनेके लिए मनुष्य मिथ्या प्रयत्न कर रहा है। इन प्रयत्नों द्वारा वर्तमान प्रजातन्त्रवादी अर्थ-शास्त्र ने लोकमानसको पागल और मिथ्याभिमानी बनाया है।

तो फिर नवीन जगत्में हमारी नूतन शालाका क्या स्वरूप होगा?

हमारी नूतन शाला 'जीवन मुक्त शाला' होगी। वर्तमान समाज-रचनाके आधार-स्वरूप मनुष्योंके पारस्परिक भेदकी बातें इस नवीन प्रजाके लिए परी-कथाओंके समान कल्पित एवं विचित्र प्रतीत होंगी।

यह शाला शहरोंकी अन्धकारमय गन्दी गलियोंसे दूर प्रकृतिके उन्मुक्त वातावरणमें होगी। शहरी बच्चोंको भी गगनगामी विमानों अथवा अन्य शीघ्रगामी वाहनों द्वारा प्रकृतिकी गोदमें खेलनेके लिए रमणीय उद्यानोंके मध्य-स्थित शालामें ले जाया जायगा। बालक प्रसन्न प्रकृतिकी गोदमें प्रमुदित होंगे और शाला उन्मुक्त आकाशके नीचे वृक्षोंकी सघन छायामें काम करेगी। अनिवार्य कारण उपस्थित होने पर ही मकानोंका उपयोग होगा। शालाके ये मकान भी ऐसे होंगे जिनमें पर्याप्त प्रकाशके लिए पूर्ण अवकाश होगा और जहां बालक स्वतन्त्रता-पूर्वक खेल-कूद सकेंगे।

बाल-पोषणका विचार भी शाला शास्त्रीय पद्धतिपर करेगी। बालकोंके शरीरको बढ़ाने और सुदृढ़ बनाने वाला पोषक उपयुक्त आहार उन्हें दिया जायगा। ऐसे भोजनका कार्य-क्रम बच्चों और शालाके कार्य-कर्ताओं के लिए सुन्दर—सुखद मिलन सदृश होगा। सङ्गीत, प्रकृति और कलाका उपभोग करते हुए सब सानन्द भोजन करेंगे। भोजनके पश्चात् सब बालक अपनी-अपनी शारीरिक आवश्यकताके अनुसार कुछ काल विश्राम करेंगे।

बालकोंके शारीरिक विकासकी योजनायें अति विशाल, सुदृढ़ एवं वैज्ञानिक होगी। इस विभागका उत्तरदायित्व जिन अध्यापकोंपर होगा वे शरीर-विज्ञानके अतिरिक्त मानव-शरीरके विकाससे सम्बन्ध रखनेवाले आरोग्य-शास्त्र, प्राणी-शास्त्र आदिके भी ज्ञाता होंगे। वे बच्चोंके शरीर-विकासके लिए वैज्ञानिक योजनायें तैयार करेंगे। ये शिक्षक शरीर-विकासके प्रति होनेवाली वर्तमान उदासीन वृत्तिके लिए हमारा उपहास करेंगे।

शालामें बुद्धि-विकासके पोषक साहित्य-साधनों की कमी न होगी। शालाके प्रत्येक भागमें 'टेली-विजन सेट' होगा। इनके द्वारा बालक महान् साहित्यिकों और कलाकारोंकी नाट्यकलाका आस्वादन शालामें बैठे-बैठे ही कर सकेंगे। उस समय यह टेली-विजन जीवन-उपयोगकी एक सामान्य वस्तु होगी। इस योजनाके द्वारा बालक सार्वजनिक व्याख्यान, राज-सभामें प्रचलित वाद-विवाद, औद्योगिक प्रवृत्ति, ऐतिहासिक तथा इसी प्रकारके किसी प्रगति-सूचक प्रसङ्गको शालामें बैठे-बैठे भी देख-सुन सकेंगे।

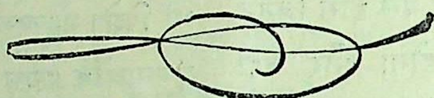
शिक्षणकी नवीनतम पद्धतियोंमें सिनेमाका स्थान भी विशेष महत्त्वका माना जायगा। शिक्षण-विषयक सूचनाओंके प्रत्यक्ष और प्रायोगिक परिचयके लिए शालामें सवाक् चित्रपटकी पूर्ण सामग्री प्रस्तुत होगी। तारों, ग्रहों और अन्य आकाशीय शोभाके सजीव परिचय-हेतु शालामें एक छोटी-सी किन्तु साधन सम्पन्न वेधशाला भी अवश्य होगी; शालाका समृद्ध संग्रह स्थान और कला-भवन प्रकृति और कलाके विद्यार्थियोंको मार्गदर्शक और प्रेरक-सूचना देनेमें समर्थ होगा।

नागरिक जीवनकी शिक्षा वास्तवमें जीवन-कला की शिक्षा होगी। सत्य ही यह विज्ञान है और इस दृष्टिसे इसका शिक्षण होगा। अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र और इतिहास सरीखे विषयोंका शिक्षण नागरिक जीवनकी शिक्षामें विशेष महत्त्वपूर्ण होगा। इस शिक्षाके व्यावहारिक ज्ञानके लिए उक्त विषयोंके विशेषज्ञोंके तत्त्वावधानमें ऐतिहासिक स्थानों, औद्योगिक केन्द्रों, सौन्दर्य सम्पन्न धामों, प्रकृतिके कलित क्रीड़ा-स्थलों, कला-संग्रहों आदिका व्यवस्थापूर्वक अध्ययनके लिए देखनेका प्रबन्ध होगा।

समय-विभागकी रचना इस प्रकार होगी कि विद्यार्थियोंको अध्ययन-काल आनन्द और आरामका समय प्रतीत होगा। किसी समय शिक्षण-कार्यमें सहायक मानी जानेवाली युक्तियों—रटाई, गृह-कार्य, पुरस्कार, अङ्क, परीक्षा आदि—को भूल मान कर

नूतन युगका शिक्षक अपने पूर्वाचार्यों द्वारा की गयी भूलोंकी इन परम्पराओंको दयाभावसे देखेगा।

हमारी नूतन शालामें पाठ्य-क्रमके दृढ़ एवं संकुचित बन्धनोंको स्थान न होगा। इस नूतन शालाके नव शिक्षकको यह सत्य दर्शन होगा कि मानव-आत्मा की ज्ञान-पिपासा ऐसे छोटे-छोटे गर्तोंमें भरे दुर्गन्धमय जलसे शान्त नहीं हो सकती। इस सत्य-दर्शन प्रेरित अध्ययन और मानव-आत्माके स्वाभाविक विकासकी योजनामें विद्यार्थी अपनी स्वाभाविक गति और विकासक्रमके अनुसार अपना रुचिकर ज्ञान प्राप्त करना होगा। पाठ्यक्रमके विषयोंकी विविधता प्रतिदिन बढ़नेवाली प्रगतिके अनुरूप होगी।



# फैशन

लेखक - श्री शौकत थानवी

श्री शौकत थानवी उर्दू के मशहूर हास्यरसके लेखकोंमें अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। आपकी रचनायें बड़ी दिलचस्पी और चावके साथ पढ़ी जाती हैं। आपका कहनेका ढङ्ग बहुत ही लाजवाब और भाषा खूब चुस्त, चालू तथा मुहावरेदार होती है। आप साधारणसे साधारण विषयको भी इस तरहसे पेश करते हैं कि दिल चाहता है कलम चूम लें। प्रस्तुत हास्यरसके लेखमें आपने फैशनका काबिलेतारीफ चित्रण किया है। आशा है, इससे पाठकोंका मनोरञ्जन होगा।

—सम्पादक।

फैशन, "एक हमाममें सब नंगे" का दूसरा नाम है। यानी अगर दस-पांच पढ़े-लिखे या कोई बड़ा आदमी सिर्फ एक लंगोटी बांध कर बाजारमें घूमना शुरू कर दे, तो दो ही चार दिनमें यूनीवर्सिटीके विद्यार्थी इसी तरह कालेज जांयगे, वकील लोग इसी तरह अदालतमें जांयगे, हाकिम इसी तरह कचहरी करेंगे, बड़े-बड़े सभ्य समाजोंमें लोग इसी रूपमें सम्मिलित होंगे। और कुछ दिन गुजरनेके बाद जो आदमी लंगोटी बांधे नजर न आयेगा, उसको दहक़ानी, वहशी, असभ्य, हिन्दुस्तानी, ज़ाहिल, बैल, काला आदमी और नहीं मालूम क्या-क्या कहा जायगा? बिलकुल यही हाल इन फैशनोंका है, जो आज कल हम और आप जैसे सभ्य पुरुष अख्तियार किये हुए हैं, कि सिरके बाल पीछेसे कटवा दिये और आगेसे बढ़े रहने दिये। अगर हमसे कोई कहे कि आगेके बाल कटवा दो, और पीछेके बढ़ने दो, तो हम इसपर हरगिज़ न तैयार होंगे और इसको एक तरहका बेतुकापन समझ कर हंस देंगे। हालां कि वास्तवमें दोनों सूरतें एक सी हैं। बल्कि अगर बम्बईमें जहाज से उतरनेवाले मुसाफिर आगेका सिर मुड़वाये और पीछेके बाल बढ़ाये हुए उतरें तो हम यकीन दिलाते हैं कि तमाम हिन्दुस्तान वाले यही हरकत शुरू कर दें। यदि आप इस तरफ थोड़ा ध्यान दें तो हमारे इस कथनकी पुष्टिमें अनेक प्रमाण मिल सकते हैं। किसी बड़े आदमीने मूछें साफ करा दीं, बस सारे देशको मूछोंसे छुटकारा मिल गया। किसीने "क़ुरा खाई हुई" अर्थात् दुम कटी हुई मूछें रखीं, बस हर एकने अपनी अच्छी खासी मूछोंको कैंचीकी भेंट चढ़ा दिया। मुख्तसर यह है कि इस फैशनको भेड़ चाल कहिए, अन्ध अनुकरण कहिए। अभिप्राय यह है कि जो कुछ कहिए ठीक है। और यह बीमारी भारतवर्ष में तो इस तरह फैली है कि दुनियांके किसी देशमें नहीं है। कोई हिन्दुस्तानी मुश्किलसे ऐसा नजर आयेगा, जो अपने पुराने ढङ्गपर कायम हो। वरना आम तौरपर यही हाल है कि किसीको नाक कटाते देख लिया, खुद भी नकटे हो गये। किसीको कुत्तेका मुंह चाटते हुए देखा, खुद भी चाटने लगे। किसीको खड़े होकर पेशाब करते देखा, खुद भी बैठ कर पेशाब करना हराम समझ लिया। किसीको टेढ़ा मुंह करके बात करते देखा, अपना मुंह भी टेढ़ा कर लिया।

इन भारतवासियोंने विदेशियोंका अनुकरण इस हद तक किया कि अच्छाई और बुराईका भी फर्क

बाकी न रहने दिया। उन्होंने देखा कि अंग्रेज नाखून नहीं कटवाते हैं। बस उन्होंने भी नाखून बढ़ा लिये। अगर किसी अंग्रेजने कुत्ते खायी हुई पतलूनका आधा हिस्सा काट कर पहिन लिया, तो यह गोरोंकी नकल करनेवाले लोग फौरन वैसा ही कटा हुआ पतलून बनवायेंगे और इसको पहिन कर खुश होंगे कि हममें और अंग्रेजोंमें कोई फर्क नहीं है। और अंग्रेजोंकी नकल पर क्या निर्भर है, बल्कि वह तो अपने देश वासियोंकी नक्काली भी करनेको तैयार हैं। शर्त यह है कि दस पांच बड़े-बड़े आदमी इनको किसी अनोखे रूपमें दिखाई दे जांय। मसलन जब वह पहली बार किसी आदमीको अँगरखे और चौड़े पाजामे पर हैट लगाये हुए देखेंगे, तो उनको हंसी आयेगी। उस आदमीका मजाक उड़ायेंगे और दिल ही दिलमें इसकी बहशत पर ताज्जुब करेंगे। लेकिन जब वह देखेंगे कि अमुक राजा साहब, खां बहादुर साहब, डिप्टी साहब, कोई मोटरवाले रईस, अलीगढ़के कालेजके विद्यार्थी और दस-पांच इसी तरहके बड़े लोग अंगरखे पर हैट लगाते हैं, तो उनके लिए भी फर्ज हो जायगा कि एक अंगरखा, केवल इस अभिप्रायसे बनवायें कि इस पर हैट लगाया जा सके।

फैशनके वास्ते यह जरूरी नहीं है कि वह अवनति से उन्नतिकी तरफ हो, बल्कि बहुतसे फैशन ऐसे भी हैं, जिनको अबसे पहले "आउट आफ फैशन" यानी फैशनके विरुद्ध समझा जाता था। मसलन वह पोशाक जिसको किसी जमानेमें यह कह कर छोड़ दिया गया था कि यह पुराने लोगोंकी पोशाक है और इससे मूर्खताके चिह्न प्रकट होते हैं। लेकिन आज वही पोशाक आधुनिक कालके लोगोंने धारण करके फैशन में दाखिल कर ली है। और मजेसे दोपल्ली टोपी, जामदानीका अंगरखा, चौड़ा या चूड़ियोंदार पाजामा, देहलीका कामदार जूता पहने, नवाब बने फिर रहे हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि इस पोशाकके साथ दाढ़ी मूंछ गायब है और मुंहमें सिगार लगा हुआ है। आंखोंमें बड़ा सा चश्मा है और दुपल्ली टोपीके नीचे अंगरेजी बाल हैं। लेकिन अभी अगर यही लोग साड़ी बांधना शुरू कर दें या सिर पर चोटी रख लें, तो धीरे धीरे सब लोग उन्हींका रूप बना लेंगे।

आज कलका सबसे ज्यादा फैशन खद्दर पहननेका है। जिसको देखियेगा सिर पर गांधी कैप, पैरोंमें चप्पल और खद्दरका लम्बा सा कुर्ता पहने नजर आयेगा। इन खद्दरधारी लोगोंके लिए यह समझ लेना कि यह सब राष्ट्रीय आन्दोलनसे दिलचस्पी रखते हैं, सही नहीं है। इनको तो बस इस फैशनसे दिलचस्पी है, जिसे इनसे पहले कुछ लोगोंने ग्रहण कर लिया है। वह देखते हैं पण्डित जवाहरलाल नेहरू पर खद्दरका चूड़ीदार पाजामा अच्छा मालूम होता है और गांधी कैप भी खिलती है और खद्दरकी अचकन भी शोभा देती है। बस वह भी अपनी सुन्दरता बढ़ानेके लिए खद्दरपोश हो जायंगे। फैशनके अलावा इनके जहनमें यह ख्याल भी जम गया है कि आज कल खद्दर पहननेवाला आदमी आसानीसे बड़ा आदमी बन जाता है। अतः वह इस सुनहरे अवसरको हाथसे न जाने देंगे। और खद्दर पहन कर अपना शुमार भी कौमी लीडरोंमें करने लगेंगे, बल्कि ज्यादातर तो न यह ख्याल होता है न वह बस एक हमाममें सब नंगे" वाला मामला है। सच कहते हैं और यकीन न आता हो तो इम्तिहान कर लीजिये कि अगर इन हिन्दुस्तानी नक्कालोंके सामने कुछ खराब चीजें फैशन बना कर पेश की जांय तो उनको वह फौरन कबूल कर लेंगे। मसलन आप अपने मित्रों सहित सूटपर दुपट्टा ओढ़ कर निकलिये या आप अपने दोस्तों सहित इम्तिहानके तौरपर नाचते हुए चलिए, या आप अपने मित्रोंके साथ पैरोंमें टोपी, सिरपर जूता पहन

कर निकलिये या आप अपने दोस्तोंके साथ आज्ञ-मायशके तौरपर मुंहपर तारकोल लगा कर निकलिये या आप अपने मित्रोंके साथ गधेपर सवार होकर चलिये तो आपको दो ही दिनमें अपने बहुतसे अनु-यायी दिखाई देने लगेंगे। आपको यकीन तो न आयेगा, परन्तु हम कहते हैं कि आखिरकार यह मूछों का मुड़वाना, कुत्तेका मुंह चाटना, नेकर अर्थात् आधा कटा हुआ पतलून पहनना, खड़े होकर पेशाव करना, अपनी मूछें और घोड़ेकी दुम काटना, बीबीसे बाल काटनेके लिए आग्रह करना, नाखून न कटवाना इत्यादि इसी तरहके अन्धानुकरण और भेड़ चालके स्पष्ट उदाहरण नहीं तो और क्या हैं।

खुदा बचाये, यूरोपमें यह फैशन दिन प्रति दिन उन्नति पर है और हिन्दुस्तानियोंमें नक्कालीकी आदत इस दर्जे मौजूद हैं कि वहांका प्रत्येक विचार यहां कार्यका रूप धारण कर लेता है। मालूम नहीं हम लोगोंका क्या नतीजा होनेवाला है।

---

# मिलन

लेखक—श्री महावीरप्रसाद विद्यार्थी

जीवन के उन स्वर्णिम क्षणों में —
जब तुम आते हो—शुभ्र-हास बिखराते हुए,
मुझे जान पड़ता है—तुम नहीं, मैं हंस रहा हूं।
तुम्हारी करुणामयी चितवन आकर मुझे अपने कोमल-पाश में आवद्ध कर लेती है और मैं तुम्हारी आंखों से अपने अतुल रूप को देखता-देखता —
अपने ही में विलीन हो जाता हूं।
मैं तुम्हारे हृदय में पैठ कर फूट पड़ता हूं
तुम्हारे कण्ठ से!
—और उस वीणा की झङ्कार में बहता चला जाता हूं!—
मैं झूम उठता हूं, मैं नाच उठता हूं!—
आनन्द के उस अवर्णनीय प्रवाह में—और प्रेम के उस निकुञ्ज में
जहां न सरिता का यह क्रन्दन है, न सागर की ये उच्छ्वासें—
तुम्हारे पुलकित शरीर में
एक सम्पन्दन—एक सिहरन बन कर समा जाता हूं!

# महापुरुषों के जीवन की घटनायें

( १ )

महर्षि वाल्मीकिके सम्बन्धमें यह कथा प्रचलित है कि अपने जीवनके पूर्व कालमें वे बड़े दुराचारी थे। लूट-मार और डकैतीसे ही उनका जीवन-निर्वाह होता था। जिन दिनों वे अपनी दुष्टचर्यामें मनसा, वाचा, कर्मणा संलग्न थे, किसीने उनसे पूछा—"भाई! यह तो बताओ, कि यह सब तुम किनके लिए करते हो और लूट-मारसे प्राप्त किये हुए तुम्हारे धनका उपयोग करनेवाले कौन हैं? वालमीकिने अपने कुटुम्ब-परिवार के लोगोंके नाम लिये। प्रश्नकर्ताने तब उनसे कहा कि उन लोगोंसे जाकर जरा यह तो पूछना कि चोरी और डकैतीमें जो तुम्हें पाप लगता है और उसके कारण तुम्हें भविष्यमें दण्ड मिलेगा, उसके हिस्सेदार होनेके लिए वे लोग राजी हैं या नहीं? वालमीकिके हृदयमें यह बात चुभ गयी। वे घर गये और अपने परिवारके लोगोंसे उन्होंने ऐसा ही प्रश्न किया। इस पर परिवार तो क्या, उनके स्त्री-बच्चों तकने पापमें साझीदार होनेसे इनकार कर दिया। इस घटनाने वालमीकि की आंखें खोल दीं। संसारकी स्वार्थपरता एवं निस्सारता उनके नेत्रोंके सामने अपने नग्न रूपमें दृष्टिगोचर होने लगी। उस दिनसे वालमीकि के विचार और आचारकी दिशा ही बदल गयी। कालान्तरमें वे सत्यनिष्ठ होकर चाण्डालसे चतुर महर्षि हो गये। उनका अमर ग्रन्थ रामायण आज जन-समाजमें श्रद्धा-पूर्वक पढ़ा और सुना जाता है। आदि कविकी प्रतिष्ठा उन्हें ही प्राप्त है।

( २ )

रामायणके दूसरे लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक गोस्वामी सन्त तुलसीदास जीके पूर्व-कालीन जीवन-चरित्रके सम्बन्धमें भी इसी तरहकी कथा प्रचलित है। वालमीकि के समान दुराचारी तो वे नहीं थे; पर संसार के सर्व साधारण लोगों के समान वे विषयासक्त जरूर थे। अपनी स्त्रीके बिना उन्हें एक दिन भी व्यतीत करना दुष्कर था। कहा जाता है कि किसी समय उनकी धर्मपत्नी दो चार दिनोंके लिए अपने मां-बापके घर चली गयी। तुलसीदास जीको स्त्रीका यह स्वल्प वियोग भी असह्य हो गया, यहां तक कि वे अधीर होकर दूसरे ही दिन उसके पास ससुराल पहुंच गये। उस साध्वीको अपने पतिके इस व्यवहारसे बड़ा क्षोभ हुआ। अतएव लज्जा-जनित क्रोधके आवेश में आकर उसने अपने विषयासक्त पतिसे कहा—महा-राज! आपका यह व्यवहार सभ्य मनुष्यको शोभा देनेवाली बात नहीं है। इस हाड़ मांसके बने हुए शरीर पर आप इतने अनुरक्त दिखाई देते हैं। यदि यही अनुराग आपको भगवान्के भजनमें हो, तो आपका कल्याण हो जाय।" गोस्वामी जी इस सारगर्भित कटूक्तिको सुन कर गम्भीर हो गये। उसी क्षण वे अपनी ससुरालसे वापिस चले आये और तत्पश्चात् उन्होंने अपनी जीवनचर्या ही बदल दी। आज गोस्वामी तुलसीदास जीकी राम-निष्ठासे कौन परि-चित न होगा? जन-समाजके लिए उनकी भाषा-रामायण स्थावर आध्यात्मिक सम्पत्ति है और साहित्य की मनोहरसे मनोहर रचना मानी जाती है।

( ३ )

विलायतकी किसी आम सभामें सभी प्रकारके प्रश्नोंका शान्तिपूर्वक उत्तर देते हुए गांधी जीको देख कर किसी परिचित अंगरेज महिलाने उनसे कौतूहल-पूर्वक पूछा कि गांधी जी, आप कभी खिन्न अथवा

अशान्त होते हैं या नहीं ? इस प्रश्नके उत्तरमें प्रत्यु-त्पन्नमति महात्मा जीने तत्काल ही विनोद-पूर्वक कहा कि यदि यह सवाल आप कस्तूर बा से करें, तो यथार्थ उत्तर आपको मिल सकेगा। उनके कहनेका आशय था कि लोग मुझे महात्माके नामसे पुकारते हैं, परन्तु मेरी त्रुटियोंका ज्ञान उन्हें नहीं है। उनकी जानकारी उसीको हो सकती है, जो हमेशा मेरे साथ रहती आयी है। इसके प्रत्युत्तरमें प्रश्न करनेवाली उस महिलाने हंसते हुए कहा कि "मेरे पति तो मुझसे बड़ी सज्जनतापूर्वक पेश आते हैं, आप यह क्या कह रहे हैं?" गांधी जीने फौरन जवाब दिया, तब तो मुझे प्रतीत होता है कि इस प्रकार दूसरोंके सामने अपने पति देवकी तारीफ करनेके लिए आपको उनसे अच्छी खासी रिश्वत मिली है।" आसपासके सुनने वाले इस सारगर्भित विनोदको सुन कर हंसने लगे। महिला चुप हो गयी।

( ४ )

कहते हैं कि एक बार किसी हिन्दू नवयुवकने लोकमान्य तिलकसे पूछा कि महाराज! मैं देश सेवा का इच्छुक हूं - कहिये, मैं कौन सा काम करूं ? इस पर लोकमान्यने कहा "भारतके नौजवान, तुम्हारे सामने देश-सेवाका बहुत व्यापक क्षेत्र पड़ा हुआ है। इस क्षेत्रके एक छोरमें स्वराज्यके लिए अर्जी पेश करने वालोंकी मण्डली है और दूसरे छोरमें फांसीपर हंसते-हंसते झूल जानेवाले नवयुवकोंकी टोली है। और इन दोनों सीमान्तोंके बीचमें अनन्त प्रकारके सेवा कार्य हैं। अपनी शक्तियोंको अच्छी तरह तौल लो और इतने कार्योंमें जो तुम्हारे सामर्थ्यके भीतर हो, उसे फौरन स्वीकार कर लो और अपने काममें कन्धा लगा कर भिड़ जाओ।

( ५ )

गांधी जी अपनी आत्म-कथामें लिखते हैं कि बचपनमें उन्हें सत्य हरिश्चन्द्रका नाटक देखनेको मिला। उनके नन्हेंसे हृदय पर उस नाटकका बड़ा प्रभाव पड़ा; यहां तक कि उस खेलको देखनेके लिए उनका जी बार बार ललचाता। परन्तु पैसे कौन देता। अतएव मन ही मन उस नाटकके दृश्योंको दुहराया करते, हरिश्चन्द्रकी मानसिक दृढ़ताकी प्रशंसा करते और उनपर आयी हुई आपत्तियों पर एकान्तमें आंसू बहाते। कई बार उनके बाल हृदयमें यह प्रश्न भी उठता कि संसारके सभी लोग हरिश्चन्द्रके समान सत्यवादी क्यों नहीं होते। उस विचारके साथ-साथ उनके हृदय में यह भी आकांक्षा उदय होती कि हरिश्चन्द्रके समान सत्य-समाराधक मैं भी बन जाऊं और उन्हींके समान सत्यके नाम पर कष्ट सहन करनेकी क्षमता मैं भी प्राप्त करूं।

## आवश्यक सूचना

सात्विक-जीवनका वार्षिक मूल्य ३) है, विद्यार्थियों, विद्यालयों और पुस्तकालयोंसे २); नमूनेकी कापी के लिये ।) आना आवश्यक है।

ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें, अन्यथा पत्रोत्तरमें विलम्ब और उचित कार्यवाहीमें असुविधा होगी।

# जीवनको उन्नत बनानेवाले हमारे कुछ प्रकाशन

## ( १ ) जीवन सौरभ—

प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि साधारण परिस्थितिमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको पढ़ें और अपनी सन्तानों के हाथमें दें। मूल्य केवल ।-)।

## ( २ ) देशके नौनिहालोंसे—

नवयुवकों एवं छात्र तथा छात्राओंके लिये अनुपम उपहार। उन नवयुवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशकी आशा है, जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं; अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। मूल्य केवल -)

## ( ३ ) सदाचार का महत्त्व—

पुस्तक के सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय। सदाचार ही जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी कुञ्जी है; इसको कौन नहीं जानता। पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हुए हैं तथा अपनी और देशकी हानि कर रहे हैं वह सर्व विदित है। जो भारत संसारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसीलिये उसका पतन हो गया है। इस समय देशके युवकोंको सन्मार्गपर ले जानेकी आवश्यकता है। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल -)

## ( ४ ) स्वास्थ्य-पत्र—

यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ रहना ही मृत्यु है तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक धनहीन स्वस्थ जीवन दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्ग-तुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुखपूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है। २०"×३०" साइजके इमिटेशन आर्ट पेपरपर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बंधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है, इसलिये कि यह एक स्थायी चीज हो जाता है। मूल्य केवल =)

## ( ५ ) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास

स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है वह व्यर्थ ही जीवन-यापन करता है। जो देशके प्रति कुछ त्याग नहीं करता वह पशु सदृश है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र-सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन तो अवश्य हुआ है, किन्तु संक्षेपमें, सबके योग्य सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

## ( ६ ) कांग्रेस चार्ट—

इसमें बड़े सुबोध और सरल ढङ्गसे कांग्रेसके जन्मकालसे लेकर अबतकके अधिवेशनोंका विवरण, सभापति, स्थान, समयकी सूचना और किस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमिटेशन आर्ट पेपर पर साइज २०"×३०" दो रङ्गोंकी मनोहर छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। **जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०,** "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# दो भाव-पूर्ण कहानियां

लेखक—स्व० श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर

ये दो कहानियां स्व० महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोरकी यहां दी ज़ाती हैं। कहानियां यद्यपि छोटी है परन्तु भाव-गाम्भीर्य और कलाकी दृष्टिसे लाजवाब हैं। अपनी अद्भुत्, जन्मजात प्रतिभाके बलपर गागरमें सागर भरनेका सफल और अभिनन्दनीय प्रयास महाकविने किया है।

—संपादक।

हिन्दी रामायणके अमर कलाकार, सन्त शिरोमणि, रामके अनन्य भक्त सन्त तुलसीदास, आध्यात्मिक विचारोंमें डूबे हुए, श्मशानके निकट, गङ्गाके किनारे घूम रहे थे।

उन्होंने देखा कि एक नवयौवना विविध प्रकारके बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र धारण किए अपने मृत पतिके शवके पास बैठी है।

ज्यों ही उस तरुणीने एक महात्माको अपने सामने देखा वह उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़ कर कहने लगी—"भगवन्! मुझे आशीर्वाद दीजिए कि अपने पतिका अनुसरण कर स्वर्गलोक की अधिकारिणी बनूं।

सन्त तुलसीदासने कहा—"पुत्री! इतनी जल्दी क्यों, क्या यह पृथ्वी उस लीलाधर, करुणावरुणालय भगवान्‌की नहीं है, जिसने स्वर्ग बनाया है।

उस अबोध. बालाने लजाते हुए कहा—"महात्मन्! मुझे स्वर्गकी ज़रा भी कामना नहीं है; मैं तो केवल अपने पतिदेवको चाहती हूं।

तुलसीदासजी मुस्कराये और मधुर स्वरमें कहने लगे—"पुत्री! अपने घर वापिस जाओ, एक महीनेके बाद तुम्हें अपने पतिदेवता मिल जाएँगे।

वह बाला अपने हृदय-मन्दिर में आशाका दीपक जलाए वापिस चली गई। तुलसीदासजी प्रतिदिन उसके घरपर जाते थे और उसे भक्तिरसका आध्यात्मिक प्रेमसंपन्न उपदेश दिया करते थे। धीमे २ सत्संगति और सदुपदेशोंके प्रभावसे उसका हृदय भगवद्प्रेमसे भरने लगा।

अभी महीना समाप्त होनेको भी नहीं आया था कि उसकी पड़ोसिने आकर उससे पूछने लगी "क्यों देवी! तुम्हें अपने पतिदेवता मिल गए हैं क्या।"

वह तरुणी, जिसका सुहाग उसके यौवनमें ही लुट गया था हंसने लगी और उसने कहा—"हां, बहिन मुझे अपने पतिदेव मिल गए हैं।

उसकी पड़ोसिनोने बड़ी उत्सुकतासे पूछा—"तो फिर वे कहाँ है?

उस तरुणीने अपने हृदयपर हाथ रखते हुए कहा—"मेरे स्वामी मेरे हृदयदेशमें विराजमान हैं, वे मुझमें इस तरह घुल मिल गए हैं. जिस तरह दूध में पानी।"

( २ )

जब श्रावस्ती में जोरोंका अकाल पड़ा तो भगवान् बुद्धने अपने शिष्योंको सम्बोधन करके कहा—"भूखोंको भोजन खिलानेका जिम्मा तुममेंसे कौन लेगा?"

बैंकर रत्नाकरने अपना सिर झुकाते हुए निराशा भरे स्वरमें कहा—"भूखोंको भोजन करानेके लिए जितनी धनराशि मेरे पास है, उससे कई गुना अधिककी ज़रूरत है।"

प्रतिष्ठित सेनानायक जयसेन बोले "मैं बड़ी प्रसन्नतासे इस शुभकार्यके लिए अपना जीवन तक

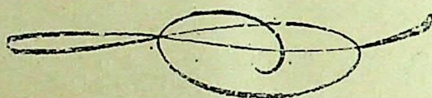
अर्पण कर सकता था परन्तु मुझे दुःख है कि मेरे घरमें पर्याप्त भोजन सामग्री नहीं है।"

ज़मीदार धर्मपालने जिनकी हजारों बीघा ज़मीन थी, सर्द आहें भरते हुए कहना शुरू किया—"इस बार वृष्टि न होनेसे मेरे सारे खेत सूख गए हैं, पता नहीं मैं इस वर्ष राजकर कैसे अदा करूंगा।"

सबसे अन्तमें भिखारीकी लड़की सुप्रिया उठ खड़ी हुई। उसने सबके सामने सिर झुकाकर नम्रता-से कहा—"मैं भूखोंको भोजन खिलाऊंगी।"

सब एकाएक आश्चर्यान्वित होकर उसकी तरफ़ ताकने लगे और लगे कहने कि किस तरह तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करोगी, ज़रा हमें भी बताओ।

सुप्रियाने कहना शुरू किया—"मैं तुम सबसे गरीब हूं, यही मेरी ताकत है; मेरी निर्धनता ही मेरा धन है। मैं अपना टूटा फूटा प्याला लेकर तुम सबके द्वारपर भूखोंके लिए भिक्षा मांगूगी।



# निद्राविज्ञान

ले० —कविविनोद ठाकुरदत्त शर्मा, आविष्कारक अमृतधारा

प्रस्तुत लेख पहले शृङ्खला रूपमें सात्विक-जीवन के कई अंकोंमें छपता रहा है। यह लेख विशालकाय लेखका एक छोटासा हिस्सा है जिसमें विद्वान् लेखकने गाढ़ निद्रा लानेके उपायोंपर प्रकाश डालनेके साथ २ निद्राके सम्बन्धमें अन्य भी बहुतसी बातों यथा सोनेका कमरा कैसा हो; वायुके आवा-गमनके लिए किस प्रकारका प्रबन्ध किया जाय, मकान बनवाते समय किन बातोंका ख्याल करना चाहिए आदिका पूर्ण विवेचन किया है। —संपादक।

## गाढ़ निद्रा कैसे आए

किसी साधारण पुस्तकको जिसमें आवेश आदिकी कोई बातें न हों और जिसके लेखसे कुछ मनोरंजन भी हो उस पुस्तकको चुपचाप पढ़ना भी नींद ले आता है। विद्यार्थी जब किसी ऐसे विषयकी पुस्तक जो वह नहीं समझ सकता है ले बैठता है, तो वह दिनमें भी सो जाया करता है।

मिस्टर पेर्या अपनी प्रसिद्ध डायरीमें लिखता है, जब उसको नींद न आया करती थी तो वह किसी दूसरे व्यक्तिको पढ़नेके लिये कहता और उसको सुनता हुआ वह शीघ्र सो जाता। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि सबसे बढ़कर गाढ़ी नींदके लिये व्यायाम आवश्यक है। श्रमजीवी थके मांदे रातको पत्थरोंपर भी सो जाते हैं।

व्यायामके बिना जब स्वस्थ जीवनयात्रा ही अस-म्भव है तो गाढ़ी नींद कैसे आ सकती है मिस्टर सिडनी स्मिथ क्या अच्छा लिखता है—

"यदि एक सुन्दर तथा पुष्ट शरीर दिखाई दे तो समझ लो कि यह व्यायामका परिणाम है। क्योंकि व्यायामके बिना पुष्टता तथा स्वास्थ्य असम्भव है। यों तो दैनिक व्यायाम पर्याप्त मात्रामें उचित है और स्वास्थ्य तथा दीर्घायुष्यका वास्तविक रहस्य यही है

परन्तु निद्रा प्राप्त करनेके लिये थोड़ा व्यायाम भी पर्याप्त होता है। यथा दैनिक खुली वायुमें भ्रमण निद्रा लानेके लिये पर्याप्त सिद्ध हुआ है। और जो लोग प्रतिदिन सांझ समय खुली वायुमें लम्बा भ्रमण करते हैं वह जानते होंगे कि उनको कैसी मीठी नींद आती है। लेखक (क्लर्क) व्यापारी (दुकानदार) आदि जिनका सारा दिन बैठे रहनेका काम है। उनको दैनिक कोई न कोई व्यायाम अवश्य करना चाहिये।

अस्तु! जिन लोगोंके धन्धे (पेशे) ही ऐसे हैं कि दिनभर व्यायाम होता रहता है वे यदि व्यायाम न भी करें तो भी गाढ़ी नींद आ जावेगी।

भ्रमण (सैर) एक उपयोगी व्यायाम है शरीरकी गति होनेके कारणसे सांस अधिक आता है। और बाहरकी खुली वायु शरीरके भीतर जाकर शरीरको स्वच्छ करती है। और थोड़ीसी थकावट नींदके लिये पर्याप्त हो जाती है। नाव चलाना और घोड़ेपर सवार होना और खुली वायुमें दौड़ना भी लाभदायक है। गाड़ीपर चढ़कर भ्रमणके लिये जाना कोई व्यायाम नहीं है।

## शयनागार हवादार हो

सोनेके कमरेमें शुद्ध वायुका आते रहना अत्यन्त

आवश्यक है। कहते हैं कि जापानमें सोनेके कमरेकी खिड़कियां खुली रक्खी जाती हैं और प्रातः उठकर वह लोग इसी खिड़कीमेंसे मुख बाहिर करके कई लम्बे सांस खुली वायु के लेते हैं। प्रत्येक व्यक्ति जिसने वायुकी आवश्यकताको भलीभांति प्रतीत किया है, जानता है कि सोते जागते हमको सदा ताजा और खुली वायुकी आवश्यकता है; वायुको बन्द करना और विशेषतः जब कि कमरेमें अधिक व्यक्ति सोये हों, कभी २ बहुत ही हानिकारक परिणाम उत्पन्न करता है। कभी २ तो इस खुली वायुकी न्यूनताके कारण मौतें भी हुई हैं।

हम जो सांस लेते हैं तो उससे वायु विकृत हो जाती है अतः विकृत वायुके निकलने और उत्तम ताजा वायुके प्रविष्ट होनेके लिये प्रबन्ध अत्यन्त आवश्यक है और यह प्रबन्ध बड़ी सुगमतासे किया जा सकता है।

सरदी अधिक हो, सोनेके कमरेमें बिस्तरेके साथ की खिड़की खुली रहना आवश्यक नहीं। हमने वायुके आवागमनका प्रबन्ध करना है। बिस्तरेके पासकी खिड़की खुली रहनेसे किसीको प्रतिश्याय और शिरः शूल हो जानेसे निद्राभङ्ग होनेकी आशङ्का है। कमरेके वातायन (रोशनदान) जो छतके पास होते हैं वह खुले रहें, जिससे कि विकृत वायु जो कि सांसके द्वारा निकलनेके कारणसे उष्ण भी होती है, और उष्ण होनेके कारणसे हलकी, ऊपरको जाकर इन वातायनोंसे निकल जावे। वायुके आगमनके लिये बिस्तरेसे कुछ दूरकी खिड़कीको खुला रक्खें अथवा द्वारोंके साथ ऐसी जालियां लगावें कि वायु आती रहे। यदि कमरा खुला रखना उचित न हो तो खिड़कीमें जो खुली रखनी है सीखें लोहेकी लगावें कि कोई आ जा न सके। यदि बहुत सरदी हो तो जिस कमरेमें सोते हैं उसके साथके कमरेकी खिड़कियां अथवा द्वार खुला रक्खें। यह भी वायुके आगमनका कारण होगा। जो लोग हर मौसम बाहर बरामदेमें सोनेका अभ्यास कर लें उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहेगा।

विकृत वायु जब वातायनसे निकले और कमरेकी वायु न्यून हो तो वह सब ओरसे भीतर प्रविष्ट होनेका यत्न करेगी। यदि सोनेवालेके साथकी खिड़की अथवा द्वार खुला रहे तो वायुका झोंका, अचानक तीव्र वायुका चलना आदि बहुतसी बातें उसकी नींदको उचाट कर सकती हैं।

ग्रामोंमें ऐसे घर देखनेमें आते हैं कि जिनमें वातायन नहीं होते। छतमें एक छोटासा वातायन ही होता है और भूलसे इसको भी बन्द रक्खा जाता है। कच्चा घर बनाते समय ध्यान रक्खें कि वातायन अवश्य रक्खे जावें। जैसा कि बहुतसे घरोंमें देखनेमें भी आते हैं। विलायतमें वायुके आवागमनके लिये कमरोंमें पंखे भी लगाये जाते हैं और हमारे धनाढ्य लोग ही ऐसा कर सकते हैं।

सोनेमें सांस अधिक आता है और इसीलिये सोते समय वायुकी थोड़ी आवश्यकता नहीं हो सकती है। अतः सोनेवाले कमरेमें वायुके आवागमनका पर्याप्त प्रबन्ध करना चाहिये। स्मरण रक्खो कि जितना तुम सरदीसे डरोगे उतनी सरदी तुम्हारे पीछे पड़ेगी और यदि तुम सरदी सहनेके अपने आप को अभ्यस्त बनाओगे तो तुम सरदीसे बचे रहोगे। सरदीसे डरने वालेको सरद वायुका एक झोंका रोगी कर सकता है। इसके अभ्यस्त शीतलसे शीतल वायुमें आनन्द रहा करते हैं।

# मस्ती की तरङ्ग में

प्रिय पाठक-वृन्द !

जैरामजीकी ।

भगवान् आपको सदा रेज़गी और गेहूं दिलाते रहें यही उनसे करबद्ध प्रार्थना है। क्या गज़ब है, जिस ब्रिटिश राजमें कभी सूरज अस्त नहीं होता था, वहां आज रेज़गी जैसी क्षुद्र वस्तु ईदका चांद हो रही है। पांच छः आनेकी रेज़गी मिलनेपर ऐसे खुशी होती है जैसे कोई उपनिवेश (Colony) मिल गया हो। और तो और कई बार केवल रुपया तुड़ानेकी खातिर ही दो आनेके बजाय आठ आनेका सौदा ख्वामख्वाह लेना पड़ता हैं। एक बारका जिक्र है, मेरे एक दोस्त नमक, हल्दी मिर्चकी गठरी बांधे लिए जा रहे थे। चौकमें एकाएक अपने रामकी उनसे मुलाकात हो गई। हल्दी, मिर्चके बंडलको देखते ही अपने रामके मुंहसे एकाएक निकल पड़ा "क्यों भाई ! क्या पंसारीकी दुकान खोलनेका इरादा किया है, इतना असबाब लादे लिए जा रहे हो" दोस्त ज़रा अफ़सोस करते हुए और ब्रिटिश राजको दुआएँ देते हुए बोले—"भाई ! क्या करें, रुपया नहीं टूटता था, इसलिये पूरे रुपयेका सौदा लेना पड़ा है" यह तो हुआ रेज़गीका हाल। अब ज़रा गेहूंका हाल सुनिए। आज कल नई फ़सल आनेसे गेहूं देवताके जरूर दर्शन होने लगे हैं; परन्तु चन्द महीने पहले गेहूं देवता भगवान्की तरह निराकार थे, अगर किसीको केवल गेहूंके दर्शन ही हो जाते तो वह अपना धन्यभाग समझता था और इसे पूर्व जन्मके पुण्योंका फल बतलाता था। थोड़ेसे गेहूंके लिए दुकानदारोंको खुशामदके इंजैक्शन देने पड़ते थे। गेहूंके व्यापारी इस तरह ऐंठ कर चलते थे, जैसे सबकी किस्मतका फैसला इनके हाथमें हो। अब खुदाकी मेहरबानीसे जरूर रुपएका पौने तीन सेर गेहूं बाबा विश्वनाथकी नगरीमें मिल जाता है; पर चन्द महीनों बाद गेहूं देवता फिर अज्ञातवास करनेवाले हैं, ये अपने राम अभीसे भविष्यवाणी किए देते हैं।

इस लंबी चौड़ी भूमिकासे आपके दिमागेशरीफ़में यह बात अच्छी तरह बैठ गई होगी कि क्यों अपने रामने आपके लिए रेज़गी तथा गेहूंकी प्रार्थना की। अपने राम आपके लिए सदा ऐसी ही प्रार्थनाएं किया करेंगे, जिनसे आपकी कार्य सिद्धि हो। अच्छा अब ज़रा चिट्ठीकी कहानी भी सुनिए।

उस दिन अपने राम मटरगश्ती करते २ गङ्गा पार पहुंच गए थे, वहां उन्हें एक पहुंचे हुए महात्माके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ। महात्माजीके दर्शनोंसे अपने रामको इतनी खुशी हुई जितनी वावेल साहिबको भारतवर्षके वायसरायकी महन्तगिरी मिलनेपर हो रही है (वायसरायके पदकी तुलना हम महन्तोंकी गद्दीसे करते हैं, जिस तरह आजकलके महन्तोंको दो चार वैदिक मन्त्र कण्ठस्थ होते हैं, उसी तरह हिन्दुस्तानके वायसरायको भारतसचिवमहास्तोत्र घुटा होता है, यानी वे भारतमंत्री या ब्रिटिश प्रधानमन्त्रीके ग्रामोफोन रिकार्ड होते हैं) या मियां जिन्नाको पाकिस्तानके ख्याली पुलाव पकानेमें होती है, या लीडरों

को मेजतोड़ व्याख्यान झाड़नेपर खुशी होती हैं। अपने रामका महात्माजीसे जो वार्तालाप हुआ, उसे ज्योंका त्यों बिना किसी मिलावटके आपकी श्रीसेवामें लिखा जाता है।

मैं—महात्माजी, कलजुगका कब अन्त होगा और सतजुग कब शुरू होगा।

महात्माजी—बच्चा ! कलजुग तो केवल पराधीन देशोंके लिए है। स्वतन्त्र राष्ट्र तो कलजुगका नाम तक नहीं जानते, उनकी डिक्शनरीमें कलजुग कोई शब्द ही नहीं है। उनके लिए तो हमेशा सतयुग ही सतयुग है।

मैं--महात्माजी ! तो हमारे देशसे कब कलजुगका महाप्रयाण होगा और सतजुग आएगा।

महात्माजी—बेटा, जिस दिन भारतभूमिपर अंग्रेज व्यापारियोंने पैर रक्खा, उसी दिनसे यहां कलजुगका प्रारम्भ हुआ। हमारे देशका सोना जहाजोंमें लद २ कर विलायत जाने लगा। हमी अपने देशमें कुलीगिरी और क्लर्की करने लगे, तभी कलजुगका आरम्भ हुआ। जिस दिन अंगरेज महाप्रभु अपना तशरीफ़का टोकरा यहांसे ले जाएंगे, उसी दिन सतयुगका आरम्भ होगा।

मैं—महात्माजी ! हिन्दुस्तानको स्वराज्य कब मिलेगा।

महात्माजी—बच्चा ! हिन्दुस्तानियोंको स्वराज्यकी जरूरत ही क्या है ? डेढ़ सौ बरसों तक बिना स्वराज्यके तुम लोगोंका काम चलता ही रहा है। फिर भारतवर्षकी फ़िलासफ़ी ही यही है, संसार माया, मोह है, मिथ्या है। स्वराज्य भी मिथ्या हुआ। मिथ्या चीज़की प्राप्तिमें फिर क्या प्रयत्न ?

मैं—महात्माजी ! अब तो हम स्वराज्यकी आवश्यकता महसूस करने लगे हैं।

महात्माजी—बच्चा ! अभी सच्चे दिलसे अबतक भी तुम लोगोंने स्वराज्यकी आवश्यकता अनुभव नहीं की। जिस दिन सच्चे दिलसे स्वराज्य प्राप्तिकी कामना करोगे ; उस दिन संसारकी कोई भी ताकत स्वराज्यको आनेसे रोक नहीं सकती।

मैं—महात्माजी ! अच्छा, यदि सच्चे दिलसे स्वराज्यके लिए कोशिश करते रहें तो फिर कबतक मिल जाएगा।

महात्माजी--तुमलोग तो ऐसे समझते हो, जैसे स्वराज्य खरबूजेकी तरह तश्तरीमें रक्खा हुआ लन्दनसे आएगा। आधा स्वराज्यका खरबूजा तो पहले मियां जिन्ना और मुसलीम लीगके हवाले कर दिया जाएगा, दूसरे आधे हिस्सेको पहले गान्धीजी, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आज़ाद तथा कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीके सदस्य चखेंगे और बादमें दूसरे आदमी।

मैं—महात्माजी ! आप तो हमारी हँसी उड़ाते हैं।

महात्माजी—बच्चा ! मैं तुम्हारी हँसी नहीं उड़ा रहा हूं, जो बात ठीक है, वही कह रहा हूं। जिस देशमें लड़के लड़कियोंका विवाह गुड़ियोंका खेल हो ; जहां दहेजके नामपर बिज़नैस होता हो, जहां विवाह जैसा पवित्र कार्य रुपयोंके मोल तोलसे होता हो ; जहां नारी जातिकी सर्वथा उपेक्षा की जाती हो, क्या वह देश स्वराज्यके योग्य है ?

मैं—महात्माजी ! लीडरका क्या लक्षण है ?

महात्माजी—बच्चा लीडरका लक्षण निम्न है—

लैक्चरसे दुनियां ठगें, टी पार्टीमें जांय
बड़े लाटसे हाथ मिला, लीडर लोग कहांय

लीडरकी और भी बहुतसी पहिचानें हैं—जो हमेशा सैकेण्ड क्लासमें सफर करता हो, हर दूसरे तीसरे रोज़ अखबारोंमें वक्तव्य निकालता हो, ग्रामीणों के प्रति लच्छेदार, शाब्दिक सहानुभूति रखता हो पर जिसने गांव केवल हिन्दुस्तानके नक्शेमें ही देखे हों। जिसे देशके लिए दुःख, दर्द तो बहुत हो परन्तु इससे उसके आराममें कोई फर्क न पहुंचता हो। महाकवि अकबरका शेर तुम्हें याद होगा।

कौमके ग़ममें डिनर खाते हैं, हुक्कामके साथ,
ग़म लीडर को बहुत है, मगर आराम के साथ।

मैं—महात्माजी सच्चा धर्म किसे कहते हैं ?

महात्माजी - बड़े लोग धर्मकी तुलना चूरनसे और दुनियाकी रोटीसे देते हैं। धर्मरूपी चूरनसे दुनियारूपी रोटी बहुत जल्द हज़म होती है।

फरमा गए हैं, खूब भाई घूरन
दुनिया रोटी है और मज़हब चूरन।

मैं—महात्माजी ! अपने २ धर्मको फैलानेके लिए किन उपायोंका अवलम्बन लेना चाहिए।

महात्माजी बच्चा ! आजकल धर्म भी प्रौपेगेण्डाकी चीज़ है। जो अपने धर्मका जितना अच्छा प्रौपेगेण्डा कर सकता है, उसका धर्म भी उतनी तेजीसे फैलता है। धर्मके प्रौपेगेण्डाके लिये उपदेशकरूपी ग्रामोफ़ोनके रिकार्ड जिसके पास जितने अधिक होंगे, उसका धर्म भी कद्दूकी बेलकी तरह फैलेगा।

मैं—महात्माजी ! हिन्दुस्तानमें अब भीम, अर्जुन, राणा प्रताप और शिवा क्यों नहीं पैदा होते।

महात्माजी—बच्चा ! राणा प्रताप और शिवा बननेके दिन अब लद गए। क्या कहीं गंगाजल मिले दूधके और वेजीटेबल घीके सेवनसे आदमी भीम और अर्जुन बना करते हैं।

मैं—महात्माजी ! पाकिस्तानके बारेमें आपके क्या विचार हैं।

महात्माजी—पाकिस्तानकी कल्पना, कल्पनाकी दृष्टि से तो बड़ी अच्छी है, परन्तु है सर्वथा निकम्मी और बेमतलब की। जिस तरह बेसिर पैर की, ऊटपटांग छायावादी कविता-का कोई अर्थ नहीं होता, उसी तरह पाकि-स्तानकी कल्पना भी सर्वथा निरर्थक है। यदि फिर भी मियां जिन्ना पाकिस्तानकी स्थापना पर उतारू हो गए हैं तो इसके परीक्षणके लिए उन्हें सहाराका रेगिस्तान दे दिया जाय। सहाराके रेगिस्तानकी लेबोरेटरीमें वे बड़े शौकसे पाकिस्तानका परीक्षण कर सकते हैं। वहां वे जाकर ऊंट चराएं, खजूरें खाएं, शोरबोंकी प्यालियोंपर हाथ साफ़ करें और साथमें अपने मुसलिम लीगके चेले चपाटोंको भी लेते जावें।

अपने रामकी महात्माजीसे और भी बहुतसी बातें हुई, जिन्हें फिर कभी आपकी सेवामें निवेदन किया जाएगा। अच्छा, जैरामजीकी। अलविदा।

आपका
लहरी



# सात्विकजीवन-ग्रन्थमाला

## ब्रह्मचर्य नाटक

प्रथम पुष्प—रङ्गमञ्च पर सफलता-पूर्वक अभिनीत यह नाटक अपने ढङ्गका निराला और बेजोड़ है। हमारे आन्तरिक असुर किस प्रकार पराजित हो सकते हैं, हम किस प्रकार अपनी दुर्वासनाओंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं, इसका विवरण यदि आप प्राप्त करना चाहते हों तो इस पुस्तकको अवश्य देखिये। कागज, छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य केवल ।।)

## आध्यात्मिक शिक्षावली

द्वितीय और तृतीय पुष्प—आध्यात्मिक विकासके लिये इनसे अच्छा ग्रन्थ हिन्दीमें नहीं है। हिन्दू-धर्म और अध्यात्मवादका ज्ञान थोड़ेमें प्राप्त करनेके लिये ये पुस्तकें सर्वोत्तम हैं। इन पुस्तकोंमें गागरमें सागर भर दिया है। आज ही मंगा कर पढ़िये। कागज,छपाई, गेट-अप अत्युत्तम। मूल्य प्रथम खण्ड ।।।) द्वितीय खण्ड ।।।)

## सचित्र हठयोग ( सजिल्द )

चतुर्थ पुष्प—( आसनोंके ३८ चित्रों सहित )—आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा एवं यौगिक क्रियाओं द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ले जानेवाली अनुपम और प्रामाणिक पुस्तक। इस एक ही पुस्तकसे जो लाभ उठाया जा सकता है, वह अन्य कई पुस्तकें पढ़कर भी नहीं उठाया जा सकता। इसके लेखक स्वयं एक महान् योगी हैं। इस विषयकी ऐसी पपयोगी पुस्तक दूसरी नहीं है। मूल्य केवल १।), स्थायी ग्राहकोंसे १)

## स्वामी शिवानन्दजी की जीवनी और उनके उपदेश ( अंग्रेजीमें )

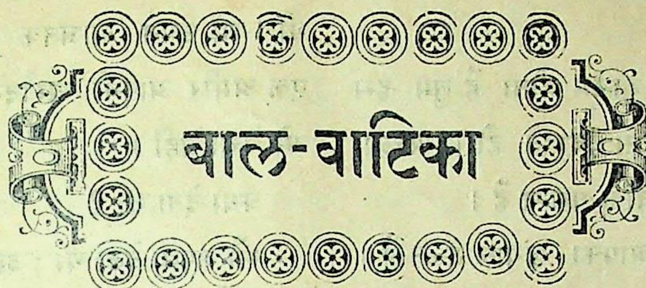
पञ्चम पुष्प—प्रस्तुत पुस्तकमें श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराजकी जीवनी और उनके उपदेशोंका सार संगृहीत है। स्वामीजीकी जीवननी तथा उनके उपदेशोंका एक ही स्थानपर संग्रह करनेका अभिप्राय यही है कि लोग उनके जीवनकी घटनाओंको उनके उपदेशोंके प्रकाशमें देखें और अपने जीवनको भी तदनुकूल बनानेका प्रयत्न करें। यह पुस्तक विशेषकर उन लोगोंके लिये लिखी गयी है जो स्वामीजीके सभी ग्रन्थ नहीं खरीद सकते। पुस्तकमें प्रयुक्त भाषा सरल तथा सुबोध है। साधारण अंग्रेजी जाननेवाला व्यक्ति भी अच्छी तरह समझ सकता है। बीसों चित्रोंसे सुशोभित सजिल्द पुस्तकका मूल्य केवल १।।)

**स्थायी ग्राहकों तथा थोक खरीददारोंको पर्याप्त कमीशन दिया जायगा**

प्रकाशक—

## जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड

८३, पुराना चीना बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता। शाखा—प्रिण्टिङ्ग हाउस, हौजकटरा, बनारस।



# नेकीका बदला

ले०—श्री सुदर्शन

( १ )

एक शहरमें जुम्मन कबाड़िया रहता था। वह बड़ा गरीब था पर था, बड़ा ईमानदार। अपने ग्राहकोंसे एक ही दाम करता था; कम या अधिक लेना उसे न आता था। दूसरे कबाड़िये आठ आनेकी चीज़ दो रुपयेमें बेचा करते थे किन्तु जुम्मन इतना अधिक लाभ उठाना भी पाप समझता था, और एक रुपये की चीज़का एक रुपया दो आनासे अधिक कभी नहीं लेता था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी दुकान खूब चल निकली। शुरू-शुरू में तो वह मजेमें रहा और उसका तथा उसके घरका गुज़ारा होता गया। पर सबका समय एक जैसा कब रहा है! भाग्यके फेरसे एक दिन ऐसा आया जब उसके हाथमें एक पैसा भी न रहा और वह रोटीके टुकड़े २ को मुहताज हो गया। बेचारा सारा-सारा दिन दुकानपर बैठा रहता था, किन्तु न कोई ग्राहक आता था, न कोई चीज़ बिकती थी। मकानका मालिक किराया मांगकर तंग आ गया, पर जुम्मनके पास कुछ होता तो देता। हारकर मकान मालिकने कह दिया कि यदि बीस तारीखतक तुमने किराया न चुका दिया तो मैं नालिश कर दूंगा। तुम्हें दुकान खाली कर देनी पड़ेगी। यह सुनकर जुम्मनके चेहरेका रंग उड़ गया। पर इससे क्या होता था? सोचा, जो होगा, देखा जायगा, अब तो लाज परमात्मा ही के हाथ है।

( २ )

अठारह तारीख तक बेचारे जुम्मनके पास किराया न जमा हुआ। जो चार पैसे आते थे खानेपर खर्च हो जाते थे। वह सोचमें था कि क्या करूं और क्या न करूं? उसी अठारह तारीखकी शामको एक अमीर आदमी उसकी दुकान पर आया और बहुत देर तक उसकी चीजें देखता रहा। मगर उसे कोई भी चीज़ पसन्द न आई और वह वापिस जाने लगा। एकाएक उसकी नज़र आलमारीके ऊपर रक्खी हुई एक सन्दूकचीपर पड़ी। वह जाते-जाते रुक गया और जुम्मनसे बोला—वह सन्दूकची कैसी है? ज़रा दिखाओ तो।

जुम्मनने सन्दूकची उतार कर उसके हाथमें रख दी और कहा देख लीजिए, किन्तु मैं इसे बेच नहीं सकता।

अमीर आदमी सन्दूकची देखकर बड़ा खुश हुआ। यह सन्दूकची न लकड़ी की थी न लोहेकी, किन्तु थी बड़ी खूबसूरत और किसी विचित्र ही धातुकी बनी हुई। उसके पेंदे पर किसी देवताकी मूर्ति बनी हुई थी, जिसके मुंहसे आगकी ज्वाला निकलती मालूम होती थी। उस अमीरने कहा बोलो इसके लिए क्या दूं?

जुम्मनने उत्तर दिया—खेद है कि मैं इस सन्दूकचीको नहीं बेच सकता।

अमीर आदमीने कहा—मालूम होता है तुम इस तरीकेसे इसकी कीमत बढ़ाना चाहते हो। अच्छा, बोलो क्या लोगे? मुझे यह चीज़ पसन्द है।

जुम्मनने जवाब दिया—आपका ख़याल ग़लत है। मैं इसे सचमुच नहीं बेच सकता।

पचीस रुपए।

नहीं।

पचास रुपए।

जी नहीं।

अमीर आदमीने थोड़ा रुक कर कहा—एक सौ रुपए।

इस समय जुम्मनके लिए एक-एक रुपया एक-एक मोहर थी। अगर उसे सौ रुपया मिल जाता तो उसका सारा दुःख दूर हो जाता; किन्तु उसने फिर भी यही जवाब दिया—जनाब, सच्ची बात यह है कि यह मेरी सन्दूकची नहीं है, फिर मैं इसे कैसे बेच सकता हूं?

अमीर आदमीने कहा—सम्भव है, कल तुम इसे बेचनेको तैय्यार हो जाओ। इसलिए मैं एक बार फिर आऊंगा। तबतक तुम्हें जो कुछ सोचना हो सोच रखना।

यह कहकर वह दुकानसे निकला और अपनी गाड़ीमें बैठ कर चला गया।

( ३ )

रातको जब जुम्मन घर गया तो अपनी स्त्रीसे बोला—तुम्हें याद होगा, पांच छः साल हुए हमारे पड़ोसमें एक लड़की रहती थी जिसका नाम नईमा था। जब उसकी माँ मरी थी तब हमने उसे कई सप्ताह अपने यहां ठहरायी था।

जुम्मनकी स्त्रीने जवाब दिया—हां, हां मुझे वह घटना अच्छी तरह याद है।

जुम्मनने कहा—शायद तुम्हें यह भी याद होगा कि वह अपनी एक सन्दूकची हमारे पास छोड़ गई थी। जो उसने आजतक नहीं मंगवाई। आज उसे एक अमीर आदमी खरीदना चाहता था, मगर मैंने उसे बेचा नहीं।

क्या देता था?

सौ रुपया देता था; शायद इससे ज्यादा भी दे देता।

तुमने बड़ी भूल की। उसे बेच देते तो वारे-न्यारे हो जाते। पैसे-पैसेके लिए दूसरोंका मुंह देखना पड़ता है। हमसे इतनी ईमानदारी कैसे निभ सकेगी? अब उस लड़कीको उसकी जरूरत भी न होगी और यह भी तो पता नहीं कि वह जीती है या मर गई है।

जुम्मनने जवाब दिया—यह सब कुछ ठीक है। मगर जो चीज हमारी नहीं, उसे हम कैसे बेच सकते हैं?

और फिर परसों किरायेका क्या करोगे?

जो होगा देखा जायगा।

ईमानदारी न छोड़ोगे किन्तु बदनामी सह लोगे?

बेईमानीसे बदनामी हजार दर्जे अच्छी है। बदनामी सह लूंगा, पर बेईमानी तो मुझसे कभी न होगी।

( ४ )

वे दोनों बातें कर ही रहे थे, कि इतनेमें दरवाजे पर किसीने आवाज़ दी। जुम्मनने दरवाजा खोला तो एक नवयुवती स्त्री भीतर दाखिल हुई, जुम्मनने उसे देखते ही पहिचान लिया। यह वही नईमा थी, जिसकी संदूकची वह अमीर आदमी ख़रीदना चाहता था।

नईमाने कहा—तुम्हारे पास मेरी एक धरोहर पड़ी है।

जुम्मनने उसी समय जाकर दूकान खोली और वह सन्दूकची लाकर नईमाके हाथपर रख दी।

नईमाने उसे खोल कर उसके पेंदे पर हाथ फेरा और जुम्मनसे कहा—ज़रा चिराग़ तो लाना।

जुम्मन चिराग़ लाया और नईमाने उसपर बनी हुई तसवीरके सिरपर हाथ रख कर जोरसे दबाया। पेंदा दबनेके साथ ही ऊपर उठ आया और उसके भीतरसे एक कागज़ निकला। उसमें लिखा था कि हमारे मकानमें वृक्षके नीचे एक बर्त्तन दबा है। उसमें कई हजारके गहने पड़े हैं। जब तुम्हें जरूरत पड़े तो निकाल लेना।

यह नईमाकी मांके हाथका लिखा हुआ था। नईमाने अपने मकानका दरवाजा तोड़ा और वृक्षके नीचेकी जमीन खोदी तो सचमुच गहनोंसे भरा हुआ बर्त्तन निकल आया। यह देख नईमाकी खुशीकी कोई सीमा न रही; वह एकदम उछलने लगी।

इसपर जुम्मनने नईमासे कहा—बेटी! आज एक अमीर आदमी इसके लिए एक सौ रुपया दे रहा था, किन्तु मैंने इसे बेचनेसे साफ़ इन्कार कर दिया। अगर बेच देता तो तुम्हारा बड़ा नुकसान होता।

नईमा उसकी ईमानदारीपर बड़ी खुश हुई और कहने लगी कि यदि आप यह सन्दूकची बेच देते तो मेरा नुकसान क्या बिलकुल सत्यानाश ही हो चुका था। मुझे कल मेरी मासीने बताया कि तुम्हारे पास जो सन्दूकची थी उसकी तहमें कोई कागज है। मुझे याद पड़ता है, कि उसमें तुम्हारे लिए कोई खास बात लिखी है और आश्चर्य नहीं कि उससे तुम्हारा भाग्य पलट जाय। इसीलिए मैं यहां आई थी। किन्तु अगर आप जैसे ईमानदारके पास यह न पड़ी होती तो यह दौलत मुझे कभी न मिल सकती। इसलिए मैं चाहती हूं कि इनमेंसे कुछ गहने आपको अवश्य दूं।

जुम्मनने बहुत इनकार किया, किन्तु नईमा न मानी और जुम्मनको जबरदस्ती कुछ गहने देकर चलती बनी। दूसरे दिन जब वे गहने बेचे गए, जुम्मनको साढ़े सात सौ रुपए प्राप्त हुए।

यदि वह अमीर आदमीके हाथ सन्दूकची बेच देता तो उसे केवल एक ही सौ रुपया मिलता।

प्यारे बच्चो! ईमानदारी बड़ी चीज़ है। जो ईमानदार है उसका दुनियांमें बड़ा मान होता है। और बेईमानको न कोई पूछता है, न पास बैठने देता है। इसलिए ईमानदार बनो और पराए सोनेको मिट्टी समझो। फिर देखो, दुनियांमें तुम्हारी कितनी इज्जत होती है।

# साहित्य-समालोचन

## 'जीवन-साहित्य' का गांधी-उपवास-अंक-

इस अंकके संपादक हैं श्री डा० गोपीनाथ धावन एम० ए०, पी० एच० डी०, प्रोफ़ेसर लखनऊ विश्वविद्यालय। प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल नई देहली। सवा सौ पृष्ठोंके विशालकाय विशेषांकका मूल्य है १) मात्र।

भारतीय हृदय-सम्राट् महात्मा गांधीका जीवन एक सफल सत्याग्रही कर्मयोगी और योद्धाका जीवन है। मानवताका यह पुजारी अपने सार्वजनिक जीवन कालके प्रारम्भसे ही सबसे युद्ध करता रहा है। सच्चे मानवके रूपमें महात्माजीने अपनी प्रवृत्तियों और वासनाओंसे युद्ध किया, सच्चे जनसेवकके रूपमें स्वार्थत्याग के लिए उन्होंने अपने सगे सम्बन्धियों और साथियोंसे लड़ाई ठानी और आज सच्चे स्वदेशभक्त के रूपमें वे ब्रिटिश सरकारसे मोरचा ले रहे हैं।

परन्तु महात्माजीकी युद्ध प्रणाली सबसे भिन्न और निराली है और उसके प्रबल अस्त्र हैं अहिंसा, सत्याग्रह तथा उपवास। उनकी युद्ध प्रणालीमें हिंसात्मक शस्त्रोंकी कल्पनाकी भी गुंजायश नहीं है। इसीपर किसी उर्दू के मशहूर शायरने कहा था।

इस सादगी पै कौन न मर जाए ऐ खुदा,
लड़ते हैं और हाथमें तलवार भी नहीं।

प्रस्तुत अंकमें महात्माजीकी युद्धप्रणाली के प्रमुख अस्त्र उपवासका पूर्ण वैज्ञानिक विवेचन है।

महात्माजीने अबतक अपने जीवनमें तेरह लम्बे २ उपवास किए हैं और जब कभी उनके सामने कोई विकट, पेचीदी राजनैतिक या सामाजिक समस्या उपस्थित हुई है और उसका वे कोई अन्य हल निकालनेमें असमर्थ रहे हैं, तब तब उन्होंने उपवासका आश्रय लिया है। महात्माजीके उपवास ऐतिहासिक उपवास हैं। लोकसेवा की उदात्त भावनासे प्रेरित होकर, स्वतन्त्रताके राष्ट्रीय यज्ञको सर्वथा पवित्र बनानेके उद्देश्यसे महात्माजीने समय २ पर उपवास किए हैं। अन्याय और अत्याचारका प्रतिकार करनेके लिए, भूले भटके राहगीरोंको सन्मार्गपर लानेके लिए उन्होंने उपवासका आश्रय लिया है। जब २ इस अर्धनग्न फकीरने उपवास किया सारे संसारकी आंखें इसपर लगी रहीं। अभी पिछले दिनों अक्टूबरमें जब महात्माजीने अपना २१ दिनका लंबा उपवास किया था, वे दिन भारत राष्ट्रने कितनी बेचैनी और महात्माजीके एक २ क्षणका समाचार जाननेकी प्रबल उत्कण्ठामें व्यतीत किए हैं। प्रस्तुत अंकमें इन्हीं सब बातोंका गम्भीर विवेचनात्मक वर्णन है।

उपवास जहां शारीरिक और मानसिक दृष्टिसे मनुष्यको ऊंचा उठाता है, वहां आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी इसका अपना विशेष महत्व है। आध्यात्मिक शक्ति संग्रह करनेके लिए उपवास एक प्रबल डायनमो है; और विश्व के अनेक वन्दनीय, प्रातःस्मरणीय महापुरुषों ईसा, महात्मा बुद्ध, मुहम्मद और राष्ट्रनायक महात्मा गांधीने इसका सफल प्रयोग किया है।

महात्माजीने उपवासको पूर्ण वैज्ञानिक बाना पहिना कर और उसके परीक्षणके लिए अपना जीवन तक समर्पित कर उपवासकी महत्ता और उपयोगिताको एक नए रूपमें हमारे सामने रक्खा है। इसका विस्तृत विवेचन आपको इस अंकमें मिलेगा।

इस अंकमें स्थान २ पर महात्मा गांधी, श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर और श्री महामना मालवीयजीके छोटे २ सारगर्भित वाक्य जड़ाऊ हीरोंकी तरह अपना प्रकाश फैला रहे हैं। उन दीप्तिमान हीरोंसे अंककी आत्मा उज्वल हो उठी है।

अन्तमें कई विद्वान लेखकोंके उपवासकी महत्ता और प्रयोग आदिपर चन्द सारगर्भित लेख हैं। श्री दीनबन्धु एण्ड्रूजका लेख अपनी काव्यकी अनुपम प्रतिभा लिए हृदयहारिणी भाषामें लिखा गया है; उससे धार्मिकता और प्रेमका प्रवाह फूट २ कर बह निकला है। श्री महादेव देसाई तथा भाई आनन्दवर्द्धनजीके लेख मननीय और उपादेय हैं।

अंकमें मुख्यतः महात्माजीने कब क्यों और कैसे उपवास किया; महात्माजीके उपवासके सम्बन्धमें निजी विचार और लेखोंका समावेश है; और गौण रूपेण अन्य विद्वानोंके भी उपवास सम्बन्धी लेख हैं।

विशेषांकमें महात्माजीके चित्रोंका अभाव हमें अत्यन्त खटकता है। चित्रोंसे विशेषांककी शोभा निखर आती और उसका महत्त्व बढ़ जाता। सर्वसाधन संपन्न होते हुए भी पता नहीं चित्रोंको क्यों स्थान नहीं दिया गया है।

यह अंक सर्वथा उपयोगी, उपादेय और संग्रहकी वस्तु है।

**'मन और उसका निग्रह' पर भारतवर्षके विख्यात पत्र दैनिक आज की**

# सम्मति

दैनिक 'आज' अपने २५ मई सन् १६४३ के अङ्क में लिखता है—

छान्दोग्य उपनिषद्में आता है—'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।' अर्थात् मनुष्यके बन्धन अथवा मोक्षका कारण मन ही है। वस्तुतः बात ऐसी ही है। मनका ही तो सारा खेल है। मानवके उत्थान और पतनका सारा दारमदार मनपर ही है। पर यह मन है क्या, इसका स्वरूप क्या है, इसके गुण-दोष क्या हैं, राग-द्वेष, काम-क्रोध, सुख-दुःख आदिकी वासनायें क्या हैं, मनके सङ्कल्प विकल्प क्या हैं, उसका रहस्य क्या है और उसपर काबू कैसे किया जा सकता है—यह सब हम कुछ नहीं जानते। किन्तु यदि हम मनके हाथमें अपनी, अपने शरीरकी, अपनी इन्द्रियोंकी लगाम न छोड़ देना चाहते हों तो हमारा कर्तव्य है कि मनको समझें और उसे अपने वशमें करें। मनोनिग्रह ही तो योग है। जीवनमें सफलता पानेके लिए, दुःख तथा सङ्कटमें निर्लिप्त रहनेके लिए इस बातकी परम आवश्यकता है कि हम मनको अपने कब्जेमें करें। और आध्यात्मिक क्षेत्रमें तो मनको काबूमें किये बिना कोई काम ही नहीं हो सकता। चञ्चल मन लेकर न तो साधना ही की जा सकती है, न जप तप अथवा भक्ति ही।

हृषीकेशके स्वामी शिवानन्द जीने प्रस्तुत पुस्तक लिखकर जिज्ञासु-जगत्का सच्चा कल्याण किया है। इसमें अनुभवी लेखकने बड़े ही विस्तारसे मनके रहस्य समझाये हैं। मनोनिग्रहके आपने बड़े सुन्दर उपाय बताये हैं—चित्तशुद्धि, इन्द्रिय-संयम, मौन, स्वाध्याय, सात्विक भोजन, धारणा, ध्यान, मनोलय, मनोनाश आदि। विभिन्न शास्त्रोंके मत देकर आपने सिद्ध किया है कि हमारा 'अहं' ही तो मन है, उसकी और कोई हस्ती ही नहीं। 'मन है क्या' इसपर विचार करिये और आप देखेंगे कि मनकी कलाबाजी दूर हो गयी है। पलभरमें दुनियाके एक कोनेसे दूसरे कोनेमें पहुंचनेवाला मन निरन्तर अभ्यास और वैराग्यसे ही वशमें किया जा सकता है। "जब मन शून्य होता है तो कुविचार प्रवेश करने की चेष्टा करते हैं। मनको पूर्णरूपसे लगाये रखेंगे तो बुरे विचार मनमें नहीं आयेंगे।....मनको प्रतिक्षण देखते रहें, उसको कुछ न कुछ काम देते रहें—जैसे सीना, बगीचा लगाना, बर्तन मांजना, झाड़ू लगाना, पानी भरना, पढ़ना, ध्यान करना, जप करना, प्रार्थना करना, बड़ोंकी या रोगियोंकी सेवा आदि। फालतू गपशपसे बचें।" इन्द्रियोंपर विजय-प्राप्ति, मनको वशमें रखनेमें बड़ी सहायक सिद्ध होती है। उसके लिए स्वामीजीने यह उपाय बताया है—"मिठाईके बाजारमें खूब पैसा लेकर जाओ। १५ मिनट इधर-उधर टहलते रहो। भांति-भांतिकी मिठाइयोंको ललचायी हुई निगाहसे देखो। कोई चीज मत खरीदो। उस दिन घरपर यदि उत्तम भोजन भी मिले तो उसे मत ग्रहण करो। सादा भोजन करो। ऐसा करनेसे जिह्वाको वशमें कर लोगे। अन्ततः मनको भी वशमें कर लोगे।"

**पुस्तक सुन्दर और प्रत्येक साधकके कामकी है।**

प्रकाशक - **जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लि०**

८३, पुराना चीना बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता। शाखा—"प्रिंटिंग हाउस" हौज़कटरा, बनारस।

प्रकाशित हो गया ! "ओ३म्" ।।=) प्रति ।

सात्त्विक-जीवन-ग्रन्थमाला का सप्तम पुष्प

# "ओ३म्" [ प्रणव रहस्य ]

प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता हैं, विश्व-विश्रुत योगिराज, उन्नतमना, यौगिक विद्याके प्रकाण्ड पण्डित, आध्यात्मिक धनके धनी ; अनेक आध्यात्मिक पुस्तकोंके सिद्धहस्त लेखक, देश और विदेशके अनेक मनीषी विद्वानों द्वारा प्रशंसित आदरणीय श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती ; जिनके नामसे आध्यात्मिक विषयों में थोड़ी बहुत भी दिलचस्पी लेनेवाला प्रत्येक सज्जन परिचित है और जिनकी रचनाओंको आध्यात्मिक जगत्में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

श्री स्वामीजी ने अनेकों वर्षों की साधना और तपश्चर्या के उपरान्त प्रस्तुत ग्रन्थ-रत्न का प्रणयन किया है । स्वामीजी के विषय में कुछ कहना सूर्यको दीपक दिखानेके तुल्य है ।

ॐ के निरन्तर श्रद्धापूर्वक ध्यान और जप से मनुष्य किस प्रकार इस संसार सागर को पार कर सकता है, प्रस्तुत प्रश्न की व्याख्या बड़े सुन्दर, विवेचनात्मक ढंग से पुस्तक में की गई है ।

ॐ का जप मनोनिग्रह करनेमें किस प्रकार महान् सहायक है ; इस सत्य को जानने के लिये ॐ प्रणव रहस्य का अवश्य अध्ययन करें ।

ॐ ( प्रणव रहस्य ) के अध्ययन से जीवन के विषयमें आपका दृष्टि-कोण अवश्य ही परिवर्तित हो जाएगा, निराशावाद के स्थानपर सुनहले आशावादके आपको सर्वत्र दर्शन होंगे । सर्वत्र आपको ॐ की महिमा का विराटरूप दृष्टिगोचर होगा —

## क्या आप—

( १ ) अवर्णनीय दिव्य आनन्द और मस्ती के झूले में झूलना चाहते हैं ?
( २ ) विश्व में निरन्तर होनेवाला ॐ का मनमोहक संगीत सुनना चाहते हैं ?
( ३ ) ॐ के निरन्तर जप द्वारा अपने मानस-दुर्गपर विजय पाना चाहते हैं ?
( ४ ) जीवन के चरम ध्येय 'सत्यं, शिवं सुन्दरं' की ओर अग्रसर होना चाहते हैं ?

## —तो आज ही —

ॐ ( प्रणव रहस्य ) की एक प्रति मंगा कर पढ़ें ।

## और शान्ति के सागर में गोता लगाएँ —

प्रकाशक—**जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लि०**

८३, पुराना चीना बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता । शाखा—"प्रिंटिंग हाऊस" हौज़कटरा, बनारस ।

Printed & Published by Ruliaram Gupta at General Printing Works Ltd. Benares Branch,



सत्वं सुरवे सज्जे यति

# सात्त्विक जीवन

मध्यप्रान्त और बरार, देहली, विहार, सिन्ध तथा पञ्जाब प्रान्तीय शिक्षा-विभागों के द्वारा स्कूलों, कालेजों, लाईब्रेरियों और होस्टलों के लिए स्वीकृत।



वर्ष ३, अङ्क ११  सम्पादक—रुलियाराम गुप्त,  उप सम्पादक—वेदराज वेदालङ्कार 'लहरी'  मूल्य चार आने

B.C. PONNAPPA

# विषय-सूची


| विषय | लेखक | पृष्ठ |
| --- | --- | --- |
| १—जब तक जीवन है कुछ कर लो ( गीत ) | श्री रामनाथ पाठक 'प्रणयी" | १ |
| २—सम्पादक की कलम से | .... | २ |
| ३—श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती का सन्देश | .... | ४ |
| ४—त्याग | श्री स्वामी अभयदेवजी संन्यासी | ५ |
| ५—?? ( कविता ) | श्री भगवती प्रसाद तिवारी "सरोज" बी० ए०, एल० एल० बी० | ८ |
| ६—युद्ध के कारण और चिकित्सा | श्री स्वामी शुद्धानन्दजी भारती | ९ |
| ७—सत्यव्रत ( नाटक ) | श्री नारायण प्रसादजी साधक | १४ |
| ८—सुन्दर स्वस्थ विचारों का शरीर पर प्रभाव | श्री राल्फ़ वाल्डो ट्राईन | १८ |
| ९—चाँदनी ( कविता ) | श्री पं० सूर्यकुमारजी वेदालङ्कार | २२ |
| १०—उर्दू शायरी के चन्द नमूने | श्री पं० वेदराजजी वेदालङ्कार | २३ |
| ११—मेरी बेजवाड़ा यात्रा | श्री डा० विट्ठलदास मोदी | २७ |
| १२—चित्रकार ( कविता ) | श्री शिवमूर्ति मिश्र "शिव" | ३० |
| १३—शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् | श्री पं० सूर्यकुमारजी वेदालङ्कार | ३२ |
| १४—दार्जिलिङ्गकी बर्फीली चोटियां जहां सोना बरसता है ( दो पत्र ) | श्री वेद | ३४ |
| १५—निद्रा विज्ञान | श्री ठाकुरदत्त शर्मा | ३७ |
| १६—प्रयाण ( कविता ) | कुमारी शैलबाला "शैल" | ४० |
| १७—नाविक से ( कविता ) | कुमारी शैलबाला "शैल" | ४१ |
| १८—मस्ती की तरङ्ग में ( प्रहसन ) | श्री लहरी | ४२ |
| १९—सूक्ति सुधा | .... | ४८ |




**आवश्यक सूचना**

सात्विक-जीवनका वार्षिक मू... ..., विद्यार्थियों, विद्यालयों और पुस्तकालयोंसे २) ; नमूनेकी कापी के लिये ।) आना आवश्यक है ।

...और बरार, देहली, बिहार, सिन्ध तथा पंजाब प्रान्तीय शिक्षा-विभागों के द्वारा स्कूलों, कालेजों, लाइब्रेरियों और होस्टलों के लिए स्वीकृत ।


संरक्षक— श्री मनसुखराय मोर

ॐ

सत्वं सुखे सञ्जयति

# सात्विक जीवन

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

वर्ष ३ } काशी—सौर श्रावण, २००० Benares—August 1943. { अङ्क ११

## गीत

रचयिता—श्री रामनाथ पाठक, "प्रणयी" साहित्याचार्य

जब तक जीवन है, कुछ कर लो !

जो तुम से प्रतिकूल सदा हों,
जो तुम से अनुकूल सदा हों,
तुम समान दोनों के दुःख से—
कवि, आंखों में आंसू भर लो !
जब तक जीवन है, कुछ करलो !

केवल दुख लेकर क्या होगा,
केवल सुख लेकर क्या होगा,
सुख-दुख दोनों से तुम अपने—
जीवन की अमूल्यनिधि भरलो !
जब तक जीवन है, कुछ करलो !

क्यों निराश होते हो ? सपने—
क्या न तुम्हारे होंगे अपने ?
तुम सपनों के अन्धकार को—
...ी भावुकता से हरलो ।
...रलो ।

# सम्पादक की कलम से

## सात्विक-जीवन का विशेषांक—

सात्विक-जीवन के प्रेमी पाठकोंको यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि आगामी विजयादशमी पर १ अक्टूबर को सात्विक-जीवन के ४ र्थ वर्ष में पदार्पण करने पर, हमने प्रति वर्ष की भांति विशेषाङ्क निकालने का आयोजन किया है। इसके बाद का अङ्क विशेषाङ्क होगा।

विशेषांक को प्रत्येक दृष्टिसे सरस, सुन्दर, रोचक और उपयोगी बनानेके लिए हमने अपनी तरफ़से कोई कसर नहीं उठा रक्खी, और अनेक कलाकारों की सुन्दर मनोहारिणी रचनाएं हमें प्राप्त भी हो चुकी हैं। हमारी साहित्यकारोंसे विनम्र प्रार्थना है कि वे अपनी रचनाएँ यथाशीघ्र भेजनेकी कृपा करेंगे। लेखकों की सुविधा के लिए नीचे लेख-सूची दी जा रही है। सात्विक-जीवन के महान् और व्यापक गम्भीर अर्थको दृष्टि में रखते हुए ही इस लेख-सूची का निर्माण किया गया है। लेख-सूची बनाते समय हमारा दृष्टिकोण सर्वाङ्गीण रहा है, हमने जीवन के प्रत्येक पहलू का इसमें समावेश करनेका भरसक प्रयत्न किया है। सात्विक-जीवन का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है, इसलिए हो सकता है कि अनेक विषय हमारी दृष्टिसे ओझल हो गए हों, साहित्यकारों से हमारा नम्र निवेदन है कि वे उन विषयों का भी इसमें समावेश कर लेंगे। जो भी रचनाएं जीवन को शान्ति प्रसाद, प्रेम और प्रफुल्लता की ओर ले जाती हैं हमारे शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास में सहायक हैं, उन रचनाओंको हम सहर्ष स्थान देंगे। रचनाएं सरल और मिठास से भरी हुई होनी चाहिए।

लेख-सूची—

( १ ) महापुरुषोंके जीवन-चरित्र—

स्वामी विवेकानन्द, मस्तीका चश्मा स्वामी रामतीर्थ, समाज सुधारक देव दयानन्द, हिन्दका बेताज बादशाह गांधी, कर्मयोगी तिलक, समर्थ गुरु रामदास, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरु नानकदेव, गुरु गोविन्द सिंह आदि।

( २ ) सन्त-वाणी—

भक्त सूरदास और उनके बाल कृष्ण, गोस्वामी सन्त तुलसीदासकी राम-भक्ति, मीराकी प्रेम साधना, कबीर-वाणी, कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर और उनका काव्य, बापूका सन्देश आदि।

( ३ ) धर्म-सम्बन्धी—

मज़हब नहीं सिखाता आपसमें वैर करना, सच्चा धर्म क्या है ? धर्म—आत्मा और हृदयकी मांग, हिन्दू धर्मकी महत्ता, उपनिषदोंका सुनहला प्रकाश, वेदोंकी अमर वाणी, महाभारत और रामायण—भारतवर्षका अमर साहित्य, गीताका सन्देश, कर्मयोग—गीताका मक्खन, ज्ञान, कर्म और भक्तिका सुन्दर समन्वय ही जीवनको सुखी बना सकता है आदि।

( ४ ) स्वास्थ्य, व्यायाम और ब्रह्मचर्य सम्बन्धी—

व्यायाम कब, कैसे और क्यों करना चाहिये,

स्वस्थ चरित्र-सम्पन्न तरुण राष्ट्रकी सम्पत्ति है, हमारे राष्ट्रीय स्वास्थ्य के पतन के कारण और उनका उपचार, स्वदेशी और विदेशी व्यायाम पद्धति, आसन, प्राणायाम और यौगिक क्रियाओंका महत्व, ब्रह्मचर्य ही जीवन है, ब्रह्मचर्याश्रम सब आश्रमों की आधार शिला है आदि।

(५) भोजन-सम्बन्धी—

आदर्श भोजन,दूध,फल और हरे शाकोंका महत्व, भोज्य द्रव्योंमें पाये जानेवाले पौष्टिक तत्त्वोंकी व्याख्या, भोजनका शरीर और मन पर प्रभाव आदि।

(६) प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी—

प्राकृतिक चिकित्सा ही सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा-पद्धति है, उपवासके प्रयोग और महत्त्व, प्राकृतिक चिकित्साके लाभ,प्राकृतिक चिकित्साके विभिन्न रूपों सूर्य-स्नान, वाष्प-स्नान, तैल मर्दन आदिकी व्याख्या, मेरे प्राकृतिक चिकित्साके अनुभव आदि।

(७) नारी-जाग्रति-सम्बन्धी—

नारी—आदर्श माता और पत्नीके रूपमें, भारत की आदर्श देवियां, स्त्री शिक्षाका स्वरूप और महत्त्व, पाश्चात्य शिक्षा का नारीपर घातक प्रभाव आदि।

(८) कहानियोंके विषय स्वयं निर्धारित कर लें। कहानियां सेवा, त्याग, स्नेह सम्बन्धी उच्च कोटिकी अश्लीलता रहित, धर्मप्राण होनी चाहिए।

(९) गद्य-गीत—

इन्द्र धनुषका झूला, गङ्गाका किनारा, रामके मन्दिरमें, खिलता हुआ फूल, स्वदेश-भक्त हथकड़ियां, माताका हृदय, गिरिराज हिमालय, भक्तकी भावना आदि।

(१०) प्रहसन—

(क) लैक्चर से दुनियां ठगें, टी पार्टीमें जाय।
बड़े लाट से हाथ मिला, लीडर लोग कहांय

(ख) साधुओंका देश हिन्दुस्तान।

(ग) अपने जीवनकी कोई अद्भुत हास्यमयी घटना।

(घ) यदि मैं एक दिन के लिए हिन्दुस्तानका राजा बन जाऊं।

(ङ) मिठाई कान्फ्रेन्स।

(च) मथुराके चौबेजी आदि।

(११) विभिन्न—

महापुरुषोंके जीवनकी शिक्षाप्रद, विनोदपूर्ण घटनायें, महापुरुषोंकी अमृत वाणी, किसी सुन्दर प्राकृतिक दृश्यका वर्णन।

(१२) कविताओं के विषय कलाकार स्वयं निर्धारित कर लें। कविताएं प्रेम, पवित्रता और प्रकाशकी तरङ्गोंसे पूर्ण तथा जीवनको उन्नत बनानेवाली होनी चाहिए।



## सत्तावनवीं बरस गाँठ पर

# पूज्य श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वतीका सन्देश

श्री स्वामी शिवानन्दजी आध्यात्मिक संसार में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आपकी जन्मभूमि का श्रेय दक्षिण के तिनेविल्ली जिले को है। संन्यास लेनेसे पूर्व आप एक सफल, सिद्धहस्त डाक्टर थे। आजकल आप आनन्दकुटीर ऋषिकेश में साधना, तपश्चर्या तथा योगाभ्यास में लीन रहते हैं। भारत के कोने २ में आपने "दिव्य जीवन संघ" की स्थापना कर मनुष्य जाति का परम उपकार किया है। पूज्य स्वामीजी की बरसगांठ पर हम अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं। —संपादक।

प्रकाश की सन्तानो !

इस दृश्य संसार के पीछे, इस भौतिक जगत् के पीछे, इन नाम और रूपोंके पीछे, इन भावनाओं, आवेशों और विचारोंके पीछे वह मूक द्रष्टा, वह तुम्हारा आध्यात्मिक मित्र, तुम्हारी वास्तविक भलाई चाहनेवाला, वह अदृश्य जगत् का नियन्ता, अज्ञात योगी, अदृश्य शक्ति या चेतना अथवा गुप्त ऋषि है। वही स्थिर वास्तविक सत्ता और जीवित जाग्रत सत्य है। वही ब्रह्म है, वही सर्वोच्च निरपेक्ष सत्ता है। वही आत्मा है। इस मानव जीवन का उद्देश्य इस परिवर्त्तनशील संसारके पीछे छिपी हुई वास्तविक सत्ताको जानना ही है। आत्म साक्षात्कार ही कर्मके बन्धनों को तोड़ सकता है। आत्मसाक्षात्कार ही तुम्हें स्वतन्त्र बना सकता है। अपने शरीर, मन और इन्द्रियोंका बिलकुल भरोसा न रक्खो। आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन बिताओ। भक्ति और संयम के प्रताप द्वारा आत्मतत्व का ज्ञान प्राप्त करो। अमरत्वका पान करो संसार की ज्वालाओं, दुःख दर्दों और भयोंका समूल नाश करो।

मेरे प्यारे मित्रो ! क्या जीवन का खाने, पीने और सोनेके अतिरिक्त ऊंचा उद्देश्य नहीं है ? क्या इन क्षणिक और अवास्तविक ऐन्द्रियिक आनन्दों से ऊपर शाश्वत दिव्य आनन्दकी सत्ता नहीं है ? क्या इस विषयोंके जालमें उलझे हुए जीवन से ऊपर दिव्य जीवन नहीं हैं ? जीवन कितना अस्थिर है ? यह सांसारिक जीवन कितना क्लेशमय है ? क्या हमें अपने आध्यात्मिक निवास स्थान पर पहुंचना उचित नहीं है जहां पवित्रता और दिव्यता का प्रकाश का समुद्र लहरा रहा है ; जहां पहुंचने पर पूर्ण शान्ति, प्रसाद और प्रफुल्लता की प्राप्ति होती है, मृत्यु, और बीमारी के भय जाते रहते हैं।

प्रिय जनो ! इधर आओ, योगी बनो, अपने संकुचित क्षेत्रों में से बाहिर आओ। मिथ्या विश्वासों का नाश करो। एडवोकेट, डाक्टर, इंजीनियर या प्रोफेसर बनना ही तुम्हारी महत्वाकाङ्क्षा है। क्या इससे तुम्हें स्वतन्त्रता, अमरता, और शान्ति दिव्य आनन्दकी प्राप्ति हो सकती है ? क्या तुम मुक्ति, कैवल्य प्राप्त करना चाहते हो ? तब आओ, बहादुर बनो, ऊंचा उद्देश्य बनाओ, आगे बढ़ो, पहिचानो, तुम कौन हो, आत्मबल पर विचार करो, ध्यान करो अनुभव करो।

ॐ सच्चिदानन्द है। ॐ अनन्त है। ॐ नित्य है। ॐ अमर है। ॐ का मधुर मृदुल गान करो और ॐ का ही चिन्तन करो।

**—स्वामी शिवानन्द सरस्वती**

# त्याग

लेखक—श्री स्वामी अभयदेवजी संन्यासी

कृषिन्नित्फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानम प्रवृंक्ते चरित्रैः ।
वदन्ब्रह्मावदतो वनीयान्पृणन्नापिरपृणन्तमभिष्यात् ॥
( ऋ० १०।११७।७ )

इस लेखमें मैं आपके सामने त्याग या दान के विषय पर कुछ विचार प्रस्तुत करना चाहता हूं । दान के विषय में वेद में बहुत जगह बहुत कुछ लिखा है । पुराने समय से अब तक सब लोग दान और त्याग की महिमा करते आए हैं । पर प्रश्न यह है कि हम दान क्यों करें, दान करनेसे तो हमारी हानि होती है-घटती होती है । मैंने इस महीने वेद से यही उपदेश ग्रहण किया है कि हमें अपनी ही भलाई के लिए त्याग करना आवश्यक है । इसी बातका इस लेख में विस्तार पूर्वक वर्णन करना है । दान के विषय में वेद में वैसे तो और भी बहुत से उत्तम उत्तम वचन हैं, परन्तु मैं ऋग्वेद के प्रसिद्ध दान-सूक्त में से केवल एक मंत्रार्ध को ही आपके सामने रखता हूं—

कृषन्नित्फाल आशित कृणोति यन्नध्वानमपवृंक्ते चरित्रैः—
( ऋ० १०।११९।७ )

"खेती करता हुआ ही फाल (हल का अग्र भाग) किसान को भोजन करनेवाला बनाता है और मार्ग पर चलता हुआ मनुष्य अपने चलने द्वारा त्याग करता जाता है ।" इस वेद वचन में हमें दान क्यों करना चाहिये यह बात दो उपमाओं द्वारा समझाई गई है । यदि हम इन उपमाओं को समझ लें तो हम सब दान का माहात्म्य समझ लेंगे । पहले कहा हैं कि हल से यदि कर्षण किया जाता रहे तो वह अधिक कृषिके योग्य हो जाता है और मालिक का पेट भरता है । इसके विपरीत यदि वह पड़ा रहे तो तो जङ्ग लग कर वह भूमि के विलेखन के योग्य नहीं रहता । इसी प्रकार दान करने से मनुष्य का मनुष्यत्व बढ़ता है मनुष्य अपने कार्य करनेके लिये अधिक योग्य हो जाता है । हल चलनेसे घिसता है—अपना कुछ अंश त्याग करता है, इसलिये तीक्ष्ण होता है अर्थात् जिस कार्य के लिए वह बना है उसमें समर्थ रहता है । इसके विपरीत जङ्ग लग जानेसे भार में तो वह फाल जरूर बढ़ जाता है परन्तु अपने कार्यमें योग्य नहीं रहता, किसान को रोटी देनेके अयोग्य हो जाता हैं । इसी प्रकार मनुष्य दान न देनेसे वेशक अधिक वस्तुओं वाला होता है, परन्तु उस अधिक सामान का बोझ ही उसे उस कार्य के योग्य नहीं रहने देता, जिस कार्य के लिये कि उसे दुनियां में पैदा किया है । उस पर रुपये का जङ्ग लग जाता है इस लिये वह अपने कर्तव्य में तीक्ष्ण नहीं रहता । इस तीक्ष्णता को कायम रखने के लिये त्याग करना परम आवश्यक है ।

दूसरा उदाहरण त्याग के विषय को और भी अधिक साफ कर देता है । उसमें यह बताया गया है कि मनुष्य को चलने के लिये त्याग करना पड़ता है । इस त्याग के कारण ही वह आगे पहुंचता है । जैसे कि यदि मैंने यहां से अपने घर जाना है तो मैं एक क़दम आगे रखूंगा । इससे मुझे एक क़दम आगे का स्थान प्राप्त हो जाएगा । परन्तु यदि मैं अब यह कहूं कि यह तो मेरा स्थान हो गया है उसे मैं नहीं छोड़ूंगा, तो मैं दूसरा क़दम नहीं बढ़ा सकता और कभी भी अपने घर पर, लक्ष्यपर नहीं पहुंच सकता । अगला क़दम बढ़ाने के लिए पिछले क़दम से प्राप्त हुए स्थान को छोड़ना जरूरी है इसलिये वेदने कहा है कि मार्ग पर चलता हुआ मनुष्य त्याग करता जाता

है। जब हम अपनी उन्नति की एक अवस्थाको पहुंच जाते हैं, तब उससे अगली ऊंची अवस्था में पहुंचने के लिये पहली अवस्था की सब कमाई को स्वाहा कर देना पड़ता है, हवन कर देना पड़ता है। हवन उस त्याग का नाम है जो कि हमें उससे श्रेष्ठ वस्तु बदले में देता है। हवन शब्द (हु दानादनयो आदाने च) इस धातु से बना है। इसके अर्थ में दान और आदान (देना और लेना) ये दो विरोधी बातें दीखती हैं। परन्तु ये सार्थक हैं। इसका अर्थ होता है "दान करना आदान के लिये।" जब हम किसी वस्तु को त्याग करते हैं इसलिये कि उससे अधिक उत्तम वस्तु हमें मिले तब हवन करते हैं। अर्थशास्त्र की भाषा में इसे कहें तो "बिना दाम कोई वस्तु नहीं मिलती।" दाम देनेमें त्याग करना होता है इसलिये इसका शुद्ध रूप यह है कि बिना त्याग के कोई वस्तु नहीं मिल सकती। असल में मनुष्य ने पिछली कमाई को स्वाहा करते हुए और इस प्रकार हवन के क़दमों से चलते हुए ही अपने लक्ष्य पर पहुंचना है।

आप इन उपमाओंको खूब सोचें। आप इन्हें जितना सोचेंगे उतनी ही दान की आवश्यकता आप में जागृत होगी। आप धीरे २ त्याग करने के लिये आतुर होने लगेंगे। जब मनुष्य दान देता है, त्याग करता है तभी नई २ वस्तु के आगमन को प्राप्त करता है। जैसे कि यदि एक जल-प्रवाह को रोका जावे तो वहां जल का आगमन भी मन्द पड़ जावेगा। अथवा ऐसे समझिये कि एक बालक के पास पानी से भरा कटोरा हैं और वह माता से दूध लेना चाहता है। यदि वह यह चाहे कि मैं पानी का भी त्याग न करूं, तो वह दूध किस जगह लेगा। उसे उत्तम चीज़को पाने के लिए पहली चीज़ का त्याग करके जगह बनानी चाहिए। मनुष्य शरीर में कुछ त्याग करता है तब वह नया भोजन ग्रहण करने के योग्य होता है। हम श्वास बाहर छोड़ते हैं तब अन्दर श्वास ले सकते हैं। क्या हम जीवित रह सकते हैं यदि हम अन्दर ही श्वास लेते जावें और बाहर न छोड़ें? बल्कि हम देखेंगे कि जितनी अच्छी तरह से हम श्वास छोड़ें उतना ही अधिक श्वास हमारे अन्दर प्रविष्ट होगा। और उपवास शास्त्रज्ञ कहते हैं कि उपवास के दिनों में हमारा शरीर प्रतिदिन जितना घटता है उसके बाद भोजन शुरू करने पर उससे चार गुणा अधिक वेगसे हमारा शरीर बढ़ता है क्योंकि उस त्यागकी क्रियासे शरीर शुद्ध होता है और शुद्ध शरीर में ग्रहण करने की शक्ति बढ़ जाती है। इस लिए त्याग करना घाटे का सौदा तो कभी नहीं है अपितु जीवित रहने तकके लिये त्याग ज़रूरी है। उच्च सम्पत्ति प्राप्त करने का उपाय ही दान है। जो मनुष्य दान न देकर अपनी सम्पत्ति बढ़ाता है वह यह भारी भूल कर रहा होता है कि जो धन उसके लिये नहीं है उसे फिजूल अपने पास रखता है। वह अपनी अस्वस्थ बुद्धि करता हैं इसका परिणाम यह होता है कि चोरी, आग लग जाना, बैंक टूट जाना आदि सैकड़ों तरीक़ों से उससे धन छीन लिया जाता है। क्योंकि ईश्वरीय नियमों के अनुसार ही वह हमारे पास रह सकता है जो कि हमारे भले के लिये है। यदि हम इसे स्वयं खुशी से त्याग नहीं देते तो वह हम से छीन लिया जाता है।

हमारी और पाश्चात्यों की सभ्यता में यही एक भारी भेद है। पश्चिम में जबतक ग़रीब लोग तंग आकर अमीरों को लूट नहीं लेते तब तक ग़रीबों का अधिकार स्वीकृत नहीं किया जाता, परन्तु भारतीय सभ्यता में स्वयमेव दान देना हर एक का आवश्यक कर्तव्य रक्खा गया है। यह पांच यज्ञ क्या हैं? ये सब बिना मागे देना है। उदाहरणार्थ, अतिथियों को बिना खिलाये न खाना अतिथि यज्ञ है। भारत के

इतिहास में ऐसी बहुत सी बातें प्रसिद्ध हैं जब कि गृहस्थी कई दिनों तक स्वयं भूखे रहे परन्तु आए हुए अतिथियों को अपना सब कुछ दे दिया। इसी कारण उस समय में समाज में शान्ति थी। हर आदमी अपने में पूर्ण नहीं होता। बिना दूसरे से लेना देना किये समाज नहीं चल सकता, इसलिये उस समय हर मनुष्य के लिये दान करना कर्त्तव्य रक्खा जाता था और इसलिये दूसरों के छीनने का अधिकार कभी भी स्वीकार करने की उस समय जरूरत नहीं थी, Socialism और Bolshevism आदि कुछ नहीं कर सकते जब तक कि समाज में दान भाव न भरा जाय। इस दान-भाव के बढ़ाने का तरीक़ा है "रुपये की कदर को घटाना"। रुपये से सहस्रों गुणा श्रेष्ठ धन है 'ज्ञान' उस समय ज्ञानधनी की क़दर बढ़ाई जाती थी। ब्राह्मण जिसके पास दूसरे समय का भी भोजन नहीं होता था वह राजा से भी बड़ा समझा जाता था। आजकल के बड़े आदमी की पहिचान या कदर रुपये से है। यदि वह रुपये की ज़रूरत नहीं अनुभव करता तो भी उसे यह धन रखना पड़ता है क्योंकि आदमी की योग्यता इसी में है कि कौन कितना कमाता है। कौन कितना त्याग करता है, इसकी जगह यह देखा जाता है कि कौन कितना अधिक वेतन पाता है। जब इस प्रकार ज्ञानियों को भी धन का बटोरना जरूरी हो तब बेचारे वैश्यों और शूद्रों के लिये क्या बचे। बस इसीलिये झगड़ा है! यदि ब्राह्मण 'अपरिग्रह' को धारण करें और उनकी पूजा ज्ञान के कारण हो; और क्षत्रिय की पूजा उसकी शूरवीरता और बल साहस के कारण हो तो वह धन स्वयमेव ही जो उसके अधिकारी है उन्हीं वैश्यों और शूद्रों के पास पहुंच जाए। पर यह तभी हो सकता है जब समाज में त्याग को महत्व दिया जाए।

# अत्यन्त आवश्यक सूचना

इस अंक के साथ ३ य वर्ष खतम होता है तथा नीचे लिखे ग्राहकों का चन्दा भी इस अंक के साथ समाप्त हो जाता है, इसलिए सेवा में नम्र निवेदन है कि यह अंक मिलते ही अपना चन्दा भेजने की कृपा करेंगे, अन्यथा अगला अंक जो कि विशेषांक होगा, आपकी सेवामें वी० पी० से भेजा जाएगा। वी० पी० से ≡) तीन आने अधिक खर्चा पड़ेगा, इसलिए उपयुक्त यही होगा कि आप अपना चन्दा मनीआर्डर से भेज देवें। यदि किन्हीं कारणों वश आप पत्रिका के ग्राहक न रहना चाहें तो भी हमें एक पत्र लिख कर कृपया अवश्य सूचित कर देवें जिससे कार्यालयको व्यर्थ की हानि न उठानी पड़े।

१६५, ११७६, ११७७, ११८०, ११८१, ११८२, ११८३, ११८४, ११०५, ८६, १००४, ११२६, १२६, २००, १०६२, २५, ११४६, ११७६, १११७, ११५७ अ, १४, ६, ३२, ११५४, ११८६, ११८७, ११८८, ११८६, ११६०, १६६, ११३३, ११४१, ११६१, ७०, ११६१, १८५, ११४०, १२७, ११४४, ११६२, ११५८, ११५०, १४, ११६३, २०, २८, ११६४, ११४३, ११७८, २१, ११२४, ११३६, ११८, १५, १०६६, १००२, १०४८, ११२, १०७८, १२०, ३१, ११७५, १५२, ८०, ७२, १६१, ७१, १०२४, ८८, १०, १११२, ११६५, १०६, ११३८, १०६६, ११२२, ११५२, १६७, १५८, ११५६, १०१, १६६, ८, ३५, १८३, ६८, १२३, ७, १०४५, १५१, ११४७, १११३, ११३५, ११६५, १०३७, १४०, १६, १२२, ६०, ११६६, ११६७, १११४, २३, १६५, १७८, १८२, १७२, १८८, ६४, १४४, ६१, ११३२, ११४६, ११०३, १११०, ११५५, २७, ११७१, ११११ अ, ११९८, १०३, १४१, १०४, २००३, २००४, २००७, २००८, २०१०, २०१२, २०१३, २०१४, २०१५, २०१६, २०१७, २०१८, २०१६, २०२०, २०२१, २०२२, २०२३, २०२४, २०२५, २०२६, २०२७, २०२८, २०२६, २०३०, २०३१, २०३३, २०३४, २०३५, २०३६, २०३७, २०३८, २०३६, २०४०, २०४१, २०४२, २०४४, २०३२।

# ??

रचयिता-श्री भगवतीप्रसाद तिवारी 'सरोज' बी० ए०, एल० एल० बी०

किस अदृश्य की विश्व-रंजिनी
छविसे अपनी छटा सँवार,
हँस-हँस पड़ते हैं प्रभात नित,
जग-मग हो उठता संसार ??

सांध्य गगन पर स्वर्णाङ्कित—
किस प्रणयिनि का प्रत्यावर्त्तन,
नित-नित अनुरञ्जित करता है—
वसुधा का उर-उर कण-कण ??

परिधि क्षितिजकी धूमिल करके,
कनक प्रतीची की छवि छीन,
कहां देखते ही हो जाता—
फिर संध्या का दृश्य विलीन ??

शशि-तारक के मन्द हास में—
रजनी का नीरवाभिसार,
अन्तरिक्ष से स्वप्न सदृश—
फिर लाता छिति पर कौन उतार ??

व्योम सुनहला फिर कर देता—
नित्य कौन कर मौन पसार,
पौ फटते ही तमावगुण्ठन—
दिशि-मुख से प्राची के टार ??

पल-पल मुसकाते, झलकाते—
द्रुम-दल आभा से झलमल,
लाल-लाल रवि-बाल कहां से
आते हैं फिर सतत निकल ??

काल पाद सञ्चालन किसका ?
विश्व प्रदर्शन कौन महान् ??
फिर-फिर घड़ियां भुवन-मोहिनी—
करती किसका अनुसन्धान ??

# युद्ध के कारण और चिकित्सा

लेखक—पूज्यपाद श्री स्वामी शुद्धानन्दजी भारती, श्री अरविन्दाश्रम पाण्डीचेरी

आदरणीय स्वामीजी बाल-ब्रह्मचारी हैं। गीता की सजीव मूर्ति हैं। पास बैठनेसे वैदिक युगका स्मरण हो आता है। आपकी लेखनीसे इंगलिश और तामिल कविता गंगा की धाराकी तरह बहती है। प्रस्तुत लेखमें आपने युद्धके कारणों और चिकित्सा पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला है। — संपादक।

## विश्वकी मुख्य समस्या—युद्ध

आजका सबसे प्रमुख और महत्त्वपूर्ण विषय युद्ध है। महात्मा या पापी कोई भी इसके प्रभावोंसे नहीं बच सकता। हमारा खान पान, यहां तक कि वह वायु जिसे हम श्वास द्वारा अन्दर ले जाते हैं युद्धसे प्रभावित हैं। पूर्व या पश्चिम, उत्तर या दक्षिण, आकाश और पृथ्वी, स्थल और समुद्र सभी आज पड़ोसियोंके खूनसे लाल हो रहें हैं। यह अमूल्य मानव शरीर, यह प्रकृतिके विकासकी युगोंकी कलाकृति आज खण्ड-खण्ड होकर बिखरी पड़ी है। वर्षोंका परिश्रम एक क्षणमें नष्ट हो रहा है। विशालकाय जहाज़, भयङ्कर टैंक, बड़े बौम्बर और दिग्गज वायुयान जिनके निर्माण में मनुष्यकी अद्भुत प्रतिभा, अमूल्य समय और धन जनका व्यय हुआ है, देखते २ विनाशके गर्त्तमें विलीन हो रहे हैं। वर्षोंकी मेहनत और व्यापार द्वारा इकट्ठी की हुई सोने तथा चान्दीकी विपुल राशि चिताओंके धुएँके सदृश उड़ रही है। मानवता बेचारी आज आश्रय मांग रही है और घने, अन्धकारपूर्ण नरकके धुएँमें श्वासके लिए हाँफ रही है। यह आजका संसार है; जिसमें हम रह रहे हैं। सरलता, सज्जनता, ईमानदारी और प्रकाशकी शक्तिओं को मानवने अपने मानसिक जगत्‌से मानो देश-निकाला दे दिया है।

## युद्धका आधारभूत कारण—

मनुष्य क्यों इस निर्दयतासे उन्मत्त हो गया है; क्यों इस अमानुषिक तरीकेसे खूनका प्यासा हो उठा है? इस विपुल शक्ति और अमूल्य जीवनके विनाशका क्या कारण है? क्या इन सब खूनखराबियोंका अन्त करनेका कोई उपाय है?

मनुष्यका स्थान देवता और पशुके बीचमें है। उसने पशुत्वसे ऊपर उठना है और देवत्वकी ओर पग बढ़ाने हैं। उसमें दो शक्तियां है—अच्छी और बुरी, इन्हें सुर और असुर, देव और दानव, भगवान् और शैतानके नामसे भी पुकार सकते हैं। जीवन इन शक्तियोंमें निरन्तर और शाश्वत युद्धका नाम है और यह युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ। मनुष्यमें रहनेवाला मनुष्य या देवभाव पवित्र, प्रफुल्लित, शान्ति और प्रसादपूर्ण है। मनुष्यकी यह देव भावना सदा उसे ऊंचा उठाती है, परन्तु मनुष्यके अन्दर वास करनेवाली आसुरी भावनाएँ, बुरी भावनाएँ उसे अहम्भाव और अहङ्कारपूर्ण महत्त्वाकाङ्क्षा के रसातलकी ओर ले जाती है। जीवन इन दोनों दैवी और आसुरी शक्तियोंमें रस्सेका खेल है। आसुरी शक्तियां मनुष्यके मानसिक क्षेत्रमें अड्डा जमाए हुए हैं। सब बुरी इच्छाओं, आवेशों, ईर्ष्या, घृणा और चिन्ताओंका उद्गम स्थान मनुष्यका अहम्भाव और मानसिक अज्ञान है। जबतक मनुष्य इन बुरी प्रवृत्तियों और वासनाओंका दास है वह कभी भी शान्तिके अमर प्रसादका अधिकारी नहीं हो सकता, उसके चारों ओरके वातावरणमें शान्तिका प्रवेश असम्भव है।

## प्रकृति का वरदान—

प्रकृतिने मनुष्यको अपनी सामूहिक सत्ताको समृद्धिशाली बनानेके लिए अपने अद्भुत, आश्चर्यमें डालनेवाले खज़ाने दिए। उसने मनुष्यको समय और दूरीपर विजय पानेके लिए विद्युतकी शक्तिओंका वरदान दिया। परन्तु मनुष्यने प्रकृतिकी इन शक्तिओं को अपने स्वार्थ और महत्वाकाङ्क्षासे भरी प्रतियोगिताओं तथा विनाशकारी युद्धोंमें व्यय किया। मनुष्यके अन्दर निवास करनेवाली आत्माने उसे प्रकृतिकी शक्तियोंका सुन्दर उपयोग करनेके लिए बुद्धिका दीपक प्रदान किया। इसने उसे आत्मा और शरीरका विज्ञान, तत्त्वोंका विज्ञान, गणित, भौतिकी, रसायन और शिल्प-शास्त्रकी शिक्षा दी; खानोंमें छिपे हुए प्रकृतिके खज़ानों—कोयला, लोहा, तांबा, पेट्रोल, मेगनेट आदि धातुओंको उसके सामने प्रकट किया। परन्तु मनुष्यने जीवनकी गम्भीर समस्याओं को हल करने तथा आध्यात्मिक विकासके लिए अपना समय बचानेके स्थानपर इन वरदानोंका दुरुपयोग किया और अपने विचार तथा जीवनको शैतानका कारखाना बना दिया।

## महत्वाकाङ्क्षा का मायाजाल—

वर्त्तमान और भूतकी लड़ाइयोंके सब मारात्मक शस्त्र, अपनी शक्तिशाली महत्वाकाङ्क्षाओं को पूर्ण करनेके लिए, मनुष्यके मानसिक असुरकी उत्पत्ति हैं। वे सब उन्मत्त महत्वाकाङ्क्षाके भयङ्कर खेल हैं। कोई भी प्रौपैगेण्डा, कोई भी द्वन्द्वयुद्ध और कोई भी सन्धि मनुष्यके अन्दर वास करनेवाले इस युद्धके पागलपनका जो भयङ्कर, बीभत्स दृश्योंका जनक है, अन्त नहीं कर सकती। यदि आसुरी शक्तियोंके संग्रामके परिणामस्वरूप दुनियांके तख्तेपरसे वैज्ञानिकों और वायुयान चालकोंका नामोनिशां मिट जाय तब भी युद्ध बन्द नहीं होगा अपितु यह फिर मनुष्यके मिथ्या अहम्भाव और मानसिक आसुरी भावनाओंसे उत्पन्न होकर अपने विनाशकारी परिणामोंका तबतक प्रदर्शन करेगा जबतक इस महत्वाकाङ्क्षी मनुष्यके शरीरमें खूनका एक भी कतरा बाकी है।

## युद्धका इलाज राजनीतिसे नहीं—

यह कल्पना करना कि राजनीतिक चालों और धार्मिक आन्दोलनोंके द्वारा संसार में शान्तिकी स्थापना की जा सकती है, एक सारशून्य, स्वप्नमात्र होगा। हिटलर, मुसोलिनी और तोजो आदि केवल नाम और रूप हैं। इस शीघ्रगामी समयके प्रवाहमें, अपनी महत्वाकाङ्क्षाओंका राखका पहाड़ अपने पीछे छोड़कर जाते हुए नेपोलियन और कैसरके सदृश वर्त्तमान नेताओंका भी अस्थायी अस्तित्व बना रहेगा। इस विश्वके रंगमंचपर कोई वस्तु चिरस्थायी नहीं रहती और भाग्यके प्रबल प्रवाह द्वारा प्रत्येक वस्तुकी निशानी मिटती चली जाती है। हिटलर शाश्वत काल तक जर्मनीका सर्वेसर्वा नहीं रहेगा और न तोजो जापान का। ये भी अन्य साधारण मनुष्यों की तरह मनुष्य हैं और सब शरीरधारी प्राणी, समय, स्थान तथा कार्य कारणके नियमसे बन्धे हुए हैं। इन नेताओं द्वारा उत्पन्न किए हुए भयोंका अन्त सुनिश्चित है; परन्तु मनुष्यके अन्दर रहनेवाला भयङ्कर दानव, उसके अन्दर रहनेवाला मानसिक अज्ञान, प्यार और घृणा, अच्छे और बुरेकी भावना फिर उसे महत्वाकाङ्क्षा की ओर ले जाएगी और उसे विनाशोन्मुख करेगी।

## शान्तिका स्रोत अन्तःकरण—

इसलिए इसका इलाज भी वहीं मौजूद है जहां इसका कारण है। जहांसे युद्धकी भावनाका उदय

होता है, वहीं शान्तिकी लता भी लहलहा रही है। प्रत्येक वस्तुका स्रोत हमारे अन्दर है। मानवताकी भलाई या बुराईके लिए पहले विचार, फिर शब्द और उसके बाद कर्म ये तीनों क्रमसे आते हैं। जब मनुष्य का अन्तःकरण अपवित्र होता है और उससे अहम्मन्यतापूर्ण महत्वाकाङ्क्षाका जन्म होता है, तब उसके विचार, शब्द और कर्म तीनों अपवित्र होकर कुत्सित रूप धारण कर लेते हैं; तभी मनुष्यके अन्दर रहनेवाला शैतान उसे स्वार्थ और युद्धकी ओर धकेलता है। ओह! कितनी निर्दोष जातियां इस शक्तिशाली मनुष्यकी महत्वाकाङ्क्षा के पहियेके नीचे आकर कुचली गई हैं। एशिया और अफ्रिकाकी जातियोंने दूसरी जातियोंमें वास करनेवाले इस महत्वाकाङ्क्षा के दानवके कारण अगणित कष्ट झेले हैं। आज पुण्यभूमि भारतवर्ष जिसने दूसरी जातियोंके खूनसे कभी भी अपनी तलवारको नहीं रंगा आज खूनके आँसू बहा रहा है! यह एक जातिके अन्दर निवास करनेवाला शैतान है जो दूसरी जातिपर अगणित, अमानुषिक अत्याचार कर उसे पद्दलित करता है।

यदि विश्वमें स्थायी शान्ति कायम करनी है, यदि मनुष्योंमें समता, प्रेम और भ्रातृत्व स्थापित करना है, उस अवस्थामें मनुष्यके अन्तःकरणमें क्रान्तिकारी परिवर्त्तन होना चाहिए। मैं आगे चलकर इसीकी व्याख्या करूंगा।

## अस्तित्वके दो भाग—प्राकृतिक और आध्यात्मिक—

हमारे अस्तित्व के दो भाग हैं एक प्राकृतिक (Material) और दूसरा आध्यात्मिक (Spiritual) एक प्रकृति और दूसरा पुरुष। शरीर और मानसिक जगत् हमारे अस्तित्वके प्राकृतिक भाग हैं, और जीव या आत्मा हमारे अस्तित्वका आध्यात्मिक भाग है। इन दोनोंके बीचमें इन दोनोंको जोड़नेवाली पराबुद्धि (higher Intelligence) है। मनुष्यको इसी कड़ी (link) का पता लगाना चाहिए और उसे अध्यात्म-वृत्तियोंसे शासित तथा संचालित प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना चाहिए। आत्मा पूर्ण शान्ति, प्रफुल्लता, सत्य और चेतनता है। प्रकृति (Matter) सत्व, रज, तम, इन तीन गुणों और द्वन्द्व विकारोंकी उत्पत्ति है। केवलमात्र प्राकृतिक चेतनता (Material consciousness) में वास करनेवाला व्यक्ति चार्वाक या निटशेका सुपरमैन बन जाता है और अपने जीवन को युद्धों तथा युद्ध सामग्रियोंके निर्माणमें बिता देता है। वह अपने पड़ोसीको सदा पक्षपात और घृणाकी दृष्टिसे देखता है। उसका स्वार्थपूर्ण लोभ तथा दूसरों को हड़पनेकी घातक प्रवृत्ति, किसी भी मूल्यपर नए २ शस्त्रोंका आविष्कार करती है और वह घरसे घर, नगरसे नगर, तथा देशसे देश छलांगे लगाती फिरती है। उसकी अहम्मावपूर्ण आवाज दूसरी जातियोंकी आवाज़को दबा देती है, उनकी जबानपर ताला लगा देती है. उनकी भाषा, संस्कृति साहित्य और रीति-रिवाजों का दमन कर वह अपनी भाषा, संस्कृति तथा साहित्यका विस्तार करती है। प्रत्येक महत्वाकाङ्क्षी मनुष्यमें हम अत्याचार दमन, और स्वार्थका नग्नरूप देखते हैं।

## अहं भाव—बुराईकी जड़

इस बुराईका आधारभूत मुख्य कारण यही है कि मनुष्य अपने पड़ोसीको फूटी आँखों नहीं देख सकता 'मैं केवल, मेरा सब कुछ" यह उसकी अभिमानी भौंहोंपर लिखा होता है और वह दूसरोंको सफल तथा समृद्धिशाली होते हुए नहीं देख सकता। क्योंकि भोला मनुष्य इस गम्भीर तत्वको नहीं जानता कि उसके पड़ोसीमें भी वही आत्मा है, उसका

शरीर भी उन्हीं तत्वोंसे मिलकर बना है. केवल नाम और रूपका भेद है । यदि मनुष्य अपने साथी मनुष्यको उसी आत्माका रूप समझ ले तो उसके विचारमें समता तथा हृदयमें प्रेमकी भावना उदित होगी ।

## उपनिषदों का सुनहला प्रकाश—

**उपनिषदें कहती हैं—वह मनुष्य आत्मघात करता है जो अपनेमें आत्मा का दर्शन नहीं करता । मनुष्यको इस शरीर और प्रकृतिसे ऊपर उठना चाहिए, इस मानसिक जगत्‌से ऊपर उठकर उस पवित्र, उन्नत, उदार तथा उदात्त बुद्धिमें निवास करना चाहिए और तब पूर्ण पवित्र आत्मा तक पहुंचना चाहिए । जब आत्मा के दर्शन हो जाते हैं, तब मानसिक व्यथाओं और चिन्ताओंका अन्त हो जाता है, मनुष्य स्थायी शान्ति प्राप्त कर लेता है । मनुष्य सदा प्रफुल्लित रह सकता है; क्योंकि आत्मा स्वभाव से सत्-चित्-आनन्द है । मनुष्य सबको अपने रूपमें देखता है । उसका अहम्भाव और राजनीतिक चालबाजियाँ जाती रहती हैं । वह सारे संसारको अपनेमें तथा अपनेको सारे संसार में देखनेका अभ्यासी हो जाता है ।**

उपनिषद इस सार्वत्रिक चेननता ( Cosmic consciousness ) की भावनापर प्रकाश डालती है, जब वह यह घोषणा करती है "जो सबको अपनेमें और अपनेको सब मनुष्योंमें देखता है, उसे किसका भय होगा ।

अभी हम आसुरी शक्तियोंके भयमें विचर रहे हैं और असुर हमेशा शत्रुके हवाई जहाज़ों तथा बम्बों से भयभीत और उद्विग्न रहते हैं । परन्तु यह भय क्यों ? किसको किससे डर । जब तुम मुझमें अपना रूप देखते हो, तीसरा आदमी हम दोनोंको अपना समझता है, तब किसको किसका भय ? यह आत्म-दर्शन और सार्वत्रिक चेतनताकी भावना ही विश्वमें स्थायी शान्ति स्थापित करनेमें समर्थ हो सकती है ।

इस महान् सत्यके लिए सबसे बड़ी और महत्व-की आथौरिटी ( Authority ) वेद हैं । वेद शाश्वत धर्मग्रन्थ हैं । जिस प्रकार वेद सत्ताकी द्वन्द्वात्मक शक्तियोंके संग्रामका सजीव स्पष्ट वर्णन करते हैं, उसी प्रकार अन्य कोई ग्रन्थ नहीं करता । दैवीय शक्तियोंकी आसुरी शक्तियों पर विजय ही वेदका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है ।

## भगवान्‌की महिमा—

भगवान् सच्चिदानन्दस्वरूप हैं । वह सर्वत्र व्याप्त है । वही सत्यं, शिवं, सुन्दरं ( Truth, Virtue, Beauty ) के विचारोंका स्रष्टा है । वह हममें विराजमान सत्यका उज्वल प्रकाश है । वह पुरुष है, शुद्धात्मा है । मनुष्य इस सत्यके प्रकाशसे अनभिज्ञ हुआ २, अहम्भावके आवेशोंसे अन्धा हुआ २ सदा आसुरी भावनाओंमें विचरता रहता है । विनाश-कारिणी शक्तियां उसके अन्दर से जन्म लेती और उसे विनाश की ओर ले जाती हैं ।

"जब वह अन्तःकरण में गहरा उतरता है, आत्म-निरीक्षण करता है, सत्यका प्रकाश उसके हृदयमें जगमगाता है। अग्नि-नेतृत्व शक्ति का उसमें उदय होता है। बृहस्पति—ज्ञानशक्ति उसका पथप्रदर्शन करती है, अश्विनी—इन्द्र (परमैश्वर्यवान् आत्मा) के रथको उठाते हैं, वरुण, मित्र तथा अर्यमा की दिव्य शक्तियां उसके साथ २ चलती हैं। अपने चेहरे पर अद्वितीय प्रफुल्लताका भाव लिए माता अदिति (अमर भावना) आती है। यही अदिति देवताओं की माता है। वह इस दिव्य सेना को आशीर्वाद देती है।

इन्द्रका शानदार जुलूस चलता है। प्रकाश और दिव्य भावका प्रसार होता है। अन्धकार छिन्न-भिन्न होता चला जाता है। वेदोंका यही तत्व है, यही सत्य है, जिसकी हमें आज आवश्यकता है।

## आसुरी भावनाओंपर दैवी भावनाओं की विजय—

विश्वकी अगणित विपत्तियों और दुःखदर्दों का इलाज आसुरी भावनाओं पर दैवीय भावनाओं की शानदार विजयमें सन्निहित है।

आजसे पांच हजार वर्ष पूर्व पुण्यभूमि भारतवर्ष इसी प्रकार एतद्देशीय असुरों कंस, दुर्योधन आदिसे पीड़ित था। श्रीकृष्णके शानदार, प्रभावशाली व्यक्तित्वके रूपमें एक देवता इस भूमिपर उतरे और कुरुक्षेत्रके युद्ध में अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा "हे अर्जुन! योगी बनो, सदा मेरे साथ रहो, प्रत्येक कार्य मुझे समर्पित करके करो, मेरी पूजा करो, मैं तुम्हारी आत्मा हूं, मैं प्रत्येक हृदयमें विराजमान हूं, मुझपर पूर्ण विश्वास रक्खो। मेरी आज्ञाका पालन करो, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा।

आज संसारको उसी दिव्य मनुष्य (Super man) और उसी सन्देशकी आवश्यकता है। वैदिक ऋषिके इन शब्दोंको अपनी आत्माके प्रति बार २ कहो—

"सब जगत् ब्रह्मसे व्याप्त है, हम किसी व्यक्तिमें ब्रह्मभाव का प्रतिषेध न करें।



# सत्यव्रत

ले०—श्री नारायणप्रसादजी साधक. श्री अरविन्दाश्रम, पांडीचेरी।

रजनी अपने तारुण्यके मदभरे मायाजाल में विनयको आबद्ध करना चाहती है और अपनी युक्तिओं द्वारा विनयको सत्पथसे विचलित करना चाहती है, परन्तु विनयमें सदाचार और चरित्र-बल इस ऊँची कोटि का है कि वह रजनी के विवाह के प्रस्तावको ठुकरा कर, उसे मांके पवित्र शब्दसे सम्बोधन करता है।

—संपादक।

( गतांक से आगे )

## दूसरा अंक

चौथा दृश्य।

( स्थान—विनोदकी जमींदारीके कसबे का एक मकान। रजनी अपने सजे सजाये कमरेमें उद्विग्न भावसे खड़ी है। हठात् एक पड़ोसीके घर बाजे बजते हैं, कुछ क्षण बाद )

रजनी—आज चमेलीका व्याह है उसीके बाजे बज रहे हैं। न जाने क्यों किसीके घर मांगलिक बाजोंका शब्द सुनकर मेरे कलेजेमें हूक उठने लगती है। एक दिन मेरे घर भी—मेरे विवाह के दिन, इसी प्रकारके बाजे बजे थे—महल्लेमें धूम मची हुई थी। पर वह क्या मेरे सुहागका बाजा था, मेरे सुखका उत्सव था—नहीं, वह था एक बछिया की कुरबानीका दिन और उस दिन हुआ था गांवके घर घर बकरीदका त्योहार।

( दासीका प्रवेश )

दासी—बाबू विनयकुमार सिंह आये हैं।

रजनी—आ गये! जा आदरके साथ लिवा ला। नहीं मैं ही जाती हूं ( जाते २ रुक कर ) यह क्या मेरी दाहिनी आँख क्यों फड़कने लगी—यह अमंगल कैसा? लो वे आही गये।

( विनय का प्रवेश )

रजनी—आइये, विनय बाबू। मैं आपके आनेकी ही राह देख रही थी।

विनय—( आँखोंकी पलकें नीचे किये हुए ) आपने मुझे क्यों बुलाया है?

रज०—एक अरजी पेश करनेके लिये; और जिसका हृदय इतना महान है उसका प्राण कैसा है यह देखनेके लिये आपको कष्ट दिया है।

वि०—कहिये क्या आज्ञा है?

रज०—( मुस्कराते हुए ) जो आज्ञा होगी उसका आप पालन करेंगे?

वि०—इसीलिये तो आया हूं।

रज०—( विनयको नीचेकी ओर ताकते देखकर अपने मनके भावको छिपाते हुए ) अच्छा, पहले आपसे मैं एक बात पूछती हूं आपने मुझे इतनी बड़ी रकम क्यों दी है?

वि०—तुम्हारे पिताकी जमीनसे जो धन प्राप्त होनेकी सम्भावना है, दस हजार तो उसका एक अंश मात्र है।

रज०—आप इस सजे सजाये कमरेको देखते हैं, एक दीपक के बिना कहां रहेगी इसकी सुन्दरता—आज ऐसा ही हो रहा है मेरा जीवन। आप ही बताइये मैं इन रुपयोंको लेकर क्या करूंगी—इसे कौन भोगेगा। यदि आप मेरा

उपकार करना चाहते हैं, यदि आपको मेरे दुःखसे सहानुभूति है तो मेरे लिये वह उपाय कीजिये जिससे मेरा रोग दूर हो—मेरी छाती पर क्लेशका जो पहाड़ पड़ा हुआ है वह हटे और जी हलका हो।

वि०—क्या मैं जान सकता हूं आपको किस बातका दुःख है।

रज०—अपनी करुण कहानी सुनानेके पहले क्या मैं जान सकती हूं कि आपमें मेरे दुःखको दूर करनेका साहस हैं ?

वि०—इसका दावा तो मैं नहीं कर सकता पर यथा-साध्य प्रयत्न अवश्य करूंगा।

रज०—(कुछ हताश होकर) बस केवल प्रयत्न ?

वि०—मनुष्य प्रयत्नके सिवा और कर ही क्या सकता है—उसमें इतनी ताकत ही कहां कि वह जो चाहे सो कर दिखावे।

रज०—मैं कोई असाध्य वस्तु नहीं चाहती हूं।

वि०—तो क्या चाहती हैं ?

रज०—जिसके नाम और गुणने मेरे ध्यानपर अधिकार जमा लिया है और कल्पनाको तारस्वरमें बांध लिया है, उसकी पूजा करना चाहती हूं।

वि०—(उसी तरह आँखें नीचे किये हुए) वह अभी इतना ऊपर नहीं उठ सका है कि उसकी देवताओंकी तरह पूजा की जाय।

रज०—स्त्रियां जिसे अपना जीवन सौंप देती है वही उनके हृदयका देवता बन जाता है और उसे ही वे पूजती हैं। (कहते कहते रजनीका मुख तमतमा उठता है और उसकी गर्दन झुक जाती है)।

(विनय हठात् उठकर खड़ा हो जाता है)

रज०—बैठिये, बैठिये मैं आपको फांसीपर नहीं लटकाने जा रही हूं।

विनय—हे मेरे कुलदेवता! मेरे हृदयमें बल दो और मेरा हाथ पकड़ कर इस अग्नि परीक्षासे निकाल ले चलो। (कहते २ विनयकी आँखें बन्द हो जाती हैं और वह जैसे कुछ सुनता है)।

रजनी—आप ऐसे कान लगा कर क्या सुन रहे हैं ?

विनय—सुन रहा हूं धर्मके डंकेकी आवाज और सुन रहा हूं अपने हृदयसे उठनेवाली धर्मकी आवाज, कल्याणी और सुवदने! जान रखो मैं सब छोड़ सकता हूं पर अपने धर्मको नहीं छोड़ सकता।

रजनी—(तनक कर) हटो हटो एक बालिकाका सर्वनाश कर धर्मकी दोहाई देने चले हैं।

विनय—यह कैसा लाञ्छन है। मैंने आपका क्या बिगाड़ा है ?

रज०—आपने नहीं—आपके पिताने—

विनय—(साश्चर्य) मेरे पिताने—मेरे पिताने क्या किया है ?

रज०—क्या किया है यह नहीं पूछ कर पूछिये क्या नहीं किया है। आप जानते हैं उनकी धनकी पिपासाने मेरे पिता जैसे कितनोंको मटियामेट कर डाला है, कितनोंके जीवनको धूलमें मिला दिया है।

विनय—मेरे पिताके कारण कितनोंकी जिन्दगी धूलमें मिली है ?

रज०—हां हां आपके पिताके कारण। सुनना चाहते हैं अपने पिताकी कीर्ति, सुनिये। आपके पिताने समयपर मालगुजारी न चुका सकनेके कारण हमारे पिताकी जमीनको जो उनके बुढ़ापेका सहारा और जीवन का आधार था, नीलाम करा दिया। कुर्कीके वक्त मेरे पिता अड़ गये, जिसके कारण हुई फौजदारी और चला मामला। मामलेके लिये उन्हें लेना पड़ा कर्जा

और उस कर्जेसे छुटकारा पानेके लिये उन्हें करनी पड़ी मेरी कुरबानी। ऐसा हुआ उन्हें अफ़सोस उस जमीनके जानेका कि वे फिर खाटसे उठे ही नहीं।

विनय—ओह !

रज०--क्या कहूं, उन बातों की याद आ जानेसे मेरा कलेजा धू धू कर जलने लगता है। यदि मेरे पिताके सिर कर्ज़का बोझ न होता तो मैं एक १२ वर्षकी नादान बच्ची ५२ वर्षके बुड्ढेके गले न मढ़ दी गयी होती ; और आज जब मेरे अंग प्रत्यंगसे जवानी फूट रही है मैं इस वैधव्यताको प्राप्त न होती। यदि मेरे पति अन्ध-लालसाके वशीभूत न होते और यह सोचा होता कि मेरे भी हृदय है, अपनी इच्छा है, मैं उन्हें अपने हृदयमें स्थान दे सकूंगी या नहीं तो मेरी आज यह दशा न होती। यदि धनके मदसे उन्मत्त होकर उन्होंने यह सोचा होता कि पैसेसे वे मेरे शरीरको तो खरीद रहे हैं मनको भी खरीद सकेंगे या नहीं तो आज मुझे बिलखते हुए दिन न बिताना पड़ता।

विनय—ओह ! आपकी कहानी कैसी दर्दनाक है। इसके बाद क्या हुआ ?

रज०—इसके बाद वही हुआ जो ऐसे कर्मोंका परिणाम हुआ करता है—मेरे अन्दर घृणा और प्रतिहिंसाकी ज्वाला जल उठी और मैं अपने ममताहीन व्यवहारसे उनके रोग-शोक से जर्जरित शरीरको मौतके घाट उतारने लगी — बदला लेनेकी इच्छासे अपना सर्वनाश आप करने लगी। आज मैं इस अतुल पृथ्वी पर अकेली हूं और मेरे चारों और है ढेर का ढेर अन्धकार। दुःखसे भरी मेरी इस कहानीको कैसे चुपचाप सुन रहे हो तुम ! जी जरा तरस भी नहीं खाता ?

वि०--देवी मैं विवश हूं, आप ही बताइये मैं क्या कर सकता हूं।

रज०—(व्यंग भरे स्वर में , मैं रोऊं और तुम खड़े २ तमाशे देखो।

वि०—नहीं ऐसा न कहिये. मैं तमाशा देखने नहीं आया हूं।

रज०—तो क्या करने आये हैं।

वि०—तुम्हारी ज्वालाको शान्त करने।

रज०—कैसे, घृणा से ?

वि०—नहीं. नहीं।

रज०—तो प्रेमसे ?

वि०—तुम नहीं जानती मैं किस प्रकार बन्धा हुआ हूं।

रज०—किसने तुम्हें बांध रखा है ?

वि०–धर्मने ; धर्म ! मुझे राह दिखा, इस आंधीमें तेरा प्रकाश न बुझने पावे।

(रजनीका हृदय भर आता है और वह अंचलसे मुख ढक कर रोने लगती है)

विनय—रोओ मत देवी। अपने नेत्रों के नीर में मेरे मान-यश, सुख-शान्ति, इहलोक-परलोक को बहा दो पर मेरे धर्म को न बहाना ; प्रलोभन की सजीव मूर्ति धारण कर मेरे धन ऐश्वर्यको विषय-वैभव को अपहरण कर लो, पर मुझे सत्यसे च्युत न करना, मेरे धर्मकी ध्वजा सदा फहराती रहे, उसमें कोई कलंक का छींटा न पड़ने पावे ; तुमसे यही प्रार्थना है।

रज०—क्या मेरी नैया को मझधारमें डूबती हुई छोड़ कर चले जाओगे ?

वि०–धर्मके लिये स्वार्थका त्याग किया जा सकता है, परोपकार के लिए स्वर्गका त्याग किया जा

सकता है पर धर्मको बेचकर पाप कैसे खरीदा जा सकता है।

रज०—(जलकर) धर्म धर्म चिल्ला कर क्यों मेरी छाती में भाले भोंक रहे हो। पिताके पापका प्रायश्चित्त करना क्या धर्म नहीं कहाता? पिताके ऐश्वर्यके भागी बननेके लिये तो दिल खोलकर न तुरत तैयार हो गये। किन्तु उनके पापके, अत्याचारके भागी बननेके समय धर्मकी दोहाई देकर दिलको बन्द कर लेना क्या कापुरुषता नहीं है?

(विनय किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है फिर गम्भीरतापूर्वक कुछ सोच कर)

वि०—तुम्हारी निगाह में मेरे पिता दोषी है और उस दोष से उन्हें मुक्त करनेका एकमात्र उपाय है तुम्हारी पुत्र कामनाको पूरी करना। (घुटने टेक कर) आजसे तुम हुई मेरी माता और मैं हुआ तुम्हारा पुत्र—मुझे मां नहीं है मैंने मां पाया और तुमने पुत्र।

रज०—माता! उः!! (इससे तो गले पर छुरी फेर देनेसे कम यंत्रणा होती "कहती हुई रजनी माथेपर हाथ रख कर बैठ जाती है)

वि०—(इधर उधर ताकते हुए) कौन कहता है "भाग विनय, यहांसे भाग—"

(वेगसे प्रस्थान)

रज—चला गया! हाय! ऐसा कोई पात्र नहीं जिसमें अपनी अगाध स्नेहराशिको रखूं—

(क्रमशः)

# सुन्दर स्वस्थ विचारों का शरीरपर प्रभाव

ले० – श्री राल्फ़ वाल्डो ट्राईन

## शरीर—शानदार आत्मा का मन्दिर

भगवान् अनन्त जीवन का आत्मा है। यदि हम इस जीवनमें भाग लेनेवाले हैं, और अपनेको दैवीय प्रवाहके प्रति खोलनेकी शक्ति रखते हैं, तो जहांतक शारीरिक जीवनका सम्बन्ध है, इस दैवीय प्रवाहके प्रति अपने हृदय-कपाटका खोलना हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि स्पष्ट तौर पर अनन्त आत्मा का जीवन स्वभावसे ही रोगोंसे सर्वथा शून्य है और यदि यह सच है तो हमारे शरीरमें जहां कि अनन्त आत्मा स्वतन्त्र और निर्बाध रूपसे विचरता है, रोग नहीं रह सकते।

## जीवनका प्रवाह अन्दरसे बाहिरकी ओर

अपने वक्तव्यके प्रारम्भमें ही मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जहांतक शारीरिक जीवनका सम्बन्ध है, समस्त जीवन अन्दरसे बाहिरकी ओर प्रवाहित होता है अर्थात् समस्त जीवन; ज्योति और प्रफुल्लित विचारोंका स्रोत हमारा अन्तःकरण है। यह एक अपरिवर्त्तनशील, स्थिर प्रकृतिका नियम है "जैसे अन्दर, वैसे बाहिर; कारण, कार्य!' दूसरे शब्दोंमें विचारकी शक्तियां, विभिन्न मानसिक अवस्थाएं और भावनाएं समयानुसार हमारे इस भौतिक शरीरपर प्रभाव डालती रहती है।

## मनका शरीरपर प्रभाव—

आज मनोविज्ञानके क्षेत्रमें जो नए २ परीक्षण हो रहे हैं, उनके आधारपर वैज्ञानिकोंका यह दावा है कि शरीर पर मनका बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। उदाहरणके लिए कल्पना कीजिए आप अपने मित्रोंसे हँस खेल कर मनोविनोद कर रहे हैं और आप मस्तीकी तरङ्गमें खूब प्रफुल्लित अवस्थामें हैं कि इतनेमें एक आदमी आकर आपको आपकी प्राणप्रिया पत्नीकी मृत्युका समाचार सुनाता है; आपकी हँसी छूमन्तर हो जाती है, चेहरा एकदम पीला पड़ जाता है और आप मूर्छित होकर चेतनाशून्य हो जाते हैं। आपके मन द्वारा यह खबर आपको पहुंची जिसने आपके शरीरको इस शोचनीय अवस्थामें ला दिया। दूसरा उदाहरण लीजिए, आप मेज़पर बैठे हुए स्वादिष्ट पदार्थोंपर हाथ साफ़ कर रहे हैं, आपका मित्र आपसे कोई ऐसी कड़वी बात कह देता है, जिससे आपका हृदय व्यथित हो उठता है, आप खाना एकदम छोड़ देते हैं, आपकी भूख ही बिलकुल जाती रहती है। जानते हैं, इसका क्या कारण है? मित्रके शब्दोंने मन द्वारा आपमें प्रवेश किया और इस प्रकार आपके शरीर पर प्रभाव डाला।

## लंगड़ाता हुआ नौजवान—

ज़रा दूर नज़र दौड़ाइए, एक नवयुवक अपने पैरोंको घसीटते हुए जा रहा है, थोड़ी २ दूरपर उसके पैर लड़खड़ा उठते हैं। ऐसा क्यों? इसका सादा सा कारण है कि उस नौजवानका मन दुर्बल है, उसमें स्थिरता नहीं। दूसरे शब्दोंमें मन की गिरती हुई अवस्था हमारे शरीरमें भी लड़खड़ाहट उत्पन्न कर देती है। निश्चित और दृढ़ मनवाला होनेसे शरीरमें भी स्थिरता आती है और पैर कदम २ पर फिसलते तथा शराबियोंकी तरह लड़खड़ाते नहीं।

और लीजिए, एकाएक कोई दुर्घटना घटित होती

है, आप भयसे काँपने लगते हैं। आप क्यों कांपते हैं, क्या आपमें शक्ति नहीं है? इसका सीधासा उत्तर यही है कि आपके मनने आपके शरीरपर प्रभाव डालकर आपको उस कांपनेकी अवस्थामें रहनेके लिए मजबूर कर दिया है। आपको किसी पर अत्यधिक क्रोध आता है, और कुछ देर बाद आप सिरदर्द की शिकायत करने लगते हैं। ऐसा क्यों? उत्तर है, विचारों और भावनाओंका शरीर पर यह प्रभावका परिणाम है।

## चिन्तासे खुशमिज़ाज़ी प्रफुल्लता और क्रियाशीलता का लोप—

एक या दो दिन पहले की बात है। मैं अपने एक मित्रसे चिन्ताके बारेमें बातें कर रहा था। मेरे मित्रने कहा—'मेरे पिताजी आजकल बहुत उद्विग्न और चिन्तित रहते हैं।" उसके यह वाक्य समाप्त करते ही मैंने कहना शुरू किया "आपके पिताजी स्वस्थ, उत्साही, क्रियाशील और खुशमिज़ाज़ नहीं हैं" इसके बाद मैंने विस्तृत रूपमें अपने मित्रके पिता की अवस्थाका वर्णन करना शुरू किया और उन कष्टोंको बताया, जिनसे उसके पिता पीड़ित थे। मेरे मित्र आश्चर्यसे मेरी ओर देखने लगे और कहने लगे "आप कबसे मेरे पिताजीको इतने नज़दीक से जानते हैं।" मैंने कहा—"मैं तो नहीं जानता।" इस पर मेरे मित्रने कहा "तो फिर आपने किस तरह ठीक २ मेरे पिताजीकी दशाका चित्रण किया।" इस पर मैंने मित्रसे कहा "आपने अभी २ मुझे बताया है कि आपके पिताजी अत्यधिक चिन्तित रहते हैं। इस प्रकार आपने कारणका निर्देश किया, आपके पिताजीकी अवस्थाका वर्णन करनेमें मैंने केवल कारणको उसके विशेष प्रभावोंसे जोड़ दिया है; कारणसे कार्य बतलाया है, इससे अधिक मैंने और कुछ नहीं किया।"

भय और चिन्ता शरीरकी नालियां (Channels) को बिलकुल बन्द कर देती हैं जिससे जीवनी शक्तियां बहुत धीमे २ और सुस्त तरीके से बहती हैं। इसके विपरीत आशा और प्रफुल्लता शरीरकी नालियोंको खोल देते हैं; जिससे जीवनी शक्तियों का प्रवाह सरिताकी तरह उछलता हुआ बहता है और इस अवस्थामें शारीरिक तथा मानसिक व्याधियां शरीरमें प्रविष्ट ही नहीं कर पाती। आशाकी ज्योति जहां व्यक्तिके अपने अन्धकारावच्छन्न हृदयको जगमगाती है, वहां दूसरोंको भी प्रकाश दिखलाती है। प्रफुल्लता का भाव जहां स्वयं व्यक्तिमें एक तरङ्ग उत्पन्न करता है वहां वह चारों ओरके वातावरण तथा साथ रहने वाले आदमियोंको भी तरङ्गित अवस्थामें लाता है।

## बहिनको क्षमा कर दो—

कुछ अरसा हुआ एक लड़की मेरे एक मित्रसे अपने किसी भयङ्कर शारीरिक कष्टके बारेमें कह रही थी। बातों बातोंमें मेरे मित्रको पता चला कि उस लड़की में और उसकी बहिनमें प्रेम-पूर्ण सम्बन्धों का सर्वथा अभाव था और उनकी आपसमें बनती नहीं थी। मेरे मित्रने उस लड़कीकी बातोंको बड़े ध्यानसे सुना और उसके चेहरे पर दृष्टि जमाते हुए हुए दृढ़ किन्तु कोमल, मधुर स्वरमें कहा—"अपनी बहिनको क्षमा कर दो।" वह लड़की आश्चर्यसे मेरे मित्रकी ओर देखने लगी और उसने कहा—"मैं अपनी बहिनको हर्गिज़ क्षमा नहीं कर सकती" मेरे मित्रने शान्तिसे कहा—"तो फिर अपने जोड़ोंके दर्द और मानसिक बीमारीको उसी तरह कायम रक्खो" कुछ महीने बाद मेरे मित्रको उस लड़कीको देखनेका

सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह धीमे २ मुसकराती हुई मेरे मित्र के पास आई और कहने लगी "मैंने तुम्हारी सलाह मान ली थी। मैंने अपनी बहिनको क्षमा कर दिया। अब हम दोनों मित्र बन गई हैं, और उसी दिनसे जिस दिन हम दोनों आपसमें घुल मिल गई, स्नेहपाशमें आबद्ध हो गई, मेरे पिछले कष्ट कम होने लगे और आज उन पुरानी तकलीफ़ोंका एक भी चिन्ह बाकी नहीं है। और अब वास्तवमें मुझमें और मेरी बहिनमें आपसमें इतनी गाढ़ मित्रता हो गई है कि अब हम दोनों एक दूसरेके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती। यहां हम फिर कारणका प्रभाव देखते हैं।

इस प्रकारके और भी बहुत सारे प्रमाणित केस आप अपने प्रतिदिन के जीवनमें देख सकते हैं। एक माताको थोड़ी देरके लिए बहुत ज़ोरका क्रोध आता है और उसके स्तनोंसे दूध पीता हुआ बच्चा घंटे भरके अन्दर इस संसारसे विदा ले लेता है, उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। इसका कारण स्पष्ट है; जब माता क्रोधके अत्यधिक आवेशमें थी, उस समय उसके शरीरसे निकलनेवाले स्राव ( Secretions ) विषैले हो गए; परिणामतः उनसे दूधमें भी विषका संचार हो गया। जिससे बच्चे की मृत्यु हुई। दूसरे केसोंमें इससे कभी २ भयंकर बीमारियां और पागलपन तक होता देखा गया है।

## एक वैज्ञानिक का परीक्षण—

एक प्रसिद्ध वैज्ञानिकने निम्न परीक्षण अभी हालही में किया है। उसने कई मनुष्योंको एक गरम कमरेमें रक्खा। प्रत्येक मनुष्यको कुछ समयके लिए एक विशेष प्रकारके आवेशमें लाया गया, कोई तीक्ष्ण क्रोधके आवेशमें था, कोई प्रबल ईर्ष्याके और कोई प्रेम और प्रफुल्लता के। इस प्रकार उस गरम कमरेमें रक्खा गया प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी प्रकारके आवेश के प्रबल आवेगसे युक्त था। उस वैज्ञानिकने प्रत्येक मनुष्यके शरीरसे एक २ पसीनेकी बून्द ली और सावधानपूर्वक किए गए रासायनिक विश्लेषण ( chemical analysis ) द्वारा उसने यह बतलाया कि कौन २ आदमी किस २ आवेशसे ग्रस्त था और यही परिणाम उन आदमियोंकी राल ( Saliva ) के रासायनिक विश्लेषणके फलस्वरूप घटित हुए।

## एक अमेरिकन डाक्टर के विचार—

एक प्रसिद्ध अमेरिकन विद्वानका जो चिकित्सा-शास्त्रका एक सफल विद्यार्थी रहा है और जिसने शरीर निर्माणमें सहायक शक्तियोंका गम्भीर अध्ययन किया है, यह दावा है "मन शरीरका स्वाभाविक रक्षक है। प्रत्येक अशुभ विचार बीमारी और वासनाके भयंकर मानसिक चित्र उत्पन्न करनेकी शक्ति रखता है। क्रोध रालके रासायनिक गुणोंमें परिवर्त्तन ला देता है और उससे उत्पन्न हुआ २ विष शरीरके लिए घातक सिद्ध हो सकता है। यह तो सर्वविदित ही है कि एकाएक और तीक्ष्ण रूपमें आई हुई भावनाएं न केवल हृदयको निर्बल बनाती हैं, अपितु उनसे कई केसोंमें मृत्यु और पागलपन तक होता देखा गया है। अपराधीके पसीनेके रासायनिक विश्लेषणके द्वारा हम उसके मनकी अवस्था जान सकते हैं। भयके प्रबल आवेगके कारण बहुतोंने अपने प्राण गँवाए हैं और इसके विपरीत साहससे लोगोंने अद्भुत शक्ति संचय किया है।

## प्रसिद्ध अश्वविद्या विशारद रेरे—

प्रसिद्ध घुड़सवार रेरे का यह मत है कि क्रोधके एक शब्दसे कभी २ घोड़ेकी नाड़ी एक मिनटमें दस बार तक गति करती पाई गई है। यदि यह पशुओंके विषयमें सच हैं; तो मनुष्यके शरीर पर भावनाओं का कितना बड़ा प्रभाव पड़ता होगा, उसका हम महत्त्व

ही अनुमान कर सकते हैं। निराशा, घृणा, भय, ईर्ष्या और द्वेषके विचार मनुष्यको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे रसातलकी ओर ले जाते हैं। इसके विपरीत आशावाद, प्रेम, निर्भयता, और मैत्रीके भाव शरीर और मन दोनोंपर आश्चर्यजनक प्रभाव डालते हैं।

## रोगीके कमरेमें डाक्टरका प्रवेश—

एक डाक्टर एक रोगीको देखने घर पर जाता है। यद्यपि वह रोगीको उस दिन कोई दवा नहीं देता फिर भी केवल उसकी उपस्थितिसे रोगी अपनेको पहलेसे अधिक स्वस्थ अनुभव करने लगता है, उसके दिलको तसल्ली होती है। इसका कारण है कि डाक्टर अपने साथ स्वास्थ्यका सन्देश ले गया है, मधुर भाषण की मरहम ले गया है; उस रोगीके कमरेमें वह आशा का दीपक ले गया है। संक्षेपमें डाक्टरने अपने आशा और प्रफुल्लताके भावको उस रोगीके शरीरमें प्रविष्ट कर दिया है और इसने रोगीके मन और शरीर दोनों पर आश्चर्यजनक प्रभाव डाला है।

एक अंग्रेज विद्वान्ने क्या ही सुन्दर कहा है—

**प्रेम, प्रसाद और प्रफुल्लता के विचार जहां मनमें तरङ्ग उत्पन्न करते हैं, वहां शरीरपर भी अपना स्थायी प्रभाव छोड़ जाते हैं। मनुष्यों के जीवनमें गति देनेवाली यदि कोई वस्तु है तो वह आशा है। आशा ही मनुष्य की आत्मामें प्रकाश उत्पन्न करती है।**

## तुम्हारे आने पर मेरा दिल नाच उठता है—

हम कभी २ एक क्षीण स्वास्थ्यवाले व्यक्तिको दूसरेसे यह कहते हुए सुनते हैं—"ऐ मेरे मित्र! जब तुम यहां आते हो, मेरा हृदय हर्षातिरेकसे नाच उठता है, मैं पहले की अपेक्षा अपने को अधिक स्वस्थ अनुभव करता हूं। इस कथन में एक गम्भीर वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। प्रेरणाकी शक्ति (The power of suggestion) जहांतक मानवीय मनका सम्बन्ध है, महत्वपूर्ण, दिलचस्प अध्ययनका क्षेत्र है। प्रेरणाके द्वारा आश्चर्यप्रद महान् शक्तियोंको जो मनुष्यके अन्तरालमें छिपी हुई है, कार्यान्वित किया जा सकता है। संसारके एक मशहूर प्राणिविद्या विशारदने अपनी परीक्षणशालामें किए गए परीक्षणों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि समस्त मानव शरीरकी आकृति एक वर्षसे कम अरसेमें बिलकुल परिवर्त्तित की जा सकती है और शरीरके कुछ हिस्से तो केवल चन्द सप्ताहोंमें नए बनाए जा सकते हैं।

मेरे कहनेका तात्पर्य यही है कि आन्तरिक शक्तियों (Interior forces) के प्रभाव द्वारा हम अपने शरीरको स्वस्थ, सुन्दर और सबल बना सकते हैं। मेरी तुच्छ सम्मतिमें जर्जरित शरीरमें नवप्राण भरनेका और इलाजका यही प्रभावशाली स्वाभाविक उपाय है; दवाइयों और बाह्य उपायों द्वारा शरीर और मनको स्वस्थ बनानेका प्रयत्न सर्वथा कृत्रिम हैं। दवाईयाँ तो केवल बाधाओंको हटाती हैं; वास्तविक प्रभाव तो आन्तरिक जीवन शक्तियोंका पड़ता है।



# चाँदनी

रचयिता—श्री पं० सूर्यकुमारजी वेदालङ्कार, आचार्य
गुरुकुल आर्योला, बरेली

अमृत झरता है—
उज्वल उज्वल, निर्मल निर्मल, स्निग्ध धवल
प्रिय अमृत झरता है ।
दुग्ध-स्नात वसुधा की काया
मृदुल ज्योति किरणों की छाया
ज्वाला, पीड़ा, श्रान्ति दूर हो
जग जननी ने स्नेह बहाया,
दिशा दिशा वन बाग सरित पुर उर उर भरता है
अमृत झरता है ।
दिव्यलोक अप्सरा उतरती,
मृदु धीरे तन्द्रिल पग धरती,
सित दुकूल फहराता फेनिल
निर्निमेष स्वागत में धरती,
मादक करसे उठ तन्त्री स्वन चेतन जड़ करता है ।
अमृत झरता है ।
पलकों पलकों पर चित्रित कर
इन्द्रधनुष सपनों के निर्भर
कुछ उपहार मिलें जागे हैं
योगी और वियोगी अन्तर
राज हंस नभ क्षीरोदधि का
बिखरा स्मृति विस्मृति मुक्तायें
स्मिति पर फैला धीरे धीरे
मौन उतरता है ।
अमृत झरता है ।

# उर्दू शायरी के चन्द नमूने

ले०—श्री पं० वेदराज वेदालङ्कार, भूतपूर्व मुख्याध्यापक गुरुकुल बेटसोहनी, पंजाब

आदरणीय मित्रवर श्री विट्ठलदासजी मोदी, संपादक 'जीवन-साहित्य' ने अभी उस दिन सौगात के तौरपर फ़ारसी और उर्दू के चन्द शेर लिफ़ाफ़े में बन्द कर के भेजे थे। मेरी यह इच्छा हुई कि इन शेरोंको कुछ विस्तृत रूप देकर और साथमें टिप्पणी रूप में दो चार शब्द लिख कर इसे 'सात्विक-जीवन' के पाठकों तक पहुंचाऊँ। इस छोटेसे लेखके जन्मकी यह छोटीसी कहानी है।

आम लोगोंकी यह धारणा है कि उर्दू और फ़ारसीकी शायरी इश्क, शराब और जुल्फ़ों तक ही सीमित है। परन्तु इसके साथ २ इस सत्यसे भी इन्कार नही किया जा सकता कि भगवद्भक्ति, प्रकृति प्रेम, जीवनकी वास्तविकता और अध्यात्मप्रेम के क्षेत्रमें भी इस आला दरजेकी शायरी उर्दू और फ़ारसी के कवियों ने की है कि मुंहसे अनायास ही "वाह वाह" निकल पड़ता है। उपनिषदों और वेदोंमें जिस उच्च आध्यात्मिक प्रेम, भगवद्भक्ति और जीवन का चित्रण है, वह आपको उर्दू और फ़ारसी की शायरीमें भी मिल सकता है। उर्दू कवियोंने भी अपने हृदय-सागर का मन्थन कर ऐसे उज्वल, धवल भावोंके मोती शायरीके रूपमें निकाले हैं कि उन मोतियोंके प्रकाश से हम अपने हृदयको आलोक और प्रसादसे पूर्ण कर सकते हैं। जीवनकी वास्तविकता और क्षणिकताका चित्रण करनेमें भी उर्दू कविओंने कमाल कर दिखाया है। सूफ़ियाना शायरीमें हमें वेदान्त के अमरतत्त्व "तत्त्वमसि" अर्थात् तूं वह है, शुद्ध पवित्र आत्मा है, की झांकी देखनेको मिल सकती है और रहस्यवादी अनुभव Mystical experiences) भी इसमें प्रकट हुए हैं।

सबसे बड़ी खूबी जो उर्दू और फ़ारसीकी शायरी में पाई जाती है, वह यह है कि उर्दू और फ़ारसी के शायरोंने थोड़े में बहुत कहा है यानी गागरमें सागर भर दिया है। शायरके मुंहसे शेर निकलते ही सीधा सुननेवाले के दिल पर असर करते हैं। भाव-गाम्भीर्य इस ऊंची कोटिका है कि तारीफ़ किए बिना दिल नहीं मानता।

मेरे एक दोस्त हैं; जिन्होंने साहित्यिक क्षेत्रमें पर्याप्त ख्याति प्राप्ति की है। वे इधर कुछ अरसे से उर्दू के अध्ययन के पीछे दीवानेसे हो रहे थे। मुलाक़ात होनेपर जब मैंने उनसे इसका कारण पूछा तो कहने लगे "कि एक बार दो चार मशहूर उर्दू के शेर सुने थे, उनके भाव गाम्भीर्यको देखकर मेरे हृदयमें यह तरङ्ग उत्पन्न हुई कि मैं भी उर्दू और फ़ारसीका गम्भीर अध्ययन कर उर्दू और फ़ारसी शायरीका वास्तविक आनन्द उठाऊं, क्योंकि स्वयं अमृतके स्रोतके निकट पहुंच कर अमृत का पान करनेमें जो आनन्द आता है, वह दूसरे द्वारा उस स्थानसे लाए गए अमृतका पान करनेमें नहीं आता। गंगोत्तरीमें जाकर गंगाजल का पान करनेमें जो आनन्द आता है, वह कानपुर या बनारसकी गंगामें कहां!"

इस संक्षिप्त भूमिकाके बाद पाठकोंकी सेवामें मैं उर्दू और फ़ारसी शायरीके चन्द नमूने भेंट करता हूं और इसके साथ २ हिन्दू फ़िलासफ़ी से भी इसकी समता दिखाने का यथासाध्य प्रयत्न करूंगा।

हमारे धार्मिक ग्रन्थोंमें जीवन का चरम लक्ष्य मुक्ति बतलाया गया है। यह वह उच्च अवस्था है, जहां मनुष्यकी सब कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं, वह आप्तकाम हो जाता है, उसे किसी सांसारिक पदार्थकी प्राप्ति की कामना नहीं रहती। मनुष्य केवल अपने आराध्य-देव भगवान् से ही लौ लगाता है। परन्तु एक उर्दू का शायर इससे भी दो कदम आगे बढ़ कर कहता है।

सौदागरी नहीं यह इबादत१ खुदा की
ऐ बेखबर जज़ार की तमन्ना३ भी छोड़ दे।

भक्त को अपने भगवान्से इतना अधिक प्रेम होना चाहिए कि वह ध्यान और समाधिकी उच्च अवस्थापर पहुंच कर बिलकुल आत्म-विस्मृति की दशामें लीन हो हो जाय, उसके लिए ईश्वरप्राप्ति भी कोई उद्देश्य न रहे। यह अवस्था आत्मानुभवकी अवस्था है; केवल बौद्धिक तर्क वितर्कसे इस उच्च अवस्था पर हर्गिज नहीं पहुंचा जा सकता।

और हिम्मत बुलन्द कर ऐ शेख़
तम४ और खौफ़५ की इबादत भी क्या।

आदमी को इतना ऊंचा उठना चाहिए कि वह भक्तिका भी लोभ छोड़ दे और उसे भगवान्से भी बिलकुल भय न हो। निर्भयता और इच्छाओंकी पूर्ति की इससे उत्कृष्ट कल्पना मानवीय मस्तिष्क से ऊपर की चीज़ है।

सांसारिक इच्छाओं और पदार्थोंके मायाजालमें जो अपनी शानदार, महान् आत्माको आबद्ध नहीं होने देते, वे ही जीवनका वास्तविक आनन्द उठा सकते हैं। जिस व्यक्तिकी इच्छाएं और जीवनकी आवश्यकताएं जितनी कम है वह उतना अधिक सुखी है। एक शेरमें इसी भावको सुन्दर रूपमें अभिव्यक्त किया गया है।

१ भक्ति २ ईश्वरप्राप्ति ३ लोभ ४ लोभ ५ डर।

बेगरज़ होकर मज़े से ज़िन्दगी कटने लगी
तर्के ख्वाहिश६ ने हमारा बोझ हलका कर दिया।

जीवनकी यथार्थतापर भी कवियोंने बड़े सुन्दर भाव अभिव्यक्त किए हैं। इन्सान की ज़िन्दगी क्या है, पानीका बुलबुला। इस जिस्मको एक दिन खाकमें ज़रूर मिलना है। जीवित अवस्थामें मनुष्योंमें चाहे कितने ही फ़र्क नज़र आते हों; परन्तु मरनेपर सबके शरीरने मिट्टी और धूलमें ही परिवर्तित होना है। इसपर स्वामी रामतीर्थने क्या लाजवाब कहा है—

गर एक को हज़ार रुपैका मिला कफ़न
और एक योंही पड़ा रहा बेकस बरहनःतन।
कीड़े मकोड़े खा गए दोनों के तन बदन
देखा जो हमने आह तो सच है यही सुखन
जो ख़ाक से बना है आखिर को खाक है।

मनुष्य अहंभाव के चक्करमें पड़कर सीमित दायरेके अन्दर घूमता रहता है यह मेरा, यह तेरा के बन्धनसे आत्माको मुक्त नहीं कर पाता। परन्तु जब वह तत्व-ज्ञानकी उच्च अवस्था पर पहुंचता है, तब उसे पता लगता है कि अभीतक वह भ्रमजाल में पड़ा हुआ था। संसारमें जो कुछ है सब उसी भगवान्का है। इसी भावको महाकवि अकबरने इस प्रकारसे अभिव्यक्त किया है।

कालिज में हो चुका जब इम्तहां हमारा
सीखा जुबां ने कहना हिन्दोस्तां हमारा
रकबे७ को कम समझ कर "अकबर" यह बोल उठे
हिन्दोस्तान कैसा, सारा जहां हमारा
लेकिन यह सब ग़लत है, कहना यही है लाज़िम८
जो कुछ है सब खुदा का वहमो गुमां हमारा।

इस दुनियां की सराय में सब लोग ऐसे डेरे डाल कर पड़े हुए हैं, जैसे कभी यहांसे विदाई ही न लेनी

६ इच्छाओं का नाश ७ क्षेत्रफल, ८ अनिवार्य।

हो। सब अपने अस्तित्वमें भूले हुए हैं; परन्तु इन्सांकी ज़िन्दगीका क्या भरोसा है, इसे कविवर बिस्मिल इलाहाबादीने अपनी हस्तीकी रुबाईमें इस प्रकार प्रकट किया है।

करता हूँ बयां ९ सुनिए बयाने हस्ती
कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं शाने हस्ती
इस सांसकी बुनियाद१० ही क्या है अय बिस्मिल
कन्धे पै हवा के है मकाने हस्ती

मनुष्यको मिथ्या अभिमान और अहंभावका जड़ से नाश कर सबसे प्रेम-पूर्वक व्यवहार करना चाहिए और इस चन्द दिनकी ज़िन्दगीको मुहब्बत और खुशीके साथ बिताना चाहिए इस भावको श्री बिस्मिल ने यों प्रकट किया है।

आपस में मेल जोल बढ़ाओ खुशी के साथ
क्यों रंज कर रहे हो यह लड़ना फ़िज़ूल है
दुनिया से झुक के ऐ हज़रते बिस्मिल मिला करो
दो दिन की ज़िन्दगी पै अकड़ना फ़िज़ूल है।

यदि आदमी के दिलकी दुनिया आबाद है, वह अपने रङ्गीन ख़यालोंमें मशगूल है और कल्पना की ऊंचे उड़ाने लेकर अपनेमें मस्त रह सकता है, उससे बढ़कर सुखी इस पृथ्वीपर और कौन होगा। ज़रा रसास्वादन कीजिए —

अपने ही रङ्गी खयालों में है आजादी मुझे
मस्त रखती है खुदी में दिल की आबादी मुझे
कुछ न हो ग़म कुछ न हो परवाए बरबादी मुझे
खाक में मिल कर अगर मिल जाय आज़ादी मुझे
यह है तन में कैद जबतक मैंभी हूं दुनिया में कैद
रूह११ निकलेगी तो मिल जाएगी आज़ादी मुझे

प्रभु-भक्ति में दीवाने हुए २ भक्त की हालत देखिए—

तरीके इश्क१२ में दीवाने वार१३ फिरता हूं
खबर गढ़े की नहीं और कूवां नहीं मालूम

और भी —

फिरता हूं फिरता है वह परदेनशीं जिधर
पुतली की तरह से मैं नहीं अख्तियार में

अगला शेर क्या ही लाजवाब है—

तुम और दिल में ? अब तो कहूंगा पुकार कर
दिल की न इब्तदा१४ है न है इन्तहाये१५ दिल

अर्थात् जिस दिलमें भगवान् समा जाय उसका आदि अन्त कैसा—

भक्त को प्रभु-भक्ति में इस प्रकार लीन रहना चाहिए कि उसको अपनी बिलकुल सुध बुध न रहे, वह मस्ती और आनन्द के झूलेमें झूलने लगे, उसके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु छलक पड़ें। ज़रा मुलाहिज़ा फ़रमाइए।

जहां मिलने की ठहरे मुझ से, मैं भी ऐ सनम१६ गुम होऊँ
सिवा तेरे न हो कोई, वह खिलवत१७ हो तो ऐसी हो।

मित्रसे एकान्त में मिलने की बात तो होती है, पर भक्त कहता है कि इतना एकान्त हो कि मैं भी गुम हो जाऊं अर्थात् मैं भी अपने अस्तित्व को बिलकुल भुला दूं; केवल तू ही तू हो। वेदान्तके तत्त्वमसि भाव को यहां चित्रित किया है।

यह विषय बहुत विस्तृत है। मैंने अपने इस छोटेसे लेखमें भगवद्भक्ति और जीवनकी वास्तविकतासे सम्बन्धित उर्दू और फ़ारसीकी शायरी पर स्वल्प-प्रकाश डालनेका प्रयास किया है। अन्तमें मैं हास्यरस के चन्द नमूने पेश कर अपने लेखको यहीं समाप्त करता हूं। मुझे हास्यरस से विशेष स्नेह है; मैं ज़िन्दगी के लिए इसे नितान्त आवश्यक समझता हूं।

९ वर्णन १०.आधार ११ आत्मा।

१२ प्रेम मार्ग १३ दीवाना बना हुआ १४आदि १५ अन्त १६ मित्र १७ एकान्त।

यद्यपि इस लेखमें हास्यके उदाहरण देना विषयसे बाहिर होगा, पर क्या करूं, तबियत नहीं मानती। आशा है आप मुझे क्षमा करेंगे और मेरे साथ खिल-खिला कर हँसेंगे।

सेठजी को फ़िक्र थी एक एक के दस कीजिए
मौत आ पहुंची कि हज़रत जान वापिस कीजिए

---

बोले चपरासी जो मैं पहुंचा ब-उम्मीदे सलाम
फांकिए खाक आप भी साहिब हवा खाने गए

---

इनको क्या काम है मुरव्वत से
अपने रुख से यह मुंह न मोड़ेंगे
जा न शायद फ़रिश्ते छोड़ भी दें
डाक्टर फीस को न छोड़ेंगे।

---

हम ऐसी कुल किताबें काबिलेज़ब्ती समझते हैं
कि जिनको पढ़के लड़के बापको खब्ती समझते हैं

---

हो गई गलियां भी शामिल शहरकी सड़कों के साथ
लड़कियां पढ़ने लगी कालिजमें अब लड़कों के साथ

---

न इसका ज़ायका अच्छा, न मेल अच्छा है
मेरे खयाल में अब घी से तेल अच्छा है।

---

रिज़ोल्यूशन की शोरिश है मगर उसका असर गायब
प्लेटों की सदा सुनता हूं और खाना नहीं आता।

---

कुत्ते लड़ाए जाएंगे बोटी के वास्ते
अखबार अब निकलते हैं रोटी के वास्ते
आपस में नोक झोंक है मज़हब के नामपर
दाढ़ी के वास्ते कहीं चोटी के वास्ते
धोती को छोड़ कर बढ़े पतलून की तरफ़
तरसेंगे कुछ दिनों में लंगोटी के वास्ते।

---

# मेरी बेजवाड़ा यात्रा

ले०—श्री डा० विट्ठलदास मोदी, संचालक आरोग्यसदन, गोरखपुर

जीवन-साहित्य के यशस्वी संपादक श्री विट्ठलदासजी मोदी भारतवर्ष के प्राकृतिक चिकित्सकों में अपना अन्यतम स्थान रखते हैं। आज से लगभग दो वर्ष पूर्व प्राकृतिक चिकित्सा की प्रगति को समझने के उद्देश्य से उन्होंने समस्त भारतवर्ष की यात्रा की थी और प्रत्येक स्थान से अपने छोटे भाई श्री दामोदर के नाम प्राकृतिक चिकित्सा पर प्रकाश डालनेवाले पत्र लिखे थे। बेजवाड़ा यात्रा सम्बन्धी एक पत्र उन्होंने सात्विक जीवन के पाठकों के प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञानवर्द्धन के लिए भेजा है, पाठकों के लिए यह उपयोगी सिद्ध होगा।

—संपादक।

प्रिय दामोदर,

वर्धा से मैं बेजवाड़ा आ गया और बेजवाड़ा में मैं इण्डियन नेचरोपैथिक असोसिएशन के मंत्री श्री ऐयांकी रमैया के यहां ठहरा हूं। मेरे पहुंचनेके दो घंटे बाद ही डाक्टर पी० वेंकटरमैया भी आ गए। मैंने उन्हें अपने पहुंचने की सूचना दे दी थी। वे बेजवाड़ा के एक निकट के गांव में रहते हैं और इन्डियन नेचरोपैथिक एसोसिएशन के सभापति एवं 'प्रकृति' (तेलगू) और 'दी इन्डियन नेचरोपैथ' के सम्पादक हैं। ये दोनों पत्र दी इन्डियन नेचुरोपैथिक एसोसिएशन बेजवाड़ा के मुख पत्र हैं। प्रकृति तेइस वर्षसे और इन्डियन नेचरोपैथ बारह वर्ष से निकल रहा है।

दी इन्डियन नेचुरोपैथिक एसोसिएशन प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी भारत की सब से पुरानी और सम्माननीय संस्था है। इसकी नींव जनवरी सन् १९२० में श्रीमनहनुमय्या नामक एक वयोवृद्ध थियोसोफिस्ट सज्जन ने एक उत्साही कार्यकर्त्री श्रीमती ज्ञानम्बा की सहायता से डाली थी। आगे तो यह संस्था एक पब्लिक ट्रस्टके आधीन कर दी गई और इसके ये लोग आजीवन ट्रस्टी रहकर सेवा करते रहे। प्रकृति इस संस्था के शुरू से ही निकलती है। इसकी पहले वर्षकी कुछ प्रतियां मैंने इस संस्थाके कार्यालयमें देखी जिन्हें इसके उत्साही सदस्योंने स्वयं कम्पोज़ किया और छापा था। जब यह पत्रिका शुरू की गई थी उस समय प्राकृतिक चिकित्सा के जानकार भारत में बहुत कम थे। संस्थाके सहायकों को ही पत्रिका के लिए ग्राहक ढूंढ़ने पड़ते थे और कभी कभी पत्रिका लोगों को पढ़ कर सुनानी और समझानी भी पड़ती थी। कार्यालय में और भी बहुत सी चीजें देखीं पर मुझे यहांकी प्रकाशित पुस्तकें विशेष महत्व की प्रतीत हुई। इनकी संख्या अस्सी के करीब है और अधिकतर डा० पी० वेंकेट रमैया द्वारा लिखित या अंग्रेज़ी: से अनूदित हैं। इन पुस्तकों का आन्ध्र के निवासियों और विशेषत: बेजवाड़ा निवासियों पर बड़ा व्यापक असर पड़ा है। यहां प्राकृतिक चिकित्सा से साधारण जनता भी परिचित है। जिन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा पर कुछ नहीं पढ़ा है वे भी जानते हैं कि जब सब प्रकार के औषधोपचार निरर्थक हो जाते हैं तब भी प्राकृतिक चिकित्सा काम करती है। प्राकृतिक चिकित्सासे अधिकतर लोग लुई कूने की ही पद्धति जानते हैं। तुमने इनकी पुस्तकका जर्मन भाषासे हुआ अंग्रेजी

अनुवाद "दी न्यू साइन्स आफ हीलिंग" पढ़ा है। इस पुस्तक के अनुवाद सभी भारतीय भाषाओं में भी एक नहीं दो दो और चार चार तक हुए हैं। इस पुस्तक के आधार पर अपने को स्वस्थ करनेवालों और अपने अनुभव के बलपर दूसरों को भी लाभ पहुंचानेवालों की संख्या बहुत बड़ी है। वास्तव में कूने का ढंग बहुत सरल एवं सीधा है। उनकी सारी चिकित्सा ही उनके पेडू नहान, धूप नहान, भाप नहान और अनुत्तेजक सादे भोजन में निहित है। प्रायः सभी रोगोंमें वे कहते हैं कि पहले दस पन्द्रह दिन सवेरे शाम पेडू नहान लेना चाहिये और फिर पेडू नहान के बदले मेहन नहान लेने लग जाना चाहिए। इन नहानों के बाद गर्मी लाना वे जरूरी बताते हैं और इसके लिए शक्ति के अनुसार टहलने व कसरत करने की राय देते हैं। जो कमज़ोर हैं और किसी प्रकार का श्रम नहीं कर सकते हैं उन्हें वे गरम कपड़े ओढ़ कर कुछ देर लेटनेको कहते हैं।

प्रति सप्ताह पसीना निकालनेके लिए सारे बदनपर भाप लगानी चाहिए या केले या किसी चीज़के पत्तों से सारे शरीर को ढक कर धूप में लेटना चाहिए।

भोजन में दाल, दूध, मांस, मिर्च, मसाले की वे मनाही करते हैं और फल तरकारियां और मोटे आटेकी रोटी का आग्रह।

कूने को एनिमा का परिचय नहीं था। पेडू नहान एवं इनके बताये भोजन से भी कब्ज जाता है। विशेष अवस्था में ये भोजन के बाद चुटकी भर साफ रेत पानी के सहारे निगलने की सलाह देते हैं।

कूने के चिकित्सा क्रम में उभाड़को बहुत अधिक स्थान है और उभाड़ ही प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त-रहस्य है। रोग नवीन तो शरीर का अपनी सफाई के लिए प्रयास मात्र है न। नवीन रोग लाने की शरीर की शक्ति जानेपर ही जीर्ण रोग का आगमन होता है। इसी सोई शक्तिको जगाना बढ़ाना जिसे जीवनी शक्ति कहते हैं प्राकृतिक चिकित्सा का ध्येय होता है। शक्ति बढ़नी है और जीर्ण रोग को मिटाने के हेतु रोग उभड़ता है, नवीन रोग का आगमन होता है शुभ के लिए। यह तो जीर्ण रोग ही है जो जिन्दगी भर लगा रह सकता है पर नवीन रोग तो कुछ घण्टों भर, कुछ दिनों के लिए ही आता है। अक्सर एक दो दिनके लिए ही, और शरीर को निर्बल बना कर चला जाता है।

इसी उभाड़ की उग्रता को कम करना चिकित्सा में लगनेवाले समय को घटाना और चिकित्सा को अधिक आरामदेह बनाने के साथ साथ इसकी तेज़ी को बढ़ाना आगे के चिकित्सकों का ध्येय रहा है और है। इसके लिए भोजन सम्बन्धी कुछ वैज्ञानिक अनुसंधान विशेष लाभदायक साबित हुए हैं जिनके बारेमें पिछले पत्रमें मैंने कुछ लिखा भी है,यों तो प्रत्येक रोग में कुछ विशेष खाद्यों की सिफारिश की जा सकती है पर फल और तरकारियों पर प्रत्येक रोग में ही विशेष जोर दिया जाता है। अच्छी है तो चोकर समेत मोटे आटे की रोटी ही, पर उसका अधिक प्रयोग और दोनों समय का उपयोग चिकित्सा में लगनेवाले काल को बहुत बढ़ा देता है। बड़ी आंतोंकी गन्दगी ही शरीर की सबसे बड़ी गन्दगी है, इसको एनीमा द्वारा चिकित्सारम्भ में साफ कर देनेसे होनेवाले उभाड़ों की उग्रता में बहुत कमी हो जाती है और पचास प्रतिशत रोगियों में उग्रता आनेकी जरूरत ही नहीं होती। शरीर, जल, मिट्टी, धूप, हवा और भोजन के समुचित प्रयोग से धीरे धीरे स्वयं शुद्ध हो जाता है।

इतने में ही प्राकृतिक चिकित्सा के सारे सिद्धान्त आ गए। फिर क्यों न प्रत्येक आदमी जिसे इसका परिचय हो जाय इसका भक्त बन जाय और स्वयं

इसे करे और दूसरों को भी कराने लग जाय। हां यों एक रोगी के लिए इस तरह का चिकित्सा क्रम बनाना कितना सरल है।

पहले दो या चार दिन शक्ति के अनुसार फलाहार कराया जाय और सेर डेढ़ सेर गुनगुने गरम पानी-का एनिमा देकर पेट साफ किया जाय। इसके बाद नहान शुरू हो। पहले दस दिन तक सवेरे शाम पेडू नहान, फिर पांच दिन सवेरे मेहन नहान और शाम को पेडू नहान फिर पन्द्रह दिन तक दोनों समय मेहन नहान चले। प्रति सप्ताह एक धूप नहान भी दिया जाय। इस तरह एक महीना चलने पर दस दिन तक नहान बन्द कर दिये जांय और फिर आवश्यकता होने पर शुरू हो। दस दिन बन्द कर देनेसे फिर शुरू करने पर उसका असर फिर तेजी से होगा।

और भोजन। फलाहार के बाद जब नहान शुरू हो जाय तब नहान एवं कसरत के बाद सवेरे फलों का नाश्ता, दोपहर को रोटी और हरी उबली तरकारियां तथा शाम को फल और कच्ची तरकारियां तथा शाम को फल और कच्ची तरकारियां हों। दस दिन बाद शामको छटांक आधी छटांक सूखे चिकने मेवे (मूंगफली, बादाम, नारियल वगैरह) भी लिए जा सकते हैं। जो बहुत कमजोर हों वे मेवों के बदले पाव-डेढ़ पाव दूध लें।

बीच में उभाड़ होने पर। उभाड़ होनेपर वही करें, जो नवीन रोग होने पर किया जाता है अर्थात् जब तक नवीन रोग न चला जाय उपवास किया जाय और एनीमा से पेट साफ करते रहा जाय।

नहानों के बारे में एक बात और जान लो। नहान थोड़े समय से शुरू करके धीरे धीरे बढ़ाने चाहिए। मेहन नहान बीस मिनट और पेडू नहान पन्द्रह मिनट से अधिक एक बार में लेने की जरूरत नहीं होती। कमजोर आदमी का काम तो इससे आधे या आधे से भी कम समय में चल जाता है।

बेजवाड़ा के चिकित्सक प्रायः यही क्रम चलाते हैं। वहां प्राकृतिक चिकित्सा के अधिक प्रचार का एक दूसरा कारण भी है, वह है इन्डियन नेचरोपैथिक एसोसिएशन द्वारा संचालित कैम्प। प्रति वर्ष वे लोग महीने पन्द्रह दिन के किसी प्राकृतिक स्थानमें कैम्प करते हैं जहां प्राकृतिक जीवन सीखने, प्राकृतिक चिकित्सा जानने के इच्छुक जुटते हैं और प्रान्त भर के प्राकृतिक चिकित्साप्रेमियों और प्राकृतिक चिकित्सकोंसे विचार विनिमय होता है, विद्यार्थियों के लिए लैक्चर होते हैं और प्रकृति के नियमों के अनुसार भोजन होता है। अकसर कच्चा भोजन ही होता है। अर्थात् रोटी न लेकर अंकुरित गेहूं लिया जाता है और पकी तरकारियों के बजाय केवल कच्ची तरकारियां। सन् ४० के कैम्प की भोजन सम्बन्धी रिपोर्ट हमने देखी प्रत्येक व्यक्ति पर इसके प्रति दिन के साढ़े छ आने पड़े थे और इस पन्द्रह दिनों के कैम्प में करीब सब का स्वास्थ्य अच्छा रहा।

अकसर इस कैम्प में रोगी भी आते हैं। जिन्हें उपयुक्त चिकित्सा क्रम पर लगा दिया जाता है और फिर वे अपनी चिकित्सा चलाते रहते हैं।

इन्डियन नेचरोपैथिक एसोसिएशन भी कई काम करता है, जगह जगह प्राकृतिक चिकित्सा के और विशेषतः भोजन के सम्बन्ध में लैक्चर देता है। कन समेत चावल का प्रचार करनेके लिए धान दलने की चक्की भी भेजते हैं और कुछ स्वास्थ्यप्रद खाद्यों का प्रबन्ध करते हैं।

हां जिस कच्चे भोजन की बात मैंने कही है उसके आचार्य हैं राजमुन्द्री के डाक्टर बी० एस० गोपाल राव। दो दिन बाद यहांसे उनसे मिलने जाने का

इरादा है। वहां से मद्रास स्वामी भिक्षु से मिलने जाऊंगा।

दी इन्डियन नेचरोपैथ प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी अंग्रेजी का सुन्दर मासिक है। तुम चाहो तो इसके ग्राहक बन जाओ। पता है दी मैनेजर इन्डियन नेचरोपैथ, बेजवाड़ा। वार्षिक मूल्य १॥)। इसके ग्राहक बनकर तुम इन्डियन नेचरोपैथिक एसोसियेशन द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ 'दी ह्यूमन कल्चर एण्ड क्योर, बारह रुपए में पा सकोगे। यों इसका दाम तीस रुपया है। यह सूर्य किरण चिकित्सा के जन्मदाता डा० कैविट की अमर कृति है। सूर्य किरण चिकित्सा सम्बन्धी अपने सिद्धान्त इन्होंने इस पुस्तक में निरूपण किए हैं और भी प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी बहुत से विषयों का समावेश इसमें है। सूर्य किरण चिकित्सा के बारे में मैं तुम्हें फिर कभी लिखूंगा। बेजवाड़ाके कई प्राकृतिक चिकित्सक अपनी चिकित्सा में इसे प्रधानता देते हैं।

# चित्रकार

रचयिता—श्री शिवमूर्ति मिश्र 'शिव' संपादक ज्योत्स्ना

यदि मैं चित्रकार हो जाता
अपने धूमिल हृदय-पटल पर
अरुणिम-आभा सा रंग भर-भर
किरण तूलिका से चित्रित कर
मेरे चित्रक, तुझे बना कर तुझमें अपनापन खो जाता
यदि मैं चित्रकार हो जाता।
करुणा का अमरालय खुलता
आंखो का पागलपन धुलता
तुझ से ही तो मिलता-जुलता
वह करुणाकर चित्र बनाता सावन का भी घन रो जाता
यदि मैं चित्रकार हो जाता।
जो कुछ भी मैं चित्रित करता
वही जगत को विस्मित करता
अमर तूलिका की व्यापकता
दुर्बल मनका मान कलंकित, मेरा कालापन धो जाता
यदि मैं चित्रकार हो जाता।

# 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'

ले० — श्री पं० सूर्यकुमारजी वेदालङ्कार, आचार्य गुरुकुल आर्योला, बरेली

छोटासा कद, हंसता हुआ चेहरा, प्रशस्त भाल—ये हैं हमारे भाई सूर्यकुमारजी। आप गुरुकुल विश्व-विद्यालय काँगड़ी हरिद्वारके होनहार प्रतिभाशाली स्नातक हैं। आप जन्मजात कवि हैं और पद्य लिखनेमें परम प्रवीण हैं। इधर कुछ अरसे से गद्य भी लिखने लगे हैं। प्रस्तुत लेखमें आपने बड़ी दिलचस्प और रोचक विधिसे शारीरिक स्वास्थ्य की महत्ता पर अपने विचार प्रकट किए हैं। आप की गद्यकी भाषा भी कविताकी तरह उछलती कूदती मस्त प्रवाहसे बहती चली जाती है। सात्विक-जीवन से आपको अगाध स्नेह है। —संपादक

"मकानमें चारों तरफ आग लगी है, आगकी लपटें सर्वस्व भस्मसात् करती हुई आगे बढ़ रही हैं, कलाकार अपनी कला-साधना में निमग्न बाह्यज्ञानशून्य समाधिस्थ बैठा है। अपने सर्वनाश का कोई भय नहीं, कोई शंका नहीं। फल होता है—कलाकार के साथ कलाकृति भी स्वाहा हो जाती है, विश्वके मनो-मुग्धकारी अरमान अधूरे ही रह जाते हैं।"

आज भारतीय समाज की यही अवस्था है। सब अपनी धुनमें लगें हैं, लेकिन तथ्यपर पहुंचने की कोई कोशिश नहीं। हमारे में घर फूंक कर तमाशा देखने-वाले भी बहुत हैं और नीरोकी तरह रोम जलाकर वंशी बजाने का भी सामर्थ्य बहुतों में हैं। लेकिन युगकी आवश्यकता, युग धर्म क्या है इसे सोचने की किसीको फुर्सत नहीं है। स्वामी विवेकानन्दके शब्दों में—"हम अत्यन्त स्वार्थी हो गये हैं.......कई शता-ब्दियोंसे इसी विचार में पड़े हैं, तिलक इस तरह करना चाहिये या इस तरह से, अमुक व्यक्ति के देख लेनेपर भोजन नष्ट हो जायगा। जिस जातिके मस्तिष्क की सारी शक्ति इस तरह की सुन्दर गवेषणा में लगी हैं वह जाति इससे ज्यादा उन्नति करेगी इसकी आशा ही कैसे की जा सकती है।"

स्वामीजी ही आगे अपने भाषण में इसका कारण और निदान बताते हैं—'हमारी शारीरिक दुर्बलता ही इसका कारण है ...... हमलोगों को बलवान बनना होगा, पीछेसे धर्म भी चला आयेगा। ऐ हमारे युवको! तुम बलवान बनो, तुम लोगोंके प्रति मेरा यही उपदेश है, गीता पढ़नेकी अपेक्षा फुटबाल खेलना तुम्हें स्वर्ग के ज्यादा निकट पहुंचायेगा। " शरीर मजबूत होनेपर तुम गीता को जरा अच्छी तरहसे समझ पाओगे।

हम कई शताब्दियों से धर्मशास्त्रों के सच्चे आदेश की अवहेलना कर अन्याय और अत्याचारके शिकार बने बैठे हैं। और इस तथ्यको भुलाये हुये हैं—कि आत्मा की अपूर्वता, उसकी अनन्त शक्ति, अनन्त वीर्य, अनन्त शुद्धत्व और अनन्त पूर्णता के तत्त्वको जाननेके लिए आवश्यक है कि हमारे तन, मन, स्वस्थ और शक्तिशाली हों 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' हमारे शास्त्र पुकार पुकार कर कह रहे हैं, शक्तिशाली बनो.—'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम, आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। जिष्णू रथेष्टा सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। (यजु०)

जब तक अंग प्रत्यंग दृढ़ न होंगे बुद्धि निर्बल रहेगी। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन, प्राण निवास करते हैं। उदात्त भावनायें दुर्बल के हृदय में कभी निवास नहीं कर सकती, 'क्षीणा नराः निष्करुणाः भवन्ति।' दुर्बल मस्तिष्क से निकली हुई निष्प्राण

विचारधारा किस प्रकार राष्ट्रहित सम्पादन कर सकती है, इस शरीरको तुच्छ समझ कर अपने आपको किसी भी मार्ग पर ले जाना श्रेयस्कर नहीं है! भारतभूषण प्रो० राममूर्ति कहा करते थे —"इस शरीर को तुच्छ न समझो, बड़े पुण्योंसे मनुष्य शरीर मिलता है, इसकी रक्षा करना परम धर्म है। शारीरिक उन्नतिके बाद ही आत्मिक और सामाजिक उन्नति हो सकेगी।

एक बार कुछ नवयुवक जो किसी विश्वविद्यालयमें शिक्षा पा रहे थे, महात्मा गांधी के पास पहुंचे और उपदेश ग्रहण की इच्छा प्रकट की। गांधीजी उनके दुबले पतले रक्तहीन चेहरे देखकर मुस्कराते हुए बोले—'व्यायाम किया करो।'

दूरसे रुपया खर्च कर आये हुये वर्तमान राजनीति में दिलचस्पी रखनेवाले आधुनिक राजनीतिज्ञों को यह बात चौंकानेवाली थी। अचम्भे से देखते रहे।

गांधीजी फिर बोले—मुझे सच्चे किसानों की जरूरत है जो अपना काम ईमानदारी से करें और आवश्यकता होनेपर आत्मरक्षा भी कर सकें। शस्त्र उठानेसे ज्यादा शक्ति हलकी मूंठ पकड़नेके लिये चाहिये,--तुम मजबूत बनकर सच्चा राष्ट्रहित कर सकोगे।

इस प्रकार आप समझ ही गये होंगे कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, समाज, राजनीति, कला, सभी की उपासना करनेके लिये पहली आवश्यकता शक्तिशाली शरीर की है। युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने जो स्वयं मानवीय जीवन के आदर्श थे एक बार कहा—बीस पण्डित बैठे हों एक अकेला मजबूत आदमी बीसों की सम्पत्ति छीन ले जायेगा।

हमें किसान, शिक्षक वैद्य का कोई भी व्यवसाय करना हो पहली आवश्यकता स्वस्थ शक्तिशाली शरीर की है। हमारा वह सत्य जिसे हमारे ऋषि-महर्षि आदि कालसे बताते आये हैं, जिसे आज हम भूल चुके हैं उसकी यूरोप आज दिन आवश्यकता समझ रहा है। सुप्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक 'शिक्षा' ( education ) में शिक्षा का उद्देश्य जीवन की पूर्णता बताया है और जीवन की पूर्णता के लिये सबसे आवश्यक तनरक्षा विषयक शिक्षा को स्वीकार किया है, और उसकी अच्छी प्रकार विवेचना की है। शिक्षण शास्त्र की इस महत्वपूर्ण सूक्ष्मता का हमारे ऋषि पहले ही उपदेश करते रहे हैं, वेदारम्भ संस्कार करते हुये आचार्य शिष्य के मुखसे मन्त्रोच्चारण करवाता है—तनूपा अग्नेऽसि तन्वम्मे पाहि। आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि। वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऊनं तन्म आपृण। ( यजु० ) इस प्रकार शिष्य से शरीर रक्षा, आयुवृद्धि, कांति, ओज और शरीर की पूर्णता की प्रार्थना बराबर कर उसके हृदयमें दृढ़ सङ्कल्प धारण करवाता है इसके बाद उसको उपदेश देता है, तू ब्रह्मचारी है.... दिनमें मत सो प्रति वेदके लिये बारह वर्ष ब्रह्मचर्य धारण कर, क्रोध अनृत, मैथुन, अधिक सोना छोड़ दे इत्यादि। इन उपदेशों पर चलता हुआ और नैतिक व्यायाम, प्राणायाम, योगासन द्वारा ब्रह्मचारी अपने शरीरको पत्थर के समान दृढ़ कर आत्मा के बलसे युक्त होता था। इसी शिक्षा का प्रभाव था कि हम राम, कृष्ण, अर्जुन, भीम होते थे, उन्हीं शिक्षा संस्कारों की भित्ति पर खड़ा हुआ राष्ट्र विश्वविजय के स्वप्न ले सकता था।

अब विदा लेते हुवे हम भारत के आधुनिक माता-पिताओं से नम्र निवेदन करते हैं कि जीवनके इस सत्यको समझते हुए अपने और अपनी सन्ततिके जीवन-निर्माण में सहायक होकर तन, मन, धनकी एकाग्रता से राष्ट्रहित सम्पादन का प्रयत्न करें।

आइये विदा लेते हुए उस परमप्रभुसे प्रार्थना करें—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि॥
बलमसि बलं मयि धेहि।
ओजोस्योजो मयि धेहि॥
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि।
सहोऽसि सहो मयि धेहि॥
( यजु० )

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

# दार्जिलिंगकी बर्फीली चोटियां जहां सोना बरसता है

प्यारे अमृत !

कल हमारी पार्टी हरद्वार से चल कर, रास्ते के मुख्य मुख्य स्थानों के दर्शन करती हुई सिलीगुड़ी पहुंच गई थी। यहांसे दार्जिलिङ्गके लिए (D. H. R.) (दार्जिलिङ्ग हिमालयन रेलवे) की छोटी गाड़ी जाती है। आज मैं ट्रेन में बैठा हुआ ही तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूं। हमारी यह छोटी सी गाड़ी विशालकाय, गगनचुम्बी पर्वतोंके बीचमें से होकर जा रही है; रेलवे लाईन के दोनों ओर कहीं २ बहुत गहरे खड्ड हैं, यदि कहीं इंजिन देवता कुमार्गगामी हो जांय तो बिना जप, तप योग के ही इस संसारसे मुक्ति मिल जाय।

गाड़ी बहुत धीमे २ चल रही है, कहीं २ तो इतनी धीमे चलती है कि चलती गाड़ी पर ही आदमी भी चढ़ सकता है। इस छोटीसी गाड़ीको देखकर अपने भोले बचपन का गाड़ी खेलना याद आ जाता है; जब थोड़ी २ दूर पर स्टेशन बनाते थे, सरकण्डों के सिगनल बनाते थे और ट्राम की चली हुई टिकटों को गाड़ीके टिकटके रूपमें इस्तेमाल करते थे। उस समय नकली स्टेशन मास्टर और गार्ड बननेमें हम कितना महान् आनन्द और गौरव अनुभव करते थे। वाह रे बचपन ! तेरा भोलापन और सादगी।

यहां रेलवे लाईनके बिलकुल साथ २ कहीं २ केलेके पौधे लगे हुए हैं। जब मन्द मलय समीरके झोकों से वे हिलने लगते हैं, तब ऐसा मालूम होता है जैसे गाड़ी को चलने के लिए हरी झण्डी दिखा रहे हों। चारों ओर मीलों तक हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है, बीचमें कहीं २ सुन्दर छोटे २ फूल ऐसे मालूम देते हैं जैसे हरी काश्मीरी चादर पर बेल बूटे कढ़े हों। चारों ओर की हरियाली को देखकर दो लाईनें याद आ गई, जिन्हें हमारे अंग्रेजीके प्रोफेसर अपने पीरियड में कभी २ गुनगुनाया करते थे।

हरिहर समाया है, हरियालिओं में
वही झूमता है, झुकी डालिओं में

इस सुन्दर सृष्टि का महान् कलाकार, सृष्टि के कण २ में छिप कर बैठा हुआ अपना सौन्दर्य चारों ओर बिखेर रहा है। उस स्नेहशील पिताने हम बच्चों के खेलनेके लिए और मनोविनोदके लिए अनेकों सुन्दर खिलौनों—बर्फीली सुनहली चोटियों, इन्द्रधनुष का झूला, शिशुओं की तरह किलकारी मारता हुआ झरना, रंगीन बादल और आकाशगंगा की सृष्टि की हैं। परन्तु जिस भावपूर्ण दृष्टि से हमें इन प्रकृतिके खिलौनोंसे खेल कर आनन्द उठाना चाहिए उसे हम नहीं उठाते।

यहां रेलवे लाईनके साथ २ कई छोटे २ झरने भी गिरते हैं, जहांसे इंजिन पानी लेता है। यह पासका झरना बिलकुल बच्चोंसा चंचल है, इसकी फुहारें उड़ उड़ कर सीधे गाड़ीमें हमारे मुंहपर आ रही है। तुम्हारे मुन्नेकी तरह जिधर मर्जी आती है उधर किलकारियां मारता हुआ निकल जाता है। इसका प्रवाह स्वच्छन्द, निर्बाध गतिसे बह रहा है। मेरी भी इस झरनेको देख कर यही उत्कण्ठा होती है कि मनुष्य भी इस झरनेकी तरह स्वच्छन्द, मुक्त होकर नाचता गाता किलकारियां मारता हुआ अपना जीवन यापन करता हुआ बहता चला जाय। परन्तु अभागे मनुष्यका क्षेत्र कितना

संकुचित और स्वतन्त्रता कितनी सीमित है। संसारके अधिकांश मनुष्य अपने सिरपर चिन्ताओंका पहाड़ लादे फिर रहे हैं। पहले तो मनुष्यने अपने अज्ञान और स्वार्थके कारण अपनेको सीमित क्षेत्रमें बद्ध किया है। फिर बाबा आदमके ज़मानेसे चले आते हुए दकियानूसी आचार विचारों और रीति रस्मों तथा समाज के अंकुशने उसकी स्वतन्त्रताके क्षेत्रको बिलकुल सीमित कर दिया है। मुझे समझ नहीं आता कि मनुष्य इतना ज्ञानवान प्राणी होकर भी क्यों लकीरका फ़क़ीर बना है वह उसमें परिष्कार क्यों नहीं करता। खैर जाने दो इन फ़िलासफ़ी की बातों को। पत्र देते रहना।

तुम्हारा
वेद

\+ + +

प्यारे अमृत !

दार्जिलिङ्ग आए हुए पूरा एक सप्ताह हो गया। प्रभातका समय है। भगवान् सूर्य खिलखिला कर हँस रहे हैं। सामनेकी बर्फ़ीली चोटियों पर पड़ता हुआ उनका प्रकाश उन चोटियोंको सुनहला बना रहा है। मैं छत पर खड़ा हुआ निर्निमेष नयनोंसे इस दृश्य को बहुत देर तक देखा करता हूं। यहांके सुन्दर दृश्य भगवान्की कविता हैं। कभी कभी मस्तीके आवेशमें मैं यह अनुभव करने लगता हूं, भगवान्की संपूर्ण सृष्टि ही भिन्न २ वीर, करुण, शृङ्गार आदि रसों की कविता है। हां तो, हमारी भाभीजी तुम्हें सोनेके आभूषणों के लिए बहुत दिक किया करती थी, एक बार उन्हें यहाँ ले आना और इन सुनहली चोटियोंको दिखा कर कहना, जितना मर्ज़ी सोना लूट लें, तुम्हारा सदाके लिए पिण्ड छूट जाएगा। यह सोना खानसे निकले हुए सोनेसे बढ़कर है। फ़र्क़ इतना है कि वह सोना खानके अन्दरसे निकलता है, यह पर्वतके बर्फ़ीले शिखर पर विराजता है। उस सोनेके खानसे निकलनेमें बहुत परिश्रम और व्यय पड़ता है, परन्तु यह सोना बहुत जल्दी तैयार हो जाता है, भगवान् सूर्य मुस्कराते हैं, बर्फ़ीली चोटियों पर सोना-२ हो जाता है। भगवान् सूर्यकी मुस्कराहटमें क्या जादू भरा है ?

भगवान् सूर्य ही क्या प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में जादू है। आवश्यकता है, सूक्ष्म निरीक्षण और गम्भीर अध्ययन की। परन्तु संसारके अधिकांश व्यक्ति प्रकृतिके इन सुन्दर पदार्थोंकी तहतक जानेका कष्ट ही नहीं उठाते। जो इन सुन्दर पदार्थोंकी तह तक पहुंचते हैं ; उनके हृदयमें उच्च भावनाओंकी सृष्टि होती है। हमारे वेद, उपनिषदें, आदि धार्मिक ग्रन्थोंकी सृष्टि ऋषियोंने प्रकृति और आत्माके सूक्ष्म निरीक्षणसे ही की है। सूक्ष्म निरीक्षणके उपरान्त ही ऋषियों के मुंहसे आध्यात्मिक संगीत से भरी वे सुनहली वैदिक ऋचाएं निकली, जिनपर केवल भारतवर्ष ही नहीं सारा संसार गर्व करता है। वैदिक मन्त्रोंका जब कभी शान्त चित्त होकर मनोनियोगपूर्वक पाठ करनेका अवसर प्राप्त होता हैं, उस समय एक अवर्णनीय शान्तिकी लहर उठती है। सच्ची संध्या, भजन और मनन तो इन्हीं सुनहले गिरिशृङ्गों के सामीप्य में होता है। मेरे विचारमें तुम भी यदि यहां कुछ अरसेके लिए आ जाओ तो अच्छा हो।

अच्छा, विदा।

तुम्हारा
वेद



# जीवनको उन्नत बनानेवाले हमारे कुछ प्रकाशन

## ( १ ) जीवन सौरभ—

प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि साधारण परिस्थितिमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको पढ़ें और अपनी सन्तति के हाथमें दें। मूल्य केवल ।-)॥

## ( २ ) देशके नौनिहालोंसे—

नवयुवकों एवं छात्र तथा छात्राओंके लिये अनुपम उपहार। उन नवयुवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशकी आशा है, जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं; अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। मूल्य केवल -)

## ( ३ ) सदाचार का महत्त्व—

पुस्तक के सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय। सदाचार ही जीवनमें सफलता प्राप्त करनेकी कुञ्जी है; सको कौन नहीं जानता। पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हुए हैं तथा अपनी और देशकी हानि कर रहे हैं वह सर्व विदित है—जो भारत संसारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसीलिये उसका पतन हो गया है। इस समय देशके युवकोंको सन्मार्गपर ले जानेकी आवश्यकता है। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल -)

## ( ४ ) स्वास्थ्य-पत्र—

यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ रहना ही मृत्यु है तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक धनहीन स्वस्थ जीवन दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्ग-तुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुखपूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है। २०"×३०" साइजके इमिटेशन आर्ट पेपरपर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बंधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है, इसलिये कि यह एक स्थायी चीज हो जाता है। मूल्य केवल =)

## ( ५ ) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास

स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है वह व्यर्थ ही जीवन-यापन करता है। जो देशके प्रति कुछ त्याग नहीं करता वह पशु सदृश है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र-सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन तो अवश्य हुआ है, किन्तु संक्षेपमें, सबके योग्य सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

## ( ६ ) कांग्रेस चार्ट—

इसमें बड़े सुबोध और सरल ढङ्गसे कांग्रेसके जन्मकालसे लेकर अबतकके अधिवेशनोंका विवरण, सभापति, स्थान, समयकी सूचना और किस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमिटेशन आर्ट पेपर पर साइज २०"×३०" दो रङ्गोंकी मनोहर छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल =)

८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। **जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि०,** "प्रिंटिंग हाउस" हौजकटरा, बनारस।

# निद्राविज्ञान

ले० – कविविनोद श्री ठाकुरदत्त शर्मा, आविष्कारक अमृतधारा

## बच्चों की नींद

उत्पन्न हुए बच्चे पहले कुछ महीने लगभग सोनेमें बिताते हैं। भूख लगी, दूध पिया और फिर सो गये। यदि सोते हों तो उनको जगाना न चाहिये। ज्यों २ बच्चा बड़ा होता है त्यों २ जागनेका समय भी बढ़ता जाता है। जब बच्चा सोता हो तो उसका मुख वस्त्र से ढांपो और उसपर इतना कपड़ोंका बोझ भी न डालो कि सांस रुके और पसीना भी आ जावे। पसीना इस समय कुछ लाभदायक नहीं है। बच्चे को दुर्बल करता है। एक वर्षका बच्चा १४ घंटेसे अधिक सोता है। बच्चोंको कितना सोना चाहिये इसके लिये नियम बांधनेकी हमको आवश्यकता नहीं है। यदि बच्चा नीरोग है तो वह पूरी नींद लेगा। परन्तु जब बच्चे बड़े हो जाते हैं और खेलना आरम्भ कर देते हैं तो वह नींद-को ईश्वर जाने क्या समझते हैं कि जब नींद आती है सो तो नहीं जाते अपितु कभी रो पड़ते हैं, कभी हठ करने लग जाते हैं। ऊंघते हैं पर विस्तर पर नहीं जाते, जायें क्यों ? खेलमें विघ्न पड़ता है। प्रायः ऐसा देखने में आता है कि बच्चे की आंखें मिच रही हैं निद्राकी प्रबलता है। झोंके आ रहे हैं परन्तु जब कहो जाकर सो रहो तो बलपूर्वक आंखें खोलनेका यत्न करते हैं और कहते हैं कि मैं जागता हूं। घरोंमें प्रायः देखना पड़ा है कि बच्चा बिस्तरे पर तो नहीं जाता परन्तु खेलता २ पांव पर बैठा सो जाता है और फिर सोये हुए को उठाकर बिस्तर पर ले जाते हैं। इसके लिये एक युक्ति है और इस युक्तिसे बच्चे आज्ञापालन भी सीखते हैं। सोनेका समय नियत करें।

## सोनेका समय निश्चित करें

बच्चेको समझा दो कि अमुक समय पर सोना चाहिये, चाहे नींद आवे अथवा न आवे, बिस्तरे पर चले जाना है। अतः जिस समय वह समय आवे उसको बिस्तर पर ले जाओ। दो चार दिन कदाचित् कष्ट हो फिर ज्यों ही वह समय आनेवाला होगा बच्चा पूछने लगेगा क्यों जी ! अभी समय हुआ है कि नहीं। बच्चे बहुत शीघ्र हमारे दोषोंको जान जाते हैं। एक माता प्रतिदिन कहती है कि अमुक काम न करेगा तो बहुत मारूंगी। बच्चा नहीं करता परन्तु उसको मार भी नहीं पड़ती तो वह अपनी माताकी उसकी त्रुटि सुझाता है और उसके आदेशका लेशमात्र भी आदर नहीं करता। यही कारण है कि लड़के माताकी आज्ञाकी अपेक्षा पिताकी आज्ञा अधिक मानते हैं। पहले सोच समझकर कहो। जो तुमने कह दिया उसके अनुकूल कार्य करो। फिर कैसे सम्भव हो सकता है कि बच्चे आज्ञोल्लंघन करनेवाले हों। जो समय नियत किया उस समय बच्चेको सुलाओ तो फिर कैसे हो सकता है कि प्रतिदिन स्वतः ही न सोनेके लिए चला जाया करे।

## मीठी नींदके लिये व्यायाम आवश्यक है

यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा बच्चा सुखसे सोये, उसे मीठी नींद आवे और स्वस्थ रहे तो बच्चे को व्यायाम सोनेसे ठीक पहले कराओ। व्यायाम तीसरे पहर वा सांझको जिस समय चाहो कराओ। नींद पर उसका अवश्य अच्छा प्रभाव होगा। उत्पन्न बालकको व्यायामकी आवश्यकता नहीं। ज्यों २ बड़ा

हो बाहर खुली वायुमें ले जाना ही उसके लिये व्यायाम है।

जब छः महीनेसे बड़ा हो जावे, उसको हाथोंको इधर-उधर करके व्यायाम कराना लाभदायक है। जब बैठने उठने के योग्य हो तो कोई न कोई व्यायाम आरम्भ कराया जा सकता है। बड़े बच्चे सांझको भ्रमण करें और खेलें कूदें। ऐसे बच्चोंके खेलने और पढ़नेके समय नियत होने चाहियें। उनको आरम्भसे यह सिखा देना चाहिये कि पढ़नेके समय पढ़ने का ध्यान रक्खें और खेलनेके समय खेलने का।

## बच्चोंको खुली हवामें टहलने दें

बच्चोंको व्यायामकी अधिक आवश्यकता है। अतः उनको खेलने कूदनेका पर्याप्त समय दो। इस विचारसे घरमें बन्द न रक्खो कि बाहर जाकर खराब न हो जावें। क्योंकि घरमें सदा रहनेसे यह दुर्बल हो जावेंगे। बच्चोंको रातके समय शीतल जलसे मत नहलाओ। एक बात बच्चोंको और भी सिखानी चाहिये कि जब वह बिस्तर पर लेट जावें तो बस फिर सो जाना चाहिये। कोई २ बच्चे बिस्तर पर जाकर बहुत हल्ला गुल्ला करते हैं। कभी बिस्तर बिखेर दिये, कभी नीचे कभी ऊपर, कभी अपनी चारपाई पर, कभी दूसरेकी चारपाई पर, यह बात अच्छी नहीं है क्योंकि आगामी जीवनमें हानिकारक है। नियत समय पर जब सोनेके लिये बच्चा बिस्तर पर जावे उसे चुपचाप लेटकर नींदकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। जिसपर जाकर राजा रङ्क एकसे हो जाते हैं, और सब सङ्कट दूर हो जाते हैं। कमरेमें स्वयं भी हल्ला गुल्ला नहीं करना चाहिये। क्योंकि बच्चेका ध्यान खेलसे हटना आवश्यक है। दीपक आदि बुझा दिये जावें तो अच्छा है। कभी २ बच्चे नींदसे तुरन्त भयसे उठ खड़े होते हैं। इसका उपाय यही है कि बच्चोंको अकेला किसी स्थानमें न सुलाया जावे अपितु एक व्यक्तिकी चारपाई पास होनी चाहिये कि जब बच्चा उठे तुरन्त उसे लिटा देवे। और तनिकसा थपक देवे। कोई २ बच्चे सोते समय दांत पीसते हैं, उन बच्चों के गलेमें कबूतरका पर बांधना लाभदायक है। कोई २ बच्चे बिस्तर पर जानेके लिये माताको बुलाते हैं। कोई कहता है कि दीपक जलता रहे। कोई कहता है कि एक व्यक्ति उनपर हाथ रक्खे। थोड़ासा ध्यान किया जावे तो सारी बुरी आदतें दूर हो जावें।

## बच्चोंको नहीं डराएं

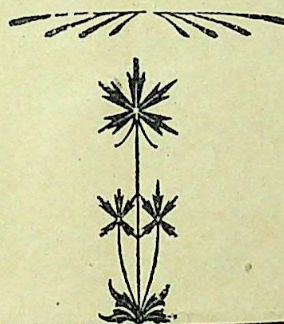
बच्चोंको डराना कभी नहीं चाहिये। यह डर आयु भर उसके साथ लग जाता है। बच्चा यदि न सोवे तो उसको न डरावें कि म्याऊं बिल्ली आ गई। हव्वा आ गया। अथवा बच्चेखानी आ गई। यह ऐसी बातें हैं जो बच्चेको सदाके लिये डरपोक बना देती हैं। और यह डर देना भी ठीक नहीं कि यदि न सोया तो मारूंगी, अथवा दूध न दूंगी। जहांतक मेरा अनुभव है सोते समय बच्चे ऊपरका कपड़ा उतार देते हैं और फिर रातको कुछ सरदी लग जानेका भय होता है। प्रतिश्याय (जुकाम) हो जाता है अथवा खांसी सताती है। उसका उपाय यह है कि सरदियोंमें फलालैनका लंबा कुरता और गरमियोंमें मलमल खासे का लंबा कुरता और यदि आवश्यकता समझें तो दोनों दशाओंमें पाजामा भी पहना कर बच्चेको सुला दें। रातके कपड़े होने चाहिये। बच्चोंको सरदीसे बचाना चाहिये। अतः यह आवश्यक है कि ऐसा प्रबन्ध किया जावे। बच्चोंकी सोनेकी चारपाई आदि भी ठीक होनी चाहिये। खटमल न हों। चारपाई पर गड्ढा ऐसा न हो कि बच्चे के करवट बदलते नीचे गिरनेकी आशंका हो। न बहुत कड़ी हो और न बहुत कोमल। चारपाई ऐसे स्थानमें रक्खो कि कमरेकी वायु आती जाती

रहे। वायुके झोकोंसे बचाना चाहिये। परन्तु द्वार बन्द करके भी रखने नहीं चाहिये। यदि सामनेकी खिड़की बन्द रक्खी जावे तो दूसरी खोल दें।

## बच्चोंको प्रातः जागरणकी आदत डलवाएँ

बच्चोंको प्रातः उठनेकी आदत डालनी चाहिये रातको किसी समय सोवें परन्तु प्रातः उठें। यह अभ्यास उनके भावी जीवनमें काम आवेगा। अभ्यास डालनेके लिये बच्चेको प्रातः उठाना पड़े तो नरमीसे उठाओ। बच्चेके पास बैठ जाओ। और उसके हाथको धीरे धीरे मलो, शब्द (आवाजें) लगाओ न कि सहसा एक कठोर शब्दसे उसे उठाओ। जितना शनैः २ सचेत होवे अच्छा है।

कुछ बच्चोंकी ऐसी प्रकृति होती है कि खेल-कूद में उनका ध्यान ही नहीं लगता। मानसिक (दिमागी) काम तो वह करेंगे। पुस्तक पढ़ाओगे पढ़ेंगे। प्रत्येक कामका ध्यानसे अनुकरण करेंगे। परन्तु कहो कि बाहिर जाकर खेलो नहीं खेलेंगे। ऐसे बच्चोंके मस्तिष्क थक जाते हैं। साथ लेकर टहलाओ।



# बाल-वाटिका

## प्रयाण

रचयित्री—कुमारी शैलबाला "शैल" रस्तोगी

अब हमको आगे बढ़ना है।

( १ )

छाया प्रकाश, अब गई रात !
प्यारा सुन्दर आया प्रभात ॥
देखो सारा जग जाग उठा, हम सब को भी जगना है।
अब हम को आगे बढ़ना है ॥

( २ )

जग में फैली है नयी क्रान्ति।
पर हम सबमें है बसी भ्रान्ति ॥
तज दुर्बलता को आज हमें, उत्कृष्ट मार्ग पर चलना है।
अब हम को आगे बढ़ना है ॥

( ३ )

किस पथ के हम हैं बने पथिक—
क्या यही है हमको आज उचित ?
ले देश-प्रेम का दीप हमें जग को प्रदीप्त करना है।
अब हम को आगे बढ़ना है ॥

( ४ )

आलस्य-द्वेष में आग लगा—
दे सात्विकता का पाठ पढ़ा।
भारत के बिसरे गौरव को अब पुनः प्राप्त करना है।
अब हम को आगे बढ़ना है।

# नाविक से

रचयित्री—कुमारी शैलवाला "शैल" रस्तोगी

( १ )

ओ नाविक ! नैया खेता चल।
उत्ताल लहर—डगमग नैया।
है डूब रही जीवन-नैया।
है आश अरे अब भी बाकी, तू जल्दी आगे बढ़ता चल।
ओ नाविक ! नैया खेता चल॥

( २ )

क्या कहा ? न दिखता आर पार।
छाया है मग में अन्धकार।
नैराश्य-निशा बढ़ती आती, आशा है तेरी रही मचल।
ओ नाविक नैया खेता चल।

( ३ )

है टूट गई पतवार अरे।
उर में छाया नैराश्य अरे।
पर अरे न तब भी छोड़ आश, बाधायें होंगी तुझे सरल।
ओ नाविक नैया खेता चल॥

( ४ )

आशायें जातीं, जाने दे—
बाधायें आतीं, आने दे।
तू ध्यान लगा अपने पथ पर, निश्चय ही होगा आज सफल।
ओ नाविक नैया खेता चल॥

# मस्ती की तरङ्ग में

## स्वतन्त्र भारतमें एसेम्बलीका अधिवेशन

यों तो आए दिन अपने रामको नए २ अद्भुत स्वप्न आया करते हैं— जैसे कभी स्वप्नमें चौक की दुकान पर आलूकी चाट और गोलगप्पों पर हाथ साफ़ किया जा रहा है, तो कभी स्वप्नमें ही दुकानदारसे मारकीनका भाव तै कर रहे हैं और कभी हाथी पर चढ़ कर ही आकाशकी सैर की जा रही है, और कभी स्वप्नमें ही अपने दोस्तोंसे चचा हिटलरकी बाबत गरमागरम बहस भी छिड़ी है। यदि इन सब स्वप्नोंको लिखा जाय तो एक अच्छी खासी चार जिल्दोंकी महाभारत तैय्यार हो सकती है। परन्तु अपने रामको अपनी ज़िन्दगीमें सबसे मज़ेदार और महत्वपूर्ण स्वप्न उस दिन आया जब स्वप्नमें ही अपने रामने स्वतन्त्र भारतकी एसेम्बलीकी सारी कार्रवाही अपनी आंखों देखी। वह रात अपने रामकी ज़िन्दगी में ऐतिहासिक रात थी, जब स्वप्नमें ही दिव्य दृष्टिसे आज़ाद भारतका नकशा देखा गया। आज उसीकी कहानी मैं आपके सामने बयान करूंगा। अपने रामका तो यह दावा है कि बाबा विश्वनाथकी कृपासे उन्हें इलहाम ही हुआ था, आगे जो है सो आप अपनी अक्लकी तराज़ूपर इस किस्सेको तौलें और तौलते वक्त मेहरबानी करके समालोचनाके स्टैण्डर्ड बाट ही रक्खेंगे। मुझे पूरी उम्मीद है कि आप तौलमें किसी किस्मकी चालाकी या नादानी नहीं करेंगे। मंहगीका ज़माना है, आप लोगोंकी अक्ल भी कुछ ज़रूर मँहगी हुई होगी पर ज़रा मेरे पर दयादृष्टि रक्खेंगे।

( २ )

आज़ाद हिन्दुस्तान की एसेम्बलीका विशाल, गगन-चुम्बी भवन दिल्लीमें बनकर तैयार हो गया है। इस समय गांधीवादिओंके हाथमें मुल्ककी बागडोर है और सारे हालमें गांधी टोपियां ऐसे लहरा रही हैं जैसे तालाबके किनारे बगुलोंकी दूधसी सफेद कलगियां। आज अधिवेशनका प्रथम दिन है सब सदस्यगण हालमें पहुंच चुके हैं; पर अभीतक जनाब स्पीकर साहिब लाला छेदीलालजी अपना तशरीफ़ का टोकरा नहीं लाये, उनकी सब सदस्य इस उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे हैं जिस तरह लोग रेलवे स्टेशनों पर गाड़ीकी इन्तज़ार किया करते हैं या आप किसीके घर न्यौतेके लिए पहुंचनेपर रसगुल्लोंकी इन्तज़ार किया करते हैं। लीजिए साहिब, चूड़ीदार पायजामा और अचकन पहिने हुए तथा सरपर गांधी टोपी लगाए स्पीकर साहिब भी आ पहुंचे। पहले आते ही, अपना वक्तव्य प्रारम्भ करते हुए उन्होंने देरसे आनेके लिए क्षमायाचना की और कहने लगे—"माननीय सदस्यगण! जबसे देशको आज़ादी मिली है, मेरे लिए न रात है, न दिन। कुछ ऐसे जरूरी काम आ पड़े थे जिससे मुझे यहां पहुंचनेमें भी देर हो गई। यदि आपकी दृष्टि दूरबीन की तरह दूरतक पहुंचनेवाली है और हृदय रसगुल्लेकी तरह कोमल है तो आप मुझे इस देरीके लिए अवश्य क्षमा करेंगे। इसके बाद एसेम्बली की कार्रवाही शुरू होती है। आपलोगोंसे इतना मेरा नम्र निवेदन और आग्रह ज़रूर है कि आपके भाषण

नम्र, संयत और शिष्ट भाषामें हों। आप एकाएक सोडावाटरी जोशमें न आवें और नांही अभी हालकी ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में दो अंग्रेज सभ्योंकी तरह आपस में घूंसेबाजी कर बैठें। आप कहीं एकाएक जोश में न आ जावें इसलिए मैंने अभीसे पुलिसका इन्तजाम भी कर लिया है। मुझे पूर्ण आशा है कि आप इस सभास्थलीको मल्लस्थली यानी अखाड़ा बननेकी नौबत नहीं आने देंगे।

स्पीकर साहिबके भाषण के बाद स्वतन्त्र दलके नेता लाला रामप्रसादजी गुप्तने प्रश्न करते हुए कहा—कि क्या सरकार इसपर विस्तृत प्रकाश डालेगी कि युद्धसे हिन्दुस्तानकी रक्षाके लिए सरकारकी तरफसे क्या २ प्रयत्न किए जा रहे हैं।

## युद्धमंत्री श्री शान्तिप्रियजीका भाषण

इतना सुनना ही था कि युद्ध मंत्री श्री शान्तिप्रिय जी चतुर्वेदी एकाएक क्रोधसे आगबबूला हो उठे और इतने जोरसे खड़े हुए कि उनकी गांधी टोपी भी एक तरफ जा गिरी, बड़ी मुश्किलसे लोगोंने उन्हें संभाला। होशमें आनेपर श्री युद्धमंत्रीजीने अपना भाषण प्रारम्भ करते हुए कहा—"माननीय स्पीकर साहिब और सदस्यगण! बड़े अफसोस की बात है जो अहिंसाके पुजारी भारतवर्षकी एसेम्बलीमें ऐसे वाहियात सवाल उठाए जा रहे हैं। भगवान् बुद्ध और महावीरका भारतवर्ष कभी स्वप्नमें भी युद्धके ख्यालात अपने दिमागमें नहीं ला सकता। हमने सारे संसारको अहिंसाका पवित्र पाठ पढ़ाना है और हम उस सुनहले प्रभातकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं जब अहिंसा शब्द ही संसारकी तमाम पुस्तकोंमेंसे निकाल दिया जाएगा। अभी दिल्ली बहुत दूर है। बीचमें एक सदस्य व्यङ्ग छेड़ते हुए कहता है—नहीं साहिब? दिल्ली दूर कहां है, दिल्ली में तो आप बैठे ही हैं। इस पर श्री युद्धमंत्रीजी और बिगड़ जाते हैं और भाषण प्रारम्भ करते हुए कहते हैं बड़े अफसोसकी बात है जो ऐसे मिडलची सी एसेम्बलीके सदस्य बन जाते हैं जो हिन्दी कहावतों तक को नहीं समझ सकते। हां, तो हमारी सरकार फिर भी चुप नहीं बैठी है। देशकी रक्षाके लिये गांधीवादी, अहिंसक तरीके ही इस्तेमाल में लाए जा रहे हैं। जैसे हिन्दुस्तानके तमाम बन्दरगाहों कराची, कलकत्ता, बम्बई, कानपुर (एक तरफ से आवाज़ आती है, क्यों साहिब कानपुर के पास कौनसा समुद्र बहता है, क्या आज़ाद भारतके लिये कोई नया भूगोल तैय्यार किया है) युद्धमंत्रीजी अपने भौगोलिक ज्ञानके विस्तार पर ज़रा झेंप जाते हैं, परन्तु फिर भाषण जारी करते हुए कहते हैं—हां तो सब बड़े २ बन्दरगाहों पर हवाई हमलोंसे रक्षाके लिए गांधी चरखे लगा दिए गए हैं, जिन्हें देखते ही शत्रुके हवाई जहाज़ दुम दबाकर भाग खड़े होंगे। इसके अलावा हवाई अड्डों पर बड़ी बड़ी ध्वजाएं लगा दी गई हैं जिन पर शान्ति, प्रेम, और अहिंसाके सन्देश लिखे हैं—जैसे अहिंसा परमो धर्मः, दया धरम का मूल है, पाप मूल अभिमान। तुलसी दया न छाड़िए जब लग घटमें प्रान। अगर कोई तुम्हारे दांए गाल पर थप्पड़ मारे तो बायां गाल भी आगे कर दो। इन अनमोल वचनोंको पढ़ते ही शत्रुका हृदय परिवर्त्तन अवश्यम्भावी है। इसके अतिरिक्त युद्धके दिनोंमें मन्दिरों, मस्जिदों और गिरिजाघरोंमें नियमपूर्वक प्रार्थनाएं, व्रत, तथा उपवास आदिका आयोजन भी बड़े विशाल पैमाने पर किया गया है। हम तो मूलका ही नाश करनेपर तुले हुए हैं। और हमें यह पूर्ण विश्वास है कि शत्रुओंका हृदय परिवर्त्तन होकर रहेगा। यदि आक्रमणकारी हमारे देशमें आ भी जावेंगे, तो यह हमारा परम पवित्र कर्त्तव्य होगा कि हम अपने मेहमानोंका भरसक आतिथ्य सत्कार करें, आप सूखी रोटी और

मूंगकी दाल खाकर अपने मेहमानोंको पूरी, कचौड़ी, खीर लड्डू, पेड़ा, बर्फीसे आवभगत करें, आप चाहे भले ही बोरा पहिन कर जिस किसी तरहसे गुज़र बसर कर लें पर उनके लिए पशमीना और मलमलका कपड़ा जुटाना हमारा कर्त्तव्य है। इस पर गांधी-वादियोंकी तरफ़से तालियां बजाकर हर्षध्वनि प्रकट की जाती है। युद्धमंत्रीजी आगे फिर अपने भाषणको जारी करते हुए कहते हैं कि यद्यपि मुझे युद्धमंत्रीका पद दिया गया है, पर मेरी तो यही हार्दिक इच्छा होती है कि युद्धमंत्रीके स्थान पर मुझे शान्ति प्रचार मंत्रीके नामसे पुकारा जाय, मुझे पूर्ण आशा है कि मेरे वक्तव्य से आप पुण्यभूमि भारतवर्ष की अहिंसक युद्धनीति नहीं अहिंसक शान्ति नीति से आप पूर्णतः परिचित हो गए होंगे। इतना कहकर श्री युद्धमंत्रीजी अपना भाषण समाप्त करते हैं।

## स्वामी खटपटानन्दजी का भाषण

श्री युद्धमंत्रीजी के भाषणके बाद ही श्री १००८ स्वामी खटपटानन्दजी जो विरोधी दलके उपनेता हैं, अपना भाषण प्रारम्भ करते हुए कहते हैं—"माननीय स्पीकर साहिब और सदस्य गण! अभी आपने श्री युद्धमंत्रीजीका भाषण सुना, उनके भाषणसे ऐसा मालूम होता है कि वे भगवान् बुद्धका अवतार लेकर अभी सीधे हिमालयकी गुफ़ासे यहां आ रहे हैं। श्री युद्धमंत्रीजी ने अपने भाषणमें कंचनजंघाकी चोटी से भी ऊंची आदर्श और त्यागकी बातें हमारे सामने रक्खी हैं। वे अपने भाषणके समय हवामें ही उड़ते रहे हैं; उन्होंने ऐसा मालूम होता है कि जमीन पर पैर ही नहीं रक्खे। यदि वे वस्तुस्थितिको समझनेकी ज़रा भी चेष्टा करते तो ऐसी ऊल जलूल बातें, युद्धमंत्री जैसे ज़िम्मेवारी के पद पर रहते हुए कभी न कहते। श्री युद्धमंत्रीजीके व्याख्यानसे ऐसा मालूम होता है कि वे हृदय परिवर्तनको बिलकुल बच्चोंका सा खेल समझते हैं। हृदय क्या हुआ जापानी खिलौना हो गया, उसे तोड़ मरोड़ कर जो मर्जी हुई वही रूप दे दिया। मुझे समझ नहीं आता कि युद्धमंत्रीजीने इतना गम्भीर विद्वान् होते हुए भी ऐसी बेसिर पैरकी बातें क्यों कही।

अब तक तो श्री युद्धमंत्री शान्तिप्रियजी अपनेको किसी तरह ज़ब्त किए हुए थे, पर जब उनपर यह इल-ज़ाम लगाया गया कि वे ३५ बरसके दाढ़ी मूंछोंवाले नौजवान न होकर अभी बच्चे ही हैं, तो उनका सोया आत्माभिमान और पुरुषत्व जाग उठा और वे एकाएक बड़बड़ाते हुए जोशसे उठ खड़े हुए तथा स्पीकर साहिब को सम्बोधन करके कहने लगे—'देखिए जनाब! अब तक तो स्वामी खटपटानन्दजीने जो कुछ कहा सो कहा, अगर अब कोई वे अशिष्ट आक्षेपात्मक व्यङ्ग छेड़ेंगे, तो मैं मरने कटनेको तैय्यार हो जाऊंगा।"

माननीय स्पीकर लाला छेदीलालजीने बड़ी मुश्किलसे श्री युद्धमंत्रीजीको चुप कराया और स्वामी खटपटानन्दजीसे फिर अपना भाषण जारी करनेके लिए कहा—

श्री स्वामीजीने अपना भाषण पुनः प्रारम्भ करते हुए कहा—"माननीय सदस्यगण! अभी आपने देखा कि किस तरह अहिंसा और शान्तिके पुजारी श्री युद्धमंत्रीजी उबल पड़े। क्या इसीका नाम अहिंसा है, क्या इसीका नाम हृदय परिवर्तन और शान्ति है? इस पर स्पीकर साहिबने स्वामीजी को व्यक्तिगत आक्षेप न करनेकी कड़ी चेतावनी दी।

स्वामीजीने फिर आगे कहा—"हां तो मैं हृदय परिवर्त्तनकी बात कह रहा था। क्या दुनिया भरके हृदय परिवर्त्तनका ठेका हमने ही ले रक्खा है। भला बतलाइए, हम हिन्दुस्तानी किस २ का हृदय परिवर्त्तन करेंगे। और फिर हृदय परिवर्त्तन कोई मामूली बात

तो है नहीं ? बुद्धने बुद्धत्व कई जन्मोंमें जैसे उठ खड़े
था । हिन्दुस्तानके अन्दर अगर अब भी कहने लगे—
नूसी विचार रहे और हम सब जातियोंल, नहीं तो
वर्त्तनमें ही लगे रहे तो फिर हमें कई वाद उग्र रूप
दूसरोंके जूते खाने पड़ेंगे । इसलिए अने श्री रामकृष्ण
हम समय रहते हुए चेतें और दिलोजको कहा और
रक्षाके लिए पूरी तैय्यारी करें । भाषामें बोलनेके

इस भाषणका लोगों पर बहुत गह
यहां तक कि स्वयं गान्धीवादिओंके भाषण पुनः जारी
टने लगे और वे हौसमें बैठे २ त्रीजी का गायों
करने लगे । आपही जरा ठंडे

इस भाषणके उपरान्त स्वतन्त्र ईसाई साथ २
फतेहचन्दजी झुंझनुवालेने प्रश्न किव न डालेंगे । इस
हिन्दू मुसलिम एकताके लिए किले अच्छा शानदार,
का विस्तृत ब्यौरा दे सकती है । जब सरकार गाय,
बनेकी इजाजत देगी

## गृहमन्त्री श्री सरदार

य किया है । इतनेमें

## भाषण

-क्यों साहिब ! क्या

इस प्रश्नके उत्तरमें गृहमन्त्रीर रामकृष्णजी जोशमें
ने कहा कि हमारी सरकारका स्य गण ! जरा आप
अनुभव है कि जितना हिन्दार करें, गधोंको क्यों
विचार किया जाता है उतना दिया जाय ।
और फिर एकताके लिए डंकेत्रीजीकी अन्तिम स्कीम
सब प्रयास विफल हो जाते हैंपोशाकके बारेमें तो गृह-
मुस्लिम एकताके लिए सरनोखे और अभूतपूर्व हैं ।
कार्य किया है । कताके लिए यह नया

( १ ) सबसे पहले सन्दुओंकी पोशाक मुस-
मुसलमान दोनोंकी भाषाक
भाषा एक हो जाय तो दोन
का खेल है । इसके लिए
की तरह हिन्दी और उर्दू
भाषा हिन्दुस्तानी ईजा

लमान पहिने और मुसलमानोंकी पोशाक हिन्दू पहने । निश्चय ही ऐक्य स्थापित करनेकी यह अनोखी सूझ है ; पर गृहमन्त्रीजी इससे चार कदम आगे बढ़कर यदि यह कहते कि ऐक्य स्थापित करनेके लिये स्त्रियों की पोशाक—साड़ी, सलवार, बोढ़न, अंगिया वगैरह आदमी पहना करें और आदमियोंकी पोशाक—धोती, पायजामा, अचकन आदि स्त्रियां धारण किया करें—तो अधिक अच्छा होता । इस उपायसे तो एकदम भेदभाव दूर होकर ऐक्य स्थापित हो जाता । पता नहीं, गृहमन्त्रीजीको ये विचार उस समय क्यों नहीं सूझे । बस इतना ही कहकर मैं आजका अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं ।

श्रीरामकृष्णजी के विनोदपूर्ण भाषणका सारे हौस पर बहुत गहरा असर पड़ा और सदस्योंने तालियां बजाकर उनका उत्साहवर्द्धन किया तथा अपने सहास्य मुखों द्वारा यह भाव प्रदर्शित किया कि अगला प्रधानमन्त्री आपको ही चुना जाएगा ।

मैं अभी स्वप्नमे आगेकी कार्यवाही देख ही रहा था कि इतनेमें मेरे कालेजके एक साथी ने मुझे झकझोरते हुए कहा—"उठो, महाराज, आलसियों के सरताज, दिन चढ़ आया, आज अंग्रेजीका परचा है, क्या फेल होनेका इरादा किया है ।" मैं आँखें मलता हुआ उठ बैठा ।

लीजिए पाठक वृन्द ! किस्सा खतम हुआ । अच्छा, फिर मिलेंगे । जैरामजीकी । अलविदा ।

आपका
लहरी



मूंगकी दाल खाकर अपने मेहमानोंको पूरी, कचौड़ी, खीर लड्डू, पेड़ा, बर्फीसे आवभगत करें, आप चाहे भले ही बोरा पहिन कर जिस किसी तरहसे गुज़र बसर कर लें पर उनके लिए पशमीना और मलमलका कपड़ा जुटाना हमारा कर्त्तव्य है। इस पर गांधी-वादियोंकी तरफ़से तालियां बजाकर हर्षध्वनि प्रकट की जाती है। युद्धमंत्रीजी आगे फिर अपने भाषणको जारी करते हुए कहते हैं कि यद्यपि मुझे युद्धमंत्रीका पद दिया गया है, पर मेरी तो यही हार्दिक इच्छा होती है कि युद्धमंत्रीके स्थान पर मुझे शान्ति प्रचार मंत्रीके नामसे पुकारा जाय, मुझे पूर्ण आशा है कि मेरे वक्तव्य से आप पुण्यभूमि भारतवर्ष की अहिंसक युद्धनीति नहीं अहिंसक शान्ति नीति से आप पूर्णतः परिचित हो गए होंगे। इतना कहकर श्री युद्धमंत्रीजी अपना भाषण समाप्त करते हैं।

## स्वामी खटपटानन्दजी का भाषण

श्री युद्धमंत्रीजी के भाषणके बाद ही श्री १००८ स्वामी खटपटानन्दजी जो विरोधी दलके उपनेता हैं, अपना भाषण प्रारम्भ करते हुए कहते हैं—"माननीय स्पीकर साहिब और सदस्य गण! अभी आपने श्री युद्धमंत्रीजीका भाषण सुना, उनके भाषणसे ऐसा मालूम होता है कि वे भगवान् बुद्धका अवतार लेकर अभी सीधे हिमालयकी गुफ़ासे यहां आ रहे हैं। श्री युद्धमंत्रीजी ने अपने भाषणमें कंचनजंघाकी चोटी से भी ऊंची आदर्श और त्यागकी बातें हमारे सामने रक्खी हैं। वे अपने भाषणके समय हवामें ही उड़ते रहे हैं; उन्होंने ऐसा मालूम होता है कि जमीन पर पैर ही नहीं रक्खे। यदि वे वस्तुस्थितिको समझनेकी ज़रा भी चेष्टा करते तो ऐसी ऊल जलूल बातें, युद्धमंत्री जैसे ज़िम्मेवारी के पद पर रहते हुए कभी न कहते। श्री युद्धमंत्रीजीके व्याख्यानसे ऐसा मालूम होता है

कि वे हृदय कृपया इस पर प्रकाश डालें कि हिन्दु-
समझते हैं। इस मिक्सचर तैय्यार करनेके लिए हिन्दी
गया, उसे तोड़ शब्दोंको किस अनुपातमें मिलाया
दिया। मुझे सम्उर्दू के शब्द पुस्तकोंमें ज्यादह इस्तेमाल
गम्भीर विद्वान् हिन्दुओंको आपत्ति होगी और यदि
क्यों कही। हिन्दीके शब्द कुछ जरूरतसे ज्यादा आ
अब तक तो न इतनी जोरसे हल्ला मचाएंगे कि
किसी तरह जुटना जाएगी। सबसे पहले हिन्दुस्तानीमें
ज़ाम लगाया गया।तसे मिलाए जाएंगे, इस महत्वपूर्ण
नौजवान न होकर होना चाहिए। यह कोई बनियेका
आत्माभिमान और है नहीं कि जितना मर्जी हुआ उतना
बड़बड़ाते हुए जोशखीमें डाल दिया या खांडमें अपने
को सम्बोधन करके ावट कर दी। मैं समझता हूं, इस
तक तो स्वामी खटपालको हल करनेके लिए ही एक
कहा, अगर अब कोशिश करनी पड़ेगी।
छेड़ेंगे, तो मैं मरने की गृहमन्त्रीजीने हौसके सामने
माननीय स्पीकरके राष्ट्रीय कार्य प्रारम्भ होनेसे
मुश्किलसे श्री युद्धमंत्रीों और वेदमन्त्रोंका मौलवियों
खटपटानन्दजीसे फिरठ कराया जाना। इसपर मुझे
लिए कहा— है कि जब हिन्दू और मुसल·
श्री स्वामीजीने अपलिए यह व्यर्थका कृत्रिम ढोंग
हुए कहा—"माननीय सकर ईसाइयों, पारसियों और
कि किस तरह अहिंसा बगाड़ा है। इसलिए यदि वे
युद्धमंत्रीजी उबल पड़े। क ग्रन्थोंके पाठ पर जोर देवें
क्या इसीका नाम हृदय पड़ेगा और लाज़मी तौर पर
इस पर स्पीकर साहिबने धम्मपद का पाठ कराना
आक्षेप न करनेकी कड़ी चेतकारी संस्थाके साथ मौल-
स्वामीजीने फिर आगे र्मोपदेशकोंका एक अच्छा
परिवर्त्तनकी बात कह रहा ब प्रपंचका जो भारी भर-
हृदय परिवर्त्तनका ठेका हमनेहमन्त्रीजी अपनी जेबसे
बतलाइए, हम हिन्दुस्तानी किआता कि गृहमन्त्रीजीके
करेंगे। और फिर हृदय परिवसी स्कीमें कहांसे आई।

इस पर श्री गृहमन्त्रीजी जोशमें कुर्सीसे उठ खड़े हुए और रामकृष्णजीको सम्बोधन करके कहने लगे—"ओ बाणिए ! जरा जबान सम्भालके बोल, नहीं तो यहीं कचूमर निकाल दूंगा।" वाद विवाद उग्र रूप धारण करनेवाला था कि स्पीकर साहिबने श्री रामकृष्ण जीको लालबुझक्कड़ शब्द वापिस लेनेको कहा और फिर एक बार रामकृष्णजीको कोमल भाषामें बोलनेके लिए कड़ी चेतावनी दे दी गई।

आगे रामकृष्णजीने अपना भाषण पुनः जारी करते हुए कहा कि बाकी रहा गृहमन्त्रीजी का गायों और ऊंटों वाला मसला। भला आपही जरा ठंडे दिमागसे इसपर विचार करें कि क्या ईसाई साथ २ कुत्ते रखनेके लिए सरकार पर दबाव न डालेंगे। इस तरह तो प्रत्येक आदमीका घर एक अच्छा शानदार, चिड़ियाघर बन जाएगा। फिर जब सरकार गाय, ऊंट और कुत्तोंको एक साथ रखनेकी इजाजत देगी तो फिर गधे बेचारोंने क्या पाप किया है। इतनेमें एक तरफ़से आवाज़ आती हैं—क्यों साहिब ! क्या आप गधोंके प्रतिनिधि हैं। इसपर रामकृष्णजी जोशमें आकर कहते हैं—माननीय सदस्य गण ! जरा आप इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करें, गधोंको क्यों न और पशुओंके साथ स्थान दिया जाय।

श्री रामकृष्णजीने गृहमन्त्रीजीकी अन्तिम स्कीम का हवाला देते हुए कहा कि पोशाकके बारेमें तो गृहमन्त्रीजीके विचार एकदम अनोखे और अभूतपूर्व हैं। गृहमन्त्रीजीने हिन्दु मुस्लिम एकताके लिए यह नया नुसखा ईजाद किया है कि हिन्दुओंकी पोशाक मुसलमान पहिने और मुसलमानोंकी पोशाक हिन्दू पहने। निश्चय ही ऐक्य स्थापित करनेकी यह अनोखी सूझ है ; पर गृहमन्त्रीजी इससे चार कदम आगे बढ़कर यदि यह कहते कि ऐक्य स्थापित करनेके लिये स्त्रियोंकी पोशाक—साड़ी, सलवार, बोछन, अंगिया वगैरह आदमी पहना करें और आदमियोंकी पोशाक—धोती, पायजामा, अचकन आदि स्त्रियां धारण किया करें—तो अधिक अच्छा होता। इस उपायसे तो एकदम भेदभाव दूर होकर ऐक्य स्थापित हो जाता। पता नहीं, गृहमन्त्रीजीको ये विचार उस समय क्यों नहीं सूझे। बस इतना ही कहकर मैं आजका अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं।

श्रीरामकृष्णजी के विनोदपूर्ण भाषणका सारे हौस पर बहुत गहरा असर पड़ा और सदस्योंने तालियां बजाकर उनका उत्साहवर्द्धन किया तथा अपने सहास्य मुखों द्वारा यह भाव प्रदर्शित किया कि अगला प्रधानमन्त्री आपको ही चुना जाएगा।

मैं अभी स्वप्नमें आगेकी कार्यवाही देख ही रहा था कि इतनेमें मेरे कालेजके एक साथी ने मुझे झकझोरते हुए कहा—"उठो, महाराज, आलसियों के सरताज, दिन चढ़ आया, आज अंग्रेजीका परचा है, क्या फेल होनेका इरादा किया है।" मैं आँखें मलता हुआ उठ बैठा।

लीजिए पाठक वृन्द ! किस्सा खतम हुआ। अच्छा, फिर मिलेंगे। जैरामजीकी। अलविदा।

आपका
लहरी





# सूक्ति-सुधा

जिस प्रकार शैव शिव की, वैष्णव विष्णु की तथा ईसाई ईसा की पूजा करता है, उसी तरह मैं भारत-माता की पूजा करता हूं। वही मेरी गंगाजी, मेरी काली, मेरे इष्ट देवता और मेरे शालिग्राम हैं। यह समझ कर कि सम्पूर्ण भारत प्रत्येक पुत्र में व्यस्त है। प्रत्येक भारतीयको मातृभूमि की सेवामें कटिबद्ध रहना चाहिये।

\+ \+ \+

जिस प्रकार विज्ञानमें प्रयोगात्मक विज्ञानका ही मूल्य अधिक रहता है, आचार्योंकी बातें प्रयोग रहित रहनेपर कोई मूल्य नहीं रखतीं, इसी तरह धर्म में भी आचार्योंका स्थान नही है। यह स्वयं आत्मानुभव की चीज़ है। मनुष्यको स्वयं अपना रास्ता पकड़ कर चलना चाहिये, उसका आत्मानुभव ही सत्य की सच्ची कसौटी है।

—स्वामी रामतीर्थ

क्या सभी दरिद्र, दुःखी तथा शक्तिहीन हमारे देवता नहीं हैं ? उन्हींकी पूजा करो। जो उनमें भगवान् शिवको देखता है, वास्तवमें वही उनकी पूजा करता है। मैं बारम्बार जन्म लेकर सहस्रों विपत्तियों को सहन करनेके लिए तैय्यार हूं। ताकि मैं केवल उसी परमात्माकी जिसकी सत्ता है उपासना कर सकूं। सबसे अधिक सभी जातियोंके दुष्टों, दुखियों और निर्धनोंमें जिस परमात्माका वास है, वही मेरी पूजाका विशेष लक्ष्य हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

मेरा मज़हब हकपरस्ती है। मेरी मिल्लत कौमपरस्ती है। मेरी इबादत ख़ल्कपरस्ती है। मेरी अदालत मेरा अन्तःकरण है। मेरी जायदाद मेरी कलम है। मेरा मन्दिर मेरा दिल है। मेरी उमङ्गें सदा जवान हैं।

\+ \+ ×

मैं स्वयं अपने हृदयमें निराशावादको स्थान देनेसे अस्वीकार करता हूं। आशा और विश्वास ही मेरा धर्म है। सत्य सुदृढ़ तथा अटल संघर्षमें मेरी श्रद्धा है। असफलता के निमित्त भी मैं सदा प्रस्तुत हूं, यदि इसके द्वारा मुझे और अधिक न्याययुक्त, अधिक शक्तिशाली कार्य प्रारम्भ करनेकी नवीन शक्ति प्राप्त हो सके।

—पंजाब केसरी लाला लाजपत राय

\+ \+ ×

वस्तुओंमें नहीं विचारोंमें, अधिकारोंमें नहीं आदर्शोंमें अमरत्वका बीज प्राप्त किया जा सकता है। धन प्राप्त कर नहीं, बल्कि विचारों एवं आदर्शोंको प्रसारित करके मानव-साम्राज्य की स्थापना की जा सकती है।

\+ × \+

दूसरोंको दोष देना शक्तिहीनताका स्वभाव है। परिस्थितिको दोष देकर नहीं, बल्कि उसे स्वीकार कर, उसका सामना कर हावी हो जाना मनुष्यका कर्त्तव्य है। एक बार सिर्फ एक बार निश्चित करना सीखो और कहो "मैं इसे अवश्य पूरा करूंगा।"

—आचार्य जगदीशचन्द्र वसु

काशित हो गया !　　　　"ओ३म्"　　　　॥=)

विक-जीवन-ग्रन्थमाला का सप्तम पुष्प

# "ओ३म्" [ प्रणव रहस्य ]

प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता हैं, विश्व-विश्रुत योगिराज, उन्नतमना, यौगिक विद्याके प्रकाण
ध्यात्मिक धनके धनी ; अनेक आध्यात्मिक पुस्तकोंके सिद्धहस्त लेखक, देश और विदेशके अ
द्वानों द्वारा प्रशंसित आदरणीय श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती ; जिनके नामसे आध्यात्मि
ड़ी बहुत भी दिलचस्पी लेनेवाला प्रत्येक सज्जन परिचित है और जिनकी रचनाओंको आध्यात्
त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

श्री स्वामीजी ने अनेकों वर्षों की साधना और तपश्चर्या के उपरान्त प्रस्तुत ग्रन्थ-रत्न
या है । स्वामीजी के विषय में कुछ कहना सूर्यको दीपक दिखानेके तुल्य है ।

ॐ के निरन्तर श्रद्धापूर्वक ध्यान और जप से मनुष्य किस प्रकार इस संसार सागर को पार कर
प्रस्तुत प्रश्न की व्याख्या बड़े सुन्दर, विवेचनात्मक ढंग से पुस्तक में की गई है ।

ॐ का जप मनोनिग्रह करनेमें किस प्रकार महान् सहायक है ; इस सत्य को जानने के लिये ॐ प्र
हस्य का अवश्य अध्ययन करें ।

ॐ ( प्रणव रहस्य ) के अध्ययन से जीवन के विषयमें आपका दृष्टि-कोण अवश्य ही परिवर्तित हो
जाएगा, निराशावाद के स्थानपर सुनहले आशावादके आपको सर्वत्र दर्शन होंगे । सर्वत्र आपको ॐ की महिम
का विराटरूप दृष्टिगोचर होगा —

## क्या आप—

( १ ) अवर्णनीय दिव्य आनन्द और मस्ती के झूले में झूलना चाहते हैं ?

( २ ) विश्व में निरन्तर होनेवाला ॐ का मनमोहक संगीत सुनना चाहते हैं ?

( ३ ) ॐ के निरन्तर जप द्वारा अपने मानस-दुर्गपर विजय पाना चाहते हैं ?

( ४ ) जीवन के चरम ध्येय 'सत्यं, शिवं सुन्दरं' की ओर अग्रसर होना चाहते हैं ?

## —तो आज ही—

ॐ ( प्रणव रहस्य ) की एक प्रति मंगा कर पढ़ें ।

## और शान्ति के सागर में गोता लगाएँ—

प्रकाशक— **जेनरल प्रिंटिंग वर्क्स लि०**

८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता ।　　　　शाखा—"प्रिंटिंग हाऊस" हौज़कटरा, बनारस ।

Regd. No. A 898.



जिस प्रकार
ईसाई ईसा की पूज
माता की पूजा कर
काली, मेरे इष्ट दे
समझ कर कि सम
प्रत्येक भारतीयको
चाहिये।
जिस प्रक
मूल्य अधिक
रहनेपर क
भी आ
की
च

# विजयादशमी पर सात्विक-जीवन का
# विशेषांक

...े प्रेमी पाठकों और अध्यात्मप्रेमी, श्रद्धालु महानुभावों को यह सूचित करते हुए परम हर्ष ...जयादशमी के शुभ पर्व पर हमने सात्विक-जीवन का विशेषांक बड़ी सजधज के साथ ...जन किया है।

...क प्रत्येक दृष्टि से निराला होगा। गम्भीर, मनोवैज्ञानिक ... सरस मनोरञ्जक कहानियों और शिष्ट हास परिहास की भी पर्याप्त सामग्री रहेगी। ... पहलू पर इसमें उच्च कोटि के सारगर्भित लेख रहेंगे।

## सात्विक-जीवन की सर्वप्रियता

...ों, दो नहीं, तीन नहीं—पांच २ प्रान्तों मध्यप्रान्त और बरार, देहली, बिहार, सिन्ध तथा ...ा विभागों द्वारा अपने प्रान्तके स्कूलों, कालेजों, लाईब्रेरियों तथा होस्टलों के लिए सात्विक-... स्वीकृति इसकी सर्वप्रियता तथा उपयोगिता का ज्वलन्त उदाहरण है। देश के अनेक मनीषी ...और विख्यात पत्र-पत्रिकाओं ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

## —सात्विक-जीवन की विशेषता—

(१) आज के इस आँखों को अपने तीक्ष्ण प्रकाश से चौंधियानेवाले युग में, जब कि अश्लील और ...त्सित साहित्य की बाढ़ सी आ गई है; सात्विक-जीवन का उद्देश्य ऐसे साहित्य की सृष्टि करना है जिसके निर्मल प्रकाश से शरीर, मन और आत्मा तीनों प्रभापूर्ण बनें।

(२) सात्विक-जीवन का एकमात्र उद्देश्य ऐसे साहित्य को जन्म देना है जिससे मानव का इहलोक और परलोक दोनों सुधरें; उसकी भावनाएं उदात्त, विचार परिष्कृत तथा प्रवृत्तियां परिमार्जित हों।

(३) अनेक शिक्षाप्रद, गम्भीर, दार्शनिक विषयों के साथ २ इसमें सुन्दर मनोहारिणी कविताओं, गद्यगीतों, कहानियों तथा शिष्ट हास-परिहास से इसकी उपयो... और सरसतामें चार चान्द लग गए हैं।

(३) सात्विक-जीवन की लेख-सामग्री के चुनाव में हमारा सबसे बड़ा ध्यान इस ओर रहता है कि वह लेख-सामग्री शुष्क और नीरस न हो। यदि आप आध्यात्मिकता और सरसता तथा माधुर्य का सुन्दर समन्वय देखना चाहते हैं; तो सात्विक जीवन का एक बार अवश्य अध्ययन करें।

इस मँहगी के जमाने में भी—

सात्विक-जीवन का वार्षिक मूल्य ३) मात्र है। विद्यार्थियों, विद्यालयों और पुस्तकालयों के लिए २), नमूने की कापी के लिए चार आने के टिकट भेजें।

—प्राप्ति स्थान—

## सात्विक-जीवन कार्यालय

प्रिंटिंग हाऊस, हौज़ कटरा, बनारस।



Printed & Published by Baliram Gupta at General Printing Works Ltd. ...